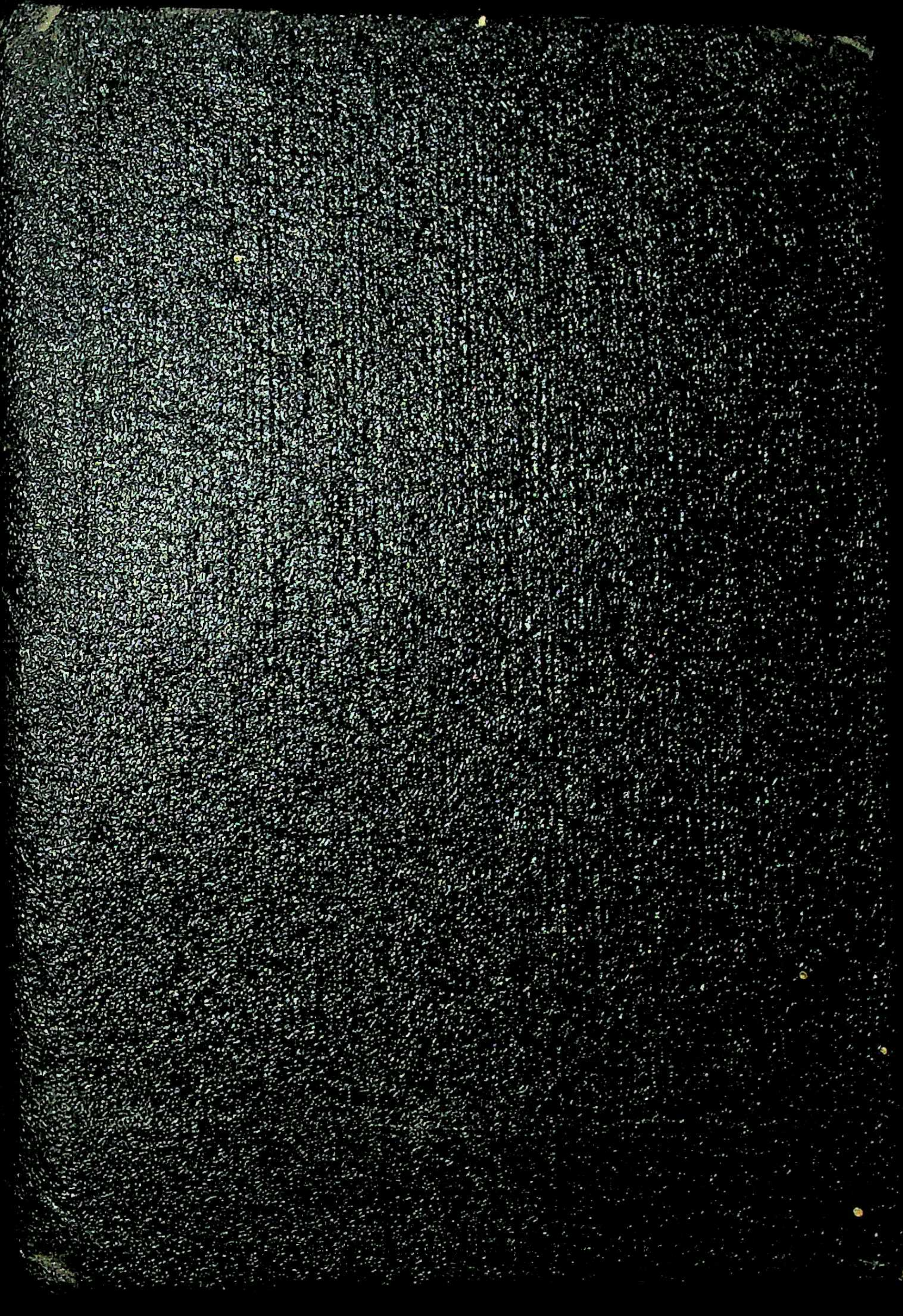
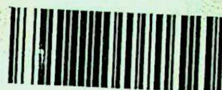
GYANPITH PATRIKA 1966 G.K.V.




STOCK VERIFICA
Central
Library
2024-25 G.K.D.

ज्ञानपीठ पत्रिका

जनवरी
१९६६



...ीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

...न-प्रकाशनकी अधुनातन
...ा-प्रवृत्ति और उपलब्धि परिचायिनी
...की

o o o o o o o

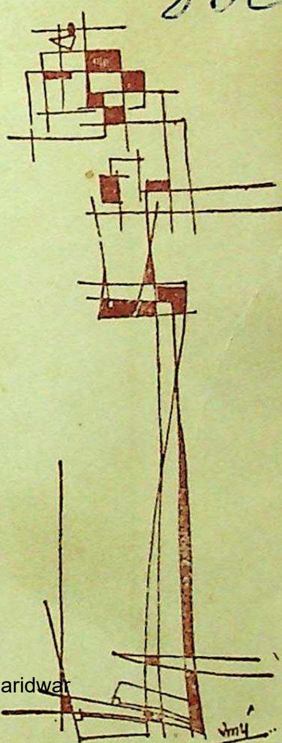
शीघ्र ही प्रकाश्य
दो कृतियां

• मुरदा सराय

...प्रसाद सिंहकी बारह चुनी हुई नयी कहानियोंका ...ह। कथा-प्रेमियोंके लिए अनिवार्यतः पठनीय।

• कुछ निबन्ध

...यकुमार जैनके लघु-ललित निबन्धोंका संग्रह : जो मनो... ...न तो करेंगे ही, कुछ और भी बोलेंगे।



...ीय ज्ञानपीठ प्रकाशन



साहित्यिक विकास-उन्नयन
सांस्कृतिक अनुसन्धान-प्रकाशन
राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी
साधिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

[स्थापित सन् १९४४]

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

ज्ञानपीठ पत्रिका

वर्ष चार : अंक छह

जनवरी १९६६

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

सम्पादक

लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जगदीश

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

मूल्य : छह रुपये वार्षिक, पचपन पैसे प्रति, द्विवार्षिक : ग्यारह रुपये

समाज-शिक्षा विभाग, राजस्थान-द्वारा उच्च, उच्चतर विद्यालय तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंके लिए प्रस्वीकृत

उद्घोष

युगका लेखक

युगका लेखक न तो खुली आँखों देखे बदलते हुए जगत्पर अपना
श्रमदान करनेसे चूकता है और न मुँदी आँखोंको दुनियामें
मानवकी कोमल और प्रखरतर भावनाओं तक
पहुँचनेसे ही रुकता है।

● ●

— माखनलाल चतुर्वेदी

दृष्टिका काम बाहरको देखना भी है और भीतरको भी। जब वह बाहरको देखती है तब रचनाओंपर समयके पैरोंके निशान पड़े बिना नहीं रहते। जब वह भीतरको देखती है तब मनोभावनाओंके ऐसे चित्रण क़लमपर आ जाते हैं जिन्हें समयके द्वारा शीघ्र पोंछा नहीं जा सकता—यदि मनोभावनाओंकी सतह ऐसी हो जिसमें अगणितोंका उल्लास और उनकी भावना प्रतिबिम्बित हो उठी हो और जिनकी कहानी, अपने अवतरणमें, दोहराहटोंके दाग़से बची रह सकी हो। यही कारण है कि नेत्रसे दीखनेवाले सब-कुछकी ओरसे आँखें मूँद लेनेपर उसका पता नहीं लगता, किन्तु भीतरको दीखनेवाली दुनिया आँख मूँद लेनेके बाद भी दीखती और सूझती रहती है। इसलिए वह समयके हाथों मिटाये नहीं मिटती, इसलिए समयके निशानोंवाली वस्तु समय बदलते ही अपना अस्तित्व खोने लगती है, और 'संस्कृति'के नामसे पुकारी जाती रही है। युगका लेखक न तो खुली आँखोंसे देखकर उलट-पुलट होते जगत्पर अपना श्रमदान करनेसे चूक सकता है, न मुँदी आँखोंकी दुनियामें महामहिम मानवकी कोमलतर और प्रखरतर मनोभावनाओंकी पहुँच तक जानेसे ही रुक सकता है।

● ●

परिवर्तन और सृजन

लेखकों और विचारशील वर्गोंमें ही नहीं,
प्रायः सब ओर एक उदासी-भरी रिक्तता
और विवशताका वातावरण क्यों ? और
इससे बचने या निकलनेका मार्ग ?

◉ ◉

डॉ० शिवप्रसाद सिंह

हमारी सामाजिक दशा ऐसी है जिससे शायद ही किसीको सन्तोष हो। इतना कूड़ा-कर्दम अतीतके गर्भमें भरा है कि खुलकर साँस लेना मुश्किल है। इस दमघोंट वातावरणको तोड़े बिना नजात नहीं। मोह-विद्ध भावसे जीनेवाले इसे शायद ही तोड़ पायें। परिवर्तनकी आकांक्षा सबमें है। पर परिवर्तन कैसे ?

किसी बाहरी शक्तिसे प्रेरित कोई घटना परिवर्तन ले आ सकती है। मगर वैसा परिवर्तन नियतिके अन्ध-न्यायकी नाईं हमारा सब-कुछ ध्वस्त भी कर सकता है। हम चाहते हैं कि ध्वस्त उतना ही हो जो निष्प्राण है, जड़ है, और जो मरे साँपकी तरह हमारे पैरोंको बाँध लेता है, हमारी गतिको बाधित करता है। परिवर्तनमें एकको सम्भावना हमेशा गरमाहट देती है, उत्साह लाती है; मगर परिवर्तनकी गतिके हाथसे फिसल जानेकी विवशता हमारा आत्मघात कर देती है, इसमें भी शक नहीं। पश्चिमी विचारधाराके प्रति हमारे मनका मोह इसी बातका सूचक है।

हम अपने वातावरणसे इतना ऊबे हुए हैं कि हमें लगता है यूरॅपकी बातें शायद हमारी समस्याओंको सुलझा दें। उनसे कुछ गरमी आयी है, कुछ टकराहटें हुई हैं। कुछ मामलोंमें उन्होंने हमें संकोचकी गुंजलकसे मुक्त किया है। खोखले आदर्शों और मूल्यों आदिके प्रति हमारी अन्ध-श्रद्धा टूटी है। पहलेसे अधिक बेफ़िक्र होकर मूर्तियोंको तोड़ देनेका हमारा उत्साह बढ़ा है। अब किसी चीजके प्रति नफ़रत करते समय हमारे ही भीतरका संस्कार हमें बाँधता नहीं, रोकता नहीं।

किन्तु यह मूर्ति-भंजन, यह नफ़रत, यह विरोध, यह सम्बन्ध-विच्छेद—यह सभी तो नकारात्मक ही हैं। यह सभी तो कुछ-न-कुछ हटाकर एक रिक्तताको जनमाते हैं। और ज्यों-ज्यों हमारे चारों ओर रिक्तता बढ़ती है, पुरानेका अभाव गाढ़ होता है, नयेका अस्तित्व स्पर्शसे दूर रहता है, त्यों-त्यों एक अजीब तरहकी उदासी-भरी विवशतामें हम डूबते जा रहे हैं। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए कि हम परिवर्तनकी गतिको अपने हिसाबसे अनुकूलित करनेके लिए सचेत नहीं हैं। परिवर्तन अभिप्रेत है, पर सृजन विस्मृत। सृजन ही मानवता है; सृजनके ही माध्यमसे हर व्यक्ति अपने अस्तित्वका होना चरितार्थ करता है। इस सृजनके प्रति हमारी जागरूकता ही परिवर्तनके औचित्यकी गारण्टी है। यदि हम इस सृजनके प्रति सही ढंगसे प्रतिबद्ध होते तो शायद उदासी-भरी विवशता हमारा एकमेव प्राप्य नहीं होती।

रेलगाड़ी-मोटर और डाक-तार-टेलेफ़ोनकी व्यवस्थाएँ, संसद्-लोकसभा और संविधान—सभी कुछ तो हमने पश्चिमसे लिया। पर यह सृजन था। इन सबकी मूल आत्माको हमने अपने वातावरणमें अपनी तरहसे जीने और विकसित होनेका अवसर दिया। देशके इस छोरसे उस छोर तक फैली रेलकी पटरियाँ हमारी धरतीसे चिपकी हैं, हमारे पसीनेमें भीगी हैं, हमारे सुख-दुःखकी साक्षी रही हैं; इनपर दौड़ता हुआ इंजन हमारी साँसोंकी गरमीसे दौड़ता है और गरजता-पुकारता है। इसलिए यह सृजन है। इसलिए यह परिवर्तन अभिप्रेत है। किन्तु कॉकटेल, ट्विस्ट, ड्रेनपाइप पैण्ट्स, बीटल-कट बाल, बीटनिक व्यापार आदि एक परिवर्तन-की सूचना भले दें, सृजन-भावसे तो वे अछूते हैं। इसलिए ये व्यर्थ रूपसे हमारी गतिको बाँधते हैं, हमारी शक्तिको छीजनेके लिए विवश करते हैं। यहाँ सृजन नहीं है, इसलिए परिवर्तन भी नहीं है।

भाव और बुद्धिके क्षेत्रमें सृजन और मिथ्या परिवर्तनका अन्तर कर पाना बहुत आसान नहीं होता। हर व्यक्ति सरल और सहजसे खुलेआम हाथ मिलानेके लिए उत्सुक है। कुछ नयी बातें आती हैं, फैलती हैं। नया हमेशा ही कुतूहल जगाता है; छिछले स्तरपर एक आदर भी। और चूँकि नयेसे सम्बद्ध होते ही उस व्यक्तिका अस्तित्व एक मिथ्या मूल्यसे जुड़ जाता है, इसलिए देखादेखी नयेके प्रति ललक बढ़ती जाती है। प्रशंसकों, सहवास-प्रेमियों, थकेपनके निराश लोगों-की एक टोली बन जाती है और एक 'नये' की स्थापना, न्यास और पूजा घरी-

घण्टके साथ चल पड़ती है। ऐसे विवेकवान् स्वभावतः कम होते हैं जो सचेष्ट रूपसे मात्र परिवर्तन और सृजनोन्मुख परिवर्तनके बीच अन्तर कर सकें। धीरे-धीरे यह स्थिति सघन होती जाती है और इस 'नये' की रूढ़ि हमारे मन और हमारी बुद्धिको पूरी तरह जकड़ लेती है।

यह सब-कुछ इतना शीघ्र होता है कि इससे बचना, बरी रहना, या विवेकके साथ इसके भीतरसे रास्ता खोज लेना लोगोंके लिए व्यर्थका कार्य लगने लगता है। वे इस तरहकी बातोंको सुनना नहीं चाहते, क्योंकि सुननेसे मनका निर्मित सुख भाफकी तरह उड़ने लगता है। और फिर बचनेवाला क्या कोई दूसरा रास्ता पा ही जाता है! 'हाँ हाँ ठीक है भई, माना यह फ़ैशन है, नयेकी रूढ़ि है, यहाँ सृजन नहीं है, मात्र नकार है, मगर इससे हटकर हम जायें कहाँ? पीछे जा नहीं सकते, क्योंकि उधर मृत अतीत है। वर्तमानमें आप रहने देना नहीं चाहते, क्योंकि यह नयेकी रूढ़िसे कीलित है—तब फिर किधर जायें? कोई दिशा? कोई रास्ता?'

मैं बार-बार सोचता रहा हूँ कि क्या मेरे पास कोई रास्ता है, कोई दिशा है। मैं मानता हूँ कि कोई स्पष्ट रास्ता मुझे नहीं सूझता। अभीतक कोई दिशा मुझे नहीं मिली है। पर स्थितिको सही ढंगसे समझना क्या अपनेमें महत्त्वपूर्ण नहीं है? अपनी स्वतन्त्रताका बोध रखते हुए इन दिशाहीन स्थितियोंसे टकराना क्या एक मूल्य नहीं है। बहरहाल यह टकराहट, वह 'कन्फ्रण्टेशन', ही अभी उपलब्ध दिशा है। यही मेरा मूल्य है।



हममें वह कट्टरता भी नहीं होनी चाहिए कि हम एक हाथमें अपने सम्प्रदाय ग्रन्थ और दूसरे हाथमें तलवार या हथौड़ा लेकर निकल पड़ें कि हमारा मत ही एकमात्र प्रामाणिक मत है। इसमें शामिल हो वरना तलवारके घाट उतरो। हममें वस्तुतः व्यापक संवेदना होनी चाहिए कि विश्वव्यापी मानवीय विघटनकी चरम वेदनाको हम आत्मसात् कर सकें।

—मानव मूल्य और साहित्य : डॉ० धर्मवीर भारती

आधुनिक भाव-बोधकी काव्य-धारा

स्वयं परीक्षित अनुभवकी बौद्धिक ईमानदारीका साहित्यिक अधिकार कविको है, होना चाहिए, यह कवि-कर्मके लिए अनिवार्य तत्त्व है।

गिरिजाकुमार माथुर

आधुनिक बोधकी काव्य-धाराको प्रारम्भ हुए अब चौथाई शती बीत चुकी है, 'तार सप्तक' जिसकी प्रथम समवेत अभिव्यक्ति था। जो चेतनाबिम्ब सन् १९३९-४० में उदित हुआ था वह अबतक हिन्दी कविताका सम्पूर्ण क्षितिज आच्छादित कर चुका है और अनेक तीखे संघर्ष तथा विरोधी आघातोंके पार आकर अपनी विलग सत्ता स्थापित कर चुका है। कविताका स्वभाव तथा स्वरूप आज कितना बदल गया है यह सन् १९३५ और १९६५ की किसी भी रचनाके तुलनात्मक अध्ययनसे देखा जा सकता है।

पुरानी मध्ययुगीन मूल्य-दृष्टि, भावुकतापूर्ण रोमान, कल्पना-प्रधान सांस्कृतिक बोध, तथा धरातलीय उदारवाद (जिसे हिन्दीमें 'मानवतावाद' अथवा तथाकथित 'भारतीय परम्परा' की संज्ञा दी जाती है) के धुन्धको इस नयी संवेदनशीलता और वस्तुपरक, सूक्ष्म सौन्दर्य-दृष्टिने सदाके लिए मिटा दिया है। सामाजिक दायित्वके महत्की ओटमें नक़ली मांगलिकता और निरीह शुभाशंसाका जो आडम्बर रचा जा रहा था और अब भी तुरत-सिद्धियोंके लिए कभी-कभी रचा जाता है, उस पाखण्डकी क़लई भी नव-काव्यकी खरी तथा निष्ठापूर्ण क्रिया-विधि पिघलाकर बहा चुकी है। माध्यम और उपकरणोंकी संकीर्ण रूढ़ियाँ तोड़कर उन्हें सहज अनुभूतिके साथ सम्बद्ध किया गया है। संवेदनाके सीमित और वर्गीकृत आधारोंके स्थानपर सर्वथा अन्तरंग एवं आत्मानुभूत प्रतिक्रियाओंको अधिक मूल्यवान् मानकर कलात्मक वैभवके एक ऐसे असीमित और अनवलोकित क्षेत्रका उद्घाटन हो चुका है जिसका पूर्वकालीन कवियोंको भान भी नहीं था।

छोटीसे छोटी, निपट आत्मीय और निकटतम स्थितिके अनुभव-खण्डोंको भी कविताके लिए अयोग्य नहीं समझा गया, बल्कि उन्हें ही सार्थक एवं मूल्यवान् माना गया; क्योंकि यही छोटी, मृदु, (डेलिकेट) प्रतिक्रियाएँ आदमीको अधिक स्वाभाविक और परिपूर्ण रूपसे व्यक्त करती हैं, असामान्य घटनाएं अथवा अनुभव नहीं ।

पिछले कवियोंकी दृष्टिमें 'असाधारण' और असाधारणके साथ जुड़ा चमत्कारी बिम्ब-मण्डल (ऑरा) ही मूल्यवान् होता था । और चूँकि असाधारण स्थितियाँ, घटनाएँ या व्यक्तित्व कम होते हैं अतः पिछले कवियोंका 'वस्तु'-क्षेत्र सीमित होता था । वे जीवन और जगत्के क्रिया-कलापों एवं आदमीसे सम्बन्धित घटना-क्रमको मोटे रूपसे विभाजित प्राथमिकवर्गों (जनरलाइज्ड कैटेगरीज़) में देखनेके आदी थे जिसके कारण उनकी अनुभूति विशेषीकृत न होकर सामान्यीकृत होती थी । विरह-मिलन, आशा-निराशा, सुख-दुःख, ऊँच-नीच, प्रेम-विराग, आत्मा-परमात्मा, प्रकृति-सांसारिकता, भौतिक-आध्यात्मिक, जनता और समाज, स्वदेशी-विदेशी आदि ऐसे ही सामान्य, अस्पष्ट वर्ग उनकी चेतनाके संचरण-माध्यम थे । प्रत्येक पक्षके सूक्ष्म, विस्तारपूर्ण आयाम क्या हैं इस दृष्टिका वहाँ नितान्त अभाव था । नव-काव्यने इस सामान्यीकृत चेतना और वर्गीकृत संवेदनाको बिलकुल अस्वीकार कर दिया । सौन्दर्यकी शास्त्र-सम्मत व्याख्याओंके स्थानपर सौन्दर्य-बोधको स्थिति-सापेक्ष्य अनुभूतिके साथ जोड़ा गया और बहिर्मुखी रम्यता एवं कोमलताके बदले मार्मिकता, तन्मय स्पन्दनशीलता तथा आन्तरिक गुणवत्ताको अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया । इस प्रकार काव्यगत सौन्दर्य-तत्त्वको भाव-स्तरपर ग्रहण किया गया और उसे मात्र 'सुन्दरता'का पर्याय न समझकर असुन्दर-की मर्मानुभूतिको भी सौन्दर्य-बोधके अन्तर्गत ही रखा गया । छन्दके शृंखलित आरोपको भंग कर दिया गया तथा छन्दमुक्त स्थितिमें आन्तरिक लयान्वितिको भावनाकी सहज, अकृत्रिम अभिव्यक्तिके लिए अधिक उपयुक्त माना गया । प्रकृतिपरक, गोचरी और 'भदेस' संवेदनाका स्थान अधिक शालीन एवं आधुनिक नगरीय-बोधको दिया गया और अस्पष्ट, भावावेशी 'उद्गारों' के स्थानपर सुदृढ़, अच्युत (प्रेसाइज़) और अधिभिन्नित (हाइली डिफ़रेन्शियेटेड) साक्षात्कारोंको बौद्धिक तन्मयताके प्रगाढ़ासनपर प्रतिष्ठित किया गया ।

किसी दूसरेके द्वारा संकल्पित सिद्धान्त या उद्घाटित भाव-सत्य कविके लिए

तबतक प्रामाणिक नहीं हो सकता जबतक वह उसके द्वारा अनुभूत न हो, उसकी आत्माका सत्य न बन जाये; भले ही ऐसा सिद्धान्त चाहे कितना ही श्रेष्ठ हो और कितने ही बड़े महापुरुष-द्वारा वह संस्थापित किया गया हो। आत्म-साक्ष्यकी यह मूल्य-दृष्टि (ऐप्रोच) वैज्ञानिक युगकी क्रियाविधिके अनुकूल है, जिसकी आधार-शिला विश्लेषण-परीक्षण (इम्पीरिकल) पद्धति है और जिसकी दार्शनिक भूमि है प्रश्न और जिज्ञासा। इसके विपरीत पूर्व-स्थापित तथा परम्परा-स्वीकृत सादयोंका श्रद्धालु अनुसरण अथवा अन्धानुकरण मध्ययुगीन, सामन्ती और साम्प्रदायिक प्रवृत्तिका द्योतक है। यह प्रतिगामी वृत्ति मानव-आत्माकी विरोधी तथा कवि-विवेकके प्रतिकूल है। स्वयं परीक्षित अनुभवकी बौद्धिक ईमानदारीका साहित्यिक अधिकार कविको है, होना चाहिए, यह कवि-कर्मके लिए अनिवार्य तत्त्व है। यदि कवि किन्हीं साहित्येतर दबावोंमें आकर स्वानुभव-साक्ष्यविहीन सत्यको स्वीकार करता है तो वह 'कविता' नहीं एक ग़ैर-ईमानदार 'पद्य-वस्तु' की रचना ही करेगा। काव्यके लिए यही सबसे बड़ा और अमिश्र निकष मैंने माना है। और यह भी मेरी मान्यता है कि नया कवि उस आदमीको केन्द्र मानकर चला है जिसका भावनामण्डित व्यक्तित्व शतियोंके अन्यायोंकी धूलमें लुप्त था, जिसके साधारण आशोच्छ्वासों और आत्मीय मर्म-स्पन्दनोंका कोई मूल्य नहीं था; क्योंकि सामन्ती दृष्टिके लेखकोंको गिने-चुने 'महत् व्यक्ति', 'महत् घटना और महत् आत्मानन्द' की खोज थी, साधारण जनकी छोटी प्रतिक्रियाओं एवं प्रतीति-व्यंजनाओंका उनके क्षेत्रमें प्रवेश भी नहीं हो सकता था। इस 'मनुष्य' को उसकी समस्त सामर्थ्य और विशेषताओंके (जिन्हें रूढ़िगत निकष 'दुर्बलता' कहते हैं) सन्दर्भमें ही पहचाननेका यत्न अब किया गया है। आदमीका व्यक्तित्व और उसकी मनुष्यता एक जटिल और जीवन्त सम्पूर्णता (ऑरगैनिक टोटैलिटी) है, वह इतनी सरल वस्तु नहीं कि मात्र 'मानवता' नामक शब्द-प्रतीकके प्रयोगसे ही व्यंजित हो सके। इस मनुष्यताके अनन्त सूक्ष्म आयामों और छोटे-छोटे बारीक पक्षोंको उद्घाटित कर नूतन कविताने उसे अधिक संवेद्य बनानेकी चेष्टा की है जिससे आदमीकी सही और अधिक समृद्ध परिभाषा हो सके। मैं समझता हूँ कि नये कृतित्वमें यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण जनतान्त्रिक तत्त्व है। सारांशमें कविताकी जिस चेतनाका प्रादुर्भाव सन् १९३९-४० में हुआ था उसने पिछली समस्त मान्यताओंको बदल डाला और एक अभूतपूर्व बौद्धिक नवोन्मेष (इण्टेलेक्चुअल रेनासाँ) को जन्म दिया। पूरीकी पूरी मर्यादा-परिधियाँ प्रतिस्थापित कर दी

गयीं। इतनी बड़ी तात्त्विक क्रान्ति हिन्दी कवितामें कभी नहीं आयी थी।

मुझे गर्व है कि मैं उस क्रान्ति-बिन्दुपर लेखनी लिये उपस्थित था और मुझपर तथा मेरे कुछ थोड़ेसे सहधर्मियोंपर आधुनिकताका वह नया उठता आलोक प्रथम बार पड़ा था।

कालान्तरमें 'प्रयोगशील आधुनिकता' और नयी कविताके सम्बन्धमें अनेक भ्रम-गाथाएँ प्रचलित हो चुकी हैं, जिनका निराकरण काल-बिन्दुकी इस दूरीपर आकर अब सम्भव है। नव-काव्यने अपना पथ बनाते हुए अनेक आलोचनाओंका उत्तर दिया, अनेक मौलिक प्रश्नोंका विश्लेषण किया और बहुत-सी शंकाओंका समाधान भी प्रस्तुत किया। किन्तु कितने ही अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंका स्पष्टीकरण अभी शेष है। उन्हींमें इस बातका तथ्यपरक विश्लेषण भी है कि नव-काव्यकी धारा कब और कैसे प्रारम्भ हुई, उसके पीछे क्या कारण थे; क्या वह कोई संगठित आन्दोलन था जिसका सूत्रपात किसी कवि-विशेषने किया था; अथवा यह कि उसका संस्थापक कौन था, क्या 'तार सप्तक'के सभी कवि या उनमें-से एक; क्या इस धाराका समारम्भ 'तार-सप्तक'से हुआ अथवा उसके पहले ही से; प्रयोगशीलताका लक्ष्य क्या था; क्या अन्वेषणोंके पीछे कोई सैद्धान्तिक आग्रह था; द्वितीय महायुद्ध तथा राष्ट्रीयताके सम्बन्धमें कवियोंकी दृष्टि क्या थी, अर्थात् प्रयोगशील कवियोंके सामाजिक-बोधकी कौन-सी दिशा थी, और यह कि प्रयोगशील कविता तथा नयी कविताका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है, अर्थात् नयी कविता क्या प्रयोगशीलताका ही विकसित रूप है अथवा दोनों अलग धाराएँ, विलग काव्य-निकाय हैं। इन प्रश्नोंके साथ ही परम्परावादियोंद्वारा भारतीयता और आधुनिकताके तारतम्यकी शंका भी कितने ही रूपोंमें उठायी जा चुकी है, जैसे सामाजिक दायित्वकी समस्या, परम्परा और प्रयोगकी समस्या, मानवीय कल्याणकी समस्या आदि। इन सभी बातोंका तथ्यपरक, ईमानदार विश्लेषण आज आवश्यक है।

मैं छायावादी युग-चेतनासे सम्पूर्ण विच्छेदका बिन्दु १९४० को मानता हूँ। इसका साक्ष्य उस कालके सभी नये कवियोंकी रचनाओंमें है जिनके विस्तृत परीक्षणसे मैं इस परिणामपर पहुँचा हूँ। इसमें उन सभी कवियोंका कृतित्व भी सम्मिलित है जो बादमें 'तार-सप्तक'में संकलित हुए और अन्य कवियोंका भी। आधुनिकताका प्रथम बोध १९४० के कुछ वर्ष पहलेसे ही कवियोंमें उदित

हो चुका था और १९३८-३९ की नयी कृतियोंमें उसकी छाप पड़ना आरम्भ हो गयी थी। 'तार-सप्तक'के प्रकाशनसे पाँच वर्ष पूर्व ऐसी रचनाएँ हो रही थीं तथा सन् १९४० के आसपासके कृतित्वमें वह आधुनिक स्वर सबल और स्पष्ट होकर सामने आ गया था। इस नूतन मूल्यबोधका ग्रहण दो स्तरोंपर हुआ था : नवीन ज्ञानविधियों (मार्क्स और फ्रॉयड) के अध्ययनगत प्रभावसे युगीन समस्याओंके प्रति आकस्मिक जागरूकताके स्तरपर, और दूसरे, संक्रमणकालीन ऐतिहासिक अनिवार्यताके रूपमें। पहले वर्गके कवियोंमें आधुनिक बोधका ग्रहण बुद्धिके क्षेत्रमें, एक तात्कालिक दर्शनकी उपलब्धि या ज्ञानमय 'समाधान-दृष्टि'के रूपमें हुआ था। दूसरे वर्गके कुछ थोड़े-से कवियोंमें संक्रान्तिकी अनुभूति भावनाके स्तरपर हुई थी। उन्हें इतिहास-बोधका तीक्ष्ण साक्षात्कार व्यक्ति-भोगके क्षेत्रमें हुआ था। उनमें सांस्कृतिक दायकी समृद्ध चेतना भी थी और अर्वाचीनकी आत्मानुभूति भी। इसके साथ ही आधुनिक बोधके अनुरूप अभिव्यक्तिकी समस्या गहरे संकटके रूपमें उनके सामने उपस्थित हुई थी।

एक तीसरा वर्ग भी इनके अतिरिक्त था, जिन्हें आधुनिकताकी सैद्धान्तिक पहचान तो थी किन्तु छायाकालीन संस्कारोंसे उस समय आक्रान्त होनेके कारण उनके कृतित्वमें उक्त अवबोधका सफल प्रतिबिम्बन नहीं हो सका था। नये मूल्योंके प्रति वे प्रबुद्ध थे यद्यपि उसका प्रमाण रचनात्मक स्तरपर न्यून, व्याख्याताके रूपमें अधिक था। उनमें सिद्धान्त समीक्षणकी क्षमता थी, सम्पादनकी क्षमता थी, संगठनकी प्रौढ़ता थी; किन्तु इसकी तुलनामें उनकी रचनात्मक उपलब्धि उतनी आधुनिक नहीं थी क्योंकि उनमें भाषा और उपकरण छायाकालीन प्रभावोंसे मुक्त नहीं हो पाये थे और नवानुभूतिकी आरोपजन्य अपरिपक्वता अधिक थी।

मैं पहले कह चुका हूँ कि आधुनिक संवेदनाके अनुरूप नयी रचनाओंका आरम्भ ऐतिहासिक अनिवार्यताके कारण हुआ। युग-यथार्थके समक्ष छायावादी रूपाकार और संवेदना-दृष्टि अनुपयुक्त तथा सर्वथा अपर्याप्त हो चुकी थी। परिवर्तित भाव-बोधके लिए न कोई उपकरण थे न उनकी संकेत-दिशाओंका आभास ही था। भाषा, छन्द, उपमान, प्रतीक, भाव-भूमियाँ सभी अस्मिभूत हो चुके थे; यहाँतक कि काव्यगत संगीत-तत्त्व और तुकान्त भी रूढ़ बन गये थे। नये रचनाकार अपनी सामर्थ्य और दृष्टिके अनुसार इस स्थितिसे संघर्ष कर रहे

थे। १९४१ तक काफ़ी नया कृतित्व प्रकाशमें आ चुका था। रामविलास, मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, केदारनाथ अग्रवालकी नयी रचनाएँ निकल रही थीं। १९४०-४१ में नरोत्तम नागरके सम्पादनमें 'उच्छृंखल' नामक पत्रका प्रकाशन हुआ था जो नये प्रकारकी रचनाओंका आरम्भिक मंच था। मैं १९४० तक कितने ही प्रयोग कर अपना स्पष्ट मार्ग निर्धारित कर चुका था। अप्रैल १९४१ में मेरा पहला संग्रह 'मंजीर' प्रकाशित हो चुका था और आधुनिक-बोधके अनुरूप मैं नगरीय संवेदना, इतिहासको सांस्कृतिक दृष्टि तथा भाषा, छन्द, बिम्ब और ध्वनि-विधानके नवीन रूपाकारकी प्रस्तावना रचनाओंमें कर चुका था। जुलाई १९४१ में मैंने अँगरेज़ीमें एक लम्बा लेख लिखा था 'द थ्योरी ऑव न्यू एक्सपेरिमेण्टलिज़्म इन हिन्दी पोएट्री'। स्पष्ट है कि अभिव्यक्तिके लिए नये मार्गोंकी खोजका यह क्रम सभी कवियोंमें अलग-अलग रूपसे आया था। वह किसी विचार-विनिमयसे तय किया हुआ संगठित आन्दोलन नहीं था, जिसका कोई एक कवि या विचारक संस्थापक होता। अन्वेषणोंमें किसी प्रकारकी प्रतिबद्धता या कोई 'आग्रह' नहीं था, उनकी परिधिमें नयी सामाजिक दृष्टि, व्यक्तिगत आत्मानुभूति और सांस्कृतिक भाव-भूमि, तीनों प्रकारके तत्त्व सम्मिलित थे। 'तार-सप्तक' के सम्पादकने स्वयं ही भूमिकामें यह स्वीकार किया था कि कवियोंका कोई गुट नहीं है और किसी दल-विशेषका वह कृतित्व नहीं है। नयी प्रवृत्तिकी उपलब्ध और परिस्वीकृत (एस्टेब्लिश्ड) सामग्रीको 'तार-सप्तक' में मात्र संकलित किया गया था, फलतः 'तार सप्तक' किसी एक कवि या उसके सम्पादक-द्वारा प्रस्तावित 'प्रयोगवादिता' का समारम्भ नहीं था, क्योंकि नव-काव्य उसके कई वर्ष पूर्व आरम्भ हो चुका था। बादमें प्रगतिशील आलोचकोंने, विशेष रूपसे शिवदानसिंह चौहानने, 'रूपवाद' का जो लांछन इस प्रवृत्तिपर लगाया था वह 'अज्ञेय'जीकी स्थिति संकलन-कर्ताके रूपमें और 'तार-सप्तक' के सातमें-से एक कविके रूपमें भिन्न न देखनेके भ्रमसे ही हुआ था। प्रकाशचन्द्र गुप्तकी स्थापनाके बावजूद कि 'तार सप्तक' में नूतन सांस्कृतिक स्वर प्रबल है, समस्त नयी प्रवृत्तिको 'प्रयोगवाद' का अनुचित नाम देनेकी त्रुटि कुछ प्रगतिवादी साम्प्रदायिक आलोचकोंने की थी, जिन्होंने संकलन-कर्मको 'नेतृत्व' भी समझ लिया था। उन्होंने शुद्ध रचनात्मक उपलब्धिमें निष्पक्ष तुलनात्मक दृष्टिसे यह नहीं देखा कि सम्पादकसे अधिक परिपक्व और भिन्न

प्रकारका कृतित्व 'तार सप्तक' में है, और यह भी कि अच्छे समीक्षक या व्याख्याता काव्य-धाराओंका नेतृत्व नहीं करते, रचनात्मक श्रेष्ठताको ही वह श्रेय प्राप्त हो सकता है। उन्होंने नयी चेतनाके आन्तरिक स्वरूप और उसकी ऐतिहासिक गतिको समझनेमें भी भूल की थी। वास्तवमें प्रयोगशीलताके साथ हिन्दी साहित्यमें 'आधुनिकता' का समारम्भ हुआ था और पिछले पच्चीस वर्षके काव्य-विकासको इसी रूपमें समझा जाना उचित है। उसे 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' के विलग निकायोंमें देखना असंगत है। आधुनिकताकी प्रक्रियाका प्रथम उन्मेष १९४० से १९५२ तक मानना चाहिए और द्वितीय चरण १९५३ से अबतक। मेरी दृष्टिमें प्रथम उन्मेषके प्रधान तत्त्व थे: परिवेशके प्रति गहरी जागरूकता, सामाजिक यथार्थकी चेतना, इतिहासका प्रथम बार तीव्र बोध, भाव-जगत्में सूक्ष्म प्रतिक्रियाओंकी पहचान, युद्धगत संक्रान्तिकी मानवीय संवेदना, अन्तर्राष्ट्रीय उन्मुखता, नव-रोमान और परिवर्तित मूल्योंको टकराहट। दूसरे चरणमें निकटतम सत्योंकी संवेदना, संक्रान्तिकी बिडम्बनाओंका अहसास, व्यंग्य और विपर्यय, मूल्यगत विकृति, आत्महोनता, जीवनकी विसंगतियों (ऐब्सर्डिटी) की अभिव्यक्ति, वैज्ञानिकताका उदय, अमिश्र अनुभूतियोंका आस्वाद प्रमुख स्वर हैं। मैं समझता हूँ कि दूसरे चरणको 'नयी कविता' के नामसे अभिहित करना ठीक नहीं है, उसे उपरोक्त प्रवृत्तियोंके रूपमें ही देखना अधिक संगत है जिससे उचित और अनुचितका, श्रेष्ठ और निम्नका सही मूल्यांकन हो सके।

आधुनिकताके उदयके साथ हिन्दीमें पहली बार शुद्ध काव्य प्रतिष्ठित हुआ। छायावादी धारा तक हमारा अधिकांश काव्य संस्कृतिके धार्मिक पक्षसे आच्छादित था। सन्त साहित्य, भक्ति साहित्य और रीतिकाव्यसे लेकर १८वीं और १९वीं सदीके कृतित्वका मुख्य आलम्बन धर्म रहा या धार्मिक आद्य-प्रतीक रहे। यह प्रभाव आध्यात्मिक अभिवृत्ति (मूड) और भावुक दार्शनिकताके रूपमें छायावाद-पर भी रहा। इस धर्मनिष्ठ एवं मध्ययुगीन वृत्तिका प्रथम बार नूतन काव्य-धाराने उन्मूलन किया और धार्मिक तथा आधिभौतिक पर्पटियोंको काटकर कविताको उसका वास्तविक धर्मातीत (सेक्युलर) स्वरूप प्रदान किया। इसके साथ ही कवितामें अप्रतिबद्ध सामाजिकताकी दृष्टिका उदय भी हुआ जो नूतन भारतीय विकास-पथके समानान्तर ही है।



मैं लेखक कैसे बना ?

प्रिय भाई,

कुछ व्यक्ति होते हैं जो बचपनसे ही अपनेको उपेक्षित और अभावमें महसूस करते हैं। मैंने भी कुछ ऐसा ही अनुभव किया। फिर पाया कि मैं कुछ होना चाहता हूँ। पर हो नहीं पा रहा हूँ। इतना साहस भी नहीं कि जबरदस्ती होऊँ। तमन्ना थी कि भारतके मुक्ति-आन्दोलनमें डूब जाऊँ, लेकिन पारिवारिक परिस्थितियोंने सरकारी नौकरीके दरका भिखारी बना दिया। तब मनमें जो तुमुल संघर्ष मचा उसने मेरे शरीरको ही जर्जर नहीं किया, मनको भी मार डाला। शायद आत्म-हत्या कर लेता, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। परिवारके स्नेहका बन्धन तो था ही, अध्ययनका शौक़ भी था। एक और बात थी। आर्यसमाजके वातावरणमें रहकर व्याख्यान देनेमें रस आने लगा था। और तत्कालीन रंगमंच भी मुझे अपनी ओर खींच रहा था। इसके विपरीत मैं शान्त, एकान्तप्रिय और अन्तर्मुखी था। इन दुर्गुणों (!) के कारण मुझे कम हानि नहीं उठानी पड़ी। लेकिन यही विरोधाभास मेरे लिखनेकी ओर प्रवृत्त होनेका कारण भी है।

मेरी माँ पढ़ी-लिखी थीं। उनके पास खिलौने थे तो पुस्तकोंका एक बक्स भी था। पिताकी दूकानपर भी बहुत-से टोकरोंमें तमाखू भरी रहती थी, तो एक टोकरेमें पुस्तकें भी थीं। यहीं बैठकर मैंने 'क़िस्सा साढ़े तीन यार'से लेकर 'श्रीमद्भागवत पुराण' तकको एक ही समान रुचिसे पढ़ा और रस ग्रहण किया। इसके पश्चात् एक दिन पाया कि उत्तर प्रदेशके उस छोटे-से गाँवसे उठकर पंजाबके एक क़स्बेमें पहुँच गया हूँ। वातावरण अपेक्षाकृत मुक्त था। मेरी कल्पनाओं और इच्छाओंको पर मिले और मैं उड़ने लगा। बचपनमें पत्थरकी जिस प्रतिमाके आगे माथा रगड़ा करता था उसका उपहास करनेमें रस आने लगा। मेरा पुस्तक-ज्ञान मेरे समवयस्कोंसे बहुत आगे बढ़ा हुआ था। भाषाकी शुद्धताने मेरे आर्यसमाजी और पंजाबी गुरुजनोंको प्रभावित किया। शीघ्र ही लोकप्रिय हो

उठा। खूब याद है कि 'बालसखा' में छपे पत्रोंको देखकर मेरे मनमें भी यह इच्छा होती थी कि अपना नाम छापेमें देखूँ। एक दिन वह दुस्साहस कर ही डाला। बहुत छिपाकर, चोरी-चोरी, मैंने एक छोटा-सा पत्र लिखा और बड़े डरते-डरते डाकमें डाल दिया। अगले महीने पत्रिका आयी तो एक मित्रने मुझे सूचना दी कि पत्रिकामें मेरा पत्र छपा है। सहसा विश्वास नहीं आया। छुट्टी मिलते ही उस मित्रके घर भागा गया। यथाशक्ति गम्भीर बने रहकर पत्रिकाके पन्ने पलटे। तब मेरी अवस्था नव-वधू-जैसी थी। बुरी तरह काँप रहा था और तीन पंक्तियोंके अपने पत्रको बार-बार पढ़ता था और अपना नाम देखता था। न केवल मेरा नाम ही छपा था, बल्कि सम्पादकने कृपाकर पत्रका उत्तर भी दिया था। कितनी खुशी और कितना गर्व हुआ था उस दिन! एक कानसे दूसरे कान वनकी आगकी तरह वह बात चारों ओर फैल गयी और मैं लेखक बन गया।

कुछ दिन और बीते। मैं आर्यसमाजमें भाषण देने लगा। इससे लोकप्रियता मिली। अपनी निराशा और निराशासे उत्पन्न विद्रोहको प्रकट करनेका मार्ग भी मिला। अध्ययनकी प्रवृत्तिके कारण मैं पुस्तकालयका अध्यक्ष बन गया। वहाँ मेरा 'चन्द्रकान्ता-सन्तति'के साथ-साथ प्रेमचन्द और प्रसादसे तथा बंकिम, रवीन्द्र और शरत्से परिचय हुआ। याद नहीं प्रसादकी वह कौन-सी कहानी थी जिसे पढ़कर मैंने पहली कहानी लिखी थी। लेकिन वह प्रसादकी अधिक, मेरी कम थी। इसलिए उसे फाड़कर फिर एक नयी कहानी लिखी। उसपर, आर्यसमाजके सुधारवादका पूरा प्रभाव था। वह कहानी 'हिन्दी मिलाप' लाहौरके दीपावली विशेषांकमें छपी थी। शायद यह '३० या '३१ के नवम्बरकी बात है। उसपर सबसे पहली आलोचना जो सुनी वह यह थी कि भाषा बड़ी मँजी हुई है। वह कहानी अब नहीं है। लेकिन वह मेरी सफलता और असफलता दोनोंका प्रतीक थी। अभाव और आक्रोशने जहाँ अपनेको व्यक्त करनेका मार्ग दिखाया वहाँ आर्यसमाजके आचारवादने मुझे उन्मुक्त होनेसे रोका।

सन् '२६ में पत्र लिखा था, सन् '३१ में यह कहानी लिखी। लेकिन सन् '३४ तक इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। बहुत-कुछ मनके अन्दर-ही-अन्दर घुमड़कर रह जाता रहा। अवकाश ही नहीं था। बारह घण्टेकी सरकारी नौकरी थी। शिक्षा भी पूरी करनी थी। और फिर आर्यसमाज तथा तत्कालीन रंगमंचका दावा भी था। लेकिन यह भी सत्य है कि इन परिस्थितियोंने मेरे असन्तोषको

और भी पुष्ट किया। भीतरका लेखक और भी प्राणवान् हो उठा। इस वर्ष चार-पाँच कहानियाँ लिखीं और लाहौरसे प्रकाशित होनेवाले 'अलंकार' मासिक-को भेज दीं। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार उसके कहानी-स्तम्भके सम्पादक थे। मेरे पत्रके उत्तरमें उन्होंने लिखा, कि वे कहानियाँ अलंकारमें छपेंगी। कहानी लेखक बननेके लिए मुझे कुछ बतानेकी आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ध्यान रखना चाहिए कि यह मनोविज्ञानका युग है।

इस पत्रने मेरे लेखक बननेके तथ्यपर मुहर लगा दी। मुझे यह माननेका अवसर मिल गया कि मैं लेखक बन सकता हूँ। उस पत्रमें छपी मेरी पहली कहानी 'स्नेह' आज भी मेरी कहानियोंके संकलनमें देखी जा सकती है। उसके बादका इतिहास इसी लेखक बन सकनेका इतिहास है।

आपका
विष्णु प्रभाकर

● ●

कुछ लैटिन अमेरिकी कविता

काव्य-प्रवृत्तियों और विशिष्ट काव्य-संग्रहोंका परिचय

महेन्द्र कुलश्रेष्ठ

स्पेनी प्रभावके कारण लैटिन अमेरिकी देशोंका साहित्य और कला बहुत जीवनपरक और प्रखर है। यहाँ उन देशोंके पाँच काव्य-ग्रन्थ प्रस्तुत हैं। इन देशोंमें सम्भवतः मेक्सिको ही सबसे अग्रणी है जिसके साहित्य और कलाने विदेशोंको भी प्रभावित किया है और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरके कवि-कलाकार प्रदान किये हैं। इस देशकी कविताका प्रतिनिधि संकलन 'ऐन ऐन्थॉलॉजी ऑव मेक्सिकन पोएट्री' के नामसे आक्थावियो पाजने संकलित-सम्पादित किया है—वे प्रथम श्रेणीके कवि तथा सम्प्रति भारतमें अपने देशके राजदूत हैं। इसके अनुवाद भी सुप्रसिद्ध कवि सामुएल बैकेटने किये हैं तथा भूमिका है सी० एम० बावराकी। यह ग्रन्थ यूनेस्कोकी 'प्रतिनिधि ग्रन्थमाला'के अन्तर्गत अमेरिकाके इण्डियाना युनिवर्सिटी प्रेसने प्रकाशित किया है; मूल्य है ३·५० डॉलर। इसमें सोलहवीं शताब्दीसे लेकर १९१० तकके पैंतीस कवि संग्रहीत हैं। इनमें प्रमुख हैं बरनार्डो द बालबुएना (१५६१-१६२७) जिन्होंने तत्कालीन नयी दुनियाके उत्साहपूर्ण वातावरण और विशाल सम्पत्तिके शब्द-चित्र दिये; जुआन रुईज़ द अलार्को (१५८१-१६३९) जिनकी गणना स्पेनके महान् नाटककारोंमें की जाती है; और सॉर जुआना इनेज़ द ला क्रुज़ (१६५१-१६९५) नामक सुन्दरी महिला जिसने प्रेममें निराश होकर चर्चकी शरण ली और चुभते हुए मनोवैज्ञानिक गीतिकाव्य लिखे। आधुनिकताका प्रचार करनेवाले कवि हैं साल्वेडार दियाज़ मिरों (१८५९-१९२८), मानुएल नजेरा (१८५९-१८९५), एनरीक गोंज़ालेज़ मार्टीनेज़ (१८७१-१९५२) और रेमों लोपेज़ वेलार्दे (१८८१-१९२१)। इसमें जीवित कवि केवल एक हैं, अल्फ़ोंसो रयेस (१८८९) जिसकी कृतियोंमें एक विशेष प्रकारकी व्यक्तिगत चंचलता है।

स्वयं आक्थावियो पाज़की कविताओंके दो ग्रन्थ हैं जिनमें-से एक 'सेलेक्टेड पोएम्स ऑव आक्थावियो पाज़', में उनकी सभी कृतियोंसे चुनी हुई कविताओंका अनुवाद दिया गया है, और दूसरी 'सन स्टोन'में उनकी एक महत्त्वपूर्ण लम्बी कविता है। दोनोंके अनुवाद किये हैं सुप्रसिद्ध कवयित्री म्युरियल रुकेसरने और दोनोंमें ही एक ओर स्पेनीमें मूल तथा सामने अँगरेज़ी अनुवाद है। पहला ग्रन्थ यूनेस्कोकी 'आधुनिक ग्रन्थमाला'के अन्तर्गत इण्डियाना युनिवर्सिटी प्रेस, ब्लूमिंगटन, ने प्रकाशित किया है और दूसरा 'विश्व कवि-माला'के अन्तर्गत न्यूयार्कके न्यू डायरेक्शन्सने प्रकाशित किया है। पाज़की कविता गहरी अनुभूतियोंसे पूर्ण, महान् आध्यात्मिक तथा साथ ही अतिशय आधुनिक भी है। उनकी कविताका पाठ स्वतः-में एक समग्र अनुभव है जो स्पष्ट न होते हुए भी मनको व्याप्त करता चला जाता है।

चौथा संग्रह है मेक्सिकोके ही एक अन्य महान् कवि जेम टॉरेस बोदेका जो जूलियन हक्सलेके बाद यूनेस्कोके डॉयरेक्टर जनरल रहे। आप भी पाज़की ही भाँति कर्मठतामें विश्वास रखते हैं और मेक्सिकोके शिक्षा-मन्त्री हैं। इस नाते आपने शिक्षा-प्रचारकी एक अद्भुत योजना बनायी जो बड़ी सफल रही। इस संग्रहमें मूल-सहित आपकी ४४ कविताएँ हैं जिनका अनुवाद सोनिया कार्सनने किया है। यह ग्रन्थ भी यूनेस्कोकी 'आधुनिक ग्रन्थमाला'के अन्तर्गत इण्डियाना युनिवर्सिटी प्रेसने प्रकाशित किया है; मूल्य है ५·७५ डॉलर। बोदेकी कविताके विषय अनेक हैं परन्तु उनमें एक गहरी मानवीयता तथा परिस्थितिके विरोधोंके प्रति आकुलता है। प्रायः वे आस्थाको उपलब्ध नहीं कर पाते और इसपर उनका आग्रह भी नहीं है। वे कहते हैं—

> "मैंने समुद्र में बुआई की
> रेत पर बनाया महल
> जल पर लिखी कविता········"

पर फिर भी वे मनुष्य पर विश्वास करते हैं—

> "मुझे मनुष्य बनना कभी नहीं अखरेगा····
> यह सब उसी का बनाया है
> और अपने जीवन को आविष्कृत करने का अधिकार
> उसकी एकमेव योग्य थाती है·······"

पाँचवाँ संकलन है 'मॉडर्न ब्राज़ीलियन पोएट्री, एन एन्थालॉजी' जिसका अनुवाद और सम्पादन, योलैंडा लीटकी सहायतासे, जॉन निस्टने किया है। यह भी यूनेस्कोकी 'आधुनिक ग्रन्थमाला'के अन्तर्गत इण्डियाना युनिवर्सिटी प्रेसने प्रकाशित किया है; मूल्य है ५.५० डॉलर। इस देशकी कविता 'आधुनिक बोध' की दृष्टिसे बडी प्रखर है। संग्रहमें बारह कवि हैं जिनमें मानुएल बान्देरा, मारियो द अन्द्रादे, जॉर्ज द लीमा, सेसीलिया मीरले, मूरिलो मेण्डेस, आगस्टो श्मिट तथा पावलो बॉमफिम प्रमुख कहे जा सकते हैं। अन्द्रादेने परम्पराके विरुद्ध सर्वप्रथम विद्रोह किया और बड़े नाटकीय ढंगसे १९२२ में एक सप्ताह आधुनिकताकी प्रतिष्ठा कर दी। १९३० तक चलनेवाले प्रथम पक्षमें व्यंग्यका बोलबाला रहा; दूसरे पक्षमें सामाजिकता तथा राजनीतिकता आयी और कुछ रहस्यवादी धार्मिकता भी व्यक्त हुई, परन्तु जिसकी आस्थामें ईश्वरको कोई स्थान प्राप्त नहीं था; १९४० से आरम्भ होनेवाले तीसरे पक्षमें नये कवि विविध वादोंसे हटकर शब्द, लय, रूप आदिको अधिक महत्त्व देने लगे; चौथे पक्षमें एज़रापाउण्ड, कुमिंग्स, अपोलिनयेर आदिका प्रभाव बढ़ा और शब्दको तोड़कर दृश्यमान तत्त्वकी भाँति प्रयुक्त किया जाने लगा—यही पक्ष अबतक चल रहा है।

इण्डियाना युनिवर्सिटी प्रेसने हालमें ही 'मॉडर्न हिन्दी पोएट्री : ऐन ऐन्थालाजी'के नामसे आधुनिक हिन्दी कविताका एक संकलन प्रकाशित किया है जो यूनेस्को-द्वारा मान्यता प्राप्त है। इसका सम्पादन श्री विद्यानिवास मिश्रने किया है तथा अनुवादमें सर्वश्री डब्लू० एम० मरे, जोसेफ़ीन माइल्स, एच० एम० गाई, मार्टिन हेल्पर्न, जेम्स मॉच और लिओनार्द नाथनने सहयोग दिया है। भूमिका है श्री 'अज्ञेय'की तथा अनुवाद–प्रक्रियापर जोसेफीन माइल्सकी टिप्पणी है। मूल्य है ४.९५ डॉलर। इसमें १२८ पृष्ठोंमें ४० कवियोंकी ८० के लगभग रचनाएँ संकलित हैं। परन्तु कवियोंके चयनमें पता नहीं किस नीतिसे काम लिया गया है। अनेक महत्त्वपूर्ण कवि छोड़ दिये गये हैं, जैसे महादेवी वर्मा, बच्चन, गिरिजाकुमार माथुर, नागार्जुन, जगदीश गुप्त, लक्ष्मीकान्त वर्मा, और अनेक नितान्त अज्ञात कवि भी ले लिये गये हैं, जैसे भगवानप्रसाद सिंह, विश्वनाथ, जो बड़े आश्चर्यकी बात है। फिर भी संकलन स्वागत योग्य है।

● ●

तू-शू के नाम

यह एक पत्र—निजी !—और नहीं भी ! मानें
तो यह और कुछ भी है । पहला पत्र 'पत्रिका' के
जुलाई अंकमें था, यहाँ अब यह दूसरा ।

◎ ◎

शाम :
९ दिसम्बर '६५ को

प्रिय तू-शू,

जुलाईके बाद तुम्हें अब लिखने बैठा हूँ । इस बीच पत्र मिले; उत्तर नहीं दिया, दे नहीं सका । जुलाईके बादसे मेरे देशका ईमानदार बौद्धिक जिन मनःस्थितियोंसे गुज़रा है उन सबको इस पत्रमें समेट पाना न सम्भव है न उचित होगा । यहाँकी ख़बरोंकी आग वहाँतक भी पहुँची ही होगी । तुम लोगोंने इस युद्धको लेकर क्या-कैसा अनुभव किया—विशेष मैं नहीं जानता । सम्भव है हिरोशिमाकी यादोंमें डूबकर तुम ऐसे समयके लिए साहित्यकारका धर्म तटस्थता मानती हो । पर मैं सहमत नहीं हो पाऊँगा । और मेरी यह असहमति लाचारी नहीं, विवश-प्रतिबद्धता होगी ।

युद्धके बारेमें पढ़ा काफ़ी कुछ था, १९६२ में चीनी आक्रमणके बाद अनेक कल्पनाएँ भी की थीं; लेकिन वास्तवमें युद्ध देखा आज—अख़बारोंकी जलती हुई ख़बरोंमें, रेडियोसे गूँजती आवाज़ोंमें, साँझसे ही नगरों और बस्तियोंपर चढ़ाये जाते अँधेरेमें, कम-अधिक सब कहीं बाहर और अपने भीतर, बहुत भीतर। एक अजीब-सी हलचल, एक अजीब-सी छटपटाहट ! मैं बराबर यही सोचता कि युद्ध क्यों ? यह युद्ध किसलिए ? विकास-यात्राकी दिशा क्या इधरसे ? युद्धको इतने निकटसे देख लेनेके बाद मेरे आगे मानवधर्म और राष्ट्रधर्मके अर्थ बहुत साफ़ हो गये हैं । और अब युद्धविरामके बाद तो इन साफ़ अर्थोंके बीचमें कुछ और भी खोजनेकी कर रहा हूँ ।

तू-शू, इतना सब मैंने अपनी सफ़ाईके लिए नहीं लिखा । मैं तुम्हें पत्र

लिख ही नहीं सका। और इन मनःस्थितियोंके चलते नहीं जानता तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर कितना दे पाऊँगा, कितनी ईमानदारीके साथ। तुमने मेरी रुचिके कुछ नयी-कविता संग्रहों पर मेरी प्रतिक्रियाएँ चाही हैं। कुछपर पिछले पत्रमें बता चुका हूँ, चार-पाँचको यहाँ ले रहा हूँ; कुछ और पर अगली बार लिखूँगा।

याद नहीं पर शायद विशेष रूपसे 'आँगनके पार द्वार' पर तुमने जानना चाहा था। इतनी जिज्ञासा शायद इसलिए भी हो कि इसे साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला है। जो हो नयी कविताके लिए यह एक प्रीतिकर संयोग तो है ही कि यह कृति साहित्य अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत-सम्मानित हुई। कहनेवालोंने तो इसे नयी कविताके इतिहासमें 'एक विशिष्ट घटना' या 'मोड़' तक कहा है। जहाँतक 'घटना' होनेकी बात है, मेरी समझमें आती है और मैं सहमत भी हूँ; पर 'मोड़'? मुझे नहीं लगता कि उससे नयी कविताके इतिहासमें कोई नया मोड़ आया है, कोई दिशान्तर हुआ है। या कि नयी कविताके लिए यह कोई बड़ी भारी उपलब्धि हुई है। स्वयं कविके लिए यह पुरस्कार कितना महत्त्वपूर्ण है, इसे वे बता भी चुके हैं।

जहाँतक मुझे स्मरण है, यहाँ भी तुमसे 'अज्ञेय' के इस काव्य-संग्रहपर कुछ बातें हुई थीं और मैंने कहा था कि इस संग्रहकी कविताएँ 'अज्ञेय' की काव्य-विकास-यात्राकी एक महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक उपलब्धि हैं। 'असाध्य-वीणा', जो उनकी अबतक लिखी कविताओंमें सबसे लम्बी कविता है, वह उनकी सर्वोत्तम नहीं तो विशिष्ट कविता अवश्य है। इस कवितासे स्पष्ट हो जाता है कि कवि अब किसी महत् माध्यमकी खोजमें है। कविताका विषय अध्यात्मके अधिक निकट है और कवि अपनी अभिव्यक्तिमें सफल हुआ है। इस कविताके अलावा संग्रहमें और भी कविताएँ हैं। प्रायः सभीमें कविका 'अकेलापन' मुखर हुआ है। 'अन्तःसलिला' और 'चक्रान्त शिला' के साथ तो यह बात अधिक लागू होती है।

भाषाकी भी दृष्टिसे 'आँगनके पार द्वार' की कविताएँ मुझे बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं लगीं। भाषा बहुत स्तरीय और परिमार्जित संस्कृतनिष्ठ—'अज्ञेय'की अपनी है। आजकी कविताके लिए 'आँगनके पार-द्वार' की भाषा नितान्त ज़रूरी हो ऐसा नहीं है। बड़ी बात इन कविताओंमें जो मुझे लगी वह यही कि कविकी संसक्ति अपनी धरतीके प्रति है। वह भारतीय संस्कृति, परम्परा

और चिन्तनका हामी है, आयातित भावबोध उसके साथ नहीं चिपका है। 'आँगनके पार द्वार' की प्रति तुम्हें भेज चुका हूँ : बताना तुम्हारी दृष्टिमें यह द्वार कहाँ खुलता है।

नयी कवितामें बड़ा प्यारा मगर प्रश्न-चिह्नोंसे घिरा एक नाम है—शमशेर-बहादुर सिंहका। एक लम्बी प्रतीक्षाके बाद उनका पहला कविता संग्रह 'कुछ कविताएँ' पढ़नेको मिला था; फिर दूसरा 'कुछ और कविताएँ'। तुम्हें विश्वास आयेगा, शमशेरको पढ़ते अनायास कुमिंग्ज़ और एज़रापाउण्डकी याद आ जाती है। मैंने इन दोनोंको बहुत अधिक तो नहीं पढ़ा, मगर शमशेर-की कविताएँ वस्तुतः सौन्दर्यानुभूतिकी कविताएँ हैं : भीतरके गहरे अनुभवोंकी सहज-निरायास अभिव्यक्ति। बिम्बों और प्रतीकोंकी दृष्टिसे तो ये कविताएँ बेजोड़ हैं। कमसे कम शब्दोंमें एक पूरा भरा भावचित्र, कहें तो अति-यथार्थ-वादी चित्र, प्रस्तुत करती हैं शमशेरकी कविताएँ। हिन्दीमें शमशेर अकेले हैं और तुमसे कहते संकोच क्यों हो, उनकी कविताएँ भी अकेली हैं।

'आजके जीवन और काव्य दोनोंमें जिस महत्त्वपूर्ण चीज़का अभाव होता जा रहा है वह है गहराई। यह गहराई अर्थपूर्ण जिज्ञासा और साधना-लब्ध आस्थाबुद्धिसे सहचरित रहती और अपनेको संश्लिष्ट एकता (यूनिटी) व गौरव (एम्फ़ैसिस) के रूपोंमें प्रकट करती है।'—यह डॉ॰ देवराजके कविता-संग्रह 'उर्वशीने कहा' की प्रज्ञापिकाका अंश है और बहुत-कुछ संग्रहीत कविताओंके अपने वैशिष्ट्यका सूचक भी। 'उर्वशीने कहा' का कवि 'क्लैसिक्स' यानी अपने अतीतसे सम्बद्ध है। संग्रहकी प्रायः सभी कविताओंके पीछे एक जीवन्त दृष्टि है जिसके चलते कविने युगकी विशिष्ट संवेदनाको अभिव्यक्ति दी है। कवि मानता है कि महत्त्वपूर्ण बननेके लिए युग-विशेषके काव्यको आधुनिकताके अस्थायी दावेके परे जाकर अनुभूतिके उन आयामोंको नापना पड़ेगा जो स्थायी साहित्यके सार्वकालिक उपादान हैं। सम्भवतः साधना और दृष्टिके इसी स्तरके कारण नयी कविताके साथ देवराजका नाम हिन्दीके 'कुशल' समीक्षकोंने उतने महत्त्वपूर्ण रूपमें नहीं जोड़ा—या जोड़ना चाहा—जितना अपेक्षित था। कुछ तो तू-शू, उन्हें कवितक न माननेकी बात चुपचुप रहपर ले आते हैं। मैं नहीं समझ पाता कि आज, जब हम 'अकविता' पर बातें कर रहे हैं तब किसीमें काव्यबोध होनेपर कैसे सन्देह कर सकते हैं! फिर तो

शायद ऐसे समीक्षकोंपर भी सन्देह किये जाने लगें। ख़ैर छोड़ो, ये 'घरेलू' बातें हैं। मैं तो इस कृतिको भाषा-प्रयोगोंके कारण भी विशेष महत्त्वका मानता हूँ।

'धूपके धान' तुमने यहाँ ख़रीदी भी थी। अच्छा यह होता कि इसपर पहले तुम अपनी प्रतिक्रिया देतीं। बहरलाल, यह एक तथ्य है कि गिरिजा-कुमार माथुर नयी कविताके एक विशिष्ट कवि हैं जिनका नयी कविताकी विकास-यात्रामें महत्त्वपूर्ण अवदान रहा है। 'धूपके धान' की कविताएँ उनकी स्वाभाविक और प्रकृत संवेदनाकी गहरी और ठोस अभिव्यक्ति हैं। यहीं मुझे यह भी कहनेमें संकोच नहीं कि 'धूपके धान' की कविताएँ सही अर्थोंमें आधु-भाव-बोधका संवहन नहीं करतीं बावजूद इसके कि कविताएँ मुझे बहुत प्रिय हैं। तुम भी देखोगी कि किन्हीं विशेष 'मूडों' में ये कविताएँ और भी अभिभूत करती हैं। गिरिजाकुमारजी रस-रंग-धर्मी और रोमानके कवि हैं। 'धूपके धान' की कुछ कविताओंमें रूमानी गीतात्मकता है और कुछ में रूमानके साथ यथार्थका समन्वय भी। रंगों और ध्वनियों सम्बन्धी शिल्पगत नये प्रयोगोंके कारण संग्रहकी कुछेक रचनाएँ तो मुझे काफ़ी अच्छी लगती हैं। मैं चाहता हूँ कि 'धूपके धान' पर तुम अपनी प्रतिक्रिया भी मुझे लिखो।

सोचा था—पत्र लम्बा नहीं होने दूँगा। पर देख रहा हूँ कि लम्बा यह हो ही गया। शायद तुम्हारी अपेक्षाओंका 'विशेष' ध्यान रखनेके कारण ही! बहरहाल, अब इसे समाप्त कर रहा हूँ।....

कितना अजीब है यह कि आज भी जैसे मेरे सामने वही शाम है जैसी तब थी—तुम्हें पिछला पत्र लिखते समय : वही ढलती, साँवली बद-लियोंसे घिरी, बिखरी हुई शाम! फ़र्क़ बस इतना ही है कि आज बदलियाँ बेमौसम की हैं—क़हर ढाती हुई।...साराका-सारा आकाश किसी बीते हुए उत्सवके बाद उदास मँडवे-सा लग रहा है! सच, जाने क्यों–कहीं चुपचाप छिप जानेको जी चाहता है। बस.......।

तुम्हारा,
पद्मधर

आधुनिक असमीया साहित्य

विकास और उपलब्धियोंका
एक विहंगावलोकन

श्रीपति उपाध्याय

असमीया भारतके पूर्वांचल—हिमालय और सहयोगी पर्वतमालाओंसे घिरे भू-भागकी भाषा है। जो ताज़गी और टटकापन महानद ब्रह्मपुत्र और अनेक छोटी नदियोंसे नहायी इस अंचलकी धरतीकी गन्धमें है असमीया भाषाके साहित्यमें भी वही ताजगी, वही तेज, और वही गति है। असमीया एक समन्वयसाधिका भाषा है। मागधी अपभ्रंशसे उद्भूत आर्यभाषा समूहके अन्तर्गत होते हुए भी असमीयापर चीनी-बरमी जनजातीय बोलियोंका भी गहरा प्रभाव रहा है और इसी कारण आदिम युगसे अबतक असमीया अपने अंचलकी समन्वयसाधिका भाषा रही है। इतिहास साक्षी है कि असमीया प्राचीन लोक-साहित्यके वैभवकी दृष्टिसे तो समृद्ध है ही, इस भाषाका आधुनिक साहित्य भी गौरवपूर्ण है; और वह निरन्तर प्रगति और विकास-पथपर है।

अंचलमें कामाख्या पीठ स्थित होनेके कारण प्रचलित तन्त्र साधनाओंको केन्द्रित कर लोक-विश्वासों और तन्त्र-मन्त्रकी परम्पराओंकी एक साहित्यधारा असमीयाके पूर्वकालमें चली थी। इसी धाराके साथ-साथ एक और धारा आंचलिक जनजीवनके सदाचारोंको जागृत करनेवाली परम्परा-विरोधी साहित्यकी भी आयी थी। लेकिन असमीया साहित्यमें वैष्णव-युगके प्रारम्भ होने तक, इन दोनों धाराओंके गतिमान् होनेके बावजूद कोई ठोस उपलब्धि नहीं हुई। बढ़िया साहित्य नहीं रचा जा सका। हाँ, ऐतिहासिक सन्दर्भकी दृष्टिसे उस कालका साहित्य अवश्य ही महत्त्वपूर्ण है, होना भी चाहिए। कहावतों और लोक-कथाओंके रूपोंमें उस कालका जो भी साहित्य आज उपलब्ध है उससे उस

अंचलके जातीय जीवन और उसकी परम्पराओंका एक स्वरूप स्पष्ट होता है। वास्तवमें पूर्व वैष्णव-युगके कोच और कछार वंशी राजाओंके संरक्षणसे ही असमीया भाषाको अपेक्षित साहित्यिक स्वरूप मिला। 'महाभारत' और 'रामायण' की रचना इसी कालमें हुई। कोचराज नरनारायणकी प्रेरणा पाकर कवि राम सरस्वतीने 'महाभारत' लिखा और 'रामायण' कवि महेन्द्र कन्दलीने। और भी कई पौराणिक सन्दर्भ पद्यात्मक रचनाके विषय बने। कछारी राज्यमें तो असमीयाको राजभाषाके रूपमें प्रतिष्ठित किया गया था।

असमीया साहित्यकी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उपलब्धि सन्त शंकरदेवकी भी रचनाएँ हैं। शंकरदेवने न केवल असमीया साहित्य बल्कि असमके जनजीवनको प्रभावित किया था। तमाम मध्ययुगीन धार्मिक अन्ध रूढ़ियोंमें घिरी असमी जनताको उन्होंने एक सच्चे आदर्शका स्वरूप दिखाया। कहना न होगा कि सन्त शंकरदेवने जन-जन तक अपनी बात पहुँचानेका माध्यम साहित्यको बनाया था। असमीया साहित्यके इतिहासमें शंकरदेव युग-प्रवर्तक कहे जाते हैं। असम अंचलके धर्म और साहित्यके क्षेत्रमें इतना व्यापक और महत्त्वपूर्ण प्रगतिशील परिवर्तन लानेवालोंमें विशिष्ट स्थान शंकरदेवका ही है। उन्होंने मौलिक नाटकों और भक्तिपरक पदोंकी रचना की, पौराणिक ग्रन्थोंके अनुवाद असमीयामें करवाये। शंकरदेवने तत्कालीन साहित्यिक गतिविधिको इतनी गहराईसे प्रभावित किया था कि बादमें उनके शिष्योंने भी उनका अनुसरण करते हुए साहित्य-रचनाएँ की हैं जो असमीया भाषाकी बड़ी निधि स्वीकृत हो चुकी हैं। उदाहरणके लिए माधवदेवके रचे नाटक हैं जिन्हें असमीया साहित्यप्रेमी आज भी सम्मान देते हैं। इसी प्रकार आहोम कालका भी असमीया साहित्यके विकासमें बड़ा सहयोग रहा है। कमसे कम 'बुरंजी' या इतिहासकी रचनाओंके लिए आहोम काल बहुत प्रसिद्ध है। उस युगमें इतिहासकी इतनी ठोस रचना किसी भी भारतीय राजवंशके द्वारा नहीं करायी गयी। यथासम्भव तथ्योंकी रक्षा करते हुए बुरंजियां ललित गद्यमें लिखी जाती थीं।

अन्य विकासकामी सम्पन्न भाषाओंके साहित्यकी ही भाँति असमीयाका भी आधुनिक युग गद्य-युग कहा जाता है। किन्तु जैसा कि स्पष्ट हो चुका है, असमीयामें इस (गद्य) युगके पूर्व रची गयी प्रौढ़ गद्य कृतियाँ भी उपलब्ध हैं। इस सन्दर्भमें भट्टदेवकी 'कथा-गीता' उल्लेखनीय है जिसकी तुलना असमीयाके

आलोचक बाणकी 'कादम्बरी' से करते हैं। वास्तवमें असमीया साहित्यमें नवोन्मेष (रेनेसाँ) उन्नीसवीं शतीके उत्तरार्द्धमें आया।

अँगरेजी शासनके प्रारम्भमें असमीया साहित्यकी विकास-गति बहुत असन्तोषजनक थी। इस गत्यवरोधके परिणामस्वरूप स्थिति इतनी भयावह हो आयी थी कि असमी संस्कृति ही खतरेमें पड़ गयी। बल्कि कहें तो उसके हमेशा-हमेशाके लिए खो जानेकी भी आशंका दिखाई दी। शासनके प्रायः सभी कार्योंसे असमीया भाषाको अपदस्थ होना पड़ा। और ऐसी गम्भीर संकटपूर्ण स्थितिमें असमीयाको आनन्दराम ढेकियाल फुकन-जैसे विचारकका अवदान मिला, जिन्होंने असमीया भाषाकी पुनः प्रतिष्ठाके लिए हर-सम्भव प्रयत्न किया था। इसी सन्दर्भमें ईसाई मिशनरियोंके भी सहयोगको नहीं विस्मृत किया जा सकता।

नवोन्मेषके साथ ही पश्चिमी साहित्यकी रूमानी भावधारासे प्रभावित होकर असमीयामें कविता, कहानी, उपन्यास और नाट्य-कृतियाँ रची गयीं। इस कालके साहित्यकारोंमें लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ, चन्द्रकुमार अगरवाला, हेमचन्द्र गोस्वामी और रजनीकान्त बरदलै विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। लक्ष्मीनाथ बेजबरुआने असमीयाको उपन्यास तो दिये ही, काव्य और नाटक भी लिखे। बेजबरुआकी रचनाओंमें असमकी प्राचीन संस्कृति जीवन्त रूपसे मुखर है। अतिरिक्त रूपसे यह भी उल्लेखनीय है कि लक्ष्मीनाथ बेजबरुआने हास्य-व्यंग्य साहित्य भी पर्याप्त मात्रामें लिखा है। उपन्यासकारके रूपमें रजनीकान्त बरदलैका अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके दो उपन्यास—'मिरि जीयरी' और 'मनोमती'—ने असमीया साहित्य-जगत्में तो सम्मान पाया ही, जनप्रिय भी हुए।

स्वतन्त्रता आन्दोलन कालमें लिखा गया असमीया साहित्य मुख्यतया उद्बोधन साहित्य ही है। उस समय आवश्यकता भी ऐसे ही साहित्यकी थी। जन-जीवनमें राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करनेवाले साहित्यके स्रजेताओंमें कमलाकान्त भट्टाचार्य, अम्बिका गिरि राय चौधुरी, आनन्दराम अगरवाला, देवकान्त बरुआ, यतीन्द्रनाथ दुवरा, नीलमणि फुकन आदि प्रमुख हैं। देवकान्त बरुआके 'सागर देखिछा' (काव्य) का उस अवधिमें लिखी गयी रचनाओंमें विशिष्ट स्थान है। इस काव्यने जनताके मनमें राष्ट्रीय चेतनाका संचार किया था।

स्वातन्त्र्योत्तर असमीया उपन्यास साहित्यकी गतिविधिको देखते यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि अन्य विधाओंकी तुलनामें असमीया कविता विकास नहीं कर सकी

हैं। पुराने कवि तो मौन हो गये और नये कवियोंने वह दिया नहीं जो अपेक्षित था। एक अजीब तरहकी फ़ैशनपरस्त बौद्धिक जटिलताके आलजालमें आजकी असमीया कविता फँस गयी है। नयी असमीया कविताके रचयिताओंमें नवकान्त बरुआ, हेम बरुआ, नलिनीबाला देवी, महेन्द्र बरा, वीरेन बरकटकी प्रमुख हैं। नवकान्त बरुआने कुछ बहुत अच्छी कविताएँ लिखी हैं पर सब देखते यही मानना पड़ता है कि असमीयाका नया काव्य-साहित्य सन्तोषजनक नहीं है।

असमीयाके स्वातन्त्र्योत्तर गद्य साहित्यने निश्चय ही बड़ा गतिमान विकास किया है। गद्यकी प्रायः सभी विधाओंमें समर्थ और प्रभावपूर्ण साहित्यका सृजन किया गया है और आज भी हो रहा है। इसका एक बड़ा कारण यह भी हो सकता है कि असमीयाके नये गद्य लेखक अपने परिवेशके प्रति ईमानदार रहकर व्यापक मानवीय सम्बन्धों तथा जीवनके कठोर यथार्थको अभिव्यक्ति देनेके लिए प्रतिबद्ध हुए। आजकी असमीया कहानीमें हम लेखकोंको इस चिन्तन-प्रक्रियाको सहज ही देख सकते हैं। वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य, सैयद अब्दुल मलिक, दीनानाथ शर्मा, रमादास, योगेशदास, इमरानशाह, सौरभ कुमार चलिहा, चन्द्रप्रसाद शईकीया आदिकी कहानियाँ असम अंचलको ज़िन्दगीकी सही और जीवित तसवीर प्रस्तुत करती हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर असमी उपन्यास साहित्य भी बहुत समृद्ध है। स्व० विरंचिकुमार बरुवाके उपन्यास तो निधि ही हैं। इधरका उपन्यास लेखन भी असमीयाके नये कथाकारोंने ही किया है। वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्यके उपन्यासोंमें 'इयारुइंगम' 'राज पथे रिङि चाइ' और 'मातृ' बहुत सफल और जनप्रिय हुए हैं। 'इयारुइंगम' को तो साहित्य अकादेमीने पुरस्कृत-सम्मानित भी किया है। अन्य प्रमुख उपन्यासोंमें 'कविवर', 'रूप तीर्थ यात्री' (सैयद अब्दुल मलिक), 'डावर आवरु नाइ' (योगेशदास), 'एयेतो जीवन' (हितेश डेका), तथा 'कोनो खेद नाइ' (पद्म बरकटकी) विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासोंमें विकासोन्मुख जीवन-दृष्टिके साथ तीव्र सामाजिक यथार्थ तथा नागर और ग्रामीण संस्कृतियोंकी टकराहटसे उपजी पीड़ाओंका बोध स्पष्ट है। कुल मिलाकर हम देखते हैं कि आज असमीया साहित्य अनेक गत्यवरोधोंके बीच अपनी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियोंको संजोये निरन्तर विकासको ओर हो है।



प्रकाशित समीक्षाएँ
शेष स्वर

उद्देश्य इतना ही कि महत्त्वपूर्ण समकालीन
कृतियोंपर प्रकाशित विभिन्न, पर विवेकी समीक्षाएँ एक
साथ सामने आकर पाठकको कृतिके समग्र व्यक्तित्व
से परिचित करा सकें ।

● ●

'आँगन के पार द्वार'

१

कहाँ खुलता है

'अज्ञेय'का नाम लेते ही जो चित्र हमारे सम्मुख, अपनी समूची विवादास्पदताके साथ झलक उठता है, वह 'नदीके द्वीप'का है; पर, कौन जाने—उसकी निरन्तर दुह-रायी जानेवाली एकरसतासे ऊबकर ही प्रस्तुत संग्रहमें कविने नदीको बढ़ाकर सागरका, और द्वीपको संकुचित करके मछलीका आकार दे दिया है। कविताका शीर्षक है—'बना दे, चितेरे' और उसका अभिप्राय बिलकुल वैसा ही नहीं, तो लगभग वैसा ही प्रतीत होता है।

सागरसे उछली हुई एक मछलीकी उदग्रताका, अन्तहीन कालके लिए, फलकपर अंकन ! और जीवनमें रमे हुए किसी एक व्यक्तिकी नितान्त निजी भावनाओंकी, आत्मोप-लब्धिकारिणी व्यंजना ! दोनों बातें एक ही हैं और कलाका उद्देश्य वही आत्माभिव्यक्ति है, जिसपर बल देते हुए 'अज्ञेय' कहते हैं : "यह माँग मेरी, मेरी मेरी है" अर्थात् व्यक्तिकी ! सागरकी एक अकेली मछलीकी !

'आँगनके पार द्वार' में सचमुच ही 'अज्ञेय'की 'कुछ और कविताएँ' हैं, बावजूद इसके कि यहीं वह कविता—'असाध्य वीणा' भी है, जिसे 'तार सप्तक'के एक प्रमुख कविने स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यकी तीन सर्वाधिक उल्लेखनीय काव्य-कृतियोंमें-से एक माना है। महत्त्वपूर्ण, तथा 'अज्ञेय' की सबसे लम्बी कविता होते हुए भी, वह प्रस्तुत संग्रहको 'अज्ञेय' की कविताका कोई नया मोड़ बतानेकी चेष्टा नहीं करती; सम्पन्न अवश्य बनाती है। वस्तुतः यह कविता न केवल 'अज्ञेय'के समस्त काव्यकी गुत्थी सुलझानेका, अपितु कविता-मात्रकी प्रकृतिको समझनेका एक श्रेष्ठ साधन है।

"उस स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा—
नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था।" (पृ० ७७)

ये तथा उक्त कविताकी अन्य पंक्तियाँ इस तथ्यको स्पष्ट करती हैं कि 'अज्ञेय'के कवि-व्यक्तित्वको आत्मकेन्द्रित, अहंकारी अथवा कुण्ठित मानकर, उनका जो मूल्यांकन हुआ है, वह बहुत-कुछ भ्रामक रहा है। 'अज्ञेय'के काव्यकी अन्तर्वृत्तियोंपर ठीक-ठीक प्रकाश डालनेवाले, और नवार्थसे अलंकृत जो उपकरण हमें प्रस्तुत संग्रहकी कविताओं-द्वारा प्राप्त होते हैं, उनका मूल स्वर पारमिता करुणा और निर्वैयक्तिक प्यार, एकान्त और मौन, तथा आत्मदान और समर्पणका—या इनके माध्यमसे आत्म-परिष्कारका है! इसीमें निहित है आत्मोपलब्धि या सृजन, जिसे कवि "केवल आँचल पसार कर लेना" समझता है। रचनाका क्षण एक साथ ही आत्मदान और आत्मोपलब्धिका क्षण है। जो सर्वत्र है, सुलभ है, और जिसे आत्म-विसर्जन-द्वारा सदैव पाया जा सकता है, उसके विषयमें, असाध्य वीणाको साधनेमें समर्थ प्रियंवद केशकम्बलीका यह कथन, समस्त कलाके आन्तरिक रहस्यको अनावृत करता है :

"श्रेय नहीं कुछ मेरा :
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में—
वीणा के माध्यम से मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था—
सुना आपने जो वह मेरा नहीं
न वीणा का था :
वह तो सब कुछ की तथता थी—
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।" (पृ० ८७)

ऐसे उद्गारोंसे यही ध्वनित होता है कि 'अज्ञेय' अपने निजी, वैयक्तिक घेरेमें बँधे हुए यदि कभी थे भी, तो अब उससे बाहर आ रहे हैं। उदासी, अन्धकार अथवा अकेले-पनकी जो अनुभूतियाँ वर्तमान जीवन एवं व्यक्तिवादकी देन हैं, उनसे असम्पृक्त रहनेके लक्षण भी इन कविताओंमें मिलते हैं। इस मुक्ति अथवा असम्पृक्तिका एक उपादान है—प्रेम, जिसका विस्तार 'अज्ञेय'की इन कविताओंमें, व्यक्तिविशेषसे लेकर लोकातीत सत्ताके आभास तक फैला हुआ है। इन्हीं माध्यमोंसे 'अज्ञेय'ने समूह या लोकको पहचाना है। उनकी प्रिय, सर्वनाम शैलीमें कहें कि 'वह' अथवा 'उस'का परिचय 'अज्ञेय'के 'मैं' ने 'तुम' के ज़रिए पाया है।

यों, एक अकेली मछलीकी उछालमें अनुरक्त प्रतीत होनेवाले कविकी एक अन्य मुद्रा हमें और भी आश्वस्त करती है, तथा उसकी रचनाको समुचित सन्दर्भमें रखकर देखने देती है :

> "मेरे छोटे घर-कुटीर का दिया
> तुम्हारे मन्दिर के विस्तृत आँगन में
> सहमा-सा रख दिया गया।" (पृ० ७२)

इसे याद दिलानेकी आवश्यकता नहीं कि 'अज्ञेय' को प्रयोगवादी, अहंवादी, व्यक्तिवादी आदि अनेक नामोंसे स्मरण किया जाता रहा है। स्वयं 'अज्ञेय'ने अपने-आपको, आखिरकार, कवितावादी कह जानेकी छूट दे दी थी, यद्यपि ऐसा करते समय शायद उनके ध्यानमें यह बात न थी कि 'कविता'को लेकर उन्होंने इतनी अधिक कविता लिखी है कि वही उन्हें इस विशेषणका अधिकारी बनानेमें समर्थ है। 'हाला' पर कविता लिखनेके कारण यदि किसीको 'हालावादी' माना जा सकता था तो 'कविता' पर कविता लिखनेके कारण उन्हें क्यों न कवितावादी माना जाये! बहरहाल, यदि किसी अन्य वादके साथ उनका नाम जोड़ना जरूरी ही समझा जाये तो शायद, आधुनिकतावादीके स्थानपर, 'प्रतीक-वादी' कहना अधिक उपयुक्त होगा : 'वादी' के अर्थमें उतना नहीं, जितना 'प्रतीक' के अर्थमें।

रेत, चिड़िया, साँझ, क्षण, अँधेरा, मोती-जैसी तमाम वस्तुएँ और स्थितियाँ उनके निकट प्रतीक बनकर आती हैं, जिनकी सहायतासे वे किन्हीं गूढ़तर अर्थोंकी व्यंजना करना चाहते हैं। उनकी कवितामें प्रतीक आरोपित नहीं, निहित हैं और कविका मन प्रतीकोंसे परे भी कुछ टटोलता रहता है। उनके शब्द-चित्रोंमें प्रतीकोंका आना, खोजा जाना, मिलना और खुलना एक आन्तरिक प्रक्रियाका नैरन्तर्य सूचित करता है, जैसा कि वे स्वयं लिखते हैं :

> "...मन रहा टटोल
> प्रतीकों की परिभाषा
> आत्मा में जो अपने ही से
> खुलती हो रहती है।" (पृ० ३९)

यहीं हमारा ध्यान इस ओर भी जाता है कि 'अज्ञेय' अपनी कवितामें केवल बिम्ब नहीं. पूरे-पूरे चित्र रचते हैं। इसका कुछ कारण तो उनकी प्रतीक-पद्धतिको माना जा सकता है, पर अधिकांशतः यह उनके कविकी जागरूकता और भावक्षमताका परिचायक है, साथ ही उनके काव्यबोधकी व्यापकता और गहराईका भी।

एक विशेष रूपमें 'अज्ञेय' के 'कवितावादी' होनेका जो संकेत पहले किया जा चुका है; उसीसे सम्बद्ध यह प्रवृत्ति भी उनमें देखी जा सकेगी कि प्रायः अपनी कवितामें वे, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीतिसे, अपने काव्य-सिद्धान्त निरूपित करते चलते हैं। सामान्य कविताओंकी बात छोड़ ही दें। 'असाध्य वीणा' तकके अनुपम लालित्यको, इसी प्रवृत्तिके कारण, अनेक

स्थलोंपर आघात पहुँचा है। यह ठीक है कि उक्त काव्य-सिद्धान्त सर्वथा ऊपरसे थोपे नहीं जान पड़ते, किन्तु रचनामें उनका विशेष रूपसे उल्लेख होना किसी भी प्रकार आवश्यक नहीं। "यह रूप जो केवल मैंने देखा, यह अनुभव अद्वितीय, जो केवल मैंने किया, सब तुम्हें दिया।" (पृ० १६) या "और सब समय पराया है, बस उतना क्षण अपना।" (पृ० २४) या "पर वह जो बीत गया – जो नहीं रहा – वह कैसे फिर आयेगा?" (पृ० २५) आदि वक्तव्य अपनी विभिन्न कविताओंके अनिवार्य अंश नहीं जान पड़ते। सिद्धान्तको समझनेमें सहायक होकर भी, ये कविताके आस्वादमें बाधक हैं।

सिद्धान्तके स्तरपर, निर्वैयक्तिकता, क्षणकी महत्ता, अनुभवकी अद्वितीयता और आत्मदान 'अज्ञेय' के प्रिय 'थीम' हैं। पर जो अद्वितीय अनुभव केवल कविने किया हो, उसे किसीको देनेकी बात सोचना क्या निरी आत्मवंचना नहीं है? और क्या उतनी ही या उससे कहीं अधिक मात्रामें अनुभव संवेद्य, सर्वसुलभ तथा साधारणीकृत नहीं होता? यदि नहीं, तो कविता लिखने या पढ़नेकी आवश्यकता ही क्या है? तब तो 'गूँगेके गुड़' की भाँति, काव्यानुभूतिको भी अन्तर-गत रखना पर्याप्त होता!

देखा जाये, तो, कुछ समय पहले तक लोग सोचते थे कि कविता गाने-सुनाने और समझनेकी चीज है। बादमें कहा गया कि नहीं, वह पढ़ने और समझनेके लिए होती है। किन्तु आज यह सुना जाता है कि कविताका अनुभव किया जाना ही पर्याप्त है, उसे समझनेका प्रयास अप्रासंगिक है। अब अनुभवकी अद्वितीयताके विषयमें सुन चुकनेके बाद, किसीको आश्चर्य न होना चाहिए, यदि इस विचारधाराकी अन्तिम परिणति ऐसे सिद्धान्त-में हो कि कविताकी रचना और उसका प्रकाशन बिलकुल असम्भव और व्यर्थ है। भावोंको अभिव्यक्त करनेके लिए भाषा कितना अपूर्ण माध्यम है—इसकी चर्चा जिस गतिसे बढ़ रही है, तथा नये भावबोधको पुरानी भाषामें व्यक्त कर पानेमें असमर्थ युवा कवि जिस गतिसे कविता लिखना बन्द या कम कर रहे हैं और कविता एवं जीवनको भोग या भुगत रहे हैं: उस सबको देखते हुए, हमें अपनेको उस सम्भावनाके लिए तैयार कर लेना चाहिए, जब हम कविताको लेकर नहीं, कविके जीवन जीनेकी प्रक्रियाको लेकर लड़ें-मरेंगे। रचना तब न होगी, केवल जीना होगा—कविजनोचित, संवेदनशील, सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्पर्शसे भी (असाध्य) वीणाके तारों-सा थरथरा उठनेवाला। कविता अपनी आखिरी मंजिलपर तभी तो पहुँची समझी जायेगी, जब कुछ लोगोंको 'कवि' कहा जायेगा और शेषको 'मनुष्य'। वे कुछ लोग कविता 'लिखेंगे' नहीं, कविता जियेंगे', और इस प्रकार यह पुराना मुहावरा अपना नया अर्थ ग्रहण करेगा।

खैर, यह मात्र सम्भावना है, इसलिए भावी इतिहासकारोंसे यह अपेक्षा रखते हुए कि वे इसकी ओर ध्यान आकर्षित करनेका श्रेय इन पंक्तियोंके अकिंचन लेखकको देंगे, मैं इसे यहीं छोड़ता हूँ। लेकिन, निश्चय ही, 'अज्ञेय' की जीवन-मुद्राओं तथा काव्य-मुद्राओंमें न केवल घना सम्बन्ध है, बल्कि वह बाह्यरूपसे पाठकों-परिचितोंको दीखता भी रहा है। यह नहीं कि 'मौन' की बात उन्होंने कवितामें ही लिखी हो; उसे जीवनमें भी

उतारा है। अस्तु, कविताके प्रति उनकी आन्तरिक निष्ठाके कोई प्रमाण यदि उनकी रचनामें न मिलते-से जान पड़ें, तो रचनाके पूरक—जीवनमें खोजकर हम उन्हें अवश्य पा सकेंगे। मैं समझता हूँ कि इस चेष्टाको, कमसे कम पाठकगण अनधिकृत न मानेंगे।

अपने एक युवा मित्रकी इस धारणासे भी मैं सहमत नहीं हो सका हूँ कि 'अज्ञेय' का नया काव्य ईश्वरीय चेतनासे युक्त है। प्रस्तुत संग्रहकी कविताओंमें धार्मिक संवेदना अथवा आध्यात्मिकताका आभास मुझे नहीं मिलता, यद्यपि भविष्यमें 'अज्ञेय' की कविताका विकास ऐसी ही किसी दिशामें होनेकी सम्भावना देखी जा सकती है। अभी तो, इस संग्रह-की कविताओं तक, जिस एक अस्तित्वको वे मध्यम अथवा अन्य पुरुषके द्वारा सम्बोधित करते हैं, वह ईश्वर न होकर, कोई अन्य ही प्रतीत होता है।

रोमाण्टिक अथवा रहस्योन्मुख कविकी भावना जिसके प्रति विगलित और समर्पित होती है, उसका स्वरूप सदा अशरीरी एवं सूक्ष्म रहा है। स्वयं कवियोंने भी उसे जाननेके असफल-से प्रयास किये हैं; कदाचित् भक्त कवियोंने ही उसे किसी सीमा तक पहचाना होगा। एक व्यक्तित्वसे अनेक आशयोंकी पूर्तिकी आशामें, जैसे रोमाण्टिक कवि वर्ड्सवर्थने 'टु गाइड, टु कम्फर्ट ऐण्ड कमाण्ड' के प्रति अपनेको निछावर किया था; और छायावादी कवि पन्तने 'देवि, माँ, सहचरि, प्राण' को स्मरण किया था; वैसे ही आधुनिक कवि 'अज्ञेय' भी उसे 'तुम, गुरु, सखा, देवता' (पृ० २६) अथवा 'तात, सखा, गुरु, आश्रय, (पृ० ७८) कहकर बूझना चाहते हैं। पर इसी कारण, आस्था एवं विश्वासका वह आधार 'ईश्वर' नहीं बन जाता। एकके लिए वह स्त्री है, दूसरेके लिए प्रकृति, और तीसरेके लिए कुछ अन्य।

भले ही 'अज्ञेय' ने उसे कहीं 'ईश्वर', 'ईश्वर-योगी' या 'महाशून्य' कह दिया हो, वह किसी धर्मप्राण व्यक्तिके ईश्वरसे भिन्न है। वह है, वस्तुतः—वाणी-मन्दिरके भक्त (कवि) का, असाध्य वीणाके साधक (कवि) का, अथवा उत्कट जिजीविषाके चितेरे (कवि) का अन्वेष्य (काव्य) : जिसके प्रति समर्पित हो, कवि कहता है :

> "तू काव्य :
> सदा-वेष्टित यथार्थ चिर-तनित,
> भारहीन, गुरु, अव्यय।
> तू छलता है
> पर हर छल में तू और विशद,
> अभ्रान्त, अनूठा होता जाता है।"

अनूठा होने या दिखनेका भाव भी 'अज्ञेय' में बहुत दूर तक पाया जाता है। सबसे अधिक अनूठापन तो यही है कि वे कवि हैं, उन्होंने एक राह पा ली है और उसपर काफ़ी दूर तक चल भी चुके हैं। रूपाकारकी दृष्टिसे, उनकी कवितामें आन्तरिक गठन और परिपक्वता बढ़ी है, पर छन्द, लय और तुकका जो आवरण उन्होंने पहले स्वीकार किया था, उसे किसी सीमा तक, अब वे झीना कर रहे हैं। तथापि उनके कविके तथाकथित कहलाने और घिग्घी बँध जानेका कारण कुछ दूसरा ही है।

यह कारण है—वयस्क कवि-द्वारा अपने दायित्वका बोध, जिसके परिणामस्वरूप वह अपनेको नवागन्तुक अन्वेषियोंसे भिन्न तथा पृथक् मनानेकी ओर प्रवृत्त होता है। पहले भी 'अज्ञेय' ने नव्यतर कवियोंकी 'बड़बोली' पर कविताएँ लिखी हैं, पर यहाँ, ऐसे कवियों-की अति-प्रगल्भताके अन्तरमें, वाणीको पाने तथा शब्दको बूझनेवाला प्रौढ़ कवि 'महामौन-की सरिता'को दिग्विहीन बहने देना ही अलम् समझता है :

"मौन का ही सूत्र
किसी अर्थ को मिटाये बिना
सारे शब्द क्रमागत
सुमिरनी में पिरोता है।" (पृ० ४०)

केवल एक उद्धरण और देकर मैं 'अज्ञेय'के इस काव्य-संग्रहकी मूल चेतनाको इंगित करना चाहूँगा। वह है :

"मैं, मौन-मुखर, सब छन्दों में
उस एक अनिर्वच, छन्द-मुक्त को
गाता हूँ।" (पृ० ३९)

अन्तमें, यह कहे बिना मुझसे नहीं रहा जाता कि जिस भाषाकी असमर्थताका मसिया पढ़ते-पढ़ते हमारे अनेक कवियोंके मुँहसे फिचकुर निकलने लगता है, उसी भाषाका अत्यन्त समर्थ, सुसंस्कृत और गम्भीर स्वरूप 'अज्ञेय' की कवितामें दिखाई पड़ता है। पर वे हिन्दी कविताकी उपलब्धिका कोई एकमात्र प्रमाण नहीं हैं, आधुनिकताका तो इससे भी कम। निस्सन्देह, 'अज्ञेय' की इन कुछ और कविताओंसे भिन्न, शमशेरकी 'कुछ और कविताएँ' किसी दूसरे ही लोकमें या उसके लिए न रची गयी प्रतीत होती हैं। उनमें है : भाषाके स्तरपर एक खुलापन, जो 'अज्ञेय'में नहीं मिलता। काव्य-संस्कार भी वहाँ आत्मीय, सहज और सार्वजनीन है, 'अज्ञेय' की भाँति आभिजात्यके अतिरिक्त गौरवसे मण्डित नहीं। रूमानी भावना वहाँ भँवर काटती-घुमड़ती ही नहीं रह जाती; दूर-दूर तक लहरोंके साथ बहती खेलती है।

यहाँ प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि 'अज्ञेय' और शमशेरको काव्यानुभूतिमें वह कौन-सी समानता है, जिसके कारण उन्हें नयी कविताके बृहत्तर प्रसंगमें साथ-साथ रखा जाना चाहिए? निश्चय ही उनके व्यक्तिगत और सामाजिक विचारोंमें भिन्नता है, बल्कि किसी हद तक, उन्हें परस्पर-प्रतिकूल भी कहा जा सकता है। तथापि, नये लेखकोंमें-से जिन दोके नाम सामान्य पाठकके मनमें सबसे पहले उभरते हैं, वे 'अज्ञेय' और शमशेर ही हैं। इसका कारण यही होगा कि परम्परागत और समकालीन कविताकी बनी-बनायी लीकसे हटकर लिखनेवालोंमें इन दोके नाम प्रमुख हैं। पर इन्हें परस्पर-सम्बद्ध करनेवाला सूत्र क्या सिर्फ इतना ही है?

— अजित
(धर्मयुग)

२

एक बृहत्तर माध्यमको खोज

विषयकी दृष्टिसे अज्ञेयका काव्य कुछ परिचित मानसिक अवस्थाओंको व्यक्त करनेवाले शब्दोंसे संकेतित होता है। उन अवस्थाओंकी पहली सफल अभिव्यक्ति 'हरी घासपर क्षण भर' में हुई—और उसी संग्रहमें कुछ ऐसे आधार शब्द सामने आये जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे अज्ञेयकी मूल काव्य-प्रकृतिके द्योतक हैं, जिनकी अनुगूँज 'बावरा अहेरी', 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये', और 'अरी ओ करुणा प्रभामय' से होती हुई 'आँगनके पार द्वार' तक विभिन्न—बहुत विभिन्न नहीं—मनःस्थितियोंसे प्रतिकृत होती चली आयी है। कविका भोक्ता स्रष्टा, 'मैं' उन शब्दोंके मनन-द्वारा मानो कभी अपनेको विराट्के सन्दर्भमें खोजता है, कभी अपनेसे विराट्को सन्दर्भ देता है। 'आँगनके पार द्वार' की मुख्य काव्यावस्थाओंका आदि-साँचा 'हरी घासपर क्षण भर' से निकाला जा सकता है—

"किन्तु जो भी हो, निजी तुम प्रश्न मेरे····
मेरा कर्म, मेरी दीप्ति. उद्भव-निधन, मेरी मुक्ति
तुम मेरी पहेली हो !

क्यों करूँ आराधना उस देवता की
जो कि मुझको सिद्धि तो क्या दे सकेगा—
जो कि मैं ही स्वयं हूँ !
एक मौन ही है जो अब भी
नयी कहानी कह सकता है;
मौन ही है गोद जिसमें
अनकही कुल व्यथा सोती है।
केवल मैं ही चिर-संगी हूँ
क्यों कि अकेला हूँ उतना ही····
दे कर
देते-देते चुक जाने पर
वही प्रेरणा देती है—मैं दे सकने को
और नया कुछ रचूँ ! फिर रचूँ !
दुःख सबको माँजता है
और—
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु—

जिनको माँजता है

उन्हें यह सीख देना है कि सबको मुक्त रखें।

समर्पण लय, कर्म है संगीत;

टेक करुणा—सजग मानव प्रीति।

('हरी घासपर क्षण भर' से)

:

काले टाइपके शब्द, प्रतीक रूपसे, एक निश्चित भाव-कोशका बोध कराते हैं, और किसी गहरी संवेदनाकी छाप या पूर्वाभासकी तरह अज्ञेयकी कविताओंमें प्रकट होते रहे हैं। इसी जमीनके कई अन्य शब्द भी हैं जिनसे उनकी कविता निदेशित होती है। जैसे, 'आलोक', 'अर्थ', 'शब्द', 'किरण' आदि, जिनमें अज्ञेयने जगह-जगह नया उन्मेष भरनेकी कोशिश की है। अज्ञेयसे कम कुशल शब्द-शिल्पीके हाथोंमें ये शब्द कबके निर्जीव हो चुके होते—(अब शायद उनके ही काव्यमें वे रूढ़ हो भी चले हैं) लेकिन इतने समय तक भी यदि वे इन, या ऐसे, शब्दोंको सतेज रख सके तो इसका कारण वह भावोद्रेक है जो प्रकाश-के घेरेकी तरह जिस वस्तुपर पड़ता है उसे चमका देता है।

'चक्रान्त शिला' में 'मौनके माध्यमसे विराट्से जुड़नेकी प्रक्रिया है' अवश्य, लेकिन इस प्रक्रियामें 'मौन' ऐसा कोई नया आयाम नहीं पाता जो पहले ही अज्ञेयके काव्यमें इससे अधिक ऋजुतासे व्यक्त न हो चुका हो। 'चक्रान्त शिला' में, लगता है, कवि केवल एक गझिन माध्यमसे एक अधिक विरल माध्यममें पहुँच रहा है। उसकी स्वाभाविक एकान्त-परायणता धीरे-धीरे उन प्रतीकों तकसे अलग होती जा रही है जो कविके अन्तर्जगत्को वस्तु-जगत्से जोड़ते हैं। "तुम पर्व हो अभ्रभेदी शिलाखण्डोंके गरिष्ठ पुंज···" जैसे अंशोंके आगे 'चक्रान्त शिला' का 'मौन' जिस फीकी अनुभूति तक पहुँच पाता है वह अकसर छाया-वादियोंकी याद दिलाता है—

"नीचे यह महामौन की सरिता
दिग्विहीन बहती है।
मैं एक, शिविर का प्रहरी, भोर जगा
अपने को मौन नदी के खड़ा किनारे पाता हूँ:
मैं, मौन-मुखर, सब छन्दों में
उस एक अनिर्वच छन्द-मुक्त को
गाता हूँ।
वन के सन्नाटे के साथ मौन हूँ, मौन हूँ—
क्योंकि वही मुझे बतलाता है कि मैं कौन हूँ,

एक चिकना मौन
जिसमें मुखर-तपती वासनाएँ।"
('चक्रान्त शिलाखण्ड' से)

इसी संग्रहकी अन्तिम कविता—'असाध्य वीणा'—अज्ञेयकी अबतक सबसे लम्बी कविता है, और वर्णनात्मक कविताकी दिशामें भी उनकी पहली देन। कथावस्तुका जहाँतक सवाल है, अज्ञेयने उसे न्यूनतम रखा है—विषय किसी हद तक आध्यात्मिक क्षेत्रका ही है—जब कि सफल वर्णनात्मक काव्यके लिए शायद कथावस्तुका ठोस आधार आवश्यक है। 'असाध्य वीणा' में 'प्रियंवद', 'राजा', 'रानी', 'वज्रकीर्ति', 'गण' आदि केवल नाम हैं। इन नामोंमें जितना कहानीपन है, कथानककी शायद उससे अधिक माँग होती है। साधक प्रियंवदका राज-दरबारमें आना, राजाका उनके सामने असाध्य वीणाका रखवाना, और प्रियंवदका उपयुक्त आत्मसन्धानके पश्चात् उसे वांछित राग दे सकनेमें सफल होना—आधार-कथा है, जिसमें कविके साधक-धर्मकी बुनावट है। इस कविताकी लय सोलह मात्राओंपर आधारित है, जिसमें काफ़ी प्रबन्ध-रचना हुई है, लेकिन वर्णनमें शायद कथा-तत्त्वके अभावके कारण, थोड़ी एकरसता मालूम पड़ती है। इसमें सन्देह नहीं कि 'असाध्य वीणा' की धीमी, मननशील लय बहुत-कुछ इसी छन्दके कारण सम्भव हो सकी है, लेकिन वर्णनमें कथा जितनी भी है, ठीकसे नहीं उभर पाती। कथा-तत्त्व और अधिक होता तो शायद यह एकरसता दब जाती, लेकिन जिस रूपमें 'असाध्य वीणा' है उससे यही लगता है कि भावों और स्थलोंके अपेक्षाकृत हलके-भारी निर्वाहके लिए लय अत्यधिक समतल है। सम्भव है इस लम्बाईकी कविताके लिए वर्णिक छन्द अधिक उपयुक्त रहता, अधिक उन्मुक्त लयमें, हो सकता है, इस ढंगका 'वर्णनात्मक चिन्तन' बेहतर निभता। कविताके गहरे आध्यात्मिक रंगमें कहानी, या वस्तुएँ, या लोग, ठीकसे घुलमिल नहीं पाते, अलग तैरते हुए लगते हैं।

'आँगन के पार द्वार' किसी भी ऐसे पाठकको अज्ञेयका काव्य-व्यक्तित्व नये सिरेसे आँकनेके लिए प्रोत्साहित कर सकता है जो उनके कृतित्वमें गम्भीर रुचि लेता रहा है। इस संग्रहमें कई ऐसे स्थल हैं जो 'हरी घासपर क्षण भर' से भी पहलेके अज्ञेयकी याद दिलाते हैं; साथ ही 'चक्रान्त शिला' की काव्य-योजना तथा 'असाध्य वीणा' से ऐसा भी आभास होता है कि कवि—जिसकी काव्य-प्रतिभा अबतक केवल छोटी कविताओंके माध्यमसे ही व्यक्त हुई है—अब एक बृहत्तर माध्यमकी खोजमें है। आवश्यक नहीं कि वह सुनिश्चित प्रबन्ध रचना ही करे, लेकिन प्रबन्धकी दिशामें चिन्तन भी उसकी काव्य-चेतनाको एक नया मोड़ दे सकता है।

—कुँवर नारायण
(कल्पना)

● ●

अक्षरोंका सेतु
कृतियोंकी प्रतिक्रिया

लेखन-प्रकाशनके आयोजन श्रमकी इकाई
अधूरी रहेगी जबतक पारखी पाठककी
प्रतिक्रिया प्रकाशकके पास होती लेखक
की मेज तक न पहुँचे ।

• प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी : दिनकर सोनवलकर

नयी दिल्ली-११
९-१२-'६५

सम्मान्य बन्धु,

कल रात मैं 'प्रतिनिधि संकलन कविता : मराठी' पूरी पढ़ गया । इसमें सन्देह नहीं कि यह एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है । जैसा डॉ० प्रभाकर माचवेने कहा है : "हिन्दीको सेतु-भाषा बनना है", 'Link language' से यह 'सेतु' मुझे ज्यादा अच्छा लगा । मैं चाहता हूँ कि सभी प्रादेशिक भाषाओंका उत्तम साहित्य हिन्दीमें उपलब्ध हो । पुराना धीरे-धीरे हो तो कोई हर्ज नहीं, पर नया तो तत्काल और साथ-साथ आना चाहिए । हिन्दीका वर्तमान विकास सभी प्रादेशिक भाषाओंके सहयोगसे हो तभी वह सच्चे अर्थोंमें राष्ट्रीय होगी और सब उसमें अपना प्रतिबिम्ब देख सकेंगे । इस दृष्टिसे आधुनिक मराठी कविताका यह अनुवाद दुगुना महत्त्वपूर्ण है । भारतीय भाषाओंमें आदान-प्रदान बहुत कम होने पर भी बड़ा विचित्र है कि सबके अन्दरसे भारतीय मनीषा लगभग एक ही प्रकारसे अभिव्यक्त हो रही है । संकलन पढ़ते हुए उसमें मुझे आधुनिक हिन्दी नयी कवितासे कोई विशेष विभिन्नता नहीं प्रतीत हुई ।

प्रत्येक लेखक भाषाको अपने ढंगसे इस्तेमाल करता है और उसे एक व्यक्तित्व देता है । अनुवादककी अपनी भाषा होती है और वह सबपर आरोपित हो जाती है । ऐसे काव्यमें जिसमें भाषाके प्रति अधिक चेतना और आग्रह है, अनु-

वादककी भाषा-एकरूपता प्रायः खलने लगती है। आप मुझे क्षमा करेंगे, यदि मैं कहूँ कि उस एकरूपताका आभास मुझे इन कविताओंके साथ भी हुआ। शायद यह आपके वशकी बात भी नहीं थी; और भाषा-वैभिन्न्यकी प्रत्याशा पाठककी भी नहीं करनी चाहिए थी। ईट्सका अनुवाद करते समय यह समस्या मेरे सामने भी आयी थी। उनकी पहली कविताओं और पचास वर्ष बादकी कविताओंमें भाषा और शैलीगत अन्तर भी है। यह अनुवादकी भाषासे कैसे किया जाये? कुछ प्रयत्न तो मैंने किया, पर शायद बहुत सफल नहीं हुआ।

भाषाके बहुत बड़े शिल्पी और आधुनिक कवितामें उसके आग्रही होनेके कारण मर्ढेकर शायद अनुवादमें सबसे बड़े 'लूज़र' रहे हैं। मर्ढेकरसे मेरा व्यक्तिगत परिचय था। मैं जिस समय रेडियोमें आ गया था, उस समय तक वे दिल्ली रेडियो पर ही थे। एक सेमिनारमें आनेपर मैंने उनके कुछ व्याख्यान भी सुने।

कवि-रूपमें शायद वे भी मुझे जानते थे, पर हम एक-दूसरेके इतने निकट न आ सके कि कविताको लेकर हममें कुछ विचार-विनिमय होता। उन्होंने एक पारसी लड़कीसे शादी कर ली थी; वह सम्बन्ध सफल नहीं हुआ। बादको उनकी पत्नीने डॉ० दस्तूरसे शादी की। दस्तूर मेरे प्रोफ़ेसर थे इलाहाबाद युनिवर्सिटीमें। मर्ढेकरके विषयमें अधिक मैंने श्रीमती दस्तूरसे जाना। उनकी कविताकी वे अलग होनेके बाद भी प्रशंसक थीं—मराठी वे अधिक न समझती थीं, पर मर्ढेकरने अँगरेजीमें भी लिखा था। मुझे पता नहीं वह संग्रह रूपमें प्रकाशित हुआ है या नहीं और उसका अँगरेज़ी कविताकी तुलनामें क्या मूल्य होगा। ख़ैर; उसका बहुत मूल्य न भी हो तो मर्ढेकरने निश्चय ही आधुनिक मराठी कविताको प्रभावित किया है: शायद 'अज्ञेय'ने नयी कविताको जितना किया है, उससे अधिक। मेरी तो ऐसी धारणा है कि रूमानियतने 'अज्ञेय'को कभी नहीं छोड़ा। बीचमें उन्होंने उसे छोड़नेका प्रयत्न किया था; पर अपने 'आँगनके पार द्वार'में: विशेषकर 'असाध्य वीणा'में उसने उन्हें फिर पकड़ लिया है।

अनिलके 'भग्न मूर्ति' के अनुवादसे मैं पहलेसे ही परिचित था। उनसे भी मेरा व्यक्तिगत परिचय है; वे तो अरसेसे दिल्लीमें ही हैं। स्व० कुसुमावतीजीसे भी मेरी जान-पहचान थी: विदुषी महिला थीं। अचानक मृत्यु हुई। मरनेके बाद ऐसी लगती थीं जैसे बस सो गयी हैं—अभी उठ जायेंगी। अनिलने उस आघातको वीरतासे बर्दाश्त किया। नयेकी जैसी परिभाषा की जाती है, उससे

मैं उन्हें पुराना ही कहूँगा; पर पुरानेके प्रति कोई अवमान मेरे मनमें नहीं—पुरानेपर अपनी अभिव्यक्तिमें पुष्ट। भावनाओंके प्रति अधिक आस्थावान्: 'बुद्धिके हाथ तो इधर-उधर सिर्फ़ काई बटोरते है'—नयी कविताने बुद्धिसे काई बटोरकर भी उसे महत्त्व दिया है। नयेका तो यह आग्रह है कि 'काई' भी महत्त्वपूर्ण है।

कुसुमाग्रजकी सामाजिकताका प्रतिनिधित्व उनकी कवितामें ख़ूब हुआ है और वह अनुवादमें भी सशक्त है। 'इस रोती हुई माटीके गर्भमें सरसराते हैं हज़ारों सर्प।'

माडगूलकरका ध्वनि-संगीत खोजनेपर भी मुझे अनुवादमें नहीं मिला। गीत अनुवादमें सबसे अधिक कठिनता पैदा करते हैं। शब्दका अनुवाद तक तो आदमी किसी तरह करे, पर ध्वनि-अन्तर्ध्वनिका कैसे करें?

चित्रेके नये उपमान प्रायः चित्रमय हैं और अनुवादमें भी उनकी छाप है: रूमानी गीतोंसे बहुत नाराज़ मालूम होते हैं: 'नहीं चाहिए उर के स्पन्दन या पीड़ा के छन्द अब।'

पद्माके दाम्पत्य-प्रेमके चित्र सुकुमार और मनोरम हैं। पर मराठीके नये कवि उनको कहाँतक नया मानते हैं: 'पौराणिक' कहते उन्हें हिन्दी वाले!

बोरकरका प्रकृति-चित्रण मुझे पुरानापन लिये लगा। मुझे पता नहीं; मराठीमें छायावादने कैसा प्रकृति-चित्रण किया है। हिन्दी छायावादमें मेरी ऐसी धारणा है पाडगाँवकरसे अधिक सांकेतिक और सूक्ष्म प्रकृति-चित्रण हुआ है। केचेके अनुवादमें शायद उनकी विशेषता-भर आ सकी। विशेष प्रभावित नहीं हुआ उनसे। कान्तका स्वर प्रगतिशीलताका और रूमानी-छायावादी है। करन्दीकरकी 'यन्त्रावतार' कविता मुझे बहुत अच्छी लगी। 'ॐ क्रान्तिः क्रान्तिः क्रान्तिः' विज्ञान युगके उनके स्वागतमें सभी प्रगतिशील उनके साथ होंगे: मैं भी। बापटके चित्र बिम्बोंको समझनेके लिए शायद परम्परागत मराठी कविताका अधिक निकट ज्ञान अपेक्षित है। शरत मुक्तिबोध कवितामें गजानन मुक्तिबोधके छोटे भाई हैं। सदानन्द रेगेकी 'आकाशका ज़ख्म' कविता सशक्त है।

जो कुछ मैंने कहा है आलोचककी दृष्टिसे नहीं; एक साधारण पाठककी दृष्टिसे। मेरी कोई बात ग़लत या तेज़ लगे तो मुझे क्षमा करें। अन्तमें मैं

आपके प्रति आभार प्रकट करना चाहता हूँ कि आपके प्रयासके कारण इतनी मराठी कविताओंको पढ़ने और उनका आनन्द लेनेका सौभाग्य मुझे मिला।

सादर : —'बच्चन'

● झाड़ी : श्रीकान्त वर्मा

बदलते हुए सम्बन्धोंकी व्याख्या

आजके कहानीकारोंमें श्रीकान्त वर्माका नाम महत्त्व रखता है, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। एक पहाड़-बोझको कन्धोंपर लादे हुए हम जिस घुटन और अवशताके साथ इस सदीमें जी रहे हैं, 'झाड़ी' की कहानियाँ उसीकी अभिव्यक्तिके लिए छटपटाती हुई प्रतीत होती हैं। उनमें प्रेम-सम्बन्धोंका तनाव और आवेश है तो आसपासके 'स्थिर' माहौलसे मुक्त होनेकी पूरी कशमकश भी, और टूटती हुई श्रृंखलाओंके प्रति उपहास और व्यंग्यका भाव भी। उनके पात्र एक क्षण एकान्त वेदना भोगते हैं तो दूसरे ही पल रूढ़ सामाजिक 'शक्तियों' को चूर-चूर कर देनेके लिए सजग हो उठते हैं। मज़ेकी बात यह है कि श्रीकान्त सब जगह तटस्थ हैं, पूर्ण तटस्थ—हर स्थितिके प्रति। पर, वैसे देखा जाये तो इसमें अजीब कुछ भी नहीं है। डायरी लिखनेवाला जब अपने मनकी परतोंको खाली पृष्ठोंके वक्षपर खोलता है तो इसी तरह खोलता है।

'साथ', 'दूसरेके पैर', 'परिणय', 'प्रेम-पत्र' आदि कहानियोंमें पाठकोंको लेखकका पराजयवादी (!) दृष्टिकोण आतंकित कर सकता है क्योंकि एक अतिरिक्त भावुकताके वशीभूत होकर वह कहीं-कहीं स्पष्ट 'नकार' और 'समर्पण'-पर उतर आता है। दरअसल यह श्रीकान्तकी कमज़ोरी भी है और सफलता भी। कमज़ोरी यों कि सार्थकतासे अलग होनेके लिए, दूसरे शब्दोंमें उद्देश्यहीनताकी टोहके लिए वह लगातार 'कांशस' बना रहता है और अपनी संवेदनाको विस्तार नहीं दे पाता। सफलता यों कि यह 'कांशसनेस' उसे परम्परागत कथा-विवेचनके खिलाफ़ नये स्तरपर सबल और चमत्कारपूर्ण कहानियाँ लिखनेके लिए बाध्य करती है। 'उसका क्रॉस', 'ठण्ड' और 'अनुगूँज' में शिल्पके साहसिक प्रयोग इस कथनके प्रमाण हैं।

'झाड़ी' की अधिकांश कहानियोंपर एकरसताका आरोप भी लगाया जा सकता है क्योंकि उनमें स्त्रीकी उपस्थिति सर्वत्र 'एक-सी' ही है। श्रीकान्तने

कहीं लिखा था कि सभी चीज़ें तेज़ीसे बदल रही हैं और धीरे-धीरे 'बदलना' शब्द भी अर्थहीन होता जा रहा है। हम लगातार कपड़े बदल रहे हैं और ध्यान देनेकी बात यह है कि स्त्रीको साड़ी बदलनेमें जितना समय लगता है, सम्बन्ध बदलनेमें उससे भी कम समय लगता है। अतः यहाँ यह माना जा सकता है कि 'झाड़ी' में स्त्री चाहे एक ही हो, उसके क्षण-क्षण बदलते हुए सम्बन्धोंका अंकन विविध रूपोंमें है। और नारी-मनकी बारीकियोंको पकड़नेकी सामर्थ्य लेखकमें है, इसमें किसी सन्देहकी गुंजाइश नहीं। वह अकिंचनताको समेटनेका मोह रखता है, किसी 'विशेष' की तलाशमें पसीना-पसीना नहीं हो जाता। उसको छोटापन भी उतना ही प्रिय है जितना कि बड़प्पन। फिर उसने संकेतोंकी भाषासे काम लिया है जिससे संग्रहमें एक स्पृहणीय नव्यता और ताज़गी आ गयी है।

—मणि मधुकर

● ●

नयी कृतियाँ
ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित

लेखक वे सफल हुए जिन्होंने सारी अनुभूति-पीड़ा
एक ही कृतिमें नहीं उँड़ेल दी, और कृतियाँ वे गिनी
गयीं जो दिखीं सामान्य, पर दे बहुत-कुछ सकीं।

● ●

● अठारह सूरजके पौधे : रमेश बक्षी

यह उपन्यास है पर केवल उपन्यास ही नहीं। एक सचाई है यह कि बुद्धि-जीवीका संकट समूची संस्कृतिका संकट होता है। रमेश बक्षीका यह नया उपन्यास 'अठारह सूरजके पौधे' भी गतिसे बँधे हुए कुछ वैसे ही संकटोंकी प्रस्तुति और उपलब्धि है—बिलकुल नयी, एक दिशान्तर-जैसी। शैली-शिल्प भी इसका बिलकुल नया—मनको बहुत भीतरसे बाँधता हुआ; और आदिसे अन्त तक एक आत्मीय संगीतमें डूबा हुआ कथानक। कुछ अजीब-से नशेमें ढुलकती हुई चाल है इस यात्रा-उपन्यासकी। उपन्यास पढ़ते समय भले ही लगे कि यह सब मात्र मन बहलाने और फ़ुरसतका वक़्त काटनेके लिए है पर समूचा पढ़ जानेके बाद लगेगा कुछ और ही—हथौड़ोंकी चोटें कि सारा अस्तित्व झनझना उठे, चुभे हुए तीरोंकी टीस, एक चुप सुलगती हुई आग, और एक धूप-गन्ध भी जो अजाने चेतनापर छा जाये।

मूल्य : ३.००

● प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी : रूपान्तर एवं संकलनकर्त्ता : दिनकर सोनवलकर

प्रस्तुत संकलन समकालीन मराठी कविता (१९४०-१९६२) की विविध प्रवृत्तियोंको रेखांकित करता है और प्रतिनिधि रचनाकारोंके कृतित्वकी झाँकी, एक बानगी, हिन्दी पाठकोंके सामने उपस्थित करता है। सब १८ समकालीन

मराठी कवियोंकी चुनी-चुनी ९० कविताओंका हिन्दी रूपान्तर यहाँ प्रस्तुत है। साथमें एक महत्त्वपूर्ण भूमिका भी है। जो काव्यप्रेमी हैं वे तो इस संकलनका स्वागत करेंगे ही, वे भी करेंगे जो विभिन्न भारतीय भाषाओंकी साहित्यिक प्रगतिके प्रति जिज्ञासु हैं, उसका तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं। सबके अतिरिक्त, राष्ट्रकी भावात्मक एकताका एक सशक्त सोपान यह है ही, जिसमें उपलब्धिका गर्व नहीं, प्रयासकी विनम्रता मात्र है। मूल्य : ४.००

● **बक रहा हूँ जुनूनमें : प्रकाश पण्डित**

कहा जाता है हिन्दीमें हँसते भी हैं तो दार्शनिककी हँसी। मगर कहीं और भी कितने मोलिएर, कितने सेरवान्ते, कितने चॉसर या शॉ हुए ? हास्य-साहित्य सब कहीं कम है, व्यंग्य-साहित्य और भी कम। प्रस्तुत कृतिका नाम भले ही 'बक रहा हूँ जुनूनमें' है और ऊपर-ऊपरसे देखनेपर कुछ वैसी ही रौ में लिखी हुई भी जान पड़े; मगर इसकी हर रचना है एक उपहास-भरी आलोचना, टीका या टिप्पणी, मेरी-आपकी-बहुतोंकी किसी-न-किसी दुर्बलताकी। कहीं आक्षेप सीधे प्रहारके रूपमें है कहीं किसी सामयिक विषय-प्रसंगके द्वारा किया गया है। उद्देश्य सबका वही है : सुधार। मूल्य : ३.००

● **घरेलू इलाज : वैद्यरत्न चन्द्रशेखर गोपालजी ठक्कुर**

आधुनिक चिकित्सा पद्धति बड़ी विकसित पद्धति है। वह 'वैज्ञानिक' है। अर्थात् अनुसन्धान और प्रयोगोंपर आधारित-अवलम्बित। स्वभावतः एक जोखिम-का तत्त्व उसमें हुआ। अत्यन्त व्यय-साध्य वह है ही। अन्य कई कठिनाइयाँ भी हैं। सम्भव है यही कारण हों जो पुराने घरोंमें वे पुराने उपाय-उपचार आज भी प्रतिष्ठित हैं, शिक्षित वर्गमें होमियोपैथीका सहारा लिया जाता है, और पश्चिमके चिकित्साशास्त्री आयुर्वेदको मान-महत्त्व देने लगे हैं। प्रस्तुत लघुकृतिमें प्रायः सभी रोग-व्याधियोंके ऐसे आयुर्वेदिक उपाय-उपचारोंका सम्यक् परिचय दिया गया है जो सरल हैं, सहज सुलभ हो सकते हैं, और आश्चर्यजनक रूपसे लाभकारी प्रमाणित होते आये हैं। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है और इसलिए हर घर-गृहस्थी-के लिए आवश्यक, अनिवार्य। मूल्य : २.००

● **विवेकके रंग : सम्पादक – डॉ० देवीशंकर अवस्थी**

'विवेकके रंग' अर्थात् महत्त्वपूर्ण समकालीन कृति-साहित्यपर प्रकाशित

गणनीय समीक्षाओंका संकलन । अपने प्रकारकी प्रथम कृति : प्रौढ़ और प्रभावपूर्ण। जिन हिन्दी पुस्तकोंकी समीक्षाएँ संकलित की गयी हैं वे गत पन्द्रह वर्षोंके लेखनका एक बड़ी सीमा तक प्रतिनिधित्व करती हैं; और समीक्षाएँ तो, एक पुस्तकपर एक, चुनी वही गयी हैं जो पुस्तककी आन्तरिक सत्ताका उद्घाटन करती हों या फिर समीक्षा-सिद्धान्त या पद्धतिकी दृष्टिसे कोई नयी बात प्रस्तुत करें । मूल्य : ७.००

● **जुलूस** : फणीश्वरनाथ 'रेणु'

हिन्दीके बहुचर्चित उपन्यासकार 'रेणु' का यह एक नया उपन्यास है। हिन्दीमें इस विषय-भूमिकी ओर इसके भाव-संकेत लिये हुए कोई कृति बिरले ही आयी होगी। एक लघुकाय उपन्यास पर विशाल अन्तरंग, गझिन, शक्तिशाली और सारा कथानक सामयिक : घटनाओंकी दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण और मूल्योंकी दृष्टिसे भी। शैली-शिल्प 'रेणु' के अपने—पहलेसे अधिक प्रौढ़, मँजे-निखरे, रोचक और प्रभावपूर्ण । मूल्य : ३.५०

● **इतिहास-पुरुष** : डॉ० देवराज

अपनी संचेतनामें 'इतिहास-पुरुष' उत्तर-अस्तित्ववादी युगके प्रारम्भकी सूचक रचना है जिसमें निराशा और विभिन्न निषेधोंपर हावी होते हुए जीवनकी मूल आस्थाओंके पुराख्यान और उज्जीवनका प्रयत्न है। क्या भाव-बोध और क्या भाषा दोनोंमें ही यह काव्यकृति एक नितान्त मौलिक, सशक्त एवं समृद्ध संवेदना-को स्वरित करती है : ऐसी संवेदनाको जिसे किसी सामयिक आन्दोलनके कोला-हलमें खो जानेका या उसके उतार-चढ़ावसे प्रभावित होनेका भय नहीं है।

मूल्य : ३.५०

● **आत्मजयी** : कुँवर नारायण

कठोपनिषद्में आये नचिकेताके आख्यानपर आधारित यह काव्य-कृति मूल प्रसंगके दार्शनिक पक्षकी ऊहापोह नहीं करती और न ही उसे दिव्य कथाके रूपमें ग्रहण करती है। 'आत्मजयी' के कविने मुख्यतः नचिकेताकी मानवीय परिस्थिति-को ही दृष्टिमें रखा है। कृति नयी कविताकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है—पठनीय और संग्रहणीय भी। मूल्य : ३.५०

● प्रेत : मूल-इब्सेन, अनु० नेमिचन्द्र जैन

प्रस्तुत कृति लगभग सौ वर्ष पूर्व लिखे गये एक नाटकका सफल अविकल हिन्दी अनुवाद है। मूल कृति है इब्सेनकी 'घोस्ट्स'। इब्सेन अर्थात् आधुनिक नाटकका प्रवर्तक, जिससे देश-देशके नाट्य-लेखन और रंगमंचने दिशा पायी, प्रभाव ग्रहण किये। विश्वको प्रायः सभी भाषाओंमें अनूदित, रंगमंचके लिए सदासे सबका चहेता, प्रस्तुत है नाटक 'प्रेत'—जितना क्लासिक उतना ही मॉडर्न, आजका!

मूल्य : २.२५

● सिकन्दरनामा : सलमा सिद्दीक़ी

सिकन्दरनामा यानी सिकन्दरका हाल। हाँ, यह सिकन्दर इतिहासका नहीं आजका है—जिसके अस्तित्वका सबसे बड़ा सबूत यह है कि स्वयं सलमा सिद्दीक़ीने उसे अपनी जादुई क़लमकी नोकपर बैठाकर साहित्य-संसारमें रॉकेटकी तरह छोड़ा है। बहुत दिलचस्प दास्तान है इस सिकन्दरकी। और, सलमा सिद्दीक़ीकी सादाबयानीका मोहक कमाल—यह हास्य-व्यंग्य उपन्यास!

मूल्य : २.००

● अन्धा चाँद : मुनि रूपचन्द

चाँदके लिए 'अन्धा' विशेषण अटपटी-सी कल्पना लगेगी। है उसके पीछे एक वस्तु सत्य। उसका सारा उजाला पराया, लिया हुआ, नहीं होता क्या? प्रस्तुत संग्रहकी कविताओंमें इसी स्वरूप-विश्लेषणकी दृष्टिको प्रधानता दी गयी है। सीधी-सरल बोलचालकी भाषा, कला और शिल्पकी कृत्रिमताओंसे मुक्त: इन कविताओंकी ऋतुजा विवेचकको सन्तोष देगी और सामान्य पाठकको इनका सत्य एक दृष्टि और प्रेरणा देगा।

मूल्य : ३.००

● जैन शिलालेख संग्रह – भाग ४ : सं० डॉ० जोहरापुरकर

प्राचीन अभिलेख इतिहास तथा तत्कालीन सांस्कृतिक और सामाजिक जीवनकी प्रामाणिक जानकारीके मूर्तमान स्रोत हैं। भारतमें ये प्रचुर संख्यामें उपलब्ध हैं, और उनमें-से हज़ारोंकी संख्यामें जैन अभिलेख हैं। संग्रहके पिछले तीन भागोंमें १०३५ लेखोंका संग्रह हुआ था और अब यह चौथा भाग – ६५४ लेखोंका संकलन – प्रस्तुत है। विद्वान् सम्पादकने प्रस्तावनामें इन लेखोंका काल, प्रदेश, भाषा, प्रयोजन, मुनिसंघ, राजवंश आदि दृष्टियोंसे जो विश्लेषण व अध्ययन प्रस्तुत किया है वह महत्त्वपूर्ण है।

मूल्य : ७.००

● ●

हिन्दी उपन्यास
सिद्धान्त और समीक्षा

डॉ० मक्खनलाल शर्मा



आलोचना क्षेत्रके विद्वानोंको वहुत दिनसे यह कमी खटक रही थी कि हिन्दी-उपन्यासके तात्त्विक और विकासात्मक अध्ययनको प्रस्तुत करनेवाली पुस्तकें काफ़ी पुरानी हो गयी हैं—न केवल मान्यताओंकी दृष्टिसे, वरन् नव-प्रकाशित महत्त्वपूर्ण उपन्यासोंकी समीक्षाके अभावमें भी। कथालोचन क्षेत्रके यशस्वी विद्वान् डॉ० शर्माने नवीनतम मान्यताओं एवं सूचनाओंसे परिपूर्ण इस पुस्तककी रचना कर इस कमीको पूरा करनेका सफल प्रयास किया है।

इस ग्रन्थमें तीन खण्ड और अठारह अध्याय हैं जिनमें : १. उपन्यासकी शास्त्रीय आलोचना, परिभाषा आदि, २. उपन्यासका अन्य विधाओंसे अन्तर, ३. उपन्यासका विषय-वस्तुकी दृष्टिसे तात्त्विक अध्ययन, ४. उपन्यासोंका वर्गीकरण व विश्लेषण, ५. हिन्दी-उपन्यासका क्रमिक विकास, ६. नवीनतम उपन्यासोंका मूल्यांकन। आदि विषयोंपर नये दृष्टिकोणसे निष्पक्ष विवेचना है। शोध-कर्ताओं एवं उपन्यास विषयके जिज्ञासुओंके लिए चाहे विचारक हों या सामान्य पाठक, यह पुस्तक अनिवार्य है।



मूल्य बारह रुपये

प्रभात प्रकाशन

२०५ चावड़ी बाज़ार, दिल्ली

: समसामयिकी :

साम्प्रतिक भारतीय परिवेश और बौद्धिक वंचना

यह शीर्षक आपके भी मनपर चोट दे सकता है—देना चाहिए। आप तिलमिला भी सकते हैं; ज़रूरी है यह भी! महत्त्वका प्रश्न तो यह है कि स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बादके वर्षोंमें इस जलते प्रश्नपर हमने कब कितनी ईमानदारीसे सोचा है? हमने कब अपनेको थाहनेकी इच्छा की? कहना न होगा, इस जलती हुई सच्चाईसे हम बराबर कतराते रहे हैं—जाने-अनजाने। शायद, सोचते तो हम रहे हैं, पर 'अपने-आप' तक ही। इसी १२ दिसम्बरको 'परिमल' (प्रयाग) की एक विशेष गोष्ठीमें (शायद पहली बार!) मिल-बैठकर कुछ बुद्धिजीवियोंने इस विषयपर विचार-विमर्श किया है। सचमुच यह एक नयी शुरूआत—अच्छी और बड़ी शुरूआत है। गोष्ठीमें विचार-विमर्शका प्रेरणा-स्रोत बना डॉ० शिवप्रसाद सिंहका लेख। यहाँ महत्त्वपूर्ण परिचर्चाका सार-संक्षेप प्रस्तुत है. जिसके पीछे अभीष्ट यही है कि बात (अपने यहाँकी चलनके अनुसार) अब दबे नहीं,—बढ़े; और हम अपने दायित्वके प्रति सचमुच ईमारदार हों।



डॉ० शिवप्रसाद सिंह : स्वतन्त्रताके बाद भारतीय 'बौद्धिकों'का इतिहास सिर्फ़ आत्मबलके ह्रासका इतिहास है। स्वतन्त्रताका सही अर्थ हमारे देशने आज तक नहीं समझा। स्वतन्त्रताके बाद विश्वमत और अन्तर्राष्ट्रीयताकी चर्चाएँ नये सिरेसे शुरू हुईं। हमने अपनेको लोकतन्त्र घोषित किया और इस घोषणा मात्रसे आश्वस्त हो गये कि चूँकि हम लोकतन्त्र हैं, इसलिए हमारी प्रगति और तरक़्क़ीके लिए विश्वके सभी समृद्ध लोकतन्त्र स्वभावत: उत्तरदायी हैं। स्वतन्त्रताके बादके भारतीय इतिहासके अध्यायका सिर्फ़ एक ही शीर्षक हो सकता है—'भिक्षाकाल'। इस भिक्षाकालकी सबसे बड़ी याचक-मुद्राका नाम है 'तटस्थता'। मैं सह-अस्तित्व, तटस्थता, धर्म-निरपेक्षता आदिका सिर्फ़ प्रशंसक ही नहीं बल्कि उन्हें जीवित मूल्य मानकर उनके लिए सब-कुछ सहने-भोगनेका संकल्प भी रखता हूँ, किन्तु मैं जिस 'तटस्थता' की बात कर रहा हूँ वह कोई

मूल्य नहीं है। दोनों ही शिविरके देशोंसे अधिकसे अधिक क़र्ज़ पानेकी यह याचक मुद्रा है जो दाताओंके अवरोधों और उत्पीड़नोंसे सन्त्रस्त मनुष्यताको सही समर्थन देनेमें हमेशा कतराती रही है। इसके प्रति मेरे मनमें जुगुप्सा है। यह सही है कि समस्याएँ अनन्त हैं, उनपर सोचने-विचारनेपर निराशा-थकान, कुढ़नके अलावा कुछ हाथ नहीं आता; पर सोचना, सचेत होना ख़ुदमें एक बड़ा निदान है।

पाकिस्तानी लड़ाईके बाद सारे देशकी आत्मासे एक भाव उठा—लाचारी, विवशता, अपमान और शौर्यसे उन्मथित जन-मानसका स्वर—'आत्मनिर्भरता' क्या यह आत्मनिर्भरता बौद्धिक या साहित्यिक क्षेत्रमें भी कोई अर्थ रखती है? यदि आत्मनिर्भरताका अर्थ दूसरोंसे सम्बन्ध-विच्छेद करके अपनी सीमामें सिमट जाना है, तो साहित्यके लिए यह व्यर्थ ही नहीं हानिकर भी होगी। पर यदि इस आत्मनिर्भरताका अर्थ अपने राष्ट्रीय उत्तरदायित्वका सचेत निर्वाह है तो मेरा ख़याल है कि आधुनिक परिवेशमें यह एक विचारणीय बात अवश्य है। आजका नवलेखन जिन अन्तर्राष्ट्रीय मूल्योंकी यानी कुण्ठा, पराजय, आत्म-हत्या, बिखराव, विसंगति, आत्मरति और बीटनिक अराजकता आदिकी अनुवर्तिता कर रहा है वे हमारे आधुनिक परिवेशसे सम्बद्ध सिर्फ़ वहाँ होते हैं जहाँ हमारा बौद्धिक यह मान लेता है कि यह देश और समाज ध्वस्त और विनष्ट होनेके लिए अभिशप्त है। यह एक पराजय है। सच तो यह है कि एक मिथ्या अणु-चिन्तनाका उधार बोझ हमने अपनी आत्मापर लाद लिया है और उसे ही आधुनिक भावबोध कहकर उसकी सुखद मृगमरीचिकामें खोये-खोये पड़े हैं। आजका साहित्य अपनी धरतीसे विमुख है। आधुनिक लेखक अपने निकटतम परिवेशके विषयमें सचेत नहीं है। आधुनिक भावबोधके मिथ्या नारेने हमारे चिन्तनको नाना रूपोंमें कुण्ठित किया है और उसे समाजसे काटकर अलग कर दिया है।

नवलेखनके सम्बन्धमें अतिरेकी धारणाएँ पश्चिमके अराजकतावादियोंके वक्तव्योंका 'भारतीयकरण' मात्र हैं। पश्चिममें ऐसी धारणाएँ स्वयं इस छोरपर पहुँच गयी हैं कि लोगोंको वहाँ सन्देह होने लगा है कि पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति कुछ रोज और भी जी सकेगी क्या? पी० ए० सोरोकिनके अनुसार—'पश्चिममें व्याप्त यह बीमार खोखली संस्कृति यदि शीघ्र नष्ट होकर तर्कमूलक

विचारप्रधान संस्कृतियों [illegible] उत्तरार्द्ध भयानक युद्धों और नरमेधका इतिहास बन जायेगा। यह सर्वाधिक ख़ूनी शताब्दीका सर्वाधिक ख़ूनी संकट है। यह संस्कृति ध्वंसके कगारपर इसलिए है कि अपने विचित्र सीमित क्षेत्रमें भी सृजनकी शक्ति यह खो चुकी है। जिन परिस्थितियोंने राजनीतिमें कॅम्युनिस्टों और तानाशाहोंको जन्म दिया है उन्होंने कलाके क्षेत्रमें 'मूल्यमूढ़' आधुनिकतावादियोंको।'—ऐसी है स्थिति उस सभ्यता और संस्कृतिकी, जिसकी वैचारिक उपलब्धियोंकी अनुवर्तिता करनेको ही हम अपना पुनीत ध्येय माने हुए हैं। स्वतन्त्रताप्राप्तिके बाद अचानक तीन-तीन बार जो हम युद्धके निकट पहुँचे, उसका कारण क्या है? मुझे सिर्फ़ एक कारण दीखता है—वह सर्वत्र व्याप्त असीम कायरता। इसे नवलेखनने कितना बढ़ाया या घटाया—यह भी एक अहम सवाल है। माध्यमकी नवीनता आज उपलब्ध है पर कथ्यकी नवीनता अभी भी अनुपलब्ध है। कायरतासे मुक्ति पानेका अर्थ युद्धमें जाना नहीं है, बल्कि सभी प्रकारके सामाजिक, राजनीतिक, आन्तरिक बाहरी अन्यायोंसे संघर्ष करनेकी आवश्यकता है। कायरता और नपुंसकताकी निराशामय अभिव्यक्तिमें क्या नवीनता हो सकती है।

आज बौद्धिकका एकमात्र कर्त्तव्य यह है कि वह इस महान् किन्तु संकटग्रस्त राष्ट्रके ईमानदार नागरिककी हैसियतसे अपने पास जो कुछ सृजन-शक्ति है उसके माध्यमसे व्यापक सहयोग और परिश्रमका अवदान देते हुए, अपने व्यक्तिगत और समाजके प्रति समूहगत उत्तरदायित्वको निभानेके लिए सचेत रहे। वह अपने व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी रक्षा करते हुए, अपने कार्योंके लिए ख़ुद जवाबदेह बनते हुए, जनताके इजलासमें खड़ा होकर अपने कर्त्तव्य और औचित्यकी साक्षी दे सके।

डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी : आत्मालोचनसे कुछ सोच लेना, कुछ कर लेना 'सेफ़्टी बल्व' की तरह है। पर ख़तरा यही है कि हम इसीसे सन्तुष्ट न हो जायें। हमारे सोचने और आचरणमें वैषम्य है। इसका सूत्र हमारी पूरी परम्परामें है, संस्कृतिमें है—और वह है समन्वय। किन्तु हम समन्वयकी बजाय 'टकराहट'-पर विचार करें तो अधिक अच्छा हो।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' : नक़ल करनेकी रौमें हम अपने समाज, अपनी संस्कृति-

से बहुत दूर हो गये हैं। हम दोहरा जीवन जीते हैं इसीलिए अपने लेखनमें आरोपित सत्य देते हैं।

नरेश मेहता : क्या वास्तवमें भारतीय संस्कृति समन्वयकी संस्कृति है? यह भ्रामक है कि हम सहनशील हैं। यह बात मैं हिन्दी क्षेत्रको केन्द्रमें रखकर ज्यादा कह रहा हूँ। हमारा कोई व्यक्तित्व नहीं है। जगद्गुरुवाला मिथ्या-भाव हमें दे दिया गया है, जो हम नहीं थे। अगर हमारी चिन्तन-पद्धति देशकी चिन्तन-पद्धति बनेगी तो उससे अलग साहित्य नहीं होगा। क्योंकि साहित्यकार समाजपर कभी कोई प्रभाव नहीं डालता, दार्शनिक या राजनेता जरूर डालता है।

डॉ॰ विपिनकुमार अग्रवाल : हिन्दू और मुसलिमके फ़र्क़में सभी संकीर्णता महसूस करते हैं और भारतीय तथा अँगरेज़में नहीं, जब कि मुसलिम और अँगरेज़ दोनों आक्रामक हैं। इसका कारण शायद मुठभेड़ है। मुसलमानकी मुठभेड़का क्षेत्र शायद अधिक विस्तृत है। जिस तरह मुसलमानको हमने सर्वत्र आत्मसात् किया, उसी प्रकार कोई ऐसा तरीक़ा निकालना होगा कि हम अँगरेज़को भी आत्मसात् कर लें और वह हास्यास्पद भी न लगे।

विजयदेवनारायण साही : रास्ता न सूझे तो छटपटाना भी चाहिए। किसी भी चिन्तनको भड़ाँस तक ले जाना चिन्तनको गम्भीरता तक ले जाना नहीं है। जितनी ही तेज़ीसे हम आगेकी ओर परिवर्तित होंगे, अच्छा होगा; नहीं होंगे तो 'आघात' ज़्यादा होगा। हाँ, यह परिवर्तन बौद्धिक दुविधासे नहीं होना चाहिए।

पश्चिम और नक़लचीपनमें हमें अन्तर करना होगा। जो परम्पराओंका नक़लची है वह 'ड्रेन पाइप' के नक़लचीसे ज़्यादा बड़ा नक़लची है। यह सिर्फ़ संयोग है वरना नक़लची दोनों हैं।

जाफ़र रज़ा : मानव सम्पूर्णतया बदल जाये, ऐसा सोचना चिन्तनको ग़लत रास्तेपर ले जाना है।

प्रयागनारायण त्रिपाठी : चिन्तनका संकट बहुत बड़े परिवेशमें है। काँग्रेस-की बहुत बड़ी असफलतामें चिन्तनकी असफलता एक महत्त्वपूर्ण कारण है। चिन्तनसे मेरा आशय केवल पारम्परिक चिन्तनसे नहीं है, इसका अर्थ आर्थिक

चिन्तनसे है, विश्व-चिन्तनसे है, दार्शनिक चिन्तनसे है और सर्जनात्मक चिन्तनसे है।

डॉ० रघुवंश : एक परिवर्तन लाया जाता है और एक घटित होता है। मैं यह मानता हूँ कि हमारी सर्जनात्मक प्रतिभामें हमारा अतीत और पश्चिमका चिन्तन (आधुनिकता) दोनों ही बाधक हैं। इतिहासके भावका प्रयोग एक आधुनिक वस्तु है, पर इतिहासकी प्रक्रियापर अधिकार एक बड़ी चीज़ है। मैं तो यहाँतक कहना चाहूँगा कि अगर मानवता है तो वह सबसे पहले 'मुझसे' शुरू होती है। यह सही है कि स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बादके वर्ष अधिकारके वर्ष हो गये, लेकिन सर्जनात्मक मूल्य नहीं विकसित हो सके। पश्चिमके प्रभावमें मूल्योंके प्रति आसक्ति आज भी है।

लक्ष्मीकान्त वर्मा : जल्दीसे जल्दी आधुनिक बननेकी प्रकृतिने हमें अनुकरण-शील ज़्यादा बना दिया है। जो अपनी अनुभूतिके साथ लिखना चाहता है उसके विपरीत स्थिति नहीं आनी चाहिए। चेतना जब सर्जनात्मक स्तरपर आती है तभी उसका मूल्य होता है।

बालकृष्ण राव : साहित्यकार बौद्धिक होता है — यह अंशत: सही है। साहित्यकार अपने बौद्धिक दायित्वको निभाये, यह आवश्यक है। अनेक बार तात्कालिक घटनासे सम्बद्ध लेखन भी अमर साहित्य हो जाता है। विशेषतया नया साहित्यकार अपने आभिजात्यकी सुरक्षाके लिए डरता है कि कहीं ऐसा कुछ न लिख दें कि हमारा लिखा पत्रकारिता मालूम पड़ने लगे। सच्ची प्रेरणा नियामककी राह नहीं देखती।

बौद्धिक विलास मात्रसे जो सन्तुष्ट रहे हैं वे हमारे लिए वर्ज्य हैं। विषय कोई हो, त्याज्य या वर्ज्य नहीं होता। जो चिन्तनके लिए है निश्चय ही वह सर्जनके लिए भी है। चिन्तनके संस्पर्शसे नीति-निर्धारणमें हमें प्रकाश मिलेगा। आज समन्वयके नामपर जो पाखण्ड व्याप गया है उसे तोड़ना बौद्धिकका कर्त्तव्य है।

उद्देश्यकी भिन्नताको देखते हुए परिवर्तन और नक़लकी बात सोची जानी चाहिए। उद्देश्यके लघु-महान्‌के आधारपर, परिवेशके आधारपर नक़लके प्रति निर्णय लेना होगा। प्रत्येक अनुकरण नक़ल नहीं है। परिवर्तनके लिए तैयार होना एक बात है, परिवर्तनके पीछे दौड़ना एक बात।

शैलेश मटियानी : हममें पराजितकी आत्म-तुष्टि है सामर्थ्यकी कुण्ठाके रूपमें। ज़रूरी है कि हम कायरताको वैचारिक पाखण्डमें न बदल दें, पर ज़रूरी एक बात और है – हमें अपने समाजके प्रति, अपने देशके प्रति, अपनी धरतीके प्रति सही और ईमानदार होना होगा।

डॉ० जगदीश गुप्त : परिवर्तनको आगे बढ़कर स्वीकार कर लेना कांक्ष्य या अभीष्ट है। हम लोगोंका दोहरा दायित्व है – देशके प्रति, समाजके प्रति, मनुष्यके प्रति। आवश्यक है कि हम अपने इस दायित्वका गहराईसे अनुभव करें। हमें अपने सृजनके प्रति ईमानदार होना चाहिए।



प्रथम भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार

चौदहों भारतीय भाषाओंकी सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर प्रतिवर्ष एक लाख रुपये पुरस्कार-योजनाके अन्तर्गत प्रथम पुरस्कार (१९६५) मलयाली कवि जी० शंकर कुरुप को

पत्रिकाके पिछले अंकमें बताया गया था कि प्रथम पुरस्कार सम्बन्धी अन्तिम निर्णयके लिए २९ दिसम्बर १९६५ को दिल्लीमें प्रवर परिषद्की बैठक होगी। इसमें पुरस्कार योग्य सर्वोत्कृष्ट कृतिका अन्तिम रूपसे चुनाव किया जायेगा और फिर परिषद्का निर्णय घोषित भी कर दिया जायेगा।

इस कार्यक्रमके अनुसार २९ दिसम्बर १९६५ को ६, सरदार पटेल मार्ग नयी दिल्लीमें प्रवर परिषद्की बैठक हुई, बैठकमें सर्वसम्मतिसे पुरस्कारके लिए एक कृति चुनी गयी, और उसी दिन साँझको भारतीय ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनने परिषद्का निर्णय विधिवत् घोषित भी कर दिया।

पुरस्कार प्रतिवर्ष देशकी चौदहों भाषाओंकी सर्जनात्मक साहित्यिक कृतियों-में-से सर्वश्रेष्ठपर देय है। प्रथम पुरस्कारके लिए १९२५ से १९५८ के बीच प्रकाशित कृतियाँ विचारणीय थीं। प्रस्तावित कृतियोंमें-से प्रत्येक भाषाकी सर्व-श्रेष्ठ एक-एक कृति चुननेके लिए पहले चौदह भाषा परामर्श-समितियोंकी बैठकें हुईं। जो कृतियाँ यहाँ चुनी गयीं उनपर भाषा-वर्ग समितियों-द्वारा विचार किया गया और सबमें-से सात भाषाओं (हिन्दी, बंगला, मराठी, उर्दू, मलयालम, तेलुगु, कन्नड़) की सात कृतियाँ आगे आयीं।

इन सातका अधिकारी विद्वानों-द्वारा परस्पर तुलनात्मक मूल्यांकन कराया गया। अन्तमें सब समितियोंकी सब रिपोर्टें, समीक्षकों–मूल्यांकनकर्ताओंकी सम्मतियाँ, तथा हिन्दी रूपान्तरकी प्रतियाँ विचार–निर्णयार्थ प्रवर परिषद्के

समक्ष प्रस्तुत कर दी गयीं। विचारार्थ प्रवर परिषद्की यह बैठक डॉ० सम्पूर्णानन्दकी अध्यक्षतामें १९ नवम्बर १९६५ को नयी दिल्लीमें हुई। अन्तिम निर्णयके लिए २९ दिसम्बर १९६५ को प्रवर परिषद्की वहीं फिर बैठक हुई। डॉ० सम्पूर्णानन्द अध्यक्ष थे, भाग लेनेवाले अन्य सदस्य थे। श्री काका साहब कालेलकर, डॉ० आर० आर० दिवाकर, डॉ० नीहार रंजन रे, डॉ० बी० गोपाल रेड्डी, डॉ० कर्णसिंह, श्रीमती रमा जैन, श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन। श्री पी० बी० गजेन्द्रगडकर, डॉ० पी० राघवन्, डॉ० हरेकृष्ण मेहताब भी परिषद्के सदस्य हैं।

परिषद्की इस बैठकके सामने केवल चार कृतियाँ रह गयी थीं। बंगला कवि काज़ी नज़रुल इस्लामकी 'अग्नवीणा', तेलुगु उपन्यासकार विश्वनाथ सत्यनारायणकी 'वेईपादगुलु', कन्नड़ कवि डी० वी गुण्डप्पाकी 'मन्कुटीम्कग्गा' और मलयाली कवि शंकर कुरुप्पुकी 'ओडाकुज़ल'। चारोंमें परिषद्के सदस्योंने सर्वसम्मतिसे मलयाली कवि शंकर कुरुप्पुकी कृति 'ओडाकुज़ल' को ही भारतीय ज्ञानपीठके इस प्रथम पुरस्कारके योग्य ठहराया। कृतिकार और कृतिका विशेष परिचय 'पत्रिका' के अगले अंकमें प्रस्तुत किया जायेगा।



हमारे नवीन प्रकाशन

●● क़लमका मज़दूर : प्रेमचन्द : मदन गोपाल

यह पुस्तक स्वयं लेखकके अनुसार लगभग बीस वर्षोंके परिश्रमका परिणाम है। इसकी तैयारीमें समस्त उपलब्ध सामग्रियोंका उपयोग करनेके अतिरिक्त मुख्य रूपसे प्रेमचन्दकी 'चिट्ठी-पत्री' का सहारा लिया गया है। प्रेमचन्दके जीवन और कृतियोंके रचना-काल एवं प्रकाशन-सम्बन्धी जो बहुत-सी भूलें अभीतक दोहरायी जाती रही हैं, उन्हें भी लेखकने यथासाध्य छान-बीन करके ठीक करनेका प्रयास किया है। कुछ दुर्लभ चित्र पुस्तकके अतिरिक्त आकर्षण हैं। ११.००

●● योग-वियोग : शंकर

इस उपन्यासमें 'शंकर' ने जोड़-घटाव-गुणा-भाग करके छनोदा दक्षिणेश्वर बाबू, कन्हाई बाबू-जैसे अविस्मरणोय चरित्रोंका सजीव रेखाचित्र प्रस्तुत किया है। श्रीमती बोनर तथा संसार-त्यागी अँगरेज़ साधु कृष्णप्राणकी रोचक एवं विडम्बनापूर्ण प्रेम-कथा भी है। शंकरके पूर्ववर्ती सनसनीखेज उपन्यासोंकी तरह ही 'योग-वियोग' भी अनूठी कथा-कृति है। ६.००

●● यही सच है : मधुकर गंगाधर

इसका नायक एक सीधे-सादे प्रश्नके द्वारा अपने अस्तित्वकी सार्थकताकी खोज करता है। एक चतुष्कोण प्रतीक-कथाके माध्यमसे मधुकर गंगाधरने आधुनिक मानवके एक ज्वलन्त अन्तर्द्वन्द्वको प्रस्तुत किया है, और कहा है कि अन्तहीन प्रक्रियाका कोई परिचय व परिभाषा नहीं। ३.००



राजकमल प्रकाशन

८ फ़ैज़ बाज़ार, दिल्ली-६

साइन्स कालेजके सामने, पटना-६

विश्वविद्यालय स्तरीय
निबन्ध तथा समीक्षात्मक साहित्य

• समीक्षात्मक •

कामायनी - चिन्तन—डॉ॰ विमलकुमार जैन	१२.००
महाकवि दिनकर उर्वशी तथा अन्य तियाँ	१५.००
हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य—डॉ॰ ओम्प्रकाश	६.५०
उपन्यासकार प्रेमचन्द—प्रो॰ श्यामसुन्दर घोष	४ ००
ऐतिहासिक उप॰वृन्दावनलाल वर्मा—डॉ रामदरश मिश्र	३.५०
रत्नाकर और उनका काव्य—श्री लल्लनराय	४.००
गद्यलेखिका : महादेवी वर्मा—योगराज थानी	४.००
हिन्दीके आधुनिक-कवि—डॉ॰ रवीन्द्र भ्रमर	६.००
गोस्वामी तुलसीदास—डॉ॰ राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	१.५०
सन्त कबीर— ,, ,,	१.५०

• साहित्यिक निबन्ध •

कला, साहित्य और समीक्षा—डॉ॰ भगीरथ मिश्र	१०.००
मूल्य और मूल्यांकन—डॉ॰ रामरतन भटनागर	७.५०
साहित्य, अनुभूति और विवेचन—डॉ॰ संसारचन्द	६.००
साहित्यका मनोवैज्ञानिक अध्ययन—डॉ॰ देवराज उपाध्याय	६.००
साहित्य, शोध, समीक्षा—डॉ॰ विनयमोहन शर्मा	५.५०
विचार और निष्कर्ष—डॉ॰ वासुदेव	७.५०
आलोचना की ओर—डॉ॰ ओम्प्रकाश	४.००
आलोचनाके द्वार पर— ,, ,,	४.५०
समीक्षाशास्त्र	
शास्त्रीय समीक्षाके सिद्धान्त : दो भाग—डॉ॰गोविन्द त्रिगुणायत	१८.००

भारतीविश्व
कुछ सूत्र कुछ सन्दर्भ

जिनका उद्देश्य मनोरंजन करना
नहीं, तथ्योंकी थाती सौंपना है



• मलयालमका महानिघण्टु

केरल विश्वविद्यालयका मलयालम कोश निर्माण-विभाग मलयालमके एक विस्तृत महानिघण्टुके निर्माणमें लगा हुआ है। यह कार्य भाषा-वैज्ञानिक एवं व्युत्पत्तिपरक प्रणालीपर आधारित एक मलयालम-अँगरेज़ी कोश बनानेकी योजनाके अनुसार हो रहा है। कोशमें साहित्यिक ग्रन्थों और व्यवहारकी भाषामें प्रयुक्त सभी प्रकारके शब्द—वैज्ञानिक एवं पारिभाषिक शब्दावली, प्रादेशिक एवं आंचलिक शब्दावली, प्रचारलुप्त प्रयोग, तथा अन्य भाषाओंसे आये हुए शब्द—इसमें सम्मिलित हैं। साथ ही शब्द-चयनको सम्पूर्ण बनाने तथा शब्दोंके अर्थ-सम्बन्धी विवरणोंमें समग्रता लानेके लिए बड़ी सावधानी बरती गयी है।

इस निघण्टुको रॉयल आक्टेवँ आकारके हज़ार-हज़ार पृष्ठोंवाले छह या सात खण्डोंमें प्रकाशित करनेकी योजना है। पहले खण्डका कार्य लगभग समाप्तप्राय है और आशा की जाती है अगले दो-तीन महीनोंमें यह प्रकाशित होकर सामने आ जायेगा।

कोशके पहले खण्डमें 'अ'से शुरू होनेवाले १५,५०० से अधिक शब्द एक लाखके लगभग सम्बन्धित उद्धरण, उदाहरण तो हैं ही, प्रामाणिक सूचनाएँ भी सँजोयी गयी हैं। भाषा-वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके आधारपर दिये गये विवरणोंके अतिरिक्त तीन हज़ारसे अधिक क्रियाओंके गणविभाजन भी इसमें सम्मिलित हैं। बड़ी विशेषता एक यह कि इसमें संस्कृत शब्दोंकी भी बड़ी संख्या है—कारण कि मलयालम भाषाने संस्कृत शब्दोंको अपनानेमें पूरी उदारता बरती है।

इस निघण्टुके प्रधान सम्पादक हैं श्री शूरनाड़ कुञ्चनपिल्लै, और इसके प्रत्येक

खण्डका मूल्य चालीस रुपये रखा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि यह योजना न केवल मलयालमके लिए वरन् सम्पूर्ण भारतीय भाषाओंके लिए गौरव है।

● संसारकी सबसे छोटी पुस्तक

'ह्याकुनिन इस्शु' नामक जापानी कविता संकलनमें सौ प्रसिद्ध कवियोंकी कविताएँ संग्रहीत हैं। परन्तु ऑफ़सेट मुद्रण प्रणालीका चमत्कार यह कि इस पुस्तकका आकार माचिसकी सींकके मसाले जितना है। खोलनेपर इसके दो पृष्ठोंकी लम्बाई-चौड़ाई साढ़े चार और साढ़े तीन मिलीमीटर है।

उपर्युक्त पुस्तकके प्रकाशनसे पूर्व संसारकी सबसे छोटी पुस्तक होनेका श्रेय 'लार्ड्स प्रेयर्स' नामक जर्मन पुस्तकको था। परन्तु अब यह कीर्तिमान टूट गया है।

● प्रवासिनी

इस समाचारसे यदि हिन्दी-जगत् प्रसन्नताका अनुभव करे तो विस्मय क्या कि लन्दनसे भी हिन्दी त्रैमासिकीका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है : नाम है 'प्रवा-सिनी'। ब्रिटेनसे प्रकाशित यह हिन्दीकी पहली पत्रिका है जिसे वहाँकी हिन्दी प्रचार परिषद्ने स्व० जवाहरलाल नेहरूके जन्म-दिवसपर प्रकाशित किया है। लन्दनमें हिन्दीका छापाखाना नहीं है इस कारण पत्रिकाका मुद्रण 'रोटाप्रिण्ट' प्रणालीसे होता है।

○ अँगरेज़ी पुस्तकोंकी खपत

ब्रिटिश सूचना प्रचार विभागने बड़े गौरवपूर्ण ढंगसे यह विज्ञप्ति प्रचारित की है कि भारतमें इस समय ब्रिटिश पुस्तकोंकी माँग और भी तेज़ीसे बढ़ रही है। पिछले वर्षके आँकड़े प्रस्तुत करते हुए विभागने बताया है कि केवल भारतमें १३१·३२ करोड़ रुपयेकी पुस्तकें खरीदी गयी थीं। विभागने दावा तो यह भी किया है कि न केवल भारत बल्कि सभी विकासोन्मुख देशोंमें अँगरेज़ी पुस्तकोंके प्रति उत्कण्ठा एवं जिज्ञासा दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। अलावा इसके ब्रिटेनमें प्रकाशित शिक्षा-विषयक पुस्तकोंकी माँग भी तेज़ीपर है। विशेषकर भारत, आस्ट्रेलिया और पश्चिमी अफ्रीकामें। ब्रिटिश सरकारने इतनी कृपा और की है कि उसने हमारे देशके लिए अल्पमोली (!) पाठ्य-पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं।

तमाम व्यावसायिक दृष्टिकोणोंसे दूर रहकर भी यदि हम इस प्रसंगपर विचार करें तो भी क्या यह हमारी राष्ट्रीय प्रतिष्ठाके प्रतिकूल नहीं है। और ऐसी स्थितिमें जब कि हम अपने देशकी भाषाओंके विकासकी बात सोच रहे हैं।

● लाला भगवानदीन-ग्रन्थावली

हिन्दी-साहित्यके उन्नायकों और उद्धारकोंमें स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी 'दीन' का नाम हिन्दी-संसारमें बड़े आदरके साथ स्मरण किया जाता है। साहित्यके विविध क्षेत्रोंमें लालाजीने अदम्य उत्साहके साथ जो कार्य किया है वह साहित्य-सेवियोंके लिए प्रेरणास्रोत रहा है। लालाजीकी साहित्य-सेवाका समय प्रधानतः सन् १९०१ से १९३० तक रहा। उनके द्वारा काशीमें स्थापित हिन्दी-साहित्य-विद्यालय (अब श्री भगवानदीन साहित्य विद्यालय) ने उनकी समस्त कृतियोंका संग्रह तीन भागों (पद्य खण्ड, गद्य खण्ड और आलोचना खण्ड) में प्रकाशित करनेकी योजना बनायी है। इस सम्बन्धमें हिन्दी-साहित्यके प्रेमियोंसे प्रार्थना है कि उक्त ग्रन्थावलीसे सम्बन्धित लालाजीकी कविताएँ, लेख, पत्र आदि जो भी आवश्यक सामग्री हो अथवा जानकारी हो इस पतेपर भेजनेकी कृपा करें : संयोजक ग्रन्थ प्रकाशन समिति, श्रीभगवानदीन साहित्य विद्यालय, वाराणसी।

● कविवर पन्तका अभिनन्दन

कविवर श्री सुमित्रानन्दन पन्तको नेहरू-पुरस्कारसे अलंकृत किये जानेके उपलक्ष्यमें श्री भगवतीचरण वर्माकी अध्यक्षतामें वोरा ऐण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेडकी ओरसे इलाहाबादमें अभिनन्दन-गोष्ठीका आयोजन ९ दिसम्बरको हुआ। इसमें श्रीमती महादेवी वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', इलाचन्द्र जोशी, डॉ० रामकुमार वर्मा, एवं प्रोफ़ेसर एस० सी० देबने पन्तजीकी काव्य-साधनाकी चर्चा की। इस अवसरपर सर्वश्री भैरवप्रसाद गुप्त, श्री रामनाथ सुमन, ओंकार शरद, बलवन्तसिंह, मार्कण्डेय, अमरकान्त गिरिराज किशोर, दूधनाथ सिंह, सुरेन्द्रपाल आदि अनेक लेखक उपस्थित थे। कम्पनीके व्यवस्थापक श्री काशीप्रसाद जैनने अतिथियोंको हार्दिक धन्यवादके साथ गोष्ठीका समापन किया।

● वाचाल टंकणयन्त्र

हिज्जे और उच्चारण सिखानेका काम भी अब टाइपराइटरसे ही लिया

जाया करेगा । अमेरिकाके पोटसबर्ग विश्वविद्यालयमें [illegible]पर परीक्षण हो रहा है । की-बोर्डके किसी अक्षरपर उँगली धरते ही उस अक्षरका शुद्ध उच्चारण सुनाई देता है । शब्द पूरा हो जानेपर पूरा शब्द उच्चारित होता है ।

● एक शुभ संकल्प

पंजाब सरकारने साहित्य, संगीत, नाटक और ललित कलाओंको प्रोत्साहन देनेके लिए एक समिति नियुक्त की है । 'पंजाब कला परिषद्' के नामसे संयोजित यह समिति पंजाब कला अकादेमीका स्थान लेगी । राज्यके मुख्य मन्त्री इस परिषद्के अध्यक्ष होंगे और उपाध्यक्ष वित्तमन्त्री तथा सांस्कृतिक विभागके मन्त्री । साहित्य अकादेमी तथा संगीत नाटक अकादेमी और पंजाब, पंजाबी एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालयोंके उपकुलपति अन्य सरकारी-ग़ैर सरकारी सदस्य होंगे । फ़िलहाल इस शुभ संकल्पके प्रति आश्वस्त होते हुए हमारी शुभकामनाएँ !

● एक सूचना

फ़रवरी १९६६ के अन्तमें नेशनल बुक ट्रस्टकी ओरसे हिन्दी पुस्तकोंकी एक प्रदर्शनीका आयोजन किया जा रहा है । पूरे सप्ताह-भर आयोजित इस प्रदर्शनीमें १९६४-६५ के प्रकाशित साहित्यको प्रदर्शित किया जायेगा । इसी अवधिमें एक महत्त्वपूर्ण परिचर्चा भी आयोजित की जानेकी सम्भावना है । प्रदर्शनीके नियम तथा सम्बन्धित अन्य सूचनाएँ सचिव, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑव इण्डिया, २३ निजामुद्दीन ईस्ट, नयी दिल्ली—१३ से प्राप्त किये जा सकते हैं ।

● एक और सूचना

युनेस्कोकी सहायतासे अखिल भारतीय प्रकाशक संघ २३ जनवरीसे ३१ जनवरी १९६६ तक पुस्तक-विक्रेताओंके लिए परीक्षण पाठ्य-शिविर (रिफ्रेशर कोर्स ऑव बुकसेलर्स) आयोजित कर रहा है । इस शिविरमें पुस्तक-विक्रय-सम्बन्धी सभी समस्याओंपर सैद्धान्तिक विचार-विमर्श तो होगा ही, रचनात्मक परीक्षणोंका भी आयोजन है । शिविरमें भाग लेनेवाले इच्छुक पुस्तक-विक्रेता अपना आवेदन-पत्र ३१ दिसम्बर ६५ तक अवश्य भेज दें । शिविरका शुल्क २५.०० निर्धारित है और भाग लेनेवालेको मार्ग-व्यय, योजना तथा आवासका प्रबन्ध स्वयं करना होगा । विस्तृत जानकारीके लिए अ० भा० हि० प्रकाशक संघके कार्यालयसे पत्र-व्यवहार करें ।



पत्र-मंच

● ●

'ज्ञानपीठ पत्रिका' का दिसम्बर '६५ का अंक। नव्यतम सामग्रीका ठोस प्रामाणिक विवेचन, श्रेष्ठतम आलोचनाएँ और भव्य योजनाएँ सहज ही किसीको भी वशंवद बना लेती हैं।

हाँ, एक निवेदन है, कुछ समीक्षाएँ मूल्यांकन न होकर प्रशंसाएँ मात्र हैं। लगता है कि समीक्षक शुद्ध प्रशंसक हैं। आशा है इस दोषसे पत्रिकाके उज्ज्वल भविष्यको आप बचायेंगे।

'अर्थवान् शब्दकी समस्या' : 'अज्ञेय', शोलोखोवसे सम्बद्ध तीनों लेख और 'चारु चन्द्र-लेख' पर संकलित समीक्षा लेख मुझे बहुत अच्छे लगे। 'पत्रिका'की इस उच्चस्तरीयताके लिए आपको लाख-लाख बधाई!

—डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन, केरल

'ज्ञानपीठ पत्रिका' देख तो शुरूसे ही रहा हूँ। अपने प्रकारकी अनूठी सामग्री यह बराबर देती रही है—विषय-क्षेत्र ही इसका अन्य पत्रिकाओंसे भिन्न है। किन्तु इधर चार-पाँच अंकोंसे तो यह इतनी उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हो गयी है कि अब इसका अक्षर-अक्षर पढ़ता हूँ। इतनी उच्चस्तरीय और मौलिक सामग्री हिन्दीकी अन्य पत्र-पत्रिकाओंमें बहुत कम देखनेको मिलती है।

दिसम्बर अंकमें शोलोखोवपर आयी सामग्री निस्सन्देह बहुत उपयोगी है। 'प्रकाशित समीक्षाएँ : शेष स्वर' स्तम्भ बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया है, मेरा निवेदन है कि इसे बराबर चालू रखें।

एक शिकायत है श्री विश्वम्भर 'मानव' से और आपसे भी। क्षमा करें श्री 'मानव'जी, मैं निःसंकोच यह कहना चाहता हूँ कि 'जुलूस'की समीक्षा करते हुए उन्होंने समीक्षकके दायित्व और उसकी ईमानदारीपर ध्यान नहीं दिया। हद कर दी उन्होंने 'जुलूस' की प्रशंसा करनेकी। 'रेणु' के इस नये उपन्यासको मैंने भी पढ़ा है। 'पत्रिका' के ही अक्टूबर '६५ के अंकमें प्रकाशित 'जुलूस' पर श्री गिरिराज किशोरकी समीक्षासे मैं सहमत हूँ। आपसे अनुरोध है कि भविष्यमें ऐसी एकांगी समीक्षाओंसे कृपया 'पत्रिका' को बचायें।

● ● —मदनमोहन वर्मा, मुज़फ़्फ़रपुर

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका तथा भारतीय भाषाओंकी सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर प्रतिवर्ष एक लाख रुपये पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका विशिष्ट संस्था



भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्यका निर्माण

श्रेष्ठ
उपयोगी
संग्रहणीय
प्रकाशन

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

प्रधान कार्यालय
९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

विक्रय केन्द्र
३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला

राष्ट्रभारती

प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी	सं०—दिनकर सोनवलकर	४.००
प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी दो	नानक सिंह	४.००
प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी दो	प्रो० ना० सी० फड़के	४.५०
प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी	कर्तारसिंह दुग्गल	३.५०
प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी	सं०—अनिल कुमार	४.००
प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु	नार्ल वेंकटेश्वर राव	३.५०
प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला	'परशुराम'	३.००
प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी	व्यंकटेश दि० माडगूलकर	४.००

उपन्यास

अठारह सूरज के पौधे	रमेश बक्षी	३.००
सूरजका सातवाँ घोड़ा [च० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	२.००
जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	३.५०
पीले गुलाबकी आत्मा [द्वि० सं०]	विश्वम्भर मानव	४.००
गुनाहोंका देवता [आठवाँ सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	५.००
रक्त-राग [द्वि० सं०]	देवेशदास आइ०सी०एस्०	३.००
तीसरा नेत्र [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	२.५०
जो	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सुनें !!	'भिक्खु'	२.२५
पलासीका युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	३.५०
अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय	३.००
शतरंजके मोहरे [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अमृतलाल नागर	६.००
शह और मात	राजेन्द्र यादव	४.००
राजसी	देवेशदास आइ०सी०एस्०	२.५०
संस्कारोंकी राह [पुरस्कृत]	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०

ग्यारह सपनोंका देश	सं०—लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००
मुक्तिदूत [द्वि० सं०]	वीरेन्द्रकुमार जैन	५.००

● कहानी

खोयी हुई दिशाएँ [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	२.५०
दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	३.००
झाड़ी	श्रीकान्त वर्मा	३.००
मेज़पर टिकी हुई कुहनियाँ	रमेश बक्षी	३.५०
कालके पंख [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
खेल खिलौने [द्वि० सं०]	राजेन्द्र यादव	२.००
बोस्ताँ [द्वि० सं०]	शेख सादी	२.५०
जय-दोल [तृ० सं०]	अज्ञेय	३.००
ज़िन्दगी और गुलाबके फूल	उषा प्रियंवदा	२.५०
अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
कर्मनाशाकी हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.००
सूने अँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.००
प्यारके बन्धन	रावी	३.२५
मोतियोंवाले [पुरस्कृत]	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
हरियाणा लोकमञ्चकी कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२.५०
मेरे कथागुरुका कहना है : १–२	रावी	६.००
पहला कहानीकार [पुरस्कृत]	रावी	२.५०
संघर्षके बाद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विष्णु प्रभाकर	३.००
नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
अतीतके कम्पन [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
आकाशके तारे : धरतीके फूल [तृ०सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	२.००
नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
कुछ मोती कुछ सीप [द्वि०सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
जिन खोजा तिन पाइयाँ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
गहरे पानी पैठ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००

ऑस्कर वाइल्डकी कहानियाँ	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.००

• कविता

इतिहास-पुरुष	डॉ० देवराज	३.५०
देशान्तर [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	१२.००
अन्धा चाँद	मुनि रूपचन्द	३.००
चाँदका मुँह टेढ़ा है [द्वि० सं०]	मुक्तिबोध	८.००
आत्मजयी	कुँवरनारायण	३.५०
कनुप्रिया [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.००
हम विषपायी जनमके [द्वि० सं०]	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१६.००
वेणु लो गूँजे धरा [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन	३.००
संक्रान्त	डॉ० कैलाश वाजपेयी	३.००
हिम-विद्ध	डॉ० जगदीश गुप्त	३.००
बीजुरी काजल आँज रही	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	३.००
रत्नावली	हरिप्रसाद 'हरि'	२.००
वाणी [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
सौवर्ण [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	३.५०
आँगनके पार द्वार [अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत]	अज्ञेय	३.००
वीणापाणिके कम्पाउण्डमें	केशवचन्द्र वर्मा	३.००
रूपाम्बरा	सं०—अज्ञेय	१२.००
अनुक्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
तीसरा सप्तक [द्वि० सं०]	सं०—अज्ञेय	५.००
अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	४.००
सात गीत-वर्ष [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.५०
लेखनी-बेला	वीरेन्द्र मिश्र	३.००
आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.००
पञ्च-प्रदीप	शान्ति मेहरोत्रा	२.००
मेरे बापू	तन्मय बुखारिया	२.५०

धूपके धान [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.००
वर्द्धमान [महाकाव्य पुरस्कृत]	अनूप शर्मा	६.००

● शाइरी

गंगोजमन	'नज़ीर' बनारसी	३.००
शाइरीके नये मोड़ : १–५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१५.००
नग़मए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
शाइरीके नये दौर : १–५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१५.००
शेर-ओ-सुख़न : १–५ [द्वि०सं०पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२०.००
शेर-ओ-शाइरी [द्वि०सं०पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
ग़ालिब	रामनाथ 'सुमन'	८.००
मीर	रामनाथ 'सुमन'	६.००

● नाटक

जनम क़ैद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	२.५०
प्रेत	इब्सेन, अनु०नेमिचन्द्र जैन	२.२५
बारह एकांकी [द्वि० सं०]	विष्णु प्रभाकर	४.००
घाटियाँ गूँजती हैं [तृ० सं०]	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	२.५०
नाटक बहुरूपी	डॉ०लक्ष्मीनारायणलाल	३.५०
आदमीका ज़हर	लक्ष्मीकान्त वर्मा	३.००
रजत रश्मि [द्वि० सं० पुरस्कृत]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ	परिपूर्णानन्द वर्मा	४.००
सुन्दर रस [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	१.५०
नाटक बहुरंगी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	४.५०
कहानी कैसे बनी ?	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
पचपनका फेर [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विमला लूथरा	३.००
तरकशके तीर	श्रीकृष्ण	३.००
और खाई बढ़ती गयी [पुरस्कृत]	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०
चेखॅवके तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ०भगवतशरण उपा०	३.५०

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	२.००
भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०

● विधा-विविधा

खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति मेहरोत्रा	४.५०
अंकित होने दो	अजित कुमार	४.००
काठकी घण्टियाँ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	७.००
सीढ़ियोंपर धूपमें	रघुवीर सहाय	४.००
पत्थरका लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	३.००

● रुचिर कलात्मक

शैशवांकन		१२.००
परिणय गीतिका	सं०—रमा जैन, कुन्था जैन	५.००

● ललित-निबन्धादि

कुछ निबन्ध	अक्षयकुमार जैन	२.००
क्षण बोले कण मुसकाये [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
चिन्तककी लाचारी	माखनलाल चतुर्वेदी	४.००
एक साहित्यिककी डायरी [द्वि. सं. परिवर्द्धित]	गजानन माधव मुक्तिबोध	२.५०
अमीर इरादे ग़रीब इरादे [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	२.००
हम सब और वह	दयानन्द वर्मा	२.००
बातें, जिनमें सुगन्ध फूलोंकी	अहमद सलीम	३.००
महके आँगन चहके द्वार	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
शिखरोंका सेतु	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.५०
बाजे पायलियाके घुँघरू [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
फिर बैतलवा डालपर	विवेकी राय	३.५०
आँगनका पंछी और बनजारा मन	डॉ० विद्यानिवास मिश्र	३.००
नये रंग नये ढंग	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.००
बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०
काग़ज़की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.५०
सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००

वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२.५०
ठूँठा आम	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.००
हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान [द्वि.सं.]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	१.००
ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१.००
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२.५०
माटी हो गयी सोना [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	२.००
ज़िन्दगी मुसकरायी [तृ० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	४.००

● यात्रा-विवरण

चीड़ोंपर चाँदनी	निर्मल वर्मा	३.००
एक बूँद सहसा उछली	अज्ञेय	७.००
पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३.००
सागरकी लहरोंपर	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
हरी घाटी	डॉ० रघुवंश	४.५०

● संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी

दीप जले शंख बजे [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	३.००
समयके पाँव [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
रेखाचित्र [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००
पराड़करजी और पत्रकारिता [पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	५.५०
आत्मनेपद	अज्ञेय	४.००
माखनलाल चतुर्वेदी	'बरुआ'	६.००
द्विवेदी पत्रावली	बैजनाथसिंह 'विनोद'	२.५०
जैन-जागरणके अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
संस्मरण [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
हमारे आराध्य [पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००

● आलोचना, अनुसन्धान, रचना-शिल्प

घरेलू इलाज	वैद्यरत्न च० गो० ठक्कुर	२.००
विवेकके रंग	सं०-डॉ०देवीशंकर अवस्थी	७.००
हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि	डॉ० प्रेमसागर जैन	१२.००

भाषा और संवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.५०
हिन्दी गीतिनाट्य	कृष्ण सिंहल	४.००
साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य	डॉ० रघुवंश	५.००
जैन भक्ति-काव्यकी पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमसागर जैन	६.००
रेडियो वार्ता-शिल्प	सिद्धनाथकुमार	२.००
रेडियो नाट्य-शिल्प [द्वि० सं०]	सिद्धनाथकुमार	३.००
ध्वनि और संगीत [द्वि० सं०]	ललितकिशोर सिंह	४.५०
भारतीय ज्योतिष [च० सं०]	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६.००
प्राचीन भारतके प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०
संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००
संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन [द्वि.सं.]	डॉ० भोलाशंकर व्यास	५.००
हिन्दी नवलेखन	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.००
मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
शरत्के नारी-पात्र	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.५०
हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : १–२	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	५.००

● इतिहास-राजनीति

भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०]	डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१०.००
भारतीय संस्कृतिका विकास : वैदिक धारा	डॉ० मंगलदेव शास्त्री	७.००
समाजवाद	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५.००
कालिदासका भारत : भाग १ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००
कालिदासका भारत : भाग २ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
चौलुक्य कुमारपाल [द्वि०सं० पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.५०
एशियाकी राजनीति	परदेशी	६.००
इतिहास साक्षी है	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
खोजकी पगडण्डियाँ [द्वि० सं० पुरस्कृत]	मुनि कान्तिसागर	४.००
खण्डहरोंका वैभव [द्वि० सं०]	मुनि कान्तिसागर	६.००

• दार्शनिक-आध्यात्मिक

तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो	मुनि नथमल	२.००
क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?	आचार्य तुलसी	२.००
अध्यात्म-पदावली [तृ० सं०]	डॉ० राजकुमार जैन	४.५०
दर्शन अनुचिन्तन	गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	३.००
तान्त्रिक साधना	माधव पुण्डलीक पण्डित	१.५०
भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२.००
वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६.००

• सूक्तियाँ

भाव और अनुभाव [द्वि० सं०]	मुनि नथमल	२.००
ज्ञानगंगा : भाग १ [द्वि०सं०]	नारायणप्रसाद जैन	६.००
ज्ञानगंगा : भाग २	नारायणप्रसाद जैन	६.००
सन्त-विनोद	नारायणप्रसाद जैन	२.००
भारतकी सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
कालिदासके सुभाषित	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००

• हास्य-व्यंग्य

बक रहा हूँ जुनून में	प्रकाश पण्डित	३.००
सिकन्दरनामा	सलमा सिद्दीक़ी	२.००
आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य [द्वि० सं०]	सं० – केशवचन्द्र वर्मा	४.००
तेलकी पकौड़ियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० प्रभाकर माचवे	२.००
जैसे उनके दिन फिरे [द्वि० सं०]	हरिशंकर परसाई	२.५०
काग़ज़के फूल शब्द : भारतभूषण अग्रवाल,	चित्र : प्रभाकर माचवे	३.००
चाय पार्टियाँ	सन्तोषनारायण नौटियाल	२.००
हास्य मन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	६.००
मुर्ग़-छाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	२.००
अंगदका पाँव	श्रीलाल शुक्ल	२.५०

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला

तत्त्वज्ञान और सिद्धान्तशास्त्र

समयसार [प्राकृत-अँगरेज़ी]
मूल : आचार्य कुन्दकुन्द; सं०-अनु० : प्रो० ए० चक्रवर्ती ८.००

तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग १–२
मूल : भट्ट अकलंक; सम्पादन : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य २४.००

सर्वार्थसिद्धि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य पूज्यपाद; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री १२.००

पंचसंग्रह [प्राकृत-हिन्दी]
संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री १५.००

जैन धर्मामृत [संस्कृत-हिन्दी]
संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री ३.००

जैन न्याय और कर्मग्रन्थ

कर्मप्रकृति [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य नेमिचन्द्र, सम्पादन : पं० हीरालाल शास्त्री ६.००

सत्यशासन-परीक्षा [संस्कृत]
मूल : आचार्य विद्यानन्दि; सम्पादन : गोकुलचन्द्र जैन ५.००

सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग १–२
मूल : भट्ट अकलंक और अनन्तवीर्य; सम्पादन : डॉ० महेन्द्रकुमार ३०.००

न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग १–२
मूल : भट्ट अकलंक और वादिराज सूरि; सं० : डॉ० महेन्द्रकुमार — ३०.००

महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग २ से ७
मूल : भगवन्त भूतबलि; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री — ६६.००

आचारशास्त्र, पूजा और व्रत विधान

उपासकाध्ययन [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : सोमदेव सूरि, सं०-अनु० : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री — १२.००

वसुनन्दि श्रावकाचार [प्राकृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य वसुनन्दि; सं०-अनु० : पं० हीरालाल शास्त्री — ५.००

ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि [संकलन]
संकलन-सम्पादन : डॉ० आ.ने. उपाध्ये व फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री — ४.००

व्रततिथिनिर्णय [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य — ३.००

मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन [हिन्दी]
लेखक : पं० नेमिचन्द्र शास्त्री — २.००

व्याकरण, छन्दशास्त्र और कोश

जैनेन्द्र महावृत्ति [संस्कृत]
मूल : आचार्य अभयनन्दि; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी — १५.००

सभाष्य रत्नमञ्जूषा [संस्कृत]
मूल : अज्ञात; सम्पादन : श्री हरि दामोदर वेलणकर — २.००

नाममाला सभाष्य [संस्कृत]
मूल : कवि धनञ्जय–अमरकीर्ति; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी — ३.५०

पुराण साहित्य

हरिवंशपुराण [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य — १६.००

आदिपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १–२
मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य २०.००

उत्तरपुराण [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य गुणभद्र; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १०.००

पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १–३
मूल : आचार्य रविषेण; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ३०.००

पुराणसार-संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १–२
मूल : आचार्य दामनन्दि; सं०-अनु० : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी ४.००

चरित व काव्य-ग्रन्थ

करकण्डुचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]
मूल ; कनकामर, सं०-अनु० : डॉ० हीरालाल जैन १०.००

भोजचरित्र [संस्कृत]
मूल : राजवल्लभ, सम्पा० : डॉ० छावड़ा, शंकरनारायणन् ८.००

मयणपराजयचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]
मूल : कवि हरिदेव; सम्पादन और अनुवाद : डॉ० हीरालाल जैन ८.००

मदनपराजय [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : नागदेव; सं०-अनु० : डॉ० राजकुमार जैन साहित्याचार्य ६.००

पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग १–३
मूल : कवि स्वयम्भू; सं०-अनु० : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन ९.००

जीवन्धरचम्पू [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : कवि हरिचन्द्र
सम्पादन, अनुवाद और टीका : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ८.००

जातकट्ठकथा [पाली]
सम्पादन : भिक्षु धर्मरक्षित ९.००

धर्मशर्माभ्युदय [हिन्दी]
अनुवादक : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ३.००

ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र

भद्रबाहु संहिता [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य भद्रबाहु; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य — ८.००

केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य — ४.००

करलक्खण [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी — ०.७५

विविध

वर्ण, जाति और धर्म
लेखक : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री — ३.००

जिनसहस्रनाम [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री — ४.००

थिरुकुरल [तमिल]
सम्पादन : ए० चक्रवर्ती — ५.००

आधुनिक जैन कवि [हिन्दी]
संकलन-सम्पादन : श्रीमती रमा जैन — ३.७५

कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची
संकलन-सम्पादन : पं० के० भुजबली शास्त्री — १३.००

माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला

पुराण

महापुराण [अपभ्रंश] आदिपुराण : भाग १
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — १०.००

महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग २
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — १०.००

महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग ३
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — ६.००

पद्मपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

पद्मपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

पद्मपुराण [संस्कृत] भाग ३
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

शिलालेख

जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
सम्पादन : पं० श्री हीरालाल जैन — २.००

जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — ८.००

जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — १०.००

जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ४
सम्पादन : डॉ० जोहरापुरकर — ७.००

चरित, काव्य और नाटक

वरांगचरित [संस्कृत] — ३.००
मूल : श्री जटासिंहनन्दि; सम्पादन : डॉ० आदिनाथ उपाध्ये

जम्बूस्वामीचरित [संस्कृत] — १.५०
मूल : पं० राजमल्ल; सम्पादन : श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री

प्रद्युम्नचरित [संस्कृत] — .५०
मूल : श्री महासेन; सम्पादन : पं० मनोहरलाल, रामप्रसाद शास्त्री

रामायण [अपभ्रंश] — २.५०
मूल : महाकवि पुष्पदन्त

पुरुदेवचम्पू [संस्कृत] — .७५
मूल : श्रीमदर्हद्दास; सम्पादन : श्री जिनदास शास्त्री

अंजनापवनंजय [नाटक] — ३.००
मूल : श्री हस्तिमल्ल : सम्पादन–वासुदेव पटवर्धन

जैन-न्याय

न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग १ — ८.००
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग २ — ८.५०
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

प्रमाणप्रमेयकलिका [संस्कृत] — १.५०
मूल : श्री नरेन्द्रसेन; सम्पादन : पं० दरबारीलाल कोठिया

सिद्धान्त, आचार और नीतिशास्त्र

सिद्धान्तसारादि [प्राकृत-संस्कृत] — १.५०
मूल : श्री जिनेन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी

भावसंग्रहादि [प्राकृत-संस्कृत] — २.२५
मूल : श्री देवसेनसूरि; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी

पञ्चसंग्रह [संस्कृत] — .८१
मूल : श्री अमितगति सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल

त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र [संस्कृत, मराठी अनुवाद]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : मोतीलाल .५०

स्याद्वादसिद्धि [संस्कृत, हिन्दी-सारांश]
मूल : श्री वादीभसिंहसूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल १.५०

रत्नकरण्डश्रावकाचार [मूल, संस्कृत टीका]
मूल : श्री स्वामी समन्तभद्र; टीका : श्री प्रभाचन्द्राचार्य २.००

लाटी संहिता [संस्कृत]
मूल : श्री राजमल्ल; सम्पादन : पं० श्री दरबारीलाल .५०

नीतिवाक्यामृत (शेषांश) [संस्कृत टीका]
मूल : सोमदेवसूरि; टीका : अज्ञात .२५

आगामी प्रकाशन

● ●

साहित्यिक

* **तार-सप्तक** : सं० अज्ञेय (कविता)
* **हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थ** : कृष्णाचार्य (शोध)
* **अपभ्रंश भाषा और साहित्य** : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन (शोध)
* **सिंहली कहानियाँ** : सं०—भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा एस्० मेधंकर (कहानी)
* **अस्तंगता** : कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु' (उपन्यास)
* **दूसरा सप्तक** : सं० अज्ञेय (कविता)
* **शहर अब भी सम्भावना है** : अशोक वाजपेयी (कविता)
* **संग-तराश** : शिवचन्द्र शर्मा (कहानी)

■



'नेहरू पुरस्कार' द्वारा भारत के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में सम्मानित

श्री सुमित्रानंदन पंत का अमर साहित्य

काव्य

ग्राम्या	४.००
स्वर्ण-किरण	६.००
उत्तरा	६.००
मधु-ज्वाल	६.००
युग-पथ	६.००
वीणा-ग्रन्थि	४.००
युगान्त	१.५०

अन्य

रजत शिखर (काव्य नाटक)	६.००
पाँच कहानियाँ (कहानियाँ)	१.५०
ज्योत्स्ना (नाटक)	२.५०
ग्रन्थि (खण्ड काव्य)	.७५
छायावाद: पुनर्मूल्यांकन (आलोचना)	६.५०

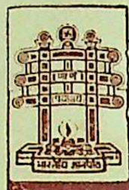
पूरे सेट के आर्डर पर कमीशन की विशेष सुविधा

अब उक्त ग्रन्थों के प्रकाशक हैं

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

प्रकाशक एवं हिन्दी पुस्तकों के भारत भर में सब से बड़े विक्रेता



नयी कविताकी दो उपलब्धियाँ

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

• • हिम-विद्ध

जगदीश गुप्त

हिम-देशके सम्पर्कने कविके अभ्यन्तरकी रिक्तताको जिस कोम[...] समृद्धिसे भर दिया उसीका संग्रहन 'हिम-विद्ध' की कविताएँ कर[...] विषय सूक्ष्म और चित्रात्मक होते हुए भी ये सब अत्यन्त सरल [...] तथा अपनेमें रमा लेनेवाली हैं। स्वयं कविके कलात्मक रेख[...] युक्त संग्रह। मूल[...]

• • आत्मजयी

कुँवर नारायण

'कठोपनिषद्' में नचिकेताका आख्यान आता है। कुँवरनाराय[...] माध्यम भारतीय दर्शनकी एक विशिष्ट उपलब्धिको स्पष्ट [...] 'आत्मजयी' मूल प्रसंगके दार्शनिक पक्षकी ऊहापोह नहीं है, न[...] उसे दिव्य कथाके रूपमें ग्रहण किया गया है। 'आत्मजयी' [...] मुख्यतः नचिकेताकी मानवीय परिस्थितिको ही दृष्टिमें रखा है[...] मूल[...]

सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं से प्राप्य

भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशि[त] सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी से मुद्रित

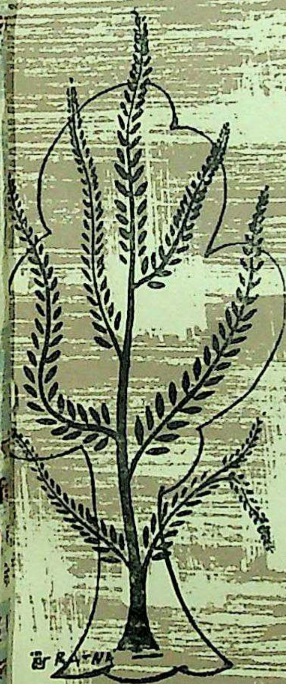
ज्ञानपीठ पत्रिका

फरवरी १९६६

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित
लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन
दिशा-प्रवृत्ति और उपलब्धि-परिचायिनी
मासिकी

● ● ●

दो नये प्रकाशन



○ मुरदा सराय

शिवप्रसाद सिंहकी बारह चुनी हुई नयी कहानिओंका संग्रह। शिल्प और कथ्य दोनोंमें ये कहानियाँ अप्रतिम हैं, और प्रभावपूर्ण भी। ४.००

○ कुछ निबन्ध

अक्षयकुमार जैनके लघु-ललित निबन्धोंका संग्रह: जिनका उद्देश्य मनोरंजन देना ही नहीं विचारोंके आलोक प्रस्तुत करना भी है। २.५०



साहित्यिक विकास-उन्नयन
सांस्कृतिक अनुसन्धान-प्रकाशन
राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी
साधिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

[स्थापित सन् १९४४]

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

नये भारतके दिशा-नायक हमारे प्रधानमन्त्री श्री लाल-बहादुर शास्त्रीके स्वर्गवासका समाचार सुन भारतीय ज्ञानपीठसे सम्बन्धित हम सब शोक-विह्वल हैं। भारतीय ज्ञानपीठको शास्त्रीजीका स्नेह हमेशा मिलता रहा है और सभी साहित्यकारोंके प्रति उनके मनमें सम्मान और समादरकी भावना रही है। ऐसा लग रहा है कि साहित्यपर-से आशीर्वादका हाथ उठ गया हो। दिवंगत आत्माके प्रति हमारी विनत कामना है कि उन्हें परमशान्ति तथा शास्त्रीजीके परिवार-को इस दुःखको धैर्यके साथ उठा पानेको बल मिले।

ज्ञानपीठ पत्रिका

वर्ष चार : अंक सात

फ़रवरी १९६६

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

सम्पादक

लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जगदीश

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

मूल्य : छह रुपये वार्षिक, पचपन पैसे प्रति, द्विवार्षिक : ग्यारह रुपये

समाज-शिक्षा विभाग, राजस्थान-द्वारा उच्च, उच्चतर विद्यालय तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंके लिए प्रस्वीकृत

उद्घोष

चौदह भाषा एक पुरस्कार

उत्कृष्ट भारतीय कृति-साहित्यपर प्रतिवर्ष एक
विशिष्ट पुरस्कारका विशेष उप-
योगिता महत्त्व

जैनेन्द्र कुमार

हमारी भाषाएँ चौदह हों लेकिन साहित्य एक है। भाषाओंके भेदसे साहित्यमें भेद नहीं पड़ता। कारण, साहित्यका सत्य मनुष्य है और साहित्यमें भावकी ही प्रधानता है। आत्माकी ओरसे भारतीय साहित्य एक ही है। इस कारण यह और भी आवश्यक है कि यथार्थ और वास्तवमें भी उसकी एकताको प्रकट और पुष्ट किया जाये।

राजकोय स्तरपर इस सम्बन्धमें काफ़ी-कुछ किया जा रहा है। किन्तु शासन और शासककी मर्यादाएँ हैं। एकताका अभिक्रम ऊपरके बजाय मूलसे आना चाहिए? विभिन्न भाषाओंके साहित्यकारोंको स्वयं अपने हितमें इस दायित्वकी ओर ध्यान देना है। और यह दुःखकी बात है कि भाषाओंमें साहित्यके बारेमें इतना अपरिचय हो।

ऐसी दशामें व्यावसायिक प्रतिभाको समक्ष आना चाहिए जो प्रणालियोंका निर्णय करे और आदान-प्रदानके प्रवाहको सहज कर दे। वास्तवमें तो विभिन्न भाषाओंमें आपसी परिचय ही काफ़ी नहीं है, उत्कर्षकी दिशामें सह-भाव भी आवश्यक है। इसके लिए एक मासिक पत्रिकाकी व्यवस्था होनी चाहिए जो भारतके उत्कृष्टकी प्रतिनिधि हो।

उत्कृष्ट कृतियोंके चुनाव और उनके अनुवादकी व्यवस्था आवश्यक है, जिनमें सरकारका हाथ न हो। एक पुरस्कार इसमें विशेष सहायक होगा। उसकी प्रतिष्ठा नोबेल पुरस्कारके समान होनी चाहिए और पूरी निष्पक्षताकी सुरक्षा होनी चाहिए। उसमें भाषाका प्रश्न न हो और प्रतिवर्ष एक भारतीय कृति समक्ष आती रहे जिसके उपलक्षसे सब साहित्य स्फूर्ति और दिशा ग्रहण करे।

२९ दिसम्बर १९६५

प्रथम
भारतीय ज्ञानपीठ साहित्यिक पुरस्कार
घोषित

भारतीय ज्ञानपीठकी प्रगतिके बढ़ते चरणोंने इसी २९ दिसम्बरको सफलताके एक ऐसे शिखरको नापा जिसके प्रशस्ति-लेखकी गूँज देश-देशान्तर तक पहुँच चुकी है। सन् १९२२ से १९५८ के बीच प्रकाशित भारतकी चौदह भाषाओंकी हर विधाकी सृजनात्मक कृतित्वकी पुस्तकोंमें-से सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक कृतिके रूपमें मलयालम-कवि श्री जी० शंकर कुरुप्पुको उनकी काव्य रचना 'ओडक्कुषल्' (बाँसुरी) के लिए एक लाख रुपयेका पुरस्कार घोषित कर दिया गया। साहित्य-जगत्में एक यह एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनने दिल्लीमें प्रवर परिषद्की बैठकके बाद इस प्रथम पुरस्कारकी विधिवत् घोषणा करते समय जो प्रेस विज्ञप्ति जारी की थी उसके अधिकांशमें श्री शंकर कुरुप्पुकी साहित्यिक प्रतिभाका ही उल्लेख रखना इस तथ्यको स्वतः उजागर कर देता है कि भारतीय ज्ञानपीठकी साहित्यिक गतिविधियोंके पार्श्वमें आधारभूत दृष्टि और उद्देश्य क्या है।

साहित्य एवं संस्कृतिकी गवेषणा तथा श्रीवृद्धिका व्रत लेकर इक्कीस वर्ष पूर्व १४ फ़रवरी सन् १९४४ में जब साहू श्री शान्तिप्रसाद जैनने इस संस्थाकी स्थापना की थी तब भी उनके समक्ष संकल्प रूपमें जो था वह यही कि ज्ञानपीठ ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्यका निर्माण करेगी। ज्ञानपीठने लुप्त ग्रन्थोंका उद्धार करने, अलभ्य और आवश्यक ग्रन्थोंके सुलभीकरणमें, प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओंके वाङ्मयके अनुवाद प्रकाशनकी दिशामें, और हिन्दीमें लोकोदयकारी मौलिक साहित्यके प्रकाशन-क्षेत्रमें इस बीच जो किया है, उसपर ज्ञानपीठको ही नहीं, समस्त साहित्यिक जगत्को गर्व है।

सांस्कृतिक क्षेत्रमें भारतकी भावनात्मक एकताकी भावना सुदृढ़ करनेमें भी भारतीय ज्ञानपीठ निरन्तर जागरूक रही है। पाली तथा वैदिक ग्रन्थोंके प्रकाशनसे लेकर उर्दू काव्य-साहित्यको नागरी लिपिमें प्रस्तुत करने तक, तथा 'राष्ट्र-भारती' ग्रन्थमालाके अन्तर्गत भारतीय भाषाओंके प्रमुख साहित्यकारोंके संकलन प्रकाशित करनेसे लेकर अब पुरस्कार योजनाके अन्तर्गत अन्तिम चयनके समय उठकर आयी विभिन्न भाषाओंकी पुस्तकोंके हिन्दी अनुवाद-प्रकाशन तक इसी भावनात्मक एकताकी ओर ज्ञानपीठके ये अग्रणी प्रयत्न हैं।

पुरस्कारके प्रसंगमें यह स्पष्ट कर देना भी अप्रासंगिक न होगा कि यों तो अलग-अलग भारतीय भाषाकी सर्वश्रेष्ठ कृतिके लिए अलग-अलग प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय पुरस्कार थे ही, किन्तु ऐसा कोई पुरस्कार नहीं था जो देशकी सारी भाषाओंकी कृतियोंमें-से चुनी हुई किसी एक श्रेष्ठतम साहित्यिक कृतिके लिए हो। ऐसे पुरस्कारकी स्थापनाको एक राष्ट्रीय आवश्यकताके रूपमें भी अनुभव कर ज्ञानपीठके संस्थापकोंने यह योजना प्रवर्तित की। साथ ही इसमें यह भी ध्यानमें रखा गया कि पुरस्कारकी राशि राष्ट्रीय गौरव तथा अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डोंके अनुरूप भी हो।

पुरस्कारकी प्रक्रिया यह है कि प्रतिवर्ष देश-भरके अधिकारी विद्वानों, समीक्षकों और प्रबुद्ध पाठकोंके पास प्रस्ताव-पत्र भेजकर श्रेष्ठ पुस्तकोंके विषयमें प्रस्ताव आमन्त्रित किये जाते हैं। तदुपरान्त प्रत्येक भाषाके लिए गठित परामर्श समितिके समक्ष ये प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाते हैं। यही समितियाँ प्राप्त प्रस्तावोंका आकलन, निरीक्षण एवं मूल्यांकन करके तथा स्वतन्त्र रूपसे विचार करके सर्वोत्तम तथा सर्वोपरिके रूपमें केवल एक पुस्तकका समर्थन सर्वसम्मति अथवा सदस्योंके दो-तिहाई बहुमतसे करती हैं। परामर्श समितियोंसे प्राप्त प्रस्तावोंपर सम्बन्धित भाषा-वर्ग समितियाँ विचार करती हैं और सुविचारित मूल्यांकनके उपरान्त एक-एक भाषावर्गसे एक-एक कृति चुन लेती हैं। इस प्रकार जो पाँच या छह पुस्तकें छनकर ऊपर आती हैं उनका पारस्परिक मूल्यांकन सक्षम समीक्षकों-द्वारा होता है। इसके उपरान्त प्रवर परिषद् विभिन्न परामर्श समितियोंसे प्राप्त प्रस्तावोंका निरीक्षण तथा मूल्यांकन करती है और आवश्यक होनेपर उनके प्रतिनिधियोंका साक्ष्य लेकर प्रस्तुत व्याख्याओंपर विचार करती है।

प्रथम पुरस्कारके सम्बन्धमें हुई परिषद्की अन्तिम बैठकमें जिन प्रतिनिधियों

तथा अनुवादकोंके साक्ष्य लिये गये उनके नाम हैं – डॉ० सुकुमार सेन (बंगला परामर्श समितिके संयोजक), श्री हंसकुमार तिवारी (क़ाज़ी नज़रुल इस्लामकी बंगला काव्य-कृति 'अग्निवीणा' के हिन्दी अनुवादक), प्रिन्सिपल सीतारमैया (कन्नड परामर्श समितिके संयोजकके प्रतिनिधि), डॉ० सरोजनी महिषी (श्री डी० वी० गुण्डप्पाकी कन्नड काव्य-कृति 'मंकु तिम्मन कग्ग' की हिन्दी अनुवादिका), श्री एन० वी० कृष्णवारियर (मलयालम परामर्श समितिके संयोजक), कुमारी जॉन (श्री जी० शंकर कुरुप्पुकी मलयाली काव्य-कृति 'ओडक्कुष़ल' की सह-अनुवादिका) तथा प्रोफ़ेसर के० लक्ष्मीरंजनम (तेलुगु परामर्श समितिके संयोजक)। इस तेलगु उपन्यास 'वेयीपडगलु' (सहस्रफण) के अनुवादक आन्ध्र प्रदेशके विधि-मन्त्री श्री नरसिंह राव थे। प्रवर परिषद्के जिन सदस्योंने बैठकमें भाग लिया उनके नाम हैं – डॉ० सम्पूर्णानन्द (अध्यक्ष), श्रीमती रमा जैन, डॉ० कर्णसिंह, डॉ० गोपाल रेड्डी, डॉ० आर० आर० दिवाकर, डॉ० नीहार रंजन रे, काका साहब कालेलकर, तथा श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन।

पुरस्कार भले ही 'ओडक्कुष़ल' पर घोषित हुआ है, परन्तु उपर्युक्त चारों पुस्तकोंके हिन्दी अनुवाद भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित किये जा रहे हैं। साथ ही 'प्रथम पुरस्कार पुस्तिका' भी प्रकाशनाधीन है जिसमें प्रवर परिषद् तथा समितियोंके सदस्यों, अनुवादकों तथा समीक्षकोंके सचित्र परिचय तो होंगे ही, भारतीय ज्ञानपीठकी प्रवृत्तियों तथा पुरस्कार-योजनाकी पृष्ठभूमि आदिका भी परिचय होगा।

पुरस्कार वितरण समारोह इसी वर्ष फ़रवरी या मार्चके आसपास राजधानीमें सम्पन्न होगा।

प्रथम पुरस्कारके साथ-ही-साथ द्वितीय पुरस्कार (१९६६) का कार्य भी बराबर चलता आ रहा है। इस सम्बन्धमें चौदहों भाषाओंकी परामर्श समितियोंकी बैठकें हो चुकी हैं तथा उनके द्वारा अनुशंसित पुस्तकें प्राप्त हो गयी हैं। अब ये पुस्तकें भाषा वर्ग-समूह समितियोंके समक्ष प्रस्तुत की जायेंगी।

तृतीय पुरस्कार (१९६७) की प्रगति-स्थिति यह है कि प्रस्ताव-पत्र तो दो महीने पूर्व ही सबको भेजे जा चुके थे। धीरे-धीरे हमें प्रस्ताव प्राप्त होते जा रहे हैं। प्रस्ताव-पत्र भरकर भेजनेकी अन्तिम तारीख अब बढ़ाकर ३१ जनवरी १९६६ कर दी गयी है।

अन्तमें हम ज्ञानपीठकी ओरसे अपने समस्त सहयोगी महानुभावोंके प्रति आभार प्रकट करते हैं जिनके सहयोगसे ही यह सम्भव हो सका कि प्रथम पुरस्कारकी घोषणा निर्धारित अवधिके भीतर ही, वर्षान्तसे भी दो दिन पूर्व, हो गयी। विश्वास है कि भविष्यमें भी इसी प्रकार सबका सहयोग भारतीय ज्ञानपीठको प्राप्त होता रहेगा।



जीवन तो मानवकी गतिको रोकनेवाली रुकावटोंसे लड़ते हुए उनका नाश करने और अनुकूलतामें गड़नेवाले काँटोंको उखाड़ फेंकने और युगकी पुस्तकके पन्नोंको उत्तरदायित्वकी स्नेह-भरी उँगलियोंसे पलटते जानेमें ही अपनी परिभाषा देखता है। कला इस जीवनसे दूर रहकर कहाँ रहेगी? क्या जीवन जलता रहेगा और कला बाँसुरी बजाती रहेगी, क्या वह इतनी क्रूर इतनी निष्ठुर हो सकेगी? जिस तरह समुद्रकी लहरें सौ-सौ मील आगे और पीछे जाकर भी गम्भीर जलमें शाश्वत सजगताका निर्माण किये रहती हैं उसी तरह कलाको द्रवित, मधुर, शीतल, प्राणमय रहते हुए भी उसमें जीवनको सँवारनेकी शाश्वत सजगता होनी चाहिए।

—चिन्तककी लाचारी : माखनलाल चतुर्वेदी

जी० शंकर कुरुप्पु

प्रथम भारतीय ज्ञानपीठ साहित्यिक पुरस्कार विजेता
जिनकी काव्यकृति 'ओडक्कुष़ल' (बाँसुरी) सन्
१९२२-१९५८के बीच प्रकाशित सर्जनात्मक
भारतीय साहित्यकी सर्वश्रेष्ठ कृति
निर्णीत की गयी

ओडक्कुष़लके कविका परिचय देते हुए दक्षिण भारतके एक साहित्य-मर्मज्ञने लिखा है : "कुरुप्पु विकास और प्रगतिके कवि हैं। वे तालाबकी तरह कभी एक जगह नहीं ठहरे, बल्कि नदीकी तरह नये-नये मैदानोंमें बहते रहे : ऐसी नदीकी तरह जो हर मैदानमें अपनी चोड़ाई और गहराई बढ़ाती चलती है। कुछ लोग तो उन्हें 'कवियोंका कवि' तक कहते हैं। वास्तवमें उन्हें 'मनुष्यका कवि' कहना उचित होगा : हाँ पूर्व-पाषाण युगके मनुष्यका नहीं वरन् बीसवीं सदीके मनुष्यका कवि, जिसने अपनी कहानी सभी क्षेत्रोंमें फिरसे लिखी है और जो अन्तरिक्ष युग-में प्रवेश कर चुका है।"

इतना प्रतिभा-धनी यह मलयाली कवि केरल प्रदेशमें पेरियार नदीके निकट-वर्ती ग्राम वायताड्के एक किसान परिवारमें ३ जून १९०१ को जनमा था। बचपनमें ही पिताका वियोग सहा। जिस माँकी ममता-भरी देख-रेखमें फिर श्री कुरुप्पु पले-पनपे वह कुछ काल पूर्व ही दिवंगत हुई है। कुरुप्पुकी ज्योतिष, संस्कृत और अध्ययनके प्रति गहरी रुचि परिवारकी देन है। 'हायर' पास करनेके बाद उन्होंने अध्यापन सँभाला : १९२१ में वह तिरुविलवामला हाई स्कूलमें गये जहाँ उन्हें अँगरेजी और विश्व-साहित्य पढ़नेका अवसर मिला। फिर मद्रास विश्वविद्यालयकी 'विद्वान्' परीक्षामें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। कुछ समय बाद वह एरणाकुलम राजकीय महाविद्यालयमें प्राध्यापक नियुक्त हुए। १९५६ में इस पदसे रिटायर हुए तो आकाशवाणीमें प्रोड्यूसरके पदपर नियुक्त किये गये।

श्री कुरुप्पुने लगभग १५ वर्ष 'केरल साहित्य परिषद् पत्रिका'का सफलतापूर्वक

सम्पादन किया है। सम्प्रति वह केरल साहित्य समितिके अध्यक्ष हैं और 'तिल-कम्' मासिकके सम्पादक भी। १९४४ में महाराजा कोचीनकी ओरसे उन्हें 'साहित्य निपुण विरुद' तथा स्वर्णपदक प्राप्त हुए। पी० ई० एन० के वह ऑनरेरी सदस्य हैं, और केरल साहित्य अकादेमी और संगीत नाट्य अकादेमी-की विभिन्न समितियोंके भी सदस्य हैं।

कविता-लेखन उन्होंने विद्यार्थी-कालसे ही प्रारम्भ कर दिया था। पहले प्रकृति और देश-प्रेम उनका विषय रहे। इसी बीच उमर खैयामकी अलंकार-कल्पना और बिम्ब-विधानने उन्हें आकृष्ट किया, पर यह प्रभाव अस्थायी रहा। स्थायी प्रभाव उनपर पड़ा तो महाकवि रवीन्द्रनाथकी कविताओंका। अपनी काव्यगत विशेषताओंके कारण वह मलयाली साहित्यमें प्रतीकवादी माने गये हैं। हाँ उनके प्रतीक भारतीय हैं। युरॅपीय प्रतीकवादियोंसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं। चराचर जगत्‌को किसी अज्ञात विराट् हृदयकी महान् अभिव्यक्तिके रूपमें देखनेकी प्रवृत्तिके कारण कुछ लोग उन्हें रहस्यवादी मानते हैं। किन्तु इनकी कविता सन्त कवियोंकी रहस्यवादी कवितासे सर्वथा भिन्न है। प्रगतिशील विचार-धाराकी कुछ कविताएँ उन्होंने लिखी हैं, पर इन कविताओंमें भी मार्क्सको उतना स्थान नहीं मिला जितना मानवतावादको मिला है। जीवनमें वह गान्धीवादी ही हैं।

श्री कुरुप्पुकी कविताओंका प्रथम संग्रह १९२३ में प्रकाशित हुआ था। प्रमुख कृतियाँ उनकी हैं—

काव्य : साहित्य कौतुक (चार भाग), सूर्यकान्ति, नवातिथि, पूजापुष्प, निमिष चेंकातिरुक्ल्, मुन्तुक्ल्, वन गायकन्, इतकुक्ल्, पलिकण्टेपाट्टु, अन्तर्दाह, वैलिनल्पेखक्ल्, ओडक्कुषल, विश्वदर्शन, जीवन संगीत, मून्तरुविभुं, ओरुपुषयुं, इलं चुण्टुक्ल् आदि।

नाटक : सन्ध्या।

निबन्ध : गद्योपहार, लेखमाला, मुन्तुं चिकियुं।

अनुवाद : विलास लहरी, मेघछाया, मध्यमाव्यायोग, गीतांजलि, एकोत्तर-शती, इरुट्टिनुमुन्पु।

कवि श्री शंकर कुरुप्पुको यह पुरस्कार वास्तवमें उनके कवित्व और कृतित्व-का अभिनन्दन है। पुरस्कार-निर्णयकी सूचना एरणाकुलम पहुँची और 'तिलकम्'

मासिक-द्वारा उनका अभिनन्दन समारोह आयोजित हुआ तो वहाँ श्री अज्ञेयने ठी
ही कहा –

"ज्ञानपीठ पुरस्कारका महत्त्व इस बातमें है कि वह केवल कृति साहित्यप
दिया जायेगा, शोध अथवा ज्ञानके साहित्यपर नहीं। दूसरे वह इसलिए भी महत्त्व
का है कि वह सभी भारतीय भाषाओंको एक समान साहित्यिक मानदण्ड
मापनेका प्रयत्न करता है। अलग-अलग भाषाओंको अलग-अलग प्रकारकं
रियायतें नहीं देता।

"ज्ञानपीठ मुख्यतया हिन्दीकी और हिन्दी क्षेत्रकी संस्था है, इसलिए उसके
द्वारा दिया गया यह पुरस्कार उस दायित्वके निर्वाहमें पूर्णतया सहयोग देता है
जो इतिहासने हिन्दीको सौंपा है। मध्य देशकी भाषा हिन्दी भारतीय संस्कृतिकी
सभी धाराओंकी वाहिका रही है और सभी अंचलोंकी प्रवृत्तियाँ हिन्दीमें
छनकर दूसरे अंचलोंमें पहुँचती रही हैं। सभी भारतीय भाषाओंको एक मंचपर
लाने और इस प्रकार भारतीय प्रतिमानोंकी प्रतिष्ठा करनेका काम हिन्दीके द्वारा
सम्पन्न हो, यह सर्वथा उचित है। अन्य भाषाओंकी उन्नतिमें हिन्दीका यह योग
हिन्दीको भी सम्पन्नतर बनायेगा।"



क़दम आगे-पीछे होते हुए भी सब एक ही भविष्य और एक ही स्तर-
की ओर बढ़ रहे हैं, अतएव, नयी पीढ़ी हिन्दीकी ही नहीं, भारतकी
ही नहीं, किसी देश-विदेशकी नहीं, सारे संसारकी नयी पीढ़ी है,
उसे इसी व्यापक दृष्टिकोणसे देखना चाहिए।

—वृन्त और विकास : शान्तिप्रिय द्विवेदी

कवि-कर्म

कविसे महाकाव्यकी जो अपेक्षा करते
हैं वे उसे महाकाव्यकी परिस्थितियाँ
भी तो पाने दें

भारतभूषण अग्रवाल

कवि-कर्म निरन्तर कठिन होता चला गया है। 'तार-सप्तक'के प्रथम प्रकाशनके समय विश्व अपने इतिहासके सबसे अधिक भीषण युद्धमें ग्रस्त था, और देश अपनी मुक्तिके द्वारपर थरथरा रहा था। जैसे-तैसे युद्ध समाप्त हुआ और देशको मुक्ति मिली, पर जीवन एवं जगत्की जटिलता निरन्तर बढ़ती ही चली गयी है। आधुनिक कविको यदि एक ओर विश्व पहली बार एक होता दीखता है तो दूसरी ओर यान्त्रिक पद्धतिकी जकड़में व्यक्ति अकेला पड़ता जा रहा है। भारतीय कविके लिए एक अतिरिक्त कठिनाई यह है कि जनतन्त्रके आलोकके ही साथ वे विभाजक खाइयाँ भी दिखाई पड़ने लग गयी हैं जो नगर और ग्रामके बीच, प्राचीन और नवीनके बीच और देशी और विदेशीके बीच खुदी हुई हैं—बल्कि कुछ खाइयाँ तो निरन्तर बढ़ती चली जा रही हैं। इन सबपर अपनी सीमित मध्यवर्गीय अनुभूतिके बलपर वह संवेदनाका सेतु कैसे बाँधे ? और जबतक यह सेतु न बँधे तबतक उसका कवि-कर्म कैसे चरितार्थ हो ?

और मानो यह कठिनाई ही कुछ कम हो कि आजके कविके सामने एक और भयंकर समस्या खड़ी हो गयी है : उसका कवि-कर्म अतिरिक्त कर्म ही हो सकता है, एक मात्र कर्म नहीं। जो विद्वान् नये कविसे व्यापक दृष्टि, गहन अनुभूति और समर्थ अभिव्यक्तिकी माँग करते नहीं थकते, वे इस बातपर एक क्षण भी विचार नहीं करते कि आजकी जीवन-पद्धति कविको अपनी कलाके माँजने-सँवारने और पालने-पोसनेका कोई अवसर नहीं देती। एक तो आजके जीवनकी गति यों ही इतनी तीव्र हो गयी है कि उसके साथ क़दम मिलाना 'तरवार की धार पे धावनो' हो गया है—नयी परिस्थितिसे संवेदनाका सूत्र

मिलाते-न-मिलाते परिस्थिति बदल जाती है, तिसपर दैनिक जीवनकी माँग कवि और अ-कविका भेद नहीं मानती और कविका अधिकांश जीवन कविताके चरणोंमें नहीं, कविताकी तैयारीके चरणोंमें निवेदित हो जाता है। वैसे तो आजका साहित्यकार-मात्र ही अपनी क्षमताका दुरुपयोग करनेको बाध्य है, पर कवि तो सबसे अधिक क्योंकि इस सर्वाधिक प्राचीन और भव्य साहित्य-विधाका व्यावसायिक मूल्य सबसे कम है। आज कविताका साथ 'घर फूँक' कर ही दिया जा सकता है, पर 'घर फूँकना' कबीरके समयमें भले ही व्यावहारिक विकल्प रहा हो, आज तो कदापि नहीं है।

मैं कभी विदेश नहीं गया, पर पढ़-सुनकर जाना है कि कवि-कर्मकी यह दशा केवल हिन्दीमें ही नहीं, केवल भारतमें ही नहीं, सब देशोंमें सर्वत्र एक-सी है। जनतन्त्रने जनको शिक्षित तो किया है, पर एक सीमा हो तक। फलतः आजका जनसाधारण मनोरंजनके लिए तो कविताकी माँग करता है, पर कविता-से मनोरंजन नहीं करता। और इस प्रकार अनुपयोगी कलाकी साधनामें रत कविको जीवन-यापनके लिए तरह-तरहकी कलाबाज़ियाँ करनी पड़ती हैं जिसके कारण उसकी अनुभूति सीमित और उसका व्यक्तित्व विभक्त हो जाता है। इस सीमा और विभक्तिको नया कवि भरसक वाणी देता है (मैं तो आजकी कविता-को विभक्ति-युगकी कविता कहता हूँ, भक्ति-युगके ढंगपर) पर काम्य उसका भी समग्र और सम्पूर्ण ही है। जो कविसे महाकाव्यकी अपेक्षा करते हैं वे उसे महाकाव्यकी परिस्थितियाँ पानेमें सहयोग क्यों नहीं देते — यह प्रश्न मेरे मनमें बराबर उठता रहता है।

● ●

हिन्दी नवलेखनके विशिष्ट समीक्षक डॉ० देवीशंकर अवस्थीके असामयिक निधनसे हिन्दी साहित्यकी भारी क्षति हुई है। दिवंगत आत्माके प्रति भारतीय ज्ञानपीठ परिवारकी विनम्र श्रद्धांजलि और शोक-सन्तप्त परिवारके लिए हार्दिक समवेदना।

कविताका अनुवाद

आधुनिक सन्दर्भोंमें काव्यका अनुवाद कैसे
सुन्दर भी बने और सच्चा भी

डॉ० धर्मवीर भारती

जब कभी दो सांस्कृतिक धाराओंमें परस्पर सम्मिलन हुआ है, अनुवाद बराबर आदान-प्रदानका एक उपयोगी माध्यम रहा है। लेकिन आधुनिक सन्दर्भ-में नये कविके लिए काव्यका अनुवाद एक दूसरा महत्त्व भी रखता है। क्या कारण है कि एज़रापाउण्डसे बोरिस पेस्तरनाक तक किन्हीं विशेष स्थितियोंमें अनुवाद-कार्यकी ओर झुकते देख पड़ते हैं।

इसका एक विशेष कारण है। मध्ययुगमें कवि-कर्मका एक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण अंग था – गुरु-शिष्य परम्परा। प्रत्येक उदीयमान कवि किसी रससिद्ध कविको गुरुके रूपमें स्वीकारता था जिसे परामर्श देने, शिष्यके लेखनमें संशोधन करनेका पूरा अधिकार रहता था। इन परामर्शोंके अनुसार कवि अभ्यास करता था और परिपक्वता और प्रौढ़ता तक पहुँचते-पहुँचते स्वयं अपनी निजी शैलीको खोजता और प्रतिष्ठित करता था।

आधुनिक कविता जिस क्रान्तिकारी भावभूमिमें पनपी उसमें यह गुरु निर्दे-शित-अनुशासित अभ्यासकी परम्परा न केवल अनावश्यक वरन् बाधक और हानिकर प्रतीत हुई और समाप्त हो गयी। यही नहीं वरन् काव्य-सम्प्रदाय जितनी तेज़ीसे बदले उसमें गुरु-शिष्यका तो प्रश्न दूर हर नयी पीढ़ीने तो अनिवार्यतः अपनेको पुरानी पीढ़ीसे मनसा पृथक् पाया। ऐसी स्थितिमें प्रत्येक नया कवि कबीरकी भाषामें न केवल 'निगुरा' रहा वरन् काव्यके क्षेत्रमें अपने निगुरेपनको गर्वकी वस्तु मानता रहा।

लेकिन ऊर्णनाभकी भाँति केवल अपने अन्दरसे ही सारे अनुशासन बुन लेना, या तो मकड़ी ही के लिए सम्भव है या केवल ब्रह्मके लिए। प्रत्येक नये कविको

(चाहे वह स्वीकार करे या न करे) निर्देश, अनुशासन और अभ्यासकी आवश्यकता होती है और समय-समयपर वह इसे महसूस भी करता है। ऐसी अवस्थामें अगर वह अपने तत्काल पूर्ववर्ती काव्य-सम्प्रदायसे निजको सहमत नहीं पाता तो उनसे भी और पहलेके कवियोंमें-से अपनी प्रकृतिके अनुकूल कवियोंको चुनकर उनके काव्यका अवगाहन करता है, उनका अनुवाद कर अभ्यास करता है और इस तरह अपनी अभिव्यक्तिको समृद्ध बनाता है। यह उसीकी रचना-प्रक्रियाका एक आवश्यक अंग है। मसलन् रवीन्द्रनाथ ठाकुर-द्वारा पहले ब्रज-बुलिके कवियों और बादमें कबीर तथा बाउलोंकी खोज। कभी-कभी इस खोजके लिए कवि देश-देशान्तरके काव्यकी ओर निगाह दौड़ाता है और उसमें-से अपनी प्रकृतिके अनुकूल काव्य-कृतियोंको खोजता है : मसलन् एजरापाउण्ड-द्वारा चीनी कविताओंकी खोज।

किन्तु यहाँपर एक बात कहना चाहूँगा। आधुनिक प्रकृति उतने निष्क्रिय समर्पणकी नहीं कि जिस क्षण 'भई रे पूता गुरू सौं भेंट' उसी क्षण अपना दायित्व समाप्त समझ ले। आधुनिक प्रकृतिके अनुसार यह खोज उन अर्थोंमें अब गुरुकी खोज न होकर एक सफल और समर्थ 'समानधर्मा'की खोज होती है। वह समान-धर्मी कृतित्व खोजता है, वह एक कविमें मिले या कई कवियोंमें, एक भाषामें मिले या कई भाषाओंमें, एक काव्यधारामें मिले या कई काव्यधाराओंमें।

जब कहीं किसी दूसरी भाषामें भी इस तरहके किसी कृतित्वकी उपलब्धि नये कविको होती है तो उसका सहज उत्साह उस कृतित्वको अपनी भाषामें पुनःप्रस्तुत करना चाहता है। उसको सहसा यह लगता है कि 'अरे सचमुच बिलकुल यही बात तो वह कहना चाहता था पर कहनेका इतना सटीक ढंग उसे नहीं आ पा रहा था।' और वह काव्य-कृति स्वयं उसमें एक रचनात्मक उत्साह जगा देती है और अनुवाद उसीका परिणाम होता है। लेकिन यहींपर एक कठिनाई भी आ खड़ी होती है। मूल कृतिमें और उसके अनुवादके बीचमें दीवारें बहुत बड़ी रहती हैं। पृथक् संस्कार, पृथक् काव्य-रूढ़ियाँ, पृथक् बिम्ब-समूह। जोड़नेवाला तत्त्व बहुत क्षीण रहता है। और ऐसी स्थितिमें सफल अनुवाद प्रस्तुत करें तो वह शाब्दिक अनुवाद नहीं हो पाता और शाब्दिक अनु-वाद प्रस्तुत करें तो वह सफल नहीं हो पाता। और काव्य-कला ऐसी कला है जिसमें शब्द बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है।

इसी स्थितिको लक्षित कर एक अनुवादकने कहा था कि 'काव्यानुवादकी प्रकृति बिलकुल स्त्री-प्रकृति होती है। जितनी सुन्दर होगी उतनी ही अविश्वसनीय।' स्त्री-प्रकृतिके बारेमें तो इस कथनसे पूर्णतया सहमत हूँ पर अनुवादोंके सम्बन्धमें मेरे खयालमें एक बीचका रास्ता निकालनेकी गुंजायश है।—कि अनुवाद सुन्दर भी बनें और विश्वसनीय भी।



दिवंगत लालबहादुर शास्त्री

जो साधारण व्यक्तिको भी
असाधारण व्यक्तित्व दे गये

लक्ष्मीचन्द्र जैन

मई १९६४ में जब जवाहरलाल नेहरूका निधन हुआ तो राष्ट्र स्तब्ध और किंकर्तव्य-विमूढ़ रह गया था, इसलिए कि नेहरूका नेतृत्व हमारा बहुत बड़ा सहारा था—एक मात्र सहारा! आश्चर्य तो यह है कि जिस दमकते शौर्यकी शिखा हमारे देखते-देखते क्षीण होती जा रही थी और जिस अन्धकारकी आशंकासे त्रस्त होकर हम वर्षोंसे प्रश्न करते आ रहे थे: 'नेहरूके बाद कौन?'—उसका उत्तर खोजनेसे हम अन्त तक कतराते रहे। क्योंकि इस एक प्रश्नमें-से सैकड़ों ऐसे प्रश्न पैदा होते नज़र आते थे जिनके सामने हम असहाय-सा अनुभव करते थे। इसलिए हमने त्राण इसीमें समझा था कि शुतुरमुर्ग़की तरह रेतमें सिर दुबकाकर बैठे रहें। और हम बैठे रहे....और हमारे रत्नदीपका प्रकाश हमारे चारों ओरसे सिमटता रहा....और एक दिन उस केन्द्रपर आकर विलीन हो गया जहाँ स्वयं दीपाधार अपने पादमूलमें सुरक्षित तमसे आत्मतुष्ट था—क्योंकि वास्तवमें प्रत्येक अकेले दिव्य दीपककी यही नियति होती है।

अन्धकारमें घिरे-घिरे हमें एक दिन अचानक यह बोध हुआ कि रत्नदीप भी अमर नहीं होते!

जिस दिन लालबहादुर शास्त्रीने पण्डित नेहरूका उत्तराधिकार सँभाला था, काश उस दिनकी डायरी उन्होंने लिखी होती! और, यदि लिखी भी होगी तो क्या उसमें उस आकुलताका शतांश भी आ पाया होगा जो उस क्षण उन्होंने भोगी? राष्ट्रके नाम उन्होंने जो पहला सन्देश ब्रॉडकास्ट किया उसमें हमारी शंकालु बुद्धिने नेहरूकी वाणीकी ओजस्विता देखनी चाही, किन्तु उसकी जगह

एक हल्की-सी नक़लको हमने उनके भाषणमें आरोपित कर लिया। बहुतोंको पहली बार पता लगा कि लालबहादुरजी अँगरेज़ी बोल लेते हैं....पर सन्देह बना रहा कि क्या वह विदेशी राजनयिक खुर्राटोंके आगे हकला न जायेंगे ?

दायित्व सँभालनेके बाद लगा कि लालबहादुरजी टटोलवाँ चल रहे हैं। हमारी आँखें अभ्यस्त थीं राष्ट्रनायक नेहरूकी निःशंक वेगवती चाल देखनेकी। हमने सोचा, लालबहादुरजी अगर इस तरह चले तो देशकी मंजिलमें और उनमें फ़ासला बढ़ता ही जायेगा।

आज सोचकर लज्जा आती है कि उनके प्रधान मन्त्रित्वके प्रारम्भिक कालको देखनेवालोंने, लालबहादुरजीकी भलमनसाहत और शिष्टताको दब्बूपन समझा, दूसरोंकी मूर्खतापूर्ण बातोंको भी चुपचाप सुन लेने और उत्तरमें संकेतात्मक बात कहनेकी कलाको उनकी रीढ़-हीनता माना, नेहरूके सांस्कृतिक व्यक्तित्वसे प्रसूत वाणीके उदात्त स्फुलिंगोंकी जगह शास्त्रीजीके वक्तव्यों और भाषणोंकी निर्व्याज सादगीको निष्प्रभ व्यक्तित्वकी अभिव्यक्ति जाना।

मानो कि लालबहादुरके व्यक्तित्वको लघुताको रेखांकित करनेके लिए पण्डित नेहरूके दीर्घाकार व्यक्तित्वका सन्दर्भ नाकाफ़ी था; अतः समान-से व्यक्तियोंका एक गुट 'सिण्डीकेट' की संज्ञा लेकर राजनीतिके क्षेत्रमें उतरा और पण्डित नेहरूकी याद ही नहीं, उनके व्यक्तित्वकी छाया तक इस नये गुटके उभरते प्रकाशमें धूमिल होने लगी। किन्तु लालबहादुर उसी प्रकार लघुकाय लघु-आकार दिखाई देते रहे।

विशालकाय बरगदके धराशायी हो जानेके उपरान्त केन्द्रीय मण्डलके प्रमुख मन्त्री, राज्योंके मुख्य मन्त्री, काँग्रेसके अध्यक्ष, विरोधी दलोंके नेता—सबको आकाश-भर फैलने-फूलनेका नया और मुक्त अवसर मिला। केन्द्रीय शासनपर दक्षिण और पूर्वकी ओरसे पहला कूटनीतिक आक्रमण हुआ—भाषा-विवादकी ओटमें। हिन्दीके हृदयमें जिस नंगी तलवारकी नोकको चुभाया गया, वह वास्तवमें राष्ट्रके किस मर्मस्थलको भेदनेका प्रयत्न था उसकी चर्चा करना आज उचित नहीं। लालबहादुरजीने जिस धीरज, दूरदर्शिता और राजनैतिक सूझ-बूझसे उस स्थितिका मुक़ाबला किया और विरोधके ज्वारको उसके अपने ही फेनोंमें टकराकर मथ जाने, शान्त होने दिया, वह उनकी पहली विजयपताका थी जो दिल्लीके शासनालयमें फहरी। किसने किसका उपयोग किया—सिण्डीकेटने शास्त्रीजीका

या शास्त्रीजीने सिण्डीकेटका—यह कहना आज कठिन है, किन्तु इतना स्पष्ट है कि यदि सिण्डीकेटको अपने अस्तित्वकी सार्थकता मिली तो शास्त्रीजीको विजय !

कलतक लालबहादुरजीके प्रधान-मन्त्रित्वकालकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी—राष्ट्रको युद्धको अग्नि-परीक्षामें दीक्षित करके पश्चिमी सीमाओंसे आनेवाले आक्रमणकारी आततायियोंको सदाके लिए नखहीन और दन्तहीन कर देना और देशके प्रत्येक नागरिकको नये दीप्त आत्मदर्पसे ओतप्रोत करना। और आज जब ताशकन्दपर अचानक विषादका तुषारपात हो गया, जब वहाँके गली-कूचोंमें सर्द हवा सिर धुनती फिर रही है, जब लालबहादुरजीकी अरथीको कोसिजिन और अय्यूब कन्धा दे रहे हैं और रूसवासियोंके गालोंपर ढुलकनेवाले आँसुओंमें भारतके जन-जनकी विषण्ण मुखछवि प्रतिबिम्बित हो रही है, तो हम अपने शास्त्रीजीको याद कर रहे हैं—एक ऐसे महान् महिमामय नेताके रूपमें जो युद्धमें हमें विजय दिलाकर स्वयं शान्तिके लिए अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर गया।

लालबहादुरजी राष्ट्रको वह दे गये जो पिछली कई शताब्दियोंमें कोई नहीं दे पाया था—और वह भी स्वयं बड़ा बनकर नहीं हम सबको बड़ा बनाकर।

भारतके इतिहासने नयी करवट ली है। अब हमारे राष्ट्रको ज़रूरत नहीं ऐसे भव्य विशाल वटवृक्षकी जिसकी छाया ही हम सबका मूलधन हो। अब हमें आत्मतुष्ट रत्नदीपोंके प्रकाशमें मिचमिचाती आँखों चलनेकी आवश्यकता नहीं। अब हममें-से प्रत्येक एक सजीव अंकुर है जो सशक्त वृक्ष बनकर फूल-फल सकता है, अब हममें-से प्रत्येक एक जाज्वल्यमान दीप है जो अपनी ज्योतिसे नयी ज्योतियोंको पुष्पित करेगा लेकिन अपनी उद्दाम शिखासे किसीकी निर्मल कोमल ज्योतिको पराभूत नहीं करेगा।

लालबहादुर शास्त्री हमें वरदान-स्वरूप मिले थे। वह चले गये कि अब हम अपना पथ अपनी ज्योतिसे आलोकित करें, यही वह हमें सिखा गये हैं। हम कृतज्ञ हैं।

नेहरूजीके निधनसे लगभग २० दिन पहले जब श्री लालबहादुर शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा आयोजित श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की चौथी पुण्य-तिथिके अवसरपर होनेवाले समारोहमें 'हम विषपायी जनमके' काव्य-संकलनका ग्रन्थि-विमोचन करने पधारे तो अपने अध्यक्षीय भाषणमें वह नवीनजीकी स्मृतियोंमें डूबते-खोते चले गये। उन्होंने कहा—उनके ही शब्द टेपपर-से उद्धृत कर रहा

हूँ—"शर्माजी में बड़ी भावुकता थी, प्यारकी भावुकता जो दिलकी सचाई और सफ़ाई प्रकट करती है। मैं तो उसे इसी रूपमें देखता हूँ। कभी-कभी सोचता हूँ कि लोग मुझे थोड़ा-बहुत सीधा-सादा मानते हैं, मगर मैं कहीं ज्यादा चालाक हूँ। क्योंकि वह भावुकता, वह इमोशनलिज़्म मेरे अन्दर बहुत कम है। और जहाँ इमोशन कम हो वहाँ ज़रूर ही चालाकी ज्यादा होगी। तो इस दृष्टिसे मैं जब बालकृष्ण शर्माकी पैमाइश और उनकी जाँच-पड़ताल करता हूँ तो उन्हें मैं बहुत ऊँचा व्यक्ति मानता हूँ !····वैसे मुझे लगता है कि दुनिया कोई खत्म तो होती नहीं—

> ख़ुदा जाने ये किसकी जल्वागाहे नाज़ है दुनिया
> हज़ारों जा चुके लेकिन वही रंगत है महफ़िल की !

यह दुनिया तो नहीं बदलती, रंगत कुछ बदलती जाती है। मैं कभी-कभी आज-कल महसूस करता हूँ कि ऐसे लोग जो जाते हैं उनकी जगह हम भर नहीं पाते। जो भावनाएँ, जो बातें, उनमें थीं—एक सुन्दरता थी, एक भेद था और जीवनमें थोड़ा-सा एक दूसरे ढंगका रस था, वह जैसे फीका-सा पड़ता नज़र आता है।"

लालबहादुरजीने ये शब्द २९ अप्रैल १९६४ को उक्त समारोहमें कहे थे। उसके लगभग २० दिन बाद नेहरूजी नहीं रहे और उसके २० महीने बाद आज वे स्वयं नहीं रहे !

बेशक इस जल्वागाहे नाज़में फिर कोई प्रधानमन्त्री बनेगा, फिर महफ़िलें भरेंगी, लेकिन हम जो अपने गान्धीको वापिस न ला पाये जिसने राष्ट्रीयताको जन्म दिया, जो अपने नेहरूको वापिस न ला पाये जिसने राष्ट्रको दिशा दी तो हम अपने लालबहादुरजीको कहाँसे ला पायेंगे जो हमारे राष्ट्रके साधारण व्यक्तिको भी असाधारण व्यक्तित्व दे गये, उसे आत्मसम्मानसे सिर ऊँचा उठाकर चलनेकी शान दे गये !



हिन्दीका परजीवी साहित्य

भावी इतिहासका आग्रह बनकर जीनेवाले साहित्यको क्यों न एक प्रकारका मात्र शोर स्वीकार किया जावे। एक ऐसा शोर जो स्वयं अस्तित्वके लिए उभरता है और जिसके हितमें उभरता है उसका अस्तित्व भी सन्दिग्ध बना देता है

डॉ० श्याम परमार

प्रायः ऐसा होता है कि किसी रचना अथवा कृतिके प्रकाशित होते ही उसके पक्ष, विपक्ष और सन्दर्भमें बहुत-कुछ लिखा जाता है—कभी-कभी जो वास्तविक रचनाके कलेवरसे कई गुना अधिक होता है – और ऐसा भी होता है कि अच्छी कृतियाँ और रचनाएँ उपेक्षित कर दी जाती हैं। दोनों स्थितियोंमें सम्बद्ध प्रक्रियाएँ अधिकतर सायास होती हैं। इनमें उपेक्षाकी स्थिति निश्चय ही घातक है, जब कि प्रथम स्थितिमें कुछ अंशोपलब्धि उपादेय अवश्य हो जाती है। इसलिए कि उस स्थितिमें जो भी वास्तविक कृतिके सन्दर्भमें लिखा जाता है वह सृजनपरक साहित्यके नैरन्तर्यको तनिक अस्तित्व देता है, कुछ आधार प्रदान करता है। चाहे फिर वह आलोच्य कृतिको अधिक समय तक जिला न सके। ऐसा समग्र साहित्य अल्पजीवी होता है। वह साहित्य होकर भी साहित्येतर होता है—वस्तुतः 'उपसाहित्य' होता है। और उपसाहित्यका अधिकांश उस कोटिका होता है जो विस्मरणीय है। सामयिक दृष्टिसे ऐसा साहित्य प्रवृत्तियों, विवादों और आस्थाओंको प्रश्रय देता है जिसके कारण कतिपय सृजनपरक रचनाएँ सन्दर्भ-विहीन हानेसे बच जाती हैं। उपसाहित्य तो निश्चय ही कालान्तरमें विस्मृत कर दिया जाता है, पर उन कृतियोंका भी वही हश्र होता है जिनकी प्रशंसामें मित्रों-द्वारा बहुत ढोल पीटे होते हैं। वही रचनाएँ शेष बचती हैं जिनका कृतित्व सन्दिग्ध नहीं होता, जो सामयिकताके वृत्तसे निकलकर प्रज्ञाको प्रभावित करनेका सामर्थ्य रखता है। संगत होता है। इसके

विपरीत दायित्वहीन साहित्य समय-सापेक्ष होकर भी कालके आगामी चरण तक नहीं पहुँचता, वह अपनी कोई 'इमेज' नहीं छोड़ता। कमज़ोर कृतियोंके पक्षमें चाहे कितने ही कोरे काग़ज़ रँगे जायें, विवादोंको जन्म दिया जाये, पारस्परिक प्रशंसाएँ की जायें, चर्चाएँ चलायी जायें, गोष्ठियाँ की जायें, विमोचन-समारोह आयोजित किये जायें, मित्रोंके पत्र छापे-छपवायें जायें, टिप्पणियों और सम्मतियोंका अम्बार लगाया जाये, पर वे कालजयी नहीं हो पातीं। उपसाहित्यके ठेके बड़े कमज़ोर होते हैं। छायावादको लेकर क्या कम लिखा गया? समर्थ आलोचकों और समालोचकोंकी ख़ासी पीढ़ी उठ आयी और कालके प्रवाहमें उनका साहित्य (उपसाहित्य) व्यर्थ हो गया। इतना ही क्यों सृजनपरक छायावादी काव्यका कितना शेष है जो आजकी पीढ़ीके विवेक और मनको (साहित्यबोधके महत्त्व-पूर्ण अंशके रूपमें) रुचिकर लगता है। संयोगवश यहाँ मैं विद्यालयीन पाठ्य-क्रमोंमें सम्मिलित विगत पीढ़ीके साहित्यकी चर्चा करना उपयुक्त नहीं समझता, क्योंकि वह छात्रोंकी मजबूरी है। 'सिलेबस'का अधिकांश वर्तमान साहित्य-बोधके व्यापक एवं चेतन केनवासपर-से उठ चुका है, वह अनुकूल नहीं है। फिर भी उनपर लदा हुआ है—लादा गया है।

मुक्तिबोधका उदाहरण सामने है। उनके जीवन-कालमें उनके प्रति क्या लिखा गया? उनकी कविताओंको तब किसीने नहीं उछाला। जब कि उन्हींके समकालीन कवियों और लेखकोंकी साधारण कृतियोंके सिलसिलेमें सैकड़ों पृष्ठ भरे गये। अतएव ऐसा भी होता है कि उपसाहित्य (सपोर्टिंग लिट्रेचर)के अभावमें कभी अच्छा कृतित्व एक पीढ़ीको लाँघ जाता है। मुक्तिबोधको जो दर्जा आज दिया जा रहा है उससे कहीं अधिक उन्हें आगामी वर्षोंमें प्राप्त हो सकता है। इतिहासको रूप बदलकर लौटनेकी आदत होती है। उस वक़्त उपसाहित्यका एक बड़ा अंश पूर्णतः विस्मृत हो चुका होता है और व्याख्या-पुस्तकें, बार-बार प्रयुक्त सन्दर्भोंसे भरे शोध-प्रबन्ध (?) पाठ्य-क्रम सहायक मात्र बनकर रह जाते हैं। उपसाहित्यका यह पक्ष व्यावहारिक है। मध्यम दर्जेकी चीज़ है। शायद इसी खयालसे कवि 'बच्चन' ने समालोचकको 'जन्मना पैरेसाइट (परजीवी) तथा 'क़लम-दावातसे उत्पात मचानेवाला जन्तु' कहा है।

उपसाहित्यका अधिकांश निरपेक्ष नहीं होता। उसमें भावी यथार्थके प्रति अन्तर्दृष्टिका अभाव होता है, क्योंकि सामयिक सन्दर्भोंमें उसकी समग्र निष्ठा

बलवती होती है। विचारोत्तेजन, व्यावसायिकता, गुटबन्दी और ग़ैरतटस्थ-दृष्टि उसकी निजी कमज़ोरियाँ हैं। पत्र-पत्रिकाएँ इन कमज़ोरियोंकी भागीदार हैं। स्पष्ट है, परजीवी साहित्य अथवा उपसाहित्य अपने भीतर उस सीमा तक तत्त्व संचय नहीं कर पाता जहाँ उसे साहित्यका स्तर प्राप्त हो सके। वास्तवमें ऐसा समुचित लेखन उफान है। आर्थिक हितके लिए लिखी गयी कृतियाँ एवं सृजनपरक साहित्यके नामसे लिखा जानेवाला समाचार-पत्रीय स्तरका साहित्य भी कुछ हद तक इसके निकट है। हिन्दी-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होनेवाली सामग्री ज़्यादातर इसी ढंगकी होती है। बहुत-से लेखक इसी स्तरकी रचनाओंकी भित्तिपर चढ़कर एकाएक आगे आ जाते हैं। पाँच वर्षमें पचासों प्रतिभाओंका उदय होता है और पाँच महीनेमें वे समाप्त हो जाती हैं।

दरअसल, उपसाहित्य कालसापेक्ष होता है। साप्ताहिकी या मासिकी स्तरकी उसकी 'रीडरशिप' होती है, क्योंकि वह 'मोटीवेटेड' होता है। इसीलिए उसके-द्वारा उत्पन्न साहित्यान्दोलन और स्थापनाएँ तेज़ीसे झूठी पड़ने लगती हैं। नये आयाम तीव्रतासे आगे खुलते हैं और पिछले सन्दर्भ एकदम खोखले हो जाते हैं। यह परिणाम उन कृतियोंका भी होता है जो दायित्वहीन होती हैं। मात्र फ़ैशनके रूपमें ग्राह्य साहित्य उपसाहित्यके नष्टप्राय: अंशका ही सहायक है। दीर्घजीवी 'रीडरशिप' जिसे उपलब्ध होती है वह इस मिले-जुले विपुल साहित्यसे छनकर ही अस्तित्व प्राप्त करता है। उपसाहित्यकी लुकाटियोंसे मुक्त, जानबूझकर उपेक्षित कृतियाँ अपनी क्षमतासे अधकचरे साहित्यको पीछे ठेलकर सहसा आगे आ जाती हैं। ऐसी स्थितिमें साहित्यका बड़ा अंश, जिसे सुविधाके लिए 'उपसाहित्य' कहा जा रहा है, कालका भोजन सिद्ध होता है। वह भावी इतिहासका आग्रह बनकर जीता है और उसका परजीवी स्वभाव उस भीड़का काम करता है जो अपनी उत्तेजनामें अल्प-आयु नेताओंको जन्म देती है। और अन्धावेगमें ईसाको भी सूलीपर चढ़ा देती है। प्रश्न यह है कि इस स्थितिमें उपसाहित्यका अधिकांश एक प्रकारका मात्र शोर क्यों न स्वीकार किया जाये? ऐसा शोर जो स्वयं अस्तित्वके लिए उभरता है और अकसर जिसके हितमें उभरता है उसका अस्तित्व भी सन्दिग्ध बना देता है।



मैं प्रकाशक कैसे बना

अपनत्व और ईमानदारीके बिना प्रकाशक नहीं व्यवसायी बना जा सकता है। प्रकाशन तो एक सर्जनात्मक प्रक्रिया है—जैसे लेखकके लिए एक कृतिकी रचना।

ओंप्रकाश

अलस्सुबह उठ गया हूँ आज। काग़ज़ोंको उलटते-पलटते कल दिनमें आपका पत्र सामने पड़ गया था—कुछ लिखनेके लिए—इसपर कि मैं सफल प्रकाशक कैसे बना, या कि मैं प्रकाशक कैसे बना।

उठते हुए मनमें एक विचार उभर रहा था—कि प्रत्येक नये प्रकाशनके लिए कैसे मेरे मनमें जोश भर आता रहा, एक बालसुलभ-सा उत्साह, मानो एक प्यारी-सी नयी दोस्ती हासिल हो गयी हो! एक अदम्य, निश्छल उमंग, जिसमें सन्देहकी कहीं गुंजायश नहीं रहती थी। फिर प्रत्येक अगले प्रकाशनके लिए वैसा ही भाव!

आख़िरी फ़र्मेकी छपाई हो चुकनेपर, या जिल्दसाज़के यहाँसे बँधकर आयी पुस्तककी पहली प्रति देखकर ही मैं लगाव महसूस नहीं करता था—इस उन्सकी शुरूआत तभी हो जाती थी जब एक भावी प्रकाशनका विचार मनमें जड़ पकड़ने लगता था—या कि जब किसी ऐसे लेखकसे सम्पर्क होता जिसके लिए मेरे मनमें क़द्र रही हो और जिसके कृतित्वसे मुझे प्यार रहा हो। इस तरह मन-ही-मन एक ठोस रिश्ता मैंने अपने अनेक प्रकाशनोंसे क़ायम किया है—उन्हें अपना आन्तरिक स्नेह दिया है। स्नेह दे सका, तभी तो मैं जानता हूँ उसका प्रतिफल भी मुझे मिला है। रुपये-पैसेके रूपमें नहीं, हरगिज़ नहीं। वह तो एक स्नेह-सम्बन्धको घटिया स्तरपर उतारनेके बराबर होता है। अनेक पुस्तकोंके नाम ले सकता हूँ जो उस मानेमें सफल नहीं हुईं। पुस्तकोंकी सफलताके रहस्यको पा लेना, आजतक कभी, कहीं, सम्भव नहीं हुआ है। मुझे प्रतिफल मिला है एक

अनन्य, अद्‌भुत आत्म-सन्तोषके रूपमें—एक अच्छी नयी पुस्तकको, सजा-सँवारकर प्रकाशित और प्रचारित कर पानेमें !

शायद बहुत ज़रूरी है प्रकाशक और उसके प्रकाशनोंके बीच एक ऐसे मानवीय-से सम्बन्धका स्थापित होना। मैंने हमेशा ऐसा ही सोचा है, लेकिन देखा यह है कि ऐसा अकसर होता नहीं है। बहुतोंको पिंजरापोलकी चहारदीवारीमें बन्द अवाक् पशुओंकी भीड़की तरह अपने प्रकाशनोंसे व्यवहार करते पाया है—ऐसी निर्मम उपेक्षा वे बरतते हैं। कुंजड़िनने साग-भाजी बेच ली, इन्होंने पुस्तकें—कोई फ़र्क़ नज़र नहीं आता। एक अच्छी पुस्तककी माँग तो किसी राजकन्याका वरण करनेके लिए उत्सुक सुयोग्य पुरुष-समूहकी उत्कण्ठा-सी होनी चाहिए, और यहाँ तो एक ही राजकन्याका वरण प्रत्येक पाणिप्रार्थी-द्वारा किया जा सकता है। उसकी अनगिनत एक-रूप प्रतिलिपियाँ प्रस्तुत कर पाना इस तकनीकी युगने सम्भव जो कर दिया है।

लेकिन मुझे अनेक बार यह भी सुननेको मिला है—और मैं इसे आज नम्रभावसे स्वीकार भी करता हूँ...., कि यही मेरी आंशिक 'सफलता' का कारण भी रहा है—कि इस प्रकारके मोहका इस धन्धेमें ही नहीं, किसी भी धन्धेमें कोई स्थान नहीं है। बेचिए, ज़्यादा बेचिए और ज़्यादा मुनाफ़ा कमाइए! तिजोरी और जेब भरनी चाहिए; मन और आँखकी तृप्तिका कोई महत्त्व नहीं। सुनता हूँ और मानता हूँ। लेकिन मुझसे नहीं बनता, कभी नहीं बना। मैं अपनी इस जानी-मानी 'असफलता' से इतना असन्तुष्ट नहीं हूँ कि फिर अवसर आनेपर किसी और धन्धेकी तलाश करता। फिरसे उसी ओखलीमें सिर दिये बिना मुझसे नहीं रहा गया, जब कि आँखें एक लम्बे अरसेके अनुभवने खूब खोल दी थीं।

कई वर्ष पहलेकी बात है। अच्छे मुनाफ़ेका एक व्यवसाय छोड़कर किताबोंके व्यवसायमें आया था। अच्छा-ख़ासा पैसा उस व्यवसायसे आता था। चलता नाम और काम था। ज़मीन-जायदाद थी। लेकिन जब सवाल किसी नये व्यवसायकी स्थापनाका उठा, तो चुना इस प्रकाशन-व्यवसायको। महज़ कारण था पुस्तकें पढ़नेका शौक़! शौक़ ही तो दुनियामें आदमीको मारता है। अमृतसरसे दिल्ली आकर ज़मीनोंकी ख़रीद-बिक्रीमें ही पड़े रहते तो बैंक एकाउण्ट चाहे जितना बड़ा हो जाता, मनकी तृप्ति न होती, यह जानता हूँ। शौक़ पूरा न होता—यह

शौक़ जो अपने शरीर-सुखसे सम्बन्ध नहीं रखता। वह 'सफलता' कभी न मिलती जिसका अनुभव आजकी 'असफलता' में भी होता है। लेखकों, विचारकों और कलाकारोंका वह सामीप्य न मिलता—संवेदनशील प्रकृतियोंको जानने-पहचानने-का अवसर ही न आता, न हो संस्कृतिके स्रोतके इतना नज़दीक होनेका। नये विचारों, नये प्रतीकों, नये बिम्बोंको नित्य जन्म देनेवालोंकी आत्मीयताका पात्र न बन पाता। जिन्हें यह सौभाग्य नहीं मिला, वे नहीं जानेंगे कि मैं क्या कह रहा हूँ। ज़रूरी भी नहीं कि वे जानें।

अजीब चीज है एक पुस्तक। लेखक उसे जितना प्यार करता है—उससे अधिक नहीं तो उतना ही प्यार उसे प्रकाशकसे भी मिलना चाहिए। फिर उसकी सफलता तभी है जब हज़ारों पाठकोंका भी हार्दिक प्यार वह पा सके। कैसी है यह प्यारकी शृंखला—डाहकी बात तो दूर, हर एक अपनी प्रिय पुस्तकमें कई-कई दूसरोंको प्यार करते देखना चाहता है!

ब्रिटेनके एक प्रकाशकने कहा है कि प्रकाशनका धन्धा शरीफ़ोंके अपनानेका धन्धा है—'प्रोफ़ेशन फ़ॉर जेण्टलमेन'। पर शरीफ़ोंके ही नहीं, प्रेम कर सकने-वालोंके भी। लेकिन आज शराफ़त और प्रेमका ज़माना नहीं है—तिकड़म और हथकण्डोंका ज़माना है। अगर प्रकाशनके क्षेत्रमें भी वे केवल घुस ही न आयें, उसपर छा भी जायें, तो आश्चर्यको बात नहीं। पर अपनत्व और ईमानदारीके बिना वे 'प्रकाशक' नहीं बन सकेंगे, केवल व्यवसायी बनकर रह जायेंगे। इस दृष्टिसे इस धन्धेको अपनानेवालोंके लिए शायद सफलताका अर्थ भी यही है। यह अर्थ उन्हींको मुबारिक।

प्रकाशन मेरी नज़रमें एक सृजनात्मक प्रक्रिया है—उसी तरह जैसे एक लेखकके लिए एक कृतिकी रचना। सृजनात्मक होनेके कारण विशिष्ट व्यक्ति-परक भी। लेकिन सभी ऐसा नहीं मानते। कल-पुर्जे और यन्त्र-तन्त्र इकट्ठा करके वे कई हाथके रोएँ तो खड़े कर सकते हैं, उनमें प्राण नहीं फूँक सकते।



प्रकाशित समीक्षाएँ

शेष स्वर

स्तम्भका उद्देश्य है : महत्त्वपूर्ण समकालीन कृतियोंपर प्रकाशित विभिन्न पर विवेकी समीक्षाएँ एक साथ सामने आकर पाठकको कृतिके समग्र व्यक्तित्वसे परिचित करा सकें। प्रस्तुत हैं यहाँ मोहन राकेशके बहुचर्चित उपन्यास 'अँधेरे बन्द कमरे' पर समीक्षाएँ

'अँधेरे बन्द कमरे'

प्रकाशकी किरणोंकी खोज

साहित्यिक अभिव्यंजनाके रूप युग-युगमें बदल सकते हैं, पर साहित्यके मूलगत उद्देश्योंमें कोई परिवर्तन सम्भव नहीं है। यदि युग-विवर्तनके साथ उनमें भी परिवर्तन होने लगे तो साहित्य साहित्य नहीं रहेगा, फिर चाहे उसमें कैसी ही कलात्मक चातुरीका प्रदर्शन क्यों न हुआ हो। तब साहित्यके स्थानपर उसे कोई नया नाम देना होगा।

साहित्यका प्रधान और मूलगत उद्देश्य क्या है, इस सम्बन्धमें प्राचीन कालसे लेकर बीसवीं सतीके प्रारम्भिक दशकों तक प्राच्य और पाश्चात्य आलोचकोंमें विशेष मतभेद नहीं रहा। शब्दोंके कुछ हेर-फेरके साथ सभी बराबर यही मानते रहे हैं कि साहित्य शब्दोंकी वह कलात्मक अभिव्यक्ति है जो हर युगमें जीवनकी छिपी हुई परतोंको उघाड़ती है, युग-युगमें जीवनके बदलते हुए रूपों और रहस्यों-पर नया प्रकाश डालती रहती है, और प्रत्येक युगके जीवनको युग-युगके जीवन-सन्दर्भकी कसौटीपर कसकर, उसे एक नयी अर्थवत्ता प्रदान करनेके साथ ही चिर कालीन मूल जीवन-धाराके साथ उसकी संगति बिठाने और दिखानेमें कोई बात उठा नहीं रखती।

आजकी मूलतः बदली हुई परिस्थितियोंकी पृष्ठभूमिमें नये जीवनकी जो चंचल हिलोरें मूल जीवनके तटसे टकराती हुई अठखेलियाँ कर रही हैं, वे किसी भी हालतमें मूल जीवनसे भिन्न नहीं हैं, बल्कि उसीसे उद्भूत हैं। यह ठीक है कि जीवनके पिछले रूपोंकी तुलनामें, उनके बाहरी रूप-रंग और आकार-प्रकारमें काफ़ी बदलाव दिखाई देता है। और वह बदलाव साधारण दर्शककी दृष्टिमें यह भ्रम पैदा कर सकता है कि जीवनके मूलगत अन्तरीण रूपमें भी परिवर्तन आ गया है। पर युगके किसी प्रतिनिधि साहित्य-सर्जककी दृष्टिमें भी यदि यही भ्रम समा जाये तो वह स्थिति चिन्ताजनक हो उठती है। तब इस भ्रमात्मक दृष्टिका फल यह देखनेमें आता है कि कलाकार उस विशेष युगके जीवनके अन्तःरहस्योंका उद्घाटन करनेके बजाय केवल युगको बदली हुई ऊपरी वेश-भूषाका विश्लेषित चित्र प्रस्तुत करके ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझ रहा है। 'अँधेरे बन्द कमरे'-के लेखकके सम्बन्धमें यही बात लागू होती है।

मुझ-जैसे पुराने साहित्यकारको, जिसने पिछले युगके जीवनको अपनी पुरानी दृष्टिसे देखा-परखा है, और जो आजके नये जीवनके भीतरी रहस्योंसे परिचित होनेके लिए व्याकुल है, युग-प्रतिनिधि कहानीकार मोहन राकेशकी इस नयी औपन्यासिक कृतिसे यह आशा थी कि वह आधुनिकतम भारतीय जीवनकी जटिल ग्रन्थियोंको समझनेमें सहायक सिद्ध होगी। पर इस उपन्यासको पूरा पढ़ चुकनेके बाद भी मेरे मनका अँधेरा हटा नहीं, युगके अँधेरे और बन्द कमरोंके किवाड़ोंको लेखकने अधखुला ही छोड़ दिया, और उन अधखुले किवाड़ोंके भीतरकी कोई झाँकी वह न दिखा सका—उनके भीतरके केवल काले और नीले परदोंके वर्णनमें ही उलझकर रह गया।

इस उपन्यासके अस्पष्ट और उलझे हुए उद्देश्यकी तरह ही इसकी कहानी भी बिखरी हुई, विचित्र और ऊबड़-खाबड़ है।

नये-नये परिच्छेद एकके बाद एक आते रहते हैं उनमें न वातावरणमें कोई खास परिवर्तन होता है (केवल लन्दन और पैरिससे सम्बन्धित दो-तीन परिच्छेदोंको छोड़कर), न जीवनकी और न पात्र-पात्रियोंके मनकी परिस्थितियोंमें ही कहीं किसी प्रकारका कोई परिवर्तन पाया जाता है। यहाँतक कि कथोपकथनोंके रंग-ढंग और व्यंग्यार्थ भी प्रति पृष्ठमें बार-बार दोहराये गये-से लगते हैं—पाठक बार-बार एक अजीब-सी घुटनका अनुभव करने लगता है। हालाँकि मैं अच्छी

तरह जानता हूँ कि यह बात अतिरंजित और अविश्वसनीय लगती है--स्वयं मुझे भी। पर कई बार दोहरा-दोहराकर पढ़नेपर भी मुझे अपने मत-परिवर्तनकी कोई गुंजाइश नहीं दिखाई दी।

तारीफ़की बात यह है कि यह उपन्यास प्रारम्भसे ही एक ऐसी शैलीमें लिखा गया है जो साधारणतः प्रति पग--अर्थात् परिच्छेद—में पाठककी रहस्यान्वेषी उत्सुकताको उभारते रहनेके लिए अपनायी जाती है। इस शैलीमें 'नैरेटर' इस ढंगसे कथातत्त्व (या कथनीय तत्त्व) को आगे बढ़ाता जाता है जिसमें कुछ पीछेकी और कुछ आगे आनेवाली घटनाओं (या क्रियाकलाप) का केवल रहस्यमय संकेतपूर्ण आभास देते हुए लेखक धीरे-धीरे बड़ी ही रसमयता और इत्मीनानके साथ राज़की गाँठें खोलता जाता है। यह शैली यदि ठीक तरहसे निभ जाये तो वह जितनी ही कलापूर्ण होती है उतनी ही प्यारी भी। इसका निभाव ऊँचे और नीचे दोनों स्तरोंपर हो सकता है। अर्थात् इसमें दास्ताएव्स्कीकी कोटिकी उच्चतम स्तरीय रचनाएँ भी लिखी जा सकती हैं और माँमकी-सी छिछले क़िस्मकी निम्नस्तरीय रचनाएँ भी। पर निभाव दोनोंमें सटीक है और दोनों अपने-अपने स्तरोंमें मज़ा दे जाते हैं। पर जहाँ सुनियोजित निर्वाह न हो, ऊबड़-खाबड़पन बहुत हो, कुतूहल बहुत अधिक उभारा जा रहा हो, पर उसके निवारणमें बराबर 'एण्टीक्लाइमेक्स' की कलाको अपनाया जा रहा हो, जहाँ शैली और नियोजनमें छत्तीसवाले तीन-छहका सम्बन्ध हो, वहाँ लेखक, पाठक और आलोचक, तीनोंकी समस्या टेढ़ी बन जाती है। लेखक स्वयं अँधेरेमें टटोलता रह जाता है—पाठककी कल्पना बार-बार पिंजर-मुक्त होकर उन्मुक्त उड़नेको छटपटाते रहनेपर भी बार-बार दरवाज़ा बन्द पाकर अपनेको 'फ्रस्ट्रेटेड' अनुभव करने लगती है; और आलोचक उन अँधेरे और बन्द कमरोंके दरवाज़ोंपर धक्के देकर, बलपूर्वक उन्हें तोड़कर, उनकी खिड़कियाँ खोलकर, उनके भीतर प्रवेश करनेपर जब देखता है तब उसे यह सोचकर हैरानी होने लगती है कि आखिर इन सूने और रीते कमरोंको इस क़दर रहस्यमय बनानेकी आवश्यकता ही क्या थी ?--या क्या हो सकती है ? कमसे कम मेरी अपनी समस्या तो यही है।

मुझे उपन्यासमें हरबंस और नीलिमा (और उनके सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियों) के भीतरी व्यापारों, बाहरी क्रिया-कलाप और ऊपरी परिस्थितियोंमें, प्रारम्भसे लेकर अन्त तक, रंच मात्र भी परिवर्तन नहीं दिखायी दिया (कुछ बहुत

ही साधारण और महत्त्वहीन प्रसंगोंको छोड़कर) प्रारम्भमें ही हरबंसके सम्बन्ध-में लेखक यह उत्सुकता जगा देता है कि उसका वैवाहिक जीवन कुछ रहस्यमय परिस्थितियोंमें चल रहा है। स्वभावतः पाठकको यह उत्सुकता होती है कि वे रहस्यपूर्ण परिस्थितियाँ क्या हैं। जल्दी ही उसका परिचय नैरेटरके द्वारा हरबंस-की पत्नी नीलिमासे हो जाता है। वह देखता है कि सिगरेट सब समय और ह्विस्की दिनमें एक-आध बार पीनेवाली नयी दिल्लीकी, नये फ़ैशनेबुल समाजकी एक प्रायः पैंतीस वर्षीया युवतीको, जो ललित कलाप्रेमी है, हरबंस उसके सारे क्रिया-कलाप, सभी कलात्मक योजनाओंमें उसका साथ अन्त तक देता है; पर मन-ही-मन उससे असन्तुष्ट रहता है—ऐसा वह नैरेटरको बताता रहता है। पर कारण ? कारण वह कुछ भी नहीं जानता; और स्वयं नैरेटर भी पाठकके इस तीव्र और उचित कुतूहलके निवारणका कोई संकेत प्रायः अन्त तक नहीं देता। अन्तमें नीलिमा नैरेटरसे जो कुछ कहती है, उससे यह हलका-सा एकतरफ़ा आभास मिलता है कि हरबंस ईर्ष्यालु है। पर इस अन्तिम समाधानसे पाठक अपनेको बहुत बड़े धोखेमें पाता है और हरबंस यदि ईर्ष्यालु हो भी तो उसकी वह ईर्ष्या बहुत ही साधारण और स्वाभाविक-सी ईर्ष्या हो सकती है, क्योंकि ऊपरसे वह कुछ भी सोचे (अर्थात् उससे जो कुछ भी सोचवाया गया हो), यह बात सिद्ध होती चलती है कि अपने सचेत मनसे ही वह नीलिमाको बराबर चाहता है और उसे छोड़कर वह दो दिन भी नहीं रह सकता। और नीलिमा भी उसे छोड़ नहीं सकती। अन्तमें यह बात स्पष्ट भी हो जाती है।

पर, पाठक पूछता है कि जीवनके इतने सहज, सीधे और अत्यन्त साधारण बचकाने चक्रको—जिसमें न मनोवैज्ञानिक गहराइयोंमें जानेकी कोई आवश्यकता है और न तीव्र संवेदनाओंकी ही कोई गुंजाइश है—आदिसे अन्त तक इतना अधिक रहस्यमय रूप क्यों दिया गया ?

एक विशेष बात इस उपन्यासके सम्बन्धमें यह भी ध्यानमें रखने योग्य है कि प्रायः सारे उपन्यासकी प्रमुख घटनाओं—या नायक-नायिकाकी प्रतिदिनकी मानसिक प्रतिक्रियाओंके चित्र पाठकके आगे परोक्ष रूपमें उभारे जाते हैं—उन्हें प्रत्यक्षमें देखने, सुनने, कल्पना करने और समझनेका कोई अवसर ही नैरेटर नहीं देता। हरबंश नैरेटरको नीलिमा और उसके परिवेशके सम्बन्धमें जो कुछ बताता है, वह उसे ज्योंका त्यों लिपिबद्ध कर देता है और स्पष्ट ही वह यह आशा करता

है कि पाठक हरबंसकी रँगी हुई पूर्वग्रही आँखोंसे नीलिमाका सही चित्र अपने मनमें उतार लेगा; और नीलिमा निजी आँखोंमें प्रतिबिम्बित हरबंसका जो रूप चित्रित करती है, पाठकको उसीके नायकके सच्चे रूपकी कल्पना करके सन्तुष्ट (अर्थात् असन्तुष्ट) रह जाना पड़ता है। क्योंकि नैरेटर यद्यपि हरबंस और नीलिमा दोनोंके निकट सम्पर्कमें रहता है, तथापि वह अपनी तथाकथित 'तटस्थ' दृष्टिसे उनमें-से किसीके भी चरित्रका यथार्थ प्रस्फुटन करना पसन्द नहीं करता। वह केवल अलग-अलग शीशोंमें झलकते हुए उनके विभिन्न प्रतिबिम्बोंको प्रक्षिप्त करता हुआ चलता है। फल यह देखनेमें आता है कि दोनोंमें-से एकका भी व्यक्तित्व सुस्पष्ट, सजीव और मूर्त रूपमें पाठकके आगे प्रस्फुटित नहीं हो पाता। दोनों जैसे पुआलके बने स्प्रिंगदार पुतले हों, जिन्हें ऊपरसे मनमाने ढंगसे सजाकर लेखक (या नैरेटर) इच्छानुसार नचाता चलता है। केवल प्रधान पात्रोंका ही नहीं, किसी भी गौण पात्रका व्यक्तित्व (एकाध अपवादको छोड़कर) कहीं भी प्रस्फुटित नहीं हो पाया है। कारण यही है कि उपन्यासके वे सारे पात्र प्रत्यक्ष रूपसे एक-दूसरेके आमने-सामने आकर नहीं टकराते। उनके सम्बन्धमें अधिकांशतः नैरेटर ही अप्रत्यक्ष परिचय पाठकको एक संवादपत्रके रिपोर्टरकी तरह देता है।

सारे उपन्यासमें केवल एक पात्र (बल्कि पात्री) ऐसी है जो अपनी धड़कती हुई सजीवता और सप्राणताके साथ पाठकके मनको पुलक-भरी विह्वलतासे गुद-गुदाती है। यह पात्री है क़स्साबपुराकी ठकुराइन, जिससे नैरेटर पाठकको प्रारम्भमें ही परिचित कराता है, पर जिसे वह शीघ्र ही दूधकी मक्खीकी तरह अलग फेंक देता है—अत्यन्त उपेक्षासे; शायद इस कारण कि नयी दिल्लीके फ़ैशनेबुल पुतलों और पुतलियोंकी झूठी चमक-दमक और उधार ली हुई तड़क-भड़कके आगे उस देहाती महिलाके संवेदनात्मक अन्तर्व्यक्तित्वका तनिक भी महत्त्व सूदनके लिए शेष नहीं रह जाता।

जो लेखक ठकुराइन-सी सहज-साधारण पात्रीके चरित्रको एक अत्यन्त सीमित दायरेके भीतर भी ऐसी मार्मिक सजीवतासे चित्रित कर सकता है, उसकी क्षमता-के सम्बन्धमें सन्देह करनेका कोई कारण आलोचकके लिए नहीं रह जाता। और इसीलिए उसके आश्चर्यकी कोई सीमा नहीं रहती जब वह देखता है कि ऐसी गहरी अन्तर्दृष्टि और ऐसी सुन्दर चित्रकारीकी योग्यता रखते हुए भी वह नयी दिल्लीके उस आधुनिकतम जीवनके चित्रणमें इस क़दर असफल कैसे सिद्ध हो

गया, जिससे स्पष्ट ही वह घनिष्ठतम रूपसे परिचित है। उस फ़ैशनेबुल दुनियामें प्रतिक्षण साँस लेते रहनेपर भी वह उसकी सतहके नीचेकी जटिलताका सही रूप अपनी भीतरी आँखोंमें नहीं उतार पाया, जबकि ठकुराइनकी दुनियासे उसका केवल ऊपरी सम्बन्ध रहनेपर भी उसके चित्रणमें उसने जान फूँक दी—इस प्रत्यक्ष विरोधाभासका रहस्य क्या हो सकता है ?

मुझे इसका केवल एक ही कारण नजर आता है। लेखकने यद्यपि असंपृक्त शैलीमें इस उपन्यासकी कथा वर्णित की है और चरित्रोंका चित्रण किया है, तथापि लगता है कि वह अपने वास्तविक जीवनमें नयी दिल्लीकी फ़ैशनेबुल दुनियासे इस क़दर सम्पृक्त और व्यक्तिगत रूपसे उलझा हुआ रहा है कि वह अपने कलाकारके रूपमें भी—अपने सारे प्रयासोंके बावजूद—उस जीवनसे अपना अलगाव क़ायम न रख सका। यही कारण है कि वह क्षमता रखते हुए भी नयी दिल्लीकी दुनियाकी ऊपरी सतहके भीतर पैठकर उसके उन गहन रहस्यजालोंका कोई भी आभास पाठक-को देनेमें असमर्थ रहा, जो आधुनिकतम जीवनकी जटिलतम समस्या बने हुए हैं।

'अँधेरे बन्द कमरे' में आधुनिकतम जीवनकी जो झाँकी हमें देखनेको मिलती है वह ऐसी सतही और छिछली है कि केवल दो-तीन सप्ताहके लिए ऊपर ही ऊपरसे नयी दिल्लीकी सैर करनेवाला साधारण रूपसे समझदार व्यक्ति भी शायद उतनेसे अधिक देख लेता है। काफ़ी-हाउस, सिनेमा आदिमें प्रतिदिन विचरण करते रहनेवाले युवक-युवतियों, सिगरेटके कशों और सोडा ह्विस्कीकी चुस्कियोंसे सारे वातावरणको गरम किये रहनेवाली महिलाओं, ललित कलाओंके नयेसे नये फ़ैशनोंसे प्रतिक्षण परिचित और सम्पृक्त रहनेवाली 'कैरीयरिस्ट' तरु-णियों, नाट्य और नृत्य-कला-प्रदर्शन-द्वारा ख्याति पानेकी महत्त्वाकांक्षिणी रूपसियों; किताबी कलात्मक अनुभूति और आधुनिकतम साहित्यका फ़ैशनेबुल ज्ञान लिये, 'बीटनिकों' की तरहकी दाढ़ी या विचित्र फ़ैशनका चश्मा लगाये, चुस्त पैण्टों और अधबँहिया खुली क़मीज़ोंके साथ रूखे बालोंको बिखराये फिरने और अकड़कर चलनेवाले नये तरुणोंकी प्रकट और प्रत्यक्ष दुनियासे परिचित होनेमें किसी भी सैलानीको अधिक समय नहीं लग सकता। तब एक उपन्यासमें उसी ऊपरी और सतही जीवनकी अखबारी रिपोर्टिंग या कलात्मक चित्रणकी विशेषता ही क्या रही ? जबतक कोई साहित्य-कलाकार उस फ़ैशनेबुल जीवनकी सतहको खोदकर, उसकी गहराइयोंमें पैठकर, उसके भीतर धधकती हुई अवचेतनाकी प्रचण्ड

ज्वालाओंको सहज और यथार्थ रूपमें प्रदर्शित न कर सके, या उसके भीतर उभरती हुई सघन और घोर यथार्थ संवेदनाओंका सहज प्रस्फुरण न कर पाये, तब तक आधुनिक जीवनके चित्रणका कोई महत्त्व नहीं माना जा सकता।

अब सुनिए इस निबन्धका उपसंहार : जब मैंने फिरसे अपनी इस आलोचनाको पढ़ा तो लगा कि एकांगीय है और अतिरंजनाओंसे भरी है। एक पुराने धुराने आलोचककी आँखोंमें नयेके प्रति जो पूर्वग्रही रंग चढ़ा रहता है, सम्भवतः उसका पूरा प्रभाव इसमें वर्तमान है। इसके अतिरिक्त इसे पढ़कर यह सन्देह भी होने लगता है कि इस आलोचनामें उस ईर्ष्याका पुट भी कदाचित् यत्र-तत्र वर्तमान है जो साधारणतः एक ही वर्गके लेखकोंमें सहज मानवीय विज्ञानके अनुसार, परस्पर पाया जाता है।

इसलिए यदि हम आधुनिकताका चश्मा चढ़ाकर, आधुनिकतम साहित्यालोचककी दृष्टिसे ही इस आधुनिक उपन्यासको पढ़ें तो सारा परिप्रेक्ष्य ही बदल जाता है। तब हम पाते हैं कि इसमें पुरानी कलाका थोड़ा-बहुत पुट रहते हुए भी अधिकांशतः एक बिलकुल ही नये रूपविन्यासको अपनाया गया है, जो आजके जीवनके चित्रणके लिए सम्भवतः विशेष अनुकूल पड़ती है।

सहज-स्वाभाविकताकी भी कोई कमी हमें इस उपन्यासमें नहीं मिलती। हरवंस और नीलिमाके समान पात्र भीतरसे चाहे कैसे ही खोखले क्यों न लगते हों, पर हैं वे यथार्थ ही। आजके आधुनिकतम जीवनमें ऐसे पात्रोंकी कोई कमी नहीं है। नयी दिल्लीकी गलीमें हम उन्हें पा सकते हैं।

आधुनिकतम कलाके नियमके अनुसार लेखक हर परिस्थितिमें भावुकताके संस्पर्शसे सचेष्ट रूपसे बचता हुआ चलता है। उसके रिपोर्टरका रूप इस सम्बन्धमें उसकी रक्षा करता है। वह उसे भावोद्वेलनके भँवर-जालमें कहीं फँसने नहीं देता।

और इस नयी दृष्टिसे देखनेपर उपन्यासका उद्देश्य भी स्पष्ट-सा होने लगता है। लगता है जैसे आधुनिकतम जीवनका खोखलापन दिखानेके लिए ही इस उपन्यासकी रचना हुई है। इसलिए अन्तमें सूदन उकताकर क़स्साबपुराकी गलीके परिवेशकी ओर लौट पड़ता है। अतएव मुझ-जैसे पुराने और पूर्वग्रही आलोचकको इतना तो मानना ही चाहिए कि 'अँधेरे बन्द कमरे' में नयी औपन्यासिक कला अपने ही दायरेके भीतर सार्थक सिद्ध हुई है।

—इलाचन्द्र जोशी
(माध्यम)

• 'मैला आँचल'का शहरी प्रतिरूप

हिन्दीके नये लेखकोंमें स्त्रीके प्रति जिस तरहका अनुदार दृष्टिकोण मैंने अकसर पाया है, उससे मुझे कभी-कभी बड़ा अचरज होता है। हिन्दुस्तानकी औरत बहुत बड़े अन्यायोंसे पीड़ित है इसका एहसास तो आम तौरपर सभी 'नये' लेखकोंमें मिलता है, लेकिन जहाँ इससे थोड़ा आगे जाकर वैयक्तिक और सामाजिक सम्बन्धोंकी बात आती है वहाँ हिन्दीका नया लेखक अपनेको अजीब असमंजस और मजबूरीमें पाता है। परम्परा और संस्कार ही नहीं, विचार-दर्शनके भी जो दायरे हिन्दीके नये लेखकने स्वीकार कर लिये हैं, वे उसे इस मजबूरीसे उबरने नहीं देते। 'अज्ञेय' इस मामलेमें सबसे अधिक उदार हैं या यूँ कहूँ कि सबसे कम अनुदार हैं क्योंकि 'नदीके द्वीप' की रेखा भी भुवनसे मिलनेके समय अक्षत-यौवना है और अन्ततः भुवन रेखाका प्रेम-पात्र होकर भी गौराका 'स्नेह-शिशु' होकर रह जाता है। दूसरोंकी बात तो जाने ही दीजिए। मोहन राकेशपर अगर यह आरोप लगाया जाये कि वे स्त्रियोंके सम्बन्धमें अनुदार हैं, तो शायद उनको स्वयं भी अचरज होगा, क्रोध भी आयेगा। लेकिन 'अँधेरे बन्द कमरे' पढ़नेके बाद इस नतीजेपर पहुँचनेसे बचा नहीं जा सकता। उपन्यासके सभी पात्रोंमें एक भी स्त्री ऐसी नहीं है जिसका आप आदर कर सकें। खुरशीदके साथ सहानुभूति हो सकती है, अन्य स्त्री पात्रोंके साथ वह भी मुश्किल है। वे या तो क्षुद्र हैं या मूर्ख और हीन। लेखकको क्षुद्र महत्त्वाकांक्षावाली स्त्रियोंकी अपेक्षा मूर्ख और हीन स्त्रियाँ अधिक पसन्द हैं, लेकिन इस दृष्टिके बारेमें मैं क्या कहूँ?

सुषमा क्षुद्र है, क्योंकि वह आर्थिक स्वतन्त्रता और सुविधाओंके लिए एक दूतावासके हाथों अपनेको बेंच देती है, किस रूपमें यह स्पष्ट नहीं है। उसके उलटे निम्मा है, जो मधुसूदनकी पत्नी बनकर धन्य हो जायेगी, जो बाँहोंमें कस लेनेपर इस तरह देखती है जैसे उसके साथ कोई बहुत ही रहस्यमय घटना घटित हो रही हो। नीलिमा आरम्भसे अन्त तक अपनी क्षुद्र महत्त्वाकांक्षाएँ लेकर जिन्दगीके साथ सिर पटकती रहती है। विवाहके पहले भ्रूण-हत्या, चित्रकलाका झूठा शौक, असुविधाओंसे बचनेके लिए पहले नृत्यकलाका व्यावसायिक प्रयोग,

फिर ख्याति प्राप्त करनेकी झूठी आकांक्षा, विदेशी दूतावासकी नौकरी कर लेने लिए पतिपर दबाव। उसकी बहन शुक्ला सुन्दर और मूर्ख है। लेकिन नीलिमासे अच्छी है क्योंकि 'घर' को 'घर' बनाकर रखती है, महत्त्वाकांक्षाओं मुक्त है, और अन्तमें नीलिमा भी उससे सबक़ लेकर रास्तेपर आ जाती है, "मु लगा कि···शायद अब यही ठीक है।"

'अँधेरे बन्द कमरे' पढ़कर हलका-सा आभास होता है कि यह 'मैला आंच का शहरी प्रतिरूप है। शायद लेखकके दिमाग़में भी, कमसे कम परोक्षमें, बात रही हो : "भारतमाता क्या हमेशा गाँवोंमें ही रहती है, और दिल्ली क नहीं आती····?" लेकिन इस तुलनाको ज़्यादा दूर तक ले जाना दोनों रचनाओं साथ अन्याय होगा। 'अँधेरे बन्द कमरे' भी कोई एक कहानी न होकर क कहानियोंका समूह है। लेकिन ये कहानियाँ अपने-आपमें पूर्ण हैं। इन कहानियों और समूची रचनाकी भी लेखकके दृष्टिकोण-द्वारा निर्धारित दिशा है, जो 'मै आँचल' में नहीं है। रचनाके अन्तमें कथाको समेटनेमें भी मोहन राकेश 'रेणु' से अधिक सफलता मिली है। लेकिन दोनोंमें एक और भी बहुत ब अन्तर है। 'मैला आंचल' एक विशाल चित्र है। उसके पात्र अपनी जिन्दगी जी हैं। 'अँधेरे बन्द कमरे' एक विश्लेषण है, शल्य-क्रिया है। जहाँ लेखक स्वयं ऐ नहीं करता, वहाँ पात्र स्वयं अपनी और अन्य पात्रोंकी शव-परोक्षा-सी करते है नीलिमा और हरबंस तो सारी पुस्तकमें एक-दूसरेकी शव-परीक्षा ही करते र हैं। यह अन्तर्मुखी दृष्टि या आत्म-परीक्षण नहीं है, शल्य-क्रिया है। और इस फलस्वरूप नीलिमा और हरबंसके अन्तर्द्वन्द्वकी कथा बहुत कुछ एक लम्बी ब बनकर रह गयी है। मोहन राकेशसे कम कुशल शिल्पीके हाथों पुस्तक उबानेवा बन जाती। अभी भी, इन दोनों पात्रोंकी कथा एक सतही, दिमाग़ी अ डालती है, अनुभूतिके स्तरपर पाठकको बहुत कम स्थलोंपर छू पाती है, यद्य लेखकको जहाँ इसकी आवश्यकताका अनुभव हुआ, वहाँ वह पात्रोंके स्थानप खुद भी जाकर बोलने लगा है।

खुरशीद और इबादत अली, ठकुराइन, निम्मा, सुषमा, और मधुसूद हरबंस, शुक्ला और सुरजीत; हरबंस, शुक्ला और नीलिमा; इन सबकी अलग अलग अपने-आपमें पूरी कहानियाँ हैं। स्वयं हरबंस और नीलिमाके अन्तर्द्वन्द्व अलग-अलग तीन कहानियाँ हैं। और ये सब आपसमें सिर्फ़ इसलिए जुड़ी हुई

कि इनके पात्र एक ही हैं।

नीलिमा और हरबंसके अन्तर्द्वन्द्वकी कथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जिन सामाजिक प्रश्नोंको लेखकने उठाना चाहा है, वे भी अधिकांश इस कथामें ही उभरे हैं। पहली कहानी है भ्रूण-हत्याके अपराधकी भावनाके फलस्वरूप हरबंसके नीलिमासे भागनेकी प्रवृत्ति और दूर जानेपर, इस एहसासको कि वह नीलिमाके बिना नहीं रह सकता। इस कहानीमें वह नीलिमाको नृत्य सीखनेसे रोक देता है, और चित्रकलाकी ओर प्रेरित करता है, नीलिमाके अनुसार अपने दक़ियानूसी दृष्टिकोणके कारण। दूसरी कहानी है युरोपमें नीलिमा-द्वारा अपने नृत्यके व्यावसायिक प्रदर्शन और हरबंसकी उससे चिढ़की। इसमें जुड़ी हुई है नीलिमा-द्वारा पेरिसमें हरबंससे अलग रहनेकी चेष्टा और उसका एहसास कि वह हरबंससे अलग नहीं रह सकती। इस बीच एक ओर वह दक़ियानूसी न रहकर नीलिमाकी कलाको प्रोत्साहन देनेकी चेष्टा करता है, और दूसरी ओर, इस सवालसे भी परेशानी है कि पेरिसमें वह बेवफ़ा तो नहीं रही। तीसरी कहानी है नीलिमा-द्वारा प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा पाने और दूतावास-द्वारा हरबंसको खरीदनेकी चेष्टाओंकी।

सारी कथाको गति प्रदान करनेवाला सूत्र है हरबंसका किसी भी स्थलपर यह समझ न पाना कि वह चाहता क्या है, उसका अपना रास्ता क्या है? जैसे इसकी पूर्ति करनेके लिए वह नीलिमा और शुक्लाके रास्ते बनाने लगता है जिसके परिणाम उनके लिए भी दुःखद होते हैं, हरबंसके लिए भी। नीलिमा कलाकार न बनकर ख्याति, प्रतिष्ठा और भौतिक सुविधाओंकी आकांक्षासे ग्रस्त हो जाती है और शुक्ला सुरजीतकी दूसरी या तीसरी बीवी बनती है। हरबंस और नीलिमाके विवाहके पहलेके सूत्र लेखकने उपन्यासके अन्तमें इस तरह रख दिये हैं जैसे पहलेकी कुंजी पाठकके हाथमें दे रहा हो। इस बातसे थोड़ा अचरज ज़रूर होता है कि मधुसूदन पहले हरबंसकी फ़ाइल देखकर कुछ समझ ही नहीं पाता, यह जानते हुए भी कि उसमें हरबंसकी अपनी कहानी है। लेकिन बादमें फ़ाइलोंके कुछ काग़ज़ पलटनेसे ही सूत्र उसके सामने आ जाते हैं।

दूतावास-द्वारा हरबंसको खरीदनेकी चेष्टा भी अन्तमें रहस्योद्घाटनकी तरह आती है। लेकिन नीलिमाके 'वापस लौटने' को लेखकने इन बातोंसे प्रभावित करना नहीं चाहा, और इस कारण ये बातें केवल मधुसूदनके सामने आती हैं,

नीलिमाके सामने नहीं । हर पात्रके सामने दूसरे रास्ते भी हैं । वे टूटते नहीं दूसरे रास्ते पकड़ लेते हैं ।

शल्य-क्रिया-जैसा शिल्प होनेपर भी, पात्रोंमें अथवा उनकी कहानियों यान्त्रिकता नहीं है । राजेन्द्र यादवने एक बार मोहन राकेशकी कहानियों शिल्पकी अपनी कहानियोंके शिल्पसे तुलना करते हुए कहा था कि राकेशके शिल्पमें 'तराशकी सफ़ाई' होती है जब कि वे स्वयं कथाके सूक्ष्म तन्तुओंको बिना क्षति पहुँचाये उभारनेकी चेष्टा करते हैं । 'अँधेरे बन्द कमरे' में ये दोनों ही प्रयोग हैं । परिधिकी कहानियोंमें—खुरशीद और इबादत अली; मधुसूदन सुषमा, और निम्मा—तराशकी सफ़ाई है । हरबंस और नीलिमाकी कथामें उसके सूक्ष्म तन्तुओंको प्रस्तुत करनेका प्रयास है । परतोंपर परतें हैं, उनके ऊपर और परतें हैं । लेकिन ये परतें ज़िन्दगीके चित्रणमें नहीं उभरतीं, तेज़, महीन धारके चाक़ूसे काट-काटकर प्रस्तुत की जाती हैं । सुरजीत, शुक्ला और हरबंसकी कहानीका सुरजीत और शुक्लासे सम्बन्धित अंश इन दोनों कोटियोंमें नहीं आता और पाठकको असन्तुष्ट-सा छोड़ता है ।

सारा उपन्यास पढ़ जानेपर (शिल्पकी स्वभावगत सीमाओंके बावजूद, गो मैं समझता हूँ कुछ लोग इस शिल्पको ही लेखककी उपलब्धि कहेंगे) उसकी कहानियाँ मनमें घुमड़ती रहती हैं और मनपर एक विषादका प्रभाव छोड़ती हैं। एक ओर क्षुद्र महत्त्वाकांक्षाएँ, व्यावसायिकता, और अपनी आत्माको बेचना, दूसरी ओर जड स्थिरता, मूर्खता, हीनता, और यथास्थितिके साथ समझौता। जो रास्ता है, वह दरअसल कोई रास्ता नहीं है । सैद्धान्तिक ज़िन्दगी और व्यक्तिगत ज़िन्दगीमें खाई रखे बग़ैर जिया ही नहीं जा सकता । सुषमाके शब्दोंमें "उसे ज़िन्दगी दो दिनमें बुहारकर एक तरफ़ कर देगी।" लेकिन 'अँधेरे बन्द कमरे' में कोई इस तरह टूटता नहीं । प्रच्छन्न व्यंग्यके माध्यमसे एक गहरा विषाद मनपर छा जाता है । 'हवामें कहीं एक कोहेनूर झिलमिलाता है ।' कहाँ ? कि हरबंसमें एक अव्यक्त उद्देश्य और एक अनजाने रास्तेकी तलाश बाक़ी है ? कि मधुसूदन क़स्साबपुरेकी तंग गलियोंमें लौट जाता है जहाँ तने हुए शरीर और भोगी आँखोंवाली निम्मा है ? कि शुक्ला सुरजीतसे जो कुछ पाती है, उसे लौटानेमें लगी है और नीलिमा भी यही सीख लेती है ?

दरअसल कोई रास्ता नहीं है। और इस कारण उपन्यासके मुख्य पात्र वर्तमानमें नहीं, अतीतमें जीते हैं और एक अनिर्दिष्ट भविष्यके लिए जीते हैं। जो वर्तमानमें जीते हैं वे यथास्थितिसे समझौता करके, जैसे शुक्ला और सुरजीत– क्या सचमुच कोई रास्ता नहीं है? क्या सचमुच खाई भरी नहीं जा सकती? क्या सचमुच स्त्री या तो क्षुद्र होती है या मूर्ख?

कभी-कभी मुझे लगता है कि हिन्दीके प्रतिष्ठित लेखकोंसे भी तथ्योंके सम्बन्धमें सावधानी बरतनेकी आशा ही नहीं करनी चाहिए। वे अपने विचारोंमें ही इतने खोये रहते हैं कि तथ्योंके बारेमें एक सीमासे अधिक ध्यान दे ही नहीं सकते। फिर भी, इस ओर ध्यान दिलाना मैं आवश्यक समझता हूँ क्योंकि इससे दिमाग़की असावधानीका पता चलता है और अगर आप तथ्योंके सम्बन्धमें असावधान हैं, तो विचारोंमें असावधानी कोई अचरजकी बात नहीं होगी।

लेखकने ग़ज़नीको नादिरशाहकी राजधानी बताया है। वस्तुतः ग़ज़नी अफ़गानिस्तानमें है और नादिरशाह ईरानका बादशाह था। उस समय ईरानकी राजधानी इस्फ़हान थी। जीवन भार्गव एक जगह आर्ट डिज़ाइनर है, दूसरी जगह इण्डस्ट्रियल डिज़ाइनर। दोनों क्या एक ही होते हैं?

बर्मी कलाकारका नाम लेखकने ऊबानू रखा है। जहाँतक मुझे मालूम है, 'ऊ' नामका अंग न होकर आदरसूचक सम्बोधन होता है।

लगभग साढ़े पाँच सौ सफ़ोंकी पुस्तकका मूल्य ग्यारह रुपये बहुत अधिक है।

—ओमप्रकाश दीपक
(कल्पना)

● ●

ज्ञा नो द य

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित
आधुनिक भावबोध
कला - संचेतना
और
नवीनता का
प्रतिनिधि मासिक

'ज्ञानोदय' का फ़रवरी अंक

पृष्ठ १५० : मूल्य एक रुपया
२० जनवरीको प्रकाश्य

हिन्दीके सारे कथाकार एक साथ

* दस कहानियाँ : सविशेष प्रतिनिधि
* पाँच गोष्ठियाँ : समकालीन कथा-साहित्यके सारे पक्ष
* एक लेख : सातवाँ दशक - ठीक-ठीक मूल्यांकन
* कलकत्ता कथा-समारोहके दृश्य-परिदृश्य और झलकियाँ
* हिन्दी कथा-संकलनोंकी ताज़ी अनुक्रमणिका।

सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी

एक प्रति १.००, वार्षिक १०.००

सम्पादकीय कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमैन ऐण्ड कं० लि०, बम्बई–१

अक्षरोंका सेतु
कृतियोंकी प्रतिक्रिया

लेखन-प्रकाशनके आयोजन-श्रमकी इकाई अधूरी रहेगी
जबतक पारखी पाठककी प्रतिक्रिया प्रकाशकके
पास होती लेखककी मेज़तक न पहुँचे

• चीड़ोंपर चाँदनी : निर्मल वर्मा

'चीड़ोंपर चाँदनी' निर्मल वर्माके यात्रा-संस्मरणोंका संग्रह है : लम्बे युँरपीय प्रवासकी उन अनुभूतियोंका संवेदनापूर्ण और मार्मिक अंकन जिन्होंने उन्हें छुआ है और भिगोया है। पुस्तक तीन खण्डोंमें विभाजित है : उत्तरी रोशनियोंकी ओर, चीड़ोंपर चाँदनी और देहरीके बाहर। पहले खण्डमें बर्लिन, कोपनहेगन और रिक्याविककी यात्राके वर्णन और उनसे सम्बन्धित संस्मरण सम्मिलित हैं साथ ही कोपनहेगनसे आइसलैण्ड तककी छहदिवसीय सागर-यात्राका भी बड़ा मनोरम और काव्यात्मक वर्णन है और कुछ अजब नहीं लगता कि इसीके आधार-पर इस खण्डका नामकरण हुआ है। अपनी कहानियोंमें इस क़दर असम्पृक्त रहने और वैयक्तिक धरातलपर विचरण करनेवाले निर्मल वर्मा गहरी कॅम्युनिस्ट आस्थाके व्यक्ति हैं, यह इस खण्डको पढ़कर स्पष्ट हो जाता है। बर्लिनमें देखे गये ब्रेख्तके नाटकके सिलसिलेमें ब्रेख्तको लेकर उनकी टिप्पणियाँ वाक़ई महत्त्व-पूर्ण हैं—"ब्रेख्त कॅम्युनिस्ट थे क्योंकि उनके लिए कॅम्युनिस्ट होनेके मानी बहुत सहज थे—एक समकालीन होना, दूसरे शब्दोंमें अपने निजी घेरेके बाहर उन सब आवाज़ोंका साक्षी होना, जो बीसवीं सदीके अँधेरेसे टकराती हुई हमारे पास आती हैं।" (पृष्ठ १२-१३) लेकिन केवल यही नहीं, वह यह भी स्पष्ट करते हैं, कि राजनीतिक दुराग्रहों और शीत-युद्धके अस्वस्थ वातावरणमें किसी साहित्य-कारको—ब्रेख्त-जैसे साहित्यकार तकको—कैसी क्षति पहुँच सकती है—"पश्चिम-

के साहित्यकार ब्रख्तके महान् कृतित्वको स्वीकार करते हैं, उनके कॅम्युनिस्ट व्यक्तित्वको नहीं। पूर्वी देशोंके आलोचक उनके कॅम्युनिस्ट व्यक्तित्वकी सराहना करते हैं किन्तु उनके कृतित्वके सम्बन्धमें, शायद पूरी तरह आश्वस्त नहीं।" (पृष्ठ ९-१०) यह शीत-युद्धका माहौल सब-कहीं मँडराता है और रोती हुई मर्मेडके शहर यानी कोपनहेगनमें लेखक और उसके साथियोंको होटलमें कोई कमरा इसलिए नहीं मिलता कि वे प्रॉगसे आ रहे हैं और वह एक कॅम्युनिस्ट देशकी राजधानी है।

अपनी कहानियोंकी ही तरह इन यात्रा-संस्मरणोंमें भी वातावरण और परिवेशपर-से निर्मलकी दृष्टि हटती नहीं है बल्कि यहाँ तो जैसे उसके लिए और भी गुंजायश रहती है। 'उत्तरी रोशनियोंकी ओर' शीर्षक अध्यायमें आकाश और समुद्रका अन्तहीन फैलाव, सागरका हाहाकार और चट्टानोंके ऊपर, लहरोंकी चोत्कारके ऊपर उड़ते हुए, समूचे समुद्रको चुनौती देते हुए परिन्दे......सब कुछ ही बड़ा आकर्षक और सुन्दर है। पुस्तकके दूसरे खण्ड 'चीड़ोंपर चाँदनी'में इसी नामका एक स्मृति-खण्ड है जो लेखककी बचपनकी अनुभूतियों—शिमला और भीमतालसे सम्बन्धित—को बड़े काव्यात्मक धरातलपर उरेहता है उतनी ही सहजताके साथ जैसे कभी उसके बचपनमें टापूमें गूलर टपकते रहते थे टप, टप, टप........। अन्य सारे संस्मरण युरपसे ही सम्बन्धित हैं। कहीं वह लिदीत्सेके खण्डहरोंको देखता है तो कहीं वर्तराम्काकी एक शाम है जब उसने मोत्सार्टके घरको देखा था। पेरिस और वियनापर भी उसके संस्मरण हैं। 'पेरिस : एक स्टिल लाइफ़'में पेरिसके साहित्यिक-सांस्कृतिक जीवनकी भी झलक मिलती है। लिदीत्से और वियनाके संस्मरण एक ही सत्यको दो कोणोंसे उभारते हैं। लिदीत्से चेकोस्लोवाकियाका वह छोटा-सा क़स्बा है जहाँ कभी मुश्किलसे सौ-दो सौ व्यक्ति रहते थे और जो सबके सब नात्सी नृशंसताकी भेंट चढ़ा दिये गये थे क्योंकि वहाँ एक जर्मनकी हत्या हो गयी थी और सारी कोशिशोंके बावजूद जब उस हत्यारेका पता नहीं चला तो पूरी बस्तीके सोलह वर्षके ऊपरके व्यक्तियोंको क़त्ल कर दिया गया था क्योंकि उनका विश्वास था कि वह हत्यारा भी उनमें-से ही कोई अवश्य होगा। वहाँके स्थानीय म्युज़ियममें संग्रहीत छोटी-छोटी चीज़ें फ़ासिज़्मके इस बर्बर कृत्यसे पहलेकी शान्त ज़िन्दगीकी साक्षी हैं....बच्चोंके पैरम्बुलेटर और अधजली गुड़ियाएँ, खिड़कियोंके झीने परदे, शराबकी बोतल, शेवका सामान, एक

रेशमी स्कार्फ और कोनेमें टँगा एक फ़ोटो जिसमें बच्चोंकी उत्सुक हँसती आँखें अब भी देखती-सी मालूम पड़ती हैं.......यह सब-कुछ और ढेर-सी दूसरी चीज़ें उस बर्बरताकी गवाह हैं—"और तब लिदीत्सेके खण्डहरोंके बीच भटकते हुए मुझे पहली बार अपने लिए 'आउट साइडर'का शब्द अजीब-सा बेमानी लगा है। टूटी हुई दीवारोंके मलबेके नीचे हम सबकी आत्माका एक अंश दब गया है.... क्योंकि जिस सदीमें हम जीते हैं, हममें-से हर व्यक्ति उसका गवाह है और गवाह होनेके नाते जवाबदेह भी है".......(पृ० १०५) और इसी तसवीरका दूसरा पक्ष है वियनाका जीवन और उल्लास, जिन्दगीकी ऊष्मासे आलोकित चारों ओर छाया हुआ एक फैस्टीवल मूड क्योंकि युद्धके आतंकसे मुक्तिका सुखद अहसास वहाँ हर-कहीं व्याप्त है।

पुस्तकका तीसरा खण्ड 'देहरीके बाहर' रंग और प्रकृतिमें पहले दोनों खण्डों-से किंचित् भिन्न है। इसमें कुल मिलाकर तीन लेख और संस्मरण हैं। पहला संस्मरण प्रसिद्ध आइसलैण्डी उपन्यासकार लैक्सनेसपर है। एक लेख समकालीन चेक-साहित्यपर है और एक चेखॅवके पत्रोंपर। अपनी पसन्दकी चीज़ों और व्यक्तियोंके प्रति स्वाभाविक ही लेखकमें गहरा मोह है और कमसे कम इस मानी-में उसका स्वभाव लैक्सनेसके स्वभावसे एकदम उलटा है। लैक्सनेसके उपन्यास 'ऐटम स्टेशन' के एक पात्रका हवाला देते हुए निर्मल वर्माने लिखा है कि हर आइसलैण्डीकी तरह वह जिस चीज़को जितनी गहराई और संवेदनासे महसूस करता है उसके बारेमें उतने ही अनमनेपनसे बोलता है और लैक्सनेसका स्वभाव भी बहुत-कुछ ऐसा ही है। लैक्सनेस या निर्मल वर्माके आइसलैण्डी मित्रोंका स्वभाव चाहे कैसा भी हो, लेकिन अपनी पसन्दके बारेमें राय जाहिर करते हुए कोई संकोच निर्मल वर्मामें क़तई नहीं है बल्कि, इसके विपरीत कभी-कभी तो उनका उत्साह दूसरे छोरको छूता-सा दीखता है। अपनी पसन्दकी वकालतके सिलसिलेमें वह विरोधी पक्षके प्रति किसी क़दर कटु भी हो जा सकते हैं। जब वह चेखॅवकी सहजता और आत्मीयताकी चर्चा करते हैं तो तॉल्स्तॉयके निरकुंश आदर्शवाद और दॉस्तावस्कीकी मैलोड्रैमैटिक करुणापर खुलकर लिखते हैं और जब इससे भी उनका मन नहीं भरता तो दॉस्तावस्कीके लिए वह निहायत घटिया लेखक तक कहने लगते हैं! बहुत-कुछ ऐसी ही स्थिति तब पेश आती है जब वह आइसलैण्डके निवासियोंकी तारीफ़ करते हैं, विशेषकर उनकी नम्रता और संकोची

स्वभाव को।

हिन्दीमें यात्रा-साहित्य बहुत नहीं है। राहुल सांकृत्यायन, यशपाल और अमृतराय (सुबहके रंग) का यात्रा-साहित्य है लेकिन यह महज़ बाहरकी यात्राओंके ही वर्णन हैं किसी देश-विशेषकी सामाजिक प्रगति और जीवन-पद्धतिका एक सराहनापूर्ण लेखा। डॉ० भगवतशरण उपाध्याय और डॉ० रघुवंशके यात्रा-वर्णन इनसे कुछ भिन्न हैं। 'सागरकी लहरोंपर'में उबा देनेवाली तथ्यात्मकता अधिक है, 'हरी घाटी'का भी प्रारम्भिक अंश नीरस अनावश्यक तफ़सीलोंसे भारी है और उसका उत्तरार्द्ध दार्शनिक उक्तियों और चिन्तनसे बोझिल है। स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय' के दोनों यात्रा-वर्णनोंमें यात्रा बाहरकी अपेक्षा अन्दरकी ओर ही अधिक है लेकिन अपनी भाषा, काव्य-गरिमा और अभिव्यक्ति-कौशलके कारण वे हिन्दीके यात्रा-साहित्यकी अक्षयनिधि बन सके हैं। इस सारे यात्रा-साहित्यके सन्दर्भमें यदि निर्मल वर्माके 'चीड़ोंपर चाँदनी' को देखा जाये तो वह बहुत-कुछ प्रगतिशील लेखकों और स० ही० वात्स्यायनके यात्रा-साहित्यके बीचकी चीज़ ठहरती है। यह निर्मल वर्माकी पहली ऐसी कृति है जिसमें उनके राजनैतिक और साहित्यिक विचारोंकी स्पष्ट स्वीकारोक्ति मिलती है। एक ओर वह कॅम्युनिस्ट आस्था और फ़ासिस्ट विरोधकी आवाज़ उठाते हैं तो दूसरी ओर नितान्त वैयक्तिक धरातलपर अपनी अनुभूतियोंका आँकते हैं मतलब यह कि उनकी यात्रा जितनी बाहरकी है उतनी ही भीतरकी।

'चीड़ोंपर चाँदनी' को पढ़नेके बाद निर्मलके कथा-कृतित्वको समझनेमें कोई विशेष सहायता शायद न मिले लेकिन उनके कथा-साहित्यके समानान्तर ही उसे पढ़नेसे एक अजीब विरोधाभासका तीव्र बोध हमें अवश्य होगा—कि ऐसी गहरी कॅम्युनिस्ट आस्था और सामाजिक सन्दर्भोंका हिमायती लेखक अपने विचारों और आदर्शोंको अपने साहित्यसे कैसे अलग रख सका है और साथ ही यह जाननेकी जिज्ञासा भी कि यह अलग रख सकना किस क़ीमतपर हुआ है।

—मधुरेश

• आत्मजयी : कुँवरनारायण

'आत्मजयी' कठोपनिषद्में वर्णित नचिकेता-यम प्रसंगपर आधारित मुक्तछन्दमें लिखा गया एक खण्डकाव्य है। उपनिषद्-कालीन इस आख्यानको कुँवर-

नारायणने अपनी सृजनशील कल्पनाके सहारे नये रूपमें ढालकर आधुनिक जीवन और विचारधाराके अनुकूल कर दिया है। 'अज्ञेय' ने जबसे अपनी रचनाओंमें 'कुँवारी आत्मा' की चर्चा करनी प्रारम्भ कर दी थी तभीसे ऐसी आशंका होने लगी थी कि प्रयोगवादी कविताका मूल स्वर अब बदलनेवाला है। धर्मवीर भारतीने कुछ पहलेसे यह स्वर मुखरित किया, फिर भी आत्माके महत्त्वको स्पष्ट रूपसे घोषित करनेका साहस नयी पीढ़ीका कोई एक कवि नहीं प्रदर्शित कर पाया था। 'आत्मजयी' प्रयोगवादी काव्यके भीतर रहकर प्रयोगवादी मान्यताओंके विरुद्ध विद्रोहका पहला सशक्त स्वर है। यह शरीरपर आत्माकी, नश्वरपर अविनश्वरकी, मृत्युपर जीवनकी विजयका उद्‌घोष है। इसमें अनास्था, कुण्ठा, हताश-भावना और आत्म-हत्या सम्बन्धी मूल्योंको झूठा और खोखला सिद्ध कर दिया गया है। सार्त्र और कामूके दर्शनकी तुलनामें इसमें भारतीय अध्यात्मवादकी श्रेष्ठता स्वीकार की गयी है। अतः मुझे पूरी आशंका है कि इस कृतिका कड़ा विरोध यदि किसी दिशासे होगा भी तो वह प्रयोगवादी कैम्पसे ही।

'आत्मजयी' एक विचार-प्रधान लम्बी कविता है। बौद्धिकता इसकी एक विशेषता भी है और सीमा भी। कुँवरनारायणने जहाँ प्रयोगवादी काव्यकी सभी ह्रासशील प्रवृत्तियोंसे अपना पीछा छुड़ा लिया है वहाँ बौद्धिकताके भ्रमसे अभी मुक्त नहीं हो पाये हैं। बौद्धिकताका नारा भी एक आधुनिक नारा है जो संवेदनशीलताकी प्रतिक्रियामें उठाया गया है। स्मरण रखना चाहिए कि काव्यमें विचार और कल्पना भावके अधीन रहकर ही सृजनकी सम्भावनाएँ जगाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कुँवरनारायणका विचारजगत् समृद्ध है और उसमें जीवनके श्रेष्ठतम मूल्योंको मान्यता प्रदान की गयी है। आजके युगमें खोयी व्यक्तिकी आस्था, पूर्णता और अमरताको उसे लौटाकर देना कोई कम महत्त्व-पूर्ण काम नहीं है; लेकिन श्री सुमित्रानन्दन पन्तके जीवन दर्शनके समान इनका दर्शन भी अपूर्ण है, इस ओर हम हिन्दीके पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

'आत्मजयी' पिता-पुत्रके संघर्षकी कहानी है। अपने पिता वाजश्रवाकी लौकिक स्थितिके कारण नचिकेता अपार समृद्धिका उत्तराधिकारी बन सकता था; लेकिन वह जीवनके सुखकी तुलनामें उसकी सार्थकताको चुनता है। इस प्रकार पिता-पुत्रका संघर्ष दो मान्यताओंका संघर्ष बन जाता है। इस प्राचीन

गाथाको यदि आधुनिक युगपर लागू करनेका प्रयत्न किया जाये तो इसका आशय यह होगा कि कवि यह मानकर चलता है कि सामान्य व्यक्ति सुखी तो है ही अतः अब इस बातकी चिन्ता करनी चाहिए कि उसका जीवन सार्थक कैसे बने। इस प्रकार कुँवरनारायणका जीवन-दर्शन सुखी और सम्पन्न व्यक्तियोंका जीवन-दर्शन है, सुखसे उकताये पूँजीपतियोंकी विद्रोही युवक सन्तानका जीवन-दर्शन है। इस दृष्टिसे कुँवरनारायणकी तुलना पन्तजीसे की जा सकती है। दोनों ही आभिजात्यकी गरिमासे मण्डित हैं, दोनों ही जीवनमें दुःखका स्थान स्वीकार नहीं करते, दोनों ही बाह्य जगत्के स्थानपर अन्तर्जगत्को प्रधान मानते हैं, दोनों ही अन्तर्मुखी स्वभावके व्यक्ति हैं, दोनोंमें ही भावकी उष्णताके स्थानपर विचारका ठण्डापन पाया जाता है।

जैसे अपने पहले ही काव्य-संकलन-द्वारा कुँवरनारायण उभरकर ऊपर आ गये थे, वैसे ही इस खण्ड-काव्य-द्वारा इन्होंने अपनेको प्रतिष्ठित कर लिया है। प्रयोगवादी क्षेत्रमें बहुत-से नाम जो पिछड़ते जाते हैं, धुँधले पड़ते जाते हैं, मिटते जाते हैं, उसका मुख्य कारण अपनी सहज क्षमताको न पहचानकर ग़लत प्रयोग करना ही है। उदाहरणके लिए गिरिजाकुमार माथुर, शम्भूनाथसिंह एवं जगदीश गुप्तकी मूल प्रतिभा गीतात्मक है, जब कि ये लोग न जाने किस आकर्षणसे मुक्त छन्दकी मृग-मरीचिकामें फँस गये हैं। यही बात कुँवरनारायणके लिए नहीं कही जा सकती। वे वस्तु एवं रचना-विधान दोनों दृष्टियोंसे जैसे नयी कविताकी आत्माको पहचानते हैं, अतः भविष्यमें उनके और भी ऊँचा उठनेकी सम्भावनाएँ हैं। जहाँतक 'आत्मजयी' का सम्बन्ध है, यह कृति निश्चित रूपसे नयी कविताके क्षेत्रमें एक नया मोड़ प्रस्तुत करती है।

—विश्वम्भर 'मानव'

• प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी : प्रो० ना० सी० फड़के

शैली-शिल्पकी दृष्टिसे प्रो० फड़के बहुत सजग हैं। कहानी, उपन्यास, एकांकी, ललित निबन्ध, शब्द-चित्र, यात्रा और प्रबन्ध—सर्वत्र नया भाव-बोध, और सब मिलाकर 'फूल डाल' संज्ञा बहुत सार्थक प्रतीत होती है। मानवता और पारिवारिक भावना प्रो० फड़केमें बहुत है। 'सात रुपये दस आने' मध्य-वर्गीय गृहस्थ परिवारकी एक ऐसी सीधी ग़रीबीके दर्दमें डूबी परन्तु मनोरंजक

कहानी है जो अन्त तक खींचे रहती है। ओवर टाइममें प्राप्त सात रुपये दस आने लेकर जुगुल बाबू अकेले मज़ा उड़ाने होटलमें चले तो ज़रूर मगर वहाँ स्पेशल रूममें बैठकर भी अतृप्त पत्नी और बिलबिलाते बच्चोंका खयाल आते ही वापस लौट आये। ये ही 'मध्यवर्गीय' कठिनाइयाँ 'धूप छाँह' में भी हैं। अरमानोंको पूरा करनेके लिए खुलकर खर्च करने और हाथ रोककर संयमपूर्वक बचानेका संघर्ष पति-पत्नीके बीच है। कथाकार चमत्कारपूर्ण अन्तके चक्करमें नहीं पड़ता और उसकी हर पंक्ति चमत्कारपूर्ण हो जाती है। गृहस्थीका स्वस्थ चित्र और स्वस्थ प्रेम 'पार्वती' शीर्षक कहानीमें एक निराले ढंगसे आया। एक ग़रीब गँवार निरक्षर व्यक्तिकी पत्नी अक्षरज्ञानके सहारे पुस्तकें पढ़कर उच्चजीवनको समझने लगती है तो उसकी शान्ति नष्ट हो जाती है और एक दिन वह पुस्तकको जला देती है और उसका पति उसे बुहारकर किनारे लगा देता है। जीवनके अन्तर्विरोधपर एक तीखा व्यंग्य, जीवनकी निचली तहमें घुटे-पिसे लोगोंके लिए सारा उच्च ज्ञान ज़हरके समान। एक और स्वर कहानीसे निकलता है—अज्ञानान्धकारमें सदियोंसे जकड़ी आत्माएँ मुक्तिके लिए छटपटाती हैं परन्तु परम्परा, समाज और आदर्शोंके बलिष्ठ हाथ उन्हें पीछे ढकेलकर आहत कर देते हैं।

'काश्मीरकी कहानी'का स्वर कुछ पृथक् है। घर-गृहस्थीकी सीधी कहानी लिखनेवाला प्रोफ़ेसर इसमें ऐसी मर्मकथा पेश करता है जो बरबस रुला देती है। दर्दकी दरियामें हिन्दू-मुसलिम एकता—दो मासूम बच्चोंकी कहानी—भाव संवेदनाओंका अपूर्व चुभन : कहानी-जैसे एकदम नपी-तुली। पुस्तकके अन्तवाले निबन्धोंमें सफल-कहानीके विषयमें लेखक जो विवेचन करता है वह सब उसकी स्वयंकी कथाओंकी निष्पत्तियाँ प्रतीत होती हैं। वह नयी कहानीका लेखक ही नहीं एक सफल व्याख्याकार भी है। उसके निबन्धोंमें आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीके 'रसज्ञ रंजन' में संकलित निबन्धोंकी-सी हार्दिकता और तात्त्विकता है। उसकी खेलमें गहरी दिलचस्पी है। क़लम उठाता है तो चित्र खींचकर रख देता है। नये लेखकोंको 'प्रतिभा साधन' की स्वानुभूत अनुभूतियोंसे परिचित कराता है। गम्भीर लेखोंमें भी 'आतंकवादी' प्रवृत्ति नहीं कहकर वह वास्तवमें अपनेको कह डालना चाहता है। यही कारण है कि ललित निबन्धोंमें वह साधारण विषय उठाता है जैसे 'अलगनीपर सूखते कपड़े', 'ताला-चाभी',

'सर्कसके खेमे'—भरपूर मनोरंजनके बीच एक सन्देश। यह 'सन्देश' एकांकीमें और स्पष्ट है। 'आग' की चित्रित राय बहादुरकी दोनों लड़कियोंने ही विद्रोहका झण्डा उठा लिया और यह 'आग' बाहर नहीं घरके भीतर दिखाई पड़ने लगी।

निस्सन्देह प्रो० फड़केकी रचनाएँ हिन्दीमें आकर उसके नये साहित्यको प्रभावित करनेवाली सिद्ध होंगी।

—विवेकी राय

नयी कृतियाँ
ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित

लेखक वे सफल हुए जिन्होंने सारी अनुभूति-पीड़ा
एक ही कृतिमें नहीं उँड़ेल दी, और कृतियाँ वे गिनी
गयीं जो दिखीं सामान्य, पर दे बहुत-कुछ सकीं।

• प्रतिनिधि संकलन, एकांकी : सं० अनिलकुमार

नौ एकांकियोंका यह संकलन है। नौ भारतीय भाषाओंका एक-एक एकांकी। इन नौमें-से हर एक भाषामें कई प्रमुख एकांकीकार हैं और कई-कई उनकी सुन्दर एकांकी रचनाएँ सामने आयी हैं। यहाँ चुनी हुई केवल नौ प्रस्तुत की गयी हैं। इस दृष्टिसे प्रस्तुत कृतिको कहें नौ भारतीय भाषाओंके नौ प्रतिनिधि एकांकियोंका संकलन। ये सभी एकांकी पठनीय तो हैं ही, सफल और प्रभावपूर्ण रूपसे अभिनेय भी हैं। हिन्दीमें अपने प्रकारके पहले प्रकाशनका अब प्रकाशित हुआ है नया द्वितीय संस्करण। **मूल्य : ४.००**

• पलासीका युद्ध : तपनमोहन चट्टोपाध्याय

देशके इतिहासको एक मोड़ देनेवाले इस युद्ध और उसकी पृष्ठभूमिका सर्वप्रथम प्रामाणिक चित्रण, जो तथ्यात्मकताके बलपर इसे इतिहास-पुस्तक बनाता है और कथा-रसके कारण उपन्यास। महत्त्वपूर्ण होनेसे मूल बँगला पुस्तकका अँगरेजी अनुवाद भी हुआ है। **मूल्य : ३.५०**

• खोयी हुई दिशाएँ : कमलेश्वर

नयी हिन्दी कहानीके एक विशिष्ट कथाकार श्री कमलेश्वरकी चुनी-चुनी ग्यारह कहानियोंका संग्रह। ये कहानियाँ बिना सन्देह एक बदली हुई मनोभूमि प्रस्तुत करती हैं—वह मनोभूमि जो लेखककी ही नहीं, समूचे समाजकी है। कहा-

नियोंमें जोवनका अध्ययन है मात्र सर्वेक्षण नहीं। यही कारण है कि हर कहानी मनपर एक सार्थक प्रभाव भी छोड़ती है।

मूल्य : २.५०

● झाड़ी : श्रीकान्त वर्मा

श्रीकान्त वर्माकी अधिकांश कहानियाँ प्रेम-कहानियाँ हैं। लेकिन प्रचलित या परम्परागत अर्थमें नहीं। संशय, अनिर्णय और अमूर्तता आजकी प्रतीक मनःस्थितियाँ हैं और इसे बड़ी तीव्रताके साथ प्रस्तुत संग्रहकी कहानियोंमें देखा जा सकता है। बिलकुल नयी शैली और नया प्रभावपूर्ण कथ्य इन कहानियोंकी अतिरिक्त विशेषता है। अब द्वितीय संस्करणमें प्राप्य !

मूल्य : ३.००

● कनुप्रिया : धर्मवीर भारती

डॉ० धर्मवीर भारतीकी इस काव्य-कृतिका आविर्भाव साहित्य-लोककी एक विशिष्ट घटना है। इसमें जहाँ बहुमुखी प्रणयके विविध आयाम प्राणोंकी धारामें-से प्रस्फुटित होकर प्रकृतिके प्रतीकोंमें सार्थक तादात्म्य प्राप्त करते हैं वहीं राधाके प्रणयको एक सर्वथा नयी दृष्टि और नया परिप्रेक्ष्य देते हैं। भाव, रस और मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तिके कारण भी यह कृति पाठक-मनको अभिभूत करती है। नयी हिन्दी कविताकी एक प्रामाणिक उपलब्धि। अब प्रस्तुत है नया द्वितीय संस्करण।

मूल्य : ३.००

● हम विषपायी जनम के : स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

स्व० 'नवीन'जीके इस संकलनकी अधिकांश रचनाएँ उद्दाम प्रणयावेग और तीखी विरह-वियोग पीड़ाको अभिव्यक्त करती हैं! 'नवीन'जी मुख्यत: थे ही प्रणयके कवि जिन्हें उपलब्धिमें व्यथा-ही-व्यथा मिली। पर इन भावनाओं और पीड़ाओंकी जो सहज, अकृत्रिम और विशद छवियाँ उन्होंने उरेही हैं वे संवेदनशील पाठकको हठात् अभिभूत करेंगी।

प्रस्तुत संकलनकी यह विशेषता भी है कि 'नवीन'जोका समस्त अप्रकाशित काव्य-साहित्य इसमें आ जाता है। उनकी राष्ट्रीय और सर्वोत्कृष्ट प्रणय-रचनाएँ तो इस संकलनमें सम्मिलित हैं ही, विज्ञ पाठकोंकी उत्सुकता और जिज्ञासाका विषय 'दोहावली' और 'मृत्युधाम' भी संग्रहीत हुई हैं। द्वितीय संस्करण।

मूल्य : १६.००

● **जनम क़ैद : गिरिजाकुमार माथुर**

गिरिजाकुमारजीके लिखे चुने हुए श्रव्य नाटकोंका एकमात्र संग्रह। मध्य-वर्गीय जीवनकी दैनिक प्रतिक्रियाओंके अतिरिक्त इस संग्रहमें कुछ नाटक ऐतिहासिक पीठिकापर भी आधारित हैं। प्रस्तुत संग्रह इस दृष्टिसे और भी महत्त्वपूर्ण है कि इसके नाटकोंमें श्रव्य-शिल्पका सफल प्रयोग पाठकोंको मिलेगा। नया द्वितीय संस्करण। **मूल्य : २.५०**

● **उपासकाध्ययन : मूल – सोमदेव सूरि, सं०-अनु० – पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री**

सोमदेव सूरि कृत महान् संस्कृत ग्रन्थ यशस्तिलकके अन्तिम तीन आश्वास, जिन्हें स्वयं सोमदेवने भी उपासकाध्ययनका नाम दिया है। जैन श्रावकाचारका विशद विवेचन। हिन्दी प्रस्तावना, अनुवाद, संस्कृत टीका तथा परिशिष्ट आदि। **मूल्य : १२.००**

● **करकण्डुचरिउ : मूल – मुनि कनकामर, सं० - अनु० – डॉ० हीरालाल जैन**

जैन और बौद्ध साहित्यमें 'प्रत्येकबुद्ध' के रूपमें प्रसिद्ध महाराज करकण्डुके जीवन-चरित्रपर लिखा गया अपभ्रंश काव्य। हिन्दी-अँगरेजी प्रस्तावना, अनुवाद, व्याख्यात्मक टिप्पण तथा परिशिष्ट आदि सहित। **मूल्य : १०.००**

● **भोजचरित्र : मूल – पाठक राजवल्लभ, सं०-अनु० – डॉ० बी० सी० छाबड़ा, शंकरनारायणन्**

परमार-नरेश भोजके जीवनपर लिखा गया ऐतिहासिक महत्त्वका एक विशिष्ट संस्कृत काव्य। महत्त्वपूर्ण अँगरेजी प्रस्तावना, व्याख्यात्मक टिप्पण तथा परिशिष्ट आदि सहित। **मूल्य : ८.००**

● ●

नये वर्षके शुभ अवसरपर

बालकों एवं किशोरोंके लिए
हमारी अपूर्व भेंट

• •

महान् लेखक बाल जीवनी-मालाकी ये पुस्तकें छपकर तैयार हैं—

* विलियम शेक्सपियर
* लियो तॉलस्तॉय
* प्रेमचन्द
* अर्नेस्ट हैमिंग्वे
* मार्कट्वेन
* एण्टन चैखॅव
* रवीन्द्रनाथ ठाकुर
* ओ' हेनरी
* बाल्ज़ाॅक
* वॉल्ट ह्विटमैन
* ओ' नील
* पर्ल बक़

योजनाकी दूसरी क़िस्तमें आ रही हैं ये पुस्तकें—

* पुश्किन
* जॉन स्टीनबेक
* जयशंकर प्रसाद
* अनातोल फ्रान्स
* ऐडगर ऐलन पो
* रॉबर्ट फ्रास्ट
* शरतचन्द्र
* दॉस्तवॅस्की
* हर्मन मैलविल
* स्किलेयर ल्युईस
* रोम्याँ रोलाँ
* जॉर्ज बर्नाडशॉ
* सॅमरसेट मॉम
* विलियम फॉक़नर

मूल्य १.२५ प्रत्येक

• •

नीलाभ प्रकाशन

मुख्य कार्यालय : ५, खुसरो बाग़ रोड, इलाहाबाद
बिक्री कार्यालय : १५ ए, महात्मा गान्धी मार्ग, इलाहाबाद

फ़ोन : ३३८०
३०२३

पो० बॉ० नं० ५३

तार :
नीलाभ

संस्कृत साहित्यकी गति विधि

महत्त्वपूर्ण तथ्योंपर आधारित
विकास और उपलब्धिका एक परिचय

महेन्द्र कुलश्रेष्ठ

सागर विश्वविद्यालयके संस्कृत विभागने कुछ समय पूर्व आधुनिक संस्कृत साहित्यके सम्बन्धमें जो दस-दिवसीय परिसंवाद आयोजित किया, वह संस्कृत साहित्यकी गतिविधिका रेखांकन करनेकी दृष्टिसे एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसमें सन् १६०० से नितान्त वर्तमान समय अर्थात् १९६० तकके ३६० वर्षीय काल-खण्डमें रचे गये साहित्य तथा उसकी प्रवृत्तियोंपर विचार किया गया। २७ निबन्ध प्रस्तुत किये गये जिनकी सूचीपर दृष्टिपात करनेसे पता चलता है कि विषयोंका चयन बड़े विचार और सावधानीसे किया गया। कुछ महत्त्वपूर्ण विषय इस प्रकार हैं : आधुनिक संस्कृत साहित्यमें अद्वैत वेदान्तका विवेचन, संस्कृत महाकाव्योंमें गान्धीवाद, १६००-१९६० तक निर्मित शास्त्रकाव्य, संस्कृत पत्रिकाओंमें गद्यकाव्यका विकास, संस्कृत साहित्यमें नवोन्मेष, पण्डिता क्षमाराव–व्यक्ति, और काव्य, अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दीके कुछ संस्कृत नाटक, स्वातन्त्र्योत्तर कालमें संस्कृत साहित्यकी गतिविधि, रससिद्धान्तका तुलनात्मक अध्ययन, संस्कृत नाटकोंमें नवीन प्रवृत्तियाँ, आधुनिक युगमें संस्कृत-दर्शन ग्रन्थ, संस्कृत पत्रकारिताके अनुभव, संस्कृतकी महिला लेखिकाएँ, श्री अरविन्दका वेदभाष्य, आधुनिक युगमें ऋग्वेदकी व्याख्याका विकास, संस्कृत पत्रिकाओंमें राष्ट्रीय भावना आदि। पूना, जयपुर तथा अरविन्द आश्रमका संस्कृतको योगदान विषयोंपर भी निबन्ध पढ़े गये।

इससे प्रतीत होता है कि प्रायः किसी भी विषयको नहीं छोड़ा गया। डॉ०

गोविन्द त्रिगुणायतने अपने अध्यक्षीय भाषणमें विषयका सामान्य विवेचन किया। दरअसल आपका भाषण अवसरके अनुरूप विस्तृत तथा गहन अध्ययनपूर्ण प्रतीत नहीं होता, क्योंकि एक तो यह बहुत ही संक्षिप्त है, दूसरे इसमें मुख्यतः संस्कृतके प्रचारकी बाधाओंका ही विवेचन है। संस्कृत साहित्यकी विविध विधाओंपर दो-दो चार-चार लाइनोंमें कुछ ग्रन्थ गिना दिये गये हैं। वर्तमान कालमें मुख्यतः गद्यकी विधाका विकास हुआ है। इसमें उपन्यास हैं : श्री निवास शास्त्री-कृत 'चन्द्रमहीपतिः', 'सूर्यप्रभा', 'कृष्णावतारः' तथा 'सर्वाभ्युदयनामधेयाः,' और ललित रचना है : डॉ० रामजी उपाध्याय-कृत 'द्वा सुपर्णाः', आदि।

परिसंवादमें मुख्यतः मध्य प्रदेशके विद्वानोंने ही भाग लिया। कुछ विद्वान् कलकत्ता, नागपुर, पूनाके भी थे, यथा डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकर, श्री वसन्त गाडगिल, पं० चिन्ताहरण चक्रवर्ती, पं० जगन्नाथ वेदालंकार आदि। दक्षिण भारतके विद्वानोंकी अनुपस्थिति कुछ खटकती है। परन्तु इसका दोष आयोजकोंको नहीं दिया जा सकता, उन्होंने अपने सीमित साधनोंमें अपेक्षासे अधिक कर दिखाया है। वस्तुतः इसे बड़े पैमानेपर समुचित रूपसे आयोजित करनेका दायित्व संस्कृत सम्मेलन-जैसी संस्थाओंका है, जो इस ओर ध्यान नहीं दे रही हैं, या इसका आयोजन संस्कृत विश्वविद्यालयोंको करना चाहिए।

निबन्धों आदिके समग्र विवेचनसे प्रतीत होता है कि संस्कृत साहित्यमें कुछ आधुनिकताका प्रवेश अवश्य हो गया है परन्तु वह सन्तोषजनक कदापि नहीं है। रूप नया हो रहा है, परन्तु विषय पुराने ही हैं और उनके परिवर्तनकी कोई सम्भावना भी नहीं दिखाई देती। ऐसी स्थितिमें क्या किया जाये और संस्कृत साहित्यके विकासकी दिशा क्या निर्धारित की जाये? प्रश्न यह भी है कि किसी प्राचीन भाषाको क्या इस हद तक पुनरुज्जीवित किया भी जा सकता है कि उसमें नवीन साहित्यका भलीभाँति सर्जन किया जा सके? अभी तो भारत सरकारकी भाषा-नीतिके कारण संस्कृत भाषाका ही भविष्य खतरेमें है, साहित्यकी बात ही क्या?

● ●

समसामयिकी
कथा-समारोह एक कथा-मंच

जहाँ कई पीढ़ी और कई विचार-मान्यताएँ मंचपर थीं
और कई पीढ़ी और कई भाव-दृष्टियाँ
सामने श्रोता-दर्शकोंकी

सात गोष्ठियोंका समारोह

कलकत्तेकी प्रख्यात सांस्कृतिक संस्था 'भारतीय संस्कृति संसद्'-द्वारा प्रवर्तित; संसद् अध्यक्ष श्री सीताराम सेकसरिया तथा कर्म-सचिव सर्वश्री जगमोहनदास मूँधड़ा और परमानन्द चूड़ीवाल आदि-द्वारा आयोजित एवं संयोजित।

स्थान और दिन

प्रसिद्ध शिक्षा संस्था 'शिक्षायतन' का विशाल सभागार; १९६५ के दिसम्बर मासका २४, २५, २६वाँ दिन।

कथाकार जो किन्हीं कारणोंसे न आ सके

सर्वश्री यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', धर्मवीर भारती, अमृता प्रीतम, कृष्णा सोबती, गंगाधर गाडगील, राजेन्द्र सिंह बेदी, भैरवप्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय, अमरकान्त, शानी, ज्ञानरंजन, मनहर चौहान आदि।

जिन्होंने भाग लिया

सर्वश्री वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्रकुमार, विमल मित्र, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मोहन रात्रेश, देवीशंकर अवस्थी, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, लक्ष्मीनारायण लाल, शिवप्रसाद सिंह,

कमलेश्वर, कृष्ण बलदेव वैद, हरिशंकर परसाई, रजनी पनिकर, मन्नू भण्डारी, शरद जोशी, धनंजय वर्मा, राजेन्द्र अवस्थी, श्रीकान्त वर्मा, शैलेश मटियानी, रमेश बक्षी, दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया, सुदर्शन चोपड़ा, गंगाप्रसाद विमल, सीताराम सेकसरिया, लक्ष्मीचन्द्र जैन, कुन्था जैन, कल्याणमल लोढ़ा, भँवरमल सिंघी आदि।

● पहली गोष्ठी

अध्यक्ष : सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार, भगवतीचरण वर्मा, कमलेश्वर। प्रारम्भमें श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन-द्वारा समारोहके उद्देश्य, समारोहके प्रति संसद्की दृष्टिका स्पष्टीकरण—

लक्ष्मीचन्द्र जैन :

यहाँ हुए आयोजनोंके मूलमें साहित्यके प्रति जिज्ञासा रही है। यह आयोजन भी उसी इच्छाकी एक कड़ी है। यह ज्ञान था कि बहुत-बहुत बातें होती हैं, कई-कई दल हैं, उग्र प्रतिबद्धताएँ हैं। लेकिन हमारे परिपत्रोंमें विषयको महत्त्व दिया गया है और उनपर विवाद भी नहीं है। यह मंच इसलिए है कि आपकी बात हम समझ सकें; कथाकार स्वयं एक-दूसरेसे अपनी बात कह सकें; और आप सोचें और बता सकें कि लिखते समय आपकी जीवन-दृष्टि क्या थी, क्या उपलब्धियाँ हैं, क्या आप कहना चाहते थे, क्या आत्म-सन्तोष मिला, यदि असन्तोष मिला तो उसका स्वरूप क्या है।

विषय : जीवनदृष्टिका प्रश्न

जैनेन्द्रकुमार :

मेरा अनुभव यह है कि जानना जब काफ़ी नहीं होता तब कहानी शुरू होती है और कहानीकी भाषा जीनेकी भाषा है, जाननेकी नहीं। मैंने कहानी लिखी; लिखते समय जीवनदृष्टि-जैसा भारी-भरकम शब्द कानपर आ जाता तो शायद कहानी लिखी नहीं जा सकती थी। कहानी लिख गया लेकिन जीवनदृष्टिका पता नहीं है। वह अबतक निर्मित नहीं हुई। क्योंकि जब भी कोई दृष्टि बनती है; जीवनमें ऐसी कुछ घटनाएँ देखनेमें आ जाती हैं कि वह लिप-पुतकर साफ़ हो जाती है। दृष्टि न बन पाये तभी कहानीकारके लिए

ख़ैरियत है। मैंने तो कम-से-कम कहानी दृष्टि प्राप्त करनेके लिए लिखी, दृष्टिदानके लिए नहीं। जीवन इतना अनन्त, गूढ़ और रहस्यमय तत्त्व है कि नहीं लगता कोई दृष्टि ऐसी हो सकती है जो घेरेमें उसे बाँध ले।

भगवतीचरण वर्मा :

मैंने हमेशा भावनात्मकताके आदान-प्रदानमें विश्वास किया। बुद्धि मानवके विकासकी चीज़ है, भावना मानवका अस्तित्व है। मैं अस्तित्वको नज़रन्दाज़ नहीं कर सकता। बुद्धि साहित्यका क्षेत्र नहीं, वह भावनात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्यका उद्देश्य मनोरंजन है, क्योंकि भावनात्मक अभिव्यक्ति केवल मनोरंजन-द्वारा होती है। बौद्धिक और सामाजिक प्राणी होनेके कारण हम उन्हीं चीज़ोंको स्वीकार करते हैं जो हमें ऊपर उठायें। उत्कृष्ट कला वही है जिसमें भावनाका उदात्तीकरण हो। बौद्धिक मानवने कभी विकृत वस्तुको सामाजिक स्थान नहीं दिया। नयी धाराएँ आयेंगी ही। उनका स्वागत करना है। लेकिन यह विरोध और सिर फोड़ना मेरी समझमें नहीं आता। क्योंकि लेखनकी सफलता आलोचकोंपर नहीं पाठकोंपर निर्भर करती है।

कमलेश्वर :

जीवनदृष्टि अपनेमें कोई सम्प्राप्ति नहीं, निरन्तर विकसित होती प्रक्रिया है : ज्ञानको, सत्यको, समयके यथार्थको अपने भीतर समझ सकनेकी और बराबर उसे बदलती-सुधारती हुई प्रक्रिया। यह नहीं है तो 'अच्छी' कहानी लिखी जा सकती हो, सार्थक या उदात्त कहानी नहीं। हमारा लेखक वैयक्तिक और सामाजिक दोनों तरहकी सचाइयोंसे कहीं टकरा रहा था। सामनेका रास्ता साहित्यसे जीवनकी ओर था; नयी पीढ़ीने जीवनसे साहित्यकी ओरका रास्ता शुरू किया। यह कॉन्शस डिपार्चर था कि जीवनमें जो दिखाई पड़ता है उसे बिना लाग-लपेटके कहें। यही क्षण हमारी कहानीका कटा हुआ क्षण था : सीमित पर अपनेमें सम्पूर्ण। इसके कार्य-कारणकी कोई परम्परा सामने नहीं थी। अबतक जहाँ व्यक्ति-सत्यको सामाजिक पूर्णताने दबोच रखा था, बोलने नहीं दिया था, वहाँ अब व्यक्तिको उभरनेका अवसर दिया गया। कहानी अब बँधी-बँधायी विधा नहीं है, वह सामाजिक सन्दर्भसे जुड़े हुए यथार्थको कहती है। जो विविधता इससे आती है वह नये कथा-साहित्यकी उपलब्धि है।

• दूसरी गोष्ठी

विषय : समकालीन कथा-साहित्यमें बदलती हुई जीवनदृष्टि।

अध्यक्ष : सर्वश्री अमृतलाल नागर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, हरिशंकर परसाई।

वक्ता : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ० शिवप्रसाद सिंह, डॉ० गंगाप्रसाद विमल, श्री श्रीकान्त वर्मा।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल :

नयी कहानीका सबसे बड़ा कार्य है कि जीवनका जो सूत्र प्रेमचन्दने उठाया था, जो जीवनसे टूटा था, उसे जीवनसे जोड़ दिया। १९५० तककी कहानीमें जीवनदृष्टि है, बादमें सूत्र टूट गया। यहींसे नये कथाकारोंकी एक बड़ी पीढ़ीने 'अकहानी' आदि सम्बोधन लेकर जीवनके यथार्थ-खण्डोंको पकड़ना शुरू किया। कैसे यथार्थके सूत्र पकड़से छूट गये और क्यों अब मनःस्थितिकी कहानी लिखनेकी विवशता हुई? जिन सिद्धान्तोंपर २०वीं शतीका पूर्वार्द्ध टिका हुआ था वे ध्वस्त हो गये थे और नये कहानीकारको यह क्लेशकर लगा कि हर सत्य परिवर्तनशील है। यहीं पकड छूट गयी और मनःस्थिति और 'सेल्फ़-जस्टिफ़िकेशन'की बात कही जाने लगी।

डॉ० शिवप्रसाद सिंह :

परिवर्तन आवश्यक है। प्रथम स्वतन्त्रता-संग्रामको विफलताके बाद एक बौद्धिक जागरण आया था। वह हमारी पुरानी आत्माकी तलाशके उद्देश्यको लेकर चला। बादमें यह जागरण अवरुद्ध हो गया। 'यथार्थ' भी साँचा बन गया था : सच्चा बोध नहीं देता था। हम पाश्चात्य संस्कृतिके अधीन होते गये। अब हमारा मोह भंग हो रहा है। पाश्चात्य संस्कृतिसे हमने बहुत-कुछ सीखा है। उसके प्रभाव आयें मगर हमारे सृजनका अंग बनकर। हम उन्हीं चीज़ोंको ले सकते हैं जो हमारी चेतनाको शक्ति दें। साहित्यकार सचेतन प्राणी है : अपना उत्तरदायित्व वह निबाहे। नये साहित्यका कार्य देशकी नयी आत्माकी तलाश है।

डॉ० गंगाप्रसाद विमल :

जैनेन्द्रजीकी रहस्यवादकी बोली हम नहीं समझते। और समकालीन जीवन-दृष्टि तो वही जो न समझी जानेवाली चीज़ोंको अस्वीकारे। जीवनके साह-

चर्य-विधानमें मिलनेवाले 'शॉक्स'के विरुद्ध निर्णय लेनेकी क्षमता ही जीवन-दृष्टि है। भगवती बाबूने कहा : साहित्यकार चरित्र निर्माण करता है; चरित्र-निर्माणसे बड़ा झूठ क्या होगा ! शिवप्रसादजी और डॉ० लालकी डरावनी भाषावाली बातोंकी आवश्यकता नहीं। सोचना यह है कि बदलते सम्बन्ध हैं या व्यक्ति या जीवनदृष्टिका रूप। जीवनका भोग कटु है। पीड़ित मनुष्य कहानीके माध्यमसे अपनी कहता है। इसमें जीवनदृष्टिका बदलाव है तो स्वयं स्पष्ट हो जाता है।

अमृतलाल नागर :

जीवनदृष्टि हर पीढ़ीकी आधुनिक होती है। मैं मानता हूँ साहित्य समाज-का प्रतिबिम्ब है। कलाकी अपनी ही दृष्टि होती है जो तर्कसे परे होती है और सूझ तथा अनुभूतिसे जन्म लेती है। नयी उपलब्धियाँ स्वीकार करते यह नहीं कहा जा सकता कि पुरानी पीढ़ीने रास्ता नहीं दिया। विद्रोह हर पीढ़ीने किया है। प्रश्न यह है कि आजकी जीवनदृष्टिको इसी रूपमें कैसे ग्रहण करें। जिन्होंने लालटेनके प्रकाशमें लिखा है उनकी आँखें खुली हैं; अब उनके सामनेके बल्बके प्रकाशमें देखते हैं। हम जीवनदृष्टिको आधुनिक परिवेशमें देखें, वकालत न करें। पिछले साहित्यके प्रति स्पष्ट कथन हो, अश्रद्धा नहीं। अश्रद्धा रहते यथार्थका बोध न होगा। अन्तर्विरोधोंसे कालकी दृष्टि नहीं पायेंगे, जिसे पाना जरूरी है।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार :

जीवनदृष्टि केवल साहित्यिक विषय नहीं, मनुष्य मात्रसे सम्बन्धित है। कौन कह सकता है किसी भी साहित्यकारके बारेमें कि उसकी जीवनदृष्टि बदली नहीं है ? साहित्यकारके मनपर समय, परिस्थिति, अध्ययन, आत्मानु-भूति सबका प्रभाव पड़ता है। पूरी दृष्टि कोई प्राप्त नहीं कर सकता, जो मिलती है वह आधारसे प्रभावित रहती है।

हरिशंकर परसाई :

नागरजीने सबको मरहम लगाया है। डॉ० लालने एक भूल की। पीढ़ियों-की बात महत्त्वपूर्ण नहीं। विमलने जीवनको जैसेका तैसा भोगनेको जो

बात कही उसमें बहुत धोखा है। आत्मानुभूतिकी बात भी 'फ्रॉड' है: अक्सर अवसरवाद ही लेखकके अन्दर आत्मा बनकर कुण्डली मार बैठ जाता है। लेखककी आत्मा यन्त्र नहीं है; वह भोगी हुई स्थितियोंसे बनती है। लोग कहते हैं नयी पीढ़ी बीटनिक होती जा रही है; ऐसा है नहीं। ज़रूरत विद्रोह करनेकी ताक़तकी है। नयी पीढ़ीमें कुण्ठा और अनास्था बतायी जाती है, यह परिस्थितिके कारण है। प्रगतिवादी साहित्यमें खामियाँ हैं; लेकिन यही पहला आन्दोलन था जिसमें यथार्थको पहचाननेकी कोशिश की गयी।

श्रीकान्त वर्मा :

आजका लेखक किसी एकमें नहीं पचास हज़ार दुनियामें और एक कालमें नहीं हर समयमें रहता है। उसके हर शब्दमें पहलेका शब्द मिला हुआ है और आनेवाले उसे ग्रहण करेंगे। इसलिए परम्पराका सवाल बेमानी है। जीवनदृष्टि आजके लेखकके पास कोई नहीं है और इसे वह स्वीकारता भी है। उसे लगा है कि वह अकेला है, उसे सारे इतिहासको तय करना है, सारे इतिहाससे लड़ना है। इसीलिए आजका साहित्य तमाम साहित्यसे जुड़ा हुआ है। शिवप्रसाद सिंहने पाश्चात्यके अन्धानुकरणकी शिकायत की। मगर प्रभाव कहींसे भी छनकर आ सकते हैं। आदमीका अन्तर्राष्ट्रीयकरण बड़ी तेज़ीसे हो रहा है।

[अगले अंकमें समाप्य]

नये विचारोंको वहन करनेवाले सिर्फ़ नयी उम्रके लोग ही नहीं हैं, उनमें अधिक वयके लोग भी हैं और उनका विरोध करनेवाले सिर्फ़ पिछली पीढ़ीके लोग ही नहीं हैं, उनके साथ नयी पीढ़ीके लोग भी हैं। यह टकराव उम्रमें बँटी हुई पीढ़ियोंका नहीं वैचारिक धरातल पर दो तरहसे सोचनेवाली पीढ़ियोंका है।

—खोयी हुई दिशाएँ : कमलेश्वर

नवीन प्रकाशन

१९६५

पुस्तक	लेखक	मूल्य
महात्मा गान्धी (जीवनी)	: वी० आर० नन्दा	५.००
विनोबाके विचार भाग—३	:	१.५०
रचनात्मक राजनीति (राजनीति)	: सं० रामकृष्ण बजाज	४.००
पत्र व्यवहार भाग—२	: ,,	५.००
सहकारिता (ग्रामोपयोगी)	: जवाहरलाल नेहरू	२.००
सामुदायिक विकास और पंचायती राज	: ,,	२.५०
अहिंसाकी कहानी	: यशपाल जैन	१.७५
लड़खड़ाती दुनिया	: जवाहरलाल नेहरू	३.००
ज्वालामुखी	: अनन्त गोपाल शेवड़े	३.५०
पुरन्दरदास (जीवनी)	:	१.५०
जमना गंगाके नैहरमें	: विष्णु प्रभाकर	४.५०
ज़िन्दगी दाँवपर (उपन्यास)	: स्टीफन ज़्विग	३.००
मास्टर महिम (,,)	: मनोज बसु	४.००
लोकतन्त्रका लक्ष्य	: इन्द्रचन्द्र शास्त्री	४.००
जैनधर्मका प्राण	: सुखलाल संघवी	२.००
पंजाब केसरी लाला लाजपतराय	: मुकुटबिहारी वर्मा	१.००
हार-जीतका भेद	: आनन्दकुमार	२.००
कुछ शब्द कुछ रेखाएँ	: विष्णु प्रभाकर	३.५०
हमारे संस्कार सूत्र	: लक्ष्मीराम शास्त्री	३.००
कुछ देखा कुछ सुना	: घनश्यामदास बिड़ला	३.५०
जमनालालजी	: ,,	१.५०

मण्डलके सम्पूर्ण साहित्यके लिए एक कार्ड लिखकर
नया सूची-पत्र मँगा लीजिए।

सस्ता साहित्य मण्डल

कनाट सरकस, नयी दिल्ली। शाखा : जीरो रोड, इलाहाबाद

इस मासके नये प्रकाशन

• भारतीय दर्शन : (खण्ड १) डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

डॉ० राधाकृष्णन्‌का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जिसमें वेद, उपनिषद्, जैन एवं बौद्ध दर्शन, भगवद्गीता, न्याय, वैशेषिक, योग एवं मीमांसा आदि भारतीय दर्शनकी समस्त विचारधाराका स्पष्ट विवेचन प्रस्तुत है। बीस रुपये

• शिक्षणकी समस्याएँ :

सम्पादक : हैरल्ड टेलर; अनुवादक: श्रीकान्त व्यास

शिक्षा-सम्बन्धी आधुनिक प्रयोगोंपर आधारित दिशासूचक नये विचारोंसे ओतप्रोत इस ग्रन्थमें विख्यात आधुनिक शिक्षाविदोंके विचारपूर्ण लेख संगृहीत हैं। प्रत्येक विद्यालयके लिए उपयोगी। सात रुपये

• मरकत द्वीपका स्वर : डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन'

आयरलैण्ड (एमरल्ड आइलैण्ड अर्थात् मरकत द्वीप) के सबसे बड़े कवि विलियम बटलर ईट्सकी जन्म-शताब्दीके अवसर पर उनकी १०१ स्फुट कविताओंका हृदयग्राही अनुवाद डॉ० बच्चनने 'मरकत द्वीपका स्वर' नामसे किया है। बिलकुल मूल कविताओं-जैसी अनुभूति। पाँच रुपये

• जागृति : गुरुदत्त

क्या हमें सचमुच वर्ण-व्यवस्थाप्रधान मानव-समाज उन्नतिकी ओर ले जायेगा ? इस प्रश्नका उत्तर पानेके लिए इस रोचक उपन्यासको पढ़ें। गुरुदत्तजीका नया उपन्यास जो विशेष रूपसे जाटोंके जीवनपर आधारित है।

पाँच रुपये

• विख्यात आविष्कारक तथा उनके आविष्कार :

मू० ले० : फ्लैचर प्रैट; अनुवादक : दीवान

विश्वके सभी विख्यात आविष्कारकोंका जीवन-परिचय और उनके आविष्कारोंपर एक अधिकृत पुस्तक। दो रुपये

राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली-६



भारतीविश्व
कुछ सूत्र कुछ सन्दर्भ

जिसका उद्देश्य तथ्योंकी थाती
सौंपना है, मनोरंजन नहीं।

• स्व० देवीशंकर अवस्थी

१३ जनवरी १९६६ : समूचा हिन्दी जगत् अपने हितैषी प्रधान मन्त्रीके निधनपर शोकमें डूबा हुआ था कि अचानक इस समाचारने एक और गहरा आघात दिया कि : डॉ० देवीशंकर अवस्थी नहीं रहे ! ११ जनवरीको दिल्लीमें हुई एक स्कूटर-दुर्घटनामें उन्हें गहरी चोट आयी और १३ की सुबह अर्विन चिकित्सालयमें उनका देहावसान हो गया।

देवीशंकरजी हिन्दी नवलेखनके तटस्थ, निर्भीक, दल-मुक्त, ईमानदार और अग्रणी समीक्षक थे। वास्तवमें उनके निधनसे हिन्दी नवलेखनको भारी क्षति हुई है।

देवीशंकरजीके न होनेका एहसास जितना पीड़क है उसे और अधिक कारुणिक बनाता है यह समाचार कि दुर्घटनाके बाद अर्विन चिकित्सालयमें उनकी चिकित्साका समुचित प्रबन्ध नहीं हो सका और डॉक्टरोंने लापरवाही दिखायी। वास्तवमें यह अमानवीय व्यवहार निन्दनीय और क्षोभजनक है। कहना आवश्यक है और विचारणीय भी कि हिन्दुस्तानमें हिन्दी लेखकोंके प्रति यह उपेक्षा कुछ समझमें नहीं आती। हमें स्मरण है वह प्रसंग भी जब स्व० मुक्तिबोधकी चिकित्साके लिए स्व० श्री लालबहादुर शास्त्रीने अपना दायित्व स्वीकारते हुए विशेष प्रबन्ध कराया था।

देवीशंकर अवस्थीका जन्म ५ अप्रैल १९३० को उत्तर प्रदेशके जनपद उन्नावके एक गाँव 'सथनी' में हुआ था। पर अधिकांश बचपन बीता रायबरेलीके गाँव 'पूरे पाण्डेय' में। शिक्षा एम० ए० (हिन्दी), एल० एल० बी० और पी-एच्० डी० तक। कुछ कोर्स भाषा-विज्ञानके भी पूरे किये पर उसमें मन रमा नहीं। अध्यापन

उन्होंने प्रारम्भ किया अगस्त १९५३ से। प्रारम्भमें आठ वर्ष डी० ए० वी० कॉलेज, कानपुरमें रहे और बादमें जुलाई '६१ से दिल्ली विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागमें।

देवीशंकरजीके ही शब्दोंमें 'इस बातका शुरूसे एहसास रहा कि साहित्यमें अपना माध्यम आलोचना है और उसीमें आत्मिक परितृप्ति मिलती है।' उनकी अबतक प्रकाशित पुस्तकें हैं : १. विवेकके रंग (समकालीन – विशिष्ट कृति साहित्यपर गणनीय समीक्षाओंका संकलन : सम्पादन), २. आलोचना और आलोचना (निबन्ध-संग्रह), ३. कविताएँ : १९५४ (सम्पादन), ४. कहानी विविधा (सम्पादन), ५. नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति (सम्पादन)। उनका शोध-प्रबन्ध – '१८वीं शतीके ब्रजभाषा काव्यमें प्रेमाभक्ति' भी शीघ्र ही प्रकाश्य है। इनके अतिरिक्त देवीशंकरजीके अनेक समीक्षा-लेख पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हैं जो संग्रहीत नहीं हैं।

● देशकी सम्पर्क-भाषा केवल हिन्दी

स्व० प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्रीके निधनके बाद संसदीय कांग्रेस दलका नेता चुने जानेपर श्रीमती इन्दिरा गान्धीने प्रथम प्रेस सम्मेलनमें स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा कि देशको एक सम्पर्क-भाषाकी ज़रूरत है और यह भाषा केवल हिन्दी ही हो सकती है। उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दी किसीपर थोपी नहीं जायेगी। धीरे-धीरे वह पूरे देशकी सम्पर्क-भाषा हो जायेगी। देश-हितमें प्रयत्न यह अवश्य किया जाना चाहिए कि यह सब शीघ्रसे शीघ्र हो। उन्होंने यह सुझाव भी दिया कि अहिन्दी-भाषी लोगोंको अपनी भाषाके साथ हिन्दी पढ़नी चाहिए और एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा भी सीखनी चाहिए।

हिन्दीकी विकास और प्रगतिके प्रति इन्दिराजीका यह आश्वस्त-भाव तथा आस्था सभी हिन्दी-प्रेमियोंके लिए एक सुखद स्थिति है।—पर जहाँ यह है वहीं यह भी कि प्रधानमन्त्री-पद ग्रहण करनेके बाद इन्दिराजीने रेडियो-द्वारा राष्ट्रको प्रथम बार सम्बोधित किया अँगरेज़ीमें !

● ताशकन्दमें हिन्दी

अपने देशके कुछ क्षेत्रोंमें अब भी हिन्दीके प्रति लोगोंमें अरुचि है—इस विचित्र और दुःखद स्थितिका उत्तर यह नहीं है क्या कि उज़बेकिस्तानकी

राजधानी ताशकन्दके एक हाईस्कूलमें हिन्दीका अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया है। वहाँ पहलीसे ग्यारहवीं कक्षा तक हिन्दी पढ़ायी जाती है। इतना ही नहीं, यह समझ लिये जानेपर कि विद्यार्थियोंको हिन्दीका पूरा ज्ञान हो गया है तो यह भाषा अन्य विषयोंकी शिक्षाका भी माध्यम बना दी जायेगी। वैसे भी उजबेकिस्तानकी भाषामें हिन्दी शब्दोंसे मिलते-जुलते बहुतेरे शब्द हैं।

अभी तो उस स्कूलमें ११० छात्र-छात्राएँ हिन्दी सीख रहे हैं। बड़ी बात एक यह है कि हिन्दीकी शिक्षा अनिवार्य किये जानेके बावजूद विद्यार्थी आत्म-हत्याएँ नहीं कर रहे हैं, मोटरें नहीं फूँक रहे हैं; बल्कि इस भाषाके प्रति उनका अनुराग बराबर बढ़ता ही जा रहा है।

अपने यहाँ जिनके लिए हिन्दी सीखना कठिन ही नहीं, असम्भव है—क्या इसका कारण एक भावना-विशेष नहीं कहा जा सकता। गोकि ऐसे लोग अँगरेज़ी, फ्रेंच और जर्मन आदि भाषाएँ आरामसे सीखते और पढ़ते (और लिखते भी!) हैं।

● चीनी भाषाका अध्ययन

किसी भी विरोधी राष्ट्रकी बातोंका उत्तर अपनी भाषामें न देकर उसीकी भाषामें देना एक महत्त्वपूर्ण राजनयिक कूटनीति है। इसके लिए यह आवश्यक है कि विरोधी राष्ट्रकी भाषा सीखी जाये। यह एक दूसरे दृष्टिकोणसे भी लाभ-दायी है। विरोधी राष्ट्रकी भाषाके माध्यमसे उस राष्ट्रको बहुत गहरे उतरकर सही ढंगसे देखा-जाना जा सकता है।

यह एक संयोग ही है कि दिल्ली स्थित 'चीन भवन' में चीनी भाषाका दो वर्षीय अध्ययन-कोर्स प्रारम्भ किया गया है। भारत और चीनके वर्तमान सम्बन्धोंको देखते ज़रूरी है कि हम इस नये प्रारम्भका पूरा-पूरा लाभ उठायें। दिल्ली विश्वविद्यालय-द्वारा संचालित इस अध्ययन कोर्समें अभी तीन छात्रोंने प्रवेश किया है। लेकिन, क्या यह चिन्तनीय नहीं है कि इस महत्त्वपूर्ण भाषा-अध्ययन-के लिए छात्रोंकी संख्या सिर्फ़ तीन! बहुत आवश्यक है कि यह संख्या और अधिक बढ़े।

● अहिन्दीभाषी क्षेत्रोंके लिए हिन्दी पुस्तकें

केन्द्रीय शिक्षा उप-मन्त्री श्री भक्तदर्शनने बताया है कि चालू वित्त-वर्षमें केन्द्रीय शासन-द्वारा अबतक हिन्दीकी २८ पुस्तकोंकी ९,५०० प्रतियाँ खरीद कर अहिन्दी-भाषी राज्योंकी सरकारोंको राज्यके स्कूलों, कॉलेजों और सार्वजनिक पुस्तकालयोंमें बँटवानेके लिए दी जा चुकी हैं। केन्द्रीय सरकारने ४१ हिन्दी पुस्तकें और चुनी हैं जिनकी ६५ हज़ार प्रतियाँ शीघ्र ही खरीदी जायेंगी और उनका भी वितरण इसी वित्त-वर्षमें किया जायेगा।

हिन्दीकी इन ६९ पुस्तकोंमें उपन्यास, नाटक, कविता, कहानी, संस्मरण-जीवनी विधाओंकी कृतियाँ तो हैं ही; संस्कृति, विज्ञान और सामान्यज्ञानविषयक सरल भाषामें लिखी गयी पुस्तकें भी इसमें सम्मिलित हैं।

● पुस्तक-प्रदर्शनी

नेशनल बुक ट्रस्टकी ओरसे फ़रवरीके अन्तिम सप्ताहमें लखनऊमें होनेवाली पुस्तक-प्रदर्शनीकी तैयारियाँ तेज़ीसे हो रही हैं। अखिल भारतीय स्तरपर आयोजित इस पुस्तक-प्रदर्शनीमें १९६४-६५ में प्रकाशित केवल हिन्दीकी रचनात्मक कृतियाँ ही प्रदर्शित की जायेंगी। अनुमान है कि इस प्रदर्शनीमें हिन्दीकी चार-पाँच हज़ार कृतियाँ प्रदर्शित होंगी। लखनऊके बाद यह प्रदर्शनी उत्तर प्रदेश तथा बिहारके कुछ अन्य प्रमुख नगरोंमें भी लगायी जायेगी।

● 'वाणाम्बरी' पुरस्कृत

कवि श्री पोद्दार रामावतार अरुणकी काव्य-कृति 'वाणाम्बरी'को मध्य प्रदेश सरकारने एक हज़ार रुपयेका पुरस्कार देकर सम्मानित किया है। पोद्दारजीकी अबतक प्रकाशित काव्य-कृतियोंमें 'वाणाम्बरी' एक विशिष्ट कृति है। इसके पूर्व भी यह कृति राजस्थान साहित्य अकादेमी, उ० प्र० शासन तथा बिहार राज्य सरकार-द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। इसी वर्ष गणतन्त्र दिवसपर राष्ट्रपतिने कवि श्री अरुणको 'पद्मश्री' की उपाधिसे भी विभूषित किया है।

• अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन

दिसम्बरके अन्तमें केरलमें आयोजित अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन धूम-धामसे सम्पन्न हुआ। इसमें नेफासे लेकर कन्याकुमारी तकके प्रतिनिधि साहित्यकार और कलाकार सम्मिलित थे, अनुपस्थित थे तो, यहाँ प्राप्त जानकारीके अनुसार, केवल केरलके साहित्यकार। अपनी उपलब्धियोंके कारण यह लेखक सम्मेलन ऐतिहासिक महत्त्वका हो गया, इसमें सन्देह नहीं।

सम्मेलनमें श्री स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने अध्यक्षीय भाषणमें कहा कि परायी भाषामें आत्माभिव्यक्ति असम्भव है। अपनी भाषामें ही अनुभूतियोंको ईमानदारीके साथ अभिव्यक्त किया जा सकता है। अँगरेजी प्रभावसे भारतीय साहित्यको मुक्त करना ज़रूरी है। लेखकोंको अपना दृष्टिकोण व्यापक-सार्वदेशिक बनाना चाहिए।

आयोजित संगोष्ठीमें साहित्यकी विधाओंपर अलग-अलग निबन्ध पढ़े गये और उनपर चर्चाएँ हुईं। विविध भाषाभाषी साहित्यकारोंने यह स्वीकार किया कि भारतीय भाषाओंके साहित्यमें जितना विकास कविता और कहानी विधाओंने किया है उतना अन्य किसी विधाने नहीं। विचारकोंमें सर्वाधिक असन्तोष समीक्षाको लेकर रहा, विशेष रूपसे समीक्षकोंको गुटबन्दी और ग़ैर-ईमानदार समीक्षा-दृष्टिको लेकर।

सम्मेलनमें अतिरिक्त उल्लास और हर्षकी लहर तब दौड़ी जब मलयाली महाकवि श्री जी० शंकर कुरुप्पुको भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित एक लाख रुपयेका साहित्य पुरस्कार प्राप्त होनेका समाचार मिला। श्री कुरुप्पुके सम्मानमें तत्काल साहित्यकारोंको एक गोष्ठी आयोजित हुई जिसमें पुरस्कारकी निर्णायिका प्रवर परिषद्के निर्णयका सभीने स्वागत किया।

• •

पत्र-मंत्र

'ज्ञानपीठ पत्रिका' आपने इतनी सुरुचिपूर्ण साहित्यिक पत्रिका बना दी, अद्यतन कृतित्वका महत्त्वपूर्ण डाइजेस्ट !

—गिरिजाकुमार माथुर, जालन्धर

'ज्ञानपीठ पत्रिका' का जनवरी '६६ का अंक। पूरे अंककी सामग्री बहुत उपयोगी लगी। 'समसामयिकी' स्तम्भमें साम्प्रतिक भारतीय परिवेश और बौद्धिक वंचनाको लेकर उठायी गयी समस्याओंपर और अधिक विचार होना चाहिए। मेरी बधाई।

—डॉ० सुधीर सेन, कलकत्ता

'आधुनिक भाव-बोधकी काव्य-धारा' लेखमें श्री गिरिजाकुमार माथुरने नयी कवितासे सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्योंकी विवेचना की है। अनेक स्थलोंपर उनसे असहमति होते हुए भी लेख अच्छा लगा। डॉ० शिवप्रसाद सिंहके लेख 'परिवर्तन और सृजन'में प्रतिपादित विचारोंसे मैं सहमत हूँ। अपनी स्वतन्त्रताका बोध रखते हुए दिशाहीन स्थितियोंसे टकराना भी एक मूल्य है।

—श्रीपति उपाध्याय, वाराणसी

'पत्रिका' खूब निखरी है इधर। 'प्रकाशित समीक्षाएँ : शेष स्वर' तथा 'समसामयिकी' स्तम्भ मौलिक और बहुत उपयोगी हैं। एक सुझाव स्वीकार करें—कृपया नये बाहरी प्रकाशनोंपर भी गम्भीर और स्तरीय समीक्षा प्रकाशित करें।

—डॉ० रामसुभग मिश्र, सीतामढ़ी

इधर 'ज्ञानपीठ पत्रिका' की सुरुचि-सम्पन्नता, सामग्री-चयन तथा साज-सज्जामें अभिनवताके लिए हमारी हार्दिक बधाइयाँ और अभिनन्दन स्वीकार करें।

—शंकरदयाल सिंह, पटना

महत्त्वपूर्ण कृतियोंपर उल्लेखनीय समीक्षाओंको फिरसे प्रकाशित करनेकी योजना बहुत उपयोगी है। इस सूझ-बूझके लिए बधाई स्वीकारें।

—दिनकर सोनवलकर

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका तथा भारतीय भाषाओंकी सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर प्रतिवर्ष एक लाख रुपये पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका विशिष्ट संस्था



भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्यका निर्माण

●

श्रेष्ठ उपयोगी संग्रहणीय प्रकाशन

संस्थापक

श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा

श्रीमती रमा जैन

● ●

प्रधान कार्यालय

९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता—२७

विक्रय केन्द्र

३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली—६

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी—५

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

०

लोकोदय ग्रन्थमाला

● राष्ट्रभारती

प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी	सं०—दिनकर सोनवलकर	४.००
प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी दो	नानक सिंह	४.००
प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी दो	प्रो० ना० सी० फड़के	४.५०
प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी	कर्तारसिंह दुग्गल	३.५०
प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी	सं०—अनिल कुमार	४.००
प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु	नार्ल वेंकटेश्वर राव	३.५०
प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला	'परशुराम'	३.००
प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी	व्यंकटेश दि० माडगूलकर	४.००

● उपन्यास

अठारह सूरजके पौधे	रमेश बक्षी	३.००
सूरजका सातवाँ घोड़ा [च० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	२.००
जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	३.५०
पीले गुलाबकी आत्मा [द्वि० सं०]	विश्वम्भर मानव	४.००
गुनाहोंका देवता [आठवाँ सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	५.००
रक्त-राग [द्वि० सं०]	देवेशदास आइ०सी०एस्०	३.००
तीसरा नेत्र [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	२.५०
जो	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सुनें !!	'भिक्खु'	२.२५
पलासीका युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	३.५०
अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय	३.००
शतरंजके मोहरे [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अमृतलाल नागर	६.००
शह और मात	राजेन्द्र यादव	४.००
राजसी	देवेशदास आइ०सी०एस्०	२.५०
संस्कारोंकी राह [पुरस्कृत]	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०

ग्यारह सपनोंका देश	सं०—लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००
मुक्तिदूत [द्वि० सं०]	वीरेन्द्रकुमार जैन	५.००

कहानी

मुरदा सराय	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	४.००
खोयी हुई दिशाएँ [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	२.५०
दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	३.००
झाड़ी	श्रीकान्त वर्मा	३.००
मेज़पर टिकी हुई कुहनियाँ	रमेश बक्षी	३.५०
कालके पंख [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
खेल खिलौने [द्वि० सं०]	राजेन्द्र यादव	२.००
बोस्ताँ [द्वि० सं०]	शेख सादी	२.५०
जय-दोल [तृ० सं०]	अज्ञेय	३.००
ज़िन्दगी और गुलाबके फूल	उषा प्रियंवदा	२.५०
अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
कर्मनाशाकी हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.००
सूने अँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.००
प्यारके बन्धन	रावी	३.२५
मोतियोंवाले [पुरस्कृत]	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
हरियाणा लोकमञ्चकी कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२.५०
मेरे कथागुरुका कहना है : १–२	रावी	६.००
पहला कहानीकार [पुरस्कृत]	रावी	२.५०
संघर्षके बाद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विष्णु प्रभाकर	३.००
नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
अतीतके कम्पन [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
आकाशके तारे : धरतीके फूल [तृ०सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	२.००
नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
कुछ मोती कुछ सीप [द्वि०सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
जिन खोजा तिन पाइयाँ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
गहरे पानी पैठ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००

ऑस्कर वाइल्डकी कहानियाँ	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.००

● कविता

लेखनी-बेला [द्वि० सं०]	वीरेन्द्र मिश्र	३.५०
इतिहास-पुरुष	डॉ० देवराज	३.५०
देशान्तर [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	१२.००
अन्धा चाँद	मुनि रूपचन्द	३.००
चाँदका मुँह टेढ़ा है [द्वि० सं०]	मुक्तिबोध	८.००
आत्मजयी	कुँवरनारायण	३.५०
कनुप्रिया [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.००
हम विषपायी जनमके [द्वि० सं०]	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१६.००
वेणु लो गूँजे धरा [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन	३.००
संक्रान्त	डॉ० कैलाश वाजपेयी	३.००
हिम-विद्ध	डॉ० जगदीश गुप्त	३.००
बीजुरी काजल आँज रही	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	३.००
रत्नावली	हरिप्रसाद 'हरि'	२.००
वाणी [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
सौवर्ण [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	३.५०
आँगनके पार द्वार [अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत]	अज्ञेय	३.००
वीणापाणिके कम्पाउण्डमें	केशवचन्द्र वर्मा	३.००
रूपाम्बरा	सं०—अज्ञेय	१२.००
अनुक्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
तीसरा सप्तक [द्वि० सं०]	सं०—अज्ञेय	५.००
अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	४.००
सात गीत-वर्ष [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.५०
आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.००
पंच-प्रदीप	शान्ति मेहरोत्रा	२.००
मेरे बापू	तन्मय बुखारिया	२.५०

धूपके धान [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.००
वर्द्धमान [महाकाव्य पुरस्कृत]	अनूप शर्मा	६.००

● शाइरी

गंगोजमन	'नज़ीर' बनारसी	३.००
शाइरीके नये मोड़ : १—५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१५.००
नग़्मए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
शाइरीके नये दौर : १—५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१५.००
शेर-ओ-सुख़न : १—५ [द्वि०सं०पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२०.००
शेर-ओ-शाइरी [द्वि०सं०पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
ग़ालिब	रामनाथ 'सुमन'	८.००
मीर	रामनाथ 'सुमन'	६.००

● नाटक

जनम क़ैद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	२.५०
प्रेत	इब्सेन, अनु० नेमिचन्द्र जैन	२.२५
बारह एकांकी [द्वि० सं०]	विष्णु प्रभाकर	४.००
घाटियाँ गूँजती हैं [तृ० सं०]	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	२.५०
नाटक बहुरूपी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.५०
आदमीका ज़हर	लक्ष्मीकान्त वर्मा	३.००
रजत रश्मि [द्वि० सं० पुरस्कृत]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ	परिपूर्णानन्द वर्मा	४.००
सुन्दर रस [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	१.५०
नाटक बहुरंगी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	४.५०
कहानी कैसे बनी ?	करतारसिंह दुग्गल	२.५०
पचपनका फेर [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विमला लूथरा	३.००
तरकशके तीर	श्रीकृष्ण	३.००
और खाई बढ़ती गयी [पुरस्कृत]	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०
चेखॅवके तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ० भगवतशरण उपा०	३.५०

सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	२.००
भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०

● विधा-विविधा

खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति मेहरोत्रा	४.५०
अंकित होने दो	अजित कुमार	४.००
काठकी घण्टियाँ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	७.००
सीढ़ियोंपर धूपमें	रघुवीर सहाय	४.००
पत्थरका लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	३.००

● रुचिर कलात्मक

शैशवांकन		१२.००
परिणय गीतिका	सं०—रमा जैन, कुन्था जैन	५.००

● ललित-निबन्धादि

कुछ निबन्ध	अक्षयकुमार जैन	२.५०
क्षण बोले कण मुसकाये [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
चिन्तककी लाचारी	माखनलाल चतुर्वेदी	४.००
एक साहित्यिककी डायरी [द्वि. सं. परिवर्द्धित]	गजानन माधव मुक्तिबोध	२.५०
अमीर इरादे ग़रीब इरादे [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	२.००
हम सब और वह	दयानन्द वर्मा	२.००
बातें, जिनमें सुगन्ध फूलोंकी	अहमद सलीम	३.००
महके आँगन चहके द्वार	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
शिखरोंका सेतु	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.५०
बाजे पायलियाके घुँघरू [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
फिर बैतलवा डालपर	विवेकी राय	३.५०
आँगनका पंछी और बनजारा मन	डॉ० विद्यानिवास मिश्र	३.००
नये रंग नये ढंग	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.००
बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०
काग़ज़की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.५०
सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००

वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२.५०
ठूँठा आम	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.००
हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान [द्वि.सं.]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	१.००
ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१.००
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२.५०
माटी हो गयी सोना [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	२.००
ज़िन्दगी मुसकरायी [तृ० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	४.००

● यात्रा-विवरण

चीड़ोंपर चाँदनी	निर्मल वर्मा	३.००
एक बूँद सहसा उछली	अज्ञेय	७.००
पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	२.००
सागरकी लहरोंपर	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
हरी घाटी	डॉ० रघुवंश	४.५०

● संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी

दीप जले शंख बजे [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	३.००
समयके पाँव [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
रेखाचित्र [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००
पराड़करजी और पत्रकारिता [पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	५.५०
आत्मनेपद	अज्ञेय	४.००
माखनलाल चतुर्वेदी	'बरुआ'	६.००
द्विवेदी पत्रावली	बैजनाथसिंह 'विनोद'	२.५०
जैन-जागरणके अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
संस्मरण [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
हमारे आराध्य [पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००

● आलोचना, अनुसन्धान, रचना-शिल्प

अपभ्रंश भाषा और साहित्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	१०.००
घरेलू इलाज	वैद्यरत्न च० गो० ठक्कुर	२.००
विवेकके रंग	सं०-डॉ०देवीशंकर अवस्थी	७.००
हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि	डॉ० प्रेमसागर जैन	१२.००

माषा और संवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.५०
हिन्दी गीतिनाट्य	कृष्ण सिंहल	४.००
साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य	डॉ० रघुवंश	५.००
जैन भक्ति-काव्यकी पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमसागर जैन	६.००
रेडियो वार्ता-शिल्प	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	२.००
रेडियो नाट्य-शिल्प [द्वि० सं०]	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	३.००
ध्वनि और संगीत [द्वि० सं०]	ललितकिशोर सिंह	४.५०
भारतीय ज्योतिष [च० सं०]	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६.००
प्राचीन भारतके प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०
संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००
संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन [द्वि.सं.]	डॉ० भोलाशंकर व्यास	५.००
हिन्दी नवलेखन	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.००
मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
शरत्के नारी-पात्र	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.५०
हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : १–२	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	५.००

● इतिहास-राजनीति

भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०]	डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१०.००
भारतीय संस्कृतिका विकास : वैदिक धारा	डॉ० मंगलदेव शास्त्री	७.००
समाजवाद	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५.००
कालिदासका भारत : भाग १ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००
कालिदासका भारत : भाग २ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
चौलुक्य कुमारपाल [द्वि०सं० पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.५०
एशियाकी राजनीति	परदेशी	६.००
इतिहास साक्षी है	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
खोजकी पगडण्डियाँ [द्वि० सं० पुरस्कृत]	मुनि कान्तिसागर	४.००
खण्डहरोंका वैभव [द्वि० सं०]	मुनि कान्तिसागर	६.००

• दार्शनिक-आध्यात्मिक

तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो	मुनि नथमल	२.००
क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?	आचार्य तुलसी	२.००
अध्यात्म-पदावली [तृ० सं०]	डॉ० राजकुमार जैन	४.५०
दर्शन अनुचिन्तन	गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	३.००
तान्त्रिक साधना	माधव पुण्डलीक पण्डित	१.५०
भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२.००
वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६.००

• सूक्तियाँ

सन्त-विनोद [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	२.५०
भाव और अनुभाव [द्वि० सं०]	मुनि नथमल	२.००
ज्ञानगंगा : भाग १ [द्वि०सं०]	नारायणप्रसाद जैन	६.००
ज्ञानगंगा : भाग २	नारायणप्रसाद जैन	६.००
शरतकी सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
कालिदासके सुभाषित	डॉ०भगवतशरण उपाध्याय	५.००

• हास्य-व्यंग्य

बक रहा हूँ जुनून में	प्रकाश पण्डित	३.००
सिकन्दरनामा	सलमा सिद्दीक़ी	२.००
आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य [द्वि० सं०]	सं० — केशवचन्द्र वर्मा	४.००
तेलकी पकौड़ियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० प्रभाकर माचवे	२.००
जैसे उनके दिन फिरे [द्वि० सं०]	हरिशंकर परसाई	२.५०
काग़ज़के फूल शब्द : भारतभूषण अग्रवाल,	चित्र : प्रभाकर माचवे	३.००
चाय पार्टियाँ	सन्तोषनारायण नौटियाल	२.००
हास्य सन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	६.००
मुर्ग़-छाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	२.००
अंगदका पाँव	श्रीलाल शुक्ल	२.५०

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला

तत्वज्ञान और सिद्धान्तशास्त्र

समयसार [प्राकृत-अँगरेज़ी]
मूल : आचार्य कुन्दकुन्द; सं०-अनु० : प्रो० ए० चक्रवर्ती ८.००

तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग १–२
मूल : भट्ट अकलंक; सम्पादन : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य २४.००

सर्वार्थसिद्धि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य पूज्यपाद; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री १२.००

पंचसंग्रह [प्राकृत-हिन्दी]
संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री १५.००

जैन धर्मामृत [संस्कृत-हिन्दी]
संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री ३.००

जैन न्याय और कर्मग्रन्थ

कर्मप्रकृति [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य नेमिचन्द्र, सम्पादन : पं० हीरालाल शास्त्री ६.००

सत्यशासन-परीक्षा [संस्कृत]
मूल : आचार्य विद्यानन्दि; सम्पादन : गोकुलचन्द्र जैन ५.००

सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग १–२
मूल : भट्ट अकलंक और अनन्तवीर्य; सम्पादन : डॉ० महेन्द्रकुमार ३०.००

न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग १–२
मूल : भट्ट अकलंक और वादिराज सूरि; सं० : डॉ० महेन्द्रकुमार ३०.००
महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग २ से ७
मूल : भगवन्त भूतबलि; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ६६.००

आचारशास्त्र, पूजा और व्रत विधान

उपासकाध्ययन [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : सोमदेव सूरि, सं०-अनु० : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री १२.००
वसुनन्दि श्रावकाचार [प्राकृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य वसुनन्दि; सं०-अनु० : पं० हीरालाल शास्त्री ५.००
ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि [संकलन]
संकलन-सम्पादन : डॉ० आ.ने. उपाध्ये व फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ४.००
व्रततिथिनिर्णय [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ३.००
मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन [हिन्दी]
लेखक : पं० नेमिचन्द्र शास्त्री २.००

व्याकरण, छन्दशास्त्र और कोश

जैनेन्द्र महावृत्ति [संस्कृत]
मूल : आचार्य अभयनन्दि; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी १५.००
सभाष्य रत्नमञ्जूषा [संस्कृत]
मूल : अज्ञात; सम्पादन : श्री हरि दामोदर वेलणकर २.००
नाममाला सभाष्य [संस्कृत]
मूल : कवि धनञ्जय–अमरकीर्ति; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी ३.५०

पुराण साहित्य

हरिवंशपुराण [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १६.००

आदिपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १–२
मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य २०.००

उत्तरपुराण [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य गुणभद्र; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १०.००

पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १–३
मूल : आचार्य रविषेण; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ३०.००

पुराणसार-संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १–२
मूल : आचार्य दामनन्दि; सं०-अनु० : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी ४.००

चरित व काव्य-ग्रन्थ

सुगन्धदशमी कथा : सं० डॉ० हीरालाल जैन ११.००

करकण्डुचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]
मूल : कनकामर, सं०-अनु० : डॉ० हीरालाल जैन १०.००

भोजचरित्र [संस्कृत]
मूल : राजवल्लभ, सम्पा० : डॉ० छावड़ा, शंकरनारायणन् ८.००

मयणपराजयचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]
मूल : कवि हरिदेव; सम्पादन और अनुवाद : डॉ० हीरालाल जैन ८.००

मदनपराजय [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : नागदेव; सं०-अनु० : डॉ० राजकुमार जैन साहित्याचार्य ६.००

पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग १–३
मूल : कवि स्वयम्भू; सं०-अनु० : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन ९.००

जीवन्धरचम्पू [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : कवि हरिचन्द्र
सम्पादन, अनुवाद और टीका : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ८.००

जातकट्ठकथा [पाली]
सम्पादन : भिक्षु धर्मरक्षित ९.००

धर्मशर्माभ्युदय [हिन्दी]
अनुवादक : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ३.००

ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र

भद्रबाहु संहिता [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य भद्रबाहु; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य — ८.००

केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य — ४.००

करलक्खण [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी — ०.७५

विविध

वर्ण, जाति और धर्म
लेखक : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री — ३.००

जिनसहस्रनाम [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री — ४.००

थिरुकुरल [तमिल]
सम्पादन : ए० चक्रवर्ती — ५.००

आधुनिक जैन कवि [हिन्दी]
संकलन-सम्पादन : श्रीमती रमा जैन — ३.७५

कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची
संकलन-सम्पादन : पं० के० भुजबली शास्त्री — १३.००

माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला

पुराण

महापुराण [अपभ्रंश] आदिपुराण : भाग १
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — १०.००

महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग २
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — १०.००

महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग ३
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — ६.००

पद्मपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

पद्मपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

पद्मपुराण [संस्कृत] भाग ३
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

शिलालेख

जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
सम्पादन : पं० श्री हीरालाल जैन — २.००

जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — ८.००

जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — १०.००

जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ४
सम्पादन : डॉ० जोहरापुरकर — ७.००

चरित, काव्य और नाटक

वरांगचरित [संस्कृत]
मूल : श्री जटासिंहनन्दि; सम्पादन : डॉ० आदिनाथ उपाध्ये — ३.००

जम्बूस्वामीचरित [संस्कृत]
मूल : पं० राजमल्ल; सम्पादन : श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री — १.५०

प्रद्युम्नचरित [संस्कृत]
मूल : श्री महासेन; सम्पादन : पं० मनोहरलाल, रामप्रसाद शास्त्री — .५०

रामायण [अपभ्रंश]
मूल : महाकवि पुष्पदन्त — २.५०

पुरुदेवचम्पू [संस्कृत]
मूल : श्रीमदर्हद्दास; सम्पादन : श्री जिनदास शास्त्री — .७५

अंजनापवनंजय [नाटक]
मूल : श्री हस्तिमल्ल : सम्पादन–वासुदेव पटवर्धन — ३.००

जैन-न्याय

न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य — ८.००

न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य — ८.५०

प्रमाणप्रमेयकलिका [संस्कृत]
मूल : श्री नरेन्द्रसेन; सम्पादन : पं० दरबारीलाल कोठिया — १.५०

सिद्धान्त, आचार और नीतिशास्त्र

सिद्धान्तसारादि [प्राकृत-संस्कृत]
मूल : श्री जिनेन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी — १.५०

भावसंग्रहादि [प्राकृत-संस्कृत]
मूल : श्री देवसेनसूरि; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी — २.२५

पञ्चसंग्रह [संस्कृत]
मूल : श्री अमितगति सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — .८१

त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र [संस्कृत, मराठी अनुवाद]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : मोतीलाल .५०

स्याद्वादसिद्धि [संस्कृत, हिन्दी-सारांश]
मूल : श्री वादीभसिंहसूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल १.५०

रत्नकरण्डश्रावकाचार [मूल, संस्कृत टीका]
मूल : श्री स्वामी समन्तभद्र; टीका : श्री प्रभाचन्द्राचार्य २.००

लाटी संहिता [संस्कृत]
मूल : श्री राजमल्ल; सम्पादन : पं० श्री दरबारीलाल .५०

नीतिवाक्यामृत (शेषांश) [संस्कृत टीका]
मूल : सोमदेवसूरि; टीका : अज्ञात .२५

आगामी प्रकाशन

साहित्यिक

* **तार-सप्तक** : सं० अज्ञेय (कविता)
* **हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थ** : कृष्णाचार्य (शोध)
* **सिंहली कहानियाँ** : सं०—भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा एस० मेधंकर (कहानी)
* **अस्तंगता** : कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु' (उपन्यास)
* **दूसरा सप्तक** : सं० अज्ञेय (कविता)
* **शहर अब भी सम्भावना है** : अशोक वाजपेयी (कविता)
* **संग-तराश** : शिवचन्द्र शर्मा (कहानी)

भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी से मुद्रित।

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रस्तुत

• • प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु

नार्ल वेंकटेश्वर राव

'नाटककार वह जिसकी रचना गोली-सी अचूक मार करे'—यह शॉने कहा था। इस संग्रहमें आये नार्लके प्रतिनिधि नाटकों पर भी यह बात पूरी लागू होती है। नार्लके ये नाटक कदाचित् हिन्दीमें पहली बार प्रस्तुत हैं। ३.५०

• • प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी–१

व्यंकटेश दि० माडगूलकर

मराठीके नये साहित्यके अग्रणी श्री माडगूलकर की प्रतिनिधि कहानियों, ललित निबन्धों तथा एक बहुचर्चित उपन्यास 'बनगरवाड़ी' का संग्रह। ४.००

• • प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला

'परशुराम'

न केवल बंगला वरन् सभी भारतीय भाषाओंके हास्य-व्यंग्य साहित्यमें 'परशुराम' अर्थात् राजशेखर बोसकी रचनाएँ अद्वितीय हैं। यह प्रस्तुत है स्वयं उनके द्वारा चुनी हुई उनकी प्रतिनिधि हास्य कहानियोंका संग्रह। २.००



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता • दिल्ली • वाराणसी



ज्ञानपीठ पत्रिका

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति और उपलब्धि-परिचायिनी मासिकी

मार्च १९६६





साहित्यिक विकास-उन्नयन
सांस्कृतिक अनुसन्धान-प्रकाशन
राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी
साधिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

[स्थापित सन् १९४४]

संस्थापक	अध्यक्षा
श्री शान्तिप्रसाद जैन	श्रीमती रमा जैन

ज्ञानपीठ पत्रिका

वर्ष चार : अंक आठ
मार्च १९६६

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जगदीश
प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
मूल्य : छह रुपये वार्षिक, पचपन पैसे प्रति; द्विवार्षिक : ग्यारह रुपये
समाज-शिक्षा विभाग, राजस्थान-द्वारा उच्च, उच्चतर विद्यालय तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंके लिए प्रस्वीकृत

उद्घोष

काव्यका सार्वभौम सिद्धान्त

जिसके आधारपर प्रत्येक देश और काल-
के सर्जनात्मक साहित्यका उचित मूल्यांकन
किया जा सकता है।

डॉ० नगेन्द्र

शास्त्र-रूढ़ियोंसे मुक्त रस-सिद्धान्त अपने व्यापक एवं विकास-शील रूपमें काव्यका सार्वभौम सिद्धान्त है। इसकी प्रकल्पना इतनी सर्वांगीण है कि मानव-चेतनाकी मूलवृत्ति रागको धुरी बनाकर यह अन्य सभी प्रमुख तत्त्वोंको उचित रूपमें स्वीकार कर चलता है। यह मानवको उसकी देह और आत्मा, शक्ति और सीमा तथा समस्त राग-द्वेषके साथ स्वीकार करता है, इसलिए मानवके अतीत, वर्तमान तथा भविष्यके साथ इसका अभिन्न सम्बन्ध है।

जिस प्रकार मानववाद मानवको अन्तिम सत्य मानकर जीवनके विकासके साथ निरन्तर विकासशील है, उसी प्रकार मानव-संवेदनाको चरम सत्य मानकर रस-सिद्धान्त भी निरन्तर विकासशील है। जीवनकी निरन्तर विकासशील धारणाओं और आवश्यकताओं-का आकलन जिस प्रकार मानववादमें ही हो सकता है, उसी प्रकार साहित्यकी चेतनाका परितोष भी रस-सिद्धान्तके द्वारा ही हो सकता है। जीवनकी भूमिकामें जबतक मानवतासे महत्तर सत्यका आविर्भाव नहीं होता—और साहित्यकी भूमिकामें जबतक मानव-संवेदनासे अधिक रमणीय सत्यकी उद्भावना नहीं होती, तबतक रस-सिद्धान्तसे अधिक प्रामाणिक सिद्धान्तकी प्रकल्पना भी नहीं की जा सकती।

● ●

कि रचनाओंमें युग बोले

हमारी रचनाओंमें हमारा युग तबतक नहीं बोलेगा जब-तक खण्ड यथार्थके बीच समग्र ऐतिहासिक चेतना अन्तर्व्याप्त और सर्वथा विद्यमान नहीं होती

डॉ० शिवप्रसाद सिंह

नवलेखनके बारेमें जब मैं यह कहता हूँ कि वह अपने सामयिक परिवेशके प्रति उदासीन है, तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि मैं उसकी यथार्थवादी दृष्टिको नज़र-अन्दाज़ कर रहा हूँ। नवलेखनमें यथार्थके प्रति संसक्ति है, निकटता और आग्रह है। नवलेखनने काल्पनिक रोमानी ज़िन्दगीके आकर्षणको तोड़ा है, साथ ही यथार्थके पूर्व प्रचलित साँचोंको भी। अर्थात् नवलेखन अब न तो जीवनको रंगीन चश्मेसे देखता है जैसे छायावादी करते थे, न ही यथार्थवादी साँचोंमें जीवनको कसकर सन्तुष्ट होता है जैसे प्रगतिवादी किया करते थे। छायावादी लेखकोंका जीवन एक अजीब कुहेलिकामें डूबा जीवन था जिसमें आदमीकी दैनन्दिन ज़िन्दगीका कडुवापन, कुरूपताएँ, बिखराव और निराशाएँ छिप जाती थीं या छिपायी जाती थीं। वे ज़िन्दगीके ऊपर एक अद्भुत चमकीला, रंगारंग मुखोश डाल लेते थे। उनकी रचनाओंमें एक अतीन्द्रिय संगीतकी 'हारमनी' थी, जो बिलकुल मन:प्रसूत थी—कर्णेन्द्रियका 'हैल्युसिनेशन' भी लगे तो आश्चर्य नहीं!—और इस 'नीरव संगीत'में सारा सदन-कोलाहल, चीख-पुकार डूब जाती थी। नवलेखनमें ऐसे हैल्युसिनेशन नहीं हैं। नवलेखन ज़िन्दगीको जो वह है उसी रूपमें ग्रहण करता है। इस ज़िन्दगीकी सारी निरर्थकताके बावजूद वह अपनी आसक्ति और संसक्तिका आधार मानता है। यहाँ एक नया यथार्थ है, नयी वास्त-विकताके प्रति नये क़िस्मका लगाव है। यह यथार्थ उस यथार्थसे भिन्न है, जहाँ दृष्टिके साथ एक राजनीतिक चश्मा जोड़ लिया जाता था। प्रगतिवादियोंके यथार्थके बँधे-बँधाये ढाँचे थे। ये जीवनको वर्गोंमें बाँट लेते थे। समूहकी ऊपरी स्तरकी निर्वै-

यक्तिक मान्यताएँ जीवनकी माप बन गयीं। व्यक्ति मशीन बन गया। एक तरहकी मशीनोंके लिए एक तरहके यथार्थका स्वरूप निर्धारित कर दिया गया। जिन्दगीमें 'मैं' का कोई मूल्य नहीं रहा। यह 'मैं' छायावादियोंके पास था तो एक गजदन्ती मीनारमें सोया रहा और जब यह प्रगतिवादियोंके पास आया तो उन्होंने इसकी क़रीब-क़रीब हत्या ही कर दी और इसके अंग-प्रत्यंग काटकर मशीनोंमें फ़िट कर दिये।

नवलेखनने इस 'मैं' को सिर्फ़ 'मैं' ही रहने दिया, पर इसे रहने दिया, और जो कुछ भी लिखा गया वह इस सामान्य सहज 'मैं' की दृष्टिको सम्मान देकर ही। यह 'मैं' न महत् बना न लघु। यह एक जागरूक, आत्मविश्लेषण-परक, अपनी भोगी हुई अनुभूतियोंके प्रति ईमानदार और अपने कमाये हुए सत्यके प्रति आस्थावान् तथा अपनी असफलताओं, निरर्थकताओं और क्षुद्रताओंके प्रति प्रामाणिक 'मैं' ही रहा। नवलेखनकी यह विशेषता थी। इसे स्वीकार करना पड़ेगा कि नवलेखन अपने चहुँओरके यथार्थके प्रति जागरूक रहा।

किन्तु यह जागरूकता खण्डित यथार्थमें अकसर सीमित हो जाती है। यानी हमारा 'मैं' बहुत कुछ सीमित दृष्टिसे अपने होनेका प्रमाण देता हुआ अपनी सीमाओंके यथार्थको तो बाँध लेता है; पर वह इनका अतिक्रमण करके उस यथार्थवादी ऐतिहासिक चेतनासे अपनेको जोड़ नहीं पाता जो किसी काल और परिवेशको उसके सही सन्दर्भमें भास्वरता देती है। उदाहरणके लिए इस काल-खण्डमें जीवनकी सबसे बड़ी इकाई या मूल्य या सत्य जो किसी भी रचनाकारको अपनी सृजन-शक्तिके प्रति आस्थावान् या चरितार्थ बनाता है वह है व्यक्तिकी स्वतन्त्रता। व्यक्तिकी स्वतन्त्रताका सही बोध इस युगको ऐतिहासिक चेतनाका अवदान है। यह बोध तबतक नहीं हो सकता जबतक हम जीवनको सम्पूर्ण खण्डित सीमाओंमें इसको अवरुद्ध, क्षत और विकलांग करनेवाली परिस्थितियोंका ऐतिहासिक क्रम न जानें। बड़ेसे बड़े राजनीतिक नारे यथा जनतन्त्र, साम्यवाद, कल्याणकारी राज्य आदि—जैसे स्वर्णिम शब्द भी कहीं-न-कहीं इस व्यक्तिगत स्वतन्त्रताको बाधित, क्षत या विकलांग करते हैं। दफ़्तर, ऑफ़िसों, सामाजिक व्यवहार और दलों-द्वारा प्रचारित समूहीकरणकी संस्थाएँ भी इसे आक्रान्त करती हैं। विदेशी आक्रमण, राजनीतिक दाँवपेंच, तानाशाही शासन आदि तो इसके सर्वविदित शत्रु हैं ही। इन परिस्थितियोंमें लेखककी व्यक्तिगत स्वाधीनताका सर्वप्रिय मूल्य नाना भाँति विदीर्ण होता है। नवलेखनमें कोई भी एक रचना

ऐसी नहीं मिलती जो इस तरहकी परिस्थितियोंमें टूटते हुए इस सर्व-काम्य और सर्वप्रिय मानव-मूल्यकी समूची व्यथा, तिक्तता या अट्टहासको भलीभाँति प्रकट कर दे। यह प्रकटीकरण स्थूल राजनीतिक नारेबाज़ीके धरातलपर नहीं होगा, यह कहनेकी ज़रूरत नहीं।

दूसरा उदाहरण न्यायकी अन्धकोठरी या भ्रष्टाचारका लें। नवलेखनमें बहुत-सी रचनाएँ मिलेंगी जिनमें समाजके इस यथार्थके प्रति तीखा आक्रोश ध्वनित होगा। सभी स्वीकार करते हैं कि स्वतन्त्रताके बादसे हमारे देशमें बेरोज़गारी, मँहगी, ग़रीबी, भुखमरी बढ़ी है। सभी स्वीकार करते हैं कि शासनमें अकथनीय भ्रष्टाचार है। सभी अधिकारी न्यायका गला घोंटनेवाले, फ़िरक़ापरस्त, बेईमान और घूसखोर होते जा रहे हैं। इन दुर्गुणोंपर छिट-फुट रचनाओंमें तीखा व्यंग्य मिल जायेगा। मगर एक भी ऐसी कृति नहीं मिलेगी जो फ़्रांज़ काफ़्काके 'ट्रायल' की तरह खण्डित यथार्थके भीतरसे सारा रस सोख-कर खड़ी हो; किन्तु जिसकी अपील इतनी व्यापक हो कि वह समूचे ऐतिहासिक सन्दर्भको पूरी तरह उजागर कर रख दे। ऐसा क्यों नहीं हो पाता? ऐसा इस-लिए नहीं हो पाता कि हमारा लेखक व्यापक राजनीतिक, आध्यात्मिक, सामा-जिक समस्याओंसे सीधे टकराना नहीं चाहता। युद्ध चलता है तो वह अपनेको गजदन्ती मीनारमें बन्द कर लेना आवश्यक मानता है। राजनीतिक विवाद छिड़ते हैं तो वह चुप रहना शानकी बात मान लेता है। केरलमें साम्यवादी शासनकी बर्खास्तगी उसके लिए कोई समस्या नहीं बनती। उत्तर प्रदेशमें शासनाधिकरण और न्यायाधिकरणके बीचकी शर्मनाक लड़ाई उसे कहीं नहीं छूती। पाकिस्तानी आक्रमणके समय वह कलाकी बात करता है! इन समस्याओं-से सीधे हमारा जबतक 'एन्काउण्टर' नहीं होता, और जबतक हम सीधे अपनेको इनसे 'इन्वॉल्व्ड' नहीं समझते, तबतक हमारे लेखनके बीच खण्ड यथार्थ और ऐतिहासिक चेतनाके बीचकी खाई नहीं पटेगी। ज़ाहिर है कि हम लिखेंगे अपनी भोगी हुई अनुभूतियोंको ही आधार बनाकर, किन्तु उन व्यक्तिगत अनुभूतियोंको हम तबतक भास्वर और व्यापक चेतनाकी चीज़ नहीं बना सकते जबतक हम उन्हें व्यापक परिवेशकी ज्वलन्त समस्याओंसे जोड़नेमें सफल नहीं हो जाते। खण्ड यथार्थके बीच समग्र ऐतिहासिक चेतना अन्तर्व्याप्त और सर्वथा विद्यमान जबतक नहीं होती, हमारी रचनाओंमें तबतक हमारा युग नहीं बोलेगा!

● ●

साहित्य और साहित्यिक

आजका साहित्यिक जबतक आजकी समस्याएँ
नहीं लिखेगा समाज उसके साथ नहीं रह सकता

माखनलाल चतुर्वेदी

साहित्य दिमाग़ी ऐयाशी नहीं है, न वह हमारे पतनका सुन्दर शब्दोंमें किया गया गायन ही है। जो जाति अपने पतनको गीतोंमें गाकर सुखी होती है, वह साहसी विचारोंको सँभालनेकी क्षमता कैसे रखेगी ? साहित्य हमारे जीवनकी समस्या है। उसमें हमारा सम्पूर्ण जीवन प्रतिबिम्बित होता है। वह जीवनके मीठे क्षणोंका संग्रह-मात्र नहीं है। किसी व्यक्तिकी वाणी उसी समय लड़खड़ाने लगती है, जब वह अपनी सारी शक्ति खो चुकता है। किसी राष्ट्रकी वाणी भी उसी समय लड़खड़ाती है जब कि सम्पूर्ण राष्ट्र लड़खड़ानेकी स्थितिमें हो।

एक दिन मनुष्यके मनमें एक विचार आया और उसकी बोलीसे उस विचारको व्यक्त करनेवाले स्पष्ट अर्थ निकलने लगे। तभी उसके मनमें 'क्यों ?' का उदय हुआ और उसका समाधान उसे 'इसलिए' में मिला। इसी 'क्यों ?' से आरम्भ होकर 'इसलिए' में समाप्त होनेवाली वस्तुका नाम साहित्य है।

हमारा साहित्यिक—मेरा मतलब भारतीय साहित्यिकसे है—अपने उत्तरदायित्वको नहीं समझता। विश्वके निर्माणमें साहित्यका बहुत बड़ा हिस्सा है। साहित्यिक तो विश्वका आनन्ददाता है। उसके रुदनमें, हासमें, पीड़ामें विश्वको आनन्द मिलता है। लेकिन साहित्यिक यदि उस आनन्दका स्वयं उपभोग करने लगे तो अपना और अपनी पीढ़ी दोनोंका नाश कर बैठता है। लेबोरेटरीमें भिन्न-भिन्न चीज़ोंका विश्लेषणकर्ता यदि उन वस्तुओंको खाने लगे तो उसकी जो गति होगी वही ऐसे साहित्यिककी होती है। हमारे आजके साहित्यिकने अपनेआपको ऐसा ही बना रखा है। उसने भगवान्‌को पाया तो नचाने लगा। स्त्रीको उसने सिर्फ़ रमणी रूपमें ही देखना आरम्भ किया। वह भूल ही गया कि स्त्री

माँ भी है, पुत्री भी है, बहन भी है। ऐसे ही साहित्यिकके विषयमें दुनिया सोचनेको बाध्य होती है कि वह मार डालने लायक़ पागल कुत्ता तो नहीं है ?

मैं मीठे विचारोंके खिलाफ़ नहीं हूँ। मीठे विचार देना 'भी' साहित्यिकका कर्तव्य है, लेकिन मीठे विचार देना 'ही' नहीं। हमारे साहित्यिक मिठासको मर्यादा देते हुए साहित्य निर्माण करें। उसे विकारोंका मक्खियोंसे भिनभिनाता कुम्भीपाक नरक न बनायें।

क्या हमारा आजका कवि यह दावा कर सकता है कि गाँवका आदमी उसकी बात समझ लेगा ? आज हमारे राष्ट्र-शरीरका सिर तो शहरोंमें है और धड़ गाँवोंमें। सिर धडकी परवाह नहीं करता और धड़ सिरको समझ नहीं पाता। ऐसे ही समय, ऐसे महान् साहित्यिककी जरूरत होती है, जो इन दोनोंको मिला दे। अन्यथा शहराती धारणाओंकी मिठास, लचक या कटुतासे बननेवाले साहित्य-के जापानी खिलौनोंपर बैठकर कोई जाति कैसे जीवन-यात्रा कर सकती है !

लोग कहते हैं--राष्ट्रभाषा बढ़े कैसे ? कुछ लोग भाषा गढ़नेकी बात कहते हैं और कुछ भाषा गढ़नेकी आवश्यकता नहीं बताते। सबसे आवश्यक बात यह है कि हमारे साहित्यिक जनसम्पर्क स्थापित करें। साहित्यके नामपर बहुत थोड़े लोगोंका एकत्रित होना भाषाका दिवालियापन नहीं, स्थानीय साहित्यिकोंकी प्रभावहीनता ही साबित करता है। आवश्यक है कि हम भाषाके प्रश्नको देश-का महान् प्रश्न समझें, क्योंकि जिनकी भाषा मरी उनके आदर्श मरे और जिसके आदर्श मरे वह जाति भी नष्ट हो गयी।

आजका साहित्यिक जबतक आजकी समस्याएँ नहीं लिखेगा तबतक समाज उसके साथ नहीं रह सकता। यह समाज एक समुद्रकी तरह है। समुद्रमें छोटी-छोटी नावें, स्टीम-बोट, बड़े-बड़े जहाज तैरते रहते हैं। लहरोंकी मरजीपर ये डूब सकते हैं, चूर-चूर हो सकते हैं; लेकिन समुद्रमें ही एक और वस्तु खड़ी रहती है, जिसका सिर लहरोंकी मरज़ीपर नहीं झुकता जो डावाँडोल होना नहीं जानता, वह है--प्रकाशस्तम्भ, जो गुमराहोंको रास्ता बताता रहता है। समाज अपने साहित्यिकसे भी यही आशा करता है कि वह क्षणिक लहरों और परि-स्थितियोंसे ऊपर उठकर बोले।



परिदृष्टि : प्रतिदृष्टि

इतिहास अपने चरित्रों या कठमुल्लोंको इतनी
स्वतन्त्रता तो नहीं देता कि वह स्वयं अपनेको
न हुआ मान लें

'अज्ञेय'

बूढ़े सभी होते हैं, लेकिन बुढ़ापा किसपर कैसा बैठता है यह इसपर निर्भर रहता है कि उसका अपने जीवनसे, अपने अतीत और वर्तमानसे (और अपने भविष्यसे भी क्यों नहीं ?) कैसा सम्बन्ध रहता है। हमारी धारणा है कि 'तार सप्तक' ने जिन विविध नयी प्रवृत्तियोंको संकेतित किया था उनमें एक यह भी रही कि कविका युग-सम्बन्ध सदाके लिए बदल गया था। इस बातको ठीक ऐसे ही सब कवियोंने सचेत रूपसे अनुभव किया था, यह कहना झूठ होगा, बल्कि अधिक सम्भव यही है कि एक स्पष्ट, सुचिन्तित विचारके रूपमें यह बात किसी भी कविके सामने न आयी हो। लेकिन इतना असन्दिग्ध है कि सभी कवि अपनेको अपने समयसे एक नये ढंगसे बाँध रहे थे। "उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा" वाला पैंतरा न किसी कविके लिए सम्भव रहा था, न किसीको स्वीकार्य था। सभी सबसे पहले समाजजीवी मानव प्राणी थे और समानधर्माका अर्थ उनके लिए 'कवि-धर्मा'से पहले मानव-धर्मा था। यह भेद किया जा सकता है कि कुछके लिए आधुनिक-धर्मा होनेका आग्रह पहले था और अपनी मानव-धर्मिताको वह आधुनिकतासे अलग नहीं देख सकते थे, और दूसरे कुछ ऐसे थे जिनके लिए आधुनिकता मानव-धर्मिताका एक आनुषंगिक पहलू अथवा परिणाम था।

'सप्तक' के कवियोंका विकास अपनी-अपनी अलग दिशामें हुआ है। सृजनशील प्रतिभाका धर्म है कि वह व्यक्तित्व ओढ़ती है। सृष्टियाँ जितनी भिन्न होती हैं स्रष्टा उससे कुछ कम विशिष्ट नहीं होते, बल्कि उनके व्यक्तित्वकी विशिष्टताएं ही उनकी रचनामें प्रतिबिम्बित होती हैं। यह बात उनपर भी लागू होती है जिनकी रचना प्रबल वैचारिक आग्रह लिये रहती है—जबतक कि वह रचना है,

निरा वैचारिक आग्रह नहीं है। कोरे वैचारिक आग्रहमें अवश्य ऐसी एकरूपता हो सकती है कि उसमें व्यक्तित्वोंको पहचानना कठिन हो जाये। जैसे शिल्पाश्रयी काव्यपर रीति हावी हो सकती है, वैसे ही मताग्रहपर भी रीति हावी हो सकती है। 'सप्तक'के कवियोंके साथ ऐसा नहीं हुआ, सम्पादककी दृष्टिमें यह उनकी अलग-अलग सफलता (या कि स्वस्थता) का प्रमाण है। स्वयं कवियोंकी राय इससे भिन्न भी हो सकती है—वे जानें।

इन बीस वर्षोंमें सातों कवियोंकी परस्पर अवस्थितिमें विशेष अन्तर नहीं आया है। तबकी सम्भावनाएँ अबकी उपलब्धियोंमें परिणत हो गयी हैं—सभी बोधसत्व अब बुद्ध हो गये हैं। पर इन सात नये ध्यानी बुद्धोंके परस्पर सम्बन्धोंमें विशेष अन्तर नहीं आया है। अब भी उनके बारेमें उतनी ही सचाईके साथ कहा जा सकता है कि "उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्त्वपूर्ण विषयोंपर उनकी राय अलग-अलग है—जीवनके विषयमें, समाज और धर्म और राजनीतिके विषयमें, काव्यवस्तु और शैलीके, छन्द और तुकके, कविके दायित्वोंके—प्रत्येक विषयमें उनका आपसमें मतभेद है।" और यह बात भी उतनी ही सच है कि "वे सब परस्पर एक-दूसरेपर, एक-दूसरेकी रुचियों, कृतियों और आशाओं-विश्वासोंपर और यहाँतक कि एक-दूसरेके मित्रों और कुत्तोंपर भी हँसते हैं।"

ऐसी परिस्थितिमें ऐसा बहुत कम है जो निरपवाद रूपसे सभी कवियोंके बारेमें कहा जा सकता है। ये मनके इतने भिन्न हैं कि सबको किसी एक सूत्रमें गूँथनेका प्रयास व्यर्थ ही होगा। कदाचित् एक बात—मात्रा-भेदकी गुंजाइश रखकर सबके बारेमें कही जा सकती है : सभी चकित हैं कि 'तार सप्तक' ने समकालीन काव्य-इतिहासमें अपना स्थान बना लिया है। प्राय: सभीने यह स्वीकार भी कर लिया है। अपने कार्यका, या प्रगतिका, मूल्यांकन जो भी जैसा भी कर रहा हो, जिसकी वर्तमान प्रवृत्ति जो हो, सभीने यह स्थिति लगभग स्वीकार कर ली है कि उन्हें नगरके चौकमें खम्भेसे या मीलके पत्थरसे बाँधकर नमूना बनाया जाये : "यह देखो और इससे शिक्षा ग्रहण करो।" कमसे कम एक कविका मुखर भाव ऐसा है और कदाचित् दूसरोंके मनमें भी अव्यक्त रूपसे हो, कि अच्छा होता अगर मान लिया जा सकता कि वह 'तार सप्तक' में संग्रहीत था ही नहीं। इतिहास अपने चरित्रों या कठपुतलोंको इसकी स्वतन्त्रता नहीं देता कि वह स्वयं अपनेको 'न हुआ' मान लें। फिर भी मनका ऐसा भाव

लक्ष्य करने लायक और नहीं तो इसलिए भी है कि वह परवर्ती साहित्यपर एक मन्तव्य भी तो है ही—समूचे साहित्यपर नहीं तो कमसे-कम 'सप्तक' के अन्य कवियोंकी कृतियोंपर (और उससे प्रभावित दूसरे लेखनपर) तो अवश्य ही।

असम्भव नहीं कि संकलित कवियोंका अब इस प्रकार एक-दूसरेसे सम्पृक्त होकर लोगोंके सामने उपस्थित होना कुछ अजब या असमंजसकारी लगता हो। लेकिन ऐसा है भी, तो उस असमंजसके बावजूद वे इस सम्पर्कको सह लेनेको तैयार हो गये हैं इसे सम्पादक अपना सौभाग्य मानता है। अपनी ओरसे वह यह भी कहना चाहता है कि स्वयं उसे इस सम्पृक्तिसे कोई संकोच नहीं है। परवर्ती कुछ प्रवृत्तियाँ उसे हीन अथवा आपत्तिजनक भी जान पड़ती हैं, और निस्सन्देह इनमें-से कुछका सूत्र 'तार सप्तक' से जोड़ा जा सकता है या जोड दिया जायेगा, तथापि, सम्पादकको धारणा है कि 'तार सप्तक' ने अपने प्रकाशनका औचित्य प्रमाणित कर लिया। उसका पुनर्मुद्रण केवल एक ऐतिहासिक दस्तावेज़को उपलभ्य बनानेके लिए नहीं, बल्कि इसलिए भी संगत है कि परवर्ती काव्य-प्रगतिको समझनेके लिए इसका पढ़ना आवश्यक है। इन सात कवियोंका एकत्रित होना अगर केवल संयोग भी था तो भी वह ऐसा ऐतिहासिक संयोग हुआ जिसका प्रभाव परवर्ती काव्य-विकासमें दूरतक व्याप्त है।

[भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित 'तार सप्तक' की भूमिकासे]

स्व० श्री उदयशंकर भट्ट

अंकका मुद्रण पूरा होते-होते हिन्दीके वरिष्ठ साहित्यकार श्री उदयशंकर भट्टके निधनका दुखद समाचार मिला। भट्टजीके निधनसे हिन्दी साहित्यकी अपूरणीय क्षति हुई है। भारतीय ज्ञानपीठ परिवारकी कामना है कि दिवंगत आत्माको परम शान्ति मिले और उनके शोक-सन्तप्त परिवारको यह दुख सहनेका बल।

रस-सिद्धान्त

डॉ० नगेन्द्रकी कृति जिसे इस वर्ष
साहित्य अकादेमी-द्वारा पुरस्कार-सम्मान मिला

डॉ० बच्चन सिंह

डॉ० नगेन्द्रकी व्यावहारिक समीक्षाके सम्बन्धमें लिखते हुए मैंने अपने एक निबन्धमें कहा है कि "डॉ० नगेन्द्र सैद्धान्तिक आलोचना या काव्यशास्त्रके गहन विश्लेषक और सहृदय व्यावहारिक आलोचक दोनों हैं। वे व्यावहारिक आलोचनाके साथ इस क्षेत्रमें प्रवेश करते हैं। काव्यशास्त्रके विवेचन अर्थापनकी ओर उनका झुकाव बादमें हुआ, क्योंकि इसके लिए जिस बौद्धिक परिपक्वताकी अपेक्षा होती है वह दीर्घकालीन अध्ययन-चिन्तनकी माँग करती है।" कहना न होगा कि 'रस-सिद्धान्त' इसीका फलितार्थ है। इस ग्रन्थकी भूमिकामें उन्होंने ख़ुद लिखा है—"पिछले तीस वर्षोंमें काव्यके मनन-चिन्तनसे मेरे मनमें जो अन्त:संस्कार बनते रहे हैं उनकी संहति रस-सिद्धान्तमें ही हो सकती है। अतः रस-सिद्धान्तकी उपलब्धि मैंने मूलतः 'साधु काव्य-निषेवण'के द्वारा ही की है—शास्त्रके अनुचिन्तनसे तो उसका पोषण-मात्र हुआ है।"

'रस-सिद्धान्त'में रसका जिस व्यापक फलकपर और जितनी सफ़ाई-गहराई-के साथ विवेचन प्रस्तुत किया गया वह 'साधु काव्य-निषेवण'के अभावमें सम्भव नहीं था। रसके उलझनपूर्ण स्थलोंको सुलझानेके लिए साधु काव्य जितने उपयोगी हो सकते हैं, उतने स्वयं सिद्धान्त ग्रन्थ नहीं। इसकी निर्मितिमें निश्चय ही 'साधु काव्य' उनका मार्गदर्शक रहा है। किन्तु इसके लिए सबसे आवश्यक था संस्कृतके शास्त्रीय ग्रन्थोंका सम्यक् परिशीलन, चिन्तन और मनन। इस कार्यका आरम्भ 'रीति काव्यकी भूमिका'के पहले ही होता है। वे मूल ग्रन्थोंके पाठों, अनुवादों, भूमिकाओं आदिमें दीर्घकाल तक इस ढंगसे रमते रहते हैं गोया वे उनके अभिन्न अंग हों। पाश्चात्य काव्यशास्त्रके प्रति भी वे उसी तरह

जागरूक रहे हैं। उसके शास्त्रीय ग्रन्थोंके प्रामाणिक अनुवाद भी उन्होंने किये-कराये हैं। इस तरह अनेक सन्दर्भोंमें उठती हुई शंकाओं और गुत्थियोंको वे केवल चिन्तन-मननसे ही नहीं बल्कि लेखनसे भी सुलझाते रहे हैं। 'रस-सिद्धान्त' इन्हींको चरम परिणति है। अन्य भारतीय भाषाओंमें रस-सिद्धान्तपर जो कार्य हुए हैं वे भी इनकी दृष्टिमें बराबर रहे हैं। इसलिए इसे सहजमें ही उपमहाद्वीपीय परिवेश मिल गया है।

ग्रन्थमें कुल छह अध्याय हैं। पहले अध्यायमें रस शब्दका अर्थविकास और रस-सम्प्रदायका इतिवृत्त दिया गया है। दूसरे अध्यायमें रसकी परिभाषा, रसका स्वरूप और करुण रसका आस्वाद सन्निविष्ट है। तीसरे अध्यायका वर्ण्य है रस निष्पत्ति, रसका स्थान और साधारणीकरण। चौथेमें भावका विवेचन और रस-भेदका विश्लेषण है। पाँचवेंमें रसोंका परस्पर सम्बन्ध, अंगीरस, रसविघ्न रसाभासपर विचार किया गया है और छठेमें रस-सिद्धान्त-शक्ति और सीमाका अनुशीलन हुआ है।

दूसरे अध्यायमें 'रसके स्वरूप'की विवेचना जिस गहराईमें पैठकर की गयी है वह दीर्घकालीन अध्ययन-मनन और 'साधु काव्य-निषेवण'के अभावमें सम्भव नहीं थी। वस्तुतः यहाँपर काव्यके आस्वाद रस, जो आनन्दमयी चेतना है, को तर्कपूर्ण ढंगसे विश्लेषित किया गया है, उसे विश्वसनीय बनाया गया है। 'आनन्दका स्वरूप' इसका केन्द्रवर्ती विषय है। कठिनाई यह है कि अनेक आचार्योंने रसकी आनन्दमयताको स्वीकार नहीं किया है। आचार्य शुक्लने तो स्पष्ट रूपसे इसे आनन्दरूप नहीं ही माना है। अतः लेखकके लिए अनिवार्य हो गया कि अनेकानेक मतोंकी सम्यक् छानबीन करके ही वह अपना मन्तव्य स्थिर करता। उनका कहना है कि "काव्यानन्द आत्मानन्दसे प्रकृति या प्रकारकी दृष्टिसे नहीं, गुणकी दृष्टिसे भिन्न है और विलक्षण केवल इसी अर्थमें है कि न तो वह विषयानन्द है और न शुद्ध आत्मानन्द ही।" ऐसी स्थितिमें इसके स्वरूपका विवेचन मनोवैज्ञानिक विचारणाओंके आधारपर सम्भव हो सकता था। पर मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तोंका सहारा लेनेपर भी वे उसे साधुकाव्यसे नियन्त्रित रखते हैं। उन्होंने मानसका एक प्रसंग उद्धृत कर काव्यास्वादनकी प्रक्रियाका जो आत्मपरक किन्तु निस्संग विश्लेषण किया है उससे संवेदन-रूप काव्यानन्दका स्वरूप अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है।

रस-निष्पत्तिके प्रसंगमें 'साधारणीकरण' का विश्लेषण विशेष महत्त्वपूर्ण है। आचार्य शुक्लने रसके स्वरूप, साधारणीकरणकी व्याख्या 'लोकमंगल' के सन्दर्भमें की है। इसलिए वह नयी होते हुए भी शास्त्र-सम्मत नहीं है। डॉ० नगेन्द्रने अपने मतके प्रतिपादनके लिए भट्टनायक और अभिनव गुप्तका आधार लिया है। भट्ट-नायकके सम्बन्धमें उनका कहना है कि साधारणीकरणका सिद्धान्त उसकी सर्वो-त्कृष्ट उपलब्धि है। "मेरी धारणा है कि विश्वके आलोचना शास्त्रमें भट्टनायकसे पूर्व किसी आलोचकने इस मूल प्रश्नका ऐसा प्रामाणिक समाधान नहीं प्रस्तुत किया।" उनका कहना कि साधारणीकरण कविकी अपनी अनुभूतिका होता है। इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है : अतएव निष्कर्ष यही निकला कि साधा-रणीकरण कविकी अपनी अनुभूतिका होता है अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूतिकी इस प्रकार अभिव्यक्ति कर सकता है कि वह सभीके हृदयोंमें समान अनुभूति जगा सके तो पारिभाषिक शब्दावलीमें हम कहते हैं कि उसमें साधा-रणीकरणकी शक्ति वर्तमान है।' नगेन्द्रजीका मत शास्त्रसम्मत होते हुए भी नया है।

'रस-सिद्धान्त' के अन्तिम अध्याय 'शक्ति और सीमा' में बहुत-से ऐसे प्रश्न उठे हैं जो विवाद्य हैं--मुख्यतः नयी कविताके प्रसंगमें। डॉ० नगेन्द्र रसके विरोधमें 'अज्ञेय' और जगदीश गुप्तके मतोंका खण्डन करते हुए अपनी परिणतिके सम्बन्धमें लिखते हैं--"हिन्दीमें 'अज्ञेय' नयी कवितामें मानवीय अनुभूति या रागबन्धके सबसे प्रबल समर्थक हैं, और दूसरे प्रमुख कवि गिरिजाकुमार माथुरकी तो कविताकी समृद्धिका आधार ही रागात्मकता है। बुद्धितत्त्वको रेखांकित करने-वाले जगदीश गुप्तने स्वयं कविताके प्रसंगमें बुद्धितत्त्वकी अपेक्षा मानवीय सह-अनुभूति, संवेदना आदिका बार-बार उल्लेख किया है। इस प्रकार रसके बन्धन-से मुक्त होनेके लिए नयी कविताके प्रायः समस्त प्रयास विफल हो जाते हैं, जहाँ कहीं कोई प्रयास सफल हो जाता है वहीं कविकी बौद्धिक सफलताके साथ एक दुर्घटना भी घटती है—और वह यह कि कविता अकविता बन जाती है। वास्तव-में नयी कविताका भी कल्याण इसीमें है कि वह इन रसमय बन्धनोंको स्वीकार कर ले और इसमें उसे इतिहाससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। चालीस वर्ष पूर्व छायावादने भी रसका विरोध किया था, पर आज रस ही उसका प्राण-सर्वस्व है; उसके प्रायः दो दशक बाद प्रगतिवादने उसपर प्रहार किया था, किन्तु आज

उसका जितना भी अंश अवशिष्ट है वह रसके आधारपर ही जीवित है।"

यह सही है कि नयी कविताके सन्दर्भमें 'अज्ञेय' ने रसका जिस ढंगसे विरोध किया है वह किसी निश्चयात्मक परिणतिपर नहीं पहुँचता। 'रसकी अतीतोन्मुखता' की अर्थवत्ताकी व्याख्या वे ही कर सकते हैं। डॉ० जगदीश गुप्त नयी कविताकी अनुभूतिको निरानन्दमयी कहकर क्या व्यक्त करना चाहते हैं इसे वे ही समझें। पर डॉ० नगेन्द्रने जिस आधारपर नयी कविताको रसकी कसौटीपर कसनेका आग्रह किया है वह दृढ़ नहीं है। गिरिजाकुमार माथुर मूलतः रोमाण्टिक कवि हैं। इसलिए उनपर रस-सिद्धान्त लागू हो सकता है। 'अज्ञेय' की प्रारम्भिक कविताएँ भी रोमान्ससे सम्पृक्त हैं। किन्तु इस विषयपर विवाद ही सम्भव है और इसीका मूल्य भी है। जो हो 'रस-सिद्धान्त' में अपने विषयकी सर्वांगपूर्ण और गहरी विवेचना हुई है। सैद्धान्तिक आलोचनाके क्षेत्रमें यह शास्त्रीय मनीषाकी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

●●

प्रपत्र : चार

(नियम ८ के अन्तर्गत)

१. प्रकाशन-स्थल	:	भारतीय ज्ञानपीठ दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
२. प्रकाशन आवृत्ति	:	मासिक
३. मुद्रक-नाम	:	जगदीश अग्रवाल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग वाराणसी-५
४. प्रकाशक-नाम	:	जगदीश अग्रवाल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	दुर्गाकुण्ड मार्ग वाराणसी—५
५. सम्पादक-नाम	:	लक्ष्मीचन्द्र जैन और जगदीश
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	भारतीय ज्ञानपीठ ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता—२७
६. स्वत्वाधिकारी	:	भारतीय ज्ञानपीठ, ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता—२७

मैं, जगदीश अग्रवाल, घोषित करता हूँ कि ऊपर दिये गये विवरण मेरी जानकारी और विश्वासमें सही हैं।

जगदीश अग्रवाल

२८ फ़रवरी १९६६ प्रकाशक (हस्ताक्षर)

हिन्दी
विश्वकी एक महान् भाषा

वास्तवमें हमारी उदासीनता स्वयं अपनेको ही नहीं, सागर-पारके भी 'अपनों' को दुखी कर सकती है।—पिछले दिनों भारत आये चार्ल्स विश्वविद्यालय (प्राग) के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो० स्मेकलकी यहाँ प्रस्तुत प्रतिक्रिया जितनी तीखी और चोट देती है, उतनी ही तथ्यके निकट भी नहीं है क्या ?

डॉ० ओडोलन स्मेकल

आज जब कि सारी दुनियासे अँगरेजीका प्रभुत्व समाप्त हो रहा है भारत-वासी आज भी उससे चिपके हुए हैं और अपनी दैनिक बोल-चालमें भी अँगरेजीके शब्दोंका काफ़ी व्यवहार करते हैं। यहाँका शिक्षित वर्ग अँगरेजियतसे ओतप्रोत है, भारतीयता कम दिखायी देती है। हिन्दीकी जो स्थिति आज यहाँ है वह सौ साल पहले चेकोस्लोवाकियामें चेक भाषाकी थी। जर्मन शासनके कारण तब लोग जर्मन भाषा बोलना सम्मानजनक समझते थे। मुझे लगता है कि हिन्दी भाषा-भाषी अपनी मातृभाषासे प्रेम नहीं करते जितना कि बंगाल, महाराष्ट्र आदि अन्य प्रान्तोंके लोग अपनी मातृभाषासे करते हैं। हिन्दी भाषा-भाषियों-द्वारा अंगरेजी-मिश्रित खिचड़ी भाषाका अत्यधिक प्रयोग इसका प्रमाण है। यह बात मेरी समझमें नहीं आती कि अभीतक यहाँ विभिन्न परीक्षाओंके अँगरेजी नाम ही क्यों चल रहे हैं। यहाँके छात्र अधिकतर अँगरेजी बोलते हैं !

मैं हिन्दीको विश्वकी एक महान् भाषा समझता हूँ। यद्यपि मुझे अपनी चेक भाषासे भी प्रेम है किन्तु मेरी दूसरी मातृभाषा हिन्दी ही है। इस भाषामें जीवन, साहस, ओज और सौन्दर्य सभी कुछ है।

जहाँतक मैं समझता हूँ, हिन्दी जब संस्कृतके वाङ्मयको आत्मसात् करेगी तभी वह दुनियाकी समृद्धतम भाषाओंमें स्थान ग्रहण करेगी। वैसे हिन्दीका

साहित्य बहुत समृद्ध और उच्चकोटिका है, फिर भी अभी अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें हिन्दीके माध्यमसे बहुत काम होना ज़रूरी है। हिन्दी अब न केवल भारतमें बल्कि विश्वके सभी प्रमुख विश्वविद्यालयोंमें पढ़ी-पढ़ायी जाती है। लेकिन हिन्दी भाषाके शोध-कार्यमें न तो समन्वय है और न नियमितता ही। उसे परिनिष्ठित रूप प्रदान करनेके लिए एक केन्द्रीय भाषा शोध केन्द्रकी स्थापना होनी चाहिए। इस केन्द्रके दो प्रमुख विभाग होने चाहिए—अन्तर्प्रान्तीय और अन्तर्राष्ट्रीय। अन्तर्राष्ट्रीय विभाग इस बातका पता लगाये कि विश्वमें हिन्दीके लिए क्या किया जा रहा है तथा इस कार्यमें और क्या अपेक्षाएँ हैं। हिन्दी भाषाकी एक केन्द्रीय भाषा विज्ञान पत्रिकाका प्रकाशन भी अनिवार्य है। यह पत्रिका हिन्दी और अँगरेज़ी दोनोंमें प्रकाशित होना अधिक सार्थक होगा।

मुझे ऐसा लगता है कि हिन्दीके भावी विकासके लिए कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं है। अतः आवश्यकता इस बातकी है कि हिन्दीका स्वरूप सुस्थिर करनेका उपाय किया जाये। अँगरेज़ी तो उपनिवेशवादकी भाषा है। स्वतन्त्र भारतमें हिन्दीमें ही सारा कार्य करना उचित है। भारतकी सम्पर्क-भाषाके रूपमें केवल हिन्दी ही अधिकारिणी है और समर्थ भी। ऐसी स्थितिमें यह आवश्यक है कि हिन्दीके विकासको सही दिशा मिले। भाषामें जो अव्यवस्था है उसे दूर किया जाये और उसकी शिक्षाके प्रशिक्षणपर गम्भीरतासे ध्यान दिया जाये। मुझे यह अनुभव हुआ है कि इस ओर व्यावहारिक ध्यान नहीं दिया जाता। व्याकरणके सम्बन्धमें तो मैं निश्चित रूपसे ऐसा कह सकता हूँ। माध्यमिक और महाविद्यालयोंमें भी इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता, जिसका स्पष्ट प्रभाव भाषाकी अनियमिततामें दिखाई पड़ता है।

हिन्दीको समृद्ध बनाने तथा उसे सामयिकता प्रदान करनेके लिए गवेषणात्मक कार्योंका किया जाना भी बहुत आवश्यक है। इसमें प्राथमिकता-क्रमसे हिन्दीका एक प्रामाणिक व्याकरण तैयार किया जाना चाहिए। यद्यपि कामताप्रसाद गुरुका व्याकरण काफ़ी अच्छा है किन्तु समयका अन्तर उसमें परिवर्तन-संशोधनकी माँग करता है। ऐतिहासिक व्याकरणका भी तैयार होना ज़रूरी है। साथ ही हिन्दी भाषाके विकासका आधुनिक इतिहास भी तैयार किया जाना चाहिए। पहलेकी अपेक्षा अब भौगोलिक स्थितियोंमें भी काफ़ी परिवर्तन हुआ है, इसलिए हिन्दी बोलियोंका सर्वेक्षण भी विद्वानों-द्वारा किया जाना चाहिए।

हिन्दीका निरुक्त कोश तथा हिन्दीमें प्रचलित शब्दोंका कोश भी तैयार होकर प्रकाशमें आना चाहिए। एक बात और—हिन्दीमें तकनीकी विषयोंकी कोई अच्छी पत्रिका नहीं प्रकाशित होती, प्राय: सभी अँगरेज़ीमें ही प्रकाशित होती हैं। यह हिन्दीके स्वाभिमान और प्रतिष्ठाके सर्वथा प्रतिकूल है। तकनीकी विषयों-पर भी हिन्दीमें उच्चकोटिकी पुस्तकें होना नितान्त अनिवार्य है। प्राविधिक और वैज्ञानिक विषयोंपर पुस्तकें लिखी जायें और उन पुस्तकोंमें केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय-द्वारा तैयार शब्दावलीका प्रयोग किया जाये। यदि ऐसा नहीं होता तो इस क्षेत्रमें यह कमी बनी रहेगी और यह भाग पिछड़ा रहेगा।

मुझे इस बातसे बहुत खेद हुआ कि भारतको स्वतन्त्रता प्राप्त होनेके इतने वर्षों बाद भी यहाँ शिक्षाका माध्यम अँगरेज़ी ही बनी हुई है। मेरा देश बहुत ही छोटा देश है किन्तु वहाँके सभी विश्वविद्यालयोंमें शिक्षाका माध्यम वहाँकी चेक भाषा है। विज्ञानकी पढ़ाई भी चेक भाषामें ही होती है। यही नहीं, युरॅपके किसी भी देशमें अँगरेज़ीके माध्यमसे शिक्षा नहीं दी जाती। वास्तवमें विदेशी भाषाके माध्यमसे कभी शिक्षा ग्रहण भी नहीं की जा सकती।

अन्तमें अपनी बात पुन: दोहराऊँगा कि हिन्दी भाषाको अँगरेज़ी मिश्रित शब्दावलियोंके प्रयोगसे बचाया जाना बहुत आवश्यक है जिससे भाषाका वर्ण-संकरी रूप दृष्टिगत न हो तथा हिन्दी अपने शुद्ध रूपको लेकर विकसित हो। हिन्दी विश्वकी श्रेष्ठ भाषाओंमें-से एक है—इसमें कोई सन्देह नहीं; और यदि यह अबतक दुनियाकी प्रमुख भाषा न बन पायी या इसकी विकास-प्रगतिमें बाधा आ रही है तो इसका दोष हिन्दी-भाषियोंपर ही है।



मानवीय मूल्योंके सन्दर्भमें यदि हम साहित्यको नहीं समझते तो अकसर हम ऐसी झूठी प्रतिमान-योजनाको प्रश्रय देने लगते हैं कि समस्त साहित्यिक अभियान गलत दिशाओंमें मुड़ जाता है।

—मानव मूल्य और साहित्य : डॉ० धर्मवीर भारती

राष्ट्रभारती
परिवेश और उपलब्धियाँ

यह स्तम्भ इसीलिए कि सहवर्ती भाषाओंके साहित्यकी दिनप्रमित गतिविधि और उपलब्धियोंसे हिन्दी-जगत् परिचित हो

कन्नड़का एकांकी साहित्य

गुरुनाथ जोशी

कन्नड़ साहित्यके प्राचीन ग्रन्थोंमें कुछ ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे यह विदित होता है कि कन्नड़की जनता नाटक-प्रेमी थी, मन्दिरोंमें नाट्यशालाएँ थीं और वहाँ नाटक अभिनीत होते थे। पर आश्चर्यकी बात यह है कि १७वीं सदीतक सिंगरार्यके 'मित्र गोविन्द' नामक नाटकके अलावा कोई नाटक नहीं उपलब्ध हुआ। इस नाटकका समय सन् १७०० माना गया है। पर २०वीं सदीमें नाटकोंकी रचना कन्नड़में होने लगी। कन्नड़में पद्य, गीत, गद्य नाटक सैकड़ों हैं जिनमें कुछ पौराणिक हैं, कुछ ऐतिहासिक और कुछ सामाजिक। कुछ नाटक सुखान्त और कुछ दुःखान्त। प्रहसन, एकांकी नाटक भी हैं।

आधुनिक एकांकी एक विशिष्ट प्रकारका है। वह नाटकका न एक टुकड़ा है, न अखण्ड नाटक। क्योंकि उसमें अनेक दृश्योंके होते हुए भी वह एकांकी कहलाता है। उसका तन्त्र भी निराला है। इस एकांकीके बारेमें श्रीरंगजीका मत है कि "एकांकी तो नाटक है, पर उसमें नाटकीयताकी अधिक आवश्यकता है, न काव्यकी, न चमत्कार शैलीकी, न बातचीतकी। उसमें नाटकीयताको भंग करनेवाली अच्छीसे-अच्छी बात भी दोष और नाटकीयताकी पोषक क्षुद्र बात भी गुण समझी व मानी जायेगी।' इस प्रकारके तन्त्रको दृष्टिमें रखकर कन्नड़के कई साहित्यकारोंने 'एकांकी' लेखनमें बहुत सफलता पायी है।

क़रीब तीस-पैंतीस वर्षोंसे एकांकी लिखे जा रहे हैं। कन्नड़में एकांकीका श्रीगणेश करनेका गौरव श्री टी० पी० कैलासम्को है। 'टोल्लगट्टी' उनका

चर्चित और बहुप्रशंसित प्रथम एकांकी है। उनके बाद तो कर्नाटकके प्रसिद्ध कवि द० रा० बेन्द्रे, श्रीरंग, शिवराम कारन्त, अ० नू० कृष्णराव, एम० एन० कामत, एन० के० कुलकर्णी आदिने कन्नड़के एकांकी साहित्यके स्तरको ऊँचा रखनेमें सफल प्रयत्न किया है। इनके अलावा रं० श्री० मुगली, वी० के० गोकाक, ना० कस्तूरी, जी० पी० राजरत्नम्, के० बी० पुट्टप्प, एल० जो० बेन्द्रे, शंकर भट्ट कडेंगोड्लु, कु० श्री० वेरवोरी, क्षीरसागर, कैवारे राजेराव, पर्वतवायी, टेंगसे, रमाकान्त, कृष्णकुमार काश्यप, संस आदि विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। बिलकुल नये एकांकी लेखकोंमें नरेन्द्र बाबू, बा० सु० अड़बड़ी, एन० एस० गादगकर, लिंगसगूर के० के० शेट्टी, एम० रामराव, सिंपी लिंगण्ण आदिके नाम भी लिये जा सकते हैं। इनमें-से अनेकके एकांकी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कुछके एकांकी कन्नड़की प्रतिष्ठित मासिक पत्रिकाओं और एकांकी संकलनोंमें आ भी चुके हैं।

श्री कैलासम्के नाटकोंमें 'होमरूल', 'बहिष्कार', 'गण्डस्कत्रि', अम्मावृ-गण्ड', 'तालीकोटे', 'बड़वाल्पिल्लंद बड़ाइ', 'टोल्लुगट्टी' अधिक प्रसिद्ध हैं और श्रीरंगके एकांकियोंमें 'पूर्वरंग', 'निराहार', 'जीवन रंग', 'अश्वमेध', 'सरकसकी सरस्वती', 'दीपोत्सव,' 'सम्पद्धर्म', 'महिरावण' आदि ख्यातिप्राप्त एकांकी संग्रह और एकांकी हैं। कारन्तजीके 'चौथा पिशाच' तथा कुछ अन्य संग्रह काफ़ी प्रसिद्ध हुए हैं। अ० न० कृष्णरावके 'बषपद बीसणिके', और 'आदद्देनु' एन० के० कुलकर्णीके 'नडुमनेयल्लि', 'बेल्लिय हब्ब', द० रा० बेन्द्रेके 'हुच्चार-मलु' आदि सुप्रसिद्ध हैं। यहीं यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि कन्नड़के प्रायः सभी एकांकी जीवनके बहुत निकट हैं। तमाम समस्याओंके परिप्रेक्ष्यमें कन्नड़के एकांकीकारोंने रचनाएँ दी हैं।

रेडियोमें प्रवेश करके एकांकीने एक नया रूप लिया है और रेडियो रूपक, तरंग रूपक भी कन्नड़में प्रकाशित हुए हैं। प्रकाशनकी अपेक्षा लिखे अधिक गये हैं।

इतना सब होनेके बावजूद कन्नड़का एकांकी साहित्य आधुनिक नाटक और रंगमंचके विकासकी तुलनामें अभी काफ़ी पीछे है। पर सन्तोषकी बात यही है कि वह नूतन प्रयोगोंके साथ निरन्तर आगे बढ़ रहा है। कन्नड़ साहित्यके प्रमुख आलोचक प्रो० रं० श्री० मुगलीने लिखा है : द वर्क डन ड्यूरिंग दिस क्वार्टर

इज़ अ पॉएण्टर टु द फ्यूचर सेंट्रल एक्सपेरिमेण्ट्स, सच ऐज़ ऑपेरा ऐण्ड शैडो-प्ले आर मेड बाइ कारन्त ऐण्ड अदर्स'' इसमें सन्देह नहीं कि कन्नड़ एकांकी विविध रूपों, रंगों, जीवन चरित्रों तथा समस्याओंके साथ एक महत्त्व स्वरूप ग्रहण कर रहा है।

• तमिल काव्यशास्त्र

डॉ० न० वी० राजगोपालन

भारतकी प्राचीनतम भाषाओंमें संस्कृतके पश्चात् तमिलका स्थान है। तमि भाषा तथा साहित्यकी एक लम्बी परम्परा है, और तमिलकी काव्यशास्त्रीय परम्प भी उतनी ही प्राचीन है जितना कि तमिल साहित्य। तमिल वाङ्मयमें लक्ष तथा लक्ष्य दोनों प्रकारकी सामग्री मिलती है। अबतकके अनुसन्धानोंमें काव्य लोचनकी विशिष्ट पद्धतिका सांगोपांग विवेचन करनेवाले अनेक लक्षण-ग्रन्थ प्रा हुए हैं। जिनमें 'तोलकाप्पियम्' श्रेष्ठतम है। संयोगकी बात है कि यही उपलब्ध होनेवाला प्राचीनतम तमिल-ग्रन्थ भी है। वैसे तमिल परम्परा इस समय ७वीं शती ई० पू० मानती है, किन्तु विविध शास्त्रोंके क्षेत्रमें किये गये नं अनुसन्धानोंसे यही प्रमाणित होता है कि इसकी रचना-काल चौथी शती ई० पू से पहलेका नहीं है। 'तोलकाप्पियम्' से पहले 'अगत्तियम्' नामक ग्रन्थ मह अगस्त्यके द्वारा प्रणीत हुआ था — इसके भी प्रमाण मिल गये हैं। यह ग्र अनुपलब्ध है। यह ग्रन्थ भी काव्यशास्त्र और व्याकरणका ग्रन्थ था। लिखना होगा कि ईसाके पूर्वकी शताब्दियोंमें विरचित लक्षण और लक्ष्य दोनों प्रकार सामग्रीका अध्ययन तमिल काव्यशास्त्रकी विशिष्ट परम्पराको समझनेके लि आवश्यक है।

अगस्त्यके बारह प्रधान शिष्योंमें 'तोलकाप्पियम्' के भी रचयिता थे। इस आमुख-सूत्रमें कहा गया है कि "यह ग्रन्थ उन 'तोलकाप्पियर' का लिखा हुआ जो ऐन्द्र व्याकरणके ज्ञानसे पूर्ण हैं।'' इससे यह भी स्पष्ट होता है कि ये पाणिनि के पूर्व-कालिक थे। पाणिनिसे पूर्व संस्कृतमें आठ व्याकरण प्रचलित थे जिन एक 'ऐन्द्र व्याकरण' भी था। कुछ अनुसन्धानकर्ताओंने इस ग्रन्थके अ स्साक्ष्योंके आधारपर यह भी सम्भावना प्रकट की है कि इसका समय ई० पू० ३५ भी हो सकता है।

'तो
तीसरा भ
कि काव्य
शास्त्रमें
काव्यसे
को दो रू
नाम दिय
पुण्य, त्रि
इस भाग
चन तथा
है कि यह
तीसरे भ
दोषोंका
प्रक्रियाक
व्यवस्था,
भागसे ल
तोल
लक्षण-ग्र
भाषाके
उदाहरण
तमि
किया ग
और न
पड़ता है
'पोरुल्'
वर्णित
चिन्तन-
तमि
काव्य-र

'तोलकाप्पियम्' के पहले और दूसरे भाग व्याकरण-शास्त्रके विषय हैं और तीसरा भाग काव्य-शास्त्रका है। तमिल काव्यशास्त्रकी एक विशेषता यह भी है कि काव्यके वर्ण्य-विषयका विवेचन इसका मुख्य विषय है, जब कि संस्कृत काव्य-शास्त्रमें अभिव्यक्तिकी रमणीयता – अलंकार, ध्वनि, रीति, वृत्ति, वक्रोक्ति तथा काव्यसे उत्पन्न होनेवाले आनन्द-रस-की चर्चा मुख्य है। काव्यके मुख्य वर्ण्य-विषय-को दो रूपोंमें रखा गया है – जीवनका अन्तरंग पक्ष (प्रेम, जिसे 'अह्प्पोरुल' नाम दिया गया है) और जीवनका बहिरंग या सामाजिक पक्ष (वीरता, दान-पुण्य, विद्यार्जन, विरक्ति-जीवन आदि – जिन्हें 'पुरप्पोरुल' नाम दिया गया है)। इस भागके ये ही दो मुख्य विषय हैं जिनमें इन दोनों जीवन पक्षोंका सूक्ष्म विवे-चन तथा उनको काव्यमें चित्रित करनेकी पद्धतिका निरूपण हुआ है। उल्लेखनीय है कि यह अन्य भाषाओंमें अप्राप्त, तमिल काव्यशास्त्रकी अपनी विशिष्टता है। तीसरे भागमें अभिव्यक्तिकी विशेषताओं – छन्द, अलंकार तथा काव्यके गुण-दोषोंका विवेचन किया गया है। काव्यमें चित्रित होनेवाले पात्रोंके हाव-भावादिकी प्रक्रियाका भी विवेचन इसी भागके अन्तर्गत है। तत्कालीन तमिलकी सामाजिक व्यवस्था, आचार-विचार, जीवनके व्यापार इत्यादि विषयोंका भी कुछ पता इस भागसे लगता है।

तोलकाप्पियरकी यह कृति आज भी तमिल साहित्य और भाषाका प्रामाणिक लक्षण-ग्रन्थ माना जाता है। लगभग २५०० वर्ष पुराना कोई ग्रन्थ किसी जीवित भाषाके लिए उपादेय रहा हो, इसका पाणिनिको छोड़कर विश्व-भरमें यही अकेला उदाहरण हो सकता है।

तमिल लक्षण-ग्रन्थोंमें केवल कवि-कर्म और काव्य-स्वरूपका विस्तृत विवेचन किया गया है। कहीं भी कवि-प्रेरणा या कविके सौन्दर्यबोधका विवेचन नहीं है, और न ही इस प्रश्नपर विचार किया गया है कि काव्यका पाठकोंपर क्या प्रभाव पड़ता है या काव्य पढ़नेसे पाठक-मनपर प्रतिक्रिया कैसी होती है। तमिलके 'पोरुळ्' तथा संस्कृतके रस-विवेचनमें इतना ही साम्य है कि ये दोनों ही काव्यमें वर्णित भावों और वस्तुपर अपने-अपने ढंगसे आधारित हैं किन्तु दोनों तत्त्वोंकी चिन्तन-पद्धति, प्रतिपादन-शैली तथा उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं।

तमिल लक्षणकारोंका ध्यान उन नियमोंको बनानेपर ही केन्द्रित था जो काव्य-रचनाके लिए आवश्यक होते थे। काव्यमें विषय-वस्तुका वर्णन किस प्रकार

होना चाहिए, भाव और अभिव्यक्तिका सामंजस्य कैसा हो, कविताको मनो बनानेके लिए आवश्यक गुण कौन हैं – आदि प्रश्न थे जिनके समाधान प्राचे तमिल लक्षणकारोंने अपने ढंगसे प्रस्तुत किये हैं। भारतीय साहित्यशास्त्र आदिम युगकी कुछ झलक 'तोलकाप्पियम्' में प्राप्त होती है। उस समय र स्वरूप स्पष्ट नहीं हुआ था। 'तोलकाप्पियम्' और भरत नाट्यशास्त्रके तुलनात्म अनुशीलनसे यह प्रकट होता है कि भरत-नाट्यशास्त्रकी रचना (ई० पू० द्वि शती) से पूर्व ही कोई नाट्य-परम्परा प्रचलित थी, जिसकी कुछ झलक 'तोलक प्पियम्' में मिलती है। साथ ही कोई काव्यशास्त्रीय परम्परा भी जो 'तोलक प्पियम्' में विवेचित है, प्रचलित रही जो कालान्तरमें लुप्त हो गयी या यह कि रस आदि अन्य काव्य-सिद्धान्तोंके विकासका आधार बनी रही और कालान्त में उसका स्वतन्त्र अस्तित्व खो गया।

तमिल काव्यशास्त्रकी परम्पराका पोषण अनेक रूपोंमें संस्कृत काव्यशास्त्र अन्तर्गत हुआ है। संस्कृतके विद्वान् तथा साहित्यकार भारतके अन्यान्य भाग प्रदेशोंमें रहते हुए संस्कृतके माध्यमसे कला-कृतियोंका निर्माण तथा विवेचन क रहे अतएव संस्कृत वाङ्मयकी जलधिमें विभिन्न प्रादेशिक भाषा-साहित्य विशेषताओंके स्रोत घुल-मिल गये। तमिल-जैसे प्राचीन और विपुल साहित्य-सम भाषाके प्रदेशमें स्थित संस्कृत विद्वानोंने संस्कृतको जो रचनाएँ प्रदान की हैं उ तमिल सारस्वतको विशिष्टताओंका प्रतिफलन सहज सम्भाव्य है। कहना न हो कि तमिलका प्राचीन साहित्य तथा काव्यशास्त्र भारतीय काव्यशास्त्रके प्रारम्भि स्वरूपको पहचाननेमें काफ़ी सहायक है।



> सुखी जीवनके अवरोध और माध्यम साहित्यमें
> प्रकट हों यह भी कोई बुरी बात नहीं। पर साहित्यमें
> कामुकता ही हमारी नैतिक, मानसिक, सामाजिक
> सब रुचियोंका हरण कर ले यह सर्वथा उचित नहीं।
>
> —तीसरा नेत्र : आनन्दप्रकाश जैन

प्रकाशित समीक्षाएँ
शेष स्वर

स्तम्भका उद्देश्य है : महत्त्वपूर्ण समकालीन कृतियोंपर प्रकाशित विभिन्न और विवेकी समीक्षाएँ एक साथ सामने आकर पाठकको कृतिके समग्र व्यक्तित्वसे परिचित करा सकें। स्तम्भमें क्रमशः 'लोकायतन', 'एक साहित्यिककी डायरी', 'शिखरोंका सेतु', 'चारु-चन्द्रलेख', 'आँगनके पार द्वार' और 'अँधेरे बन्द कमरे' पर समीक्षाएँ आ चुकी हैं। इस अंकमें प्रस्तुत हैं श्री-बालकृष्ण रावके कविता-संग्रह 'अर्द्धशती'पर समीक्षाएँ।

'अर्द्धशती'

• एक तटस्थ कविकी अर्द्धशती

रचनाकार केवल रचनाकार नहीं होता। वह एक व्यक्ति भी होता है। एक ऐसा व्यक्ति जिसके चारों ओर वस्तुएँ, भीड़ या समाज और विचार भिन्न होते हैं। फलतः वह व्यक्ति कई स्तरोंपर—एक साथ किन्तु भिन्नतः जीता है। रचनाकार उन कई स्तरोंमें-से एक स्तर है। इसका अर्थ यह नहीं कि व्यक्तिके लिए रचनाकार अंश है, बल्कि वह एक इकाई है—सम्पूर्ण इकाई। उसकी सत्ता व्यक्तिके अन्य स्तरोंसे सम्पृक्त या असम्पृक्त हो सकती है, किन्तु वह अविकल और अद्वितीय है, इसमें सन्देह नहीं।

रचनाकारकी आलोचना करते समय दो प्रकारकी भूलें इसीलिए अकसर या तो हो जाती हैं या की जाती हैं। हम रचनाको अच्छा या बुरा इसीलिए मान लेते हैं, क्योंकि रचनाकार किसी विशिष्ट वादसे सम्बद्ध होता है या नहीं होता, अथवा किसी विशेष विचारधाराका पोषक होता है या नहीं होता। इसका अर्थ यह हुआ कि हम किसी आरोपित मानदण्डसे उसकी रचनाका विश्लेषण करते

हैं। यह स्थिति तब और भयंकर हो जाती है, जब रचनाकार किसी विशिष्ट पदपर होता है या नहीं होता। पद और प्रतिष्ठा, अर्थ और समृद्धि तथा अर्जित यश या इसकी विपरीत स्थितियाँ अकसर आलोचनाको आविल बनाती रहती हैं। इस भयंकर स्थितिके परिणाम सभी आयामोंमें प्रत्यक्ष हैं और आलोचना पीली पत्रकारिता, खुशामद, चापलूसी और राजनयिक कठमुल्लेपनकी सीमा तक पहुँच गयी है।

ऐसी स्थितिमें बालकृष्ण रावकी कवितापर विचार करते समय यह आवश्यक हो जाता है कि इन दृष्टियोंसे उनका विश्लेषण कर लिया जाये। बालकृष्ण राव प्रथमतः क्या हैं? शासक या विद्वान् या कवि या एक अभिजात व्यक्ति? क्या यह सम्भव नहीं कि प्रथमतः तीनों-चारों हैं—अखण्ड हैं? या खण्ड-खण्ड हैं और उनको श्रेणियोंमें बाँटा जा सकता है। या अखण्ड तो नहीं हैं, किन्तु श्रेणी विभाजन सम्भव नहीं है? क्या वे मात्र प्रबुद्ध पाठक हैं, इसलिए कवि भी हैं? क्या वे उद्‌बाहु होकर कीर्ति-फलकी कामना कर रहे हैं?

ये प्रश्न मेरे नहीं हैं। बल्कि मेरे-द्वारा चुने गये हैं। प्रथमत्वका प्रश्न विवाद्य हो सकता है, होना चाहिए। किन्तु इतना सत्य है कि एक शासक विद्वान् भी हो सकता है और कलाकार भी। इसके विपरीत भी उतने ही सत्य हैं, हो सकते हैं। क्योंकि प्रतिभाकी बहुमुखताके ये रूप एक व्यक्तिमें सम्भव हैं। और अभिजात व्यक्तित्व यदि है तो वह या तो अर्जित होता है या परम्परित, किन्तु उसका होना प्रश्नशील नहीं बनता, उत्तरोन्मुख भले बनाये। इसी प्रकार अखण्ड या खण्डके प्रश्न भी हमारे लिए बेमानी हैं क्योंकि उनका सम्बन्ध कलासे क़तई नहीं है, मनोदर्शनसे चाहे जितना हो। यदि कोई प्रबुद्ध पाठक है, तो वह अच्छा भावुक है, कवि नहीं। किन्तु जो कवि है, उसे प्रबुद्ध पाठक होना चाहिए। यदि इस प्रश्नको उलट दें तो बालकृष्ण रावके प्रति किये गये इस प्रश्नका उत्तर स्वयं स्पष्ट हो जायेगा। कीर्ति-फलकी कामना मध्यकालीन प्रवृत्ति है, आधुनिक नहीं। इसकी आशा श्री रावसे करना अपेक्षित भी नहीं लगता।

बालकृष्ण रावके साथ उनकी रचनाकी प्रशंसा और शंका दोनोंमें काव्येतर स्थितियाँ कार्यशील रही हैं जिनसे कई दृष्टियोंसे उनके मूल्यांकनमें बाधा पहुँची है और उनके प्रति टालू आलोचनाका सहारा लिया गया है। (चाहे वह प्रशंसा ही हो) प्रतिभा किसी आवश्यकता—आन्तरिक आवश्यकता—के कारण फलीभूत होती है। उसके लिए अध्यारोपण ग़लत है।

यही आवश्यकता बालकृष्ण रावके अभिजात होनेकी चरम परिणति हो सकती है, विद्वान् होनेका अन्तिम फल हो सकती है और शासन निवृत्ति परिणाम भी हो सकती है।

बालकृष्ण राव उपेक्षित कवि हैं, रहे हैं। नये कवि और नये आलोचककी दृष्टिसे तो और भी। कमसे कम आजतककी आलोचना या हिंसात्मक प्रहारोंकी दृष्टिसे यह प्रत्यक्ष है कि वे प्रहारोंसे भी बचे रहे हैं। प्रहारकी ओर इसलिए भी दृष्टि जाती है क्योंकि उससे कविकी जीवन्तताका भी परिज्ञान होता है और तब तो और भी जब वात्स्यायनके अनुसार हिन्दी विद्रोहकी भाषा रही है। नये कवि अधिकतर क्रुद्ध युवक हैं, इसलिए उन्हें संवेदनकी तीव्रतासे ही मोहा जा सकता है। इस तीव्रताका स्वरूप चमत्कारिक, युगसम्मत एवं बुद्धि-परिपुष्ट होना आवश्यक है। नया आलोचक इसका समर्थक है। राव मद्धिम संवेदनके कवि हैं और क्रुद्ध युवकसे दूरस्थ हैं। उनकी स्थिति एक कविके रूपमें जिज्ञासु-युवक-सी है, रही है। अतः उसमें यह तीव्रता नहीं है। उनपर हिंसात्मक प्रहार नहीं हुए, क्योंकि 'बच्चन' के अनुसार वे चक्रनेमि क्रमानुसार अपनेको विकसित करते रहे। यह विकास-प्रक्रिया जिज्ञासुकी विचार-प्रक्रिया है, सूझ-बूझवाले अवसरवादीकी नहीं, क्योंकि रावकी कवितामें ('अर्द्धशती' की कविताओंमें भी) सर्वत्र तटस्थताकी भी अनुभूति होती रहती है, जबकि अवसरवादीमें कुरुचि और ऊम-चूम भी मिलना आवश्यक है। 'कक्षा-शूर अध्यापक और पटरी-परकालवाले आलोचक'-के लिए इसीलिए राव उपेक्षाके पात्र हैं और नये कविके लिए भी। यह अलग बात है कि उपेक्षा नुस्खेकी दृष्टिसे मारनेका सर्वोत्तम उपाय है। किन्तु ऐसा अवसरवादीके साथ ही होता है, जो किसी भीतरी आवश्यकतासे प्रेरित होकर रचता है, उसके साथ ऐसा नहीं होता, नहीं हो सकता।

'कुट्टिचातन' ने कहा है कि पीपलमें यदि सभी पत्तियाँ काँपती हैं तो एक जरूर स्थिर होगी, होनी चाहिए। यही स्थिति बालकृष्ण रावकी है। वे सम्पूर्ण गतिशीलके बीच स्थितिशील हैं। बहती हुई नदीकी हर तरंग, हर तरंगाघात, हर उत्थान-पतनके द्रष्टा, उपभोक्ता किन्तु तटस्थ : नदीके साथ बहने, बहते रहनेके सम्पूर्ण अनुभवराशिसे सम्पृक्त किन्तु तटस्थ। वे डुबकी लगाकर मोती लानेवाले पनडुब्बे नहीं हैं। वे उपलम्बबाहु भी नहीं हैं। पर उनका दीप, उनका एकान्त व्यक्तित्व—अकेला है, अद्वितीय है। इस अद्वितीयताका अर्थ पारम्परिक

अर्थसे पृथक् उस अनुभवसे हैं, जहाँ और अनूठे भले हों, किन्तु एक ऐसा भी होता है जिसमें आकर्षण बहुत ध्यान देनेपर मालूम होता है, सहसा हम उपेक्षित छोड़ जाते हैं। क्योंकि उसपर बौद्धिक विलासकी भी शंका की जाती है और जो उसमें क़तई नहीं होती। इसी प्रकार स्थितिशीलताका अर्थ जड़ता नहीं होता। स्थिति स्वयंमें गति है, यह भुला देना बालकृष्ण रावके प्रति अन्याय होगा।

इस स्थितिशीलताका स्रोत कहीं गहरेमें है। हम जानते हैं, बल्कि हम सोचते हैं कि जानते हैं कि बालकृष्ण राव आधुनिक कविताके विकासके सबसे बड़े साक्षी रहे हैं। और इसीलिए परम्परा-ज्ञानकी दृष्टिसे उनके काव्यको पुष्कल मूल्यवत्ता है।

— श्रीराम वर्मा
(आजकल)

● दृढ़ता और स्थिरता : असली रंग

छायावाद और नयी कविताके बीचका समय हिन्दी कविताके लिए काफ़ी संघर्षपूर्ण रहा है। १९३५ तक उन साहित्यिक आन्दोलनोंकी रूपरेखा स्पष्ट होने लगी थी जिन्होंने बादवाले वर्षोंमें छायावादकी जगह ली। उस समय जब कि छायावादके सामने प्रगतिवाद–द्वारा प्रचारित मार्क्सके सिद्धान्तोंके अन्तर्गत साहित्य रचनेका प्रश्न प्रमुख था, 'अर्द्धशती' उस छोटे-से-कवि-वर्गकी याद दिलाती है जिसके लिए कविता एक स्वतन्त्र चेष्टा बनी रह सकी। जहाँतक 'अर्द्धशती' की कविताओंका सवाल है, उनकी सहज प्रकृति (गीतात्मकताके बावजूद) रूमानियतकी अपेक्षा शास्त्रीयता (क्लासिकल) के अधिक निकट है। शायद इसीलिए वे ऐसे समयमें भी अधिक स्थिर रह सकीं जब कि छायावादकी रूमानी प्रकृति नये विचारोंके बवण्डरमें अपनेको संयत न रख सकी। हिन्दीमें मिल्टनके उनके सफल अनुवाद भी इस बातको पुष्ट करते हैं कि श्री राव परिस्थितियोंके प्रति गीतात्मक संवेदना रखते हुए भी उनपर शास्त्रीय अनुशासन पसन्द करते हैं। शायद यह मेरा सिर्फ़ भ्रम नहीं, यदि कहूँ कि वड्सवर्थकी 'द सालीटरी रीपर' का जो अनुवाद इस संग्रहमें 'एकाकिनि गिरिबाला' शीर्षकसे छपा है, उसकी उदासी मिल्टनके 'लिसीडास' के अधिक समीप है––यानी, वड्सवर्थियन न होकर मिल्टानिक है।

श्री रावकी भाषाके मुख्य गुण हैं वर्णनात्मकता, सन्तुलन, संयम, तार्किकता, शुद्धता आदि जो बरबस नव्य अभिजातवाद [नीओ-क्लासिसिज़्म] की याद दिलाते हैं। उनकी भाषा अत्यन्त सतर्क है : सही और शुद्ध हिन्दी लिखनेका इतना सचेत प्रयास कि अपनी शुद्धतामें ही अलग-सी। अकसर ऐसा लगता है कि कवि 'शब्दों' की काव्यशक्तिकी अपेक्षा 'भाषा' के गद्य सौष्ठवसे अधिक प्रभावित है। इसीलिए कविताओंको लय, छन्दोंके बावजूद, गद्यात्मक लगती है क्योंकि लय-का ढंग अधिकांश ऐसे शब्दोंसे निर्धारित होता है जो अच्छे काव्यके लिए नहीं अच्छे वाक्यके लिए अनिवार्य है। श्री राव बातको सांकेतिक ढंगसे कहनेकी अपेक्षा विस्तारसे कहना अधिक पसन्द करते हैं। उनमें वर्णनकी सहज प्रतिभा है, लेकिन वह अकसर कविताके उन पक्षोंपर भी हावी हो जाती है जिनके लिए वर्णन नहीं, संकेत अपेक्षित है। नयी कविताने पुराने बिम्बों और प्रतीकोंको भी लिया है, पर या तो उन्हें नयी शब्द-योजना दी है, या फिर नया सन्दर्भ। श्रीराव-ने भी जगह-जगह पुराने या परिचित प्रतीकों और बिम्बों-द्वारा नये मूल्योंकी बात कही है, किन्तु वे प्रतीकों और बिम्बोंको इतना स्पष्ट कर देते हैं कि वे बजाय मूल कथ्यके सहायक होनेके, कवितामें जरूरतसे ज़्यादा जगह घेर लेते हैं। एक उदाहरण उनकी 'फिर छला जायेगा' कवितासे लेना पर्याप्त होगा :

"नया पृष्ठ खोला इतिहासने—
प्राची रक्ताभ हुई,
पौ फटी,
सूरज निकल आया है,
नवयुग आरम्भ हुआ।
यों ही हर रोज़
नये सूरज के साथ-साथ
नये मूल्य उगते हैं,
नयी मान्यताएँ नयें मानव की
जन्म लिया करती हैं—
यों ही हर रोज़
नया पृष्ठ खुला करता है
मानव इतिहास का।"

'नये' को स्पष्ट करनेके लिए 'सवेरे' का जो बिम्ब लिया गया है, उसे इतना स्पष्ट करना आवश्यक क्यों ?—खासकर जब 'सवेरा' ऐसा कोई असामान्य बिम्ब नहीं। कवितामें 'सवेरे' के बिम्बपर अधिक दबाव पड़ता है जब कि दबाव शायद 'नये मूल्यों' पर अधिक पड़ना चाहिए था। 'सवेरे' का बिम्ब या तो विशेष शब्द-योजना-द्वारा इतना अनूठा होता कि वह 'नये मूल्यों' की बातको उभारता; या फिर उसे इतना सांकेतिक रखा जाता कि मूल कथ्य उससे केवल निदेशित होता, आक्रान्त नहीं। तात्पर्य शब्द-स्फीतिसे ही नहीं, एक ख़ास तरहके शब्दोंकी स्फीति-से ही नहीं, एक खास तरहके शब्दोंकी स्फीतिसे भी है—ऐसे शब्द जो स्वयं काव्यमय नहीं; जिनकी उपस्थितिसे कविताका आकार तो बढ़ता है पर उसका प्रभाव नहीं, जिन्हें अनिवार्य जगहोंपर ही न रखकर अकसर अनावश्यक जगहों-पर भी रखा गया है।

'अर्द्धशती' की कविताओंका शास्त्रीय पक्ष जहाँ उन्हें छायावादी संवेदनासे अलग करता है, वहीं उन्हें नयी कविताके निकट भी लाता है। नयी कविता आरम्भसे ही रूमानियतके विरुद्ध थी, जिसका ऐतिहासिक दस्तावेज़ टी० ई० ह्यूम-के 'स्पेकुलेशन्स' को मानना शायद ग़लत नहीं। टी० एस० इलियटने अपमें-आप-को शास्त्रीयके पक्षमें घोषित किया था, और शेलीकी कविताओंको 'बचकानी' मानता था। लेकिन व्यवहारमें नयी कविता, या हिन्दी नयी कविता, कहाँतक अरूमानी रह सकी, यह सन्दिग्ध है। स्वयं टी० एस० इलियटपर उन प्रतीक-वादियोंका गहरा प्रभाव था जिनकी मूल काव्य-प्रकृति रूमानी थी। फिर भी, सैद्धान्तिक स्तरपर शास्त्रीय काव्यादर्शोंके पुनरुत्थानका एक नतीजा यह हुआ कि नयी कविताने जीवनकी वास्तविक समस्याओंमें गहरी रुचि लेना आरम्भ किया। 'अर्द्धशती' की कविताओंका स्वर उदास या उदासीन न होकर आशावादी है। उसमें मनुष्यके सत्प्रयासोंको बढ़ावा देनेको संयत और सुलझी हुई सामाजिक ज़िम्मेदारी है। साहसिकता ओर उतावलापन नहीं, दृढ़ता और स्थिरता इन कवि-ताओंका असली रंग है।

—— कुँवरनारायण

(कल्पना)

• अर्द्धशती : सभ्य वाणी

बालकृष्ण राव सन् १९३० के आसपाससे लिख रहे हैं। यह वह समय है जब 'बच्चन' और 'अज्ञेय' ने भी लिखना प्रारम्भ किया। लेकिन जहाँ इन दोनोंने साहित्यमें अपना स्थान बना लिया, वहाँ बालकृष्ण राव नहीं बना पाये। बाहरी साधनोंकी दृष्टिसे 'बच्चन' और 'अज्ञेय' की तुलनामें राव साहबको कभी कोई कमी नहीं रही; अतः कमीकी खोज इनके भीतर ही करनी होगी। उत्तर-छायावाद कालके प्रारम्भिक कवियोंमें बालकृष्ण राव एक ऐसे कवि हैं जिनके अबतक पाँच-छह काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें-से किसीने भी सम-सामयिक कवितापर अपना कोई प्रभाव नहीं छोड़ा। यहींतक नहीं, उन्होंने हिन्दी पाठकोंका ध्यान तक अपनी ओर आकर्षित नहीं किया। यह तथ्य किसी औरकी नहीं, तो कविकी चिन्ताका कारण अवश्य हो सकता है। साहित्यके क्षेत्रमें श्री राव समीक्षकोंका स्थान नहीं मानते। ग्रन्थकी भूमिकामें उन्होंने लिखा है : साहित्यकार भावकके लिए साहित्य-रचना करता है, समीक्षकके लिए नहीं। तब क्या आजका सामान्य पाठक भाव-शून्य हो गया है? यदि नहीं तो जिनकी ओर कविने संकेत किया है, वे सहृदय लोग कहाँ हैं?

बात यह है कि 'बच्चन' और 'अज्ञेय' की भाँति बालकृष्ण रावने किसी नये आन्दोलनका सूत्रपात नहीं किया, काव्यकी धाराको किसी नयी दिशामें नहीं मोड़ा। वे पथके निर्माताओंमें-से नहीं, उसका अनुसरण करनेवालोंमें हैं। अतः उनका स्थान भीड़में कहीं बहुत पीछे है। प्रभावित वे नये गीत-काव्यसे भी हुए और प्रयोगवादसे भी; लेकिन किसी काव्य-धाराने उनके हृदयको गहराईसे नहीं छुआ। इतना वे भी स्वीकार करेंगे कि प्रत्येक सुकान्त रचना 'गीत' नहीं कहलाती और न मुक्त छन्दमें खिलनेसे कविता 'नयी' हो जाती है। संसारका कोई भी महत्त्वपूर्ण काम हमसे हमारे सम्पूर्ण जीवनकी माँग करता है। श्री राव अपने जीवनके महत्त्वपूर्ण क्षण कविताको नहीं दे पाये। उनके जीवनके बहुत-से कामोंमें-से कविता लिखना भी एक काम है। जहाँ उन्होंने अपना जीवन दिया है, वहाँसे उनकी गणना एक सम्भ्रान्त नागरिकके रूपमें अधिक रही है, कविके रूपमें कम। यही उनकी नियति है।

'अर्द्धशती' का कथ्य सभी कहीं दबा हुआ है। रचनाओंके अध्ययनसे बार-

बार रचनाकार हमारी आँखोंके सामने आ खड़ा होता है। जो चित्र उभरता है वह एक सभ्य व्यक्तिका है। सभ्य व्यक्तिकी पहचान ही यह है कि उसकी किसी विषयमें वास्तविक दिलचस्पी नहीं होती। इसमें भी इतिहास, दर्शन राजनीति, वर्तमान युग, जीवन प्रकृति और प्रेमको नयी दृष्टिसे देखनेका प्रयत्न किया गया है। श्री रावके हाथमें पड़कर ये विषय काव्यके उपादान नहीं बनते, कुछ ऐसा रूप धारण करते हैं जैसे कोई रिटायर्ड व्यक्ति अपने ड्राइंग रूममें बैठकर ऊपरी गम्भीरताके साथ अपने निजी मन्तव्य व्यक्त करे और सुननेवालोंको लगे कि इन लम्बी-चौड़ी बातोंके पीछे कहीं भारी खोखलापन छिपा हुआ है।

यही दशा अभिव्यक्ति-पक्षकी है। सभ्य व्यक्ति जैसे न अधिक क्रोध करता है, न प्रेम; न किसीका अधिक पक्ष लेता है, न कड़ा विरोध करता है; न चुप रह पाता है, न अपने मनोभावका किसीको अधिक परिचय देता है; वैसी ही ये रचनाएँ भी हैं–एकदम आवेगहीन। विशेष संवेदन हो तो, चिन्तन हो तो, विचार-चित्र हो तो, सन्देश हो तो; सत्यका अंश हो तो, संकेत हो तो, सबपर सभ्य वाणीका पानी चढ़ा हुआ है। भाषा शालीन है, स्निग्ध है, संयत है। पर कुल मिलाकर वह कुछ कहती नहीं। आधुनिकताका यह भी एक रूप है।

— विश्वम्भर 'मानव'

('ज्ञानपीठ पत्रिका')

● आस्थाका अविराम चिन्तन

'अर्द्धशती' हिन्दीके प्रौढ़ चिन्तक, विचारक एवं प्रातिभ कवि श्री बालकृष्ण रावकी पचास नयी कविताओंका संग्रह है। श्री राव एक अरसेसे कविता लिखते रहे हैं और नयी कविताके रूपमें अपनी काव्य-धाराको प्रत्यावर्तित करनेके परिपार्श्वमें उनकी कोई आन्दोलनात्मक भावना कार्य करती रही हो, ऐसी बात नहीं है। आधुनिक जीवनके विषम वातावरण एवं युगकल्पके सन्तरणकी आहट पहचानकर ही उन्होंने परम्परित कविताकी लीकपर ही आगे बढ़कर नयी कविताके मूल्यों, प्रतीकों एवं अभिरुचिके विविध आयामोंका स्वागत किया है। फलतः रावकी 'अर्द्धशती' की कविताओंमें परम्परागत काव्यकी कमनीयताका आवेष्टित द्रव्य उतना ही है, जितना नयी कविताकी नव्यतम उपलब्धि, जो सहज रूपमें इन कविताओंमें बिना किसी प्रयत्नके आ गयी है। 'अर्द्धशती' का कवि एवं

उसकी कविताका मूल्यांकन किसी विशिष्ट भंगिमासे नहीं, कविताकी सहजतम भावभूमिपर अपेक्षित है जो सदासे काव्यका आधार रहा है। नयी कवितामें दुरूहता, क्लिष्ट प्रेषणकी प्रतीकात्मक पद्धति तथा चिन्तन एवं विचारके नामपर अपाच्य अधीत द्रव्योंका जो अनमेल ताना बुना जाता रहा है, उन सारे दोषोंका निराकरण प्रस्तुत संग्रहकी कविताएँ करती दिखाई पड़ती हैं। अभिधात्मक वाक्य-रचनाके माध्यमसे, छोटे खण्डचित्रों एवं सहजताको उपस्थित करते हुए जीवनके विराट् फलकको कवि बड़ी आसानीसे रख सका है। यही उसकी अन्यतम सफलता है, अर्द्धशती' की कविताओंका सौन्दर्य उसके शब्दावरण एवं वाक्य-विदग्धताकी अपरम्परित रचनात्मक प्रणालीमें नहीं है वरन् 'अर्द्धशती' की कविताओंमें एक सहजात्मक विच्छित्ति मिलती है, जो विश्वके श्रेष्ठतम काव्योंके लिए भी महत्त्वपूर्ण माना गया है। इन कविताओंको पढ़ा जायेगा, लेकिन उससे भी ज़्यादा इसका महत्त्व इस अर्थमें है कि यदि इन्हें अनुभव किया जाये तो इसके विविध आयामोंका अर्थ अधिक खुलकर समझमें आ सकता है। 'कौन जाने', 'कुछ तो कहोगे ही', 'प्रश्न और उत्तर', 'फूल ही तो थे', 'उत्तर न होगा वह' 'पदचिह्न', 'पाषाण-कारा', 'चाँदनीमें', 'धुरी हो या चक्रनेमि' इत्यादि कविताएँ मेरे मन्तव्यको अधिक स्पष्ट करनेमें समर्थ होंगी।

जीवनके युगबोध और आधुनिक परिवेशके सन्तुलनकी आवाज़को अर्थवती बनाकर उपस्थित करनेमें 'अर्द्धशती' की कविताओंका विशेष महत्त्व है। 'पाषाण-कारा' में कवि कहता है :

"उठो शिल्पी, उठो सुन लो
तुम्हें पाषाण-कारा से
न जाने आज
कितनी मूर्तियाँ
आवाज़ देती हैं।"

नयी कविताके सम्बन्धमें कुछ लोगोंका आक्षेप है, इसमें जीवनका असन्तुलन एवं असंगतियोंको ही वाणी मिली है, आस्था एवं ओजका अभाव है। परन्तु नयी कवितामें आस्थामूलक प्रवृत्ति इधर पिछले दशककी कविताओंमें तीव्रताके साथ उभरी है—जिनमें श्री रावकी देन विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस संग्रहकी अधिकांश कविताओंमें पौरुषकी चिन्तना एवं आस्थाका अविराम चिन्तन है जो

बड़े ही प्रखर रूपमें स्पष्ट हो सका है। 'मील देवी', 'प्रयोगशाला', 'पात्रता', 'सावधान जननायक', 'आँधी' में इसका दर्शन विशेष रूपमें होता है। आधुनिक जीवनकी इस विविधाके बीच भी 'अर्द्धशती' की कविताओंके कविको एक सहज पथ मिल गया है, यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

श्री रावकी इन कविताओंको पढ़ते समय नयी कविताके काम्य रूपकी कल्पना सहज ही जाग उठती है और मनको यह विश्वास होता-सा दिखाई देता है कि अब जो नयी कविताकी भविष्यमें रचना आवेगी उसका शिल्प यही होगा जो 'अर्द्धशती' की कविताओंमें संकेतित हो रहा है। बौद्धिक विचारणा एवं चिन्तनात्मकताकी रक्षा करते हुए भी सहजरूपमें कुछ कहा जा सकता है, जो कविता ही है, उसका उदाहरण अर्द्धशती' में मिलता है। नयी कविताके संग्रहोंके बीच 'अर्द्धशती' अपरम्परित ही मानी जायेगी लेकिन इस अर्थमें कि उसने अभिव्यक्तिका एक नया माध्यम दिया है, जो अपरिचित-सा होकर भी दूसरोंके लिए अनुकरणीय चुनौती है।

— कृष्णनन्दन 'पीयूष'
(ज्ञानोदय)

ज्ञानपीठ पुरस्कार

प्रगतिके बढ़ते चरण

विश्वास भले ही अमूर्त-बोधक शब्द है, परन्तु इसकी मूर्तताका अनुभव उस समय होता है जब यह किसी व्यक्ति अथवा संस्थाकी किसी वांछाका प्राप्य बनकर वास्तविक उपलब्धि बन जाता है। तब इसी अमूर्तसे बढ़कर शायद ही कोई ठोस और सशक्त वस्तु होती हो।

ठीक ऐसी ही अनुभूति आज भारतीय ज्ञानपीठको हो रही है। चार वर्ष पूर्व जो सपना सँजोया गया था वह निर्धारित अवधिके भीतर ही साकार हो आया। देश-भरकी चौदहों भाषाओंके सर्जनात्मक साहित्यमें-से एक सर्वश्रेष्ठ कृतिके चयन सरीखा दुष्कर कार्य यदि सहज हो पाया तो मात्र विद्वद्जनोंके सहयोग तथा ज्ञानपीठ परिवारकी लगन और शुभाकांक्षियोंकी सतत प्रेरणा-द्वारा ही।

ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमा जैन जिस दिन एक लाख रुपयेके प्रथम वार्षिक पुरस्कारके विजेताके नाम और कृतिकी घोषणा कर रही थीं, उस समय उनके चेहरेपर जो उत्साह और उत्फुल्लता थी वह उनके अन्तरतममें व्याप्त उसी कोटिकी विश्वासजनित उपलब्धिकी झलक थी, जिस प्रकारकी कि चोटीपर आ पहुँचे एवरेस्ट विजेताके हृदयमें छा गयी होगी, या कि धरतीके गोलेको पहली बार सुमगतामें निहार लेनेवाले अन्तरिक्ष यात्रीने महसूस की होगी।

प्रथम पुरस्कार घोषित हुआ मलयालम कवि श्री जी० शंकर कुरुपके नाम तथा वह कृति है—'ओडक्कुष़ल'। देश-विदेशके प्रेस, रेडियो तथा साहित्यिक क्षेत्रोंमें इस घोषणाका जो स्वागत हुआ वह सर्वविदित है।

इस समय तीन-तीन वार्षिक पुरस्कारोंका कार्य एक साथ और पूरी गतिसे चल रहा है। प्रथम पुरस्कारके लिए अन्तिम चुनावके लिए ऊपर उठकर आयी चारों पुस्तकों – 'अग्निवीणा' (काज़ी नज़रुल इस्लाम), कन्नड़ काव्य 'मंकुतिम्मन कग्ग' (डी० वी० गुण्डप्पा), मलयालम कविता संग्रह 'ओडक्कुष़ल' (महा-

कवि जी० शंकर कुरुप) तथा तेलुगु उपन्यास 'वेयिपडगुलु' (विश्वनाथ सत्य-नारायण) के हिन्दी अनुवाद हो ही चुके हैं, अब ज्ञानपीठ उनके प्रकाशनके लिए प्रयत्नशील है। साथ ही प्रथम पुरस्कार पुस्तिका भी छप रही है जिसमें प्रवर परिषद्, चौदहों भाषा परामर्श समितियों, चारों भाषा वर्ग समितियों, लेखकों, साहित्यिके मूल्यांकनकर्ताओं तथा अनुवादकों आदिके सचित्र परिचय रहेंगे। महा-कवि जी० शंकर कुरुपके व्यक्तित्व एवं कृतित्वकी एक परिचायिनी पुस्तिका अलगसे भी प्रकाशित की जा रही है।

आशा है, उपर्युक्त सारा कार्य पुरस्कार-महोत्सवके समय तक पूरा हो जायेगा। अप्रैलमें पुरस्कार वितरण समारोह दिल्लीमें आयोजित करनेका प्रयत्न हो रहा है।

द्वितीय पुरस्कारकी स्थिति यह है कि चौदहों भाषाओंकी परामर्श समितियों-की बैठकें गत वर्ष हो चुकी थीं तथा निर्णय भी प्राप्त हो गये थे। संस्तुत पुस्तकें प्राप्त कर ली गयी हैं तथा अब भाषा वर्ग-समितियाँ गठित की जा रही हैं, वर्ग-समितियाँ इस प्रकार रहेंगी : १. असमिया-बंगला-उड़िया वर्ग-समिति। २. पंजाबी-उर्दू वर्ग समिति। ३. गुजराती-मराठी वर्ग समिति। ४. कन्नड़-तमिल-तेलुगु वर्ग समिति।

हिन्दी-संस्कृत वर्गमें-से सिर्फ़ हिन्दीकी ही पुस्तक संस्तुत होकर आयी है। अत: इस वर्गकी समिति नहीं बनेगी। काश्मीरीकी कोई पुस्तक नहीं। नियमा-नुसार दो वर्ष तक मलयालमकी पुस्तकपर विचार नहीं होगा क्योंकि प्रथम पुरस्कार इसी भाषापर घोषित हुआ है।

तृतीय पुरस्कारके लिए पुस्तक प्रस्ताव-पत्र मँगाकर चौदहों भाषा परामर्श समितियोंको भेज दिये गये हैं। अब परामर्श समितियां बैठकें बुलानेका प्रबन्ध कर रही हैं।



अक्षरोंका सेतु
कृतियोंकी प्रतिक्रिया

लेखन-प्रकाशनके आयोजन-श्रमकी इकाई अधूरी रहेगी
जबतक पारखी पाठककी प्रतिक्रिया प्रकाशकके
पास होती लेखककी मेजतक न पहुँचे

• इतिहास-पुरुष : डॉ० देवराज

बिजलीकी भूमिकाएँ

है। इसलिए है।

यह अनुमान सत्य है; सत्य हो सकता है। किन्तु हर स्थितिमें सही नहीं है, सही नहीं हो सकता।

है। इसलिए नहीं है।

यह भी सत्य है; सत्य हो सकता है। किन्तु हर स्थितिमें सही नहीं है; सही नहीं हो सकता।

डॉ० देवराज चिन्तक हैं। प्रबुद्ध पाठक हैं। समधीत प्राध्यापक हैं। स्पष्ट विश्लेषणमें सक्षम हैं। परम्परा-प्रिय हैं। संस्कृतियोंके पारंगत अध्येता, दर्शनोंके दिग्दर्शक तथा समालोचनाके वन-कान्तारके शमी वृक्ष हैं। अतएव अवश्यं-मननीय हैं।

तो क्या वे कवि भी हैं? 'इतिहास-पुरुष' के पूर्व भी इनके कई कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। यह उनके कवि होनेका प्रमाण है। शायद वहाँ हों, हम नहीं जानते। हम तो उनके चिन्तनमें उलझे रहे। ये बहिर्प्रभाव हैं। इनसे हमारा खास लाभ भी नहीं।

तो 'इतिहास-पुरुष' से ही चलें। अधीति, चिन्तन, सजगता और प्रयोगके खास उपयोग इस पुस्तकमें उपलब्ध हैं। 'और' तथा 'मम-तव' शब्दोंका नया

प्रयोग इसी पुस्तकमें मिलेगा। दो क्रियाओंका एक साथ सुन्दर प्रयोग मिलेगा। दो क्रियाओंसे एक कार्य या कई कार्य डॉ० साहबने निकाले हैं। जैसे उन्होंने बत्ती जलायी, रोशनी भी हुई और वातावरणमें शिशिरकी सिहरन वसन्तकी खुनकीमें बदल-सँवर गयी। पुराने कवियोंके महनीय काव्योंसे लाभ भी उठाया गया है। युगके अहंके प्रति भी अवधान स्पष्ट है। सामासिक शब्दोंसे अनन्त, अगाध, विपुल, व्यापकता और बारीक देशोंको अभिव्यक्ति दी गयी है। संस्कृत शब्दों और लोकग्राही शब्दोंके मेलसे कुछ वर्णसंकर शब्द भी बनाये गये हैं, जो पावरोटी और जनेऊ-संस्कारकी तरह आकर्षक और चमत्कारिक लगते हैं। विशेषणोंके प्रति संस्कृतके महाकवियों-जैसी सतर्कता बरती गयी है। मुक्तिबोध-का 'व' नवनीत-कवि पन्तका 'रे' और ब्रजभाषाका 'पै' भी छोड़ा नहीं गया है। द्वन्द्व समासका प्रयोग इतना चकाचक हिन्दीके किसी कविमें नहीं मिलेगा। डॉ० देवराज यदि कवि हैं, तो द्वन्द्व समासके। द्वन्द्व समास देवराजके लिए हस्तामलकवत् है। उनके कुछ प्रयोग महनीय काव्योंको स्पर्श करते हैं चर्चिल-सिगार-न्यायकी तरह। उनका यह 'उद्योगक़दम' सराहनीय है। देवराजने पूर्व पाठ भी दिये हैं; पाठालोचक और समालोचक दोनोंकी दृष्टिसे वे कितने नये और कितने पुराने यानी महान् और इसीलिए ईमानदार और 'शिष्टचतुर' हैं, यह भी उनका उन 'थकेप्राण' का 'पर्वती प्रयत्न' है। उनके 'भवोंके पसीने' का सन्दर्भवाद। उर्दू, हिन्दी, संस्कृतकी त्रिवली, संक्षिप्त निर्वर्ण रेखाचित्र, छायावाद, द्वन्द्व समास—इस संग्रहकी महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। प्रतिभा और परम्पराकी दृष्टिसे इसीलिए यह प्रयत्न सारे नये कवियोंके लिए अवश्यंध्यातव्य है। 'बारीक बुद्धि' का 'सोनामृग' सचमुच एक 'भावती' कथा है। इसका मूल्य है।

अमूर्तको मूर्त करके, पाश्चात्यको प्राच्यके सामने रख करके, सूक्ष्म और स्थूलको क्रमशः प्रतिकूल करके, एकको अंशोंमें बाँट करके देखना और सही रूपमें दिखाना आसान नहीं है—जो डॉ० देवराजके लिए सहज है, एक 'मँजी मुसकान' की तरह।

वि० ब० येट्स (मंक गिबनको लिखित एक पत्रमें) का उद्धरण और रैण्डल जैरेलेका एक कटा हुआ अनुच्छेद, डॉ० देवराजका 'निवेदन' तथा पन्तकी 'मूल्य-सूनी' नवनीतस्रवा भूमिका इस संग्रहके, कविताओंसे अलग लेकिन सबसे आवश्यक आकर्षण हैं। कोई चाहे, तो उद्धरण और अनुच्छेद 'नोट-बुक' के हवाले करे;

निवेदनको अपनी गीता मान ले, पन्तकी भूमिकाको न पढ़े और कविताओंको ताक-पर रख दे।

क्यों ? आखिर क्यों ?—देवराजको पन्तसे भूमिका (प्राक्कथन !) लिखवानेकी जरूरत क्यों पड़ी ? देवराजकी सजगताने नयी कविताके पाठकको शमशेर, त्रिलोचन, अज्ञेय, कुँवर नारायण, अनाम, भारती, साही, शिवचन्द्र शर्मा (लिखादलमोतवादी)—सबसे अलग एक भाषा दी; एक हद तक शिल्प दिया, लेकिन कविता दी या नहीं, यह प्रश्न अभी भी रह जाता है।

पढ़ना और उसे समझना एक चीज नहीं है। समझना और उसे अनुभव करना भी एक चीज़ नहीं है। अनुभव करना और उसे व्यक्त करना भी एक चीज़ नहीं है। व्यक्त करना और मौलिक हो पाना भी एक चीज़ नहीं है। इस तरह व्यक्त करना कि अनुभव अद्वितीय होकर वैसा ही अद्वितीय लगने लगे, अनुभवके सच्चेपन, व्यक्त करने और मौलिक होनेका प्रमाण है।

'टपकफटे पके-गिरे फलों-से' शब्दोंसे देवराजका अच्छा परिचय है, सन्देह नहीं। वे इतना प्रयत्न भी करते हैं कि कहीं प्रयत्न नहीं लगता, सब-कुछ सहज लगता है। लेकिन अनुभूतिको तराशे हुए शब्द जैसे छील देते हैं। 'ध्यानधजा' कहीं और है और 'रुक्म रागसूरजकी किरनकूचियाँ' भावपटल रँगतीं ही नहीं। कितने सन्दर्भ, कितने चित्र, कितने अनुभव, हथेलीपर गोया कि रखा हुआ इतिहास-चक्र, किन्तु "कैसी यह सूक्ष्म-जटिल बुद्धिकी बिडम्बना है। भाग्यकी उलटबाँसी," यह भी कि देवराज प्रतिभाप्रगल्भ भी नहीं हो पाते कि बासीपन उनसे पलायन कर जाये। 'तथ्यबँधे' इतने हैं कि चुने हुए शब्दोंसे वह व्यंजना उद्भूत नहीं कर पाते, जो शब्दको आधुनिक अर्थ-तरंगों तक ले जाये। इसीलिए उनकी लम्बी कविताओंका अन्त होता नहीं दिखाई देता, 'इतिहास-पुरुष' को जितना बढ़ाइए, बढ़ता चला जायेगा।

एक ओर रूमानी शब्दोंके प्रति मोह है, तो दूसरी ओर विचारोंके शब्द सहजतया आ जाते हैं और तीसरी ओर नयेपनका दमामा पीटा जा रहा है। इससे व्यंग और व्यंग्य दोनोंका निर्वेद—ऋणात्मक अर्थमें—हो जाता है। मात्र बचता है 'यत्नरचे काव्य' पर अहं। सारी कविताएँ 'मुँहचिकनी' होकर रह जाती हैं; उनकी निजता 'दृगदुलरी तारिका-सी' कहीं खो जाती है। 'डाह-भरी

चुप्पी' खुल नहीं पाती, 'फूलक्षण' खिल नहीं पाते। 'कालहवा' न बहती है, न चलती है। यानी 'बिजलीकी भूमिकाएँ'—सारीकी सारी उभरती हैं, बिजली नहीं दिखाई देती।

कुछेक छोटी कविताओंमें बिजलीकी आभा मिलती है, लेकिन उतनेसे 'बड़े इत्मीनानसे' 'चित्तोंको भरमाना' सम्भव नहीं है। छन्दोंके प्रयोगसे या छन्दोभंगसे कविताके शिल्पपर प्रभाव पड़ सकता है; वैसा हुआ भी है; कथ्यपर भी पड़ता है, पर कथ्य तो दबता-मरता चला गया है।

इस संग्रहसे यह भी ज्ञात और स्पष्ट हो जाता है कि केवल बनाया हुआ काव्यशास्त्र, केवल सजगता, केवल इतिहास-बोध, केवल शब्द-प्रयोग सर्वथा व्यर्थ है, जबतक तीव्र तनावका अनुभव नहीं है। तनावका ही बूढ़ी सदियों-द्वारा दिया हुआ नाम है प्रतिभा। इस प्रतिभासे देवराज संस्कृतिके विश्लेषक हो जाते हैं; प्रमुख विचारक हो जाते हैं। लेकिन हर प्रतिभा हर काम नहीं कर सकती। क्योंकि हर प्रतिभा बहुमुखी नहीं होती या तनावको अनेक स्रोत नहीं दे सकती। या एक ओर यदि सार्थक या समर्थ हुई, तो दूसरी ओर निरर्थक या असमर्थ हो जायेगी। यह अवश्य है कि चिन्तक या दार्शनिकको अन्तिम तत्त्वका साक्षात् तक हो सकता है; लेकिन उसका सम्प्रेषित रूप तद्वत या तदनुरूप नहीं हो पाता। 'इतिहास-पुरुष' इसीलिए न तद्वत है, न तदनुरूप, वह असफल भी नहीं है क्योंकि असफलताका भी मूल्य होता है।

है। इसलिए है।

यह अनुमान सत्य है; सत्य हो सकता है। किन्तु हर परिस्थितिमें सही नहीं है; सही नहीं हो सकता—देवराज या देवराज-जैसे अन्य कविंमन्योंसे सच्चे कवि फ़ायदा उठा सकते हैं। उनके विश्लेषणक्षम होनेसे तथा उनके इस तथाकथित कवि-रूपसे एक सीमा तक लाभान्वित भी हुआ जा सकता है। 'लोकायतन' जैसे वज़नी बनाये गये मोटे काव्यकी तुलनामें 'इतिहास-पुरुष' निश्चय ही अभि-प्रशंसनीय है। नये सामर्थ्यके लिए 'लोकायतन' एक किंकाव्य है। लेकिन 'इतिहास-पुरुष' में नये सामर्थ्यके लिए पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं।

है। इसलिए नहीं है।

यह अनुमान सत्य है; सत्य हो सकता है। किन्तु हर स्थितिमें सही नहीं है, सही नहीं हो सकता।

देवराज प्रतिभासम्पन्न हैं। पर उनकी प्रतिभा संश्लेषणक्षम नहीं है, जो कविताकी प्राय: एक शर्त है। यदि कविताको विश्लेषण-संयुक्त कर भी दें, तो देवराज, लगता है, उसके पर काट दे सकते हैं, जीवन्त नहीं रहने दे सकते। उनकी अतिरिक्त चेतना कविताको मरोड़ देगी। चाहे देवराज समीक्षाके लिए नये सामर्थ्यकी आलोचना करें, पर वे नये सामर्थ्यपर सही ढंगसे सोचेंगे, तो वे स्वयं मोह-मुक्त होकर नया सामर्थ्य पा सकेंगे। इस आशासे इतनी ही भूमिका पर्याप्त है; बिजली तो उनके भीतर भी है।

— श्रीराम वर्मा

• महाश्रमण सुनें : उनकी परम्पराएँ सुनें

कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु'

प्रस्तुत पुस्तकमें भगवान् तथागतके जीवनको गोपा और राहुलके परिप्रेक्ष्यमें एक औपन्यासिक अन्विति देनेका धारावाहिक प्रयत्न है तथागतके जीवनकी पार्श्वछवियाँ तो 'प्रसाद'-जैसे महान् नाट्यशिल्पीकी कलाका संस्पर्श और मैथिली-शरण गुप्तकी कलाका 'यशोधरा' के परिवेशमें पारिवारिक उन्मेष पा चुकी हैं लेकिन तथागतके जीवन-समग्रकी उनके परिवेश-समग्रमें साहित्यिक सम्भावनाओं-को प्रकट करनेके लिए सिद्धार्थके सम्यक् सम्बुद्धत्व प्राप्ति तककी निरन्तर आरो-हणशील जीवन-कथाकी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक रंग-रेखाओंको शायद ही किसी कृतिमें प्रकट किया गया हो। निश्चय ही गोपा, प्रजापती, शुद्धोदन, राहुल, अम्बपाली आदि इस जीवन-कथाके कुछ साहित्यिक सम्भावनापूर्ण प्रकर्ष-बिन्दु हैं और प्रस्तुत उपन्यासकारने समानान्तर आयामोंकी प्रतिष्ठा करके इन प्रकर्ष-बिन्दुओंकी साहि-त्यिक सम्भावनाशीलताको और भी उजागर करनेका श्लाघ्य प्रयत्न किया है। प्रश्न है कि समानान्तर आयाम है क्या ? राहुल-कथा (वैसे मैं इसे बुद्धकथा कहनेमें भी कोई आपत्ति नहीं देखता) में औपन्यासिक रसात्मकता पैदा करनेके लिए उसमें शिल्पी अहिरथ और रंगोंकी निपुण चित्रकर्त्री सुनन्दाकी कल्पना की है। अहिरथ युवा-आचार्य है और सुनन्दा युवती चित्रकर्त्री। उपन्यासके आधे भागतक बुद्ध और गोपाकी एकतान कथा चलती है जिसमें सुनन्दाके अहिरथको प्रेमल दृष्टिसे देखनेके अनेक प्रमाण मिलते हैं। उपन्यासकार निरन्तर ऐसे तर्कों और अवसरोंका सहज संयोजन करता चलता है जिसमें सुनन्दाके मुखसे इस

प्रकारके प्रश्न भी सम्भव होते हैं—"स्त्री यदि भवकी आसक्ति उपजाती है तो पुरुष क्यों नहीं ? आप स्वयं पुरुष हैं आचार्य, आप ही उत्तर दें। स्त्रीकी दृष्टिसे सोचूँ तो क्या सिद्धार्थ गोपाके बन्धन न थे। क्या स्वयं आचार्य अहिरथ किसी सुनन्दाके बन्धन नहीं बन सकते।" वक्ता और श्रोताके प्रेमके इस पृथक्-पृथक् अन्त:विकसित किन्तु परस्पर एकसूत्रित तारका अन्त:स्पन्दन इस उपन्यासका प्रतीयमान सूक्ष्म आकर्षण बना रहता है। इस समानान्तर आयामसे देखें तो मौन बनी रहकर ही गौतमके परित्यागके सारे उत्पीड़नको अकेले ही झेलनेवाली गोपाको सुनन्दा ओजस्वी वाणी देती और इतनेमें वह गोपाका आधुनिक संस्करण भी प्रतीत होती है। दूसरी ओर अहिरथ गौतम बुद्ध, राहुल और गोपा तीनोंकी वेदनाओंको जीता हुआ अपनी संवेदनाओंका सारा रस घोलकर गौतम गोपा और राहुलकी कथा सुनाता है। वह इस अर्थमें कथाके नव मूल्यांकनका नवीन पृष्ठाधार उपस्थित करता है। वह सुनन्दाके प्रश्नोंकी सचाईको भी अनुभव करता है और राहुलके अन्तर्मन्थनके बहाने बौद्ध धर्मकी विसंगतियोंको भी उभारता हुआ उन्हें अनिर्णीत और समाधानरहित छोड़ देता है। इस प्रकार अहिरथ मैं आधुनिक मनके संशयको प्रतिफलित करता है। इसे 'भिक्खु' की सामर्थ्य ही मानना चाहिए कि उन्होंने बहुकथित प्राचीन कथाका अनुकथन मात्र न करके उसे नये अर्थोंकी सम्भावनासे समन्वित करते हुए उसका पुनर्कथन किया है। मैं इसे कथाकारकी शक्ति मानता हूँ।

राहुल इस कथाका मानस-पक्ष है। राहुल और सुनन्दासे मिलकर बौद्धधर्मकी सभी विसंगतियोंसे अन्तर्मथित होते हैं। अपनी सारी वैज्ञानिकता और उदात्त नैतिकताके रहते हुए भी अपनी कठोरतामें बौद्धधर्म जीवनके सहज धर्मोंके कितने विपरीत चला गया था—इसको इन पाँचोंके अनुत्तरित प्रश्न प्रत्यक्ष करते हैं। अहिरथ जिस चित्रको बनानेके लिए सुनन्दासे कहता है वह सम्यक् सम्बुद्धकी शासनोचित मुद्रा नहीं है बल्कि वह बहुत भिन्न वेदना और उत्पीड़नको व्यक्त करनेवाली अनोक्त मुद्रा है।

इस प्रश्न-संकुल राहुल-कथामें राहुल ही दबा रह गया है यह मेरी विनम्र प्रतिक्रिया है। हो सकता है कि राहुलके ऐतिहासिक स्वरूपका अंकुश उसपर रहा हो। उपन्यासकी भाषा प्राचीन इतिहासके अनुरूप ही संस्कृत-विशिष्ट है लेकिन उसमें नवीन सांकेतिक कथन शैली और नये संस्कारोंवाले शब्दशिल्पका

पूरा निखार भी है। कहीं-कहीं तो भाषा असाधारण रूपसे प्रकर्ष प्राप्त है। अनावश्यक कथा-भागको छोड़ दिया गया है और इस 'गैप' को सुनन्दा और अहिरथका सार्थक प्रश्नोत्तर भरकर उसे एक नवीन अभिप्राय और एक नवीन कथात्मक मोड़ देनेमें सफल होता है।

— जितेन्द्रनाथ पाठक

• 'महँके आँगन चहके द्वार'

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

जैसा मांगलिक नाम वैसी ही मांगलिक पुस्तककी विषय-वस्तु भी है। 'गृह-कारज' को हमारे यहाँ 'जंजाला' कहा गया और इसपर लोग लेखनी उठाते संकोच करते हैं। यहाँ लेखनीके धनी निष्णात चिन्तक 'प्रभाकर' जीने इस अछूते क्षेत्रको इस कुशलतासे स्पर्श किया है कि पुस्तक मनोरंजक अधिक है अथवा उपयोगी अधिक है, कहा नहीं जा सकता।

कुल बत्तीस निबन्ध किन्तु उनमें कहीं टूट नहीं है। सब परिवारिक जीवनके विविध पार्श्वोंको छूते हुए चलते हैं। शीर्षक ही बोलते हैं कि पुस्तकमें क्या है? 'घरपरिवार एक नज़रमें', 'सुहागरात', 'रूठो और नखरे करो', 'पतिका नाम कैसे लें' 'झाड़ू स्वयं लगाइए' और इसीमें कुछ और विशेष व्याख्याएँ—जैसे—बारात क्या है = 'इन्सानके भेड़िया होनेकी पुरानी याद।' विवाह क्या है = 'ऐसी पुस्तक जिसका पहला अध्याय कवितामें लिखा गया और शेष भाग गद्यमें।' यहाँ गद्य भाग तलाक, मनोमालिन्य, अनाकर्षण और रगड़े-झगड़ेका प्रतीक है। लेखक यहाँ पुस्तकको जब 'सुखी दाम्पत्य जीवनकी कुंजी' कहता है तो इसमें लेशमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं मिलती। इतना अवश्य है कि जिस वर्गके दाम्पत्य जीवन-को इसमें विवेचित किया गया है वह सामान्य जनवर्ग नहीं विशेष वर्ग है।

चित्रकारकी सज्जा, कथाकारकी चटुल शैली, नाटककारके समाजसुधारका चिन्तन, कविकी भावुकता, पत्रकारकी सम-सामयिकता और कुशल वक्ताकी जादूगरी सब मिलकर 'प्रभाकर'जीकी शैलीका मोहक रूप प्रस्तुत करती हैं। भाषाकी कसावट और सूत्र शैलीका अपना अलग रंग है। निष्कर्ष वाक्यकी छटा छिटकती है तो 'सुहागरात' पर लेखक यों कहता है—'दाम्पत्यका यह शिलान्यास है····जीवनका प्रवेश पर्व है····भावी जीवनके लिए शक्ति संचयका

केन्द्र है....जीवनका एग्रीमेण्ट है....प्यारका पर्व है....जीवनकी अदालतमें प्यारका क़ानून है....।'

लगता है जैसे लेखकका मस्तिष्क संसार-भरके विचारों, मूल्यवान् बातों और अनुभवोंकी मूल्यवान् मणियोंका बृहत् सागर है ।, पुरलुत्फ लतीफे, चुटीले व्यंग्य, एक विकट ज़िन्दादिलीके बीच घर-गृहस्थीकी उभरती समस्याएँ, गृहस्थ-साहित्य, घरेलू साहित्य, चौके चूल्हेसे लेकर शयनकक्ष तकका साहित्य, बोलता साहित्य, पाविारिक बतरससे शराबोर, सास-बहू, नौकर-मालिक, पति-पत्नी, अतिथि, मितव्यय, वे समस्याएँ जो रात-दिन सामने हैं और जिन्हें देखकर भी हम नहीं देखते हैं और जब 'प्रभाकर'जीकी जादूगर लेखनीसे उनके चित्र उभरते हैं तो वे कितना कौतूहल बढ़ाते हैं । विचित्र दृष्टि, अद्भुत सृष्टि ! —विवेकी राय

● ●

नयी कृतियाँ
ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित

जो भारतीय साहित्य-जगत्में अनूठी और
अपूर्व हैं, और इसीलिए यह अपेक्षा
भी कि आप इनसे परिचित हों।

• प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी : रूपान्तर एवं संकलनकर्त्ता : दिनकर सोनवलकर

हिन्दीकी एक सहोदरी भाषाके आधुनिक काव्यका इस प्रकारसे हिन्दीमें प्रस्तुतीकरण कदाचित् यह पहला प्रयास है, – जो समकालीन मराठी कविता (१९४०-१९६२) की विविध प्रवृत्तियोंको रेखांकित करता है और प्रतिनिधि रचनाकारोंके कृतित्वकी झाँकी, एक बानगी, हिन्दी पाठकोंके सामने उपस्थित करता है। सब १८ समकालीन मराठी कवियोंकी चुनी-चुनी ९० कविताओंका हिन्दी रूपान्तर यहाँ प्रस्तुत है। साथमें डॉ० प्रभाकर माचवेकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका भी।

मूल्य : ४.००

• प्रतिनिधि संकलन : एकांकी : संकलनकर्त्ता : अनिलकुमार

नौ एकांकियोंका यह संकलन है – नौ भारतीय भाषाओंका एक-एक एकांकी। इन नौमें-से हर एक भाषामें कई प्रमुख एकांकीकार हैं और कई-कई उनकी सुन्दर एकांकी रचनाएँ सामने आयी हैं। यहाँ चुनी हुई केवल नौ प्रस्तुत की गयी हैं। इस दृष्टिसे प्रस्तुत कृतिको कहें – नौ भारतीय भाषाओंके नौ प्रतिनिधि एकांकियोंका संकलन। ये सभी एकांकी पठनीय तो हैं ही, सफल और प्रभावपूर्ण रूपसे अभिनेय भी हैं। दूसरे वर्ष ही दूसरा संस्करण।

मूल्य : ४.००

● देशान्तर : रूपान्तर एवं संकलनकर्त्ता : डॉ० धर्मवीर भारती

'देशान्तर' — अर्थात् इक्कीस पाश्चात्य देशोंकी एक सौ इकसठ कविताओंकी हिन्दी छायाएँ। मूल कविताएँ उन कवियोंकी हैं जो विश्वमें 'आधुनिक काव्य-बोध' के निर्माता कहे जायेंगे और साथ ही जो अपनी-अपनी भाषाके सर्वश्रेष्ठ कवि गिने-माने जाते हैं। बड़ी बात यह कि यहाँ उन कवियोंकी प्रतिनिधि कविताएँ प्रस्तुत हैं। हिन्दीमें अपने प्रकारकी सर्वप्रथम प्रामाणिक कृति — अब नये दूसरे संस्करणमें।

मूल्य : १२.००

● चाँदका मुँह टेढ़ा है : गजानन माधव मुक्तिबोध

स्व० मुक्तिबोधकी कविताओंका यह प्रथम और एकमात्र संग्रह हिन्दी काव्य-की नयी प्रखरता, क्षमता और युग-बोधकी सचेष्टताका ही प्रयोग नहीं, नयी उपलब्धियोंका भी मानक है। ये कविताएँ इसलिए भी हैं कि इन सशक्त शब्द-रेखाओंमें आयी अपनी छविके यथार्थसे सारा समाज परिचित हो और उस यथार्थ-की पीड़ाके साथ उसके संकल्प-स्वरको भी ग्रहण करे। नया द्वितीय संस्करण।

मूल्य : ८.००

● क्षण बोले कण मुसकाये : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

'प्रभाकर' जीकी यह पुस्तक उन उदात्त भावनाओं और अनुभवोंकी संश्लिष्ट छवि प्रस्तुत करती है जिसकी एक-एक रेखामें जीवन्त व्यक्ति और स्पन्दित राष्ट्र-की अनेकों प्रतिच्छवियाँ झिलमिला रही हैं। और विधा? — साहित्यके विकास-क्रममें नितान्त निजी और अलबेली! सम्भव न होगा कि पढ़ना प्रारम्भ करनेपर पुस्तक बीचमें ही छूट जाये। नया द्वितीय संस्करण।

मूल्य : ४.००

● पीले गुलाबकी आत्मा : विश्वम्भर 'मानव'

डायरी-जैसे फॉर्ममें लिखा हुआ हिन्दीमें अपने प्रकारका मौलिक सर्वप्रथम उपन्यास। इसमें एक बड़ी मीठी, भावनापूर्ण और पीड़ा-भरी सात्विक प्रेम-कथा-रूपायित हुई है। पर बड़ी विशेषता यह है कि कथानायक इस लोकका जाना-चीन्हा व्यक्ति है और कथा-नायिका परलोककी एक आत्मा: लेखकका दावा है कि कथा सर्वथा सत्य है। सर्वथा पठनीय उपन्यास अब नये दूसरे संस्करणमें प्रस्तुत है।

मूल्य : ४.००

• परिणय गीतिका : सम्पादन — रमा जैन, कुन्था जैन

भारतीय वाङ्मयमें अपने प्रकारकी सर्वप्रथम कृति। विवाहके विभिन्न अवसरोंपर गाये जानेवाले गीतोंका संकलन, पर गीत प्रचलित गीतोंमें-से नहीं, विशेष। इनमें लोक-गीतोंकी मधुर मादकता भी है और काव्य-रस तथा साहित्यिक सुषमा भी। परम्पराएँ और भावनाएँ इनमें सुरक्षित हैं। संकलनमें विवाह सम्बन्धी रस्मोंकी संक्षिप्त जानकारी भी दी गयी है, और प्रत्येक गीतकी सरल-सुबोध स्वरलिपि भी। एक नयनाभिराम भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन : विवाहके अवसरपर भेंट देनेके लिए सर्वथा उपयुक्त। **मूल्य : ५.००**

• मेज़पर टिकी हुई कुहनियाँ : रमेश बक्षी

युग-प्राणोंके कम्पनको सहेजकर नवीनतम पृष्ठभूमिपर कथनको नया अन्दाज़ देती रमेश बक्षीकी ये कहानियाँ कभी तो चित्रकलाके सभी सहज सिद्धान्तोंको उरेहती हैं और कभी मनकी बेहद गहरेसे ध्वनित स्वर-सज्जाको उघारती हैं। इन कहानियोंको पढ़ते समय लग सकता है कि ये कहानियाँ नहीं हैं और यह भी कि ये ही तो कहानियाँ हैं। **मूल्य ३.५०**

• मयणपराजय चरिउ : मूल — कवि हरिदेव, सं०-अनु० — डॉ० हीरालाल जैन

मदनपराजयकी उपर्युक्त कथावस्तुको अपभ्रंशमें निबद्ध करनेवाला एक विशिष्ट काव्य। हिन्दी-अँगरेजी प्रस्तावना, हिन्दी अनुवाद तथा परिशिष्ट आदि सहित। पृष्ठ संख्या सुपर रॉयल ८८ + ९०। **मूल्य : ८.००**

• जीवन्धरचम्पू : मूल — महाकवि हरिचन्द्र, सं०-अनु० — पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

सरल गद्य और पद्यमें निबद्ध वह जनप्रिय कथा जिसने मध्ययुगके अनेक साहित्यकारोंको संस्कृत, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड़, गुजराती, मराठी आदि अनेक भाषाओंमें कथा कहनेके लिए प्रेरित किया। पृष्ठ संख्या सुपर रॉयल ३९८। **मूल्य : ८.००**

• •

: साहित्य-संगम :

समग्र केरलमें श्री 'जी०' का भव्य अभिनन्दन

भारतीय ज्ञानपीठकी व्यापक सराहना

श्री रवि वर्मा-द्वारा प्रस्तुत
समाचार-टिप्पणी

ज्ञानपीठ पुरस्कार-विजेता महाकवि श्री जी० शंकर कुरुपको केरलके सभी समाचारपत्रोंने (जिनकी संख्या ४० है) सम्पादकीय टिप्पणियों-द्वारा बधाइयां दीं तथा जगह-जगहपर सभाएँ हुईं ।

वैसे तो पुरस्कृत पुस्तक 'ओटक्कुष़ल' की कविताओंसे यहांके लोग परिचित हैं फिर भी अब नये सिरेसे उनका अध्ययन होने लगा है । महाकविकी रचनाओं-पर चर्चा करनेके लिए जगह-जगह गोष्ठियाँ की जा रही हैं । केरल-भरकी पंचायतें तथा नगर-समितियाँ महाकविका अभिनन्दन कर रही हैं । केरलमें सुसंगठित पुस्तकालय संघ है जिसके अधीन तीन हज़ार पुस्तकालय और वाचनालय हैं । सभीने महाकविके प्रति सम्मान गोष्ठियाँ आयोजित कीं । ३० दिसम्बरको एरणाकुलम्में तिलकम्-प्रकाशनकी तरफ़से आयोजित सभामें अखिल भारत लेखक सम्मेलनके लिए आये हुए देश-विदेशके साहित्यकारोंने भाग लिया और अपनी-अपनी मातृभाषामें श्री जी० को बधाइयाँ दी । कुछ कवियोंने जी० की कविताओंके तेलुगु और कन्नड़ अनुवाद भी सुनाये ।

सभामें बोलते हुए श्री स० ही० वात्स्यायनने कहा कि ज्ञानपीठने महाकवि 'जी०' को सम्मानित कर सृजनात्मक साहित्यको ही पुरस्कृत किया है । भारत-भरकी भाषाओंको सबसे पहले रंगमंचपर लानेका जो प्रयत्न ज्ञानपीठने किया, वह स्तुत्य है ।

रूसी कवि श्री माइकल लुकोनिनने कहा कि हम एक ऐसे कविकी सफलतापर खुशी मना रहे हैं जिसने जीवन-भर परिस्थितियोंसे संघर्ष किया।

डॉ० प्रभाकर माचवेने कहा कि श्री कुरुपकी कवितामें उनका व्यक्तित्व स्पष्ट रूपसे प्रतिपादित है।

तेलुगु कवि व गायक श्री रजनी वल्लभ रावने 'जी०' की कविताका तेलुगु अनुवाद सुनाया और पंचाक्षरीने कन्नड़ अनुवाद। श्री सी० एस० चेल्लप्पाने तमिलमें कविको बधाई दी। श्री महेन्द्र वरा (असमिया) श्री डी० आंजनेयुलु (तेलुगु), मिस० एस० लिण्डा (अमरीकी), श्री हैदरअली खाँ (उर्दू), श्री पी० एल० रेगे (मराठी) आदिने भी कविका अभिनन्दन किया और भारतीय ज्ञानपीठकी सराहना की।

३१ दिसम्बरको सोलहवीं सदीके केरलके महान् कवि तुंयत्तु ए पुत्तच्छनकी जन्मजयन्तीके अवसरपर केरलके प्रमुख सम्पादक श्री के० पी० के० रावमेनोनने ज्ञानपीठकी पुरस्कार-प्राप्तिपर महाकवि 'जी०' का हार्दिक अभिनन्दन किया।

उसी दिन कालीकट नगरने भी एक प्रस्ताव-द्वारा 'जी०' को बधाई दी। कोट्टयम्, एरणाकुलम्, वटकरा, त्रिशूर आदि नगरपालिकाओंने भी महाकविको बधाइयाँ दीं।

केरलके सुप्रसिद्ध कहानीकार, केरल साहित्यकार सहकारी समितिके मन्त्री और पाँचवें भारतीय साहित्यकार सम्मेलनके मन्त्री श्री कारूर नीलकण्ठ पिल्लेने उस विवादकी ओर ध्यान दिलाया जो ज्ञानपीठ पुरस्कारके सम्बन्धमें केरल साहित्य अकादेमीको लेकर केरलकी पत्र-पत्रिकाओंमें उठ खड़ा हुआ था।

केरल साहित्य अकादेमीके अध्यक्ष श्री पी० रामन मेनोनने कहा : "हर विघ्न और बाधाको लाँघकर जिसको ऊँचा उठना है वह उठेगा ही, जिसमें ऊँचे आसनपर बैठनेकी योग्यता है वह बैठेगा ही। क्योंकि सारे संसारको जो शक्ति नियन्त्रित करती है वह सब तरहके तंग खयालोंसे ऊपर है। आज मलयालम् साहित्यके जीवित साहित्यकारोंमें सब दृष्टिसे श्रेष्ठतम साहित्यकार श्री कुरुप हैं। पुरस्कृत पुस्तक 'ओटक्कुषल' (बाँसुरी) सार्थक है। हम केरलके लोग आज आनन्द-पुलकित हैं।"

केरलकी कवियित्री श्रीमती बालमणि अम्माने भी महाकविको मिले सम्मानकी प्रशंसा की।

केरलके जनप्रिय दैनिक 'मातृभूमि' (जिसकी दो लाख प्रतियाँ बिकती हैं) ने ३१ दिसम्बरको सम्पादकीयमें लिखा : सन् १९२० से लेकर '५८ तक भारतकी विविध भाषाओंमें रचित सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक कृतिके लिए भारतीय ज्ञानपीठने जिस पुरस्कारकी घोषणा की थी वह महाकवि जी० शंकर कुरुपको मिला। इसपर केरल आज गर्वित हो उठा है। ज्ञानपीठकी निर्णायक समितिने 'ओटक्कुष्ल' की गीत-माधुरीकी मुक्त कण्ठसे सराहना की। उनकी रचनाके रसास्वादनमें सहायता पहुँचाने वाले अनुवादकोंको भी हम बधाई देते हैं।

"उक्कूर, वल्लत्तोल, आशान सरीखे महाकवियोंके जमानेमें ही श्री कुरुप अपनी असाधारण प्रतिभाका परिचय देने लगे थे। राष्ट्रीय नवोत्थान और सामाजिक परिवर्तनोंका वह जमाना था। इन परिस्थितियोंसे प्रभावित हो जोशीले गीत गानेवाले महाकवि वल्लत्तोलने श्री कुरुपको आकृष्ट अवश्य किया था, मगर उक्कूरका उल्लेख-कौतुक और आशानका भाव-गाम्भीर्य भी उन्हें प्रिय थे। मगर उनकी रचनाओंमें आरम्भसे ही उनके निजी व्यक्तित्वकी छाप सुस्पष्ट थी। महाकवि 'जी०' की रचनाएँ प्राकृतिक दृश्योंमें घुले-मिले अनन्त सौन्दर्यको आत्मसात् कर उनके प्रतीकोंसे आत्माविष्कार करनेवाली होती हैं। स्वतन्त्रता संग्राम और सामाजिक क्रान्तिने उनकी कवि-चेतनाको समय-समयपर झटका देकर जगाया है ज़रूर, मगर इनके वास्तविक व्यक्तित्वका दर्शन तो उन कविताओंमें मिलता है जिनमें विश्वव्यापी भाव-बोधको प्रकृति-सौन्दर्यके प्रतीकोंके रूपमें प्रस्तुत किया गया है।

" 'जी०' की नित नवीन प्रतिभा घटगत मणि-प्रदीपकी भाँति सह्यपर्वत और पश्चिमी सागरके बीच छिपी-सी पड़ी थी। ज्ञानपीठके पुरस्कारने उस प्रकाशको चारों ओर फैलानेका सुअवसर प्रदान किया है। महाकवि इस तरहके सम्मानके पात्र हैं। उनका अभिनन्दन करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। मलयालम साहित्यको गर्वावसर प्रदान करनेवाली कवि-प्रतिभाको हम आदरांजलियाँ अर्पित करते हैं।"

साहित्यकार सहकारी समिति केरलके मुखपत्रने जनवरी १९६६ के सम्पादकीयके माध्यमसे भारतीय ज्ञानपीठके एक लाख रुपयेकी पुरस्कार घोषणापर महाकवि जी० शंकर कुरुपका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए कहा कि "१९२० से १९५८ तक भारतीय भाषाओंमें रचित सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक कृतिके जीवित

लेखकको ज्ञानपीठसे दिये जानेवाला पुरस्कार 'जी०' को मिला। आगामी वर्षोंमें भी ज्ञानपीठका पुरस्कार जारी रहेगा। मगर यह पहली बार दिया जानेवाला पुरस्कार अपना महत्व रखता है। अन्य कई क्षेत्रोंमें केरलकी उपेक्षा की जा रही है, उसे पीछे ढकेला जा रहा है। ऐसी ही परिस्थितमें आज केरल साहित्यके क्षेत्रमें पहली पंक्तिमें प्रतिष्ठित हो गया है। भारतके सम्पूर्ण सांस्कृतिक प्रेमियोंकी आँखें बलात् आज केरलकी ओर मुड़ गयी हैं। गर्वके लिए ऐसा अपूर्व अवसर केरलको कभी नहीं मिला। क़रीब अर्द्ध शताब्दीसे श्री 'जी०' केरली (मलयालम) की सेवामें लगे हैं। उनकी साहित्यिक सेवाको आज सारे भारतने मान्यता प्रदान की है। वे पिछले आठ-दस सालोंमें शायद सबसे अधिक चर्चित कवि हैं। हम इस अवसरपर भारतीय ज्ञानपीठको बधाइयाँ देना आवश्यक समझते हैं जिन्होंने साहित्यके लिए इतने बड़े पुरस्कारकी योजना बनायी। अबतक साहित्यको मिलनेवाला सबसे बड़ा पुरस्कार पाँच हज़ार रुपया (केन्द्रीय साहित्य अकादेमीका) था। मलयालमकी सबसे श्रेष्ठ रचनाके लिए केरल साहित्य अकादेमीकी तरफ़से दी जानेवाली रकम सिर्फ़ पाँच सौ रुपये थी।''

'ग्रन्थालोकम' मासिकने अपने सम्पादकीयमें यों लिखा है: ''भारतीय ज्ञानपीठका एक लाख रुपयेका प्रथम पुरस्कार लेखककी ही तरह या लेखकसे भी अधिक हम मलयालम भाषा-भाषियोंके लिए गर्वकी बात है। चुनाव एक पीढ़ीसे लम्बी अवधिमें लिखी गयी पुस्तकोंमें-से हुआ था। ऐसे चुनावमें अगर कोई लेखक पुरस्कार पाने लायक़ घोषित हुआ तो यह लेखककी ही तरह लेखककी ही भाषा बोलनेवाली जनताके लिए भी गौरवकी बात है।''



अमरत्वका अर्थ अनन्त काल तक जीवित रहना नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो अनन्त काल तक मरते रहनेका दूसरा नाम है। अमरत्व तभी सार्थक है जब वह काल-निरपेक्ष हो—अर्थात् जब वह एक अनुभूति हो, एक मनोदशा हो, एक दृष्टि हो।

—आत्मनेपद : अज्ञेय

हमारा
मार्च अंक

ज्ञानोदय

अब नये स्तम्भ

* समय बोध * मुक्त चिन्तन * ताज़े सन्दर्भ
* साहित्य-भूमि * नई कला
* प्रश्नान्तक * तारीखें ....

विशेष शीर्षक

* संवाद - माईकेल एंजिलो : साये बढ़ रहे हैं ....
* मलयाली वंशी-सप्तक : शंकर कुरुपकी कविताएँ
* अन्तर्राष्ट्रीय राम झरोखा : नयी कला
* सोवियत कविके घर एक शाम : एक गोष्ठी
* घायल दिशाओंमें टूटे हुए आकाशकी तलाश.... : सन पैंसठकी कविता
* कैकेयीका आत्मनिवेदन : तीखा व्यंग

कहानियाँ : स्व० मुक्तिबोधकी लम्बी कहानी 'विपात्र'के साथ ही कर्तार सिंह दुग्गल, पानू खोलिया, हिमांशु जोशी तथा बटरोहीकी कहानियाँ।

कविताएँ : बच्चन, अंचल, रामदरश मिश्र, कैलाश वाजपेयी, रणजीत, निर्मल वर्मा, देवदत्त, नीलम सिंह, ऋतुराज, विनय दुबे।

अन्य स्तम्भोंके साथ ही : हरिभाऊ उपाध्याय, वीरेन्द्र अग्रवाल, कोलिन विल्सनकी रचनाएँ भी।

एक प्रति १.००, वार्षिक १०.००

सम्पादकीय कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
वितरण केन्द्र : भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमैन ऐण्ड कं० लि०, बम्बई–१

सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन : रमेश बक्षी

नेशनल बुक ट्रस्ट

एक ऐसी संस्थाका परिचय जो अपने
उद्देश्योंकी पूर्तिके प्रति सतत
सजग प्रयत्नशील है

सत्साहित्यका प्रकाशन और उसके लिए प्रोत्साहन देना तथा ऐसे साहित्य को सामान्य मूल्यपर जनता तक पहुँचाना—इसी मुख्य उद्देश्यको लेकर नेशनल बुक ट्रस्टकी स्थापना हुई। भारतकी विभिन्न भाषाओंमें कुछ चुनी हुई पुस्तकोंके प्रकाशनके अतिरिक्त पुस्तक प्रदर्शनियोंका आयोजन तथा पुस्तकोंके लेखन, अनुवाद, प्रकाशन और वितरणसे सम्बन्धित समस्याओंपर विचार करनेके लिए विचार-गोष्ठियोंका आयोजन भी ट्रस्टके कार्यकलापमें सम्मिलित है। संक्षेपमें, ट्रस्टका उद्देश्य देशमें ऐसा वातावरण तैयार करना है, जिसमें पुस्तकोंके प्रति सार्वजनिक रुचि जाग्रत और पल्लवित हो सके और अधिकसे अधिक लोग पुस्तकों-के पठन-पाठनमें प्रवृत्त हों।

ट्रस्टसे अबतक लगभग १२० पुस्तकें विभिन्न भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं। ट्रस्टके वर्तमान प्रकाशन-क्रममें निम्नलिखित पुस्तक-मालाएँ सम्मि-लित हैं—

१. भारत-भूमि और निवासी : इस मालाका उद्देश्य सामान्य शिक्षित व्यक्तिको, तथा जो विशेषज्ञ न हो, उसे देशके विभिन्न पहलुओं–भूगोल, कृषि, मानव-विज्ञान, भाषा, साहित्य, संस्कृति, आदि—का ज्ञान कराना है।

२. राष्ट्रीय जीवन-माला : इस मालामें लगभग सौ ग्रन्थोंमें देशके उन सभी महापुरुषोंकी जीवनियाँ प्रकाशित करनेकी योजना है, जो धर्म और दर्शन, इतिहास और समाज-सेवा, साहित्य-संगीत, कला तथा विज्ञान, आदि विभिन्न क्षेत्रोंमें समय-समयपर हुए।

३. लोकोपयोगी विज्ञान-माला : विज्ञानने जो विकास और असाधारण उन्नति इस युगमें की है, उससे जनसाधारणको अवगत कराना तथा आजके जीवन में विज्ञानका योग और महत्त्व दर्शाना इस मालाका प्रमुख लक्ष्य है।

४. विश्वके सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ : इसके द्वारा जनसाधारणको उन विश्व-विख्यात ग्रन्थोंके सरल अनुवाद भारतीय भाषाओंमें उपलब्ध कराये जायेंगे, जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रोंमें विश्व-चिन्तनमें महत्वपूर्ण योग दिया है।

५. सरल इतिहास-माला : इस मालामें जनसाधारणके लिए लगभग चार जिल्दोंमें भारतका राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे लिखा गया इतिहास तो होगा ही, साथ ही उन दूसरे देशोंका भी इतिहास होगा, जिनके सम्बन्धमें हमारे देशमें बहुत कम जानकारी है।

उपर्युक्त मालाओंके अन्तर्गत सभी पुस्तकें अपने-अपने विषयके विशेषज्ञों-द्वारा तैयार हो रही हैं। अतिरिक्त रूपसे इस बातका भी ध्यान रखा जा रहा है कि ट्रस्ट-द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंमें छपाई-सफ़ाईका एक न्यूनतम स्तर कायम रहे और इसके बावजूद उनकी क़ीमतें यथासम्भव कम रखी जायें।

नेशनल बुक ट्रस्टने अपने ढंगकी पहली अखिल भारतीय पुस्तक-प्रदर्शनी नयी दिल्लीके रवीन्द्र भवनमें दिसम्बर १९६४ में आयोजित की थी। बाद इसके देशके विभिन्न भागोंमें इसी प्रकारकी प्रादेशिक पुस्तक-प्रदर्शनियोंका आयोजन किया गया। इस वर्ष भी लखनऊमें २४ से २८ फ़रवरी, १९६६ तक अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघके सहयोगसे राष्ट्रीय हिन्दी पुस्तक-प्रदर्शनीका आयोजन ट्रस्टकी ओरसे किया जा रहा है। इस अवसरपर हिन्दी पुस्तकोंके लेखन, प्रकाशन और वितरणकी समस्याओंपर विचार करनेके लिए एक विचार-गोष्ठी भी बुलायी गयी है, जिसमें देशके सभी भागोंसे हिन्दीके लेखकों, प्रकाशकों, पुस्तकालयों तथा पुस्तक विक्रेताओंके प्रतिनिधि भाग लेंगे।

कहना अप्रासंगिक नहीं कि नेशनल बुक ट्रस्ट सत्साहित्यके प्रकाशन और प्रोत्साहन तथा उसे जनसाधारणको सामान्य मूल्यपर उपलब्ध करानेकी दिशामें प्रयत्नशील है। जो भी व्यक्ति और संस्थाएँ इस क्षेत्रमें कार्य कर रही हैं—लेखक, प्रकाशक, पुस्तकालय, पुस्तक-विक्रेता (सरकारी अथवा ग़ैर-सरकारी) ट्रस्ट उन सभीका सहायक और हितचिन्तक है।



इतिहासकी घाटियोंसे
हिन्दी पुस्तक-प्रदर्शनियाँ

नेशनल बुक ट्रस्टकी ओरसे आयोजित लखनऊमें
प्रथम राष्ट्रीय हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनीके अवसरपर

कृष्णचन्द्र बेरी

हमारे देशमें व्यवस्थित रूपसे हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनियोंके आयोजनोंका प्रारम्भ स्वतन्त्रताके बाद ही हुआ कहा जायेगा। स्वातन्त्र्य-पूर्व भारतमें हिन्दीकी जो पुस्तक प्रदर्शनियाँ लगीं वे या तो साहित्य सेवाकी भावनासे आयोजित की गयीं या फिर किसी विशेष अवसरपर किसी लेखक अथवा कविकी पुस्तकोंसे लोगोंको परिचित करानेके लिए पुस्तकोंका प्रदर्शन-मात्र किया गया। सामान्यतया प्रदर्शनियोंका आयोजन इसलिए किया जाता है कि प्रदर्शित वस्तुके प्रति जन-साधारणका ध्यान आकृष्ट हो, और आकर्षण तभी होता है जब उसमें बाह्य-सौन्दर्य हो। पुस्तकोंके विषयमें केवल बाह्य-सौन्दर्यकी बात ही लागू नहीं होती। इनमें जहाँ बहुत अच्छी चमक-दमकवाले गेटअपकी आवश्यकता होती है वहीं भीतरी अंशके सुमुद्रण और विषयमें रुचि होनेसे भी दर्शक आकर्षित होता है।

स्वतन्त्रता पूर्वके हिन्दी साहित्यका प्रकाशन स्तर स्वातन्त्र्योत्तर प्रकाशित हिन्दी साहित्यकी तुलनामें बहुत ही निम्न स्तरका था। उन दिनों न अधिक प्रकाशक थे और न सर्वसाधारणके माध्यमसे पुस्तकोंका प्रचार करनेकी प्रथा ही थी। यही कारण था कि १९४७ के पूर्व हिन्दी पुस्तकोंकी प्रदर्शनियाँ नहींके बराबर हुईं।

संवत् १८९० में गोस्वामी तुलसीदासजीकी ३००वीं जन्मशती नागरी प्रचारिणी सभा, काशीने आयोजित की। उस अवसरपर एक पुस्तक प्रदर्शनीका आयोजन किया गया और दो रुपये मूल्यकी तुलसी ग्रन्थावली भी प्रकाशित की

गयी। १९१० में इलाहाबादमें एक बहुत बड़ी पुस्तक प्रदर्शनी लगी थी जिसमें अँगरेजीके साथ-साथ हिन्दीकी पुस्तकें भी प्रदर्शित की गयी थीं। हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें भी (१९१० ई०) पं० मदनमोहन मालवीयके सभापतित्वमें आयोजित प्रथम अधिवेशनके अवसरपर पुस्तक प्रदर्शनी लगानेकी चर्चा चली थी, और वह विचार कार्यान्वित हुआ सम्मेलनके भागलपुरमें ६ दिसम्बर १९१३ को अनुष्ठित चतुर्थ अधिवेशन में। और अधिवेशनके सभापति लाला मुन्शीरामने प्रदर्शनीका उद्घाटन किया था। इसके बाद सम्मेलनके नवम्बर १९१६ में जबलपुरमें आयोजित सातवें अधिवेशन और २९ मार्च १९१८ में आयोजित इन्दौरके आठवें अधिवेशनमें भी पुस्तक प्रदर्शनियाँ लगीं। इन्दौर प्रदर्शनीका उद्घाटन राष्ट्रपिता महात्मा गान्धीने किया था। इस अवसरपर करवीर मठके जगत्गुरु शंकराचार्य तथा माता कस्तूरबा भी उपस्थित थीं। प्रदर्शनी विभागके अध्यक्ष डॉ० सम्पूर्णानन्दजी थे। इन्दौरकी प्रदर्शनी नगरके सुन्दर भवन 'एडवर्ड हॉल'में की गयी थी, और उसकी सजावटके विषयमें इन्दौरके 'मल्लारिमार्तण्डविजय' ने अपने ३० मार्चके अंकमे लिखा था—"यह प्रदर्शनी एडवर्ड हॉलमें है। इसमें भिन्न-भिन्न प्रेसोंकी प्राय: ५००० पुस्तकें एकत्रित हुई हैं। इनमें बहुत-सी हस्त-लिखित प्राचीन प्रतियाँ भी हैं। इनके अतिरिक्त बहुत-से ताम्रपत्र, शिल-भाषावर्ण सम्बन्धी चित्र, मानचित्र तथा गण्यमान्य नेताओंके चित्र भी हैं। मंचपर लोकमान्य तिलक और महात्मा गान्धी तथा बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीके चित्र सुन्दर सजाये हुए रक्खे हैं। पास ही हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ हैं। यहाँपर शो केसमें बहुमूल्य प्राचीन ताम्रपत्र शिलालेख इत्यादि रक्खे गये हैं। इसके नीचे रैक्समें भिन्न-भिन्न विषयोंकी पुस्तकें हैं। सामने चार क़तारोंमें टेबुलोंपर प्राचीन तथा आधुनिक मासिक, पाक्षिक तथा दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ रक्खी हैं। हर एक पुस्तकमें एक-एक विवरणपत्र है। और भी अधिक सूचनाके लिए पास ही स्वयंसेवक है। टेबुलोंके बीचमें एक-एक सुन्दर गमला रक्खा गया है, जिससे दृश्यकी शोभा और भी अधिक बढ़ गयी है।"

कांग्रेसके अधिवेशनोंपर भी हिन्दी पुस्तकोंकी दूकानें सजधजके साथ लगती थीं और प्रदर्शनियोंका रूप धारण कर लेती थीं। कानपुरमें सरोजिनी नायडूके सभापतित्वमें कांग्रेसका जो अधिवेशन हुआ था उस अवसरपर हिन्दीकी पुस्तकोंकी प्रदर्शनी लगानेके लिए राष्ट्रीय साहित्य छापनेवाले हिन्दी प्रकाशकोंको आमन्त्रित

किया गया था। इसके अतिरिक्त कांग्रेसके कलकत्ता, लखनऊ, वाराणसी आदि अधिवेशनोंके अवसरपर भी हिन्दी पुस्तकोंके प्रकाशकोंने प्रकाशित और प्रचारित पुस्तकोंकी दूकानें सजायी थीं। दक्षिणमें काकिनाडामें आयोजित कांग्रेस अधिवेशनके अवसरपर हिन्दी पुस्तकोंकी दूकानोंकी सजावट और हिन्दीमें प्रकाशित राष्ट्रीय साहित्यके बाहुल्यने हिन्दीको उन दिनों भी दक्षिणमें बहुत ही जनप्रिय बना दिया था। उन दिनों विशेष अवसरोंपर लगी ऐसी दूकानोंको ही हिन्दी पुस्तकोंकी प्रदर्शनीकी संज्ञा दे दी जाती थी। ठीक ऐसा ही क्रम हिन्दी पुस्तकोंके प्रचार का आर्यसमाजके वार्षिकोत्सवोंपर भी होता था।

ब्रह्मसमाजी राजा राममोहन राय और आर्यसमाजके दयानन्द सरस्वती दो ऐसे महापुरुष हो गये हैं जिन्हें भारतीय भाषाओंकी पुस्तकोंकी प्रदर्शनियोंके आन्दोलनका जनक कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। जहाँ बंगालमें राजा राममोहन रायने अपने मतके प्रचारके लिए जनसाधारणमें शिक्षा प्रसारकी भावना जगाकर समाजको जागरूक करनेकी प्रेरणा दी, वहीं स्वामी दयानन्द सरस्वतीने हिन्दीमें 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखकर आर्यसमाजके विभिन्न अधिवेशनोंके अवसरपर पुस्तकोंकी प्रदर्शनियों और प्रचार-द्वारा हिन्दीको प्रतिष्ठित किया। वह एक ऐसा युग था जब आर्यसमाजके जलसोंमें हिन्दीकी पुस्तकोंकी सजी दूकानोंसे 'सत्यार्थ प्रकाश' के अतिरिक्त हारमोनियम पुष्पांजलि नामक भजनोंकी पुस्तक भी प्रत्येक परिवार खरीदता था।

देशमें सुव्यवस्थित हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनियोंका आयोजन करनेका श्रेय मुख्यत: अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघको है। १९५४ में अपनी स्थापनाके बादसे ही संघके अधिकारियोंने यह अनुभव किया कि प्रचारके अन्य साधनोंके उपयोगके अतिरिक्त पुस्तक आन्दोलनको स्थायित्व देनेके लिए देशके विभिन्न भागोंमें पुस्तक प्रदर्शनियोंका आयोजन भी करना चाहिए। संघने प्रदर्शनियोंको जन-सम्पर्कका माध्यम चुना और अपने वार्षिक अधिवेशनोंके अवसरपर प्रदर्शनियोंके आयोजनका समारम्भ किया। इस क्रमकी पहली प्रदर्शनी ८ अप्रैल १९५५ को वाराणसीके टाउन हॉलमें आयोजित की गयी जिसमें काशीकी इक्यावन प्रकाशन संस्थाओंने भाग लिया। २७ अप्रैल १९५६ में संघके द्वितीय अधिवेशनके अवसरपर दिल्लीमें पुस्तकोंके आवरणोंकी एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी लगायी गयी, जिसका उद्घाटन तत्कालीन उपशिक्षा मन्त्री श्री कालूलाल श्रीमाली-

ने किया था। उसी वर्ष हिन्दी प्रचारक पुस्तकालयकी ओरसे कलकत्तामें हिन्दी पुस्तक मेलेका उद्घाटन ३० सितम्बरको डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जीने किया। इस पुस्तक मेलेमें लगभग दस हज़ार पुस्तकें लगी थीं और कलकत्तेकी हिन्दी-भाषी जनताने हजारोंकी संख्यामें इसे देखा था। १९५८ में प्रकाशक संघके वाराणसी अधिवेशनके अवसर पर नागरीप्रचारिणी सभामें लगी। तदनन्तर १९५९ में आगरा और जनवरी १९६० में कलकत्तामें पुस्तक प्रदर्शनी आयोजित की गयी। अप्रैल १९६१ में पटनामें आयोजित संघके छठें वार्षिक अधिवेशन-पर एक बहुत ही भव्य हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनी लगी, जिसका उद्घाटन तत्कालीन बिहारके राज्यपाल डॉ० जाकिर हुसेनने किया था। इसके बाद १९६२ में संघका अधिवेशन लखनऊमें हुआ और उस अवसरपर लगी प्रदर्शनीका उद्घाटन उत्तर प्रदेशके शिक्षा मन्त्री आचार्य युगलकिशोरने किया। १९६२ में चीनी आक्रमणके कारण देशमें 'इमरजेन्सी' कालकी घोषणा की गयी और प्रकाशक संघके १९६३ और '६४ के अधिवेशन सादगीके साथ सम्पन्न हुए। '६५ में जयपुर अधिवेशनमें अखिल भारतीय हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनी लगायी गयी। और इस वर्ष नेशनल बुक ट्रस्टकी ओरसे २४ फ़रवरी ६६ को लखनऊमें प्रथम हिन्दी राष्ट्रीय पुस्तक प्रदर्शनी आयोजित की गयी जिसका उद्घाटन किया उत्तरप्रदेश-की मुख्य मन्त्री श्रीमती सुचेता कृपलानीने।

आज हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनियोंका प्रचलन देशमें व्यापक रूपसे हो गया है। पुस्तकालय, विश्वविद्यालय, प्रकाशक, साहित्यिक संस्थाएँ आदि अब अपने वार्षिक अधिवेशनों अथवा विशेष अवसरोंपर पुस्तक प्रदर्शनियोंका आयोजन करने लगे हैं। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ तो प्रतिवर्ष राष्ट्रीय पुस्तक समारोहके अवसरपर भी प्रदर्शनियाँ आयोजित करता है।

• •

भारतीविश्व
कुछ सूत्र कुछ सन्दर्भ

जिसका उद्देश्य तथ्योंकी थाती
सौंपना है, मनोरंजन नहीं।

• स्व० श्री मणिलाल त्रिवेदी

गुजरातीके प्रतिष्ठित नाटककार श्री मणिलाल त्रिवेदीके निधनसे न केवल गुजराती साहित्यकी बल्कि सभी भारतीय भाषाओंके साहित्यकी गहरी क्षति हुई है। उन्होंने अपने नाटकोंके लिए भारतके इतिहाससे कथानक लिये और गौरवपूर्ण परम्पराओंको अपनी कृतियोंके माध्यमसे जीवन्त बनाया।

कहना न होगा कि श्री त्रिवेदीकी नाट्य-कृतियोंको केवल गुजरातकी ही जनताने मान नहीं दिया वरन वे समूचे भारतीय साहित्य-जगत्में सम्मानित हुईं। उनके नाटक लोकप्रिय भी खूब हुए। उनके नाटकोंको लोकप्रियताका अनुमान इतनेसे ही लगाया जा सकता है कि 'दीवान' और 'राम मांडलिक' को एक हज़ार बार तथा 'झांसीकी रानी' को छह सौ बार मंचपर प्रस्तुत किया गया।

स्व० श्री त्रिवेदीके नाटय-साहित्यकी बड़ी विशेषता यह है कि उनकी कृतियोंमें नाटक-तत्त्व सशक्त रूपमें होनेके साथ ही जीवनमें निरन्तर चलनेवाले संघर्षोंकी भी प्रभावपूर्ण यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। और इसीलिए यह आकस्मिक नहीं कि दर्शक उनके नाटकोंको देखते समय केवल दर्शक ही न रहकर उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर एकाकार हो जाता था। हिन्दी तथा मराठी नाटय-मंचको भी समय-समयपर उनका अवदान मिला है।

• श्री गोपालप्रसाद व्यासकी ५०वीं वर्षगाँठ

हिन्दीके प्रसिद्ध हास्य-कवि एवं पत्रकार श्री गोपालप्रसाद व्यासकी ५०वीं वर्षगाँठ दिल्लीके साहित्य-जगत्में स्वर्ण-जयन्तीके रूपमें मनायी गयी। इस अवसर-

पर आयोजित एक समारोहमें साहित्यकारों, पत्रकारों तथा केन्द्रीय मन्त्रियों ने व्यासजीके दीर्घायु होनेकी कामना की।

हास्य-कवि और पत्रकारके अलावा व्यासजीका एक और व्यक्तित्व है हिन्दी-सेवकका। उनकी हिन्दी सेवा तबसे चल रही है जब वह एक साधना थी—खून और पसीना बहानेवाली साधना। और आज भी राजधानीमें व्यापक हिन्दी आन्दोलनके प्रमुख संगठनकर्ता और नेता व्यासजी ही हैं। उनके लिए हिन्दीका काम एक 'मिशन' है और वे उसमें दिन-रात संलग्न रहते हैं। शासनने भी व्यासजीकी सेवाओं और सफलताओंको स्वीकार किया है।

समारोहमें सर्वश्री रामधारी सिंह 'दिनकर', डॉ० नगेन्द्र, भवानीप्रसाद मिश्र, अक्षयकुमार जैन तथा जगजीवन रामसे प्राप्त दीर्घायु-कामनाके प्रति आभार-प्रकट करते श्री व्यासजीने कहा था कि आज हिन्दी और सरकारमें समन्वय नहीं है। इनके समन्वयसे ही व्यक्ति, देश और समाजका कल्याण होगा।

● पुस्तकोंकी होली

'गम्भीर ग़लतियों तथा देशद्रोहात्मक सामग्रीवाली किताबों' पर प्रतिबन्ध लगाने और 'कम्युनिस्ट समर्थक पुस्तकें' वापस लेनेकीकी माँग करते हुए जम्मू-कश्मीर विद्यार्थी कांग्रेसने शासन-द्वारा प्रकाशित पाठ्य-पुस्तकोंकी होली जलायी है। राज्य सरकार तथा भारत सरकार भी अपना यह सही दावा तो समय-समय पर करती ही रही है कि जम्मू-कश्मीर भारतका अभिन्न अंग है, और उन सभी देशी-विदेशी प्रकाशनोंपर जिनमें इस 'अभिन्नता'से भिन्न विचार प्रकट होते हैं, प्रतिबन्ध लगाती हैं तथा ख़िलाफ़ कार्रवाई भी करती है। किन्तु जब स्वयं सरकार ही इस प्रकारकी ग़लती कर बैठे और राष्ट्रहितके विरुद्ध तथा देशद्रोहके पाठ विद्यार्थियोंको पढ़ाये तब किसीको भी आश्चर्य हो सकता है। इन जलायी गयी पाठ्य-पुस्तकोंमें लिखा है कि 'माओ और चाऊ दलित वर्गके उद्धारक हैं', 'जम्मू-कश्मीर स्वतन्त्र राज्य है और उसे स्वतन्त्र राज्य रहना चाहिए'। राष्ट्रीय नेताओंको भी हिन्दू और मुसलमानके रूपमें प्रस्तुत किया गया है।

वास्तवमें यह विचारणीय प्रश्न है कि एक ओर तो सरकार यह प्रचारित करती है कि जम्मू-कश्मीर भारतकी धर्म निरपेक्षताकी नीतिका प्रतीक है और राज्य भारतका अभिन्न अंग है, पर दूसरी ओर जम्मू-कश्मीर राज्यके ही विद्या-

थियोंमें सरकार-द्वारा प्रकाशित पाठ्य-पुस्तकों-द्वारा हिन्दू और मुसलमान, कश्मीर-के स्वतन्त्र राज्य होनेकी भावना तथा चीनके नेताओंके प्रति अनुराग-भाव उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया जाता है।

• एक सलाह : शिक्षाका माध्यम अँगरेजी हो !

भारतके सर्वोच्च न्यायाधीश डॉ० प्रह्लाद बालाचार्य गजेन्द्र गडगरने भारतीय विश्वविद्यालयोंको सलाह दी है कि विश्वविद्यालयोंमें शिक्षाका माध्यम अँगरेजी ही रहना चाहिए। यह सलाह श्री गडकरने लखनऊ विश्वविद्यालयमें दीक्षान्त भाषण करते हुए दी जिसपर विश्वविद्यालय छात्रसंघके प्रधान तथा अन्य कार्यकर्ता छात्रों और अध्यापकोंने रोष प्रकट किया है। कहना न होगा कि भारतके सर्वोच्च न्यायाधीशका यह अँगरेजी-समर्थन (या प्रेम) उतनी चिन्ताकी बात नहीं है जितनी यह कि अँगरेजीके समर्थक जब ग़ैर-हिन्दी प्रदेशोंमें भाषाके प्रश्नपर अपनी सलाह देते हैं तब क्षेत्रीय भाषाओंका समर्थन करते हैं, किन्तु हिन्दी-भाषी प्रदेशोंमें वे खुलेआम अँगरेजीकी जय बोलते हैं ! क्या भाषाई तनावोंके बढ़ानेमें ये सलाहें भी महत्त्वपूर्ण हिस्सा नहीं ले रही हैं।

• राष्ट्रभाषा बनाम मातृभाषा

केरलके महाविद्यालयोंके विद्यार्थी दूसरी भाषाके रूपमें हिन्दीको स्वीकार करते हैं न कि मलयालमको। यह एक सुखद तथ्य है। आँकड़ोंके अनुसार बी०, ए० तथा बी० एस० सी० के तीन वर्षीय कोर्सके ४,८६० छात्रोंने दूसरी भाषाके रूपमें हिन्दी ली है जब कि ४,६०२ छात्रोंने मलयालय ली है। केवल बी० एस० सी० कोर्सके विद्यार्थियोंमें ३,५४० ने हिन्दी ली और २,८६० ने मलयालम पढ़ना पसन्द किया।

• पाण्डुलिपि पाँचवीं सदीकी

पाँचवीं सदीकी एक पाण्डुलिपि तुर्कमेनिस्तान (रूस) के बैराम अलीनगरमें पिछले जाड़ेमें प्राप्त हुई थी, जिसे पढ़नेमें रूसी विशेषज्ञोंने अब सफलता पायी है। यह पाण्डुलिपि एक बौद्ध ग्रन्थ है जो ताडपत्रोंपर ब्राह्मी लिपिमें लिखी हुई है। इस हस्तलिखित ताड़पत्रीय ग्रन्थमें बौद्धधर्मके अनेक नियमोंके साथ विहारोंमें रहनेवाले भिक्षुओंके दैनन्दिन जीवन-सम्बन्धी नियमोंका भी उल्लेख है। मास्कोकी एक जनप्रिय पत्रिकामें इस पाण्डुलिपिका प्रकाशन भी किया गया है।

● अनुवादके आँकड़े

पिछले वर्ष संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान तथा संस्कृति परिषद्ने एक सर्वेक्षण किया था। सर्वेक्षणका उद्देश्य यह जानना था कि विश्वमें कौन-से ग्रन्थ तथा लेखक अधिक अनूदित हुए हैं। इस कार्यके लिए १९६३ के आँकड़ोंको आधार बनाया गया और ६९ देशोंको इस सर्वेक्षण के लिए चुना गया। सर्वेक्षणके बाद प्रकाशित रिपोर्टसे ज्ञात हुआ कि अभी भी सर्वाधिक अनुवाद बाइबिलके ही होते हैं। रिपोर्टके अनुसार बाइबिल १८० बार अनूदित हुई है। इसके बाद स्थान शेक्सपीयरके नाटकोंका है। शेक्सपीयरकी कृतियाँ विश्वकी विभिन्न भाषाओंमें १५९ बार अनूदित हुई हैं। तॉल्स्तॉयके 'युद्ध और शान्ति' तथा 'अन्नाकैरिना' उनकी कृतियोंमें सबसे ज्यादा अनूदित हुई। वैसे तॉल्स्तॉय सब ९४ बार अनूदित हुए हैं।

● नये निदेशक श्री चन्द्रहासन

हिन्दी प्रसार एवं विकासकामी संस्था केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयमें निदेशकके रूपमें प्रो० ए० चन्द्रहासनकी नियुक्तिको भारत सरकारकी सूझोंका सफल परिणाम कहा जायेगा। प्रो० चन्द्रहासन न केवल केरल विश्वविद्यालयके भूतपूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष रहे हैं बल्कि १९३० से ही उन्होंने दक्षिण भारतमें हिन्दीके विकास-कार्योंमें गहरी दिलचस्पी दिखायी है और महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। अतः उनकी इस नयी नियुक्तिपर यह विश्वास सहज और स्वाभाविक है कि वर्तमान भाषाई तनावके सन्दर्भमें हिन्दी अपना उचित-व्यवस्थित रूप ग्रहण कर सकेगी।

● यूनेस्कोकी सहायता

यूनेस्कोने अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघको पुस्तक-विक्रेताओंके बीच पुनरभ्यास पाठ्यक्रम चलानेके लिए एक हजार डॉलरकी वित्तीय सहायता दी है।

पुनरभ्यास पाठ्य-क्रम दिल्लीमें आगामी ४ अप्रैलसे १० अप्रैल '६६ तक चलेगा, जिसका सभारम्भ केन्द्रीय सरकारके शिक्षा-सचिव महोदय करेंगे। इस पाठ्यक्रममें भारतीय पुस्तक-विक्रेताओंके अतिरिक्त नेपालसे भी पुस्तक-विक्रेताओंके सम्मिलित होनेकी सम्भावना है।



पत्र-मंच

यह कहना अत्युक्ति नहीं कि जिस महान् उद्देश्यको लेकर पत्रिका उत्तरोत्तर सफलताके साथ अग्रसर हो रही है, वह सराहनीय है।

जनवरी '६६ का अंक आद्योपान्त पढ़ा। डॉ० शिवप्रसाद सिंहका लेख 'परिवर्तन और सृजन' बड़ा विचारोत्तेजक तथा मर्मस्पर्शी लगा। लेकिन श्री गिरिजाकुमार माथुरका लेख पढ़कर बड़ी वेदना हुई। नूतन काव्य-श्लाघाका ऐसा अप्रतिम उदाहरण अन्यत्र अलभ्य है। लेख पढ़कर ऐसा प्रतीत हुआ कि लेखककी दृष्टिमें सम्भवतः ऐसा एक भी साहित्यिक गुण नहीं जिससे तथाकथित 'आधुनिक भाव-बोधकी काव्य-धारा' वंचित हो। उनके विचारसे सन्त, मध्य और रीतिकालीन कविता तो पारेके मैलके समान प्रतीत होती है!

'मुझे गर्व है कि मैं उस क्रान्ति-बिन्दुपर लेखनी लिए उपस्थित था' वाक्यांशसे ऐसा प्रतीत होता है मानो माथुरजी हाथमें क़लम-कृपाण लिये काव्य-क्रान्तिकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

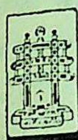
—ब्रह्माजीत गौतम 'मधुप', पारा।

'ज्ञानपीठ पत्रिका' के प्रत्येक अंकको मैं किसी-न-किसी तरह अवश्य देख लेता हूँ। दिसम्बर '६५ के अंक 'अज्ञेय' जीका लेख 'अर्थवान् शब्दकी समस्या' तथा डॉ० शिवप्रसाद सिंहका लेख 'जब एक कथांचल जी उठा' काफ़ी विचारोत्तेजक लगे। अर्थवत्ताके साथ प्राणवत्ता भी गहराईके संग समाविल है। बाहरके प्रकाशनोंपर भी अच्छी समीक्षाएँ दें तो निश्चय ही वह पत्रिकाकी बड़ी देन मानी जायेगी।

—दीनेन्दु भारती, मुज़फ़्फ़रपुर

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका तथा भारतीय भाषाओंकी सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर प्रतिवर्ष एक लाख रुपये पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ



उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्यका निर्माण

●

श्रेष्ठ उपयोगी संग्रहणीय प्रकाशन

संस्थापक

श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा

श्रीमती रमा जैन

● ●

प्रधान कार्यालय

९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता—२७

विक्रय केन्द्र

३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली—६

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी—५

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला

राष्ट्रभारती

क्रमांक व शीर्षक	लेखक	मूल्य
२२४ प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी	सं०—दिनकर सोनवलकर	४.००
२०७ प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी दो	नानक सिंह	४.००
२०४ प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी दो	प्रो० ना० सी० फड़के	४.५०
१९० प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी	कर्तारसिंह दुग्गल	३.५०
१९१ प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी	सं०—अनिलकुमार	४.००
१६८ प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु	नार्ल वेंकटेश्वर राव	३.५०
१७० प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला	'परशुराम'	३.००
१७१ प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी	व्यंकटेश दि० माडगूलकर	४.००

उपन्यास

क्रमांक व शीर्षक	लेखक	मूल्य
२२५ अठारह सूरजके पौधे	रमेश बक्षी	३.००
१६४ सूरजका सातवाँ घोड़ा [च० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	२.००
२१५ जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	३.५०
१५४ पीले गुलाबकी आत्मा [द्वि० सं०]	विश्वम्भर 'मानव'	४.००
७९ गुनाहोंका देवता [आठवाँ सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	५.००
५५ रक्त-राग [द्वि० सं०]	देवेशदास आइ०सी०एस्०	३.००
५१ तीसरा नेत्र [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	२.५०
१९९ जो	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
१६९ महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सुनें !!	'भिक्खु'	२.२५
१३७ पलासीका युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	३.५०
१४३ अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय	३.००
८० शतरंजके मोहरे [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अमृतलाल नागर	६.००
९५ शह और मात	राजेन्द्र यादव	४.००
११३ राजसी	देवेशदास आइ०सी०एस्०	२.५०
६२ संस्कारोंकी राह [पुरस्कृत]	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०

१२६ ग्यारह सपनोंका देश	सं०—लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००
१ मुक्तिदूत [द्वि० सं०]	वीरेन्द्रकुमार जैन	५.००
कहानी		
१७३ खोयी हुई दिशाएँ [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	२.५०
२ दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	३.००
१९५ झाड़ी	श्रीकान्त वर्मा	३.००
१६६ मेज़पर टिकी हुई कुहनियाँ	रमेश बक्षी	३.५०
६० कालके पंख [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
३० खेल खिलौने [द्वि० सं०]	राजेन्द्र यादव	२.००
१५९ बोस्ताँ [द्वि० सं०]	शेख़ सादी	२.५०
६३ जय-दोल [तृ० सं०]	अज्ञेय	३.००
१४२ ज़िन्दगी और गुलाबके फूल	उषा प्रियंवदा	२.५०
८९ अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
८५ कर्मनाशाकी हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.००
१३१ सूने अँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.००
१५१ प्यारके बन्धन	रावी	३.२५
८२ मोतियोंवाले [पुरस्कृत]	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
६९ हरियाणा लोकमञ्चकी कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२.५०
६५ मेरे कथागुरुका कहना है : १	रावी	३.००
१४४ मेरे कथा गुरुका कहना है : २	रावी	३.००
३५ पहला कहानीकार [पुरस्कृत]	रावी	२.५०
२४ संघर्षके बाद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विष्णु प्रभाकर	३.००
५८ नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
३७ अतीतके कम्पन [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
२० आकाशके तारे : धरतीके फूल [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.००
५० नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
५४ कुछ मोती कुछ सीप [द्वि०सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
४३ जिन खोजा तिन पाइयाँ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
१२ गहरे पानी पैठ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.५०
९४ एक परछाइं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००

११५ ऑस्कर वाइल्डकी कहानियाँ	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
१३९ लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.००

• कविता

६४ लेखनी-बेला [द्वि० सं०]	वीरेन्द्र मिश्र	३.५०
२२० इतिहास-पुरुष	डॉ० देवराज	३.५०
१२० देशान्तर [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	१२.००
२१८ अन्धा चाँद	मुनि रूपचन्द	३.००
२०१ चाँदका मुँह टेढ़ा है [द्वि० सं०]	मुक्तिबोध	८.००
२०८ आत्मजयी	कुँवरनारायण	३.५०
८६ कनुप्रिया [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.००
१९४ हम विषपायी जनमके [द्वि० सं०]	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१६.००
११८ वेणु लो गूँजे धरा [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
२०३ चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन	३.००
२०२ संक्रान्त	डॉ० कैलाश वाजपेयी	३.००
१९६ हिम-विद्ध	डॉ० जगदीश गुप्त	३.००
१८६ बीजुरी काजल आँज रही	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
१८५ अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	३.००
१७८ रत्नावली	हरिप्रसाद 'हरि'	२.००
६८ वाणी [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
६६ सौवर्ण [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	३.५०
१४६ आँगनके पार द्वार [अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत]	अज्ञेय	३.००
१३४ वीणापाणिके कम्पाउण्डमें	केशवचन्द्र वर्मा	३.००
१२२ रूपाम्बरा	सं०—अज्ञेय	१२.००
८८ अनुक्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
८१ तीसरा सप्तक [द्वि० सं०]	सं०—अज्ञेय	५.००
९० अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	४.००
९१ सात गीत-वर्ष [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.५०
१२७ आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.००
९ पंच-प्रदीप	शान्ति मेहरोत्रा	२.००
८ मेरे बापू	तन्मय बुखारिया	२.५०

३९ धूपके धान [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.००
१३ वर्द्धमान [महाकाव्य पुरस्कृत]	अनूप शर्मा	६.००

● शाइरी

१५८ गंगोजमन	'नज़ीर' बनारसी	३.००
७६ शाइरीके नये मोड़ : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७७ शाइरीके नये मोड़ : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१५६ शाइरीके नये मोड़ : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७५ शाइरीके नये मोड़ : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७७ शाइरीके नये मोड़ : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१३८ नग़मए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
७२ शाइरीके नये दौर : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७३ शाइरीके नये दौर : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१०४ शाइरीके नये दौर : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
११० शाइरीके नये दौर : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१४१ शाइरीके नये दौर : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१४ शेर-ओ-सुख़न : भाग–१ [द्वि०सं०पु०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
२६ शेर-ओ-सुख़न : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२७ शेर-ओ-सुख़न : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२८ शेर-ओ-सुख़न : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
३१ शेर-ओ-सुख़न : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
५ शेर-ओ-शाइरी [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
११९ ग़ालिब	श्री रामनाथ 'सुमन'	८.००
९२ मीर	श्री रामनाथ 'सुमन'	६.००

● नाटक

९८ जनम क़ैद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	२.५०
२१९ प्रेत	इब्सेन, अनु०नेमिचन्द्र जैन	२.२५
७५ बारह एकांकी [द्वि० सं०]	विष्णु प्रभाकर	४.००
१६७ घाटियाँ गूँजती हैं [तृ० सं०]	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	२.५०

पुस्तक	लेखक	मूल्य
२०३ नाटक बहुरूपी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.
१७२ आदमीका ज़हर	लक्ष्मीकान्त वर्मा	३.१०
१७ रजत रश्मि [द्वि० सं० पुरस्कृत]	डॉ० रामकुमार वर्मा	३.
१५५ तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ	परिपूर्णानन्द वर्मा	४.
१०० सुन्दर रस [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	१.
१३२ नाटक बहुरंगी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	४.
७८ कहानी कैसे बनी ?	कर्तारसिंह दुग्गल	२.
५३ पचपनका फेर [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विमला लूथरा	३.
५९ तरकशके तीर	श्रीकृष्ण	३.
४७ और खाई बढ़ती गयी [पुरस्कृत]	भारतभूषण अग्रवाल	२.
६७ चेखॅवके तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	३.
१०१ कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ० भगवतशरण उपा०	३.
१०६ सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	३.
१०८ भूमिजा	सर्वदानन्द	१.

- विधा-विविधा

पुस्तक	लेखक	मूल्य
१५० खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति मेहरोत्रा	४.
१४९ अंकित होने दो	अजित कुमार	४.
८७ काठकी घण्टियाँ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	७.
१०२ सीढ़ियोंपर धूपमें	रघुवीर सहाय	४.
१२५ पत्थरका लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	३.

- रुचिर कलात्मक

पुस्तक	लेखक	मूल्य
१९२ शैशवांकन		१२.०
१६१ परिणय गीतिका	सं०—रमा जैन, कुन्था जैन	५.

- ललित-निबन्धादि

पुस्तक	लेखक	मूल्य
कुछ निबन्ध	अक्षयकुमार जैन	३.
१८३ क्षण बोले कण मुसकाये [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.
२११ चिन्तककी लाचारी	माखनलाल चतुर्वेदी	४.
१९७ एक साहित्यिककी डायरी [द्वि. सं.]	गजानन माधव मुक्तिबोध	२.

११७ अमीर इरादे ग़रीब इरादे [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	२.००
१८१ हम सब और वह	दयानन्द वर्मा	२.००
१८० बातें, जिनमें सुगन्ध फूलोंकी	अहमद सलीम	३.००
१६५ महके आँगन चहके द्वार	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
१६३ शिखरोंका सेतु	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.५०
५७ बाजे पायलियाके घुँघरू [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
१४८ फिर बैतलवा डालपर	विवेकी राय	३.५०
१४७ आँगनका पंछी और बनजारा मन	डॉ० विद्यानिवास मिश्र	३.००
१२८ नये रंग नये ढंग	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.००
७१ बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०
१२३ काग़ज़की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.५०
१११ सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.००
९६ वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२.५०
१०३ ठूँठा आम	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	[illegible].००
२९ हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान [द्वि.सं.]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	१.००
७० ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	३.००
४६ क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२.५०
५६ माटी हो गयी सोना [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.००
२५ ज़िन्दगी मुसकरायी [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००

• यात्रा-विवरण

१८७ चीड़ोंपर चाँदनी	निर्मल वर्मा	३.००
१३० एक बूँद सहसा उछली	अज्ञेय	७.००
८४ पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३.००
९९ सागरकी लहरोंपर	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
१३६ हरी घाटी	डॉ० रघुवंश	४.५०

• संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी

७४ दीप जले शंख बजे [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	३.००
१६२ समयके पाँव [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

२१	रेखाचित्र [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.०
१२४	पराड़करजी और पत्रकारिता [पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	५.५०
१०९	आत्मनेपद	अज्ञेय	४.००
११४	माखनलाल चतुर्वेदी	'बरुआ'	६.००
३४	द्विवेदी पत्रावली	बैजनाथसिंह 'विनोद'	२.५०
१५	जैन-जागरणके अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१९	संस्मरण [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
१६	हमारे आराध्य [पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००

• आलोचना, अनुसन्धान, रचना-शिल्प

१५२	अपभ्रंश भाषा और साहित्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	१०.००
२२३	घरेलू इलाज	वैद्यरत्न च० गो० ठक्कुर	२.००
२२१	विवेकके रंग	सं०-डॉ०देवीशंकर अवस्थी	७.००
१८९	हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि	डॉ० प्रेमसागर जैन	१२.००
१९३	भाषा और संवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.५०
१८८	हिन्दी गीतिनाट्य	कृष्ण सिंहल	४.००
१७४	साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य	डॉ० रघुवंश	५.००
१५७	जैन भक्ति-काव्यकी पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमसागर जैन	६.००
१३५	रेडियो वार्ता-शिल्प	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	२.०
४१	रेडियो नाट्य-शिल्प [द्वि० सं०]	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	३.००
३८	ध्वनि और संगीत [द्वि० सं०]	ललितकिशोर सिंह	४.५०
१८	भारतीय ज्योतिष [च० सं०]	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६.००
८३	प्राचीन भारतके प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०
४५	संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००
४८	संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन [द्वि.सं.]	डॉ० भोलाशंकर व्यास	५.००
१२९	हिन्दी नवलेखन	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.००
११२	मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
४२	शरत्‌के नारी-पात्र	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.५०

४४ हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : १	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०
४९ ,, ,, २	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०

• **इतिहास-राजनीति**

१४५ भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०]	डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१०.००
१९८ भारतीय संस्कृतिका विकास : वैदिक धारा	डॉ० मंगलदेव शास्त्री	७.००
१२१ समाजवाद	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५.००
३६ कालिदासका भारत : भाग १ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००
४० कालिदासका भारत : भाग २ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
३२ चौलुक्य कुमारपाल [द्वि० सं० पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.५०
५२ एशियाकी राजनीति	परदेशी	६.००
१०७ इतिहास साक्षी है	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
२३ खोजकी पगडण्डियाँ [द्वि० सं० पुरस्कृत]	मुनि कान्तिसागर	४.००
२२ खण्डहरोंका बैभव [द्वि० सं०]	मुनि कान्तिसागर	६.००

• **दार्शनिक-आध्यात्मिक**

२१७ तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो	मुनि नथमल	२.००
२१२ क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?	आचार्य तुलसी	२.००
३३ अध्यात्म-पदावली [तृ० सं०]	डॉ० राजकुमार जैन	४.५०
२०६ दर्शन अनुचिन्तन	गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	३.००
२०० तान्त्रिक साधना	माधव पुण्डलीक पण्डित	१.५०
१० भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२.००
७ बैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६.००

• **सूक्तियाँ**

१४० सन्त-विनोद [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	२.५०
१८२ भाव और अनुभाव [द्वि० सं०]	मुनि नथमल	२.००
११ ज्ञानगंगा : भाग १ [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	६.००
११६ ज्ञानगंगा : भाग २	नारायणप्रसाद जैन	६.००
६१ शरतकी सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
९३ कालिदासके सुभाषित	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००

• हास्य-व्यंग्य

२२२	बक रहा हूँ जुनून में	प्रकाश पण्डित	३.००
२०९	सिकन्दरनामा	सलमा सिद्दीक़ी	२.००
१३३	आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य [द्वि० सं०]	सं० – केशवचन्द्र वर्मा	४.००
१६०	तेलकी पकौड़ियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० प्रभाकर माचवे	२.००
१७६	जैसे उनके दिन फिरे [द्वि० सं०]	हरिशंकर परसाई	२.५०
१८४	क़ाग़ज़के फूल शब्द : भारतभूषण अग्रवाल,	चित्र : प्रभाकर माचवे	३.००
१७९	चाय पार्टियाँ	सन्तोषनारायण नौटियाल	२.००
१५३	हास्य मन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	६.००
१०५	मुर्ग़-छाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	२.००
९७	अंगदका पाँव	श्रीलाल शुक्ल	२.५०

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर और साथमें दिया ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा। जैसे : 'सूरजका सातवाँ घोड़ा' के लिए 'लो' – १६४' मात्र।

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला

तत्वज्ञान और सिद्धान्तशास्त्र

१ समयसार [प्राकृत-अँगरेज़ी]
मूल : आचार्य कुन्दकुन्द; सं०-अनु० : प्रो० ए० चक्रवर्ती — ८.००

१० तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग १
२० ,, ,, भाग २
मूल : भट्ट अकलंक; सम्पादन : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य — २४.००

१३ सर्वार्थसिद्धि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य पूज्यपाद; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री — १२.००

१० पंचसंग्रह [प्राकृत-हिन्दी]

संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री १५.००

८ जैन धर्मामृत [संस्कृत-हिन्दी]

संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री ३.००

जैन न्याय और कर्मग्रन्थ

११ कर्मप्रकृति [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]

मूल : आचार्य नेमिचन्द्र, सम्पादन : पं० हीरालाल शास्त्री ६.००

३० सत्यशासन-परीक्षा [संस्कृत]

मूल : आचार्य विद्यानन्दि; सम्पादन : गोकुलचन्द्र जैन ५.००

२२ सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग १

२३ ,, भाग २

मूल : भट्ट अकलंक और अनन्तवीर्य; सम्पादन : डॉ०महेन्द्रकुमार ३०.००

३ न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग १

१२ ,, ,, भाग २

मूल : भट्ट अकलंक और वादिराज सूरि; सं० : डॉ०महेन्द्रकुमार ३०.००

४ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग २ ११.००

मूल : भगवन्त भूतबलि; सं०-अनु० : पं०फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

५ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ३ ११.००

६ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ४ ११.००

७ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ५ ११.००

८ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ६ ११.००

९ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ७ ११.००

आचारशास्त्र, पूजा और व्रत विधान

२८ उपासकाध्ययन [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : सोमदेव सूरि, सं०-अनु० : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री १२.००

३ वसुनन्दि श्रावकाचार [प्राकृत-हिन्दी]

मूल : आचार्य वसुनन्दि; सं०-अनु० : पं० हीरालाल शास्त्री ५.००

७ ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि [संकलन]

संकलन-सम्पादन : डॉ० आ.ने. उपाध्ये व फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ४.००

१९ व्रततिथिनिर्णय [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : अज्ञात; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ३.००

६ **मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन [हिन्दी]**

लेखक : पं० नेमिचन्द्र शास्त्री २.००

व्याकरण, छन्दशास्त्र और कोश

१७ **जैनेन्द्र महावृत्ति [संस्कृत]**

मूल : आचार्य अभयनन्दि; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी १५.००

५ **सभाष्य रत्नमञ्जूषा [संस्कृत]**

मूल : अज्ञात; सम्पादन : श्री हरि दामोदर वेलणकर २.००

६ **नाममाला सभाष्य [संस्कृत]**

मूल : कवि धनञ्जय–अमरकीर्ति; सम्पादन : पं०शम्भुनाथ त्रिपाठी ३.५०

पुराण साहित्य

२७ **हरिवंशपुराण [संस्कृत-हिन्दी]**

मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १६.००

८ **आदिपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १**

९ ,, ,, भाग २

मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य २०.००

१४ **उत्तरपुराण [संस्कृत-हिन्दी]**

मूल : आचार्य गुणभद्र; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १०.००

२१ **पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १**

२४ **पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग २**

२६ **पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३**

मूल : आचार्य रविषेण; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ३०.००

१५ **पुराणसार-संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १**

१६ ,, ,, भाग २

मूल : आचार्य दामनन्दि; सं०-अनु० : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी ४.००

चरित व काव्य-ग्रन्थ

६ **सुगन्धदशमी कथा : सं० डॉ० हीरालाल जैन** ११.००

४ **करकण्डुचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]**

मूल : कनकामर, सं०-अनु० : डॉ० हीरालाल जैन 10.00

२९ भोजचरित्र [संस्कृत]

मूल : राजवल्लभ, सम्पा० : डॉ० छावड़ा, शंकरनारायणन् 8.00

५ मयणपराजयचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]

मूल : कवि हरिदेव; सम्पादन और अनुवाद : डॉ० हीरालाल जैन 8.00

१ मदनपराजय [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : नागदेव; सं०-अनु० : डॉ० राजकुमार जैन साहित्याचार्य 6.00

१ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग १

२ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग २

३ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग ३

मूल : कवि स्वयम्भू; सं०-अनु० : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन 9.00

१८ जीवन्धरचम्पू [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : कवि हरिचन्द्र

सम्पादन, अनुवाद और टीका : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य 8.00

१ जातकट्ठकथा [पाली]

सम्पादन : भिक्षु धर्मरक्षित 9.00

५ धर्मशर्माभ्युदय [हिन्दी]

अनुवादक : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य 3.00

ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र

२५ भद्रबाहु संहिता [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : आचार्य भद्रबाहु; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य 8.00

७ केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य 4.00

२ करलक्खण [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]

मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी 0.75

विविध

९ वर्ण, जाति और धर्म

लेखक : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री 3.00

११ जिनसहस्रनाम [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री — ४.००

१ थिरुकुरल [तमिल]
सम्पादन : ए० चक्रवर्ती — ५.००

१ आधुनिक जैन कवि [हिन्दी]
संकलन-सम्पादन : श्रीमती रमा जैन — ३.७५

२ कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची
संकलन-सम्पादन : पं० के० भुजबली शास्त्री — १३.००



माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला

पुराण

३७ महापुराण [अपभ्रंश] आदिपुराण : भाग १
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — १०.००

४१ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग २
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — १०.००

४२ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग ३
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — ६.००

२९ पद्मपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

३० पद्मपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

३१ पद्मपुराण [संस्कृत] भाग ३
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

३२ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २००

३३ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

सिद्धान्त, आचार और नीतिशास्त्र

२१ सिद्धान्तसारादि [प्राकृत-संस्कृत]
मूल : श्री जिनेन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी — १.५०

२० भावसंग्रहादि [प्राकृत-संस्कृत]
मूल : देवसेनसूरि; सम्पादन : पन्नालाल सोनी — २.२५

२५ पञ्चसंग्रह [संस्कृत]
मूल : श्री अमितगति सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — .८१

३६ त्रिषष्टिस्मृतिसार [संस्कृत, मराठी अनुवाद]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : मोतीलाल — ५०

४४ स्याद्वादसिद्धि [संस्कृत, हिन्दी-सारांश]
मूल : श्री वादीभसिंहसूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

२४ रत्नकरण्डश्रावकाचार [मूल, संस्कृत टीका]
मूल : श्री स्वामी समन्तभद्र; टीका : श्री प्रभाचन्द्राचार्य — २.००

२६ लाटी संहिता [संस्कृत]
मूल : श्री राजमल्ल; सम्पादन : पं० श्री दरबारीलाल — .५०

३४ नीतिवाक्यामृत (शेषांश) [संस्कृत टीका]
मूल : सोमदेवसूरि; टीका : अज्ञात — .२५

■

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर, भाषा और ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा। जैसे 'समयसार' के लिए 'मू-अं० १' या 'वरांगचरित' के लिए 'मा-४०' मात्र।

शिलालेख

२८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
सम्पादन : पं० श्री हीरालाल जैन — २.००

४५ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — ८.००

४६ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — १०.००

४८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ४
सम्पादन : डॉ० जोहरापुरकर — ७.००

चरित, काव्य और नाटक

४० वरांगचरित [संस्कृत]
मूल : श्री जटासिंहनन्दि; सम्पादन : डॉ० आदिनाथ उपाध्ये — ३.००

३५ जम्बूस्वामीचरित [संस्कृत]
मूल : पं० राजमल्ल; सम्पादन : श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री — १.५०

८ प्रद्युम्नचरित [संस्कृत]
मूल : श्री महासेन; सम्पादन : पं० मनोहरलाल, रामप्रसाद शास्त्री — .५०

रामायण [अपभ्रंश] (अलगसे)
मूल : महाकवि पुष्पदन्त — २.५०

२७ पुरुदेवचम्पू [संस्कृत]
मूल : श्रीमदर्हद्दास; सम्पादन : श्री जिनदास शास्त्री — .७५

४३ अंजनापवनंजय [नाटक]
मूल : श्री हस्तिमल्ल : सम्पादन—वासुदेव पटवर्धन — ३.००

जैन-न्याय

३८ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य — ८.००

३१ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य — ८.५०

४७ प्रमाणप्रमेयकलिका [संस्कृत]
मूल : श्री नरेन्द्रसेन; सम्पादन : पं० दरबारीलाल कोठिया — १.५०



भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और
सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी से मुद्रित ।

रजिस्टर्ड सं० एल-

भारतीय ज्ञान
द्वारा प्रस्तुत

अद्वितीय
नयनाभिराम
कलात्मक
प्रकाशन

सर्वथा संग्रहणीय



ज्ञानपीठ पत्रिका

लेखन-प्रकाशनकी
नातन दिशा-प्रवृत्ति
उपलब्धि-परिचायिनी
मासिकी

अप्रैल १९६६

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रवर्तित

संग्रहणीय नये प्रकाशन

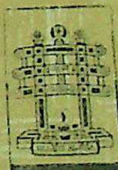
- **नये प्रतिमान : पुराने निकष**

  लक्ष्मीकान्त वर्माके चिन्तन-प्रधान समीक्षात्मक लेख : जिनका विषय है नवलेखन—आजका साहित्य ।

- **हिन्दीके आदिमुद्रत ग्रन्थ**

  कृष्णाचार्यकी अपने प्रकारकी अकेली महत्वपूर्ण उपयोगी शोध-कृति । प्रत्येक पुस्तकालय और शोधार्थियोंके लिए अनिवार्य रूपसे संग्रहणीय ।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन



शैशवांकन

वर्ष चार :
अप्रैल

ज्ञानपीठ पत्रिका

वर्ष चार : अंक नौ
अप्रैल १९६६

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जगदीश
प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
मूल्य : छह रुपये वार्षिक, पचपन पैसे प्रति; द्विवार्षिक : ग्यारह रुपये
समाज-शिक्षा विभाग, राजस्थान-द्वारा उच्च, उच्चतर विद्यालय तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंके लिए प्रस्वीकृत

उद्घोष

साहित्यकार स्वयंका भी सर्जन करे

क्योंकि सृष्टि कभी स्रष्टासे ऊपर नहीं उठती इसलिए विचारणीय पहले स्रष्टा होता है सृष्टि नहीं

सेठ गोविन्ददास

यह सही है कि कीचड़से ही कमलकी उत्पत्ति होती है। किन्तु सरोवरकी जल-सतहपर उठनेके पूर्व उसे कीचड़से उठना पड़ता है; और उठनेके इस क्रममें उसे निर्लेपतासे उठना पड़ता है : कीचड़को साथ लेकर नहीं। तभी कमल यह सौन्दर्य पाता है : कमल कमल बनता है।

इसी प्रकार साहित्यकारको वासनाओं-कुण्ठाओं और राग-द्वेषादिके दलदलसे ऊपर उठना होगा : तभी वह साहित्यके सत् पक्षका सर्जक साहित्यकार बन सकेगा। क्योंकि साहित्यकारसे जो निकलता है वह उसके स्वयंके व्यक्तित्वके ऊपरका नहीं हो सकता, और स्वाभाविक है कि साहित्यकारका व्यक्तित्व जिस स्तरका होगा उसका साहित्य भी उसी स्तरतक प्रभावी होगा।

दूसरे शब्दोंमें वस्तुतः साहित्यकार ही अपना साहित्य बन जाता है। किसी साहित्यको यदि समझना है तो उसकी मूल जड़ोंको साहित्यकारमें खोजना होगा। किसी भी साहित्यमें उसके सर्जक साहित्यकारके खुले हुए अन्तःकरणकी सहज प्रतिच्छवि देखी जा सकती है। सृष्टि कभी स्रष्टासे ऊपर नहीं उठती। शुभ साहित्यका जन्म और ऐसे सर्जनकी सम्भावना, जिसमें सौन्दर्य और शुभमें विरोध न हो, तभी सम्भव है जब उनका स्रष्टा अचेतन वासनाओंसे ऊपर उठे और अतिचेतन मानससे सम्बन्धित हो।

●●

सामयिक साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

जिनसे समाज और साहित्यका ही नहीं स्वयं साहित्यकारके व्यक्तित्वका विकास भी बाधित हुआ रहेगा

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

हमारा वर्तमान साहित्य एक विशिष्ट समग्रता और गाम्भीर्यकी कमीसे छिछला और छिन्नमूल बन रहा है। समग्रता लेखकोंके दायित्वसे सम्बन्ध रखती है और गम्भीरता उनके व्यक्तित्व और चारित्रिक दृष्टिकोणका परिणाम होती है। आजके परिवेशमें दोनोंकी दयनीय दशा है।

व्यक्तिवादी जीवनदृष्टिके सम्बन्धमें बहुत-से तर्क दिये जाते हैं। व्यक्तित्वकी स्वतन्त्रताकी रक्षा नये युगका आवश्यक लक्ष्य है। समाजमें फैली हुई अनीतियोंके विरुद्ध व्यक्तिगत विद्रोह हम समझ सकते हैं। विस्तारित अन्धकारके बीच अकेली दीपशिखाका मूल्य भी हम जानते हैं। पर जब व्यक्तिवादी प्रवृत्ति अपना लक्ष्य स्वयं ही बन जाती है और जब यह राष्ट्रीय और मानवीय उत्थानके साधनोंको दुर्लक्ष्य करने लगती है, तब वह व्यक्तिवादिता साहित्य और समाजके लिए शंकास्पद हो उठती है। विचारोंकी विविधता और शैलियोंकी अनेकता साहित्यका शृंगार होती है, पर तब जब उस विविधता और अनेकतामें कोई समन्वित चेतना और जीवनदृष्टि हो। किन्तु वर्तमान परिवेशकी साहित्यिक विविधताएँ क्या ऐसी ही चेतना और जीवनदृष्टिका नियोजन करती हैं?

युरॅपकी पिछली शताब्दीकी साहित्य-सृष्टिके विकास-क्रमको देखनेपर यह भासित होता है कि प्रत्येक नयी पीढ़ीके कवि और लेखक एक सार्थक और विद्रोही नवीनता लेकर आये थे और जब कभी इस नवीनतामें वस्तुतथ्यकी कमी हुई है तब-तब साहित्य अपने कलात्मक मूल्य और महत्त्वको खो बैठा है।

युरँपीय जातियाँने अपनी साहित्यिक चेतना और संस्कृतिको अक्षुण्ण रखनेके प्रयत्नमें उच्चकोटिकी साधनाएँ और बलिदान किये हैं। जब वे राष्ट्र अपनी प्रादेशिक सीमामें नयी सृष्टिकी सम्भावना नहीं देख पाये तब उनके कवि और लेखक राष्ट्रीय चेतनाके उन्नयनके लिए विदेशोंमें गये और ग्रामों और अन्य भूमियोंमें पहुँचे। उन्होंने असभ्य जातियोंकी जीवनचर्याका निरीक्षण किया और उनसे नयी प्रेरणाएँ प्राप्त कीं।

पर यह तबकी बात है जब उनका राष्ट्रीय विकास नितान्त अवरुद्ध हो गया था और जब प्रगतिकी सारी दिशाएँ सीमित हो गयी थीं। अपने देशमें तो ऐसी कोई स्थिति नहीं है, न ही हमारी संस्कृतिपर किसी प्रकारका संकट है। उलटे हमें तो अवसर मिला है कि राजनीतिक स्वतन्त्रताके इस युगमें हम सार्वत्रिक स्वतन्त्रताका शिलान्यास करें और सामाजिक जीवनको उस दिशामें ले जानेकी प्रेरणा दें।

हमारा संकेत, इस प्रकार, किसी प्रचारात्मक साहित्य-सृष्टिकी ओर नहीं है। हमारा आशय उन नवीन भावना-भूमियोंपर दृष्टिपात करनेका है जो बहुत अंशोंमें अबतक अछूती पड़ी हुई हैं और जिनकी ओर नयी रचनात्मक प्रतिभाका आकर्षित होना स्वाभाविक और अनिवार्य था। पर यह तो तब होता जब हम साहित्यकी राष्ट्रीय विकासदिशाको उचित महत्त्व देते। पर हमने तो राष्ट्रीय साहित्यकी अपेक्षा साहित्यकी विदेशी गतिविधियोंको प्रमुखता दे रखी है: हम राष्ट्रीय बननेके पहले ही अन्तर्राष्ट्रीय बन गये हैं। इससे क्या समाज और साहित्यका, या स्वयं साहित्यकारके व्यक्तित्वका ही, विकास होगा?

● ●

कवि जिस प्रकार भावोंके अतिरेक से बचता है, उसी प्रकार कथनकी अतिशयोक्तिसे सतर्क रहता है। वस्तुत: उसके लिए कोई भी अनुभव मात्र काव्यकी प्रेरणा नहीं है। वह काव्य सर्जन की प्रक्रिया में उस अनुभवको पूर्णत: निष्पन्न करना चाहता है।

—साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य : डॉ० रघुवंश

मेरा दृष्टिकोण

जीवनके इस विराट् कार्निवालमें कवि उस
बहुरूपियेकी तरह है जिसके हर मनो-
रंजक रूपके पीछे उसका एक
अपना गम्भीर व्यक्तित्व होता
है

कुँवर नारायण

साहित्य जब सीधे जीवनसे सम्पर्क छोड़कर, वादग्रस्त होने लगता है तभी उसमें वे तत्त्व उत्पन्न होते हैं जो उसके स्वाभाविक विकासमें बाधक हों। जीवनसे सम्पर्कका अर्थ केवल अनुभव-मात्र नहीं, बल्कि वह अनुभूति और मनन-शक्ति भी है जो अनुभवके प्रति तीव्र और विचारपूर्ण प्रतिक्रिया कर सके। कोई अनुभव सार्थक तभी माना जायेगा जब वह किसी महत्त्वपूर्ण परिणाममें प्रतिफलित हो, और यह विना एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखकर चले सम्भव नहीं। वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे मेरा अभिप्राय उस सहिष्णु और उदार मनोवृत्तिसे है जो जीवनको किसी पूर्वग्रहसे पंगु करके नहीं देखती बल्कि उसके प्रति एक बहुमुखी सतर्कता बरतती है। कलाकार या वैज्ञानिकके लिए जीवनमें कुछ भी अग्राह्य नहीं : उसका क्षेत्र किसी वाद या सिद्धान्त-विशेषका संकुचित दायरा न होकर वह सम्पूर्ण मानव-परिस्थिति है जो उसके लिए एक अनिवार्य वातावरण बनाती है और जिसे उसका जिज्ञासु स्वभाव सोचता-विचारता है।

इस बातको कुछ और स्पष्ट कर देना आवश्यक है। मैं ऑर्नल्डके शब्दोंमें व्यापक अर्थमें कविताको 'जीवनकी आलोचना' मानता हूँ। एक अच्छे आलोचकके लिए यथासम्भव निष्पक्ष होना जितना आवश्यक है, एक अच्छे कविके लिए भी उतना ही, और इसीलिए उसका एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखना, कमसे-कम आधुनिक युगमें अत्यन्त आवश्यक है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण अनिवार्यतः नीरस दृष्टिकोण है, इसे मैं माननेके लिए तैयार नहीं। ठीकसे समझा जाये तो कवितामें भी मूलतः

कृतित्वकी कुछ वैसी ही-सी प्रक्रियाएँ निहित हैं जैसी वैज्ञानिक प्रयोगोंमें। जो बुनियादी जिज्ञासा एक वैज्ञानिकको, रूढ़िकी उपेक्षा करके भी, यथार्थकी गूढ़ तहोंमें पैठनेके लिए बाध्य करती है, खोजकी वही रोमांचकारी प्रवृत्ति कविको भी अज्ञातके विराट व्यक्तित्वमें भटकाती रहती है। भौतिकशास्त्रके बहुत-से सिद्धान्त सूत्रबद्ध होनेसे पहले बहुत-कुछ वैसी ही-सी मानसिक प्रक्रियाओंसे गुजरते हैं जिनसे कविता भाषाबद्ध होनेसे पहले : दोनोंमें निकट काल्पनिक सम्बन्ध है, क्योंकि दोनों ही एक विशेष प्रज्ञा-द्वारा विश्वसनीय सत्य तक पहुँचना चाहते हैं।

किन्तु जब मैं वैज्ञानिक दृष्टिकोणकी बात करता हूँ तो मेरा अभिप्राय उन सिद्धान्तों या मतोंसे उतना नहीं जिन्हें मार्क्स, फ्रायड, आइन्स्टाइन, न्यूटन या डार्विन स्थापित कर गये बल्कि उस बौद्धिक स्वतन्त्रतासे है जो सदासे जीवन-के प्रति निडर और अन्वेषी प्रश्न उठाती रही है। मुझे वह 'एप्रोच' पसन्द है जो किसी भी सत्यको स्वयंमें अन्त न मानकर उसे अगले सत्य तक पहुँचनेका साधन मानता है : जिसके लिए सत्यका अर्थ अपनेसे बड़े सत्यमें विकसित हो सकनेकी सक्रियता है, रास्तेका पहाड़ बन जानेकी जड़ता नहीं। मेरे लिए स्थापित सत्य—चाहे वे राजनैतिक हों, चाहे सामाजिक, चाहे शास्त्रीय,—उतने महत्त्वपूर्ण नहीं जितनी वह बुद्धि जिसने उन सत्योंको जन्म दिया। सिद्धान्तोंमें ग़लतियाँ हो सकती हैं, उन्हें जीवनपर लागू करनेमें ग़लतियाँ हो सकती हैं, नितान्त उदार और वैज्ञानिक मान्यताएँ अन्धविश्वासी नारे बना दिये जा सकते हैं, पर यदि एक ही आस्था रखी जा सकती है तो मनुष्यकी उस संयत और निस्पृह बुद्धिमत्तामें ही जो भरसक सत्योंकी मौसमी सरगरमीसे बचकर धैर्यके साथ जीवनको उसकी सम्पूर्णतामें समझानेका प्रयत्न करती रही है।

व्यक्तिगत रूपसे मुझे कविताको कुछ इस प्रकार समझना अच्छा लगता है—जीवनके इस बहुत बड़े 'कार्निवाल' में कवि उस बहुरूपियेकी तरह है जो हज़ारों रूपोंमें लोगोंके सामने आता है, जिसका हर मनोरंजक रूप किसी-न-किसी सतह-पर जीवनकी एक अनुपम व्याख्या है, और जिसके हर रूपके पीछे उसका एक अपना गम्भीर असली व्यक्तित्व होता है जो इस सारी विविधताके बुनियादी खेलको समझता है।

● ●

समीक्षा और समीक्षा

समीक्षाके लिए पहली शर्त होती है कि समीक्षक
पूर्वग्रह रोगसे ग्रस्त न हो और न ही उसकी
समीक्षाका स्तर आलोच्य हो। पर,…

शिवचन्द्र शर्मा

नवलेखनके प्रसंगमें, सबसे पहले यह लिखना अनिवार्य प्रतीत होता है कि प्रत्येक नवारम्भकी तरह, उसका भी यह दुर्भाग्य है कि उसे स्वस्थ आलोचक नहीं मिले हैं। रचनात्मक साहित्यको, यदि औचित्यानौचित्यका विवेक, उसकी विशेषता और दोषको पकड़ने-परखनेकी समीक्षा नहीं प्राप्त होती है, तो समझना चाहिए, सही-ग़लत दिशाकी ओर जानेके लिए वह स्वतन्त्र है। बादमें, इसकी समीक्षा करनेवाले ही दोषी समझे जायेंगे। हमारे यहाँ, समीक्षकोंका भी कुछ दायित्व होता है, इसकी संज्ञा उन्हें नहीं होती, अतः बहुत-सी वैसी बातें समीक्षा-के नामपर आ जाती हैं, जिन्हें सहने, अनिच्छापूर्वक पीनेकी आदत डालनी पड़ती है। समीक्षाके बदले पैंतरेबाजियाँ ही पढ़ने-देखनेको मिलती हैं। इसके विपरीत जो होता है, उसपर सबका ध्यान नहीं जाता है। स्तरीय रचनात्मक साहित्यकी समीक्षाके लिए पहली शर्त होती है कि समीक्षक पूर्वग्रहरोगसे ग्रस्त न हो तथा उसकी समीक्षाका स्तर आलोच्य न हो।

कभी ऐसा होता है कि समीक्षकको समीक्ष्य सामग्री नहीं मिलती। कभी स्थिति आती है कि रचनात्मक साहित्यको अपेक्षित समीक्षा नहीं मिलती। पिछला दशक विविधताओं, विशेष रूपसे कथा-कविताओंका वाहक कहा जायेगा। इन दस वर्षोंमें, कथा-कविताओंके प्रकारने, पुरानी मज़बूत दीवारोंको दरारें दी हैं। कविताओंसे अधिक कथाओंने उस परम्पराको आघात पहुँचानेमें हद तक सफलता प्राप्त की है, जो समस्याएँ, सही समस्याओंको प्रस्तुत करनेके बजाय समाधान-निदान ही, आरोपित करनेके लिए व्यग्र रही हैं उस परम्पराको उपलब्धिके रूप-

में, ग्रहण करनेका विरोध उचित नहीं माना जाना चाहिए। परन्तु वास्तवको अस्वीकृत कर देना, संगत नहीं जान पड़ता। परम्परावलित उस उपलब्धिको, परिध्यावेष्टनको भी, दोष मानकर चलनेवाले, समर्थ समीक्षक नहीं उपलब्ध हुए। समीक्षकके लिए परिधि, आस-पासके बीच ही, रमने-रमाने, रँभानेवाला परिवेश, दूर भविष्यको भी भ्रान्त करनेका दायी होता है। रचनात्मक साहित्यिकोंसे स्तुति, यशोगान प्राप्त करनेकी स्वाभाविक दुर्बलता, उस युगके समीक्षकोंके मनमें शायद रही होगी।

व्यवसायके युगमें, समीक्षकोंकी यह प्रवृत्ति बदल गयी। उन्हें साहित्यिक घाटेका खयाल नहीं रहा, अपने मुनाफ़ेके मंसूबोंको वे ताखपर नहीं रख सकते थे। इस मानीमें, हर्गिज़ वे किसी मौधड़िकसे भिन्न, कम स्वसीमित या अपराधी नहीं कहे जायेंगे। साहित्यिक अपराधियों या उनकी क़िस्मोंपर हमारे यहां न विचार होते हैं, न मुक़दमे दर्ज किये जाते हैं, आये दिन अश्लीलतापर बेबुनियादी ढंगसे विचार सम्भव हो जाता है, और उचित-अनुचित रूपमें, अश्लीलताकी संज्ञा पानेवाली पुस्तकोंपर, सरकारकी ओरसे प्रतिबन्ध भी लगा दिये जाते हैं। यह सब ग़ैर-जिम्मेवार ढंगसे हो जाता है। परन्तु व्यवसायप्रवीण साहित्यिकों-द्वारा निन्द्य रूपसे अर्जित यशोधनपर कोई कारवाई नहीं की जा सकती, इसका फ़ायदा वे मार ले जाते हैं। दूसरी तरफ़ चर्चामें शुमार-मात्रसे सन्तुष्ट हो जानेवाले रचनाकारोंकी कथा कथ्य न बने, यही अच्छा है।

गत दो वर्ष निश्चय ही, कथा और कथाकारोंके वर्ष कहे जाने चाहिए। यह भी सत्य है कि नये कथाकारोंकी कथाओंमें जो नव्य आया है, वह पुरानी नव्यताको लाँघनेमें, एक सीमा तक सफल हुआ है। लेकिन उनके साथ ग़द्दारी यह हुई है कि खोटे सिक्के भी कम नहीं चलाये गये हैं। इसमें उनका अपराध उतना नहीं है, जितना समीक्षकोंका। समीक्षामें, अन्तिम रूपसे, निर्णयात्मक रूपमें, कोई सिद्धवाक्य कहनेसे बचना होता है। इसके बजाय इस्तेमाल यह हुआ कि 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्'; कहा यह गया है कि 'कार्यं प्रमाणं ते'। बम्बईके एक प्रसिद्ध साप्ताहिकमें, स्व-वक्तव्यके साथ कहानियाँ प्रकाशित हुई। वे जैसी आयीं, आयीं, उनपर कुछ लिखना बहरहाल अभीष्ट नहीं लेकिन उसी पत्रमें, बादमें चलकर, कथादशककी योजनापर जो समीक्षात्मक टिप्पणियाँ प्रकाशित हुईं, वे विचारदारिद्र्य, समीक्षाके सिद्धान्तके स्वाहाके द्योतक हैं।

आलोचनामें अनर्गलताकी भी गुंजाइश रहती है। समीक्षामें, युक्ति, संयम, अध्ययन, तटस्थता, परिग्रह, आदि कई बातें निहित होती हैं। इनके बारीक अन्तरको न समझकर, समीक्षक कहलाना ही पसन्द करनेवालोंकी संख्या इधर बढ़ी है, अतः ऐसे समीक्षकोंकी समीक्षाओंपर भी किंचिन्मात्र विचार प्रकट करने-का उचित साहस ले रहा हूँ। प्रत्येक दशकमें, दो-चार नामवर-बरनाम समीक्षक उत्पन्न होते रहे हैं। बनाने-बिगाड़ने, बिगाड़ने-बनानेमें, और जो कुछ उनका अपना बनता रहा हो, इसमें एक वैसा स्वाद उन्हें अवश्य प्राप्त होता है, जो ईमानदारी बरतने और परिवेश-परिधिके बाहर जानेसे, हर्गिज़ नहीं प्राप्त होता। मानुषरक्तपायी होनेपर ही कोई व्याघ्र 'मानुषखेका बाघ' बनता है। वातायन रहित कक्षमें निवास करनेवाले समीक्षक, समीक्षामें बँधनेवाली, चर्चामें आनेवाली कहानियों, दूसरे प्रकारकी रचनाओंकी नोटिस लेना जरूरी नहीं मानते। इस मामलेमें, वे 'रचनाखेका बाघ' होते हैं। हिन्दी साहित्यमें, ऐसे समीक्षकोंकी व्यापार प्रवृत्तता, अथवा हिन्दीतर साहित्याध्ययनविमुखता और पहलेसे देखी जा सकती है।

यहींपर एक बातकी ओर संकेत कर देना आवश्यक समझता हूँ कि इधर हिन्दी-आलोचनामें मनोदशा, विधा, शिल्प और रॉ मिटिरियल आदि शब्दोंका व्यव-हार फ़ैशनके रूपमें इस फूहड़पनसे हो रहा है कि इनके अर्थान्तरन्यासको खतरे हैं।

लिखना न होगा कि आज भी पारम्परिक आवृत्ति-मनोवृत्ति जारी है। और यह मात्र कारगुज़ारीके लिए कारगुजारी रूपमें। 'हाशिये पर', 'मेरा हमदम : मेरा दोस्त' और समकालीन कहानी-साहित्यके विवेचन-प्रसंगमें, जो कुछ हमारी पकड़में आया है, उसमें कौशलकी परेशानियाँ चाहे जितनी हों, जिस रूपमें हों, कथ्यकी कहानियाँ नानीकी कहानियोंसे बेहतर नहीं बन पड़ी हैं।

'नोट्स ऐण्ड पेपर्स ऑव जी० एम० हॉपकिंस' या इस तरहकी अन्य अनेका-नेक संग्रहणीय पुस्तकोंको देखनेके उपरान्त, इसपर दो मत नहीं हो सकते हैं कि हाशियेपर लिखी गयी टिप्पणियाँ महत्त्वपूर्ण होती हैं।

हमारे यहाँ दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि 'हाशिये पर' जो कुछ लिखा गया है वह नोट्स नहीं नोट है, नोटके लिए अमहत्त्वपूर्ण। यह चल सके, चाहे किसी सीमामें, बात अलग है। शेष दोपर जो, लब्धांश क्रमशः, योग्यता रखते हैं; वे व्यक्तिगत, ग़ैरजिम्मेवार फाहसापन और सीमित, ढुलमुल सिद्धान्त-फ़ैशन-सलीकों-से परे 'हाशिये पर'की गुणवत्तासे भिन्न कदाचित् नहीं कहे जायेंगे।

● ●

आदर्श और यथार्थके सचेत द्रष्टा स्व० उदयशंकर भट्ट

एक स्मरण, एक श्रद्धांजलि

सुबोध शास्त्री

"युग-बोध शब्द जीवनके साथ-साथ चलता है। नये मूल्य हम : जीवनके नये प्रश्नोंके रूपमें आते हैं। निश्चय ही पुराने लोग पुराने युग-बोधको ही स्वीकार कर सकते थे। यह स्वाभाविक भी है आजके युग-बोधी लेखक कल बासी हो जायेंगे।.....पीढ़ियोंका संघर्ष तो है ही। नया युग-बोध भी नयी पीढ़ीका है। आजके परिवर्तित होते सामाजिक, आर्थिक प्रश्नोंके साथ जैसे नयी पीढ़ी जुड़ी हुई है उसी प्रकार पुरानी पीढ़ीके सामने तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक मूल्य थे। कुछ भी कहिए, सजग व्यक्ति अपने युगसे प्रभावित होता ही है।"

गत २८ फ़रवरीको श्री उदयशंकर भट्टके देहावसानकी खबर मिली तो सहसा उनकी ये कुछ पंक्तियाँ याद हो आयीं। स्व० भट्टजीने अपनी ये मान्यताएं कुछ पहले एक अनौपचारिक इण्टरव्यू देते समय व्यक्त की थीं। सम्भव है उनके ये स्पष्ट विचार आज किसी वर्गविशेष-द्वारा मात्र पुरानेपनकी वकालत या सफ़ाईके रूपमें स्वीकार कर, महत्त्वपूर्ण न माने जायें। कहना न होगा कि यह सम्भावना विशेष रूपसे इस कारण भी है कि परम्पराके नामपर सब कुछ तिरस्कृत और अछूत मान लेनेकी आज एक चलन-सी है। परम्परा और संस्कृतिके ही सन्दर्भमें स्व० भट्टजीकी यह दो टूक बात भी कुछ लोगोंके लिए अतिरिक्त विस्मय और कुछके लिए क्षोभ कम—वितृष्णाका अधिक कारण हो सकती है कि—"परम्परासे यदि तात्पर्य तज्जन्य विकृति और रूढ़ियोंसे है तो मुक्ति निश्चय ही मिलनी चाहिए, लेकिन यदि तात्पर्य चेतना और स्वच्छ संस्कारोंकी परम्परासे है तो उसे छोड़कर हम लँगड़े और अन्धे ही हो सकते हैं। संस्कृति सदा जीवनकी तरह

प्रवहमान होती है। चेतना यानी पूर्वार्जित ज्ञानकी चेतना यदि नष्ट हो जाती है तो हम कैसे जी सकते हैं। कोई भी जाति केवल नये मूल्योंके अनगढ़ पत्थरोंपर नहीं जी सकती।''

भट्टजीकी ये मान्यताएँ न केवल मान्यताएँ हैं बल्कि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व दोनोंमें ही इनका अद्भुत संयोग है। वे आदर्श और यथार्थके सचेत द्रष्टा और भोक्ता थे। और यही कारण है कि अपनी पीढ़ीके अन्य लोगोंके बीच उनकी एक अलग आवाज़ हमेशा ही नयी पीढ़ीके द्वारा आदर और स्नेह पाती रही। उन्होंने जीवनमें सच्चाई और ईमानदारीको ही प्रमुखता दी और वही उनके साहित्यमें प्रकट भी हुई। उन्होंने अपने कृतित्वके माध्यमसे जहाँ एक ओर व्यक्ति और समाजकी गतिविधियोंको वाणी दी है वहीं उन्होंने संस्कृति और सभ्यताका यथार्थ चित्र अंकित किया है। धर्मके नामपर साम्प्रदायिकता और आधुनिकताके नामपर मानसिक दासताका भट्टजीने तीखा विरोध ही नहीं, अपने साहित्यमें उनका परदाफ़ाश भी किया। शायद अपने लेखकके प्रति ईमानदारीको ही ध्यानमें रखकर उन्होंने कभी कहा था—

> ''जो कुछ मैंने लिखा धरोहर है वही
> जाने कितना व्यर्थ और कितना सही।
> जो कुछ सुन्दर, और सत्य देवि का दान है,
> बाक़ी है सब व्यर्थ, सृजन-अभिमान है।''

काव्य, नाटक, एकांकी, उपन्यास, निबन्ध और सम्पादित कुल उनचास कृतियाँ भट्टजीकी प्रकाशित हो चुकी हैं। निश्चय ही कुछ-न-कुछ उनका अप्रकाशित भी होगा। पिछले पचास वर्षोंका उनका यह सारा कृतित्व कहें तो इस अवधिके साहित्यका इतिहास और उसकी प्रगतिका एक जीवन्त दस्तावेज है। प्रस्तुत लेखमें उनके समग्र कृतित्वकी संक्षेपतः विवेचना भी न सम्भव है और न अपेक्षित हो। यह अवश्य है कि साहित्यके 'ईमानदार' समीक्षकोंने भट्टजीके कृतित्वके प्रति अतिरिक्त असावधानी बरती है। इतना सब लिखनेके बावजूद यह साहित्यकार आलोचकोंकी उपेक्षा ही पाता रहा। कारण स्पष्ट है—भट्टजी कभी किसी भी एक वाद या गुटके नहीं रहे जब कि हिन्दीके आलोचक किसी-न किसी वाद और गुटके प्रति प्रतिश्रुत रहे। अतः भट्टजीके साहित्यके प्रति आलोचकोंकी तथाकथित कृपा स्वाभाविक ही कही जायेगी।

स्व० उदयशंकर भट्टका जन्म उनके ननिहाल इटावामें ३ अगस्त १८९८ में हुआ था। मूलत: गुजरातके होते हुए भी भट्टजी उत्तरप्रदेशके ही माने जाते रहे। उनका प्रारम्भिक जीवन अधिकांश यहीं बीता। प्रारम्भिक शिक्षा भी कर्णवास और अज़मेरमें हुई। एक ओर वे धातु रूपावली, अमरकोश और चाणक्यनीति कण्ठस्थ करते तो दूसरी ओर अँगरेज़ीका अध्ययन चलता। घरका वातावरण संस्कृतमय था और घरेलू बातचीतमें भी अधिकांशतः संस्कृत ही व्यवहृत होती थी। अपने प्रारम्भिक शिक्षाकालमें ही उदयशंकरजी कभी-कभी अनुष्टुप् छन्दोंमें कविताएँ लिखा करते थे। काव्यकी ओर उनकी रुझान अपने पिता पं० मेहता फतेहशंकर भट्टकी अव्यक्त प्रेरणासे ही हुई थी। पिता भी व्रजभाषामें कवित्त और सवैयोंकी रचना करते, और यत्र-तत्र आयोजित गोष्ठियोंमें भाग लेते थे। उदयशंकरजीने भी अपनी रचनाका प्रारम्भ व्रजभाषासे ही किया था।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे बी० ए०, पंजाबसे शास्त्री और कलकत्तासे काव्यतीर्थ करनेके बाद भट्टजीने लाहौरके लाला लाजपतराय नेशनल कॉलेजमें अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। उस समय असहयोग आन्दोलनका दौरदौरा था और भट्टजीके लिए उस दौरसे बचना कठिन था। अतः कांग्रेस-द्वारा संचालित स्वतन्त्रता आन्दोलन और साथ ही सशस्त्र क्रान्तिकारियोंके कार्यक्रमोंमें वे बराबर हिस्सा लेते थे। अध्यापनकालमें ही उनकी नाट्य-लेखनकी ओर रुचि हुई और उस समय उन्होंने 'असहयोग और स्वराज्य' तथा 'चित्तरंजनदास' नाटक लिखे जो अपनी सामयिकताके कारण उस समय काफ़ी चर्चित हुए। देशके स्वाधीन होनेके बाद भट्टजी कई वर्षों तक आकाशवाणीके परामर्शदाता और निदेशकके पदोंपर रहे। फिर अवकाश ग्रहण करनेके बाद वे आजीवन स्वतन्त्ररूपसे लेखन-कार्य करते रहे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, अबतक उनकी उनचास कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं और एक विज्ञप्त अप्रकाशित। वे सब ये हैं—

● कविता :

१. तक्षशिला; खण्ड काव्य, १९२८; २. राका : कविता-संग्रह, १९३०; ३. विसर्जन : कविता-संग्रह, १९३१; ४. मानसी : खण्ड काव्य, १९३३; ५. अमृत और विष : कविता-संग्रह, १९४४; ६. युग दीप : कविता-संग्रह १९४४; ७. यथार्थ और कल्पना : कविता-संग्रह, १९४८. ८. कौन्तेय कथा :

खण्ड काव्य, १९५०; ९. अन्तर्मन्थन: कविता-संग्रह, १९६०; १०. कणिका : मुक्तक संग्रह, १९६१; ११. इत्यादि : कविता-संग्रह, १९६१; १२ मुझमें जो शेष है : कविता-संग्रह, १९६५।

• नाटक :

१३. विक्रमादित्य : १९२९; १४. दाहर अथवा सिंहपतन : १९३०; १५. विद्रोहिणी अम्बा; १९३१; १६. सागर विजय : १९३२; १७. कमला : १९३५; १८. अन्तहीन अन्त : १९३८; १९. मुक्तिदूत : १९४४; २०. शक-विजय : १९४८; २१. क्रान्तिकारी : १९५३; २२. नया समाज : १९५५; २३. अशोक बन्दिनी : गीतिनाट्य, १९५८; २४. पार्वती : १९५८; २५. एकला चलो रे : पद्य नाटिका, १९५८; २६. नहुष-निपात : १९६१।

• एकांकी :

२७. अभिनय एकांकी : १९३३; २८. विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य : १९३५; २९. आदिम युग और अन्य नाटक : १९३६; ३०. स्त्रीका हृदय : १९४०; ३१. समस्याका अन्त : १९४७; ३२. कालिदास : ध्वनि रूपक, १९४८; ३३. धूमशिखा : १९५०; ३४. अन्धकार और प्रकाश : १९५२; ३५. परदेके पीछे : १९५४; ३६. आजका आदमी, १९५९; ३७. जवानी और छह एकांकी १९६१; ३८. सात प्रहसन : १९-६२; ३९. नारीके रूप : १९६२, अप्रकाशित।

• उपन्यास :

४०. एक नीड़ दो पंछी : १९४०-४३; ४१. नये मोड़ : १९४८; ४२. लोक-परलोक, १९५५; ४३. शेष अशेष : १९५८; ४४. सागर, लहरें और मनुष्य १९५९ : ४३. दो अध्याय : १९६२।

• निबन्ध :

४६. साहित्यके स्वर : १९६१।

• सम्पादन :

४७. कृष्ण चन्द्रिका : गुमानी मिश्र १९२३; ४८. शकुन्तला : कालिदास, १९३८; ४९. समस्याएँ और हम : एकांकी, १९५०; ५०. जीवन और संघर्ष, १९५२।

निस्सन्देह स्व० भट्टजीको जो कुछ देना था वे दे चुके थे, अपनी ओरसे तो वे भरपाई ही कर चुके थे। अब हमारे सोचने-देखनेकी बात यह है कि हमने उन्हें क्या दिया? शायद कुछ भी नहीं! काश, अपने दायित्वको हम अब भी गहराईसे अनुभव करते।

इस वर्षके साहित्य अकादेमी पुरस्कार

इस वर्ष (१९६५) साहित्य अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत-सम्मानित कृतियोंका संक्षिप्त परिचय

सन् १९५४ में साहित्य अकादेमीकी स्थापनाके समयसे ही प्रतिवर्ष अकादेमीकी ओरसे भारतीय भाषाओंके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थोंपर पाँच-पाँच हजार रुपयेके पुरस्कार दिये जाते हैं। ये पुरस्कार साहित्य अकादेमी-द्वारा मान्य सोलह भाषाओंमें प्रकाशित कृतियोंपर दिये जाते हैं जिनमें भारतीय लेखकों-द्वारा व्यवहृत अंगरेजी भी सम्मिलित है। संस्कृतमें दो पुरस्कार रखे गये हैं: एक सृजनात्मक कृतिपर, और दूसरा किसी भी भारतीय भाषा या अँगरेजीमें संस्कृत-विषयक शोध अथवा व्याख्यापर। पुरस्कारके लिए उन्हीं ग्रन्थोंपर विचार होता है जो पुरस्कारके वर्षसे पिछले तीन वर्षोंकी अवधिमें पहली बार प्रकाशित हुए हों।

पुरस्कारके लिए ग्रन्थका वरण करनेकी प्रणाली इस प्रकार है: प्रत्येक भाषाके कतिपय प्रमुख लेखकों, समीक्षकों और विद्वानोंसे यह अनुरोध किया जाता है कि वे गोपन रूपसे ऐसे ग्रन्थोंकी अनुशंसा करें जिन्हें वे पुरस्कारके लिए विचार-योग्य मानते हों। इस प्रकार जो नाम प्राप्त होते हैं उनकी सम्पूर्ण तालिका उनके पास इस निवेदनके साथ दोबारा भेजी जाती है कि अब वे तालिकामें उल्लिखित ग्रन्थोंमें-से जिसे सर्वोत्तम समझते हों उसका चुनाव कर दें। इन चुने हुए ग्रन्थोंकी प्रतियाँ तीन सदस्योंकी एक वाचक समितिके पास भेज दी जाती हैं। ये वाचक गोपन रीतिसे प्रत्येक ग्रन्थपर पृथक्-पृथक् रूपमें अपना निश्चित अभिमत भेजते हैं। बादमें ये अभिमत अकादेमीके कार्यकारी-मण्डलके समक्ष उपस्थित किये जाते हैं, जो पुरस्कारोंकी घोषणा करता है। प्राप्त अभिमतोंके

आधारपर यदि कार्यकारी-मण्डलको यह लगता है कि अमुक भाषामें पुरस्कार देना संगत नहीं है तो उस भाषामें पुरस्कार नहीं दिया जाता। पुरस्कारके रूपमें प्रत्येक पुस्तकके लेखक अथवा उसके उत्तराधिकारीको नामांकित ताम्र-फलक सहित एक मंजूषा और पाँच हज़ार रुपयेका चैक प्रदान किया जाता है।

इस वर्ष (१९६५) जो कृतियाँ पुरस्कृत-सम्मानित हुई हैं उनका परिचय इस प्रकार है :

'स्मृति सत्ता भविष्यत' : (बँगला)

यह बँगलाकी पुरस्कृत कृति है, जो बँगलाके विशिष्ट कवि, समीक्षक और शिक्षाविद् श्री विष्णु दे की कविताओंका नवीनतम संग्रह है। १९५७–'६१ के बीच लिखी संग्रहकी कविताएँ एकाकी मानस-द्वारा अपने परिवेशसे सम्पृक्तिके पथपर कविके व्यक्तित्वके विकासकी एक नयी मंज़िलकी सूचक हैं। मानव-मनके उद्घाटनमें लगी गहरी अन्तर्दृष्टि और उत्कृष्ट शिल्पके लिए यह रचना समसामयिक बँगला साहित्यकी बड़ी उपलब्धि है।

'द ट्राइबल वर्ल्ड ऑव वेरियर एल्विन' : (अँगरेज़ी)

स्व० डॉ० वेरियर एल्विन जन्मना अँगरेज होते हुए भी भारतीय थे। अपने उत्कट आदर्शवाद और बौद्धिक कुतूहलके कारण ही वे भारतकी ओर आकर्षित हुए थे। 'द ट्राइबल वर्ल्ड ऑव वेरियर एल्विन' डॉ० एल्विनके विलक्षण जीवन-की गाथा है, जो उनके निधन (१९६४) के उपरान्त प्रकाशित हुई है। आन्तरिक सचाई, साहस और साहित्यसे रची गयी यह पुस्तक एक ऐसे मानसका उद्घाटन करती है जिसमें पाश्चात्य और भारतीय आदर्श अनुपम रीतिसे सम्पृक्त हैं। और यही कारण है कि स्व० एल्विनकी यह रचना अँगरेज़ीमें समसामयिक भारतीय लेखनकी महत्त्वपूर्ण देन मानी गयी है।

'जीवनव्यवस्था' : (गुजराती)

अबतक अस्सीसे अधिक ग्रन्थोंके प्रणेता, विशिष्ट विद्वान्, निबन्धकार तथा गान्धीवादके प्रमुख व्याख्याकार श्री काका साहेब (दत्तात्रेय बालकृष्ण) कालेलकरकी पुस्तक 'जीवनव्यवस्था' ने थोड़ी ही अवधिमें गुजराती साहित्य जगत्में अद्वितीय स्थान बना लिया है। यह कृति भारतीय समाजके सांस्कृतिक एवं धार्मिक पहलुओंपर एक लम्बी अवधिमें लिखे गये काका साहेबके चिन्तन-प्रधान

निबन्धोंका नवीनतम संग्रह है। वैचारिक प्रौढ़ता, मनीषाकी गहराई और उत्कृष्ट प्रसाद-शैलीके कारण 'जीवनव्यवस्था' न केवल गुजराती बल्कि समस्त भारतीय भाषाओंके साहित्य जगत्को गौरवान्वित करती है।

'रस-सिद्धान्त' : (हिन्दी)

सैद्धान्तिक आलोचनाके क्षेत्रमें शास्त्रीय मनीषाकी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है यह कृति—'रस-सिद्धान्त'। डॉ० नगेन्द्रकी यह पुस्तक आज हिन्दी जगत्में विवाद और चर्चाका विषय बन गयी है। 'रस-सिद्धान्त' में प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्रके सिद्धान्तोंकी पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या है और आजके साहित्यके अनुशीलनमें उनकी सार्थकताका प्रतिपादन। अनेक विवादास्पद सन्दर्भोंके बावजूद विश्लेषणकी प्रांजलता, विषयकी विशदता और ओजमय अभिव्यक्तिके कारण यह ग्रन्थ हिन्दीकी तथ्यत: एक उपलब्धि है।

'रंग बिन्नप' : (कन्नड़)

'रंग बिन्नप' कन्नड़को समादृत और प्रतिष्ठित वचन शैलीमें रची गयी विशिष्ट समीक्षक और कवि श्री एस० वी० रंगण्णकी सूक्तियों और चिन्तन-प्रधान मुक्तकोंका संग्रह है। गम्भीर चिन्तन और ज्ञानसे परिपूर्ण ये मुक्तक जीवन और जगत्की सार्थकताके सम्बन्धमें कवि-मानसमें उठनेवाली भाव-तरंगों और दार्शनिक उक्तियोंके रूपमें हैं। भाव-वस्तुका ऐश्वर्य और उत्कृष्ट अभिव्यक्ति इस संग्रहके मुक्तकोंकी अतिरिक्त विशेषता है। यही कारण है कि श्री एस० वी० रंगण्णकी यह कृति कन्नड़के साहित्य-जगत्में सम्मानित हुई है।

'मुत्तश्शी' : (मलयालम)

'मुत्तश्शी' मलयालमकी विशिष्ट कवयित्री श्रीमती नालापट्ट बालामणि अम्माकी कविताओंका नवीनतम संग्रह है। संग्रहका नामकरण इसमें समाविष्ट एक कविताके शीर्षकपर हुआ है। कहना न होगा कि अम्माकी मुख्य भावना मातृत्वकी ही रही है और इस विषयके चित्रणमें वे सर्वाधिक सफल रही हैं। कवयित्रीकी भावनाका यह वैशिष्ट्य 'मुत्तश्शी' संग्रहकी कविताओंमें भी मुखर है। भावनाओंकी कोमलता और दार्शनिक सम्मानके कारण कवयित्रीकी कविताएँ विशेष रूपसे आकर्षणका विषय बनती हैं। आन्तरिक ऋजुता, मार्दव और भावनाकी गहराईके लिए 'मुत्तश्शी' मलयालम साहित्यकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

'व्यक्ति आणि वल्ली' : (मराठी)

'व्यक्ति आणि वल्ली' अर्थात् व्यक्ति-चित्रों और रेखाचित्रोंका संग्रह। इसके रचयिता हैं मराठीके विशिष्ट आधुनिक नाटककार, हास्य-लेखक तथा अभिनेता श्री पु० ल० देशपाण्डे। विशिष्ट, आत्मीय और सप्राण शैलीमें लिखे रेखाचित्रों और व्यक्ति-चित्रोंका उनका यह संग्रह मराठी साहित्य-जगत्में न केवल सामयिक चर्चाका विषय बना वरन् सम्मानित भी हुआ। जगमगाते वर्णन और अन्तर्निहित मानवीयताके लिए यह पुस्तक मराठी साहित्यकी महत्त्वपूर्ण देन मानी गया है।

'उत्तरायण' : (उड़िया)

विशिष्ट उड़िया कवि श्री वैकुण्ठनाथ पट्टनायककी कविताओंका यह संग्रह 'उत्तरायण' आधुनिक उड़िया काव्यकी तथ्यत: उपलब्धि है। 'उत्तरायण' में कविकी दीर्घ अवधिमें लिखी गयीं कविताएँ संग्रहीत हैं। संग्रहकी सभी कविताएँ प्रभावोत्पादक हैं जो कविकी संवेदना और आदर्श-निष्ठाका ज्वलन्त साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। भावनाकी गहराई और पद्य-रचनाकी संगीतात्मकता संग्रहकी कविताओंका अतिरिक्त वैशिष्ट्य है।

'इक छिट्ट चानण दी' : (पंजाबी)

पंजाबी ही नहीं, हिन्दीके भी चहीते कथाकार श्री कर्तारसिंह दुग्गलकी कहानियोंका नवीनतम संग्रह है यह—'इक छिट्ट चानण दी'। श्री दुग्गलके इस संग्रहको कहानियोंमें एक प्रौढ़ मानसकी स्थिर और समग्र दृष्टि प्रतिफलित हुई है। गहरी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि, वर्णनकी ऊर्जा और कथा-शिल्पकी उत्कृष्टता, जो कि दुग्गलजीके लेखनकी विशेषता है, इन कहानियोंमें भी जीवन्त रूपसे मुखर है।

'श्री रामानुजर' : (तमिष्)

'श्री रामानुजर' के रचयिता हैं तमिष्के विशिष्ट विद्वान्, लेखक और पत्रकार श्री पी० श्री० आचार्य। 'श्री रामानुजर' भारतके महान् मध्ययुगीन सन्त एवं दार्शनिककी जीवनी है जिसमें उनके महान् व्यक्तित्व और कृतित्वका विशद वर्णन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही उसमें श्री रामानुजाचार्यके समयकी धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पीठिकाका भी परिचय समाविष्ट है।

ऐतिहासिक सामग्रीके विवेकपूर्ण उपयोग और वैष्णव दर्शनके महान् प्रवर्तकके जीवन और कालके विशद एवं मनोहारी वर्णनके कारण यह कृति तमिष् साहित्य-में अप्रतिम है।

'मिश्रमंजरी' : (तेलुगु)

साहित्य अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत ग्यारहवीं कृति है तेलुगुके विशिष्ट कवि आचार्य रायप्रोलु सुब्बारातुकी 'मिश्रमंजरी'। यह कृति उनके एक लम्बी अवधिमें लिखे गये प्रगीतोंका नवीनतम संकलन है।

और अब अकादेमी-द्वारा इस वर्ष पुरस्कृत अन्तिम कृति है—

'एक चादर मैली-सी' : (उर्दू)

जो एक लघु-उपन्यास है। श्री राजेन्द्रसिंह बेदीके इस उपन्यासमें भारतीय ग्रामीण जीवनकी निश्चल सतहके नीचे प्रवाहित निर्मम विडम्बनाकी भीषण अन्तर्धारा अंकित है। श्री बेदीकी लेखनीका मोहक कमाल, सशक्त चरित्र-चित्रण और अन्तर्निहित मानवीयता इस उपन्यासकी अतिरिक्त विशेषताएँ हैं।

[अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत इन बारहों कृतियोंके कृतिकारोंका परिचय 'पत्रिका'के आगामी अंकमें कृपया देखें।]

● ●

राष्ट्रभारती
परिवेश और उपलब्धियाँ

यह स्तम्भ इसीलिए कि सहवर्ती भाषाओं-
के साहित्यकी दिन-प्रमित गतिविधि
और उपलब्धियोंसे हिन्दी-जगत्
परिचित हो।

कन्नड़का कहानी-साहित्य

सोमशेखर 'सोम'

कहना न होगा कि कन्नड़का कहानी साहित्य उपन्यास साहित्यकी अपेक्षा अधिक विकसित और समृद्ध है। कन्नड़में कहानी-लेखनका प्रारम्भ १९२० से हुआ। और यह प्रारम्भ स्व० श्री मंजे मंगेशरायके कहानी-लेखनसे माना जाता है। यही नहीं कन्नड़के आलोचक श्री मंगेशजीको कन्नड़ कथा-साहित्यके जनकके रूपमें स्वीकार करते हैं। यद्यपि संख्याकी दृष्टिसे श्री मंगेशने अधिक कहानियां नहीं लिखीं फिर भी उनकी लिखी कहानियोंने कन्नड़के कथा-साहित्यको एक स्वस्थ दिशा दी है। उस काल दूसरे प्रमुख कथाकार स्व० केरूर वासुदेवाचार्य रहे हैं। इनका अवतरण तब हुआ जब उत्तर कर्नाटकमें धुआँधार साहित्यिक आन्दोलन हो रहा था। उस आपत्कालीन परिस्थितिमें वासुदेवाचार्यजीने 'सचित्र भारत' और 'शुभोदय'के सम्पादनके माध्यमसे कन्नड़ कथा-साहित्यके विकासमें महत्त्वपूर्ण योग दिया। इन्होंने ऐतिहासिक और सामाजिक कहानियाँ लिखीं जो तत्कालीन प्रवृत्तियोंकी मानदण्ड-जैसी हैं। इनकी कहानियोंपर मराठी तथा संस्कृत कथा-शिल्पका काफ़ी प्रभाव दिखाई पड़ता है। श्री मंगेशजीने तो अधिकांशमें जासूसी और ऐय्यारी कहानियाँ लिखीं।

हिन्दी कथा-साहित्यमें मुन्शी प्रेमचन्दका जो स्थान और महत्त्व है कन्नड़-कथा-साहित्यमें वही स्थान श्री मारुति वेंकटेश अयंगार 'श्रीनिवास'का है। कहें

तो 'श्रीनिवास'जी कन्नड़ कहानी साहित्यके सम्राट् हैं। भिन्न-भिन्न कहानी-संग्रहोंमें अबतक इनकी साठसे अधिक कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। कन्नड़-साहित्यके प्रसिद्ध आलोचक श्री मुगलीके शब्दोंमें 'जनजीवनमें गहरी आसक्ति, लोक-कथाओंके प्रति तीव्र कुतूहल, कन्नड़ संस्कृतिके प्रति विशेष आदर आदि विशेषताएँ इनकी कहानियोंमें साकार हो उठी हैं।" 'श्रीनिवास'जीकी कई कहानियाँ मानव-जीवनकी ज्वलन्त प्रतीक हैं और उनमें मानव-मनकी विशिष्ट तथा सामान्य स्थितियोंकी बड़ी ईमानदार अभिव्यक्ति हुई है। कहना आवश्यक है कि कन्नड़ कथा-साहित्यको यदि वास्तविक साहित्यिक स्वरूप किसीसे प्राप्त हुआ है तो वह 'श्रीनिवास'जीकी ही कहानियोंसे। उनकी अपनी जीवन-दृष्टि-ने कथानकको सुदृढ़ बनाया जिससे उनकी कहानियोंने पाठकके मनपर गहरा प्रभाव डाला और उसे झकझोर दिया। कहनेका आशय यह है कि 'श्रीनिवास'-जीकी कथा-वस्तुएँ जन-मानसकी हैं और उनमें तत्कालीन सामाजिक समस्याओं-पर बड़ी मार्मिक शैलीमें विचार किया गया है। 'श्रीनिवास'जीने ऐतिहासिक और पौराणिक कहानियाँ भी लिखी हैं। इनकी सर्वोत्तम कहानी 'माया' मानी जाती है। इनके समकालीन कथाकारोंमें सर्वश्री नवरत्न रामराय, ए० आर० कृष्णशास्त्री तथा एस० जी० शास्त्रीके नाम उल्लेखनीय हैं। इन लोगोंकी कहानियोंमें वस्तुतः जीवन-निरीक्षण, परिपक्व अनुभव तथा सरल-सरस कला उभरकर स्पष्ट हुई है।

कन्नड़ कथा-साहित्यमें दूसरा महत्त्वपूर्ण नाम श्री आनन्दकन्दका है जो हमारे बीचसे दो वर्ष पहले ही चले गये। ग्रामीण जीवनकी समस्याओं, वहाँकी मार्मिक और यथार्थ अनुभूतियाँ आनन्दकन्दजीकी कहानियोंमें जीवन्त रूपसे स्पष्ट हुई हैं। इनके साथ अन्य कथाकारोंमें सर्वश्री कारन्त, देवुडु, सी० के० वेंकट-रामय्या आदि हैं, कारन्तजीकी कहानियोंमें सामाजिक जीवनकी कटु आलोचना है और देवुडुजीने अपनी कहानियोंमें मनोवैज्ञानिक ढंगसे मानव-मनका अध्ययन किया है। श्री कृष्णकुमार कल्लूरका कथा-संग्रह 'ब्रिसिल गुड्डे', काफ़ी प्रसिद्ध है, जिसमें उन्होंने काव्यात्मक रीतिसे अपनी अनुभूतियोंको वाणी दी है।

श्री गोरूर रामस्वामी अयंगारने अपनी कहानियोंमें ग्रामीण जीवनके सजीव चित्र प्रस्तुत किये हैं और श्री बसवराज कट्टीमनीने गाँव और शहर दोनोंके चित्रण किये हैं। कन्नड़ कथा-साहित्यमें श्री ह० वि० जोशीका नाम बड़े गौरवके साथ लिया जाता है। 'भाव-प्रभाव'में संग्रहीत इनकी कहानियाँ आज भी अमर

हैं। इसके पीछे जोशीजीका निरन्तर परिश्रम तथा कहानी-कलापर अधिकार ही बताया जा सकता है। इनकी कहानियोंकी बड़ी विशेषता एक यह भी है कि छोटी-छोटी-सी घटनामें भी इन्होंने समर्थ शिल्पके चलते समाजके सम्मुख वास्तविकताएँ प्रस्तुत की हैं। श्री टेंग्से गोविन्द रायकी कहानी 'गंगेय गुल्लिगे' कन्नड़ कथा-साहित्यमें अपनी विशिष्टताओंके लिए काफ़ी प्रसिद्ध है। इन्हींके समकालीन श्री मुगुलीकी कहानी 'कनसिन केलदि' भी काफ़ी प्रसिद्ध हुई है। हास्य कथाएँ भी कन्नड़में लिखी गयी हैं—लेकिन कम। कन्नड़के हास्य कहानीकारोंमें भी गोरूर और पड़कोड़े रमानन्द प्रमुख हैं।

हिन्दीमें जो स्थान जयशंकर प्रसादका है वही कन्नड़में बेन्द्रेका। प्रसादजीकी भाँति बेन्द्रे पहले कवि हैं फिर कथाकार। बेन्द्रेजीकी कहानियोंमें जीवनकी आन्तरिक पीड़ाएँ राग-द्वारा फूटकर व्यक्त हुई हैं। बेन्द्रेकी प्रायः सभी कहानियाँ काव्यात्मक हैं। १९६० में प्रकाशित श्री अ० न० कृष्णरायका कथा-संग्रह 'समर सुन्दरी' इन दिनों कन्नड़ साहित्य-जगत्में काफ़ी चर्चित रहा है। छोटे-छोटे वाक्यों और मार्मिक कथोपकथनोंके कारण कृष्णरायकी कहानियाँ सफल मानी जाती हैं। श्री अश्वत्थकी कहानीकला 'श्रीनिवासजी' की याद दिलाती है। इनकी 'कटुक' नामक कहानी कोरिया-युद्धकी पृष्ठभूमिपर लिखी हुई है और बहुत अच्छी कहानी है।

कन्नड़की नयी कहानीके कथाकारोंमें सर्वश्री निरंजन, वरदराज हुइलगोल, वें० मु० जोशी, जी० शं० परमशिवय्या, कुलकर्णी बिन्दुमाधव प्रमुख हैं। बिलकुल नये कथाकारोंमें सर्वश्री के० रामकृष्ण भट्ट, उद्यावर माधव आचार्य, दु० मि० बेलगली, एस्० व्ही० श्रीनिवासराव, न० सुब्रह्मण्य, म० वि० नायक, अनन्तराव भोसगे, रा० सु० मणि, ना० डिसोज, शिवलेंक आदि विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

कन्नड़ कथा-साहित्यमें महिला कथाकारोंका भी महत्त्वपूर्ण योग रहा है, जिनमें प्रमुख हैं—श्रीमती वाणी एच्० व्ही० सावित्रम्मा, जयलक्ष्मी श्रीनिवासन, त्रिवेणी अनुपमा, गीता कुलकर्णी, उषा देवी, आनन्दी सदाशिवराव, राजलक्ष्मी, एन० राव, राजेश्वरी, एम० के० इन्दिरा, एम० के० जयलक्ष्मी, सुशीला कोय्यर, एच्० एस्० पार्वती आदि। इनमें-से अधिकांशने सरल शैलीमें सामाजिक समस्याओंको अपनी कहानियोंका केन्द्र माना तथा नारी जीवनकी पारिवारिक समस्याओंके समाधान प्रस्तुत किये।

अन्य भारतीय भाषाओंका कथा-साहित्य भी कन्नड़में काफी मात्रामें प्रस्तुत किया जा रहा है। श्री दस्तगीर और सोमशेखर 'सोम' ने अनेक कहानियोंके अनुवाद कन्नड़में किये हैं। इसी सन्दर्भमें उन पत्र-पत्रिकाओंके योगदानका महत्त्व स्वीकारना होगा जिनमें 'कैलाश', 'सुधा', 'कर्मवीर' कस्तूरी आदि प्रमुख रूपसे उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कन्नड़के कहानी-साहित्यका इतिहास एक लम्बी अवधिका है और वह आज भी प्रगति-पथपर अग्रसर है। आजकी कन्नड़ कहानी भी अपनी सीमाओंमें आधुनिक समस्याओंका समाधान खोज रही है। ऐसी बात नहीं है कि कन्नड़की कहानियाँ दोष-मुक्त हैं। उनका परिहार आवश्यक है; और यह सन्तोषकी बात है कि कन्नड़के सचेत कथाकार इस ओर प्रयत्नशील हैं।

●

आधुनिक पंजाबी नाटक और मंच

वसुव्यास 'अनल'

आधुनिक पंजाबी नाटकोंका सिंहावलोकन करनेपर हमें अनेक कमजोरियोंका पता लगता है। अभिनय, मंचका ध्यान और निर्देशन-कलाका अभाव प्राय: प्रत्येक नाटकमें देखनेको मिलता है। अधिकांश नाटक तो केवल इसीलिए लिखे गये हैं कि वे पाठ्य-पुस्तकोंमें स्थान पा सकें। मैं इस लेखमें केवल पंजाबी नाटकका संक्षिप्त इतिहास, उसकी रूपरेखा और क्रमश: विकासपर ही प्रकाश डालूँगा।

प्रो० नन्दा आधुनिक पंजाबी मंचके प्रणेता कहे जा सकते हैं। वैसे पंजाबीमें नाटक लिखे जानेका कार्य पिछले कुछ वर्षोंसे ही प्रारम्भ हुआ है। किन्तु प्रो० नन्दा शुरूसे ही अच्छे नाटक लिखते आये हैं। उनके कथानक बहुधा आदर्शवादी होते हैं और उनके नाटकोंकी विशेषता है भाषाकी प्रांजलता। उनके पात्रोंका चरित्र-चित्रण अत्यन्त सावधानीपूर्वक होता है किन्तु उनमें-से कुछ विशेष नमूने होते हैं। यदि इसके कारण नाटकमें कृत्रिमता आयी हो तो प्रो० नन्दाको पंजाबी नाटकोंके उन पुराने दोषोंको दूर करनेका श्रेय भी है, जो केवल उर्दू भाषामें लिखे गये यथार्थवादी नाटकोंकी सामाजिक समस्याओंपर ही प्रकाश डालते थे।

प्रो० नन्दाकी एक दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने अनेक नाटक लिखकर

पंजाबी भाषाकी दयनीय अवस्थाको दूर किया। अनेक एकांकी नाटक और पूरे नाटक लिखकर उन्होंने समाजमें उच्चतम स्थान प्राप्त किया जिससे अन्य कवि और लेखकोंकी तरह पंजाबी साहित्यकी नींवमें अपना सहयोग देनेका श्रेय भी उन्हें प्राप्त है।

नये नाट्य-लेखकोंमें जोशुआ फ़ज़लदीनका नाम उल्लेखनीय है। उनका 'पिण्ड दे वैरी' नाटक प्रसिद्ध है। इस नाटकका कथानक आदर्शवादी है जिसमें समाजकी कुत्सित रीति, प्रथाओं एवं आदतोंपर प्रकाश डाला गया है। भाषामें प्रान्तीयता भले ही हो किन्तु वे पंजाबी कृषकके जीवनसे परिचित थे, ऐसा नहीं दिखाई देता। यही कारण है कि यथार्थवादसे भटककर आदर्शवादके प्रवाहमें उनके नाटक ठीक उसी तरह कमज़ोर मालूम होते हैं जिस तरह प्रो० नन्दाके लिखे हुए कुछ प्रारम्भिक नाटक।

रफ़ी पीर (जो आजकल पाकिस्तानमें बस गये हैं) ने भी जोशुआ फ़ज़लदीनके समयमें ही लिखना प्रारम्भ किया था किन्तु उनके कथानक प्रेम, घृणा और वासनासे ओतप्रोत हैं। उनके 'अखियाँ' और 'बैरी' आधुनिक पंजाबी एकांकी नाटकोंके प्रथम उदाहरण कहे जा सकते हैं, जिनमें चरित्र-चित्रण, रसोत्कर्ष और नाटकमें होनेवाला उतार-चढ़ाव प्रमुखतासे दिखाई देते हैं। उनके नाटक मंचकी दृष्टिसे विशेष महत्त्व नहीं रखते, फिर भी उनका महत्त्व कम नहीं कहा जा सकता।

तत्पश्चात् सन्तसिंह सेखोने मानव-जीवनकी समस्याओंपर प्रकाश डालनेवाले नाटकोंको लिखनेका दावा किया। लेकिन यह क़ैफ़ियत नाट्य-लेखककी दृष्टिसे उनकी कमज़ोरियोंका परदाफ़ाश करती है। सेखो कृषक परिवारमें भले ही उत्पन्न हुए हों लेकिन कृषक-जीवनके कटु-सत्योंको उन्होंने कभी नहीं परखा और यही कारण है कि उनके नाटकोंमें कृषक-जीवनके सत्योंपर कोई प्रकाश नहीं पड़ा।

प्रो० हरचरणसिंह एक दूसरे प्रसिद्ध नाटककार हैं। उन्होंने आठ पूरे और दस एकांकी लिखे हैं उनके एकांकी नाटक विशेषतः ग्रामीण कथानकोंपर आधारित हैं। 'अँजोर', 'राजापुरस' और 'दोषी' उनके पूरे नाटकोंमें-से उल्लेखनीय हैं जिनके कथानक शहरकी सामाजिक समस्याओंपर प्रकाश डालते हैं। हरचरणसिंहके नाटकोंकी विशेषता है—भावोंकी सूक्ष्मता, पात्रोंका स्पष्ट

चरित्र-चित्रण और समस्याओंके महत्त्वका अनूठा प्रस्तुतीकरण। नाटकोंके संवादोंमें कृत्रिमता झलकती है। उनका नया नाटक 'गसोहादा-चाँद' यथार्थतासे परे है और उसके दूसरे अंकका कथानकसे कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। प्रो० हरचरण सिंहको अनेक पंजाबी नाटकोंका सफलतापूर्वक निर्देशन करनेका श्रेय भी प्राप्त है।

कर्तारसिंह दुग्गल एक अच्छे उपन्यासकार-कहानीकार हैं, लेकिन वे नाटकके आवश्यक गुणों एवं अंगोंसे परिचित नहीं हैं। रेडियो तकनीकसे परिचित होनेके कारण उनके नाटक केवल ध्वनिकी दृष्टिसे महत्त्व रखते हैं, मंचकी दृष्टिसे नहीं। यही कारण है कि उनके एकांकी विशेष प्रसिद्ध नहीं हो सके। अभी-अभी उनका लिखा हुआ नाटक 'दिया बुझ गया' अवश्य लोकप्रिय हुआ है।

बलवन्त गार्गी एक सफल नाटककार हैं और प्रो० नन्दाके पश्चात् उनके विषयमें ही यह कहा जा सकता है कि उन्हें मंचका विशेष अध्ययन और अनुभव है। उनकी नाटकीय विचारधारा, नाटकके कथानकोंको सफलतापूर्वक गूँथनेका ढंग तथा पंजाबी भाषापर अधिकार, उनके नाटकोंको लोकप्रिय बनानेमें सफल हो सका है। गार्गीने अनेक एकांकी नाटक लिखे हैं। उनके पूरे छह नाटकोंमें 'लोहा-कूट' और 'केसरी' बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके नाटकोंमें यथा-समय हास्य-रसके फ़व्वारे भी झरते हैं। उनके संवादोंकी भाषामें प्रेक्षकोंको आकर्षित करनेकी अद्भुत शक्ति है। लेकिन कभी-कभी उनके संवाद इतने विस्तृत होते हैं कि कथानकसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता और इसीलिए उनका विस्तार भी खटकने लगता है। उन्हें नाटक-क्षेत्रमें बहुत अनुभव प्राप्त हुए हैं। अन्य नाटककारोंकी तुलनामें गार्गीकी सफलताका कारण भी शायद यही है।

शीला भाटिया एक दूसरी नाटककार हैं। वास्तवमें वे अभी-अभीतक ग्राम्य-गीतोंकी रचना करती थीं और उनमें अपनी कल्पना-शक्तिकी सूझके अनुसार संगीत-द्वारा एक नया आकर्षण पैदा करती थीं। उनके दो संगीत प्रहसन (ऑपेरा) "काल ऑव द वेली और 'रूखे खेत" बहुत लोकप्रिय हैं। वे स्वयं एक सफल अभिनेत्री हैं और इसीलिए वे प्रेक्षकोंकी अपेक्षाओंसे भली भाँति परिचित हैं। लेकिन शायद उन्हें नाटकके लिए अच्छे कथानक ही नहीं मिल सके। उनके कथानकोंमें नाटकके आवश्यक गुणोंका अभाव होता है। यदि वे

कथानकको चुनते समय नाट्य-गुणोंकी ओर विशेष ध्यान दें तो उनके संगीत-प्रहसन अवश्य ही एक प्रकारसे चुनौती सिद्ध होंगे। फिर भी उन्हें पंजाबी नाटकके क्षेत्रमें संगीत प्रहसनका प्रयोग (एक्सपेरीमेण्ट) करनेका श्रेय अवश्य प्राप्त है।

इसके अतिरिक्त पाँच अन्य नाटककारोंके नाम भी उल्लेखनीय हैं। खोसला रेलवेकी नौकरी करनेपर भी फुरसतका समय नाटक लिखनेमें ही व्यतीत करते हैं। उनमें नाटकके संवाद लिखनेकी योग्यता अवश्य है लेकिन उनके नाटक मंचपर अधिक सफल नहीं हो सके। अन्य नाटककार कॉलेजके प्रोफ़ेसर है, जिनके नाम हैं, प्रो० रोशनलाल अहूजा, प्रो० अमरिकसिंह, प्रो० गुरदयाल-सिंह पाल और प्रो० बलवीरसिंह। इन्होंने विशेषत: एकांकी नाटक ही लिखे और उनके पढ़ लेनेपर नाटक लिखनेमें शीघ्रता करनेका दोष स्पष्ट दिखाई देता है। प्रो० अमरिकसिंहका 'पथार दी खेत', जिसे उन्होंने अंगरेज़ी नाटक (ग्राण्टी) के आधारपर लिखा है, दिल्लीके मंचपर प्रस्तुत किया जा चुका है। यद्यपि वह विदेशी कथानक है किन्तु नाटककारने उसमें पंजाबी भाषा, रहन-सहन आदिका 'टच' देकर नाटकके सफल होनेकी आशा जाग्रत की है।

इसमें सन्देह नहीं कि बढ़ते हुए नाट्य-गृहों और कलाकारों तथा नाटककारोंके कारण पंजाबी मंचकी उन्नति शीघ्रातिशीघ्र होगी। पंजाबी नाटक-साहित्य और मंचका अध्ययन करनेपर यह कहनेमें कोई आपत्ति नहीं कि पंजाबी मंचका उद्धार उसके नाटककार, कलाकार एवं लोगोंके सहयोग तथा परिश्रमपर अवलम्बित है और भविष्य भी उज्ज्वल है।

●

● आधुनिक मराठी साहित्य

घनश्याम व्यास

भाषाकी समृद्धि उसके अन्तर्गत सृजित साहित्य-द्वारा ही ज्ञात होती है किन्तु इसी सन्दर्भमें मराठी साहित्यके विभिन्न पक्षोंका विवेचन करनेसे पूर्व अत्यन्त संक्षिप्त रूपमें मराठी-साहित्यके इतिहासकी रूपरेखासे परिचित हो जाना आवश्यक है।

अन्य भारतीय भाषाओंके अनुरूप ही मराठीका भी विकास हुआ है। प्राचीन प्राकृतों एवं अपभ्रंशोंके सहयोगसे दक्षिण-भारतमें मराठीका स्वरूप विकसित हुआ। यह एक तथ्य है कि वैदर्भी, गौड़ी एवं इस प्रदेशमें प्रचलित प्राकृतों एवं अपभ्रंशों-का विकसित रूप ही मराठी है। मराठीमें साहित्य-सृजन प्रायः बारहवीं-तेरहवीं शताब्दीसे प्रारम्भ हुआ था, परन्तु इसमें हिन्दीके अनुरूप प्रचुर मात्रामें साहित्य-सृजन नहीं हुआ। वास्तवमें मराठी साहित्य-सृजनका प्रारम्भ ज्ञानेश्वरजीके समय-से प्रारम्भ हुआ। इसके पूर्व तो इस प्रदेशके सन्त एवं कवि संस्कृतमें ही अपना साहित्य-सृजनका कार्य किया करते थे। अध्ययनकी सुविधाको देखते मराठी-साहित्यके इतिहासको हम तीन खण्डोंमें विभाजित कर समझ सकते हैं--१. प्रार-म्भिक काल खण्ड अर्थात् सन्त एवं महानुभाव कवियोंका काल, २. पण्डित कवियों-का काल एवं ३. आधुनिक काल। यहाँ हम केवल मराठी साहित्यके आधुनिक कालको ही ले रहे हैं।

आधुनिक काल खण्डका प्रारम्भ प्रायः कुछ मतभेदोंके साथ ई० सन् १८५०से स्वीकृत कर लिया गया है। यहींसे मराठी-गद्यका महत्त्वपूर्ण ढंगसे प्रचार हुआ है। वैसे कहीं-कहीं पहलेका भी अत्यल्प मात्रामें गद्यका स्वरूप प्राप्त होता रहा है, परन्तु मुद्रण-कलाके विकासके साथ ही गद्यका विकास तेजीके साथ हुआ। मेरा तो यह विश्वास है कि पिछली शताब्दीके मध्यसे विश्वकी सभी भाषाओंमें इतना गद्य सृजित हुआ है कि उस भाषाके प्रारम्भिक-युगसे लेकर अधुनातन समय तकमें भी उतना पद्य साहित्यका सृजन नहीं हुआ। वास्तवमें यह इसी युगकी देन है कि प्रत्येक भाषा कहानी, उपन्यास, व्यंग्य-लेख, इतिहास, समीक्षा, जीवनी आदि विधाओंके मध्य गद्यके रूपको विकसित करती हुई, अपने प्रगति पथपर निरन्तर अग्रसर होती गयी।

मराठी साहित्यका विकास-केन्द्र बहुत पहलेसे ही पूना रहा है, और आज भी है। पूनाका बम्बईसे निकटतर सम्बन्ध रहा है। परिणामतः आधुनिक युगमें जिस प्रकार बंगलापर पाश्चात्त्य प्रभाव पड़ा, उसी प्रकार मराठीपर भी पड़ा है। मराठीमें हमें केशव-सुतसे ही पाश्चात्त्य-काव्यका प्रभाव परिलक्षित होता है। समीक्षाकी दृष्टिसे भी चिपलूणकरका कार्य यह निरूपित करता है कि मराठीने पाश्चात्त्य-समीक्षाको शीघ्र ही ग्रहण कर अपना विकास किया है। नाट्य-साहित्य-का भी विकास इसी परिवेशमें प्रारम्भ हुआ। कथा-साहित्यकी दृष्टिसे भी मराठीने

हिन्दीसे पूर्व ही पाश्चात्य प्रभाव ग्रहण किया। यह एक अलग तथ्य है कि पिछले तीन दशकोंके अन्तर्गत हिन्दी-साहित्यकी सभी विधाओंने आशातीत सफलता प्राप्त की है। हाँ, हिन्दीकी हास्य-विधा आज भी शिथिल है।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय-भाषाओंकी तुलनामें मराठीने पाश्चात्य-प्रभाव पहले ग्रहण किया था, परन्तु विकासकी सुविधाएँ उपलब्ध होनेके कारण हिन्दी कुछ आगे बढ़ गयी है। अगले अंकोंमें हम मराठी-साहित्यकी प्रत्येक विधाका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करेंगे।



प्रकाशित समीक्षाएँ
शेष स्वर

स्तम्भका उद्देश्य इतना-भर है कि समकालीन विशिष्ट कृतियोंपर प्रकाशित विभिन्न और विवेकी समीक्षाएँ एक साथ सामने आकर पाठकको कृतिके समग्र व्यक्तित्वसे परिचित करायें। इस अंकमें प्रस्तुत हैं श्री अमृतलाल नागरके उपन्यास 'बूँद और समुद्र' पर तीन समीक्षाएँ।

'बूँद और समुद्र'

व्यक्ति और समाजके बीच एक निष्क्रिय प्रतिक्रिया

अमृतलाल नागरका 'बूँद और समुद्र' वस्तु, विस्तार, सामाजिक जीवन, शैली और शिल्पकी दृष्टिसे क्लासिकी परम्पराका उपन्यास माना जाता है। परन्तु प्रस्तुत उपन्यासकी वस्तु-कल्पना और शिल्प-विधानका विश्लेषण करनेके पूर्व हमको यह समझ लेना चाहिए कि जब हम किसी रचनाको क्लासिकी स्तर-की मानते हैं तब उसके पीछे संस्कृतिकी समृद्धि, अभिव्यक्तिकी प्रौढ़ता और भाषाकी सर्जनशीलताकी सम्पन्न परम्पराको स्वीकार करते हैं। संस्कृति और सर्जनकी यह गतिशीलता राष्ट्र, जगत् और समाजके अनवरत प्रयत्नों, संघर्षों और चुनौतियोंसे उत्पन्न होती है। इसीलिए रचनात्मक स्तरकी इस सम्पन्नतासे उनके भौतिक स्तरका सीधा तथा अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। हिन्दी साहित्यको अपनी विशेष स्थितिके कारण युरॅपीय साहित्यके इतिहासके कई युगोंको एक साथ अथवा बहुत कम वर्षोंमें आत्मसात् करनेका प्रयत्न करना पड़ा है। अवधिकी दृष्टिसे उसने काफ़ी लम्बा रास्ता कम समयमें पार करनेकी कोशिश की है, पर उसके अनुरूप सांस्कृतिक चेष्टा तथा सर्जनात्मक प्रयत्नके अभावमें हमारे साहित्यमें कच्चा-पक्का माल, ताज़ा-बासीपन, सामर्थ्य और कमज़ोरी, प्रौढ़ता

और बचकानापन एक साथ मिलता है। नागरके उपन्यासको क्लासिकीके साथ यथार्थ दृष्टिसे सम्बद्ध किया जाता है, अतः इस परम्पराके साथ यथार्थकी औपन्यासिक उद्‌भावनाका सम्बन्ध भी इसके माध्यमसे विश्लेषित हो सकता है। हिन्दी उपन्यासोंकी सही स्थितिको समझनेके लिए उपन्यासोंमें इन तत्त्वोंकी स्थितिको समझ लेना आवश्यक है, और यहाँ इतना पर्याप्त मान लेना होगा।

क्लासिकी उपन्यासोंके बारेमें प्रायः यह माना जाता है कि उनमें युग और समाजका, और व्यापक अर्थमें जीवनका, विस्तृत फलक होता है। परन्तु रचनाके स्तरपर उनकी श्रेष्ठताका कारण उस विस्तृत और वैविध्यपूर्ण जीवनको सर्जनात्मक कल्पनासे आन्तरिक संगति देना है। तॉल्स्तॉय, दास्तॅवस्की और विक्टर ह्यूगोके उपन्यासोंमें युग-जीवनके विशाल आधारपर कल्पनात्मक सर्जन हुआ है, पर बाल्ज़ाक-जैसे उपन्यासकारने भी सामाजिक जीवनकी समस्त विविधता तथा सहज मानवीय प्रकृतिमें रुचि लेनेके बावजूद यथार्थके इस यथातथ्यको मानवीय संवेदनाकी अभिव्यक्तिके लिए उपयुक्त ढाँचेके रूपमें इस्तेमाल किया है। बिना किसी अन्तर्दृष्टिकी खोजके कोई भी उपन्यासकार जीवनके यथार्थ पक्षोंको चित्रित करके साहित्यिक अभिव्यक्तिमें सफल नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, उसे सत्यके रूपमें यथार्थकी नयी परिकल्पना करनी होगी और इस खोजमें वस्तुतः वह कलात्मक अनुभवका बिलकुल नया क्षेत्र ही आविष्कृत करेगा।

इस भूमिकापर 'बूँद और समुद्र' को रखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह उपन्यास क्लासिकी परम्परामें आता है और युग-जीवनके यथार्थपर प्रतिष्ठित है। परन्तु प्रारम्भमें ही यह समझ लेना चाहिए कि यह उपन्यास अपने युग-जीवनको बहुत बड़े परिवेशमें न ग्रहण कर एक सीमित क्षेत्रमें केन्द्रित करके प्रस्तुत करता है। जहाँतक सामाजिक जीवनके व्यापक चित्रणका सवाल है, लेखकने गली और मुहल्लेकी सारी जिन्दगीको उसकी विविधता, जटिलता, उलझावके साथ दृष्टिमें रखा है। लखनऊ नगरके जीवनके अन्य पक्षोंको भी लेखकने इसी गली-मुहल्लेसे किसी-न-किसी रूपमें सम्बद्ध करके प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की है। नागरिक जीवनके व्यापक संस्पर्शके रूपमें विशिष्ट वर्गके चरित्रोंको प्रस्तुत किया गया है। इनमें राजा द्वारकादास और रूपरतन वर्ग-प्रतिनिधियोंके रूपमें गली-मुहल्लेके जीवनसे सम्बद्ध हो जाते हैं। उनके छोटे प्रतिरूप जानकीसरन और सालिगराम उसके अंग ही हैं। सज्जन और उसके साथ कर्नल तथा महिपाल गली-मुहल्लेके

जीवनमें रुचि लेने [illegible] संसक्त होते जाते हैं, यद्यपि उनके माध्यमसे लेखकने उपन्यासमें वैयक्तिक जीवनकी समस्याको व्यापक सामाजिक भावभूमिसे सम्बद्ध करनेका प्रयास किया है। ऐसा नहीं कि लेखकने व्यापक सामाजिक जीवनके समुद्रमें प्रत्येक पात्रचरित्रको व्यक्ति-बूँद स्वीकार किया है। वस्तुतः उसने गली-मुहल्ले और उसमें प्रतिबिम्बित होनेवाले परिवेशके साथ सामाजिक जीवनको समुद्रके रूपमें परिकल्पित किया है। इसमें अनेक पात्र हैं जो व्यापक अर्थमें चारित्रिक विशेषताएँ भी रखते हैं, परन्तु उनकी निजी रूप-रेखाओंको उभारते हुए भी लेखक व्यापक समाजके विस्तारमें, समुद्रमें उठनेवाली ऊँची-नीची लहरों-के समान खो देता है। वे अपनी बुराइयों, कमजोरियों, कुण्ठाओं, अन्धविश्वासों, जड़ताओंके साथ मानवीय स्पन्दनका परिचय देकर भी सामान्य होकर हमारे समाजके रूपको निरूपित और प्रतिफलित करते हैं।

इस दृष्टिसे ताई-जैसा गहरी, तीखी और स्पष्ट रेखाओं तथा रंगोंमें प्रस्तुत चरित्र समाजकी प्रतिच्छविका ही जैसे सघन रूप हो। उसकी सारी विकृतियाँ और कहीं गहरे संस्कारमें निहित कभी-कभी व्यंजित होनेवाला मानवीय तत्त्व, यही हमारा समाज है जिसे लेखकने चित्रित किया है। इसीलिए ताई चरित्र है, व्यक्तित्व नहीं। इस समाजकी हलकी-गहरी व्यंजना करनेवाले ही इस जीवनके अनेक पात्र हैं। इस जीवनको प्रस्तुत करनेवाली कई इकाइयाँ हैं। ताई स्वयंमें केन्द्रीय इकाई है। उसकी हवेली, राजा साहबसे सम्बद्ध उसका अतीत, उसके सामान्य और विशिष्ट किरायेदार, गली और मुहल्लेसे उसका क्रूर एवं कटु सम्बन्ध तथा अन्तमें इच्छा-अनिच्छासे गले पड़ जानेवाले बिल्लीके बच्चे और ताराका प्रसव—यह सब है जो ताईके चरित्रके साथ उस समाजकी कठोर सेवाओंको भी उभार देता है। भभूती सुनारका घर-परिवार दूसरी इकाई है, जिसमें उसका और उसकी घरवालीका उपयोग प्रायः पृष्ठभूमि-जैसा है। इस इकाईके प्रमुख पात्र नन्दी, छोटी-बड़ी मनिया तथा शंकरलाल हैं। ये सभी चरित्र प्रायः समाज-के प्रतिनिधि पात्रोंके हैं, और अपनी सामान्य भावभूमिपर ये सामाजिक यथार्थ-को प्रतिफलित करते हैं। परन्तु लेखकने इन तथा ऐसे ही अन्य कई पात्रोंको यथार्थके निकट लानेकी दृष्टिसे तथा उनको अधिक ठोस रूप देनेके लिए अति-रंजित कर दिया है। उपन्यासका यथार्थ अपनी रचनात्मक आन्तरिक संगतिकी विश्वसनीयतापर व्यंजित होता है; सम्भान्यके यथातथ्यपर आधारित नहीं।

इस दृष्टिसे ताईका चरित्र अपनी अतिरंजनाओंमें भी कल्पनात्मक रचनाके स्तरपर विश्वसनीय है, जबकि नन्दो और बड़ीके चरित्र अपनी सम्भाव्य भूमिकाओंमें भी अतिरंजित और अविश्वसनीय लगने लगते हैं। इसका कारण है कि लेखक व्यापक समाजकी रचना करनेके स्थानपर उसको प्रस्तुत करने लगता है और असर्जनात्मक हो जाता है। इस इकाईसे लगी हुई मि० वर्मा तथा ताराके छोटे परिवारोंकी स्थिति है, जो इस समाजमें स्थितिकी दृष्टिसे किंचित् विशिष्ट जान पड़ते हुए नितान्त सामान्य रूपसे खप जाते हैं।

ये इकाइयाँ एक दूसरेसे जुड़कर प्रतिक्रियाशील होकर गली-मुहल्लेके समाजका निर्माण करती हैं। नन्दोके माध्यमसे लाले दलालका परिवार केन्द्र-बिन्दुमें आता है। लाले दलालकी बहू अपने अन्धविश्वासकी भीरुता तथा वाग्युद्धकी उग्रतामें समान रूपसे अपने पतिके काइयाँपनके साथ प्रतिनिधि पात्रके रूपमें प्रस्तुत हुई है। इस जीवन-प्रवाहके साथ जुड़ी हुई गोकुलद्वारेकी हवेलीको इकाईको माना जा सकता है और उसके साथ लगा हुआ टिल्लू पहलवानका अखाड़ा वातावरणके सजीव स्पन्दनके रूपमें अटका हुआ है। यह कथानकका ऐसा अंश है जो परिवारसे वातावरण रूपमें अभिन्न होकर जीवनका अंग बन गया है। मन्दिरका एक प्रतिनिधि परिवार मुखिया, भितरिया, जलघड़िया, समाधानी और कीर्तनिया आदिकी चारित्रिक रूपरेखाओंसे बनता है, पर मन्दिरमें आनेवाली ताई, सरसती दीदी तथा खन्ना बहुरियाके साथ यहाँ सामाजिक परिवेशका निर्माण हुआ है, जैसा कि लाला गिरधारी और पुलिस ऑफ़िसके बड़े बाबू काशीनाथके साथ टिल्लू पहलवानके अखाड़ेपर इस ज़िन्दगीका एक पक्ष उजागर हो चुका है। एक और इकाई है मास्टर जगदम्बा सहायके परिवारकी, जिसके घरका दृश्य तो एक बार ही सामने आया है, पर वनकन्याको लेकर इसका बहुत महत्त्व है और पूरे परिवारका इतिहास और उसके चरित्रोंका परिचय अनेक सन्दर्भोंमें प्रस्तुत किया गया है। जहाँतक इस इकाईके अन्य चरित्रों और घटनाओंका सवाल है, लेखकने सामाजिक कुत्साओंसे लेकर राजनीतिक दलोंकी दुरभिसन्धियों तकको उद्घाटित करनेके लिए इनका उपयोग किया है। ऐसा लगता है कि लेखकने भी दलोंके समान इस परिवारके जीवन और उसकी कुण्ठाओं, विकृतियों तथा विडम्बनाओंको मानवीय संस्पर्श देनेके बजाय अपनी कथाके लिए इस्तेमाल कर लिया है। कहा जा सकता है कि वनकन्याके व्यक्तित्वको संघटित करनेके लिए इस परिवारका

उपयोग है। पर यह सामाजिक कीचड़से वनकन्या-जैसे आदर्श चरित्रका कमल खिलाने-जैसा है, व्यक्तित्वके निर्माणमें सर्जनात्मक संगतिकी दृष्टिसे इसका कोई उपयोग लेखक नहीं कर सका है।

कहा गया है कि प्रस्तुत उपन्यासमें समाज और व्यक्तिके जीवनके दो भिन्न स्वरों और क्षेत्रोंको इस प्रकार परिकल्पित किया गया है कि दोनोंका तनाव, टकराहट और संघर्ष व्यंजित हो और उनकी साफ़ अलग स्थिति भी। समाजको जिस रूपमें प्रस्तुत किया गया है, उसमें अपनी सारी विकृतियों, कुसंस्कारों, कुण्ठित नैतिक दृष्टियों और अपराध-भावनाओंके साथ ऐसी जड़ता, रूढ़िवादिता और गतिहीनता आ गयी हैं कि उसकी अपनी अन्तर्वर्ती क्रियाशीलताकी सम्भावना जैसे समाप्त हो गयी है। यहाँ लेखककी यथार्थ दृष्टि ठीक जगहपर पड़ी है; गली-मुहल्लेके जीवनके रूपमें उसने अपने व्यापक सामाजिक यथार्थको देखा-पहचाना है—उसका सारा आलोड़न-विलोड़न किसी गति तथा क्रियाकी सम्भावनासे रहित निष्क्रिय जड़ताका रूप है। इसी कारण सम्भवत: इस समाजसे ही उत्पन्न और व्यक्तित्व ग्रहण करनेवाले चरित्र महिपाल, सज्जन, कर्नल, बाबा राम और वनकन्याके व्यक्तित्व व्यापक सामाजिक जीवनसे अलग प्रस्तुत किये गये हैं, जिससे समाजसे इनकी प्रतिक्रिया हो सके, तनाव और संघर्षके माध्यमसे समाजमें गतिशीलता लायी जा सके। ये सभी पात्र समाजसे अपने पारिवारिक जीवन और इतिहाससे सम्बद्ध रहे हैं और अपने व्यक्तित्वको पा सके हैं। पर कर्नलको छोड़कर अन्य सभी चरित्र अपने व्यक्तित्वको भारतके अतीतसे जोड़कर अथवा आधुनिक सामाजिक दृष्टिके आधारपर संघटित कर सके हैं। कर्नल अदृश्य सामान्य होकर भी एक विशिष्ट व्यक्ति है जो सारी समस्याओंको व्यावहारिक स्तरपर लेकर भी अपने आचरणमें मानवीय है। अपने व्यक्तित्वके इस मानवीय संस्पर्शके साथ कर्नल यदि समाजके व्यापक जीवनका अभिन्न अंग होता तो वह रचनाके स्तरपर अधिक सजीव, गतिशील और मानवीय हो सकता। समाजके जीवनसे अपनी व्यक्तित्व-चेतनाके कारण अलग पड़ गये चरित्रोंसे सम्बद्ध होकर कर्नलका व्यक्तित्व समाज और उनके बीचमें अपनी सम्भाव्य तथा विश्वसनीय स्थितिके बावजूद उपन्यासकी रचनाकी आन्तरिक संगतिमें आदर्श चरित्रके रूपमें खप नहीं पाया है। वनकन्या अपना व्यक्तित्व एक निश्चित स्वाभाविक दृष्टिके आधारपर ग्रहण करती है, ऐसा माना जा सकता है, और अपने परिवारको

नैतिक विकृतियों तथा सामाजिक अन्यायसे विद्रोह करके उसने चरित्रकी दृढ़ता प्राप्त की है। परन्तु अपने विद्रोही व्यक्तित्वके साथ वह अपने समाजसे प्रारम्भसे ही अलग है। उसका विद्रोह उसके निजी व्यक्तित्वकी दृढ़तासे अधिक कहीं प्रतिफलित नहीं हुआ है, क्योंकि सज्जनके सम्पर्कमें आनेके बाद वह समाजसे सीधे टकरानेकी स्थितिमें आती ही नहीं। उसके व्यक्तित्वकी सारी अभिव्यक्ति सज्जन-के सम्पर्कमें सघनतम तथा आत्मीय रूपमें आनेकी प्रक्रिया मात्र रह गयी है।

सज्जन सामाजिक स्तरपर तथा अपनी शिक्षा तथा कलात्मक रुचिके कारण उस समाजसे अलग है, जिसका चित्रण जीवनके यथार्थके रूपमें इस उपन्यासमें किया गया है। महिपालके चरित्रके कई पक्षोंके समान इस दृष्टिसे भी सज्जन उसकी प्रतिकूल दिशामें स्थित है। महिपाल एक मास्टरका लड़का है, सम्पन्न ननिहालमें आश्रित रहा है, लखनऊ आकर उसे रूपरतनका आश्रित रहना पड़ा है और अन्ततः वह मध्यमवर्गके महत्त्वाकांक्षी व्यक्तिके रूपमें सामाजिक जीवनके नव-निर्माणके लिए अतीतके आधारपर कल्पना करता है। कला और साहित्यके स्तरपर दोनों समान भूमिपर हैं; इसी स्तरसे दोनों ही सामाजिक जीवनमें रुचि लेते हैं और सामाजिक जीवनमें परिवर्तन लानेके पक्षपाती हैं। पर सज्जन अपने संस्कारके कारण सामाजिक जीवनसे गहरी संसक्तिका अनुभव नहीं करता; प्रारम्भमें वह उसकी रुचिका विषय मात्र है। महिपालको पारिवारिक जीवन और उसकी आर्थिक स्थिति, समाजकी जड़ता और उसके अन्दर जमे हुए सामाजिक अन्यायके प्रति अधिक उग्र रूपमें विद्रोही बनाता है। सज्जन गली-मुहल्लेके परिवेशमें, उसके विविध पात्रों तथा स्थितियोंके सम्पर्कमें आकर, वनकन्याके व्यक्तित्वसे प्रभावित तथा आकर्षित होकर और बाबा रामजीके आध्यात्मिक प्रभाव तथा प्रेरणासे क्रमशः अपने जीवनको एक दिशा देनेमें सफल हुआ है, और कहा जा सकता है कि उसने एक दृष्टि भी विकसित की जो व्यक्ति-के उन्नयनमें सामाजिक विकासकी सम्भावनाको स्वीकार करती है। परन्तु वनकन्याके साथ उसके प्रणय-प्रसंगको लेखकने कृष्णकी लीला-भूमि और राधा-भावनाके साथ रखकर इतना वैयक्तिक आधार प्रदान कर दिया है और नारी-पुरुषके पौराणिक सन्दर्भों तथा प्रतीकोंके साथ उनके प्रेमको व्यापक अभिव्यक्ति देनेकी चेष्टा की है कि उसकी औपन्यासिक योजनासे तथा यथार्थकी रचनात्मक परिकल्पनासे कोई संगति ही नहीं बन पाती। यह वैयक्तिक प्रेमसम्बन्ध और

सामाजिक जीवनके यथार्थका अन्तराल इतना अधिक हो गया है कि लेखक व्रज-यात्रासे लौटनेके बाद सज्जनके व्यवहार और आचरणकी असंगतियोंके लिए समुचित तर्कसंगत परिस्थितियोंकी उद्भावना करनेमें असमर्थ हो गया। राजा साहबके कहने मात्रसे उसमें ऐसा परिवर्तन कैसे घटित हुआ; क्यों वह चित्राको लेकर वनकन्याके प्रति प्रतिहिंसाकी भावनासे विमुख हो गया? एक प्रत्यक्ष कारण है कि वनकन्याने उसके पौरुषको चुनौती दी है, पर पिछली सारी कोमल-मसृण प्रणय-लीलाकी आदर्श कल्पनाके बाद यथार्थके साथ उसका सामंजस्य किसी स्तरपर नहीं हो सका है। इसीलिए परिस्थितिको अपनी कथा-योजनाके अनुकूल मोड़नेके लिए लेखकको कर्नलके सीधे, खरे और आत्मीय स्वभावका तथा बाबा रामजीके आध्यात्मिक प्रभावका सहारा लेना पड़ा है।

महिपाल प्रारम्भसे सज्जनका प्रतिद्वन्द्वी चरित्र है। अपने संस्कारोंके कारण उसका विद्रोह सामाजिक यथार्थकी अनेक टकराहटोंसे उत्पन्न होकर अपने अहं-भावमें ही प्रतिफलित हुआ है। उसकी साहित्यिक चेतनाकी अभिव्यक्तिमें पौराणिक और आदिम नर-नारीके उद्दाम और मुक्त सम्बन्धसे लेकर आधुनिक स्त्री-पुरुषके सम्बन्धों तकका विकास-क्रम प्रायः उसके प्रताड़ित अहंकी व्यंजना है, आजके सामाजिक यथार्थकी प्रतिक्रिया नहीं, उससे पलायन भले ही कहा जाये; व्यक्ति-चरित्रके संघटन और विकासकी दृष्टिसे उसके अहंकारका रूप अपने गहरे संस्कारों और सामाजिक परिस्थितियोंका परिणाम है। ऊपरी तौरपर उसके व्यक्तित्वके निर्माणके लिए लेखकने यथार्थ और स्वाभाविक उपकरणों तथा कारणोंको जुटाया है। कुछ स्थलोंपर इस चरित्रकी क्रिया-प्रतिक्रियामें सूक्ष्म मानसिक स्थितियोंका द्वन्द्व पारिवारिक जीवन और शीलाके प्रेमकी उपन्यासकी परिकल्पनामें मानवीय सन्दर्भ और संस्पर्श दे सका है। पर उसके चरित्रमें आकस्मिकता और अतिरंजनाका प्रयोग अनेक स्थलोंपर मिलता है, जो उसके उग्र अहंवादी व्यक्तिनिष्ठ चरित्रके अनुरूप होकर भी यथार्थकी रचनात्मक कल्पना तथा विश्वसनीयताकी दृष्टिसे संगत नहीं है। सज्जनमें कमजोरियाँ हैं, पर महि-पालमें असंगतियाँ हैं। एक स्तरपर लेखक संस्कारोंके आधारपर और परिस्थि-तियोंके बीच इनका ठीक निर्वाह करता है। परन्तु इनकी चारित्रिक गहरी और सक्षम अभिव्यक्तिके लिए आकस्मिक मोड़ देनेकी चेष्टामें लेखक स्वाभाविक विकास-क्रमसे अलग हो जाता है और उस गहरे तथा व्यापक प्रभावको भी उत्पन्न

नहीं कर पाता । ऐसे प्रभाव उपन्यासकी वस्तु-कल्पनाके संघटनमें अतिरंजनाओंके उपयोगसे अवश्य पैदा किये जाते हैं, पर ऐसे स्थलोंपर व्यक्तित्वके सूत्रोंका सन्धान यथार्थके कहीं गहरे स्तरों तथा परतोंसे होना अपेक्षित होगा, तभी सारी रचनात्मक परिकल्पना सहज विश्वसनीय बन सकेगी। इस कठिनाईमें फँस जानेके कारण जिस प्रकार लेखकने सज्जनके व्यक्तित्वको सन्तुलित रखनेके लिए कर्नल और बाबा रामका आश्रय लिया है, उसी प्रकार महिपालके अहंभावको वह आकस्मिक रूपसे ननिहालकी चोरी, रूपरतनके सहयोग, ऊँचे स्तरकी आकांक्षा, विवाहकी शानदार तैयारी आदिको, वस्तुकी दृष्टिसे अतिरंजित, परिस्थितियोंमें उलझाकर आत्महत्याकी अनिवार्य परिणतिके रूपमें स्वीकार कर लेता है। फिर, जिस प्रकार सज्जन बाबा रामको सेवा, प्रेम और कर्मकी प्रेरणासे सहयोगी आन्दोलनमें अपनी निष्कृति पाता है, उसी प्रकार महिपाल पत्रमें अपने अपराधोंको स्वीकार कर व्यक्ति और समाजका बहुजनहिताय सम्बन्ध निरूपित करता हुआ शान्ति-स्तवन करता है। ऐसा लगता है उपन्यासके ये दोनों चरित्र समाजकी यथार्थ परिस्थितियोंसे निर्मित हैं, फिर भी लेखकके द्वारा उनका व्यक्तित्व समाजसे अलग उद्भावित है और उससे उनकी सारी टकराहट उत्पन्न करनेकी कोशिशके बावजूद यथार्थके स्तरपर लेखक उनकी कोई भी आन्तरिक संगति अन्त तक नहीं बैठा पाया; यह अवश्य है कि कभी-कभी टकराहटमें चमक दिखाई दे जाती है।

प्रस्तुत उपन्यासके बारेमें कहा जा सकता है कि इसमें युरॅपके क्लासिकी उपन्यासोंकी महान् मानवीय दृष्टिको अपने भारतीय रूपमें विकसित करनेकी चेष्टा है। वस्तुतः १९वीं शतीके इन क्लासिकी उपन्यासोंमें जीवनके विस्तार और वैविध्यका मात्र चित्रण नहीं है, उनमें गहरी जीवन-सम्बन्धी अन्तर्दृष्टि भी है। नागरजीमें इस स्तरपर व्यापक मानव-जीवनकी अपेक्षा सामाजिक जीवन और उसके यथार्थकी चेतना भी है और, दूसरी ओर समसामयिक व्यक्ति-चेतनाके यथार्थको अस्वीकार कर देना भी उनके लिए सम्भव नहीं हो सका। यथार्थके इन कई स्तरों और पक्षोंको एक साथ उठानेका प्रयत्न युगकी माँग हो सकती है, लेखकको इसका महत्त्व भी मिल सकता है। लेकिन इस स्थितिमें रचनात्मक स्तरपर इनका संयोजन, संघटन और अन्विति या तो सम्भव नहीं है अथवा उसके लिए अधिक बड़ी सर्जक प्रतिभाकी अपेक्षा थी। सामान्यतः युरॅपके उपन्यासोंमें

उदात्त मानवीय दृष्टि तथा सामाजिक आदर्शकी भव्य कल्पनाओं तथा स्वप्नोंके माध्यमसे क्लासिकी गरिमा प्राप्त हुई है अथवा आधुनिक यथार्थ दृष्टिने निर्वैय-क्तिक, तटस्थ तथा निरपेक्ष जीवनके अनुभवोंको रचनात्मक स्तरपर संघटित करना अपना लक्ष्य स्वीकार किया है। अपनी विशेष परिस्थितिके कारण हमारे लेखकके लिए कोई एक मार्ग अपना पाना सम्भव हो नहीं था। रचना प्रक्रिया है, अतः उसमें मात्र विभिन्न स्थितियों, पात्रों, मनःस्थितियोंका सहअस्तित्व नहीं होता, उनकी टकराहट और आन्तरिक क्रियाशीलता आवश्यक है। रचनामें यदि यथार्थके विभिन्न स्तरों अथवा पक्षोंका आना अनिवार्य है तो उनकी पारस्प-रिक टकराहट तथा क्रियासे ही किसी रचनाकी सम्भावना हो सकती है।

प्रस्तुत लेखक चेष्टा करके भी इनमें आवश्यक प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं कर सका। यह तो स्पष्ट है कि समाज अथवा व्यक्तिके यथार्थको निरपेक्ष अनुभवोंके स्तरपर संघटित करनेकी दृष्टि यहाँ नहीं है। उसकी चर्चा करनेके लिए यहाँ एक आधार ज़रूर है। लेखकने समाजके यथार्थके अधिकांशमें नैतिक पक्ष ग्रहण नहीं किया और अनेक अवसरोंपर अनास्था तथा विश्वास-हीनताका रूप व्यक्त हुआ है। पर उपन्यासका यह सर्वव्यापी स्वर नहीं है और न यह दृष्टिकोण नैतिकता-निरपेक्ष ही कहा जायेगा। अन्ततः लेखक सामाजिक आदर्श-कल्पना और मानवीय नैतिक दृष्टिको निरूपित करनेका उपक्रम करता प्रस्तुत होता है। एक स्तरपर मनुष्यके आदिम इतिहास और भारतकी सांस्कृतिक परम्पराके बीच उनकी व्याख्याओंमें और उनके आधारपर आजके सामाजिक जीवनके सन्दर्भमें विचारोंकी टकराहटसे नैतिक जीवन-दृष्टि विकसित करनेका प्रयास है। पर यह सारा मन्थन अधिकसे अधिक चरित्रका मानसिक संघर्ष व्यक्त करता है, व्यक्तित्वमें उसकी सक्रिय अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। उपन्यासमें एक दूसरा स्तर भी है जिसपर मानवीय नैतिक दृष्टि स्थापित है। बाबा रामका सारा व्यक्तित्व एक मानवीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जिसे इस उपन्यासमें व्यंजित जीवन-दृष्टिके रूपमें माना जा सकता है। बाबा राम भारतकी घुमक्कड़ी परम्परा और भावनाका चरित्र है, जो गान्धी तथा विनोबाके समान उसमें आधुनिक जीवनका नया सन्दर्भ विकसित करता है। प्रेमचन्दने 'रंगभूमि' में सूरदासका इसी स्तरपर कहीं मानवीय और जीवन्त व्यक्तित्व संघटित किया था। बाबा राम आजकी सारी सामाजिक परिस्थितिकी दैवी और आसुरी विचारधाराओंके मानसिक समुद्र-मन्थन-

के रूपमें व्याख्या करते हैं, ड्यूटीकी पाबन्दीका ही स्वामी होना मानते हैं, कुरूपतामें अन्तर्निहित सौन्दर्यका उदाहरण देते हैं और उन सबके साथ स्वतः बाबाके आध्यात्मिक प्रभावसे एक दृष्टि उभरती है।

इस उपन्यासमें लेखककी सफलता-असफलताका सही परिप्रेक्ष्य हमारी आज की सांस्कृतिक परिस्थिति तथा सर्जनशीलताके आधारपर ग्रहण किया जा सकता है। वैसे तो यह परिप्रेक्ष्य किसी उपन्यासकी चर्चामें प्रासंगिक है, पर क्लासिकी शैली और रूप-विधानके उपन्यासकी सम्भावना भी इसीसे निर्धारित होती है। आज हमारे समाजके व्यापक रूपमें ही नहीं, क्योंकि इस स्तरपर तो उसमें अन्ध-विश्वास, मूढ़ता, जड़ता तथा निष्क्रियता है ही, वरन उद्‌बुद्ध और जागरूक समाजकी भी कोई भी स्पष्ट और विकसित दृष्टि नहीं है। अपने गौरवशाली अतीतसे एक ओर यह वर्ग अत्यधिक आकर्षित और चमत्कृत है तो पश्चिमकी आधुनिक संस्कृतिका चमत्कार और प्रभाव भी उसपर बहुत अधिक है। इस द्विविधाकी मनःस्थितिमें वह अपने व्यापक समाजसे कोई भी सक्रिय, सजीव और गत्यात्मक सम्बन्ध नहीं जोड़ पाता। एक प्रकारसे 'बूँद और समुद्र' में समाजके ऐसे ही पक्षोंको अंकित किया गया है, पर लेखकको रचनात्मक स्तरपर इस स्थितिमें कोई टकराहट और संघर्ष उत्पन्न करना था। बिना इसके क्लासिकी संघटन और दृष्टि दोनोंका सन्धान सम्भव नहीं हो सका है। ऐसी स्थितिमें लेखक अपनी प्रतिभासे ही नया कल्पनात्मक विधान, नयी अभिव्यक्तिकी शैली और नयी मानवीय दृष्टिका अनुसन्धान कर सकता था। सामान्यतः लेखक युगको सांस्कृतिक स्थितिका प्रतिबिम्ब-भर प्रस्तुत कर पाता है, जो अपनी सीमाओंमें श्रेष्ठ रचनात्मक स्तर प्राप्त करनेमें अक्षम रहता है। सर्जनकी यह संवेदनात्मक और अनुभवोंको संयोजित करनेकी संरचनात्मक कमजोरी अन्ततः भाषा और अभिव्यक्तिकी कमजोरीका ही रूप है। क्लासिकी उपन्यासोंकी भाषा व्यंजनाके स्तरपर रचना अथवा काव्यकी भाषाके समान होती है। उसकी समस्त औपन्यासिक कल्पना, रचनात्मक संयोजन और मानवीय संस्पर्शोंके उपयुक्त भाषाका विकसित और व्यंजक रूप इनमें पाया जाता है। प्रस्तुत उपन्यासमें अलग-अलग स्तरोंके अनुकूल भाषाका निर्वाह तो मिलता है, पर सम्पूर्ण योजनाकी असफलताके समान व्यापक रूपसे भाषाका कोई समर्थ संरचनात्मक रूप नहीं उभर पाता। भाषाके बाह्य रूपसे वातावरण तथा चारित्रिक विशिष्टताओंको व्यक्त करनेका प्रयास

लेखककी तात्कालिक सफलताके बावजूद उसकी कलात्मक दृष्टिकी कमज़ोरी ही मानी जायेगी।

—रघुवंश
(माध्यम)

• परिस्थितियों और घटनाओंका रंगमंच

अमृतलाल नागरके 'बूँद और समुद्र'को मैं हिन्दी उपन्यासके इतिहासमें एक बड़ी घटना समझता हूँ। इस विशालकाय उपन्यासमें लेखकने न केवल व्यक्ति और समाजमें समन्वयकी शाश्वत समस्याको उठाकर उसका समाधान किया है, वरन् अनेक सजीव पात्रोंकी रचना तथा विविध परिस्थितियोंके चित्रण-द्वारा आधुनिक मध्यवर्गीय समाजके समस्त जीवनको समेटनेका सफल प्रयास भी किया है। नागरजी जीवनको आस्था तथा आत्मविश्वासकी आँखसे देखते हैं, व्यक्तिकी गरिमाको समाजमें स्थापित करते हैं, सिद्धान्तों तथा रूढ़ियोंपर कठोर प्रहार कर मानवताका सन्देश देते हैं। यह सन्देश स्वयं पात्रोंके विकासशील जीवनसे उमड़कर बहता है, परिस्थितियोंके तलसे उभरकर निकलता है। उपन्यास सजीव पात्रोंकी विशाल चित्रशाला है, तथा परिस्थितियों एवं घटनाओंका विस्तृत रंगमंच है। इस विस्तारको सँभालनेमें लेखकने एक उच्चकोटिको सूझ तथा कलाका परिचय दिया है।

उपन्यासके दो प्रमुख पुरुष पात्र महिपाल और सज्जन कलाकार हैं—महिपाल साहित्यकार है, सज्जन चित्रकार है। इन दोनों चरित्रोंके आधारपर उपन्यासकारने शिक्षित मध्यवर्गीय समाजका चित्र अंकित किया है। ये दोनों पात्र एक ही व्यक्तिके दो रूप हैं, महिपाल उसका यथार्थ रूप है और सज्जन उसका आदर्श रूप है। महिपाल अपनी और समाजकी उलझनोंको सुलझानेके लिए लिखता है। सज्जन मानव मनका संस्कार तथा परिष्कार करनेके लिए चित्र बनाता है। दोनों रूढ़िग्रस्त मान्यताओंको जड़से उखाड़कर फेंकना चाहते हैं, ताकि व्यक्ति और समाजका स्वस्थ विकास हो सके। महिपालका जीवन अभावोंसे घिरा हुआ है। उसका विवाह एक पुराण पन्थी नारीसे हो चुका है, जिसकी पुरातन तथा सनातनमें दृढ़ आस्था है, जात-पाँतमें जिसका अडिग विश्वास है। महिपाल तथा कल्याणी-

के दृष्टिकोणोंमें आकाश-पातालका अन्तर है। यह अन्तर महिपालके मानसको घुनकी तरह खाता रहता है, और उसके जीवनको खोखला कर देता है। उसके जीवनमें दूसरा अभाव धनका है जो आगे चलकर उसे ले डूबता है। कल्याणी अपनी ननद शकुन्तलाका विवाह परम्परागत ठाठसे करना चाहती है। शकुन्तला-का विवाह महिपालके लिए विषम समस्या बनकर उसे संकटकी स्थितिमें डाल देता है, और गलेमें बँधे पत्थरकी तरह उसे डुबो देता है। उसके जीवनकी घोर निराशा तथा असफलता उसके अभियानको तोड़ देती है और उसके विश्वासको अस्त-व्यस्त कर देती है। स्नेहके अभावको भरनेके लिए वह डॉक्टर शीला स्विगके प्रेमपाशमें बँध जाता है, परन्तु लोक-लाज तथा समाज-निन्दाके भयसे वह अकेला चनेकी तरह भाड़ फोड़नेके लिए विवश हो जाता है। जीवनसे हारकर परिश्रमसे चूर होकर वह कायरकी तरह आत्मघात करनेको बाधित हो जाता है।

महिपालके चरित्रके विपरीत सज्जनका व्यक्तित्व विकासशील है। वह निष्ठावान्, संयत और गम्भीर युवक है, जिसके विचारोंकी उड़ान महिपालके सामने सीमित तथा संकुचित है। उसके चरित्रमें विचारोंकी कमजोरी लेखकने कन्याके चरित्रका समावेश करके स्पष्ट कर दी है। वनकन्या अपने अहंकारमुक्त तथा पावन स्नेहसे सज्जनके मनोविकारोंको धो डालती है। कन्याका दृढ़ विश्वास है कि प्यार बड़ी चीज़ है। प्यारसे दुनिया बदल जाती है। वह समझती है कि पूँजीवादी संस्कारोंको बदलना, जिसके अन्तर्गत अहंवादी चेतना है, कठिन काम है। प्रेमका चरम विकास विवाहमें है। कन्याका सुलझा हुआ दृष्टिकोण सज्जनको प्रभावित करता है। सज्जनकी मनोदशाका सूक्ष्म निरीक्षण तथा चित्रण उसकी सामन्ती विचारधाराका सूचक है। उसका घायल अहं तथा अधिकारकी भावना उसे सताती रहती है। कन्या प्रेमकी भूखी है, सज्जनकी प्यासी है, उसके वैभवकी नहीं। सज्जन चित्रा राजदानसे विवाह करेगा। चित्रा राजदान अन्य पुरुषकी रखैल है। सज्जन शराबके उन्मादमें उसपर मुग्ध है। वह कटी पतंगकी तरह आकाशमें विचरता है। कन्या सज्जनको लगभग खो चुकी है। इतनेमें उसका मित्र कर्नल साहब जो कन्याके सबल व्यक्तित्व तथा सज्जनके प्रति उसके अगाध प्रेमसे पूरी तरह परिचित है, दोनोंका विवाह सम्पन्न करानेमें सफल होता है। सज्जनके जीवनमें बाबा राम, जो सन्त विनोबाकी सामूहिक चेतना तथा व्यक्तिवादी दृष्टिकोण लिये हुए हैं, जो पूँजीपतिमें भी सुन्दरता देखनेकी क्षमता रखते हैं, जो समाज-

बादको दूसरोंके लिए जीना समझते हैं और सेवापर बल देते हैं — उल्काकी तरह आते हैं और सज्जनके जीवनको धीरे-धीरे नये सांचेमें ढाल देते हैं। उनका कथन है कि एक बूंद भी व्यर्थ क्यों जाये, उसका सदुपयोग होना चाहिए। यह बूंद आपको महासागर अनुभव करे। व्यक्ति और समाजमें विरोध दूर हो। यह किस तरह सम्भव है, उपन्यासके अन्तमें इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है। सुख-दुःखमें व्यक्तिका व्यक्तिसे अटूट सम्बन्ध बना रहे, जैसे बूंदसे बूंद जुड़ी रहती है, लहरोंसे लहरें और लहरोंसे समुद्र बनता है। इस तरह बूंदमें समुद्र समाया है। इस विचारधारासे प्रभावित होकर सज्जन भीतरसे बाहर आ रहा है। वह धनका त्याग करता है, भोगके स्थानपर योगको अपनाता है। सामूहिक चेतनाके प्रति उसका सहज स्नेह उमड़ने लगता है। वह चित्रकलासे दूर होकर जीवन तथा समाजके निकट आने लगता है। बाबा राम सज्जनका समस्त धन दानमें लेना चाहते हैं। धन तथा वैभव त्याग करते समय कन्याका मन उदास हो जाता है। इस मानवीय दुर्बलताके सूक्ष्म विश्लेषणसे कन्याका चरित्र अधिक स्वाभाविक बन जाता है। परन्तु सज्जन व्यक्ति और समाजमें तेल-पानीका नाता तोड़कर दूध-शक्कर-का नाता जोड़ना चाहता है। परन्तु उसका अभिन्न मित्र महिपाल मानवताको पुकारको दम्भ समझता है। सज्जन जन-जीवनमें लीन होना चाहता है। दोनों मित्रोंमें वैमनस्यकी भावना घनीभूत होकर शत्रुताका रूप धारण कर लेती है। सज्जन इस वैमनस्यके मूलमें ईर्ष्याकी व्यक्तिगत भावनापर विजय पाकर शत्रुता-का परिहार करता है। वह समझता है कि विचारोंके भेदसे स्वस्थ द्वन्द्व होता है और उससे समन्वयात्मक विकास होता है। एक दिन व्यक्तिकी सामाजिक चेतना जागकर ही रहेगी। सज्जन तथा कन्याका परस्पर सम्बन्ध नर-नारीके भावी परस्पर सम्बन्धका परिचायक है, जो जीवनमें एक-दूसरेका सहायक तथा पूरक होगा।

उपन्यासमें ताईका चरित्र अत्यन्त सजीव तथा विचित्र-सा जान पड़ता है। वह एक राय बहादुरकी पहली पत्नी है और अकेली बड़ी हवेलीमें निवास करती है। उसका व्यक्तित्व धीरे-धीरे उभरता है। वह उत्पीड़ित है। सतायी गयी है। इस उत्पीड़नने उसे बाहरसे कठोर तथा दानवी बना दिया है। वह बाहरसे जितनी कठोर है, भीतरसे उतनी ही कोमल है; बाहरसे जितनी संकीर्ण है, भीतरसे उतनी ही उदार है। अपनी समस्त ममता बिल्लीके बच्चोंके पालन-पोषण-

पर उँडेलकर निजी संवेदन-शीलताका परिचय देती है। उपन्यासकारने ताई के चरित्रांकनमें सूक्ष्म मनोविज्ञान तथा प्रौढ़ कलाका परिचय दिया है। इस तरह नन्दोका चरित्र भी उन नारियोंका प्रतीक है जिनकी पतिसे नहीं बनती; जो कुण्ठित होकर माया-मोहसे विरक्ति पाकर आधुनिक युवक-युवतियों, सुहागिनोंसे घृणा करती हैं और पर-निन्दाका पाठ करनेमें प्रवीण होती हैं।

इस तरह पन्द्रह-बीस चरित्रोंको एक साथ उठाकर नागरजीने उन्हें पूरी तरस सँभाला है। जितने चरित्र हैं, आदिसे अन्त तक सजीव हैं। घटनाएँ अन-गिनत हैं। कहीं-कहीं प्रसंग अनावश्यक तथा विवरण नीरस जान पड़ते हैं। उदाहरणार्थ, मानव-समाज तथा मानव-इतिहासका विवेचन, मथुरा यात्राके विवरण, अपरिचित युवतोकी हत्या, मध्य वर्गका उदय तथा उसके विकासकी कथा आदि कथानकको अनावश्यक विस्तार देते हैं। उपन्यासकी भाषा नितान्त स्वाभाविक तथा कहीं-कहीं आंचलिक है। यह उपन्यास दम घोटनेवाली गलियोंमें रहनेवाले कुण्ठित, दमित तथा त्रस्त व्यक्तियोंके जीवनको चित्रित करता है तथा उन्हें संकुचित जीवनसे बाहर लाकर युगको एक नवीन सन्देश देता है। मानव रोग-ग्रस्त है, उसे स्वास्थ्य लाभ करना है। इसमें ही मानवकी मुक्ति है।

—डॉ० इन्द्रनाथ मदान

['आकाशवाणी विविधा']

• पुरानेकी बिदाईकी लम्बी रस्में

अमृतलाल नागरको समझानेके लिए उनकी कहानी 'दो आस्थाएँ' का अन्तिम वाक्य सूत्रकी तरह लिया जा सकता है : "नया युग पुराने युगसे स्वेच्छासे बिदा हो रहा था; पर बिदा होते समय कितना प्रबल मोह था और कितना निर्मम व्यवहार भी...." यही अन्त उनके 'बूंद और समुद्र'का भी है। लेकिन बिदाईकी रस्में इतनी लम्बी-चौड़ी हैं—(और उन्हें निभायें नहीं, यह नागरजी कर नहीं सकते) कि नवाबोंके चूड़ीदार पाजामा पहननेकी क्रियाकी तरह समाप्त ही होने नहीं आतीं।

'गोदान' के बाद 'बूंद और समुद्र' को उत्तर भारतीय जीवनका दूसरा

महाकाव्य कहा जा सकता है, और इसमें भी कोई अत्युक्ति नहीं है कि औप-न्यासिक माइक्रोस्कोपसे बूँदको ऐसी 'सामुद्रिक विराटता' शायद ही कभी मिली हो। 'वार ऐण्ड पीस'मे पांच सौ प्रमुख-अप्रमुख नाना वर्ग और वेशके पात्रोंके माध्यमसे पूरी एक शताब्दी बोलती है—हर पात्रका अपना व्यक्तित्व है, विशेषता है। एक शताब्दी तो नहीं, हाँ आधी शताब्दी निश्चित रूपसे 'बूँद और समुद्र' में भी बोलती मिलेगी। ताईका चरित्र निःसकोच रूपसे भारतीय उपन्यासकी एक विशेष उपलब्धि माना जा सकता है। 'जैहै बनि-बिगर न सागरता सागर की, बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की' की व्यक्तिवादी मान्यताको एक नयी सामाजिक परिभाषा जिस प्रभाव और परिवेशमें मिली है, उसके पीछे गम्भीर चिन्तन और मानसिक श्रम है। व्यक्ति और समाजके जिन अछूते क्षणों और कोणोंको प्रस्तुत उपन्यासमें वाणो मिलो है—उसके लिए असन्दिग्ध रूपसे अद्वितीय प्रतिभाकी अपेक्षा है। सचमुच इस उपन्यासमें गलियाँ बोलती हैं, दीवारें बातें करती हैं और मुहल्ले जागते हैं। जगह-जगह कथोप-कथन, नाटकोय स्थितियोंका चित्रण और मानसिक ज्वार-भाटोंका वर्णन पढ़-पढ़-कर मेरे मनमें ईर्ष्यामयी 'हूक' उठी है : काश, मैं एक पन्ना ही ऐसा लिख पाता।

इतना सब होते हुए भी डॉ० रामविलास शर्माके इस कथनमें तथ्य है कि उपन्यासको काफ़ी छोटा किया जा सकता था। आजके पाठकको इतना धैय नहीं है, जितना बाल्ज़ाकके पाठकको था, और उसपर सॅमरसेट मॉमने जो आरोप लगाया है, वह कई जगह नागरजीपर भी लगाया जा सकता है : "अपने इन विवरणोंमें वह स्पष्ट ही इतना रस लेने लगता है कि अकसर आपके जाननेकी इच्छासे बहुत अधिक बता देता है।" नागरजी भी चाहते तो मथुरा, वृन्दावन, विहार, महिपालके आत्मचिन्तन, बाबा रामजीकी 'बहकों'पर थोडा अंकुश लगा सकते थे। इससे कथानक कुछ गठ जाता। चेखॅवने गोर्कीके 'फ़ोमा गॉर्गियेव' के बारेमें कहा था, "उपन्यास लिखनेमें सबसे अधिक जाननेकी ज़रूरत है, 'लॉ ऑव सिमेट्री'—ढेर या समूहमें-से सन्तुलन और समतोल। उपन्यास तो एक महल है, पाठकको आप स्वतन्त्रता दीजिए कि वह उसमें जहाँ चाहे जाये! जैसे किसी अजायबघरमें ले आये हों, इस तरह उसे उबाइए या चौंका-इए मत।"

असलमें नागरजीको समझनेके लिए उस युगकी कुछ प्रवृत्तियोंको समझना

होगा, जब दुनियाकी किसी सच्चाईको लोग बिना भारतीयताका सर्टिफ़िकेट दिलाये ग्रहण नहीं कर सकते थे। यथार्थवाद बिना सांस्कृतिक-नमकके गले नहीं उतरता था, और धीरे-धीरे वह नमक कुछ ऐसा मुँह लग गया कि उसकी हलाली करनेमें दीन-दुनियाका होश ही नहीं रहा। जिधर देखिए, उधर नमकीन। नमक ही जीवनका परम सत्य है—यह आग्रह ऐसा दिलोंमें जमा कि जगह-जगह नमक बनने लगा। मार्क्सके गलेमें 'रघुपतिराघव' का रामनामी दुपट्टा और अरविन्दोमाला डाले, या (नागरजीके ही शब्दोंमें) ''कॅम्युनिज़मको गान्धीवादी अहिंसाका जनेऊ पहनाकर उसे भारतीय बनाये बिना, रोटी-बेटीकी तो बात ही क्या, उसे अपने घरकी देहलीज नहीं लाँघने दी जा सकती थी।'' नागरजीने भी कॅम्युनिस्ट वनकन्याको सज्जनकी सजनी बनानेमें वही नमक-अदायगी की है। 'निर्वाणोन्मुख आदर्शोंके अन्तिम दीपशिखोदय' कहकर कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने जिस 'युग-पुरुष' की वन्दना की है—'बूँद और समुद्र' को समझनेके लिए ठीक उसी मानसिक पृष्ठभूमिकी आवश्यकता है। रातमें गोमतीके किनारे मन्दिरमें महिपाल शिवके 'विरोधोंका समन्वय' करनेवाले रूपकी वन्दना करता है—मानो वह उपन्यासका पैटर्न दे रहा हो।

उपन्यासका नायक चित्रकार सज्जन, एक ही साँसमें 'कॅम्युनिस्ट' वनकन्या और इलहामी बाबा रामजी—दोनोंका वरण किये हुए है। समग्रतः उपन्यास एक ऐसे बड़े कमरेकी तसवीर सामने लाता है, जिसमें कहीं किसी कोनेमें बैठी ताई ननदोंसे घुस-फुस बातें करती, आस-पास मँडराते बिल्लीके बच्चोंको झिड़कती, सिन्दूरमें घीवाले तिल मिलाकर आटेके पुतलेपर मारणयन्त्र साध रही है; कहीं कर्नलकी हिरासतमें महिपाल पत्नीकी अदालतमें पेश है; कहीं बाबा रामजी अपने पागलोंको लिये भंग घोट रहे हैं, और कहीं सज्जन और कन्या रास देख रहे हैं। वातावरणको प्रभाव देनेके लिए और लोग आते-जाते रहते हैं। और सब मिलाकर यह कमरा सम्पन्न परिवारके सज्जनका मस्तिष्क है, जो तमाशाई-दर्शककी तरह गली-मुहल्लोंके जीवनका अध्ययन करने राजा द्वारकादासकी पुरानी हवेलीके एक कमरेमें आकर रहने लगता है।

नागरजीके कान और आँख जितने तेज़, संवेदनशील और पैने हैं, शायद ही हिन्दीके किसी उपन्यासकारके उतने हों; लेकिन मैं ज़रा साहसपूर्वक उनसे कहूँगा कि वे बाबा रामजी-जैसे सिद्धोंके दर्शन और प्रवचनोंमें अपनी इन दुर्लभ शक्तियों

और हमारे धैर्यको न खोयें तो बड़ा उपकार हो। जी हाँ, मैं बिना किसी लाग-लपेटके कहूँगा कि बाबा रामजीका चरित्र इस उपन्यासमें जिस रूपमें लाया गया है, वह निहायत आपत्तिजनक है, और सन् १९५७ में प्रकाशित होनेवाले उपन्यासके लिए सचमुच एक कलंककी चीज है। विज्ञान संसारकी सभी बातोंका जवाब देनेका दम्भ नहीं करता, प्रयत्न करता है। आज भी बहुत-से चमत्कार हैं, जिनकी समुचित व्याख्या विज्ञान नहीं कर पाया है, लेकिन उन चमत्कारोंको जाननेसे अधिक पूजना और श्रद्धा देना, या उनके चरणोंमें अपना मस्तिष्क चढ़ा देना ही एकमात्र सही रास्ता है, तो आइए हम लोग उड़न तश्तरियोंको पूजें, हिममानवके चरण-चिह्नोंको पूजें, पोटाशियम साइनाइड और तीन गोलियोंसे भी न मरनेवाले रासपुटीनको पूजें। ताईके टोने-टोटकेको रुचि और आदरसे देखनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं है, महिपालकी सांस्कृतिक-पुरातत्त्वीय बहकोंको जी कड़ा करके हम दरगुज़र कर दे सकते हैं; भुस-भरे मरे बच्चेको देखकर दूधसे भर-भर आनेवाली भैंसकी तरह मथुरा, वृन्दावन-की सड़ती लाशोंको देखकर श्रद्धा-विगलित होकर रोनेवाले सज्जनपर भी तरस खा सकते हैं, लेकिन पहुँचे हुए सन्तों और अन्तर्यामी सिद्धोंकी पलटनकी वन्दनामें नागरजी भी अपनी 'बन्दनाका एक स्वर और मिला दें,' यह हरगिज सहनीय नहीं है। वैसे ही क्या कम ढोंग और भ्रम हिन्दुस्तानमें हैं जो नागरजी-को एक और बनवा देनेकी जरूरत पड़ी। जिस तरहके महिलाश्रमका भण्डाफोड सज्जनने किया है, क्या वे भी एक दिन यों ही सदुद्देश्योंसे प्रेरित होकर नहीं बने थे?

अगर अपनी सांस्कृतिक विरासतका मोह और इतिहासका प्रेम इस नतीजे और स्तरपर लाकर खड़ा कर दें, तो सचमुच हमें उस सबकी कोई आवश्यकता नहीं है! हम—अर्थात् नया मस्तिष्क—उसे बेबाक़ उद्धत और अशिष्ट रूपसे अस्वीकार कर देनेको बाध्य हैं! हम अपने संग्रहालयोंको संग्रहालय ही बना रहने देना चाहते हैं—जादूगरका कमरा नहीं। इतना तो नागरजी भी मानेंगे कि भगवान्ने शेष सारी दुनियासे अलग किसी खास मिट्टीसे हिन्दुस्तानके इन चमत्कारी पुरुषोंको नहीं गढ़ा। हिन्दुस्तानके बाहर फिर ऐसे अवतार क्यों नहीं सुनाई देते? इस दृष्टिसे तो सूँघते हुए भीड़में छिपकर खड़े चोरके पास पहुँच जानेवाला मदारीका बैल सबसे अधिक 'पहुँचा हुआ सिद्ध' है। सचमुच

इस मनोवृत्तिको क्या कहा जाय कि हम ठेठ कम्युनिज़्मको बातको भी इन चम-त्कारी योगियोंसे सुनकर ही आनन्द-लाभ कर सकते हैं, वैसे वे त्याज्य हैं हो!

तो मैं कह यह रहा था कि नागरजीके निर्माणमें उनके युगकी वे 'टिपिकल' मध्यवर्गीय प्रवृत्तियाँ रही हैं, जो एक ओर तो प्रचण्ड बुद्धिवादी, उग्र, प्रगतिशील होनेका दम भरती थीं और फ़ौरन ही दूसरी ओर भाग्यवाद, पुनर्जन्मवाद, साधु-सन्त, पण्डे-पुजारी, तीर्थ इत्यादिके खूंटेसे आस्थाको बाँधे रखती थीं, इसलिए 'बूँद और समुद्र'का अच्छेसे अच्छा पात्र मूलतः इन प्रवृत्तियोंका शिकार है।

ख़ैर, इस आक्रोशका अर्थ कभी भी इस सत्यसे इनकार करना नहीं है, कि 'बूँद और समुद्र' हिन्दीके श्रेष्ठतम उपन्यासोंमें-से एक है, अपने वर्ग और कालकी बेजोड़ तसवीर है। अपनी इन सारी विशेषताओंके साथ वह उन लोगों-का सफल प्रतिनिधित्व कर सकता है, जिनका इसमें चित्र है। इसे नागरजीने भूमिकामें 'मध्यवर्गके नागरिक-समाजका गुण-दोष-भरा चित्र' कहा है। 'मध्य-वर्गीय नागरिक-समाज' के किन विशेष लोगोंकी यह तसवीर है, इसे नागरजी ज़रा और साफ़ कर देते तो इस सबकी आवश्यकता नहीं पड़ती—क्योंकि निश्चित रूपसे यह मध्यवर्ग वह नहीं है, जिसमें हम अर्थात् आजकी पीढ़ी जीती है, यह मध्यवर्ग वह है, जिसमें हम जी चुके हैं, अर्थात् जो हमारे सामने चुक रही है—समाप्तप्राय हो गयी है। चुनाव इत्यादिके नयेपनके बावजूद यह द्वितीय महायुद्धसे पहलेका मध्यवर्ग है। सारे उपन्यासमें प्रायः एक भी नौकरी-पेशेवाला आदमी नहीं है—सभी खाने-पीनेकी चिन्तासे मुक्त या फ्री-लान्सर हैं। पता नहीं क्यों, हर समय मुझे ऐसा लगता रहा जैसे यह जीवनकी जद्दोजेहदसे रिटायर्ड लोगोंवाला मध्यवर्ग है—जिनकी पेन्शनें आती हैं, किराये आते हैं, दूकानोंपर नौकर काम करते हैं या जो अपने पेशेमें भली प्रकार जमे हैं। उनके जीवनको झकझोरती हैं औरतें, डॉ० शीला स्विग, चित्रा राज़दान। अपने जीवनमें काफ़ी खेले-खाये प्रौढ़ोंके रोमान्सकी ये कहानियाँ हैं—उन प्रौढ़ोंकी, जो जीवनमें अब जैसे-तैसे इस रूपमें भी कहीं 'सैटिल' हो जाना चाहते हैं। इस प्रयत्नमें कुछको जीवनसे तलखी मिलती है। कुछको झूठा-सच्चा सन्तोष। सारे उपन्यासके स्त्री और पुरुष अपने पारस्परिक सम्बन्धोंमें जैसे किसी भीषण पापकी छायाओंसे आतंकित त्रस्त और आन्दोलित हैं। उन्हें हमेशा लगता रहता है जैसे वे कुछ ऐसा कर चुके हैं, जो अवैध था, वर्जनीय था और जो नहीं होना चाहिए था—वे कुछ ऐसा कर रहे हैं,

जिसे समाप्त हो जाना चाहिए, क्योंकि वह पिछलेके नैरन्तर्यमें है ! कन्या और सज्जनको छोड़कर वे सभी एक ऐसी व्यवस्थाके शिकार, और अवस्थामें जीवित हैं, जिसके प्रति उन्होंने पूरी तरह आत्मसमर्पण कर दिया है, इसलिए उनकी स्थापनाएँ और विश्वास व्यावहारिक संघर्षोंमें नहीं आते—वे उन्हें आपसी बहस-मुबाहिसोंमें ही तय कर लेते हैं। व्यवहारमें तो वे पुरानेके प्रति समर्पित हैं ही, जो शीला स्विंगका ही बलिदान नहीं माँगता—महिपालको भी पीस देता है।

'बूँद और समुद्र' का मध्यवर्ग उन लोगोंका मध्यवर्ग है, जो गुज़रते राजा-रईसों और जमते हुए सेठोंके हर उत्तराधिकारको सँभालनेको बाध्य हैं—कुछको वह स्वीकार करता है, कुछसे पिण्ड छुड़ानेमें असमर्थ है, कुछसे लड़ता है, कुछको एकदम फेंक देना चाहता है, और कुछको सेवा और भक्तिमें लगाकर जैसे प्राय-श्चित्त करते हुए मुक्तिकी साँस लेता है। चलो, पुरखोंके पापका हमने कुछ तो मार्जन किया। इसलिए इसमें दान, भक्ति, सेवा, आत्महत्या सभी कुछ हैं। और इस मध्यवर्गकी बोल-चाल, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, संस्कार-संस्कृतिका जैसा सजीव, सटीक और सवाक् चित्र नागरजीने दिया है, वह प्रथम श्रेणीकी औपन्यासिक प्रतिभा और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टिके बिना दे पाना असम्भव है। बोल-चाल-के लहजे, भाषाके लटके, स्थान-स्थानकी बोलियाँ, मानसिक उतार-चढ़ाव, शारी-रिक चेष्टाएँ, चेहरे-मुहरेके हाव-भाव, नाटकीय परिस्थितियाँ जितने सुन्दर ढंगसे नागरजीने दी हैं—उन सबको इतना जमकर भारतवर्षमें कोई और उप-न्यासकार दे पाया है या नहीं—मैं नहीं जानता। आजकल जीवनको ज्योंका त्यों चित्रित करनेका यथार्थवादी आग्रह हिन्दी उपन्यासोंमें लोक-संस्कृति, लोक-जीवन और लोक-भाषाको अधिकसे अधिक वास्तविक रूपमें प्रस्तुत कर रहा है। नागार्जुन, फणीश्वरनाथ 'रेणु', उदयशंकर भट्टने अपने कुछ उपन्यासोंमें वार्तालापों-की देशकालानुरूप भाषापर विशेष बल देना शुरू कर दिया है, लेकिन मैं निस्संकोच रूपसे कह सकता हूँ कि देश, काल, अवस्था, पात्र, मनोवृत्ति सभी रूपोंमें कथोपकथनकी भाषा जितनी समर्थ नागरजीकी है, शायद ही सफलताकी उस ऊँचाईको किसीने छुआ हो।

सामन्तवादको सिमटती-समाप्त होती संस्कृति, भाषा-बोली, रीति-रिवाज़ और समग्रतः वह जीवन नागरजीके कथाकारका प्रिय विषय रहा है। उसका अध्ययन उन्होंने बड़ी लगन और फ़ुरसतसे किया है, बड़े स्नेह और चावसे उसकी बातें

सुनी हैं । नागरजीको मैं इसलिए भारतका अद्वितीय हास्य-लेखक मानता हूँ कि वे कभी हास्यास्पद परिस्थितियाँ नहीं गढ़ते । उनका हास्य एक विशेष संस्कृति और समाजमें पली मानसिकता और मनोविज्ञानकी वह मजबूरी है, जिसपर हम हँसते हैं, लेखकको हमारे हँसनेपर कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन वह उनकी मजबूरीसे सहानुभूति रखता है, इसलिए खुद नहीं हँसता । चेखॅवसे जहाँ नागरजीकी बहुत-सी बातें मिलती हैं, वहाँ हास्यका यह तरीक़ा भी मिलता है । रेलके वोल्ट उखाड़कर मछली पकड़नेकी बंसीके काँटेमें लगानेवाले भोंदू आदमीके तर्कोंपर आप हँसें तो हँसिए––लेखक नहीं हँस सकता । लोगोंके अनागरिक रवैये, लड़कियोंके वेशऊरेपन, रात-रात-भर गाना, हँसना, इकट्ठे होना, मिलिटरीके रिटायर्ड हवलदारके लिए जो जीवन और मरणकी समस्या है, आप उसपर खिलखिला सकते हैं । यह टिपिकल 'चेखॅवीय' हास्य है । यह उन दो पीढ़ियोंका गम्भीर अध्ययन है जिनके लिए एक दूसरेके सारे तौर-तरीक़े हास्यका अवलम्बन बनते हैं ।

व्यक्तिको समाजके सन्दर्भ और परिपार्श्वमें समझने और इस सारे समाजके विस्तृत-विशद विहंगावलोकनके परिणाम-स्वरूप व्यक्तित्वको सामाजिक परिभाषा देनेकी दिशामें 'बूँद और समुद्र' अकेला है । यों बालकी खाल निकालनेको हमारे यहाँ अच्छी दृष्टिसे नहीं देखा जाता, लेकिन बूँदमें सागरकी विराट् भूल-भुलैया दिखाकर नागरजी सज्जनको किनारे ले आये हैं, यह खुशीकी बात है । अब किनारेपर बैठाकर वे खुद उससे किनारा न कर जायें––यह मेरी उनसे व्यक्तिगत माँग है ।

—राजेन्द्र यादव
(कल्पना)

● ●

अक्षरोंका सेतु
कृतियोंकी प्रतिक्रिया

लेखन-प्रकाशनके आयोजन-श्रमकी इकाई अधूरी रहेगी
जबतक पारखी पाठककी प्रतिक्रिया प्रकाशकके
पास होती लेखककी मेज़तक न पहुँचे

• अठारह सूरजके पौधे : रमेश बक्षी

हिन्दीके जिस कथाकारमें यान्त्रिकताकी गहरी पीड़ा, अपने चारों ओर खिंचे अनेक बेमानी पर मज़बूत दायरोंके खिलाफ़ भयंकर आक्रोश (भले वह नपुंसक हो), अनुभूतियोंकी महीन तहोंमें उघड़ती हुई बौद्धिक छटपटाहट तथा शिल्पमें असाधारण एवं नवीनके प्रति आग्रह तेज़ीसे उभरता है, वह है रमेश बक्षी।

'अठारह सूरजके पौधे'—बक्षीकी एकदम टटकी कृति है, इतनी टटकी कि उसमें-से चिन्तनकी आँचकी गरमी अभी भी भाप बनकर उड़ती नज़र आती है। यह एक उपन्यास है जैसा कि भारतीय ज्ञानपीठ इसे पेश करता है और मैं समझता हूँ यह एक लघु-उपन्यास है, वैसे लेखक इसे अकथा कहना पसन्द करता है। खैर इसे उपन्यास माननेमें ही सबको सुविधा है। वैसे पुस्तक केवल १३० पृष्ठों-की है और अकथाके प्रयोगसे लेखक साहित्यकी किस विधामें अपनी कृति रखना चाहता है, मेरे लिए यह समझना दुष्कर है। सम्भवत: कहानीके क्षेत्रमें जो वस्तु अकहानी है उपन्यासके क्षेत्रमें उसे अकथा या अ-उपन्यास कहनेकी चलन मेरी नज़रमें अभीतक नहीं आयी।

पुस्तकके फ़्लेपपर और उपन्यासके प्रारम्भके दो पृष्ठ पहले, एक-एक वक्तव्य हैं। ये वक्तव्य रचनाकारकी अपनी बात बड़ी सफ़ाईसे पेश करते हैं और जैसा कि रचनाकारका दावा है, उसके अन्तर्मनकी अँधेरी उजेली तहों, चेतनाकी अटूट यात्राओं और जीवनकी रेलसे नापी जाती अनुभूतिकी दूरियोंकी उम्रका जायज़ा लेनेमें पाठककी सहायता करेंगे।

यह यात्रा-कथा, पुरानी पीढ़ीसे नयी पीढ़ीके अलगावकी कहानी है, एक गति-पर बैठे हुए आदमीकी कटे हाथोंवाली-संगमरमरकी–अन्धी वीनस-मूर्तिके साथ टकराने और चूर-चूर हो जानेकी कहानी है, पलायन, पलायन और पलायन फिर मुड़ जानेके लिए, चुक जानेके लिए पुनरावर्तनकी कहानी है; एक नये महाभारत-की कहानी है जो हर पल, हर आदमी अपने भीतर-बाहर लड़ रहा है।

इसमें एक साधारण युवककी कहानी कही गयी है जो समझौता और पला-यनके बीच अपनी असमर्थताका शिकार हो जाता है, होता रहता है। एक लड़की-को प्यार करता है, जो अपने पूरे परिवारको पालनेके लिए नौकरी कर रही है, किसी इन्श्योरेंश कम्पनीकी और ढेर सारे ताजमहल बना डालता है सम्भावनाओं-के। पर एक दिन उसका ड्रायवर बाप जब उसकी शादी दहेजकी चार भैंसोंके बदले एक पाँचवीं भैंससे कर देता है तो वह कुछ नहीं कह पाता और एक दिन भाग खड़ा होता है उस खटालसे। लौटकर जब वह अपनी जिन्दगीकी नापसन्दगी-की जोंकको झटक देनेका साहस कर पाता है तो पाता है लड़की और उसके बीच एक स्पोर्ट-शर्टवाले लड़केकी तसवीर रखी है।

अठारह दिनोंकी यात्राके दौरान जुगाली किया गया एक अतीत कहानीकी दृष्टिसे कोई नया सीमान्त नहीं छूता किन्तु शिल्पकी गति अनुभूतिकी अत्याधुनिक संश्लिष्टता और आधुनिक जीवनकी यान्त्रिकताकी गतिमान् जड़ताका आभास पूरी कथामें अनुस्यूत है।

भाषाकी जानमारू सादगी और प्रयोगशीलताके बावजूद बक्षीका चिन्तक निखरा है। फिर भी यह पुस्तक पढ़कर मुझे सन्तोष नहीं हुआ क्योंकि मुझे अक-सर लगता है कि बक्षीके कथाकारने अपने कथा-जीवनकी महानताओंको अभीतक नहीं छुआ है—अभी उसने अपनी श्रेष्ठतम कृति लिखनी शुरू भी नहीं की है।

—डॉ० माहेश्वर

● अन्धा चाँद : मुनि रूपचन्द्र

एक

प्रस्तुत कविता-संग्रहका शीर्षक जिस दृष्टिकोणसे रखा गया है वही दृष्टिकोण पूरे संग्रहकी कविताओंमें प्रतिफलित है। वैज्ञानिक दृष्टि कहती है कि चाँदका प्रकाश अपना न होकर परायेसे लिया हुआ है। 'अन्धा चाँद' शीर्षक कवितामें

लेखक अन्धा चाँदको एक झटका देनेवाले प्रतीकके रूपमें उपस्थित करता है। उसका तोखा व्यंग्य उन सभीके प्रति है जो दूसरोंके बलपर बलशाली बनते हैं, और जैसा कि उसकी कविताओंकी प्रकृति है, वह स्पष्ट चाहता है कि मनुष्यका आत्मस्थ सत्य हो प्रभावशाली होकर मानवताके कल्याणमें रत हो।

कवि मुनि है इसलिए उसके विषयमें एक सामान्य धारणा यह हो सकती है कि वह किन्हीं परम्परागत विचार-परम्पराओंका संवाहक होगा लेकिन उसकी कविताएँ इस बातका तीव्र प्रत्याख्यान करती हैं। वह अतीतके अन्ध मोहको बुरा मानता है और वर्तमानके आलोकको स्पृहणीय; वह उस पूजार्चनको घृणित मानता है जो किसी दूसरेको ठगनेके लिए एक भ्रमपूर्ण आयोजन बने और उसकी दृष्टिमें भगवान् ऐसे लोगोंके पास रहनेकी अपेक्षा ईमानदार नास्तिकों-के यहां रहना पसन्द करते हैं। वह पूरे संग्रहमें जिन्दगीको सजाने-सँवारनेवाले उपादानोंको कविताका बाना पहनाता है और उन्हें अपने नैतिक विश्वासोंका धरातल प्रदान करता है

"खोखले बाँस में
एक रागात्मक फूँक भर दो
वही गीत बन जायेगा
खोखली माटी में
एक संवेदनात्मक साँस भर दो
वही दीप बन जायेगा।

संस्कारशील पाठक इन कविताओंमें वक्तव्यात्मकताका आरोप लगा सकते हैं और वे यह भी कह सकते हैं कि कवितामें सत्य सूक्ति बनकर ही आ पाये हैं, कविताकी आन्तरिक लय नहीं पा सके हैं। इस आरोपके समर्थनमें इस संग्रहकी अधिकांश कविताएँ भी वह उद्धृत कर सकते हैं लेकिन कविकी ओरसे 'यह' कहा जायेगा कि वह क्रान्तिकारी सन्तवाणीका जो नया रूप उपस्थित करता है उसमें वह हर व्यामोह काटकर सत्यकी नाना दृष्टियोंका दर्शन करता है।

उसकी भाषा कृत्रिमताओंसे मुक्त है। उसके बिम्ब और प्रतीक बोधगम्य और उसकी अनुभूतिके अंग हैं। इतनेमें वह जनसाधारणके निकट है। सब मिलाकर यह कहा जा सकता है कि कवि अपने चिन्तनको आत्मस्थ रूप देकर उसे कविताकी आन्तरिक लय देनेका जितना ही प्रयास करेगा, सब कुछ कहनेकी

अपेक्षा संकेत और इंगितसे कहनेका जितना ही विश्वासी होता जायेगा उसकी सम्भावनाशीलता उतनी ही बढ़ती जायेगी।

—जितेन्द्रनाथ पाठक

दो

नयी कविता आज प्रतिष्ठित हो चुकी है। उसका बोध, उसकी दिशाएँ हमारे सामने स्पष्ट हैं। प्रस्तुत कविता-संग्रह भी नयी कवितासे ही जुड़ता है, किन्तु कुछ भिन्न कोणोंसे। ऐसा नहीं है कि मुनि रूपचन्द्रमें आधुनिक संवेदनाका अभाव है या वे उसके समस्त उपकरणोंको ढंगसे ग्रहण नहीं कर पा रहे हैं। बात बिलकुल दूसरी ही है। 'अन्धा चाँद' को ऊपरसे देखने-पढ़नेपर शायद उसमें बहुत कम 'नयापन' मिले, पर यदि हम उसकी अन्तर्धारामें प्रवेश पानेकी चेष्टा करेंगे तो वह हमें एकदम नया और ताज़ा लगेगा। यह सब कवि-द्वारा प्रचलित शिल्पको न स्वीकारनेके कारण हुआ है। वह जो कहना चाहता है, एक अपूर्व सादगी और ईमानदारीके साथ कह देता है। कोई लाग-लपेट और दुराव नहीं। अतः शिल्पगत अनुशासनको भंग करनेका साहस उसे करना पड़ा है, क्योंकि शब्द-संयोजनको विचित्र और दुरूह बनानेमें वह विश्वास नहीं रखता—

"इसीलिए मैंने अपनी डायरी लिखना छोड़ दिया है
क्योंकि जो लिखी हुई है
उन्हें पढ़नेसे लगता है कि
असलियत कम है और तसवीरबाज़ी ज़्यादा है"

सामाजिक यथार्थको प्रत्यक्ष करनेके लिए निरन्तर संघर्ष किया गया है। साधारण और उपेक्षा की जानेवाली घटनाओंके प्रति कवि बार-बार आकृष्ट हुआ है, किन्तु जीवनकी सूक्ष्म अनुभूतियोंका वह एकाकी संरक्षक नहीं होना चाहता। मानवीय सत्योंकी व्यापकतासे साक्षात्कार करना और अन्तरावलोकन-द्वारा उन्हें निजी अर्थ देना ही जैसे उसका लक्ष्य है—

झरोखे में बैठा उदास कबूतर
भींगी पलकों से
कभी बाहर झाँकता है, कभी भीतर झाँकता है
वह देख रहा है

कि भीतर की दुनिया उजाड़ दी गयी है
अब यह महल खँडहर है, सुनसान है
और बाहर की दुनिया बस-बस कर भी उजड़ रही है
क्योंकि नींव खोखली है और आदमी बेजान है
पुराना मकान ढह रहा है, नया बन नहीं रहा है"

'अन्धा चाँद' में भावुकताका आग्रह भी है और बौद्धिकताका प्रवाह भी। प्रकृतिके साथ रागात्मक सम्बन्धोंकी स्थापना कर कवि जिन संकेतपूर्ण बिम्बोंकी अवतारणा करता है, उनकी कलात्मक उत्कृष्टता असन्दिग्ध है। लगभग सभी कविताओंमें वैविध्यका वैभव है और उनमें एक सन्तुलित चेतना पूरी तरहसे मुखर है। मुनिजी कहीं वर्तमानसे असन्तुष्ट हैं तो कहीं भविष्यके प्रति गहरी आस्थाका स्वर साधते हुए उल्लसित हो उठते हैं। मनके द्वन्द्वोंके समक्ष जब उन्हें अनगिनत प्रश्नोंसे उलझना पड़ता है तो वे एक शुद्ध चिन्तकके रूपमें प्रकट होते हैं। यह अनुभूतिपरक अनेकरूपता, सचाई और दृढ़ता ही कविके लिए सम्भावनाओंके द्वार खोलती है।

—माण मधुकर

• प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी—२ : नानक सिंह

पंजाबीके प्रसिद्ध लेखक नानक सिंहका एक उपन्यास 'पवित्र पापी' बहुत पहले पढ़नेके लिए मिला था। मेरे पूर्व जिस महाशयने उसे खरीदकर पढ़ा था उन्होंने उसपर एक नोट लगाया था और लिखा था, '....अब सोचता हूँ कि इसे नहीं पढ़ा होता तो अच्छा होता!' उनकी इस निषेधात्मक टिप्पणीने जादूका काम किया और एक बैठे मैं उपन्यास पी गया। बहुत मीठा लगा मगर मैं भी बार-बार सोचता रहा कि इस स्वादको 'मीठा' नहीं कहना चाहिए। क्योंकि यह मिठाई पेटमें जाकर एक हलचल—हाहाकार मचा देती है। और तभीसे मैंने लोहा मान लिया। अलबत्ते, कोई पंजाबीमें लिक्खाड़ है जो बेहद झकझोरता है।

यह ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित नानक सिंहकी प्रतिनिधि रचनाओंका नवीन संकलन है। उनके समस्त कृतित्वकी एकत्र बानगीका मज़ा अवश्य नायाब होगा।

तिसपर भी इस घोषणाके साथ कि 'गत पचास वर्षोंका इतिहास....जीवनको नया अर्थ और नया मोड़ देनेवाली घटनाएँ....दृश्य छबियाँ....' संकलनमें प्रस्तुत है।

अब यह निःसंकोच लिख देनेमें कोई हर्ज नहीं कि उक्त तथ्य नानक सिंहकी रचनामें अवश्य हैं परन्तु इस संकलनमें उनके संकेत अत्यन्त क्षीण हैं। लेखकके एक दर्जन उपन्यासोंको उसके एकाध अध्यायों और लेखकीय वक्तव्योंके सहारे बोधित करानेका प्रयास किया गया है परन्तु इसमें सफलता नहीं मिली है। न तो किसी उपन्यासपर पूर्ण समालोचनात्मक तथ्य मिल पाते हैं और न उसकी कथावस्तु और उसके समग्र स्वादका आभास हो पाता है।

अच्छा होता कि कोई एक उपन्यास पूरा रखकर शेषपर लेखक-द्वारा ही परिचयात्मक विवरण और लेखकीय स्थितियोंको संक्षेपमें स्पष्ट कराया गया होता। इससे पाठकोंके पल्ले कुछ पड़ता। इस वर्तमान रूपमें एक दर्जन उपन्यासोंमें-से एक भी हाथ नहीं लगता, मन छनककर रह जाता है। कोई विचार नहीं उभरता, बहुत अटपटा लगता है।

ऐसी दशामें लेखकके ललित निबन्ध, कहानी और एकांकी ही सहारा होते हैं। बेशक इनमें बड़ी जान और चुभन है। नानक सिंहने ठीक ही लिखा है कि जीवनकी कटुताओंने उसे झकझोरा कि एक आग पैदा हो गयी और जिसके प्रकाशमें उसने जीवनका निचली परतको पढ़ा, और दिखाई पड़ा वह सब जो सारी उम्र पढ़नेपर भी नहीं दिखाई पड़ा होता। उसके भीतर एक 'दर्दका बोझ' है। रचनाओंमें जैसे यह दर्दका बोझ उतर रहा है। ऐसा ही कुछ पंजाबी लेखक कर्तार सिंह दुग्गलमें भी है। शायद उनके भीतर 'बुखार' है जो रचनाओंमें उतरता है और दिलमें बैठी 'दुलहिन' की झाँकी पेश होती है। जो हो, दोनोंमें पीड़ा, प्यार, पुकार, सचाई, ईमानदारी, मानवताकी वकालत और आत्मतोष है। नानक सिंहमें कर्तार सिंह दुग्गलसे अधिक जो है वह है कुण्ठा, विस्फोट और वासना-विक्षोभका चित्रण। यही 'पवित्र-पापी' में है और यही 'जीवन संग्राम' में है।

—विवेकी राय

• •

नयी कृतियाँ
ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित

जो भारतीय साहित्य-जगत्में अनूठी और
अपूर्व हैं, और इसीलिए यह अपेक्षा
भी कि आप इनसे परिचित हों।

• मुरदा सराय : शिवप्रसाद सिंह

देखे हुएके भीतरसे अदेखेको देखने-समझनेकी शक्ति, वस्तुओंके सही सन्दर्भ और उनके उलझावोंको निवेरनेका विवेक, विविध जीवन-खण्डोंके आधारपर पूरे 'पैटर्न' को संकेतित करनेकी क्षमता, सामान्य ज़िन्दगीको गहराईसे अनुभव करने-को वह संभवित जो ज़िन्दगीके अछूतेसे अछूते कोनेको प्रकाशित कर दे—ये सभी कुछ मिल-जुलकर एक ऐसे मानसका निर्माण करते हैं जो बारीकसे बारीक स्पन्दनों-को भी अंकित कर लेता है। 'मुरदा सराय' ऐसे ही अंकनों और धड़कनोंका 'बैरोमीटर' है। यही कारण है कि इन कहानियोंमें ज़िन्दगी पुनःकथित नहीं हुई है, वह पुनरुज्जीवित है, पुनर्भुक्त है!

प्रस्तुत है नयी हिन्दी कहानीके विशिष्ट कथाकार शिवप्रसाद सिंहकी नयी कहानियोंका नवीनतम कहानी-संग्रह 'मुरदा सराय'—रोचक और संग्रहणीय

मूल्य ४.००

• झाड़ी : श्रीकान्त वर्मा

नये कवि श्रीकान्त वर्माकी अधिकांश कहानियाँ प्रेम-कहानियाँ हैं। लेकिन प्रचलित या परम्परागत अर्थमें नहीं। वास्तवमें वे प्रेमकी प्रक्रियाकी कहानियाँ हैं। उन अनिर्णीत स्त्री-पुरुषोंकी कहानियाँ जो प्रेमके बावजूद अकेले हैं; अपनी तमाम कोशिशोंके बावजूद जो न अपनेको पूरी तरह दे पाते हैं न दूसरेको पूरी तरह स्वीकार ही पाते हैं। ये कहानियाँ प्रभाव, अभिव्यक्ति और नये आयामोंकी अभिव्यंजनाके कारण भी पठनीय हैं, आकर्षक हैं, अब दूसरा नवीन संस्करण।

मूल्य ३.००

● **प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी : रूपान्तर एवं संकलन कर्त्ता : दिनकर सोनवलकर**

हिन्दीकी एक सहोदरी भाषाके आधुनिक काव्यका इस प्रकारसे हिन्दीमें प्रस्तुतीकरण कदाचित् यह पहला प्रयास है, – जो समकालीन मराठी कविता (१९४०-१९६२) की विविध प्रवृत्तियोंको रेखांकित करता है और प्रतिनिधि रचनाकारोंके कृतित्वकी झाँकी, एक बानगी, हिन्दी पाठकोंके सामने उपस्थित करता है। सब १८ समकालीन मराठी कवियोंकी चुनी-चुनी ९० कविताओंका हिन्दी रूपान्तर यहाँ प्रस्तुत है। साथमें डॉ० प्रभाकर माचवेकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका भी।

मूल्य : ४.००

● **प्रतिनिधि संकलन : एकांकी : संकलनकर्त्ता : अनिलकुमार**

नौ एकांकियोंका यह संकलन है – नौ भारतीय भाषाओंका एक-एक एकांकी। इन नौमें-से हर एक भाषामें कई प्रमुख एकांकीकार हैं और कई-कई उनकी सुन्दर एकांकी रचनाएँ सामने आयी हैं। यहाँ चुनी हुई केवल नौ प्रस्तुत की गयी हैं। इस दृष्टिसे प्रस्तुत कृतिको कहें – नौ भारतीय भाषाओंके नौ प्रतिनिधि एकांकियोंका संकलन। ये सभी एकांकी पठनीय तो हैं ही, सफल और प्रभावपूर्ण रूपसे अभिनेय भी हैं। दूसरे वर्ष ही दूसरा संस्करण।

मूल्य : ४.००

● **क्षण बोले कण मुसकाये : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'**

'प्रभाकर' जीकी यह पुस्तक उन उदात्त भावनाओं और अनुभवोंकी संश्लिष्ट छवि प्रस्तुत करती है जिसकी एक-एक रेखामें जीवन्त व्यक्ति और स्पन्दित राष्ट्रकी अनेकों प्रतिच्छवियाँ झिलमिला रही हैं। और विधा ? – साहित्यके विकास-क्रममें नितान्त निजी और अलबेली! सम्भव न होगा कि पढ़ना प्रारम्भ करनेपर पुस्तक बीचमें ही छूट जाये। नया द्वितीय संस्करण। मूल्य : ४.००

● **पीले गुलाबकी आत्मा : विश्वम्भर 'मानव'**

डायरी-जैसे फॉर्ममें लिखा हुआ हिन्दीमें अपने प्रकारका मौलिक सर्वप्रथम उपन्यास। इसमें एक बड़ी मीठी, भावनापूर्ण और पीड़ा-भरी सात्त्विक प्रेम-कथा रूपायित हुई है। पर बड़ी विशेषता यह है कि कथानायक इस लोकका जाना-

बीन्हा व्यक्ति है और कथा-नायिका परलोककी एक आत्मा : लेखकका दावा है कि कथा सर्वथा सत्य है। सर्वथा पठनीय यह उपन्यास अब नये दूसरे संस्करणमें प्रस्तुत है।

मूल्य : ४.००

• लेखनी बेला : वीरेन्द्र मिश्र

हिन्दीकी रसवन्ती गीतधाराके कवियोंमें विशिष्ट स्थान प्राप्त प्राणवान् कवि श्री वीरेन्द्र मिश्रकी चुनी हुई ऐसी नयी कविताओंका संग्रह जो भाव, रस और ओजमयताके कारण तो बाँध ही लेती हैं, छन्दशिल्पके कारण भी महत्त्वपूर्ण हैं। संग्रहमें कविकी प्रसिद्ध रचना 'देश' भी सम्मिलित है। अब प्रस्तुत है नये रूपमें संशोधित परिवर्द्धित दूसरा संस्करण—लोकप्रियताका अकाट प्रमाण !

मूल्य ३.००

• भारतीय इतिहास : एक दृष्टि : डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

इतिहासकी यह एक नयी लीक है, नयी दृष्टि है। भारतवर्षके समूचे इतिहास विशेषकर उसके अतीतकाल और मध्यकालको यदि सही और सन्तुलित परिप्रेक्ष्य-में देखना है तो इतिहासकी इस दृष्टिको भविष्यके इतिहास-लेखनमें समाविष्ट करना ही होगा। भारतीय इतिहास और भारतीय संस्कृतिकी प्रेरक घटनाओं और पूरक इतिवृत्तके ज्ञानके लिए यह पुस्तक अनिवार्य। परिवर्द्धित दूसरा संस्करण।

मूल्य १०.००

• खोयी हुई दिशाएँ : कमलेश्वर

नयी हिन्दी कहानीके एक विशिष्ट शिल्पी कमलेश्वरकी चुनी-चुनी ग्यारह कहानियोंका नवीन दूसरा संस्करण। ये कहानियाँ—जो बिना सन्देह एक बदली हुई मनोभूमि प्रस्तुत करती हैं; वह मनोभूमि जो लेखककी ही नहीं—समूचे समाज-की है। कहानियोंमें जीवनका अध्ययन है मात्र सर्वेक्षण नहीं। यही कारण है कि हर कहानी मनपर एक सार्थक प्रभाव छोड़ती है।

मूल्य २.५०

• सन्त विनोद : नारायण प्रसाद जैन

यह 'सन्त विनोद' मानो प्रकाशका जुलूस है। इसमें एकके बाद एक ज्यो-तिर्धर आत्मिक शुद्धता और पवित्रताके सादा और सरल जीवनकी सौन्दर्य-ज्योति

हाथमें लिये नजरसे गुजर कर हृदयमें प्रवेश करते जाते हैं। इस सन्त-मालामें दूर-दूरके सौदागर, बड़े-बड़े खलीफ़ा, बादशाह और कलाकार शोभायमान हैं। जीवन्मुक्तोंके साथ भक्त और भटकते भिखारी तक अभिनव प्रकाश फैला रहे हैं। ऐसी प्रेरणादायक और आकर्षक पुस्तक है यह 'सन्त-विनोद'—अब दूसरे संस्करणमें।

मूल्य २.५०

• भोजचरित्र : मूल—पाठक राजवल्लभ, सं०—बहादुरचन्द छाबड़ा, शंकर नारायणन्

परमार नरेश भोजके जीवनपर लिखा गया ऐतिहासिक महत्त्वका एक विशिष्ट संस्कृत काव्य। महत्त्वपूर्ण अंगरेजी प्रस्तावना, व्याख्यात्मक टिप्पण तथा परिशिष्ट आदि सहित। प्रत्येक काव्य-प्रेमी पाठकके लिए अनिवार्य रूपसे संग्रहणीय कृति।

मूल्य ८.००

• मदनपराजय : मूल—कवि नागदेव, सं० अनु०—डॉ० राजकुमार जैन

मनुष्यकी पाशविक वृत्तिपर परमात्म वृत्तिकी विजयका प्रतिपादन करनेवाली, प्रतीक शैलीमें निबद्ध एक ऐसी ललित कृति जो भारतीय साहित्यमें अपने ढंगकी अद्वितीय रचना है। अब प्रस्तुत है इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थका द्वितीय संस्करण।

मूल्य ६.००

• हरिवंश पुराण : मूल—आचार्य जिनसेन, सं० अनु०—पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

जैन-साहित्यमें श्री कृष्णकी प्रिय एवं प्रेरक कथाका वर्णन करनेवाले इस ग्रन्थमें सम्पूर्ण हरिवंशका परिचय तथा जैनधर्म और संस्कृतिके उपादानोंका स्पष्ट विवेचन तो किया ही गया है, भारतीय संस्कृति और इतिहासकी भी बहुविध सामग्री भरी पड़ी है।

मूल्य १६.००



हिन्दीमें पहली बार

विश्वसाहित्यकी चुनी हुई रचनाएँ

पुल (उपन्यास) : नोबेल पुरस्कार-विजेता साहित्यकार अर्नेस्ट हेमिंग्वेका विख्यात उपन्यास । मूल्य ६.००

संघर्ष (उपन्यास) : अमर उपन्यासकार हरमन मेलविलका महान् प्रतीकात्मक और रोमांचक उपन्यास । मूल्य ६.००

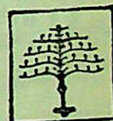
हवेली (उपन्यास) : विश्वसाहित्यको व्यापक रूपसे प्रभावित करनेवाले उपन्यासकार नैथेनियल हॉथार्नकी प्रसिद्ध रचना । मूल्य ५.००

हृदयके बन्धन (उपन्यास) : हेनरी जेम्सकी अद्वितीय मनोवैज्ञानिक कृति, जो अबतक कई भाषाओंमें अनूदित हो चुकी है : मूल्य ५.००

काँचके खिलौने (तीन बड़े नाटक) : टेनेसी विलियम्स, यूजीन ओ' नील, और हावर्ड टीशमान तथा ज्यार्ज एस० काँफमानके विश्वविख्यात तीन पूरे नाटकोंका संकलन । इन नाटकोंका आधुनिक रंगमंचके इतिहासमें अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है । मूल्य ४.००

पथकी खोज (दर्शन-चिन्तन) : महात्मा गान्धीके आराध्य महान दार्शनिक और निर्भय विचारक हेनरी थोरोका अमर ग्रन्थ । इसमें 'सविनय अवज्ञा' सम्बन्धी क्रान्तिकारी निबन्ध भी सम्मिलित है । मूल्य ६.००

उचक्के (उपन्यास) : नोबेल पुरस्कारसे सम्मानित साहित्यकार विलियम फांकनरका प्रसिद्ध उपन्यास । मूल्य ५.००



राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके साहित्यिक (मासिक) प्रकाशन

माध्यम

की

गौरवपूर्ण परम्परामें नयी कड़ी

केरल विशेषांक

● ●

उत्तरापथ और दक्षिणापथका सांस्कृतिक सेतु

भावात्मक एकताका प्रतीक

●

इस केरल विशेषांकके कुछ प्रमुख लेखक

सर्वश्री ए० चन्द्रहासन, पो० नारायण, अब्राहम जेकब, एस० वेंकटसुब्रह्मण्य अय्यर, विश्वनाथ अय्यर, किलिमानूर एन० विश्वम्भरन्, टी० भास्करन्, ए० श्रीधर मेनन, के० नारायणन्, एम० चन्द्रशेखरन नायर, वी० ए० केशवन नम्पूतिरि, आर० रामन नम्पूतिरि, एन० पुरुषोत्तम मल्लय्या, रवि वर्मा, रामचन्द्र देव, जी० शंकर कुरुप्पु, पी० कुंजुरामन नायर, वेलोप्पिल्लि श्रीधर मेनोन, अक्कित्तम् अच्युतन नम्पूतिरि, तकषी शिवशंकर पिल्लइ और श्रीमती बालामणि अम्मा तथा सुगत कुमारी।

●

मई १९६६ को प्रकाशित हो रहा है

केरलीय साहित्य, संस्कृति, कला और दर्शनका यह सन्दर्भ-ग्रन्थ अवश्य पठनीय और संग्रहणीय है।

सम्पादक : बालकृष्ण राव

मूल्य : एक अंकका १.००; वार्षिक १०.००; इस विशेषांकका २.५०

३१ मार्च, १९६६ के पूर्वके वार्षिक ग्राहकोंको इस विशेषांकका पृथक् मूल्य न देना होगा।

माध्यम

सम्पर्क-सूत्र

पो० बा० नं० ६०, इलाहाबाद

समसामयिकी

कथा-समारोह एक कथामंच

जहाँ कई पीढ़ी और कई विचार-मान्यताएँ मंचपर
थीं और कई पीढ़ी और कई भाव-दृष्टियाँ
सामने श्रोता-दर्शकों
की

[पहली और दूसरी गोष्ठीका विवरण फ़रवरी अंकमें आया, आगे यहाँ प्रस्तुत है]

तीसरी गोष्ठी

विषय : हिन्दी कथा-साहित्य : उपलब्धियाँ, उभरती दिशाएँ और आधुनिकताके सन्दर्भमें अपेक्षाएँ।

अध्यक्ष : डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा, डॉ० देवीशंकर अवस्थी, डॉ० शिवप्रसाद सिंह।

वक्ता : धनंजय वर्मा, श्रीकान्त वर्मा, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह।

डॉ० देवीशंकर अवस्थी :

आधुनिकता एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसमें यथार्थके प्रति दृष्टि बदलती जाती है। इसीमें नये-पुरानेके द्वन्द्व खड़े होते हैं। मैं द्वन्द्वको रचनात्मकताका अनिवार्य सन्दर्भ मानता हूँ। रचनाकार यथार्थमें-से कुछ ही चुनता है। चुनावके पीछे उसकी जीवनदृष्टि होती है : उसकी प्रतिभा, उसके द्वन्द्व। इस केन्द्र-विन्दुसे देखें तो पुरानी पीढ़ी अपने द्वन्द्वकी कहानियाँ लिख चुकी। जो कहानियाँ वह अब लिखती हैं वे झूठी हैं। क्योंकि उनमें व्यक्ति झूठ होते हैं : उनके सम्बन्ध झूठे हैं। नयी कहानी भी अब थकी-पुरानी हो गयी है : उसमें आया संसार, उसके प्रति दृष्टिकोण, समकालीन सन्दर्भमें अयथार्थ लगता है। स्पष्ट है कि दृष्टिका बदलाव पुनः हो रहा है : कथाकारकी

एक और नयी पीढ़ी आ गयी है। यह पीढ़ी अपने लिए एक नयी पहचान-की सहारा-भर रही है। थर्टीज़-फ़ॉर्टीज़के लेखक यथार्थका सृजन करते थे, फ़िफ़्टीज़के लेखक यथार्थको अभिव्यक्त करते थे, नया समकालीन कथाकार यथार्थको खोजता है। पुराने लेखकोंकी दृष्टिमें साहित्य समाजको बदलनेका एक साधन था। नया समकालीन लेखक जानता है कि साहित्य समाजको नहीं बदल सकता, अधिकसे अधिक उसके माध्यमसे सामाजिक सम्बन्धों-भावनाओंको अधिक संयोजित रूपसे देखा जा सकता है, इससे अधिक नहीं। सामाजिकता या मानवता-जैसे शब्द उसके लिए अप्रासंगिक हैं या ऐब्स्ट्रैक्शन। उसके ऑब्जेक्टिव और सब्जेक्टिव संसारोंमें ही फ़र्क़ नहीं रह गया है। इसलिए इनकी कहानियोंकी दुनिया छोटी भले हो पर अधिक प्रामाणिक है।

धनंजय वर्मा :

उपलब्धियाँ निकष नहीं होतीं। कोई उपलब्धि निकष बननेका दम्भ करती है तभी विवाद उठता है। हर नयी परिस्थितिमें सामाजिक सन्दर्भ और सम्बन्ध बदलते हैं और नये जीवनमूल्योंकी चेतना जागती है। पुरानी पीढ़ी अपने संस्कार और स्वभावके कारण नयी जीवनधाराके साथ संगति नहीं बैठा पाती : वह नयी मानव-वास्तविकतासे कट जाती है। जिसे हम नया कथा-साहित्य कहते हैं वह परिवर्तित सन्दर्भोंके अनुरूप नये भावबोधकी उपज है। नैरन्तर्यके धरातलपर वह परम्परासे संयुक्त है; ऐप्रोच, निर्वाह तथा दृष्टिके धरातलपर एक स्वतन्त्र विकास। उसने समकालीन चेतनाको किसी बौद्धिक ज्ञान या बाह्य माध्यमके सहारे नहीं, अनुभूतिके स्तरपर ग्रहण किया है। नयी कथाकी आन्तरिक उपलब्धि यही है कि वह अनुभवके धरातलपर सार्थक होती है, नैरेशन या कहानीके धरातलपर नहीं।

श्रीकान्त वर्मा :

जबतक नामकरण नहीं हुआ था, नयी कहानी तेज़ीके साथ आगे बढ़ी। नामकरण होते ही स्तर गिर गया। क्योंकि नामके साथ सन्निहित स्वार्थ पैदा हो गये और कहानीकार फ़ॉर्मूलोंमें क़ैद होने लगे। साहित्यको खानोंमें बाँटकर नहीं रखा जा सकता। सारी कलाएँ अब एक हो रही हैं। बिलकुल

नये कथाकार खास तौरपर परिधियोंको तोड़ रहे हैं। इन्होंने कहानीकी उस बनावटको भी छोड़ दिया है जो अब बनावटी लगने लगी है। इस कहानीको 'अकथा' या 'प्रतिकथा' नाम देना ग़लत है। इसका कोई नाम नहीं। ये कथाकार अपनी ज़िन्दगीके सबसे आत्मीय अनुभवोंका विधान रचते हैं। हिन्दी कहानीकी यात्रा सामाजिकतासे आत्मीयता और स्थूलतासे सूक्ष्मताकी ओर है।

डॉ० शिवप्रसाद सिंह :

हिन्दी कहानीमें तीन पीढ़ियाँ चल रही हैं। तीनोंकी कशमकशका गन्दा परिणाम सामने है। मेरा आग्रह है कि पूरी कहानीको एक चीज़ मानकर उसका पुनर्मूल्यांकन किया जाये, तटस्थ-निष्पक्ष होकर। १९६० के बादकी पीढ़ीकी संवेदना अपने पूर्ववर्तियोंसे बहुत भिन्न है, उसकी जड़ें उस सामाजिकतामें नहीं हैं जिसका परिचय उन पूर्ववर्तियोंकी रचनाओंमें मिलता है। इसमें शक नहीं कि यह पीढ़ी अपने ढंगका यथार्थ खोज रही है और कि यह खोज उसकी बौद्धिक जागरूकता और वैयक्तिकतासे अनुशासित होगी। लेकिन १९५०के आसपास आयी उस पूर्ववर्ती पीढ़ीने स्पष्ट किया था कि वह पुरानी पीढ़ीसे कैसे भिन्न है; नयी पीढ़ीका भी कर्तव्य होता है कि अपनी मान्यताओं और उपलब्धियोंको ऐसे प्रस्तुत करे कि निष्पक्षतासे विचार किया जा सके। मैं तीन प्रश्न सामने रखता हूँ : क्या यह ह्रासशीलता, ऊब और संत्रासकी स्थिति अपरिवर्तनीय है ? नये कथासाहित्यका केन्द्र मानव परिस्थितियाँ हो गयी हैं : तब क्या ये परिस्थितियाँ खण्डशः ही जीवन हैं या इन खण्डोंको जोड़नेवाली कोई समग्र चेतना भी उनके पास है जो उनके समानान्तर जीनेवाले पाठकोंको न सही दिशादान पर साहससे जीनेकी प्रेरणा तो दे सके ? कहानी-उपन्यास जीवनसे जुड़ा होता है, तो क्या इन नये कथाकारोंमें भी "इण्टरेस्ट बिहाइण्ड इण्टरेस्ट" है ? कहानी अभी साहित्यकी एक अजनबी विधा है। हिन्दीमें उसका इतिहास केवल ५० वर्षका है। उसे तंग और संकीर्ण कर देना ख़तरेसे खाली नहीं। आधुनिक साहित्यकी तो पहचान यही है कि उसकी एक विधा सभी विधाओंसे जुड़ी हो।

दूधनाथ सिंह :

आधुनिकताके सन्दर्भमें हमसे अपेक्षा करना ठीक नहीं, स्वतन्त्रतासे पहले तो लेखकोंके सामने एक लक्ष्य था। बादमें नहीं रहा। हमारा संघर्ष आन्तरिक हो गया। जो राजनैतिक और सामाजिक धूर्तताएँ डेवलप हुईं उन्होंने हमें एक नये ढंगकी विश्वासहीनताकी ओर बढ़नेको विवश किया। हमारे सामने पॉज़ीटिविटीज़का धरातल ही नहीं है। तब स्थितिकी परिवर्तनीयता-अपरिवर्तनीयताका प्रश्न कहाँ उठता है? जैनेन्द्रजी कहानी बनाते थे। हम बना नहीं सकते। हम अपनेको इन्वॉल्व्डकी स्थितिमें पाते हैं। एक तरफ़ शताब्दियोंका बोझ दूसरी तरफ़ साएन्स और टेक्नॉलॅजीके पंजे। दोनोंके बीच एक अजीब-सी विवशता है। यह हमें तोड़ नहीं देती बल्कि संघर्ष करनेकी शक्ति देती है, यही अपनेमें बड़ी बात है। ये परिस्थितियाँ समग्र जीवन हैं या खण्डशः? स्थितियाँ वास्तविक रूपमें जटिल हैं; पर मेरा पूर्ववर्तियोंसे निवेदन है कि हमारी विश्वसनीयता यदि उन्हें अविश्वसनीय लगती है तो वे अपने अन्दरकी अविश्वसनीयताको पहले निकाल दें। यही बात जीवनकी दिलचस्पी की, तो सारा संघर्ष ही जब जीवन है तब कोई और बात होगी कहाँ जिसमें दिलचस्पी हो।

रवीन्द्र कालिया :

मृत्यु, अनास्था, विश्वासहीनता आदिको नयी पीढ़ीके साथ ग़लत रूपमें नत्थी किया जा रहा है। वह इन्हें अस्तित्वका सिद्धान्त मानकर सहज भावसे स्वीकार करती है। उसके निकट देश-कालका वह महत्त्व नहीं रहा जहाँ ये महत्त्वपूर्ण हों और संवेदनाएँ गौण। नये कथाकारके लिए कहानी अकहानी हो सकती है, दीपक नहीं। जीवनको वह कोई नयी दिशा दे पायेगा, यह सन्दिग्ध है, पर जीवनमें उसकी गहरी दिलचस्पी है, यह प्रत्यक्ष है। वह न रास्ता ढूँढता है न बनाता है, वह केवल अपनी भोगी हुई स्थितिको आत्मीयताके साथ व्यक्त करता है। नया कथाकार सामाजिक रूढ़ियोंको ही नहीं, कथा-रूढ़ियोंको भी तोड़ रहा है। उसने नयी भाषाकी खोज की है जो सांकेतिकता आदि स्त्रैण तत्त्वोंसे मुक्त है। नयी कथामें न चरित्र है न घटनाकेवल संवेदना है, एक इण्टेन्स मोमेण्ट, और यही उसकी विशिष्टता है।

वृन्दावनलाल वर्मा :
आलोचक यदि निश्चय कर ले कि किसी लेखकको गधा कहना है और उसकी मरम्मत करनी है तो लेखक गधा न हो तो भी वह मरम्मत किये बिना नहीं रहेगा। महत्त्वपूर्ण है संस्कृतिकी बात कि रचना सत्यं-शिवं-सुन्दरम् हो। इतिहासको वर्षोंमें नहीं बाँटा जा सकता, यह तो धारा है। और विकासकी धारापर ध्यान दिया जाना चाहिए।

[आगे अगले अंकमें]

भारतीविश्व
कुछ सूत्र कुछ सन्दर्भ

सूचनाएँ

जो उपयोगी तो हैं ही, विचारणीय भी

• यह कबतक ?

'देशकी राष्ट्रभाषा केवल हिन्दी', 'हिन्दी ही अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा', 'हिन्दी लादी नहीं जायेगी', 'शिक्षामें अँगरेजी भाषा माध्यम अनुचित', और इन्हीं-जैसे तमाम दिलचस्प उद्घोषोंके प्रति धीरे-धीरे अब जन-मानसमें भी विरक्ति-भाव उत्पन्न हो रहा है। कहना न होगा कि ये उद्घोष मौके-मौकेसे भारतीय जनताके प्रतिनिधि और हमारे राष्ट्रीय गौरवके प्रतीक – हिन्दी हितैषियों-द्वारा किये गये हैं। जनता इन उद्घोषोंका नियमतः आदर करती है, करेगी, पर वह यह भी समझनेके लिए विवश हो चुकी है कि कथनी और करनीमें कितना नजदीकी अन्तर है। उसके कान-आँख दिलचस्पीसे सुन और देख रहे हैं–दक्षिणको, भूखे बंगालको और अब सन्तमना पंजाबको भी। उसने अपने तीसरे श्रेष्ठतम प्रतिनिधिका 'राष्ट्रकी भाषा'में राष्ट्रके नाम आह्वान धीरजसे सुना है! सुनकर उसे आश्चर्य नहीं हुआ, वह जानती थी कि यह तो होगा ही। उसने समाचारपत्रोंमें देशके सर्वोच्च न्यायाधीशके भी वक्तव्य पढ़े हैं। वह सचेत है–वह भूखसे भी लड़ रही है। मगर वह कुशल हाथों दिखाये जानेवाले खेल भी देख रही है। वह विवेकी है। वह जानती है कि अभी समय नहीं आया है, उसकी तलाश जारी है।

और अब वह अपने प्रतिनिधि हिन्दी हितैषियोंके लिए साहित्य अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत कवि श्री 'अज्ञेय'के शब्दोंमें यह भी कहना पसन्द करती है कि : हिन्दीके हितैषियोंको बार-बार प्रणाम! जिनकी हितैषणा कुछ कम होती तो हिन्दीकी

उन्नति कुछ अधिक हो पायी होती। हितैषीगण हिन्दीकी रक्षाके नामपर उसके चारों ओर ऐसी दीवार खड़ी करके बैठे हैं कि वह न हिल-डुल सके, न बढ़ सके, न साँस ले सके; और (न)....।

● राजर्षि टण्डन महाविद्यालय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागके तत्त्वाधानमें 'राजर्षि टण्डन महाविद्यालय' का प्रारम्भ आगामी जुलाई '६६ से हो रहा है। इस महाविद्यालयमें अहिन्दीभाषी क्षेत्रोंसे आये छात्रोंको 'विशारद' तथा 'साहित्यरत्न' की शिक्षाएँ छात्रवृत्ति सहित दी जायेंगी। इन हिन्दी-प्रेमी विद्यार्थियोंको आवासकी सुविधा अतिरिक्त रूपसे उपलब्ध होगी। प्रारम्भमें तो यह सारा प्रबन्ध महाविद्यालयने केवल पचास विद्यार्थियोंके लिए किया है, पर आगे निश्चय ही यह संख्या बढ़ेगी।

सम्मेलनकी अपनी सीमाएँ हैं, और अपनी सीमाओं उसका यह ऐतिहासिक प्रयास तथ्यत: सराहनीय है। क्या इसी प्रकारके महत्त्वपूर्ण प्रयास सम्मेलन-जैसी हमारी अन्य संस्थाएँ नहीं कर सकतीं!

● राजस्थान : राष्ट्रभाषामें आह्वान

२६ जनवरी '६५ को राजस्थान सरकारने घोषणा की थी कि राज्य सरकार जनवरी १९६८ तक अपना सम्पूर्ण कार्य पूर्णत: हिन्दीमें प्रारम्भ कर देगी। और प्राप्त आँकड़ोंसे यह पता चला है कि इस योजनाके अन्तर्गत सरकारने बीस हज़ार सरकारी आदेशों, नियमों और उपनियमोंमें-से लगभग दो हज़ारसे अधिकके हिन्दी अनुवाद करा लिये हैं! निस्सन्देह राजस्थान सरकारका निर्णय और प्रयास स्तुत्य है किन्तु अबतककी कार्य-प्रगतिको देखते यह भी कहा जा सकता है कि—गति धीमी है।

● भारतीय भाषा-समिति

भारत सरकारने भारतीय भाषाओंके विकाससे सम्बन्धित सभी मामलोंपर सलाह देनेके लिए 'भारतीय भाषा समिति'की स्थापना की है। इस समितिमें सब ५१ सदस्य होंगे। समितिके अध्यक्ष होंगे केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री तथा उपाध्यक्ष शिक्षा मन्त्रालयके भाषा विभागके उपमन्त्री। प्रत्येक राज्यका एक-एक प्रतिनिधि (जो शिक्षा निदेशकसे नीचेके पदका नहीं होगा), लोकसभाके चार और राज्यसभाके दो सदस्य, विभिन्न भारतीय भाषाओंके सोलह विद्वान् या लेखक

और सरकार-द्वारा विशेष हितोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले पाँच मनोनीत व्यक्ति भी इस समितिके सदस्य होंगे। इनके अलावा समितिके शेष छह सदस्य होंगे : राष्ट्रीय पुस्तक न्यासके अध्यक्ष, साहित्य अकादेमीके सचिव, वैज्ञानिक और शिल्पिक शब्दावली आयोगके अध्यक्ष, गृह मन्त्रालयका एक प्रतिनिधि, शिक्षा मन्त्रालयके भाषा विभागके सचिव या संयुक्त शिक्षा सलाहकार, उप-सचिव या उप-शिक्षा सलाहकार। इस समितिके सभी सरकारी एवं ग़ैर-सरकारी सदस्योंका कार्यकाल पाँच वर्षका होगा।

• भाषा विद्यालय : चलता-फिरता

केम्ब्रिजके नेशनल एक्सटेंशन कॉलेज-द्वारा शिक्षणके नवीनतम वैज्ञानिक उपकरणोंसे सुसज्जित एक ऐसी डबल डेकर बस तैयार की गयी है जो भाषाएँ सिखानेका चलता-फिरता विद्यालय है। गत पाँच महीनोंसे यह बस दक्षिण-पूर्वी इंग्लैण्डके अनेक क्षेत्रोंमें घूम-घूमकर लोगोंको जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, एशियन तथा इटैलियन भाषाएँ सिखा रही है। भारत, पाकिस्तान और साइप्रससे आये प्रवासियोंको भी इसने इस वर्षसे उनके घरोंपर जाकर अँगरेज़ी भाषाकी दीक्षा देनी प्रारम्भ की है।

• एक उचित अनुरोध

केन्द्रीय संस्कृत बोर्डने अपनी एक बैठकमें, जिसकी अध्यक्षता डॉ० कर्णसिंह कर रहे थे, सर्वसम्मतिसे स्वीकृत एक प्रस्तावके आधारपर भारत सरकारसे अनुरोध किया है कि अहिन्दी-भाषी क्षेत्रोंमें प्राइमरीके साथ-साथ संस्कृतका भी अध्ययन अनिवार्य किया जाये। परीक्षामें हिन्दी प्रश्नपत्रके साथ ही संस्कृतका भी सम्मिलित रहे। हिन्दी-भाषी क्षेत्रोंके सन्दर्भमें बोर्डने चाहा है कि वहाँ भी प्राइमरीके बाद हिन्दीके अलावा एक भारतीय भाषाके साथ संस्कृतका अध्ययन अनिवार्य किया जाये। साथ ही कोई क्षेत्रीय भाषा भी पढ़ायी जाये।

बोर्डने राज्योंसे संस्कृत हाईस्कूल खोलने और माध्यमिक स्कूलोंमें संस्कृतके छात्रोंको छात्र-वृत्तियाँ देनेकी सिफ़ारिश भी की है।

• पाठ्य-पुस्तकोंके अनुवाद

भारत सरकारके शिक्षा मन्त्रालयने विश्वविद्यालय-स्तरकी ३७६ अँगरेजी-में लिखी पाठ्य-पुस्तकोंके हिन्दी अनुवादका काम हाथमें लिया था जिनमें १८१ का अनुवाद-कार्य पूरा हो चुका है। ३० पुस्तकें प्रकाशित भी हो गयी हैं और २६ मुद्रणालयमें हैं।

पहले तो यह काम केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय-द्वारा किया जा रहा था किन्तु अब इसे वैज्ञानिक और शिल्पिक शब्दावलीका आयोग पूरा करेगा। इस समूची योजनाकी सफलता अब इस बातपर निर्भर करती है कि ये अनूदित पुस्तकें देशके विभिन्न विश्वविद्यालयों-द्वारा पाठ्य या सन्दर्भ पुस्तकके रूपमें स्वीकारी जायें। और इससे भी पहले करणीय यह है कि इन अनुवादोंकी प्रामाणिकता सिद्ध की जाये।

• •

ज्ञानोदय

अप्रैल १९६६

● कुछ रचना शीर्षक :

● समय-बोध : आइन रैण्डसे एक भेंटपर आधारित ● साहित्यभूमि : ● दिगम्बर पीढ़ी : तेलुगुकी नयी कविता ● मुक्तचिन्तन : प्लेटोका दर्पण और कविताका सत्य ● ताज़े सन्दर्भ : रादनोतीकी युद्ध-कविताएँ ● प्रश्नान्तक : उत्तर नये-नयोंकी ओरसे ● निर्णयके अन्तरंग क्षण ● कंगालमहल ● घर तकका रास्ता ● विपात्र

● कुछ रचनाकार :

गजानन माधव मुक्तिबोध, जोशे द' क्रीफ़्ट, गिरिजाकुमार माथुर, कुन्था जैन, श्रीकान्त वर्मा, मन्मथनाथ गुप्त, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', दण्डमूडि, महीधर, दूधनाथ सिंह, शकुन्त माथुर, कन्हैयालाल नन्दन, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, वीरेन्द्र मिश्र, चन्द्रकान्त देवताले, कैलाश वाजपेयी, भीमसेन त्यागी, सुदर्शन चोपड़ा, शैलेश मटियानी, कुमार काश्यप, निर्मला जैन।

*

सम्पादक

लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी

*

मूल्य : वार्षिक १०.००; १.०० प्रति

*

सम्पादकीय कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमैन एण्ड कं० लि०, बम्बई-१

पाठकोंके पत्र

'ज्ञानपीठ पत्रिका' वास्तवमें सुन्दर प्रकाशित होती है। इससे न केवल अभिनव प्रकाशनोंके सम्बन्धमें जानकारी मिलती रहती है, वरन् बहुचर्चित तथा समालोचित रचनाओंका भी यथार्थ ज्ञानबोध होता है। इस शताब्दीकी हिन्दी पत्रिकाओंमें संक्षिप्त, सारगर्भित तथा सुन्दर प्रकाशनके रूपमें मुझे यह पत्रिका सबसे अधिक भाती है।

—डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, रायपुर

'पत्रिका' के मार्च अंकमें डॉ० नगेन्द्रके चर्चित ग्रन्थ 'रस-सिद्धान्त' पर डां० बच्चन सिंहका लेख पढ़ा। लेख परिचयात्मक अधिक है, सम्भवतः पत्रिकाके लिए अपेक्षित भी यही रहा हो। किन्तु अच्छा होता कि डॉक्टर साहब इस विवादास्पद ग्रन्थकी सीमाओंपर भी कुछ कहते।

'अज्ञेय' के लेख ('तारसप्तक' की भूमिका) वस्तुतः पत्रिकाके अंकमें प्रकाशित श्री गिरिजाकुमार माथुरके लेख 'आधुनिक भावबोधकी काव्यधारा' का एक सही उत्तर है। सम्भव है यह अनुभव सिर्फ़ मेरा ही हो!

—गजानन जोशी, बम्बई

मार्च अंकसे प्रारम्भ नया स्तम्भ 'राष्ट्रभारती : परिवेश और उपलब्धियाँ' हिन्दीमें सर्वथा मौलिक योजना है। अन्य भारतीय भाषाओंकी साहित्यिक गतिविधियोंसे अवगत होना आज प्रत्येक हिन्दी-हितैषी, कहें तो विशेष रूपसे साहित्यकारके लिए बहुत जरूरी है।

—डॉ० रामचरण अग्रवाल, बुलन्दशहर

मार्च १९६६ का अंक बहुत समर्थ है। कई लेख उत्कृष्ट और बहुत उपयोगी हैं—विशेष रूपसे डॉ० शिवप्रसाद सिंह, श्री माखनलाल चतुर्वेदी के लेख। श्री शिवप्रसादजीने अपने लेखमें जो महत्वपूर्ण बातें उठायी हैं—नवलेखनके सन्दर्भमें वे गम्भीरतासे विचारणीय हैं। वास्तवमें 'ज्ञानपीठ पत्रिका' सभी दृष्टिसे हिन्दीमें अकेली पत्रिका है।

—प्रो० सुखमंगल पाण्डेय, चौबीस परगना

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला

राष्ट्रभारती

२२४ प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी	सं०—दिनकर सोनवलकर	४.००
२०७ प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी दो	नानक सिंह	४.००
२०४ प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी दो	प्रो० ना० सी० फड़के	४.५०
१९० प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी	कर्तारसिंह दुग्गल	३.५०
१९१ प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी	सं०—अनिलकुमार	४.००
१६८ प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु	नार्ल वेंकटेश्वर राव	३.५०
१७० प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला	'परशुराम'	३.००
१७१ प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी	व्यंकटेश दि० माडगूलकर	४.००

उपन्यास

२२५ अठारह सूरजके पौधे	रमेश बक्षी	३.००
१६४ सूरजका सातवाँ घोड़ा [च० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	२.००
२१५ जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	३.५०
१५४ पीले गुलाबकी आत्मा [द्वि० सं०]	विश्वम्भर 'मानव'	४.००
७९ गुनाहोंका देवता [आठवाँ सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	५.००
५५ रक्त-राग [द्वि० सं०]	देवेशदास आइ०सी०एस्०	३.००
५१ तीसरा नेत्र [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	२.५०
१९९ जो	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
१६९ महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सुनें !!	'भिक्खु'	२.२५
१३७ पलासीका युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	३.५०
१४३ अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय	३.००
८० शतरंजके मोहरे [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अमृतलाल नागर	६.००
९५ शह और मात	राजेन्द्र यादव	४.००
११३ राजसी	देवेशदास आइ०सी०एस्०	२.५०
६२ संस्कारोंकी राह [पुरस्कृत]	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०

१२६ ग्यारह सपनोंका देश	सं०—लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००
१ मुक्तिदूत [द्वि० सं०]	वीरेन्द्रकुमार जैन	५.००

• कहानी

२२७ मुरदा सराय	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	४.००
१७३ खोयी हुई दिशाएँ [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	२.५०
२ दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	३.००
१९५ झाड़ी	श्रीकान्त वर्मा	३.००
१६६ मेज़पर टिकी हुई कुहनियाँ	रमेश बक्षी	३.५०
६० कालके पंख [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
३० खेल खिलौने [द्वि० सं०]	राजेन्द्र यादव	२.००
१५९ बोस्ताँ [द्वि० सं०]	शेख सादी	२.५०
६३ जय-दोल [तृ० सं०]	अज्ञेय	३.००
१४२ ज़िन्दगी और गुलाबके फूल	उषा प्रियंवदा	२.५०
८९ अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
८५ कर्मनाशाकी हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	२.००
१३१ सूने अँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.००
१५१ प्यारके बन्धन	रावी	३.२५
८२ मोतियोंवाले [पुरस्कृत]	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
६९ हरियाणा लोकमञ्चकी कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२.५०
६५ मेरे कथागुरुका कहना है : १	रावी	३.००
१४४ मेरे कथा गुरुका कहना है : २	रावी	३.००
३५ पहला कहानीकार [पुरस्कृत]	रावी	२.५०
२४ संघर्षके बाद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विष्णु प्रभाकर	३.००
५८ नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
३७ अतीतके कम्पन [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
२० आकाशके तारे : धरतीके फूल [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.००
५० नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
५४ कुछ मोती कुछ सीप [द्वि०सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
४३ जिन खोजा तिन पाइयाँ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
१२ गहरे पानी पैठ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.५०
९४ एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००

११५ ऑस्कर वाइल्डकी कहानियाँ	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
१३९ लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.००

● कविता

२२८ शहर अब भी सम्भावना है	अशोक वाजपेयी	३.००
६४ लेखनी-बेला [द्वि० सं०]	वीरेन्द्र मिश्र	३.५०
२२० इतिहास-पुरुष	डॉ० देवराज	३.५०
१२० देशान्तर [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	१२.००
२१८ अन्धा चाँद	मुनि रूपचन्द	३.००
२०१ चाँदका मुँह टेढ़ा है [द्वि० सं०]	मुक्तिबोध	८.००
२०८ आत्मजयी	कुँवरनारायण	३.५०
८६ कनुप्रिया [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.००
१९४ हम विषपायी जनमके [द्वि० सं०]	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१६.००
११८ वेणु लो गूँजे धरा [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
२०३ चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन	३.००
२०२ संक्रान्त	डॉ० कैलाश वाजपेयी	३.००
१९६ हिम-विद्ध	डॉ० जगदीश गुप्त	३.००
१८६ बीजुरी काजल आँज रही	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
१८५ अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	३.००
१७८ रत्नावली	हरिप्रसाद 'हरि'	२.००
६८ वाणी [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
६६ सौवर्ण [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	३.५०
१४६ आँगनके पार द्वार [अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत]	अज्ञेय	३.००
१३४ वीणापाणिके कम्पाउण्डमें	केशवचन्द्र वर्मा	३.००
१२२ रूपाम्बरा	सं०—अज्ञेय	१२.००
८८ अनुक्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
८१ तीसरा सप्तक [द्वि० सं०]	सं०—अज्ञेय	५.००
९० अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	४.००
९१ सात गीत-वर्ष [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.५०
१२७ आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.००
९ पंच-प्रदीप	शान्ति मेहरोत्रा	२.००
८ मेरे बापू	तन्मय बुखारिया	२.५०

३९ धूपके धान [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.००
१३ वर्द्धमान [महाकाव्य पुरस्कृत]	अनूप शर्मा	६.००
• शाइरी		
१५८ गंगोजमन	'नज़ीर' बनारसी	३.००
७६ शाइरीके नये मोड़ : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७७ शाइरीके नये मोड़ : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१५६ शाइरीके नये मोड़ : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७५ शाइरीके नये मोड़ : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७७ शाइरीके नये मोड़ : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१३८ नग़मए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
७२ शाइरीके नये दौर : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७३ शाइरीके नये दौर : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१०४ शाइरीके नये दौर : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
११० शाइरीके नये दौर : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१४१ शाइरीके नये दौर : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१४ शेर-ओ-सुख़न : भाग–१ [द्वि०सं०पु०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
२६ शेर-ओ-सुख़न : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२७ शेर-ओ-सुख़न : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२८ शेर-ओ-सुख़न : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
३१ शेर-ओ-सुख़न : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
५ शेर-ओ-शाइरी [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
११९ ग़ालिब	श्री रामनाथ 'सुमन'	८.००
९२ मीर	श्री रामनाथ 'सुमन'	६.००
• नाटक		
९८ जनम क़ैद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	२.५०
२१९ प्रेत	इब्सेन, अनु०नेमिचन्द्र जैन	२.२५
७५ बारह एकांकी [द्वि० सं०]	विष्णु प्रभाकर	४.००
१६७ घाटियाँ गूँजती हैं [तृ० सं०]	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	२.५०

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

२०३	नाटक बहुरूपी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.५०
१७२	आदमीका ज़हर	लक्ष्मीकान्त वर्मा	३.००
१७	रजत रश्मि [द्वि० सं० पुरस्कृत]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
१५५	तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ	परिपूर्णानन्द वर्मा	४.००
१००	सुन्दर रस [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	१.५०
१३२	नाटक बहुरंगी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	४.५०
७८	कहानी कैसे बनी ?	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
५३	पचपनका फेर [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विमला लूथरा	३.००
५९	तरकशके तीर	श्रीकृष्ण	३.००
४७	और खाई बढ़ती गयी [पुरस्कृत]	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०
६७	चेखॅवके तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
१०१	कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ० भगवतशरण उपा०	३.५०
१०६	सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	२.००
१०८	भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०

● विधा-विविधा

१५०	खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति मेहरोत्रा	४.५०
१४९	अंकित होने दो	अजित कुमार	४.००
८७	काठकी घण्टियाँ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	७.००
१०२	सीढ़ियोंपर धूपमें	रघुवीर सहाय	४.००
१२५	पत्थरका लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	३.००

● रुचिर कलात्मक

१९२	शैशवांकन		१२.००
१६१	परिणय गीतिका	सं०—रमा जैन, कुन्था जैन	५.००

● ललित-निबन्धादि

२१६	कुछ निबन्ध	अक्षयकुमार जैन	२.५०
१८३	क्षण बोले कण मुसकाये [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
२११	चिन्तककी लाचारी	माखनलाल चतुर्वेदी	४.००
१९७	एक साहित्यिककी डायरी [द्वि.सं.]	गजानन माधव मुक्तिबोध	२.५०

११७ अमीर इरादे ग़रीब इरादे [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	२.००
१८१ हम सब और वह	दयानन्द वर्मा	२.००
१८० बातें, जिनमें सुगन्ध फूलोंकी	अहमद सलीम	३.००
१६५ महके आँगन चहके द्वार	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
१६३ शिखरोंका सेतु	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.५०
५७ बाजे पायलियाके घुँघरू [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	४.००
१४८ फिर बैतलवा डालपर	विवेकी राय	३.५०
१४७ आँगनका पंछी और बनजारा मन	डॉ० विद्यानिवास मिश्र	३.००
१२८ नये रंग नये ढंग	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.००
७१ बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०
१२३ काग़ज़की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.५०
१११ सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
९६ वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२.५०
१०३ ठूँठा आम	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.००
२९ हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान [द्वि.सं.]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	१.००
७० ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१.००
४६ क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२.५०
५६ माटी हो गयी सोना [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	२.००
२५ ज़िन्दगी मुसकरायी [तृ० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	४.००

• यात्रा-विवरण

१८७ चीड़ोंपर चाँदनी	निर्मल वर्मा	३.००
१३० एक बूँद सहसा उछली	अज्ञेय	७.००
८४ पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३.००
९९ सागरकी लहरोंपर	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
१३६ हरी घाटी	डॉ० रघुवंश	४.५०

• संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी

७४ दीप जले शंख बजे [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	३.००
१६२ समयके पाँव [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००

२१	रेखाचित्र [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००
१२४	पराड़करजी और पत्रकारिता [पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	५.५०
१०९	आत्मनेपद	अज्ञेय	३.००
११४	माखनलाल चतुर्वेदी	'बरुआ'	६.००
३४	द्विवेदी पत्रावली	बैजनाथसिंह 'विनोद'	२.५०
१५	जैन-जागरणके अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१९	संस्मरण [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
१६	हमारे आराध्य [पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००

आलोचना, अनुसन्धान, रचना-शिल्प

१५२	अपभ्रंश भाषा और साहित्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	१०.००
२२३	घरेलू इलाज	वैद्यरत्न च० गो० ठक्कुर	२.००
२२१	विवेकके रंग	सं०-डॉ०देवीशंकर अवस्थी	७.००
१८९	हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि	डॉ० प्रेमसागर जैन	१२.००
१९३	भाषा और संवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.५०
१८८	हिन्दी गीतिनाट्य	कृष्ण सिंहल	४.००
१७४	साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य	डॉ० रघुवंश	५.००
१५७	जैन भक्ति-काव्यकी पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमसागर जैन	६.००
१३५	रेडियो वार्ता-शिल्प	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	२.००
४१	रेडियो नाट्य-शिल्प [द्वि० सं०]	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	३.००
३८	ध्वनि और संगीत [द्वि० सं०]	ललितकिशोर सिंह	४.५०
१८	भारतीय ज्योतिष [च० सं०]	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६.००
८३	प्राचीन भारतके प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०
४५	संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००
४८	संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन [द्वि.सं.]	डॉ० भोलाशंकर व्यास	५.००
१२९	हिन्दी नवलेखन	डॉ०रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.००
११२	मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
४२	शरत्के नारी-पात्र	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.५०

४४ हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : १	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०
४९ ,, ,, २	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०

● इतिहास-राजनीति

१४५ भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०]	डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१०.००
१९८ भारतीय संस्कृतिका विकास : वैदिक धारा	डॉ० मंगलदेव शास्त्री	७.००
१२१ समाजवाद	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५.००
३६ कालिदासका भारत : भाग १ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००
४० कालिदासका भारत : भाग २ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
३२ चौलुक्य कुमारपाल [द्वि० सं० पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.५०
५२ एशियाकी राजनीति	परदेशी	६.००
१०७ इतिहास साक्षी है	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
२३ खोजकी पगडण्डियाँ [द्वि० सं० पुरस्कृत]	मुनि कान्तिसागर	४.००
२२ खण्डहरोंका वैभव [द्वि० सं०]	मुनि कान्तिसागर	६.००

● दार्शनिक-आध्यात्मिक

२१७ तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो	मुनि नथमल	२.००
२१२ क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?	आचार्य तुलसी	२.००
३३ अध्यात्म-पदावली [तृ० सं०]	डॉ० राजकुमार जैन	४.५०
२०६ दर्शन अनुचिन्तन	गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	३.००
२०० तान्त्रिक साधना	माधव पुण्डलीक पण्डित	१.५०
१० भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२.००
७ वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६.००

● सूक्तियाँ

१४० सन्त-विनोद [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	२.५०
१८२ भाव और अनुभाव [द्वि० सं०]	मुनि नथमल	२.००
११ ज्ञानगंगा : भाग १ [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	६.००
११६ ज्ञानगंगा : भाग २	नारायणप्रसाद जैन	६.००
६१ शरतकी सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
९३ कालिदासके सुभाषित	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००

२२२ बक रहा हूँ जुनून में	प्रकाश पण्डित	३.००
२०९ सिकन्दरनामा	सलमा सिद्दीक़ी	२.००
१३३ आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य [द्वि० सं०]	सं० – केशवचन्द्र वर्मा	४.००
१६० तेलकी पकौड़ियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० प्रभाकर माचवे	२.००
१७६ जैसे उनके दिन फिरे [द्वि० सं०]	हरिशंकर परसाई	२.५०
१८४ काग़ज़के फूल शब्द : भारतभूषण अग्रवाल,	चित्र : प्रभाकर माचवे	३.००
१७९ चाय पार्टियाँ	सन्तोषनारायण नौटियाल	२.००
१५३ हास्य मन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	६.००
१०५ मुर्ग़-छाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	२.००
९७ अंगदका पाँव	श्रीलाल शुक्ल	२.५०

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर और साथमें दिया ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा। जैसे : 'सूरजका सातवाँ घोड़ा' के लिए 'लो' – १६४' मात्र।



मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला

तत्त्वज्ञान और सिद्धान्तशास्त्र

१ समयसार [प्राकृत-अँगरेज़ी]
मूल : आचार्य कुन्दकुन्द; सं०-अनु० : प्रो० ए० चक्रवर्ती — ८.००

१० तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग १
२० ,, ,, भाग २
मूल : भट्ट अकलंक; सम्पादन : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य — २४.००

१३ सर्वार्थसिद्धि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य पूज्यपाद; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री — १२.००

१० पंचसंग्रह [प्राकृत-हिन्दी]

संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री ... .00

८ जैन धर्मामृत [संस्कृत-हिन्दी]

संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री 3.00

जैन न्याय और कर्मग्रन्थ

११ कर्मप्रकृति [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]

मूल : आचार्य नेमिचन्द्र, सम्पादन : पं० हीरालाल शास्त्री ६.००

३० सत्यशासन-परीक्षा [संस्कृत]

मूल : आचार्य विद्यानन्दि; सम्पादन : गोकुलचन्द्र जैन ५.००

२२ सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग १

२३ ,, भाग २

मूल : भट्ट अकलंक और अनन्तवीर्य; सम्पादन : डॉ० महेन्द्रकुमार ३०.००

३ न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग १

१२ ,, ,, भाग २

मूल : भट्ट अकलंक और वादिराज सूरि; सं० : डॉ० महेन्द्रकुमार ३०.००

४ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग २ ११.००

मूल : भगवन्त भूतबलि; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

५ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ३ ११.००

६ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ४ ११.००

७ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ५ ११.००

८ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ६ ११.००

९ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ७ ११.००

आचारशास्त्र, पूजा और व्रत विधान

२८ उपासकाध्ययन [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : सोमदेव सूरि, सं०-अनु० : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री १२.००

३ वसुनन्दि श्रावकाचार [प्राकृत-हिन्दी]

मूल : आचार्य वसुनन्दि; सं०-अनु० : पं० हीरालाल शास्त्री ५.००

७ ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि [संकलन]

संकलन-सम्पादन : डॉ० आ.ने. उपाध्ये व फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ४.००

१९ व्रततिथिनिर्णय [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : अज्ञात; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य — ३.००

६ मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन [हिन्दी]

लेखक : पं० नेमिचन्द्र शास्त्री — २.००

व्याकरण, छन्दशास्त्र और कोश

१७ जैनेन्द्र महावृत्ति [संस्कृत]

मूल : आचार्य अभयनन्दि; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी — १५.००

५ सभाष्य रत्नमञ्जूषा [संस्कृत]

मूल : अज्ञात; सम्पादन : श्री हरि दामोदर वेलणकर — २.००

६ नाममाला सभाष्य [संस्कृत]

मूल : कवि धनञ्जय–अमरकीर्ति; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी — ३.५०

पुराण साहित्य

२७ हरिवंशपुराण [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य — १६.००

८ आदिपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १

९ ,, ,, भाग २

मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य — २०.००

१४ उत्तरपुराण [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : आचार्य गुणभद्र; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य — १०.००

२१ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १

२४ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग २

२६ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३

मूल : आचार्य रविषेण; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य — ३०.००

१५ पुराणसार-संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १

१६ ,, ,, भाग २

मूल : आचार्य दामनन्दि; सं०-अनु० : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी — ४.००

चरित व काव्य-ग्रन्थ

६ सुगन्धदशमी कथा : सं० डॉ० हीरालाल जैन — ११.००

४ करकण्डुचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]

मूल : कनकामर, सं०-अनु० : डॉ० हीरालाल जैन 10.00

२९ भोजचरित्र [संस्कृत]

मूल : राजवल्लभ, सम्पा० : डॉ० छावड़ा, शंकरनारायणन् 8.00

५ मयणपराजयचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]

मूल : कवि हरिदेव; सम्पादन और अनुवाद : डॉ० हीरालाल जैन 8.00

१ मदनपराजय [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : नागदेव; सं०-अनु० : डॉ० राजकुमार जैन साहित्याचार्य 6.00

१ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग १

२ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग २

३ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग ३

मूल : कवि स्वयम्भू; सं०-अनु० : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन 9.00

१८ जीवन्धरचम्पू [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : कवि हरिचन्द्र

सम्पादन, अनुवाद और टीका : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य 8.00

१ जातकट्ठकथा [पाली]

सम्पादन : भिक्षु धर्मरक्षित 9.00

५ धर्मशर्माभ्युदय [हिन्दी]

अनुवादक : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य 3.00

ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र

२५ भद्रबाहु संहिता [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : आचार्य भद्रबाहु; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य 8.00

७ केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य 4.00

२ करलक्खण [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]

मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी 0.75

विविध

९ वर्ण, जाति और धर्म

लेखक : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री 3.00

११ जिनसहस्रनाम [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री

१ थिरुकुरल [तमिल] ३.००

सम्पादन : ए० चक्रवर्ती ५.००

१ आधुनिक जैन कवि [हिन्दी]

संकलन-सम्पादन : श्रीमती रमा जैन ३.००

२ कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची

संकलन-सम्पादन : पं० के० भुजबली शास्त्री १३.००

माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला

पुराण

३७ महापुराण [अपभ्रंश] आदिपुराण : भाग १

मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य १०.००

४१ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग २

मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य १०.००

४२ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग ३

मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य ६.००

२९ पद्मपुराण [संस्कृत] भाग १

मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल १.५०

३० पद्मपुराण [संस्कृत] भाग २

मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल २.००

३१ पद्मपुराण [संस्कृत] भाग ३

मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल २.००

३२ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग १

मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल २.००

३३ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग २

मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल १.५०

शिलालेख

२८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १ — २.००
सम्पादन : पं० श्री हीरालाल जैन

४५ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २ — ८.००
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति

४६ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३ — १०.००
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति

४८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ४ — ७.००
सम्पादन : डॉ० जोहरापुरकर

चरित, काव्य और नाटक

४० वरांगचरित [संस्कृत] — ३.००
मूल : श्री जटासिंहनन्दि; सम्पादन : डॉ० आदिनाथ उपाध्ये

३५ जम्बूस्वामीचरित [संस्कृत] — १.५०
मूल : पं० राजमल्ल; सम्पादन : श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री

८ प्रद्युम्नचरित [संस्कृत] — .५०
मूल : श्री महासेन; सम्पादन : पं० मनोहरलाल, रामप्रसाद शास्त्री

रामायण [अपभ्रंश] (अलग्गसे) — २.५०
मूल : महाकवि पुष्पदन्त

२७ पुरुदेवचम्पू [संस्कृत] — .७५
मूल : श्रीमदर्हद्दास; सम्पादन : श्री जिनदास शास्त्री

४३ अंजनापवनंजय [नाटक] — ३.००
मूल : श्री हस्तिमल्ल : सम्पादन—वासुदेव पटवर्धन

जैन-न्याय

३८ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग १ — ८.००
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

३१ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग २ — ८.५०
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

४७ प्रमाणप्रमेयकलिका [संस्कृत] — १.५०
मूल : श्री नरेन्द्रसेन; सम्पादन : पं० दरबारीलाल कोठिया

सिद्धान्त, आचार और नीतिशास्त्र

२१ **सिद्धान्तसारादि [प्राकृत-संस्कृत]**
मूल : श्री जिनेन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी — १.५०

२० **भावसंग्रहादि [प्राकृत-संस्कृत]**
मूल : देवसेनसूरि; सम्पादन : पन्नालाल सोनी — २.२५

२५ **पञ्चसंग्रह [संस्कृत]**
मूल : श्री अमितगति सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — .८१

३६ **त्रिषष्टिस्मृतिसार [संस्कृत, मराठी अनुवाद]**
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : मोतीलाल — .५०

४४ **स्याद्वादसिद्धि [संस्कृत, हिन्दी-सारांश]**
मूल : श्री वादीभसिंहसूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

२४ **रत्नकरण्डश्रावकाचार [मूल, संस्कृत टीका]**
मूल : श्री स्वामी समन्तभद्र; टीका : श्री प्रभाचन्द्राचार्य — २.००

२६ **लाटी संहिता [संस्कृत]**
मूल : श्री राजमल्ल; सम्पादन : पं० श्री दरबारीलाल — .५०

३४ **नीतिवाक्यामृत (शेषांश) [संस्कृत टीका]**
मूल : सोमदेवसूरि; टीका : अज्ञात — .२५

■

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर, भाषा और ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा। जैसे 'समयसार' के लिए 'मू-अं० १' या 'वरांगचरित' के लिए 'मा-४०' मात्र।

हम विषपायी जनम के

स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

का

काव्य-संकलन

● ●

प्रस्तुत काव्य-संकलनकी यह विशेषता है कि नवीनजीका समस्त अप्रकाशित काव्य-साहित्य इसमें आ जाता है। उनकी राष्ट्रीय और सर्वोत्कृष्ट प्रणय-रचनाएँ तो इसमें सम्मिलित हैं ही, विज्ञ पाठकोंकी उत्सुकता और जिज्ञासाका विषय 'दोहावली' और 'मृत्युधाम' भी संग्रहीत हुई हैं। अब प्रस्तुत है नया दूसरा संस्करण।

मूल्य १६.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी से मुद्रित।

अठारह सूरज के पौधे

•

रमेश बक्षी
का
नया उपन्यास

•

मूल्य तीन रुपये

कुछ अजीब-से नशेमें ढुलकती ...
है इस यात्रा-उपन्यासकी । शैली ...
बिलकुल नया—मनको बहुत भीतरसे ...
हुआ, और आदिसे अन्त तक एक ...
संगीतमें डूबा हुआ रोचक ...

•

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

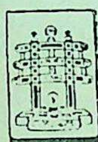
कलकत्ता * दिल्ली * वाराणसी

ज्ञानपीठ पत्रिका

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति और
उपलब्धि-परिचायिनी मासिकी

०



भारतीय ज्ञानपीठ

सांस्कृतिक जागरण
साहित्यिक विकास-उन्नयन
राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी
साधिका संस्था



संस्थापक : श्री शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा : श्रीमती रमा जैन

कार्यालय :
कलकत्ता, दिल्ली, वाराणसी

ज्ञानपीठ पत्रिका

वर्ष चार : अंक दस
मई १९६६

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जगदीश

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
मूल्य : छह रुपये वार्षिक, पचपन पैसे प्रति; द्विवार्षिक : ग्यारह रुपये

समाज-शिक्षा विभाग, राजस्थान-द्वारा उच्च, उच्चतर विद्यालय तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंके लिए प्रस्वीकृत

उद्घोष

विभिन्न भारतीय भाषाओंको परस्पर निकट लानेके लिए तथा संविधानके अनुच्छेद ३५१ के निदेशानुसार हिन्दीका विकास करनेके लिए और भारतीय भाषाशास्त्र, भाषाविज्ञान और तत्सम्बन्धी साहित्यके अध्ययन तथा अनुसन्धानको प्रोत्साहन देनेके लिए एक केन्द्रीय संस्थाकी स्थापना अवश्य की जानी चाहिए। किन्तु यह तो विभिन्न भाषाओंको परस्पर निकट लानेका एक उपाय होगा। अभीष्ट उद्देश्यकी सिद्धि किसी एक प्रायोजनासे नहीं होगी। इसके लिए तो भविष्यमें इसी व्यापक उद्देश्यको ध्यानमें रखते हुए सभी सम्बन्धित कार्यकलापोंको प्रोसाहन देना होगा ताकि जो भी कार्य साहित्य अकादमी, नेशनल बुकट्रस्ट, वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग (जिसको स्थापना भारतीय भाषाओंकी वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावलीकी जाँच और मूल्यांकनके लिए १९६२ में की जा चुकी है) द्वारा किये जायें वे सब एक ही भावनासे प्रेरित हों अर्थात् इस भावनासे कि विभिन्न भारतीय भाषाएँ अधिकाधिक एक दूसरीके निकट लायी जायें और हिन्दीमें जो सामग्री तैयारकी जाये वह इस प्रकार तैयार हो कि हिन्दी धीरे-धीरे अप्रत्यक्ष रूपसे एक प्रान्तीय भाषाकी सीमासे ऊपर उठकर तथा विभिन्न भारतीय भाषाओंमें प्रचलित शैलियों, रूपों तथा वाक्यांशोंको अपनाकर अभिव्यक्तिका वस्तुत: अखिल भारतीय माध्यम बन सके। यह काम एक धार्मिक विश्वासके समान उन सभी लोगोंको अपनाना होगा जो विभिन्न भारतीय भाषाओंके विकास और प्रसारके कार्यमें लगे हैं और किसी भी स्तरपर उनका प्रयोग कर रहे हैं। इस प्रक्रियामें उन लोगोंसे भी सहायता मिलेगी जिनकी मातृभाषा हिन्दीसे भिन्न है क्योंकि अब वे संघकी भाषाको काममें लायेंगे तो उनके द्वारा लिखी जानेवाली हिन्दीपर उनकी अपनी मातृभाषाके मुहावरों आदिका रंग चढ़ना अनिवार्य है। इस दिशामें सबसे अधिक योगदान लेखकों तथा साहित्यकारोंका होगा क्योंकि केवल वे ही अपने सृजन कार्यके एक अंगके रूपमें भाषाको नये सिरेसे ढालनेकी सामर्थ्य रखते हैं।

—रमाप्रसन्न नायक

हिन्दीकी वर्तनी

हिन्दी वर्तनीको लेकर होती लम्बी बहसोंके
बीच एक सही और सुलझी दृष्टि

हजारीप्रसाद द्विवेदी

हिन्दी वर्तनीके अनेक रूपोंको लेकर काफ़ी बहसें हुई हैं और विभिन्न संस्थाएँ अपना-अपना सिद्धान्त भी निश्चित कर चुकी हैं। परन्तु अलग-अलग सिद्धान्तोंके निर्णीत और व्यवहृत होनेसे नयी समस्या भी पैदा हो गयी है। सम्मेलनने कुछ अलग नियम निश्चित किये हैं, नागरी प्रचारिणीने कुछ और। ज्ञानमण्डलने जो नियम स्थिर किये हैं, उनके साथ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्के नियमोंका कोई मेल नहीं है। बम्बईमें एक तरहके नियम चले हैं और उत्तर प्रदेशमें दूसरी तरहके। वर्धाकी राष्ट्र-भाषा-प्रचार-सभा जिस रास्तेपर चल रही है, विश्व भारतीका हिन्दी भवन उससे बिलकुल भिन्न रास्तेपर चलता है। विदेशी और विभाषी पाठकके लिए इन सभी स्थानोंसे छपी पुस्तकोंमें अन्तर दिखाई देता है, और कभी-कभी वह बिलकुल ही नहीं समझ पाता कि ग्राह्य क्या है। विभिन्न विश्वविद्यालयोंके प्रश्न-पत्रोंमें भी वर्तनीका द्वन्द्व देखा जाता है। कोई विभक्तियोंको मिलाकर छापता है तो कोई अलग करके। कोई सर्वनाममें तो विभक्तिको मिलाता है, किन्तु संज्ञा शब्दोंके साथ नहीं मिलाता। हुये, हुवे, हुए सभी रूप पुस्तकोंमें देखे जा सकते हैं। पाठ्य-पुस्तकमें 'गई' 'गयी' विशेषण भी भिन्न-भिन्न रूपोंमें मिल सकते हैं। विभिन्न रूपोंमें भी यह रूप-भेद कहीं-कहीं लक्षित हो जाता है। चतुर्थी विभक्तिमें 'के लिये' और 'के लिए' दोनों ही रूप मिल जा सकते हैं। संज्ञा शब्दोंके बहुवचन रूपोंमें भी कहीं-कहीं वैविध्य दिखाई देता है। उच्चतर कक्षाओंमें पढ़ाई जानेवाली पुस्तकोंमें भी 'विधियाँ' और 'विधिएँ' रूप मिल जाते हैं। शब्दोंके रूपके बारेमें ही बहुत-कुछ अस्थिरता बनी हुई है। केवल विदेशी भाषासे निकले हुए शब्दोंकी वर्तनीमें ही अन्तर नहीं है, संस्कृतमे

बने हुए शब्दोंमें भी भेद दिखाई देता है। तद्भव रूपोंमें अन्तरका कारण प्रादेशिक उच्चारण है। 'अँगुली' और 'उँगली' दोनोंका मूल संस्कृत 'अंगुलि' है। पछाँहमें 'उँगली' बोला जाता है तो पूर्वी जिलोंमें 'अँगुली' या 'अँगुरी'। दोनों ही साहित्यिक हिन्दीमें देखनेको मिल सकते हैं। बहुतेरे तद्धित प्रत्ययान्त रूप और 'कृत्' प्रत्ययान्त रूप साहित्यिक हिन्दीमें अलग-अलग ढंगसे छापे जाते हैं। लकड़हारामें तो 'हारा' प्रत्यय सर्वत्र मिलाकर छापा जाता है, पर 'टोपीवाला' के पक्षमें यह बात मान्य नहीं हुई। कोई मिलाकर लिखता है, कोई अलग-अलग। यह दशा 'कृत' प्रत्ययोंके अन्तर्गत आनेवाले 'वाला' की है। कोई 'लिखने वाला' लिखता है तो कोई 'लिखनेवाला'। इस प्रकारकी अनेकों अव्यवस्थाएँ हमारी साहित्यिक भाषामें प्रचलित हैं। अभी जो मैंने 'अनेकों' शब्दका बहुवचनमें प्रयोग किया, इसके सम्बन्धमें भी काफ़ी वाद-विवाद हो चुका है।

किन्तु अब हमें आवश्यक मानकर एक निश्चित नियम बना लेना चाहिए। मेरा विचार है कि नियम निश्चित करते समय हम थोड़ा-बहुत भाषा-शास्त्रीय नियमों और व्युत्पत्ति-सम्बन्धी तर्कोंका आश्रय अवश्य लें। परन्तु इन बातोंमें इतना उलझ जानेकी आवश्यकता नहीं है कि ये ही मुख्य हो उठें और वर्तनीको परिनिष्ठित रूप देना गौण। हमारी साहित्यिक संस्थाओंने जो अनेक नियम स्वीकार किये हैं, उन सबके मूलमें कुछ-न-कुछ युक्ति और तर्क है। किन्तु वर्तमान स्थितिको देखते हमें व्यवहारकी सुविधाकी ओर अधिक ध्यान रखना है; किसी प्रकारके मोहका शिकार नहीं बनना चाहिए। यह समझना भी भूल है कि हम हू-बहू संस्कृतकी परम्पराका पालन कर रहे हैं, इससे भी बड़ा मोह यह है कि हिन्दी संस्कृतकी परम्परासे विच्छिन्न होकर एकदम स्वतन्त्र भाषा बन गयी है। न हिन्दी ही संस्कृत परम्परासे पूर्ण रूपसे विच्छिन्न हो गयी है और न पूर्ण रूपसे अनुगामिनी है। इन उभय कोटियोंसे अपनेको बचाये रखकर हिन्दी भाषाकी प्रकृतिका ठीक-ठीक अध्ययन करना चाहिए। बहुत-सी बातोंमें संस्कृतकी परम्परासे बिलकुल भिन्न कोटिकी हो सकती है। फिर राष्ट्र-भाषाकी अपनी आवश्यकताएँ भी हैं। यथासम्भव विकल्पोंको कम करके और अपवादोंको कम करके उस परिनिष्ठित रूपको प्राप्त कर सकते हैं जो राष्ट्र-भाषाके लिए आवश्यक है। फिर हमें इस बातका भी ध्यान रखना होगा कि इस युगमें साहित्यका मुख्य अंग छापेकी मशीन है, इसी सवारीपर चढ़कर वह दिग्विजयके लिए निकलता है।

इसलिए इस बातका भी ध्यान रखना होगा कि इस वाहनकी गति कुण्ठित न हो जाये, और यथा-सम्भव उसकी स्फूर्ति और क्षिप्रगतिमें भाषाका परिनिष्ठित रूप सहायता पहुँचाता रहे। मुझे सबसे अधिक चिन्ता हिन्दीमें 'य' श्रुतिकी अव्यवस्थापर है। लेकिन मुझे इसे ठीक अव्यवस्था भी नहीं कहना चाहिए। वस्तुतः हम लोगोंके बोलनेमें 'य' श्रुति समान भावसे सब जगह नहीं होती। कभी हलके रूपमें आती है और कभी स्पष्ट रूपमें। कभी-कभी वह बिलकुल ही नहीं सुनाई देती। जान पड़ता है कि पुरानी भारोपीय भाषामें भी यह कभी हलके और कभी पूर्ण रूपसे सुनाई देती थी। लेकिन संस्कृतमें दो स्वरोंका एक साथ रहना बिलकुल निषेध हो गया है। दो स्वर आये नहीं कि उसके भीतर 'य' 'व' श्रुतिका प्रवेश हुआ।

पाणिनिने सिर्फ़ दो स्थलोंपर संस्कृतके दो स्वर वर्णोंको एक साथ रहनेकी अनुमति दी है, सो भी 'शाकल्य' नामके प्राचीन आचार्यके सम्मानकी रक्षाके लिए। उनके मतसे तो इन दो स्थलोंपर भी यकारका आगम हो ही जाता है। इन दोनोंमें एक तो यह है कि पदान्तमें अकारके बाद यदि विसर्ग आवे, और उसके बाद अकारसे भिन्न कोई और स्वर वर्ण आवे तो पहले 'ए', 'अय' और ओकार, 'अव' बनता है और बाद 'य' और 'व' लोप हो जाते हैं। पाणिनि मुनिने बड़ी सावधानीसे अपने व्याकरणमें कह रखा है कि यह 'यकार' की लोप होनेवाली बात शाकल्य मुनिकी बतायी हुई, अर्थात् शाकल्य जैसे बड़े आचार्यने यदि न कह दिया होता तो पाणिनिजी यह व्यवस्था न करते। लौकिक संस्कृतका सारा व्याकरण इसी नियम-द्वारा चालित है। शब्दों और धातुओंके रूपमें भी यह श्रुति स्वयमेव उपस्थित हो जाती है। तृतीया विभक्तिका रूप 'आ' है। यह 'ह्री' और 'श्री'के बाद यदि आवे तो रूप होगा 'ह्रिया' और 'श्रिया'। अर्थात् 'ई'के बाद 'व' आया नहीं, कि 'य' आ उपस्थित हुआ। इसी प्रकार 'उकार'के बाद 'व' स्वयमेव आ जाता है। इन शब्दोंमें इकार या उकार ह्रस्व हो जाते हैं, उनका भाषा-शास्त्रीय कारण है। पाणिनि भगवान्ने ह्रस्व होनेका और 'य' या 'व' के आनेका भी नियम बना रखा है, परन्तु उन नियमोंके अभावमें भी हिन्दीमें ठीक उसी प्रकार 'लड़कियों' और 'आदमियों'में न ह्रस्व होनेमें बाधा पड़ी और न 'य' आनेमें। क्योंकि ये दोनों कार्य व्यापक भाषा-शास्त्रीय नियमोंके आधारपर हुए हैं। वस्तुतः 'धिया' 'ह्रिया' और 'श्रिया' में अन्तिम अकारपर स्वरपात होता है,

और इसी प्रकार 'आदमियों' और 'लड़कियों' में भी अन्तिम स्वरपर स्वराघात होता है, और पूर्ववर्ती स्वर ह्रस्व हो जाता है। इसी तरह दोनों ही भाषाओंमें 'यकार' और 'अकार' के बीच 'य' श्रुति स्वाभाविक रूपसे आ जाती है। यह किसी प्रकार सूत्र-निर्देशकी अपेक्षा नहीं रखते। संस्कृतके व्याकरण-शास्त्रियोंने भाषाको परिनिष्ठित रूप देनेके लिए 'य' और 'व' श्रुति नियमोंका पालन किया है। भाषाको परिनिष्ठित रूप देनेके लिए इस प्रकारकी कठोरता आवश्यक है। वर्तमान साहित्यिक हिन्दीमें इन नियमोंका पालन कठोरतासे नहीं किया जाता। लड़कियोंके लिए जो नियम है, बहुओंके लिए वैसा नहीं है। 'लड़कियों' में तो 'य' श्रुतिका पालन किया गया है, पर बहुओंमें 'व' का पालन नहीं किया है। इस देशमें कालसे 'बहुओं' की अपेक्षा 'लड़कियों' से पक्षपात किया जाता है, परन्तु कमसे-कम व्याकरणकी दुनियामें तो ऐसा पक्षपात नहीं होना चाहिए। अस्तु।

हिन्दीमें 'य' श्रुतिके प्रयोगके लिए दो प्रकारके विचार हैं। इन विचारोंसे चालित होकर ही दो प्रकारकी लेखन-शैली प्रतिष्ठित हुई। एक पक्ष उच्चारणमें 'य' की श्रुति मात्रा स्पष्ट और अधिक मात्रामें है, इसलिए उसमें 'य' का लिखा जाना आवश्यक है। 'किन्तु 'गए' या 'गई' में यह श्रुति स्पष्ट और अल्प मात्रामें है या नहींके बराबर है। इसलिए इन पदोंमें 'य' का लिखा जाना उचित नहीं है। दूसरा पक्ष कहता है कि 'गया'में-से तो हम 'य' श्रुतिको हटा नहीं सकते, और बहुवचन या स्त्रीलिंग रूप अकार देखकर ही निर्धारित हुआ है। 'घड़ा' का बहुवचन घड़े और स्त्रीलिंग रूप घड़ी। इसी तरह 'बड़ा'का पुल्लिग बहुवचन रूप 'बड़े' और स्त्रीलिंग 'बड़ी' तथा 'अपना'का पुल्लिग बहुवचन रूप 'अपने' और स्त्रीलिंग रूप 'अपनी' है। इस प्रकार हिन्दीमें संज्ञा, विशेषण और सर्वनाममें जहाँ-कहीं तद्भव आकारान्त शब्द मिलता है, वहीं बहुवचन 'अकार'के स्थानपर 'एकार' और स्त्रीलिंगमें अकारके स्थानपर 'इकार' हो जाता है। ऐसी स्थितिमें 'गया'-जैसे क्रिया रूपोंमें भी और 'नया'-जैसे विशेषण रूपोंमें क्यों न इस सामान्य नियमका पालन किया जाये। इन नियमोंके पालनसे भाषामें एकरूपता बनी रहेगी। इस प्रकार एक दूसरे पक्षके लोग 'गया' 'गये' 'गयी' लिखा करते हैं। वस्तुतः दोनों ही पक्षोंमें कुछ सचाई है। अपभ्रंश कवितामें ही 'य' श्रुतिके लिखनेकी शिथिलता दिखाई देने लगती है। दो स्वर वर्णोंका एक साथ रहना अपभ्रंशमें निषिद्ध नहीं है। ऐसा अपभ्रंशका दोहा शायद ही

मिले जिसमें कहीं-न-कहीं दो स्वरवर्ण एक साथ न मिल जाते हों। हिन्दीमें भी चाहे वह पुरानी हो या नयी, दो स्वर वर्णोंका एक साथ अवस्थान निषिद्ध नहीं है, केवल शब्दके मध्यमें जब दो स्वर साथ-साथ आते हैं तो 'य' श्रुति या 'व' श्रुतिका कुछ स्पष्ट रूप दिखाई देता है। 'मदन' से जो 'मअन' रूप बनता है, उसमें 'य' श्रुति आ जाती है और उसका स्पष्ट उल्लेख भी कर दिया जाता है। इस प्रकार यह शब्द 'मयन' और आगे चलकर और भी घिसकर 'मैंन' बन जाता है। किन्तु 'उपजइ' 'बिनसई'में 'य' श्रुतिका कोई चिह्न नहीं दिखाई देता। वस्तुत: इस विषयमें अपभ्रंश और हिन्दी दोनों ही संस्कृतकी परम्परासे अलग हो गयी हैं। अपभ्रंशके पुराने लेखकोंने 'य' श्रुतिके नियमोंपर बहुत अधिक ध्यान नहीं दिया। कहीं 'लोअण' और कहीं 'लोयण' पाठ मिल जाया करता है। 'क्त' प्रत्ययान्त रूप अपभ्रंशमें अकारान्त हो जाता है। कहीं इनके लिखनेमें 'य' श्रुतिका प्रयोग मिल जाता है और कहीं नहीं मिलता। हेमचन्द्रने अपने व्याकरणके दोहेमें 'विहलिय' (विह्वलमें) तो 'य' श्रुतिको स्थान दिया है; किन्तु एक दूसरे दोहेमें 'पूरिअ' में 'य' श्रुतिका कोई आभास नहीं है। कहनेका मतलब यह है कि 'य' श्रुति अपभ्रंश कवितामें ही अस्पष्ट हो उठी थी। अपनी रुचिके अनुसार लेखक लोग कहीं 'य' बैठा देते थे, कहीं छोड़ देते थे। कभी-कभी तो एक ही पद्यमें ऐसे शब्द मिल जाते हैं जिनमें एक में 'य' श्रुतिका प्रयोग किया गया है और एकमें नहीं; ऐसे प्रसंगोंको लेखकके प्रमादके सिवा और क्या कहा जा सकता है। हिन्दीकी प्राचीन कविताके ग्रन्थोंके सुसम्पादित संस्करणोंको देखनेसे पता चलता है कि वहाँ भी 'य' श्रुति-की अव्यवस्था बनी रही। क्यों न सभी संस्थाएँ अब अपने-अपने नियम और उनके लिए अपने-अपने तर्कोंका मार्ग छोड़कर बहु-प्रचलित नियमोंसे कुछको सर्व-सम्मतिसे स्वीकार कर लें। मेरी दृष्टिमें यह बहुत आवश्यक है।

● ●

ज्ञानोदय

पृष्ठ १५० : मूल्य : १-००

वर्ष : १८ : अंक : १ : जुलाई १९६६

'नयी क़लम अंक'

५०० रुपयेके पुरस्कार

१. हिन्दीकी उन नयी क़लमोंको 'ज्ञानोदय'की ओरसे सस्नेह निमन्त्रण है अठारहवें वर्षके पहले अंकके लिए रचनाएँ भेजनेका, जिनकी रचनाएँ किसी साहित्यिक और प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकामें प्रकाशित नहीं हो पायी हैं या जिन्होंने लिखना शुरू ही किया है। वे रचनाकार भी रचनाएँ भेज सकते हैं जिनकी एक या कुछ रचनाएँ सामान्य महत्त्वकी पत्र-पत्रिकाओंमें छप चुकी हों। रचनाकारकी उम्र १५ वर्षसे अधिक या शैक्षणिक योग्यता हायर सेकेण्डरी-इण्टरमीजिएट होना अनिवार्य है। 'ज्ञानोदय'का यह प्रयास नयी पीढ़ीके प्रतिभाशाली लेखक-लेखिकाओंके अन्वेषणके साथ ही नयी क़लमको प्रतिष्ठा, दिशा और सहयोग भी देना है। प्राप्त हुई सामग्रीमें-से चुनी हुई रचनाएँ **'नयी क़लम अंक'**में प्रकाशित की जायेंगी।

२. जुलाई अंकमें (जो २५ जूनको प्रकाश्य है) प्रकाशित रचनाओंमें-से पाठकों-द्वारा विशेष प्रशंसित तथा सम्पादकीय निर्णयसे मान्य पाँच सर्वश्रेष्ठ रचनाओं-पर पारिश्रमिकके अतिरिक्त ५०० रुपयेके पुरस्कार दिये जायेंगे—

१. कहानी : १५०—०० २. लेख : १२५—०० ३. अन्य गद्य विधा १००-००
४. एकांकी : ७५—०० ५. कविता : ५०—००

(यह राशि पुरस्कार-विजेता-द्वारा चुनी हुई भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंके रूपमें दी जायेगी।)

३. एक लेखक-लेखिका-द्वारा अपनी कई मौलिक रचनाएँ (किसी भी साहित्य विधाकी) एक ही लिफ़ाफ़ेमें भेजी जा सकती हैं। **रचनाएँ कार्यालयमें पहुँचने-की अन्तिम तिथि २० मई १९६६ है।** रचनाओंके साथ रचनाकार अपना पूरा नाम, पता, जन्म-तिथि, शैक्षणिक योग्यता, रुचि, प्रकाशित रचनाओंकी सूची, संलग्न रचनाके मौलिक होनेका प्रमाण, नगरके किसी प्राध्यापक अथवा साहित्यकारका नाम-पते सहित सन्दर्भ भी साथ ही भेजें जिससे आवश्यकतानुसार सम्पुष्टि भी प्राप्त की जा सके। जिन जीवित साहित्यकारोंसे लेखक प्रभावित है या जिनसे वह मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहता है उनके नाम भी भेजें तो ज्ञानोदय सम्पर्क-सूत्रके रूपमें भी सहयोग दे सकेगा। लिफ़ाफ़ेपर पता यह हो:

सम्पादक : ज्ञानोदय : 'नयी क़लम अंक',
६, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७।

रूसी कवि एव्तुशेंको जिसकी नाराज़गी भी एक राज़ है

एक प्रतीक व्यक्तित्व : प्रगति और परम्पराके समन्वयका

पद्मधर त्रिपाठी

"नाराज़ युवक मरती हुई पौध हैं, यद्यपि उनमें गुणोंका अभाव नहीं है, लेकिन उन्होंने अपना उद्देश्य ही खो दिया है। प्रश्न है कि क्या वे चुक गये हैं ? अगर हाँ, तो इसका कारण यही है कि उनके पास कोई रचनात्मक और ठोस कार्यक्रम नहीं है।"

—यह और इसी तरहकी बहुत-सी बातें आजके नाराज लोगोंके बारेमें बराबर कही जाती हैं। मगर यह बात जब तथाकथित 'नाराज' रूसी कवि यूजीन एव्तुशेंको कहते हैं तो विशेष विचारणीय हो उठती है। लगता है—शायद एव्तुशेंकोकी तथाकथित 'नाराजगी' भी एक राज है और इसीलिए मुग़ालतेमें कभी-कभी, जब वे ईमानदारीसे कुछ कहना चाहते हैं या कहते हैं तो, उनकी 'नाराज़ी' कुछ समझदार लोगोंको अभिनय भी लग सकती है।

अपनी नाराजगी या कहें तो विद्रोहको स्पष्ट करते हुए खुलेआम एव्तुशेंकोने कहा है कि "इंगलैण्डके कुछ युवक और हममें काफ़ी हद तक उभयनिष्ठता है। हम प्रत्येक उस वस्तुके प्रति विद्रोही हैं जिसे हम समझौता परस्त, पतित या बुरी समझते हैं। हम लाल फ़ीताशाही और नौकरशाहीसे नफ़रत करते हैं, हम आडम्बरयुक्त भाषणोंकी उदग्रतासे घृणा करते हैं। और ऐसी स्थितिमें कोई व्यक्ति, जिससे हमारी सहमति नहीं है, यदि शक्तिशाली है तो हम उससे खुले-आम बहस करना चाहेंगे।" यह नाराज़ युवक-कवि यह भी मानता है कि साहित्यके मामलेमें राजनीतिको दखलन्दाजी नहीं करनी चाहिए। और जब राज-नीति जिसकी (अ) नीतियाँ समय और परिस्थितियोंके साथ चलती हैं, साहित्यमें

घुसपैठकी हिमाक़त करें तो उसे मुँहतोड़ उत्तर भी मिलना चाहिए। इसी नाराज़ कविका यह भी कहना है कि "आदमीको उस समय कमज़ोर नहीं होना चाहिए जब वह दु:खी हो और न ही उसे अपना दु:ख किसी बनावटी ख़ुशीमें छिपाना चाहिए।"

और वह भी सिद्धान्त और नीतियोंकी टकराहट ही थी जब साहित्य तथा कलामें ख्रुश्चोव-द्वारा किये गये दखलको एव्तुशेंकोने चुनौती दी थी। एव्तुशेंको और उनके साथियोंकी स्वच्छन्द अभिव्यक्तियाँ ख्रुश्चोवको बुरी लगी थीं और उन्होंने उनपर वैचारिक तथा राजनयिक दृष्टिसे अपरिपक्वताका आरोप लगाते हुए एव्तुशेंकोके 'बाबी यॉर' कविताके प्रकाशनपर मुक़दमा भी चलवा दिया था। उस समय ख्रुश्चोवके आरोपोंका तथ्यत: महत्त्वपूर्ण और दो-टूक, उत्तर देते हुए एव्तुशेंकोने कहा था--"मुझे सनकी लोगोंसे सख्त नफ़रत है, जो इतिहासको रौंदते हुए उसे झुठलाकर देखना चाहते हैं, जो यह प्रमाणित करनेमें लगे हैं कि हम नये लोग महज़ भेड़ोंकी झुण्ड हैं और अच्छे-बुरेको पहचाननेका विवेक नहीं रखते। मुझे राजनीतिके ऐसे कठमुल्लोंसे सख़्त नफ़रत है। वे रूसी जनताको धोखा दे रहे हैं। राजनीतिके कठमुल्ले नयी प्रतिभाओंको उठने नहीं देना चाहते, बल्कि उनकी आवाज़ोंको कुचल देना चाहते हैं...."

कहना न होगा कि समाजवादी विचारधाराके प्रति अखण्ड आस्था रखनेवाले एव्तुशेंको रूसी कवियोंकी नयी पीढ़ीके प्रतिनिधि कवि हैं। यह वह पीढ़ी है जो रूसी राजनीतिक तानाशाहीके चलते विद्रोह, पीड़ा और परेशानीके बीच अपना रास्ता खोज रही है। इस प्रगतिशील पीढ़ीके मनमें अपने राष्ट्रके प्रति, बल्कि कहें तो समूची मानवताके प्रति और साम्यवादी परम्पराके प्रति गहरी निष्ठा है।

होता प्राय: यही रहा है कि साहित्य-सर्जनकी शुरुआत पहले काव्य-रचनासे होती है और प्रतिभानुकूल, समय आनेपर सर्जनकी दिशा गद्यकी ओर मुड़ती है। लेकिन एव्तुशेंकोके साथ सीधे इसका उलटा ही हुआ। उनके लेखनकी शुरुआत पहले गद्यसे हुई थी। आज यह हैरतकी ही बात लग सकती है कि रूसके जंगली इलाक़े साइबेरियाके जिमा नामक गाँवमें जनमे तैंतीस वर्षीय युवा कवि एव्तुशेंकोने केवल दस वर्षकी उम्रमें ही एक पूरा उपन्यास लिख डाला था। मेरी जानकारीमें विश्व-साहित्यके क्षेत्रमें अपने प्रकारकी यह अकेली 'घटना' है,

और यह भी सही है कि एव्तुशेंकोकी इस सफलता (घटना) को केवल 'संयोग' ही कहा जायेगा। कविताकी ओर उनकी रुझान तो बादमें हुई। एव्तुशेंकोकी इस रुझानका कारण भी बकौल उन्हींके यह रहा कि कविताने उनके मन और मस्तिष्कमें जोश और आग भर दी थी। उन्हें भरपूर आन्दोलित किया था।

एव्तुशेंकोका पहला कविता-संग्रह सन् १९५२ में प्रकाशित हुआ था। कहना न होगा कि इस पहले संग्रहने ही उन्हें श्रेष्ठ रूसी कवियोंकी श्रेणीमें प्रतिष्ठित कर दिया और अपनी पीढ़ीके कवियोंके अग्रणी तो वे बने ही।

आजकी सोवियत कविताके सम्बन्धमें एव्तुशेंकोका कहना है कि सोवियत संघमें अनेक व्यावसायिक कवि भी हैं किन्तु कुछ सही अर्थोंमें भी कवि हैं। उन्हींके शब्दोंमें "आजकी सोवियत कविता दुनियाकी अच्छी कविताओंके बीच गिनी जा सकती है, शायद सबसे अच्छी।" शायद इस वक्तव्यमें एव्तुशेंकोने 'शायद' शब्दका प्रयोग अपनी विनम्रता दिखाते हुए किया है। बावजूद इसके कि उनकी देश-निष्ठाके प्रति हमारे मनमें सम्मान है, हम यह कहना चाहेंगे कि उनका उक्त विचार किसी रूढ़ मुग़ालतेके चलते या बेसब्रीमें कहा गया है। और अगर कहें तो यह भी कि विश्व-साहित्यके क्षेत्रमें उनका यह अतिरिक्त 'दायित्व-बोध' बड़ी ग़लतफ़हमी पैदा कर सकता है, और हमारे ख़यालमें जिससे एव्तुशेंको-जैसे कवियोंको सचेत भी रहना चाहिए। मुमकिन यह भी है कि इस वक्तव्यके पीछे भी एव्तुशेंकोकी 'नाराज़गी'का कोई राज़ ही हो। वैसे रूसकी आधुनिक कविताके ही सन्दर्भमें एव्तुशेंकोने यह भी कहा है, जो कि ज़्यादा सही है, कि "रूसकी आधुनिक कविताकी तुलना यदि हम १९वीं सदीकी कवितासे करें तो आधुनिक कविता बदतर होगी क्योंकि अभीतक रूसका श्रेष्ठतम कवि अलेक्जेण्डर पुश्किन ही है। और जब हम आधुनिक कविताकी तुलना प्रथम सोवियत युगकी कविता, मायकॉवस्की और बोरिस पास्तरनाककी कवितासे करते हैं तो लगता है कि यदि हमलोग ज़्यादा दिन जिये तो कुछ ऐसा लिख सकेंगे जिसे उनकी कृतियोंके समकक्ष रखा जा सकेगा। लेकिन सन् '३० के बादकी कवितासे आजकी कविताकी तुलना करनेपर स्पष्ट यह लगता है कि हमने आगेकी तरफ़—पुश्किनकी कविताकी ओर—लम्बी छलांगें भरी हैं।"

यह एक बड़ी बात है कि खांटी प्रगतिशील और सोवियत नयी कविताके समर्थ कवि होते हुए भी एव्तुशेंकोके लिए रचनाके क्षेत्रमें परम्पराका प्रश्न महत्त्व-

पूर्ण है। कहना न होगा कि अपनी रचनाओंमें उन्होंने एक प्रगतिशील परम्परा-का निर्वाह करते हुए नये प्रयोग किये हैं और युगीन-संवेदनाको सार्थक अभि-व्यक्ति दी है। इसे आकस्मिक भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि परम्पराका 'सही' बोध रचनाकारके सामयिक परिवेश, अनुभव तथा उसकी यथार्थ-दृष्टिको गहराई और विस्तृति देता है। वास्तवमें समसामयिक कलात्मक बोधके लिए सर्जकमें परम्पराका बोध होना अनिवार्य है। और साथ ही यह भी सही है कि युगीन-दृष्टि और संवेदनासे सम्पृक्त होकर ही परम्परा नये संस्कार, नये रूप और नये मूल्य ग्रहण करती है।

इतनी कम आयुमें एव्तुशेंकोने विश्व साहित्य-जगत्में जो ख्याति अर्जित की है उसके और जो भी कारण रहे हों, लेकिन सम्भवतः बड़ा कारण एक यह भी है कि अपने चिन्तनकी सही दृष्टिके परिप्रेक्ष्यमें तमाम प्रतिकूल परिस्थितियोंमें रहते हुए, युगीन यन्त्रणाओंको संवेदनशील और सार्थक अभिव्यक्ति एव्तुशेंकोने दी है, जो कि हर बड़े रचनाकारके लिए अनिवार्य है।

● ●

कुछ नये विदेशी साहित्यकार

तीन विदेशी साहित्यकारों—एक लेखिका और दो लेखकों—का परिचय : रोचक और कुछ विचारणीय भी !

महेन्द्र कुलश्रेष्ठ

छियालीस करोड़ आबादीके इस देशमें क्या ऐसा कोई कवि है जिसकी कृतिका पहला संस्करण १० हज़ारका हो ? शायद नहीं; शायद क्या निश्चय ही नहीं। पर दो करोड़ आबादीके देश चेकोस्लोवाकियामें जोजेफ़ हैन्सलिक नामक कविका पिछला संग्रह 'सर्नी कोलोंटोक' १० हज़ारके संस्करणमें प्रकाशित हुआ और नया संग्रह 'पोटलेस्क प्रो हेरोडोसा' (हेरोडके लिए ताली बजाओ) शायद इससे भी अधिक प्रकाशित हो। परन्तु इस कविकी अवस्था अभी २८ वर्षकी ही है। इतनी अल्पावस्थामें ही इसने अपने देशके नये कवियोंमें सर्वोपरि प्रतिष्ठा अर्जित कर ली है और अब विदेशी भाषाओंमें भी अनूदित होने लगा है।

हैन्सलिकका जन्म चेकोस्लोवाकियाके एक छोटे-से क़स्बे, नेराटोविस,में हुआ था। इसके आरम्भिक बचपनके समय महायुद्ध चल रहा था और बड़े होनेपर उसके सर्वत्र व्याप्त प्रभाव देखनेको मिले। इसलिए इसके जीवनपर युद्धका ही प्रभाव सबसे प्रमुख है और वही उसकी कवितामें व्यक्त होता है। कविता लिखनेके लिए ही उसने विश्वविद्यालय छोड़ दिया, जहाँ वह मनोविज्ञान पढ़ता था। उसका पहला संग्रह 'लम्पा' (चिराग़) १९६१ में प्रकाशित हुआ। निकलते ही इसकी धूम मच गयी और इसे वर्षका सर्वोत्तम काव्य-संग्रह घोषित किया गया। इसका विषय एक ही है : युद्ध और बच्चे। इन कविताओंमें कथ्यको बहुत व्यक्तिगत ढंगसे प्रस्तुत किया गया है और जीवनसे बच्चोंकी

आशाओं तथा युद्धग्रस्त संसारसे प्राप्त होनेवाले कष्टों तथा आतंकोंके विरोधको बड़ी सबलतासे व्यक्त करता है।

उसका दूसरा संग्रह 'ब्लण्डी कामेन' (दोषी पत्थर) १९६२ में प्रकाशित हुआ और इसके पश्चात् 'स्ट्रिब्रने ओसी' (रजत नेत्र) तथा 'ज़मे जा पेरिसों' (पेरिसके पारका देश) प्रकाशित हुए। इनके अतिरिक्त उसने दो किताबें केवल बच्चोंके लिए लिखी हैं और सर्बो-क्रोशियन कविताओंके अनुवादका एक संग्रह प्रकाशित किया है।

हैन्सलिक इलियटको आधुनिक युगका महानतम कवि मानता है। उसकी अपनी रचनाओंपर गोयथे तथा एडगर ली मास्टर्सका प्रभाव है। वह व्यक्तिगत अनुभवको कविताकी सबसे उचित प्रेरणा मानता है। इसलिए उसकी रचनाओं में व्यक्तिगत अनुसन्धान तथा साक्षात्कारका स्वर प्रमुख है। उसके वक्तव्य में पूरी ईमानदारी तथा निरर्थक नियन्त्रणों का सर्वथा अभाव है। जिस समाज और परिस्थितिगत भूमिकामें उसकी कविता लिखी गयी है, उनके ज्ञानपूर्वक पढ़नेपर वे पाठकको मर्माहत कर देती हैं। एक उदाहरण देखिए :

चीज़ें

मेरी डेस्क की दराज में
मेरे जन्म का सर्टीफ़िकेट है
कुछ चाँदी के सिक्के कुछ चिट्ठियाँ
किसी जनरल का छह-धारा खंजर
और एक मखमली गुलाब
जो अब मुरझा गया है पर कभी सुगन्ध बिखेरता था''''

दूसरी है फ़ान्सकी लेखिका अलबर्तीन साराज़ीन जिसकी तुलना फ़ान्सके ही कुख्यात लेखक जाँ जेनेसे, जिसे सार्त्रने सन्त बना दिया है, की जा सकती है। जेनेकी तरह ही इसका जीवन भी सभी प्रकारकी बुराइयों तथा जेलोंमें बीता और यह 'लेस्बियन' रही है। इसकी दो पुस्तकें 'ला कावाल' (घोड़ी) और 'लास्त्रागाल' (टखनेकी हड्डी) इन दिनों बड़ी लोकप्रिय हो रही हैं। दोनों ही पुस्तकें फ़ान्सके सबसे विवादास्पद प्रकाशक, जाँ जाकस पॉवरने प्रकाशित की

है। साराजीनकी अवस्था इस समय केवल २९ वर्षकी है। इसमें-से पूरे दस वर्ष उसने जेलोंमें व्यतीत किये हैं। इसके जन्मका ठीकसे पता नहीं है। बादमें इसे एक सैनिक अफ़सरने गोद ले लिया परन्तु आदतें बिगड़ी होनेके कारण इसने वेश्यावृत्ति तथा सम्बन्धित कुकर्म जोरोंसे शुरू कर दिये। फिर इसने एक अन्य स्त्रीके साथ कहीं डाका डालनेका भी प्रयत्न किया, पर पकड़ी गयी। जेल-से इसने भागनेका प्रयत्न किया, जिसकी कहानी 'लास्त्रागाल' में दी गयी है। 'ला कावाल'में भी जेल-यात्राओंसे सम्बन्धित वर्णन ही हैं। इस प्रकार दोनों उपन्यास आत्मकथात्मक हैं और उनका साहित्यिक महत्त्व भी अच्छा आँका गया है। फ्रेंच मानदण्डोंके अनुसार भी इन उपन्यासोंकी सफलता विलक्षण मानी जा रही है। अब इनके अनुवादाधिकार प्राप्त करनेके लिए विदेशी प्रकाशकोंमें होड़ लग गयी है और वे अधिकसे अधिक मूल्य देकर भी उन्हें छापनेको तैयार हैं। अपनी दृष्टिसे साराज़ीन भी नीतिवादी लेखिका ही है क्योंकि यह उच्चवर्गकी क्षुद्रता, कपट और क्रूरताका अच्छा परदाफ़ाश करती है। अब इसने ख़ुद भी एक साथी क़ैदीसे, जिसने इसे भागनेमें मदद दी थी, विवाह कर लिया है और दक्षिण फ्रान्समें घर बनाकर रह रही है। उपन्यासोंकी अपार बिक्रीसे भी पैसा इसके पास खूब आ रहा है।

अंगरेज़ कवि ब्रायन हिगिन्स : जिनकी ३५ वर्षकी अल्पावस्थामें पिछले दिनों मृत्यु हो गयी। इसके काव्यने जैसी धूम मचायी, वैसी ही उसके व्यक्तित्वने। इसकी रचनाओंमें तीखा व्यंग्य होता था। यह १९६० में एक उल्काकी भाँति साहित्य-जगत्में अवतरित हुआ। 'ऐक्स' नामक साहित्यिक त्रैमासिकके सम्पादकोंको हल नामक नगरसे कुछ कविताएँ प्राप्त हुईं। साथमें लिखा था कि इनका लेखक इस भयंकर नगरमें बस-कण्डक्टर है। सम्पादकोंको कविताएँ बड़ी पसन्द आयीं। उन्होंने सोचा कि एक नये कविकी खोज हो गयी है। लिख दिया, कभी लन्दन आओ तो मिलना। तीन दिन बाद वे क्या देखते हैं कि दफ़्तरके सामने कई बक्स रखे हैं (जिनमें कविताओंके अलावा और कुछ नहीं था) और उनके ऊपर एक गट्टा, मोटा, बदसूरत आदमी बैठा हुआ है। वह बोला, "मैं आ गया हूँ—हमेशाके लिए।"

उसकी आदतें और भी निकम्मी थीं। वह हमेशा दूसरोंका ही खाता था,

पर खाता खूब था और जानवरोंकी तरह आवाज़ करके खाता था। वह लोगोंसे लगातार उधार लेता और धन्यवाद तक नहीं देता था, पैसा वापस करना तो दूर रहा। चोरी, झूठ बोलने आदिमें भी वह माहिर था और इनका समर्थन करता था। मरनेसे कुछ समय पूर्व भी उसने ५ पौण्ड क़र्ज़ माँगा था, पर मरनेके बाद पता चला कि बैंकमें उसके नामसे २०० पौण्ड जमा हैं। वह जिनके साथ रहता, वे यदि किसी दिन भूखे होते, तो वह खुद होटलमें जाकर चुपचाप माल खा आता। स्पेनमें एक ग़रीब कविके घर वह छह महीने रहा। उसे खिलाते-खिलाते उसका दिवाला पिट गया। तब यह वापस लौटने लगा। कवि बेचारा उसे बिदा करने आया। स्टेशनपर उसकी जेबसे कोई चीज़ गिरी। ये १०० पौण्डके ट्रैवेलर्स चेक थे।

अपना संग्रह छपानेके लिए यह प्रकाशकके पैरोंपर लोट जाता था और रोकर उसके जूते चाटने लगता था। इसलिए कठिनसे कठिन प्रकाशक भी इसके सामने हार मान लेता। लोग इससे नफ़रत तो करते ही, प्यार भी करते। यह मित्रोंकी पाण्डुलिपियाँ भी चुरा ले जाता। जीवनकालमें इसके तीन संग्रह प्रकाशित हुए। पहला संग्रह ही पोएट्री बुक सोसाइटीकी ओरसे सर्वोत्तम संग्रहके रूपमें चुना गया। मृत्युके बाद अब उसके दो संग्रह और भी प्रकाशित हो रहे हैं!

● ●

विचारोंके आलोकमें देवराज

प्रश्न और उनके उत्तर
शायद, सार्थक और सामयिक भी

स्थान : गया, समय : २८ मार्च १९६६ की सन्ध्या। प्रश्नकर्ता : डॉ० पूर्णमासी राय और उत्तर दे रहे थे हिन्दीके चिन्तक, कवि, आलोचक और उपन्यासकार डॉ० देवराज।

प्रश्न : विशिष्ट साहित्यके निर्माणक तत्त्व क्या-क्या हैं ?

उत्तर : (बायें हाथसे चश्मा हटाते हुए) आपने एक विचारणीय प्रश्न छेड़ा है। मेरी दृष्टिमें साहित्य-प्रणेताको विश्वकी प्रमुख कृतियोंका अध्ययन करना चाहिए। अध्ययनके द्वारा लेखक अपनी ज्ञानपरिधिमें विस्तार कर सकता है। इस यात्रामें यह विशेष ध्यातव्य है कि जिन-जिन कृतियोंका अध्ययन किया जाये उनकी मूलभूत चेतनाको आयत्त करनेमें अध्येताको अपने विवेकका उपयोग भी करना चाहिए। यदि किसी कृतिसे एक-दो महत्त्वपूर्ण आलोक (फ्लैशेज) कण भी मिले तो उससे विचारक नवीन दृष्टि प्रदान कर सकता है।

इसके अतिरिक्त कृति-निर्माणके लिए अपने सांस्कृतिक साहित्यका पारायण भी अपेक्षित है। अपनी संस्कृतिमें हम जिन तत्त्वोंको आकर्षक समझते हैं उनकी विवेकसम्मत नियोजना कृतिको सार्वकालिक महत्त्व प्रदान करती है। आजके लेखक पाश्चात्त्य साहित्य और संस्कृतिके अध्ययनको ही वरीयता देते हैं। मेरा कहना है कि दोनोंके अध्ययनसे लाभान्वित होना चाहिए पर लेखककी अपनी दृष्टि भी होती है, उसमें जहाँ दीप्ति है, वहीं कृति गरिमा-मण्डित हो उठती है।

प्रश्न : आपकी दृष्टिमें नवलेखनका भविष्य क्या है ?

उत्तर : नवलेखनमें विपुल साहित्यका सर्जन हो रहा है। पर उसमें-से छन-

छनाकर कुछ ही बच रहेगा। नये लेखक जिस क्षणवादके पक्षधर हैं उसमें पाठक-को मुग्ध करनेकी यदि क्षमता होगी तो वह साहित्यके विस्तृत परिसरमें आलोक प्रदान करता रहेगा। नवलेखनमें पाश्चात्य साहित्यकी उद्धरणी अधिक आ रही है, यह उसके लिए भयावह है। नये लेखकके लिए यह कहकर तथ्योंको नजर-अन्दाज करना ठीक नहीं है कि सांस्कृतिक संकटकी घड़ीमें ऐसे ही साहित्यकी अपेक्षा की जा सकती है। वस्तुतः पश्चिममें संस्कृतिके विघटनके कई कारण उपस्थित हो गये। उनकी मौलिक मान्यताएँ वैज्ञानिक विकासके साथ भंग होने लगीं, ईश्वरका स्थान ले लिया विज्ञानने। कई नैतिक मान्यताओंपर प्रश्न-चिह्न लग गये इसलिए वहाँके साहित्यमें सांस्कृतिक टूटके कई पहलू नजर आये। नये लेखकको अपने देशकी सांस्कृतिक विरासत ध्यानसे परखना चाहिए—उसमें जो आशामय सन्देश है, उसे भविष्यके लिए युगानुकूल बनाकर साहित्यमें लाना चाहिए। विषय प्राचीन हो पर लेखककी अपनी चेतना उसमें नव्यता ला देती है। धर्मवीर भारतीकी 'कनुप्रिया'में अतीत कालीन सन्दर्भमें नवचेतनाका समावेश हो सहृदयके मर्मको छूता हुआ नजर आता है। इसी प्रकार कुछ उपन्यास और कहानियोंमें भी ईमानदारी है, वे कालके प्रवाहमें प्रकाशस्तम्भकी भाँति स्थिर रहेंगी।

प्रश्न : आजकल साहित्यमें अस्तित्ववादकी बड़ी चर्चा है, इसके सम्बन्धमें आपकी धारणा क्या है ?

उत्तर : आजकल अधिकांश आलोचक बिना समझे-बूझे किसी कृतिको अस्तित्ववादी कहनेमें गौरवका अनुभव करते हैं। मेरी दृष्टिमें किर्केगार्ड और सार्त्रने जिस अस्तित्ववादका प्रवर्तन किया, उसकी प्रेरणा वहाँकी परिस्थितियोंसे मिली। सार्त्रने 'द एज ऑव रीजन' लिखकर जिन मान्यताओंको सामने रखा, उन्हींको ज्योंका त्यों यहाँके साहित्यमें नहीं लाया जा सकता। भारतीय संस्कृतिमें व्यक्तिके अस्तित्वको महिमामय स्वरूप दिया गया है, उसे निराशा, कुण्ठाके पाश्चात्य कठघरेमें कसकर देखनेसे सम्भवतः न्याय नहीं हो सकेगा। जीवनकी अनेक अनुभूतियोंमें यदि उन्हीं अनुभूतियोंको यहाँ भी भोगा जा रहा है, कमाया जा रहा है, जो पश्चिममें हैं; तो वे साहित्यमें उभरकर आयेंगी। मैं अस्तित्ववाद-की बाँग लगानेवालोंका समर्थक नहीं हूँ। यहाँ अस्तित्ववाद उसी रूपमें नहीं आ सकता जैसा पश्चिममें।

प्रश्न : साहित्यमें वे कौन-कौन-सी विशेषताएँ हैं जो उसे प्रेषणीय बनाती हैं ?

उत्तर : मेरी दृष्टिमें साहित्यकी किसी विधामें जहाँ ईमानदारी है, वहाँ प्रेषणीयता है। साहित्यकार अपनी अनुभूतियोंका अर्जन जब भोगके भीतरसे करता है तो उसमें ताज़गी होती है, उसकी अनुभूतियाँ जितनी प्रणेताके लिए सच होती हैं उतनी ही पाठकको भी प्रभावित करती हैं। लेखक स्वानुभूत तथ्यों में स्वयं बैठकर बोलता है। अज्ञेयके 'अपने-अपने अजनबी', 'नदीके द्वीप', अथवा 'शेखर : एक जीवनी' में जहाँ अनुभूतिकी सच्चाई है, वे स्थान आकर्षक हैं। जहाँ लेखकने अनुकरणकी चेष्टा की है, वहाँ वह विफल हुआ है। साहित्यका सचेष्ट सर्जन मुझे अभीष्ट नहीं है। लेखकके भीतर जिस अनुभूतिका पूरा परिपाक हो जायेगा उसको वह कलाका रूप देगा ही। अनुभूति जहाँ कच्ची होती है वहाँ अभिव्यक्ति भी लड़खड़ाने लगती है। एक ऐसा व्यक्ति जिसने वियोगकी हृदय-विदारक व्यथाका अनुभव नहीं किया, उसकी रचनामें वियोगकी मर्मान्तक ध्वनि नहीं सुनाई पड़ेगी। जबतक अनुभूति उपरले स्तरपर ही तैर रही है, तबतक उसमें अभिव्यक्त होनेकी सामर्थ्य नहीं होगी। यदि उन्हें बलात् कलाका रूप दिया गया तो वहीं विफलता हाथ लगती है। अतः साहित्यमें ईमानदारी और भुक्त अनुभूतियोंको महत्त्व दिया जाना चाहिए।

प्रश्न : आपकी सद्यः प्रकाशित कृति 'इतिहास-पुरुष'की मूल चेतना क्या है ?

उत्तर : समीक्षकका कर्तव्य है कि वह मूलभूत चेतना को पहचाने। मैंने अपनी सांस्कृतिक दृष्टिको भारतीय परिवेशमें समझने-बूझनेकी चेष्टा की है, मैंने उसकी रचना भारतमें रहकर की है, अतः उसमें भारतीय तत्त्वोंकी खोज प्रथमतः की जानी चाहिए। अस्तित्ववादी नुस्खे ही उसके परीक्षणके लिए मुफ़ीद नहीं हैं।



पढ़नेकी आदत

यह सही है कि लोग पढ़ते हैं, पर वह पढ़ना भी
किस कामका जिससे ज़िन्दगीके अँधेरेमें रोशनी
न हो, और विचारोंमें खलबली न मचे और···

अक्षयकुमार जैन

शिक्षाके प्रसारके बावजूद आज भी पुस्तकें ख़रीदकर पढ़ना अय्याशी समझा जाता है। इसका कारण प्रायः आर्थिक माना और बताया जाता है। लेकिन गहराईमें जानेपर कुछ रोचक तथ्य सामने आते हैं।

गत एक दशकमें पढ़नेकी हमारी आदतोंमें कुछ परिवर्तन आया है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। ये आदतें अच्छी हों या बुरी, सवाल इसका नहीं है। लोग पढ़ते तो हैं, यह भी बहुत बड़ी बात है। क्या पढ़ते हैं और क्यों पढ़ते हैं, यह बहुत-कुछ पाठकोंपर नहीं बल्कि प्रकाशकोंपर निर्भर करता है। फिर भी यह सन्तोषका विषय है कि भारतीय भाषाओंका पाठक पढ़ता है और एक वर्ग है जो ख़रीदकर पढ़ता है। लेकिन एक वर्ग ऐसा भी है जिसे 'पढ़नेके लिए समय नहीं मिलता।' स्कूल या कॉलेजमें जो कुछ पढ़ना पड़ा था, उसका ज्ञान वहीं तक सीमित है। इस वर्गमें तथाकथित वे बड़े लोग भी शामिल हैं जो देशकी नीति और राजनीतिका संचालन करते हैं और विकसित देशोंमें क़दमसे क़दम मिलाकर चलनेकी बात करते हैं। अपने सीमित ज्ञानसे ये लोग हमें कहाँतक ले जायेंगे, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं।

अच्छे दैनिक पत्रोंकी बढ़ती हुई बिक्री-संख्या और साहित्यिक पत्रिकाओंकी लोकप्रियता इस बातका प्रमाण है कि अच्छी चीज़का पाठक मौजूद है। या यह भी कि कोई अच्छा प्रकाशन देनेपर पाठक स्वयं पैदा हो जाते हैं।

किन्तु खेदका विषय यह है कि अधिकांश प्रकाशकोंने उसे समझा नहीं है। उनकी नासमझी या समझकर भी अनजान बने रहनेकी प्रवृत्तिका परिणाम यह है कि हिन्दीमें कई प्रकारकी पुस्तकोंका नितान्त अभाव है। आधुनिक इतिहास, दर्शन, यात्रा-वर्णन, आदिकी पुस्तकें उँगलियों पर गिनी जा सकती हैं।

आज सारा ज़ोर, इसमें कोई शक नहीं, मनोरंजनपर है। उपन्यासोंका प्रकाशन अधिक है, वह भी सस्ते जासूसी उपन्यासोंका। अश्लील साहित्यसे दूकानें भरी पड़ी हैं। सस्ती भोंड़ी पत्रिकाओंकी बाढ़ आ गयी है। गम्भीर विषयोंपर, ऐसा मालूम होता है कि लोगोंको गम्भीरतासे विचार करनेकी फ़ुरसत ही नहीं है।

प्रकाशक इसके लिए पाठकको दोषी ठहराता है। प्रकाशक कहता है कि हिन्दीका पाठक अभीतक इस योग्य और सक्षम नहीं है कि ऐसी पुस्तकोंमें रुचि लेकर उन्हें ख़रीद सके। उधर पाठक यह कहता है कि जब मुझे ऐसी पुस्तकें मिलती ही नहीं तो मैं ख़रीदूँ कहाँसे?

लेकिन एक बात सही जान पड़ती है और वह यह कि अधिकांश प्रकाशकोंने अपना दायित्व नहीं निभाया है। उन्हें भविष्यकी कम और वर्तमानकी चिन्ता अधिक है। प्रकाशक आज भी पुस्तकको नहीं समझता। पुस्तक उसके लिए व्यापारकी वैसी ही चीज़ है जिस प्रकार दैनिक उपयोगमें आनेवाला कोई उपभोक्ता वस्तु। यह वृत्ति पुस्तकोंके प्रति पाठककी अरुचिका मूल कारण है। प्रकाशक अपना सारा ध्यान पुस्तकालयोंको पुस्तकें बेचनेकी ओर केन्द्रित करता है। और ऐसे भी पुस्कालय हैं जहाँके प्रबन्धकर्ताओंको केवल पुस्तकें चाहिए, किसी भी विषयकी पुस्तकें हों।

यह कितने खेदकी बात है कि जिनकी जेब इजाज़त देती है, वे लोग भी अपने बजटमें दैनिक अख़बारके सिवा पत्रिकाओं और पुस्तकोंके लिए कोई व्यवस्था नहीं रखते। ये लोग सिनेमापर पैसा ख़र्च कर सकते हैं, रेस्तराओंमें जा सकते हैं, छुट्टियाँ गुज़ारने पहाड़पर भी जा सकते हैं, लेकिन पुस्तकें ख़रीदनेको अपव्यय समझते हैं। आत्मप्रतिष्ठा और मर्यादाकी बातें करनेवाले माँग कर पढ़ते हैं। और नैतिक चरित्रके ह्रासकी शिकायत करनेवाले माँगी हुई पुस्तकें कभी वापस नहीं करते।

इससे एक बात साबित होती है कि लोग पढ़कर भी कुछ सीखते नहीं। ऐसा पढ़ना न पढ़ना बेकार है जिससे ज़िन्दगीके अँधेरेमें रोशनी न हो। जिससे विचारोंमें खलबली न मचे और जिससे ज़िन्दगीके तालाबका पानी सड़ता रहे और मच्छर पैदा करे, ऐसे मच्छर जो मनको मलेरियाका रोग लगा दें और अपनी और दूसरोंकी ज़िन्दगी दूभर कर दें।

●●

क़िस्सा
मेज़पर टिकी हुई कुहनियोंका

कहानी या समीक्षा, समीक्षा या कहानी,
या कहानी और समीक्षा दोनों ही, या
कुछ भी नहीं !

भोलानाथ 'विम्व'

अचानक जैसे धूपका कोई बड़ा-सा टुकड़ा कमरेमें धँस आया हो ! नाताकी खिलखिलाहटें कमरेकी दीवारोंसे टकरायीं फिर खिडकियोंके बाहर टँगे गमलोंको छू गयीं। मंजूके मुखसे अनायास निकला—'सुनीता !''

मंजू अभी-अभी जिस पुस्तकको पढ़ रही थी—उसका डस्ट-कवर दो टुकड़ोंमें अलग मेज़पर दबा पड़ा है। शायद असावधानीके कारण कवरके दो टुकड़े हो गये होंगे और अब कवरके एक टुकड़ेपर 'कुहनियाँ' फिर एम्बलम और 'भारतीय ज्ञानपीठ काशी' लिखा दीख रहा है और दूसरेपर रमेश बक्षीका चित्र, फिर उसका परिचय आदि। नीताने ग़ौरसे मंजूको देखा और फिर बक्षीके चित्रको। उसे कुछ अजीब-सा लगा। आँखोंपर चश्मा और सिरके बाल जहाँ एक ओर रीतिकालीन कवियोंकी तसवीर बना रहे थे वहीं छापेदार बुश्शर्ट शहरके अत्याधुनिक युवकोंकी याद दिला रहा था।

सहसा सामनेके ज़ीने एक तीस-बत्तीस वर्षका व्यक्ति जूते खटखटाता ऊपर चढ़ गया। नीचेकी तरह ऊपर भी कई फ़्लैट थे जिनमें कई किरायेदार थे। मंजूने कहा—''तुमने देखा न, ये मिस्टर उमगाँवकर हैं। पत्नी है और माँ। बस। किसी टॉयलट कम्पनीकी एजेन्सी करते हैं—टूरपर ही रहते हैं और सफ़रसे लौटकर बक्षीकी 'थर्मसमें क़ैद कुनकुना पानी'की तरह अपनी पत्नीपर सन्देह करते हैं। जिस दिन लौटते हैं उस दिन इनका मूड अजब-सा रहता है, पति-पत्नीके बीच जैसे

कोई काँटेदार दोवार होती है, पर धीरे-धीरे यह दीवार ढह जाती है और फिर दोनोंके मनपर हलकापन छा जाता है। माँको घरपर छोड़ ये किसी रविवारको सिनेमा देखने जाते हैं। बाहर ही खाते-पीते हैं और उस रात देरसे लौटते हैं।"

नीताने पुस्तक मंजूके हाथसे ले ली। उसने पृष्ठ उलटते हुए पूछा, "इधर विपिन मिला था तुमसे ?"

"नहीं !"

नीताको मंजूकी आँखोंकी सफ़ेदी कुछ गहरी होती जान पड़ी। उसने एक बार झाँककर सब-कुछ देखनेकी कोशिश की, फिर जैसे कुछ देख न पायी हो, उसकी आँखें पुस्तककी ओर मुड़ीं। 'बग़ैर शेडवाले बल्बकी रोशनी' शीर्षक उसे आकर्षक लगा।

"इसमें एक इकहरे बदनवाली मराठी लड़की है," मंजू बोली, "बक्षी समझते हैं—नहीं बक्षी नहीं, इस कहानीका नायक समझता है—कि यह रोशनी मात्र उसे ही जीवनका दिशा-संकेत देती है, पर...."

टेबलपर डस्ट-कवर अब भी पड़ा था। नीताने बक्षीके चित्रको दोबारा ग़ौरसे देखा और जाने क्यों उसने उसे उलटकर फिर टेबलपर रख दिया। फिर धीरेसे पूछा—"विपिनसे तुम्हारी भेंट कब हुई थी ?"

"भेंट नहीं ! हाँ, कल मैंने उसे देखा था। उसने भी। पर वह आगे बढ़ गया था। इस पुस्तकमें एक कहानी है, 'उसका न देखना।' उसमें घुँघराले बालोंवाले कलाकारको रोज़ ऐसी स्थितियोंसे गुज़रना पड़ता है। और फिर उसे प्रेरणा प्राप्त होती है कला-सृजनकी...." मंजू हँस पड़ी, "पर मुझे तो ऐसा लगता है कि इस तरह यदि दूर-दूरकी मुलाक़ातें दो-चार ही हुईं कि कोई भी स्वयं दूर जा पड़ेगा।"

नीताने पुस्तक मंजूके हाथसे ले ली और दाहिने अँगूठेसे सारे पृष्ठोंको सेकण्ड-भरमें फ़र्राटती हुई बोली—"बहुत कुछ 'एब्नॉर्मल'-सा हो गया है मंजू, इन दिनों।"

उसने पुस्तक मेज़पर रख दी। लगा जैसे बग़ैर डस्ट-कवरवाली पुस्तककी सफ़ेद जिल्द अपनेमें कोई न दीख पड़नेवाली इबारत छिपाये हो।

तभी एक ग्यारह-बारह वर्षकी लड़की, स्कर्ट पहने, कमरेमें घुस आयी।

आते ही मंजूसे बोली, 'दीदी, स्कूल नहीं चलना ? मैं तो चली !'

उसके जाते ही मंजूने कहा, "यह झरना थी नीता ! मेरे स्कूलमें पढ़ती है। बक्षीकी कहानियोंमें इसी क़दो-क़ामतकी स्कर्टवाली, फ्रॉकवाली या लम्बे बालों-वाली कई लड़कियाँ हैं जो या तो सपने सँजोती हैं या किसीके सपने तोड़ती हैं।"

फिर जैसे सजग होती बोली, "झरना बड़ी प्यारी लड़की है नीता ! बड़ी स्मार्ट ! यह अकसर मेरे यहाँ आती है और इसकी 'स्मार्टनेस' मुझमें भी गति ला देती है। पुस्तकमें एक कहानी है। शीर्षक वही जो पुस्तकका नाम है। उसमें डॉक्टरकी लड़की भी····।"

जाने क्यों नीता चुप हो गयी। वह उठकर खिड़कीके समीप जा खड़ी हुई। दूर सड़कको देखा, फिर नलपर पानी भरनेवालोंकी भीड़की ओर। गरमीके दिनोंपर नल न हुआ, राशनकी दूकान हो गयी।

मंजू भी पास आकर खड़ी हो गयी। कहा उसने—"कहीं जिन्दगी एक छलावा न साबित हो मंजू तेरे लिए ! विपिनकी इस उदासीका मतलब तू जानती है ? तुझे एक बार····"

अनसुनी करते हुए मंजू बोली, "ये सामने मुहल्ले-भरके लोग दिखाई पड़ रहे हैं। नलपर जो अधेड़-सा व्यक्ति एक किनारे बाल्टी लिये खड़ा है वह शकूर दरजी है। इसे देख मुझे 'अगले मुहर्रमकी तैयारी' के बुश्शर्टवाले बाबूका स्मरण हो आता है जिसकी बीवी हर साल एक बच्चा जनमती है और फिर जिसकी मृत्यु हो जाती है। इस शकूर दरजीके भी, सुना है, सात बच्चे हुए और साल-दो साल बीतते-न-बीतते सभी मरते गये। और····फिर वह देखो, हरे रंगकी साड़ीवाली शान्ता बाई, मराठिन, सुनते हैं वह अकसर अपनी तीन वर्षकी मुन्नीको शकूर दरजी की बीवीके पास छोड़कर दिन-दिन-भर ग़ायब रहती है····कई बार तो वह रातमें भी····शकूर दरजीकी बीवीकी गोद सात बच्चे जनमनेके बाद भी ख़ाली-की-ख़ाली है, इसलिए वह····।"

नीता कहीं दूसरी जगह थी। जैसे लौटती हुई बोली, "इस तरह शंका और विश्वासके बीच लटके रहना····तू विपिनसे साफ़-साफ़ पूछ क्यों नहीं लेती ?"

मंजूने शून्य आँखोंसे उसे देखा—जैसे प्रत्युत्तरमें जो कहना था, कह दिया हो।

"मुझे तो लगता है जैसे मैं स्वयं 'क़िस्सा एक शुतुर्मुर्ग़ का' हूँ। स्कूलकी बच्चियोंमें सिर छिपाकर जैसे सारा तूफ़ान अपने ऊपरसे गुज़र जाने देना चाहती हूँ। वैसे बक्षीकी कहानीसे कुछ हद तक असहमत भी क्योंकि लम्बे बालोंवाली उस साँवली लड़कीने यदि चाहा होता तो शुतुर्मुर्ग़ न बनकर कुछ और भी बन सकती थी मैं चाहूँ भी तो शुतुर्मुर्ग़की शुतुर्मुर्ग़........"

"मैं आज शाम विपिनसे मिलूँगी और यह बात स्पष्ट...."

"नहीं तुम नहीं मिलोगी।" मंजूने बात काटी।

"तो क्या सचमुच तुम शुतुर्मुर्ग़ ही हो और तूफ़ान आनेपर अपना सिर...."

"हाँ।"

स्कूल जानेका समय हो चुका था। मंजू चौंकते हुए बोली, "अरे....दस बज रहे हैं, मुझे स्कूल जाना है। तुम चाहो तो यह पुस्तक ले जाओ। इसमें और भी ऐसे पात्र हैं, जिन्हें सड़कपर वाले नलकी भीड़में मैं अकसर देखती हूँ...."

नीताने पुस्तक ले ली। "अच्छा तो मैं चली!" वह जाने लगी तो मंजूने डस्ट-कवर की ओर देखा। बक्षीका चित्र अब भी अपनी बायीं ओर देखता जा रहा था। उसका जी चाहा—काश, बक्षीकी नाकपर का चश्मा उठा नीताको देते हुए कहे, 'एक बार इसे पहनकर भी....' पर वह कुछ कह न पायी।

जाते-जाते नीता अनायास कहती गयी—"एक बार तुम फिर सोचना। मैं विपिनसे मिलकर तुम्हारी....।"

"नहीं-नहीं-नहीं!" मंजू-जैसे चीख पड़ी थी। नीता तबतक कमरेसे बाहर।

स्कूल जानेके लिए तैयार होनेकी जल्दीमें फटे हुए डस्ट-कवरको मंजूने हथेली-में मचोड़ डाला और चाहा कि उसे डस्टबेनमें फेंक दे पर फिर जाने क्या सोचकर उसने मुचड़े हुए कवरको सीधा-साफ़ किया, सलवटें ठीक कीं और फिर उसे उसी तरह मेजपर रख दिया। बक्षीका चित्र अब ऊपर की ओर था।

फिर वह स्कूल जानेके लिए तैयार होकर कमरेसे निकल पड़ी।

● ●

प्रकाशित समीक्षाएँ
शेष स्वर

स्तम्भका उद्देश्य है : समकालीन विशिष्ट हिन्दी कृतियोंपर प्रकाशित विभिन्न और विवेकी समीक्षाएँ एक साथ सामने आकर पाठकको कृतिके समग्र व्यक्तित्वसे परिचित करायें। पत्रिकाके पिछले अंकोंमें क्रमशः 'लोकायतन', 'एक साहित्यिककी डायरी', 'शिखरोंका सेतु', 'चारु चन्द्रलेख', 'आँगनके पार द्वार', 'अँधेरे बन्द कमरे', 'अर्द्धशती' और 'बूँद और समुद्र' पर समीक्षाएँ आ चुकी हैं। इस अंकमें धर्मवीर भारतीकी काव्य-कृति 'कनुप्रिया'पर प्रस्तुत हैं तीन महत्त्वपूर्ण समीक्षाएँ

'कनुप्रिया'

• आधुनिक संकटको गहराईका एक नया आयाम

जिस युगमें सभी कुछका नये सिरेसे मूल्यांकन हो रहा है, क्योंकि पुराने और प्रतिष्ठित मूल्य सन्दिग्ध हो गये हैं, उसमें प्रेमके मूल्यका अन्वेषण हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है। और जिस युगमें सभी रस मिश्र-रस हों, उसमें यदि राग-सम्बन्धोंको भी एक वैचारिक पृष्ठभूमि दी जाये, तो वह भी अकल्पनीय नहीं है।

किन्तु 'कनुप्रिया' में धर्मवीर भारतीने कृष्णके प्रति राधाके प्रेमको जिस नये रूपमें देखा है या दिखाना चाहा है उसका आधार केवल पुरानी बातको नये मुहावरेमें ढालनेका प्रयत्न-भर नहीं है। भारतीका उद्देश्य इससे बड़ा है, क्योंकि वह राधा-कृष्णके प्रेमको भी एक बृहत्तर रूपमें देखते हैं—ऐसा रूप, जिसे देश-कालातीत कहा जा सकता है, क्योंकि वह सार्वदेशिक और सार्वकालिक है।

पौराणिक चरित्र ऐतिहासिक नहीं होते—या कि निरे ऐतिहासिक नहीं होते। उनके ऊपर जो प्रतीकत्व आरोपित हो जाता है, वह वास्तवमें एक जातिके गहनतम विश्वासों, आदर्शों या कामनाओंका प्रतिरूप होता है। राम और कृष्ण,

सीता और राधा और मन्दोदरी, रावण और हनुमान् ऐसे ही प्रतीक-चरित्र हैं जिनके माध्यमसे भारतीय जाति अपनी मूल प्रतिभाको मूर्त्तरूप देती है। गोकुल का नटखट ग्वाल बालक और महाभारतका परम कूटनीतिज्ञ--जिस कृष्णमें ये दोनों रूप समन्वित होते हैं, वह केवल राधाका प्रेयस् या वैष्णव सम्प्रदायका उपास्य नहीं है, बल्कि समूची भारतीय प्रतिभाका शलाका-पुरुष है।

'कनुप्रिया'में कृष्णके इस रूपको लिया गया है अवश्य; लेकिन भारती पुराणकार नहीं हैं, आधुनिक कवि हैं, इसलिए उन्होंने इस पौराणिक चरित्रके माध्यमसे एक समकालीन विसंगतिको भी विराट् रूपमें देखनेका प्रयास किया है। ऐसा प्रयास नया नहीं है; हमारे युगमें भी नया नहीं है; पुरानी कहानीको निरन्तर नया सन्दर्भ देकर ही कवि-प्रतिभा सफल होती है और उस देश-कालातीत राग-तत्त्व तक पहुँच सकती है जो कवि-सत्यको उसकी गहराई देता है।

'कनुप्रिया' पाँच खण्डोंमें बँटी है : 'पूर्व राग', 'मंजरी परिणय', 'सृष्टि संकल्प', 'इतिहास' और 'समापन'। इनके द्वारा भारतीने प्रयत्न किया है कि राधाके सहज तन्मयताके क्षणोंका संकेत करें, और फिर कृष्णके महान् और आतंककारी इतिहास-प्रवर्त्तक रूपका इंगित देकर राधाके आन्तरिक संकटको पाठकके सम्मुख ले आयें। इतिहास-पुरुषका यह महाकाय रूप, राधाकी सहज कैशोर्यसुलभ आत्म-विभोरतासे मेल नहीं खाता। किन्तु राधाका आग्रह है कि वह अपने प्रियको इसी सहजताके स्तरपर समझेगी और ग्रहण करेगी--क्योंकि प्रेमका आयाम सहजताका ही आयाम हो सकता है; दूसरे सब आयाम प्रेमके नहीं, बुद्धिके हैं--रागके नहीं, चिन्तनके हैं।

सहजता या हार्दिकताके इस आग्रहको कोई भी वैष्णव समझ सकता है। लेकिन भारतीके आग्रह और राधाके आग्रहमें अन्तर है। भारती रागाश्रित सहजताको एक बौद्धिकके नाते ग्रहण करते हैं। "जीवनके मूल विपर्ययका कोई हल निरी बुद्धिसे, निरे ऐतिहासिक चिन्तन और विश्लेषणसे नहीं निकल सकता, मानवताकी समस्याएँ मानवकी जिस अखण्ड एकताके स्तरपर हल की जा सकती हैं, वह विज्ञान अथवा तर्कका स्तर नहीं बल्कि सहज रागात्मक सम्बन्धका स्तर है", यह भारतीकी बुद्धिगत उपलब्धि है; जिसे वह काव्यमें प्रतिष्ठित करना चाहते हैं क्योंकि वह आधुनिक कवि हैं – कवि होते हुए भी आधुनिक हैं।

इस प्रकार भारतीने अपने समक्ष जो लक्ष्य रखा है उस तक पहुँचना कठिन

तो है, परन्तु असम्भव नहीं । उसकी चुनौतीको कविने स्वीकार किया है तो उसकी प्रशंसा ही होनी चाहिए; इसलिए और भी अधिक कि वह चुनौती किसी दूसरेकी दी हुई नहीं है । कवि अपना अन्तर्भूत संघर्ष हमारे सम्मुख रखकर अपना प्रयास हमें देखने देता है, हमें साक्षी बनाकर अपनी हार-जीत कुछ भी हमसे नहीं छिपाता, तो वह हमारी गहरी सहानुभूतिका पात्र है और उसकी प्रगतिके हर पगको हमें दाद देनी चाहिए ।

'अन्धा युग'में भी भारती मूलतः इसी समस्यासे उलझ रहे थे । लेकिन 'अन्धा युग'का स्तर अधिक बौद्धिक था । राग-तत्त्वकी प्राथमिकता रागात्मक ढंगसे ही प्रतिष्ठित की जाये, कविके लिए यह प्रगति है और इस दृष्टिसे मानता हूँ कि 'कनुप्रिया' 'अन्धा युग'से एक चरण आगे है । उसकी कल्पना अधिक स्पष्ट है, उसकी दृष्टि अधिक गहरी और उसकी मानवीयता अधिक पूर्ण । इसलिए कहना चाहिए कि उसका काव्यत्व भी अधिक उन्नत है । (यह शास्त्रीय आलोचना नहीं है; लेकिन मैं कोई लाचारी नहीं देखता हूँ कि केवल शास्त्रीय आलोचना करूँ : शास्त्रीय आलोचनाका अपना एक स्थान अवश्य है लेकिन वहाँ आसन जमानेकी मेरी कोई आकांक्षा नहीं है !)

लेकिन मैं कहूँ कि 'कनुप्रिया'में जहाँ कुछ बहुत मर्म-स्पर्शी और द्रावक स्थल हैं, और कुछ अंशोंका संयत और उद्दात्त स्वर हृदयपर एक गहरी छाप छोड़ जाता है, वहाँ बहुत-कुछ ऐसा भी है जिससे निराशा या झल्लाहट होती है । भले ही झल्लाहटका कारण यह हो कि हमारी आशाएँ ही असन्तुलित थीं ।

कविसे यह माँग तो नहीं की जा सकती थी कि वह स्वयं वैष्णव हो; किन्तु जब वह राग और बुद्धिकी विसंगति हमारे सम्मुख रखना चाहता है तब यह आवश्यक हो जाता है कि वह हमारे सम्मुख राग-पक्षको भी उतना ही यथार्थ संवेद्य बना सके । इसके लिए वह कृष्णके उस रूपका आश्रय लेता है जो परम्परा-से राधा-द्वारा देखा गया रूप माना चला आता है, तो उसमें अनुचित कुछ नहीं है; लेकिन वह इसको अनिवार्य बना देता है कि कवि वैष्णव संस्कारको हमारे सम्मुख जीवन्त रूपमें खड़ा कर सके ।

इसके लिए जितनी जानकारी चाहिए वह भारतीके पास है, इसमें सन्देह नहीं । लेकिन उसे हमारे सामने जीवित मूर्त्त रूप देनेके लिए जो भाषा अपेक्षित है वह 'कनुप्रिया' में नहीं है । यही मेरी समझमें उसकी मुख्य कमज़ोरी है, और

इसीके कारण हम भावनाके उस स्तर तक नहीं पहुँच पाते जिसपर ले जाना कविका अभीष्ट है—या जिसपर पहुँचना काव्यके रसास्वादनके लिए आवश्यक है। भारतीकी भाषाका संस्कार रोमानी है; उनके शब्द-चित्र हमें न केवल वैष्णव संस्कारकी ओर नहीं ले जाते बल्कि उससे दूर खींचकर एक पश्चिमी संस्कारकी ओर ले जाते हैं। (उस पश्चिमी संस्कारके मूलमें भारतकी भी देन रही है यह अप्रासंगिक है।) मूल विपर्यय यह है कि वैष्णव संस्कार भावनाके सागरमें डूबनेकी माँग करता है; और रोमानी संस्कार कल्पनाके आकाशमें उड़नेकी।

फिर भारतीकी भाषाका संस्कार एक मिश्र संस्कार है। मैं भाषाके क्षेत्रमें शुद्धिवादी नहीं हूँ; लेकिन यह मानता हूँ कि ऐसे स्थल होते हैं जहाँपर शब्द-धातुका विचार करना पड़ता है। यों तो हर शब्दका अपना संस्कार होता है और सुकवि उस संस्कारका उपयोग अर्थ-पुष्टिके लिए करता है। पर 'कनुप्रिया' जिस कथा-वस्तुको लेकर चली है उसमें तो इसका विचार और भी प्रयोजनीय हो जाता है। भारती अपने काव्यमें साधारण बोल-चालके जिन उर्दू शब्दोंका प्रयोग करते हैं, वे उनके रोमानी गीतोंमें तो न केवल खप जाते हैं बल्कि अतिरिक्त प्रभावशाली होते हैं; राधा-कृष्णके प्रसंगमें उनका प्रभाव विनाशकारी होता है क्योंकि जिस देश-कालको कवि हमारे सामने मूर्त्त करना चाहता है उसका वे खण्डन करते हैं और 'अनन्याश्चिन्तयन्ती' राधाके साथ जो भावैक्य पाठकका होना चाहिए, एक झटकेसे उसकी सम्भावनाको मिटा देते हैं। तत्सम और देशजके जोड़ भी ऐसा ही प्रतिकूल प्रभाव रखते हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—

"शोख़ चंचल विचुम्बित पलकें, आम्र-बौर, महासागर मेरे ही निरावृत जिस्मका उतार-चढ़ाव है, निर्वसना जलपरी, शिथिल गुलाबतन, साबित मणि-जड़ित दर्पण, तुम्हारी बावरी मित्र, तुम्हारी मुँहलगी ज़िद्दी नादान मित्र, वह मेरी तुर्शी है जिसे तुम मेरे व्यक्तित्वमें विशेष रूपसे प्यार करते हो।"

राधाका परियों या जादूकी बात करना मेरी दृष्टिमें उतना ही असंगत है जितना हमारा कृष्णके 'हरम'की बात करना—इन शब्दोंसे, और इनको अर्थ देने-वाली संस्कृतिसे हमारा परिचय उस कालके हज़ारों वर्ष बाद हुआ जिसमें कवि

हमें ले जाना चाहता है। और राधाका अपनेको 'सखी' न कहकर 'मित्र' कहना तो हमें बीसवीं सदीमें ले आता है ('गर्ल फ्रैण्ड !')।

और भी शब्द-प्रयोग हैं, जिन्हें कमसे कम मैं स्वीकार नहीं कर पाता। जैसे सम्बोधन-रूप 'राधन्'। भारतीजी अगर कृष्ण-द्वारा राधाको 'रद्दू-बुद्दू' भी कहलाते तो मुझे वह उतना असंगत नहीं लगता, क्योंकि प्यारके नाम अर्थहीन तो हो ही सकते हैं। किन्तु ऐसा पुंवाची नाम क्यों? निःसन्देह प्रेमी ऐसा भी नाम रख सकते हैं, लेकिन किसी चीज़का सम्भव होना ही यथेष्ट नहीं है, वह सम्भावना ऐसी भी होनी चाहिए कि उसपर विश्वास हो सके।

मैं राधाके मुखसे यह भी न कहला सकता कि "कनु मेरा लक्ष्य है, मेरा गन्तव्य।"

"तुम्हारे जादू-भरे ओठोंसे रजनीगन्धाके फूलोंकी तरह टप-टप शब्द झर रहे हैं।" रजनीगन्धाके फूल झरते नहीं, डालपर ही सूख जाते हैं। झरते भी—जैसे बकुल या शेफालीके झरते हैं—तो उस झरनेकी नीरवता ही लक्ष्य होती।

ऐसे उदाहरण और भी दिये जा सकते हैं, किन्तु उसकी आवश्यकता नहीं है।

अन्तमें एक बार फिर कहूँ कि 'कनुप्रिया'में मुझे जो अच्छा लगता है वह है परिकल्पनाका साहस; राधा-कृष्णके व्यापक प्रेमको नया सन्दर्भ देनेका, और इस प्रकार आधुनिक संकटको गहराईका एक नया आयाम दे देनेका प्रयत्न। इस साहस-कर्ममें उन्हें सम्पूर्ण सफलता नहीं मिली है, तो भी हमारी सहानुभूति उनके साथ है; तो 'कनुप्रिया' रोचक और पठनीय है।

—'अज्ञेय'

पुरानी कथा और नयी संवेदना

'अन्धायुग'में कृष्णकथाका महाभारतपरक रूप आया है, तो 'कनुप्रिया'में 'भागवत'के कृष्णका लीला-रूप स्वीकार किया गया है। उनके इस लीला-व्यक्तित्वके साथ कविने उनके 'महाभारत'के राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, व्याख्याकार व्यक्तित्वको रखकर देखनेका प्रयास किया है। कनुसे इन दोनों व्यक्तित्वोंके बीचसे अत्यन्त कोमल तथा भावमय सेतु-रूपमें राधाका व्यक्तितत्व आता है जो जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास तथा सूरदासकी परम्परासे पाया गया है। जिस प्रकार अन्धायुगमें

त्रेताके उस महायुद्धको आधुनिक युगके सन्दर्भमें और आधुनिक संवेदनाके आधारपर प्रस्तुत किया गया है, उसी प्रकार राधा-कृष्णके लीलामय प्रेमको 'कनुप्रिया'में आधुनिक परिवेशमें तथा संवेदनके स्तरपर अभिव्यक्ति मिली है। भाषा, शैली, शिल्प तथा भाव-बोध आदिकी अनेक दृष्टियोंसे 'अन्धायुग' तथा 'कनुप्रिया' भिन्न कोटिकी रचनाएँ होकर भी संवेदनाके इस बिन्दुपर समान हैं।

'कनुप्रिया'के सजग पाठकको यह आभास होता रहता है कि इस कृतिकी मौलिक संवेदना और अभिव्यक्त संवेदनामें, अभिव्यक्त भावबोध और उसकी भाषा-शैलीमें कहीं कोई असंगति है। और इसी कारण रचनाके सम्पूर्ण आकर्षणके बावजूद उसके सहभोगमें असुखद स्थितिका अनुभव करता रहता है। पर समस्त आकर्षणके साथ इस असुखद स्थितिकी रचनाके सौन्दर्यबोधके साथ स्वीकार कर लेनेपर ही इसके मौलिक भावबोधके स्तरको स्पर्श किया जा सकता है, जो 'अन्धायुग'की आधुनिक संवेदनीयताके समान है। जो ऊपरसे असंगति जान पड़ती है, वही इस रचनाकी सर्जनात्मक प्रक्रियासम्बन्धी सार्थकता भी है।

इतिहास, पुराण और अवदानसे चरित्रों और कथानकोंको ग्रहण करनेकी अपनी कठिनाई और जटिलता होती है। जहाँतक महाभारतके चरित्रों और कथानकको लेनेका प्रश्न था, वे स्वतः ऐसे प्रश्न और समस्याएँ प्रस्तुत करनेमें समर्थ थे जिनको आधुनिक सन्दर्भमें ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु भागवतके कृष्णका लीलामय व्यक्तित्व और राधाका स्वच्छन्द मुक्त भावनावाले-प्रेमियों तथा भक्तों द्वारा अनुभावित व्यक्तित्व रोमैण्टिक भावनाओं और आकाक्षाओंके अधिक अनुरूप है। राधाके व्यक्तित्वकी नितान्त मौलिक कल्पना युगके अनुरूप की जा सकती थी, यह आसान भी था, पर वह कनुप्रिया राधा नहीं हो सकती थी। परम्पराके चरित्रको लेकर उसे उससे विच्छिन्न कर देना कविकी असमर्थताके साथ काव्यानुभूतिके प्रतिकूल भी है।

भागवतके लीलामय कृष्णके व्यक्तित्वको सँभालना फिर एक बार आसान था, पर जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास और सूरदासकी राधाके आधारपर ऐसा चरित्र निर्मित करना जो आधुनिक भावबोधके स्तरपर प्रतिष्ठित किया जा सके, आसान नहीं था। और इस काव्यमें कृष्णकी अपेक्षा राधा ही प्रधान है, क्योंकि 'समस्या तक पहुँचनेका दूसरा बिन्दु' यह कनुप्रिया ही है। 'चरम तन्मयताका साक्षात्कृत क्षण' और 'इतिहासकी दुर्दान्त शक्तियोंकी निर्मम प्रक्रिया'के संघर्षको

झेलकर 'उद्घोषित महत्ताओंसे अभिभूत और आतंकित' हुए बिना अपनी कसौटी-पर समस्तको कसनेकी आग्रही राधाका व्यक्तित्व 'कनुप्रिया' में जिस रूपमें परिकल्पित है, वह 'सहज मनसे जीवन' जीनेवाला 'तन्मयताके क्षणोंमें डूबकर सार्थकता' पानेवाला है। पर इस परिकल्पित राधाके व्यक्तित्वसे राधाके परम्परासे ग्रहीत व्यक्तित्वकी संगति बैठा पाना इस काव्य-कृतिकी जटिल समस्या रही है।

परम्पराकी राधाकी भावाकुलता, प्रणयाकांक्षा, मिलनोत्सुकता, विरहवेदना और आत्मतन्मयता अपनी अलौकिकतामें भी इतनी प्रत्यक्ष और मांसल रही है कि उसके व्यक्तित्वके माध्यमसे तन्मयताके क्षणोंका विस्मरण तो व्यंजित हो पाता है, उनकी सार्थकता नहीं। भक्तिके क्षेत्रमें यह आत्म-विस्मरण अपने-आपमें सार्थक उपलब्धि माना जा सकता है, क्योंकि वहाँ समर्पणकी चरम परिणति प्रेमकी परम सार्थकता मानी जाती है। लेकिन प्रस्तुत सन्दर्भमें तन्मयताके क्षणोंकी सार्थकताका प्रश्न है और वह सार्थकता केवल तन्मयताकी स्थिति नहीं है, उसकी उपलब्धि है, अतः विस्मरण सार्थक नहीं हो सकता, तन्मयताका असम्पृक्त बोध उपलब्धिके रूपमें सार्थक होता है। 'कनुप्रिया'में राधाका चरित्र 'पूर्वराग' तथा 'मंजरी-परिणय'के खण्डोंमें अपनी भावविह्वलता, समर्पणकी आकांक्षा, परितृप्तिकी आतुरता, साक्षात्कृत क्षणोंका भय, संशय, उदासी और गोपन, प्रगाढ़ साहचर्य, रतिविलासकी अतृप्ति, प्रणय-संकेत तथा रीतनेकी सम्पूर्णताकी स्थितियोंमें (जो कैशोर्य-सुलभ मनःस्थितियाँ ही हैं) भी किसी स्तरपर प्रश्नशील तथा आग्रही रहा है। यह अवश्य है कि राधाके व्यक्तित्वके ये पक्ष इतने सशक्त और प्रभावशील हैं कि अनेक बार प्रश्न और आग्रह उनकी तन्मयतामें विलीन हो जाते हैं। स्वयं कवि इस बातके प्रति सचेष्ट है और इसी कारण आगे उसे कहना पड़ा है कि कनुप्रिया 'अपने अनजानमें ही प्रश्नके ऐसे सन्दर्भ उद्घाटित करती है जो पूरक सिद्ध होते हैं। पर यह सब उसके अनजानमें होता है, क्योंकि उसकी मूलवृत्ति संशय या जिज्ञासा नहीं, भावाकुल तन्मयता है।

कितने ही अनजानमें क्यों न हो, पर भावाकुल तन्मयतामें डूब जाना क्षण-की उपलब्धि नहीं है, उसके लिए इस तन्मयताकी भी सजगता आवश्यक है। इसलिए प्रथम चरणसे राधाकी किशोर मनःस्थितियोंमें प्रश्न और आग्रह सन्निहित है। 'पूर्वराग' के प्रथम दो गीतोंमें राधाकी भावविभोर मनःस्थितिका सूक्ष्म अंकन है, जिसमें वह अपने मन-प्राणोंमें अज्ञान प्रणय कामना करती है।

'मंजरी-परिणय' खण्डमें विकसित मनःस्थितियोंका अंकन है, पर संवेदनाका स्तर पहले खण्डसे भिन्न नहीं है, इसी कारण भारतीने भी इसे प्रथम चरणके अन्तर्गत माना है। साक्षात्कारके सुखमय क्षणोंके मधुर भय, अनजान संशय, आग्रह-भरे गोपन तथा निर्व्याख्या वेदना और उदासीसे अभिभूत राधाके मनमें एक चेष्टा बनी हुई है—'तुम्हारी जन्म-जन्मान्तरकी रहस्यमयी लीलाकी एकान्त सहचरी मैं।' साथ ही आम्र-मंजरियोंके नीचे यमुनाके तटपर गोधूली वेला कृष्णकी राधाकी आतुर प्रतीक्षा, कदम्बके नीचे पोईके फलके लाल रंगसे लाजसे धनुषकी तरह दोहरी होती राधाके पैरोंमें कृष्णका महावर लगाना और फिर रातके गहराने आनेपर राधाका उसी आम्र डालीको बाँहोंमें घेरे रोते रहना, पहले खण्डके समान ही वातावरण और भाव-बोध प्रस्तुत करता है।

राधाके मनका प्रश्न 'तुम मेरे कौन हो' में अधिक मुखरित हुआ है और इसी कारण आधुनिक संवेदनाकी प्रस्तावना इसमें देखी जा सकती है। यह कनु-प्रिया है जो शक्तिके संचरणमें निखिल पारावारमें परिव्याप्त होकर विराट्, सीमाहीन, अदम्य तथा दुर्दान्त हो उठती है और फिर कान्हके चाहनेपर वही अकस्मात् सिमटकर सीमामें बँध जाती है। यह व्याख्या पौराणिक सन्दर्भके निकट है, पर इसकी परिणति नये आयामको व्यंजित करनेमें समर्थ हुई :

> तुमने चाहा है कि मैं इसी जन्म में
> इस थोड़ी-सी अवधि में जन्म-जन्मान्तर की
> समस्त यात्राएँ फिर से दोहरा लूँ
> और इसीलिए सम्बन्धों की इस घुमावदार पगडण्डी पर
> क्षण-क्षण पर तुम्हारे साथ
> मुझे इतने आकस्मिक मोड़ लेने पड़े हैं

और ये सम्बन्धोंके मोड़ हैं, जिसमें कृष्ण कभी सखा, कभी बन्धु, कभी आराध्य, कभी शिशु, कभी दिव्य और कभी सहचर हो जाते हैं, और, राधा सखी, साधिका, बान्धवी, माँ, वधू और सहचरी बन जाती है। इन सम्बन्धोंकी स्थिति नयी नहीं है, पर इनका एक बिन्दुपर सन्तुलित होना और हर सम्बन्धको स्त्री-पुरुषके भाव-बोधके इसी स्तरपर स्थापित करना नया है।

अपनी भावनाओंके विकासके दूसरे चरण 'सृष्टि-संकल्प' में राधाके मनके प्रश्न और जिज्ञासा अधिक स्पष्ट हैं। उन्होंने सर्जन-प्रक्रियाके क्रीड़ा विलासमें नया

सन्दर्भ ढूँढ़ा है। 'सृजन-संगिनी' के रूपमें राधा कृष्णकी समस्त इच्छा और संकल्पके अर्थके रूपमें अपनेको पाती है, जिस संकल्पसे सृष्टि होती है, जो कृष्णके अस्तित्वकी अकेली सार्थकता है। और यह सृष्टि क्या है? निखिल सृष्टिको लीला-तनके रूपमें अनुभव करनेवाली राधाको सर्जनके अज्ञात रहस्य 'आदिभय' से आकुल करते हैं। उद्दाम क्रीड़ाकी वेलामें सर्जन-प्रक्रियामें परिव्याप्त अपने विराट् अस्तित्वको अनुभव करके भी राधा प्रश्नशील है: लीला-क्षणोंमें भी यह भय राधाको क्यों घेरे रहता है? लीला-केलि इच्छा है, संकल्प है, अतः उसका संशयाकुल और भयाकुल होना सहज है। इस प्रसंगको प्रणय-केलिके गहन सूक्ष्म सन्दर्भोंमें कविने अत्यन्त कोमलतासे अंकित किया है। प्रणयका अन्तिम उन्मेष 'केलिसखी' में व्यक्त हुआ है। यह भय तो जैसे केलिमें अधिक आवेगसे प्रेरित करनेके लिए ही हो। इस केलिमें शिथिल बन्धोंवाली राधा अधिकाधिक विसर्जित होती जाती है—एकमेक होनेकी उद्दाम आकांक्षाके साथ, जिसके अन्धे और उन्माद-भरे कसावमें कृष्ण भी व्याकुल हो उठते हों, जैसे :

> अथाह समुद्र की उत्ताल, विक्षुब्ध
> हहराती लहरों के निर्मम थपेड़ों से—
> छोटे से प्रवाल-द्वीप की तरह
> बेचैन—

और व्यक्तित्वकी उपलब्धिके इन्हीं क्षणोंमें राधा इतिहासको चुनौती देती है कि जबतक मैं अपने प्रगाढ़ केलि-क्षणोंमें अस्थायी विराम-चिह्न न दूँ, तबतक :

> कह दो समय के अचूक धनुर्धर से
> कि अपने शायक उतार कर
> तरकश में रख ले
> और तोड़ दे अपना धनुष
> और अपने पंख समेट के द्वार पर चुपचाप
> प्रतीक्षा करे—

अभीतक राधाके चरित्रमें उन प्रश्नों और जिज्ञासाओंका विकास ही हुआ है जिनके माध्यमसे कवि राधाके माधुर्य, आश्रयी और रोमैण्टिक भावाकुल व्यक्तित्व-को आधुनिक भाव-बोधके स्तरपर नये सन्दर्भोंसे युक्त कर सका है और नये

आयाम दे सका है। 'पर इतिहास' खण्डमें राधाके व्यक्तित्वका यही स अधिकाधिक उद्घाटित हुआ है। राधा विरह-वेदनामें जिस प्रकार माधुर्य भक्ति-का चरम उत्कर्ष पा सकी है, उसी प्रकार 'कनुप्रिया' विरहके अवसाद और कसकमें व्यक्तिकी उपलब्धि और इतिहासकी सार्थकताके संघर्षको झेल सकी है। यह समानान्तरता आकस्मिक नहीं है, यह राधाके संगठित व्यक्तित्वकी अपनी परिणतिके कारण ऐसा हुआ है। 'इतिहास' के अन्तरालमें राधा अपनी उप-लब्धिके क्षणसे दूर हट चुकी है, अब रीते हुए पात्रकी आखिरी बूंद-सा उसका तन और संशय शेष रह गया है। उसकी वेदनामें अनकहा उपालम्भ अनुगूंजित है कि कृष्णने लीलाभूमि और युद्धक्षेत्रके अलंघ्य अन्तरालको पार करनेके लिए उसे सेतु-भर माना है जो उनके चले जानेके बाद निर्जन और निरर्थक छूट गया है। अपनी पुरानी सुधियोंमें लीन राधाके मनमें बार-बार यह भाव उठता है कि अपनी बेसुधीके एक क्षणमें समस्त जगत्को लीन करनेका उसका दावा सच था या नहीं। यद्यपि इस क्षण उसके मनमें अपनी तन्मयताके क्षणोंकी उपलब्धिके विषयमें दुविधा है; पर उसके मनका विश्वास इस प्रश्नमें सन्निहित है :

> तुम्हारे महान् बनने में
> क्या मेरा कुछ टूटकर बिखर गया है कनु !

आगे राधा कुरुक्षेत्रके युद्धकी अमंगल छायाका अनुभव करती है और कृष्ण-की युद्धोन्मत्त सेनाओंको गुजरती देखकर उनकी भीड-भाडमें अपनेको और अपने प्यारको अपरिचित छूटा हुआ पाती है। युद्धकी इस भूमिकामें 'इतिहासका प्रश्न' मुखरित हो उठता है। एक बार यह मान लेनेपर भी कि व्यक्तिकी उपलब्धि, उसके क्षणकी तन्मयता, मात्र भावावेश है, कल्पना है, अर्थहीन आकर्षण है और यह मान लेनेपर पाप-पुण्य, धर्माधर्म, न्याय-दण्ड और क्षमा-शीलका दायित्व सत्य है, तो भी जिसने उस उपलब्धिकी सार्थकताका अनुभव किया है उसके लिए इस युद्धघोष, क्रन्दनस्वर, अमानुषिक घटनाओंवाले इतिहास-की सार्थकता समझ पाना कठिन है। व्यक्तिकी उपलब्धिकी सार्थकताके बिना दायित्वकी व्याख्या करनेवाले 'शब्द : अर्थहीन' हैं, इसीलिए राधा इन शब्दोंकी व्याख्याके स्थानपर कृष्णकी वाणीको अधिक महत्त्वपूर्ण मानती है, क्योंकि वह साक्षात्कार है। अगणित शब्दोंका मात्र अर्थ है – मैं, और इस 'मैं' के बिना इतिहास भी समझा नहीं जा सकेगा। 'समुद्र स्वप्न' के अन्तर्गत राधाने इसी

प्रश्नको व्यापक सर्जन-प्रलयके माध्यमसे रखा है। और यहींसे 'समापन' प्रारम्भ होता है जिसमें इस विकसित प्रश्नका समाधान व्यंजित है। दायित्वसे श्रान्त, क्लान्त और उदास कृष्ण जब राधा (व्यक्तित्व) को पुकारते हैं, तब वह सब छोड़-छाड़कर प्रस्तुत हो जाती है।

सवाल उठता है कि इतिहासकी दायित्वपूर्ण प्रक्रिया और व्यक्तिके चरम तन्मयताके क्षणोंके सामंजस्यकी कोई भावभूमि इस कथाकृतिमें क्या प्रस्तुत हो सकी है? किसी काव्यकृतिसे तार्किक निष्पत्ति तक पहुँचनेकी आशा करना संगत नहीं है। वह मनुष्यके जीवनके गहन और सूक्ष्म स्तरोंको उद्घाटित कर भावबोधको संवेदित करती है। पर प्रस्तुत काव्यमें अन्तर्निहित प्रश्नके उत्तरकी व्यंजनाकी आशा की जाती है, और जैसा कहा गया है व्यंजित है भी। कृष्ण राधाके माध्यमसे इतिहासको अर्थ दे सकेंगे, जीवनके प्रत्येक दिये गये क्षणकी स्वीकृति इतिहासकी सार्थकता है। व्यक्तिको अलग कर उसके (इतिहास) दायित्वका सारा बोध झूठा पड़ जाता है, अतः व्यक्तिकी उपलब्धिके साथ दायित्वकी भावना भी अर्थवान् हो सकती। यह तो है, पर राधाके चरित्रका विकास जिस भाव-स्तरपर हुआ है, वहाँ यह व्यंजना साफ़ उभर नहीं भी पायी है। एक ओर भक्तिकी दृष्टिसे राधाका समर्पण और दूसरी ओर राधाकृष्णका प्रकृतिपुरुषका रूपक, व्यक्तिको अपने व्यक्तित्वके सन्दर्भमें भी विस्मरणकी उस स्थितिमें पहुँचा देता है जहाँ वह इतिहास और उसके दायित्वसे पूर्णतया विच्छिन्न लगता है। क्षणकी तन्मयता विस्मरण नहीं, वरन् सजग उपलब्धि ही व्यक्तित्व-को वह आयाम दे सकती है, जिसमें इतिहास भी सार्थक हो सके।

आधुनिक काव्यके सम्बन्धमें भाषा, शैली और छन्दका प्रश्न इतना महत्त्व-पूर्ण और मौलिक है कि उसके साथ न्याय करनेके लिए विस्तार और किंचित् व्यापक सन्दर्भकी आवश्यकता है। 'कनुप्रिया' की भाषा सरल सहज होकर भी काव्य-भाषा है, एक प्रकारसे इस काव्यकी यही उपयुक्त भाषा है, क्योंकि उसके माध्यमसे कविने इस उदात्त तथा भावाकुल कथाको आधुनिक भावबोधके स्तर-पर व्यंजित किया है। काव्य जिस संवेदनके स्तरपर अवतरित होता है, भाषा उसीपर प्रस्तुत हो जाती है, क्योंकि भाषा जीवनकी प्रक्रियाका अंग है। भाषाके इसी रूपमें शब्दोंको नयी सार्थकता मिली है जिनसे भावबोधके नये स्तर उद्घाटित हो सकें। शब्दोंकी इस नयी व्यंजना-शक्तिने प्रतीक-योजना, चित्र-

मयता और अलंकरणके नवीन विधान प्रस्तुत करके भी इसी संवेदनमें सहयोग दिया है। इसी प्रकार आधुनिक कविने जिस सहज स्तरपर भाषाको स्वीकार किया है, उसी स्तरपर उसने अपने छन्दका आविष्कार भी किया है। इसको ग्रहण करनेमें कठिनाई इस कारण है कि यह प्रचलितसे भिन्न है। अनेक लोगों-को इसी कारण इस काव्यके पठित रूपमें और लेखक-द्वारा प्रस्तुत किये गये (श्रव्य) रूपमें अन्तर लगा है। यह स्थिति नये काव्य-मात्रकी है।

—रघुवंश

• कनुप्रिया : संवेदनाकी गहरी सचाई

भारतीकी 'कनुप्रिया' कुल मिलाकर एक छोटी, संक्षिप्त-सी कृति है। वह साधारण छन्द-बद्ध काव्योंकी अपेक्षा गद्यकाव्यके अधिक निकट है—कुछ-कुछ अँगरेजी 'गीतांजलि'की तरह। 'गीतांजलि'के अनुकरणमें, या उसकी प्रेरणासे, हिन्दीमें बहुत-से गद्यगीत लिखे गये; उनमें-से अधिकांश परब्रह्मके प्रति प्रणय-निवेदन रूप थे। अब प्रायः वे भुला दिये गये हैं। किन्तु 'कनुप्रिया' उन गद्य-गीतोंकी परम्परामें नहीं है। उसकी संवेदना कविकी निजी है, उसकी भाषा-भी अपना व्यक्तित्व है। एक तरहसे उसकी भाव-भूमि तथा चेतना इधरकी (प्रयोगवादी और नयी) कविताकी अपेक्षा छायावाद युगके कुछ अधिक निकट है। वैसे भी, वह एक रूमानी कृति है। रूमानी काव्यके अन्तर्गत भी दो प्रकार-की शैलियाँ होती हैं, एक वह जिसमें भावावेग या भावुकता उपस्थित चित्रोंपर हावी होती है; शैलीकी कविता कुछ इसी तरहकी है, विशेषतः उसकी कम सफल कविता। इसके विपरीत, वर्ड्सवर्थ तथा कीट्सका काव्य अधिक वस्तूनमुखी है। 'कनुप्रिया'की भाव-राशि प्रायः स्थिति-चित्रणमें अनुस्यूत है। उसमें कीट्सकी भाव-योजनाकी सघनता और वर्ड्सवर्थकी रहस्यात्मक एकतानता नहीं है। उसका मूल स्वर एक तरहकी तरल, सुकुमार गीतात्मकता है, जो अपना निराला व्यक्तित्व लिये हुए है। कुछ हद तक वह विद्यापति और रवीन्द्रकी कोमल संवेदनासे समानता रखती है।

प्रस्तुत लेखकको भारतीका 'अन्धा युग' ज़्यादा पसन्द नहीं पड़ा था, दो कारणोंसे। एक, उस नाटकमें मूल्योंके विघटनका पक्ष प्रधान है, जो अस्व-

त्थामा, गान्धारी आदि पात्रोंमें प्रबल अभिव्यक्ति पाता है : वहाँ मूल्यांक विधि-परक पक्षको प्रकट करनेवाला कोई सशक्त पात्र अवतीर्ण नहीं हो सका है। इस कमीका सम्बन्ध लेखकके दृष्टिकोण तथा विचारपक्षसे है। दूसरी कमी यह है कि उसमें कहीं-कहीं ऐसे संवाद नियोजित हुए हैं जो, एक शब्दमें, कमज़ोर हैं—यानी भावोंकी सघन अग्रगतिको हलके, कम रोचक या कम अर्थपूर्ण धरातलपर स्खलित कर देनेवाले हैं। 'कनुप्रिया' इस दूसरी कमीसे एकदम ही मुक्त है। उसमें सम्भवत: शुरूसे आखिर तक कोई भी अंश—शायद एक भी पंक्ति—अरोचक या निम्नस्तरीय नहीं है। यह कविकी प्रेरक अनुभूतिकी सम्पन्नता और उसकी रुचिकी असन्दिग्धताका प्रमाण माना जा सकता है। यों युगीन सार्थकता तथा कैनवेसकी विशालताकी दृष्टिसे 'अन्धा युग' निःसन्देह एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है।

विशुद्ध अन्वितिकी दृष्टिसे, सम्भवत:, 'कनुप्रिया'का 'पूर्वराग' अंश सबसे सफल है। कविमें विस्तारका लोभ नहीं है, उसने उतने ही भाव-सिक्त गीत लिखे हैं जितनोंके लिए वह उपयुक्त स्थितियाँ कल्पित कर सका है। ये परिकल्पित स्थितियाँ राधा और कृष्णके सम्बन्धको एक अभिनव परिवेश और रूप दे देती हैं, वे कविकी कल्पना-शक्तिका बढ़िया प्रमाण उपस्थित करती हैं। एक मित्रने शिकायत की कि राधाका व्यक्तित्व और उसका कृष्णसे सम्बन्ध पुराने कवियोंके हाथोंमें एक निश्चित स्वरूप पा चुके हैं, जिसे रूपान्तरित करनेकी चेष्टा कठिनता-से ही न्यूनाधिक सफल हो सकती है। लेकिन यह आपत्ति सही नहीं जान पड़ती। काव्य-साहित्यके अभ्यस्त पाठक सहज ही नयी रचनाके नये परिवेशकी कल्पना और उसके अनुरूप अपनी प्रतिक्रियाका नियन्त्रण कर लेते हैं।

'कनुप्रिया'की प्रगीत-चेतनाकी प्रधान विशेषताएँ हैं—निश्छल, सहज संवेदन-शीलता और सुकुमार, सूक्ष्म, रहस्याकुल भावस्पन्दन; उसकी शैली या व्यंजना-भंगीका प्रमुख तत्व नाटकीयता है। यहाँ नाटकीयतासे मतलब है परिवेशगत स्थितियोंकी गतिशीलता और उतार-चढ़ाव। कविके स्थिर-चित्र भी नाटकीय संकेतोंसे अनुविद्ध हैं—

मैंने कोई अज्ञात वन देवता समझ
कितनी बार तुम्हें प्रणाम कर सिर झुकाया
पर तुम खड़े रहे, अडिग, निर्लिप्त, वीतराग, निश्चल !
तुमने कभी उसे स्वीकारा ही नहीं !

और उसीमें आगे—

इस सम्पूर्ण के लोभी तुम
भला उस प्रणाम मात्र को क्यों स्वीकारते ?
और मुझ पगली को देखो कि मैं
तुम्हें समझती थी कि तुम कितने वीतराग हो कितने निर्लिप्त !

कृष्णकी कुटिल चतुरता और राधाके सहज भोलेपनका कैसा सटीक संकेत है ! भारतीकी शैलीमें नायिकाके चरित्रके अनुरूप सहजता, यानी नित्यप्रतिकी भाषाका स्वाभाविक पुट है, जो उसे छायावादी काव्यसे जुदा करता है। भाषाको कृत्रिम ढंगसे नयेपनका जामा पहनानेका प्रयास भी 'कनुप्रिया'में नहीं है—अपवाद 'जिस्म'-जैसे दो-एक शब्द हैं जिनके बदले आसानीसे दूसरे सरल घरेलू शब्द रखे जा सकते थे (जैसे 'देह')। कुल मिलाकर 'कनुप्रिया'की सहज सलोनी भाषा का अपना एकदम निजी व्यक्तित्व है, जो उसे प्रयोगवाद और नयी कविता दोनोंके संकीर्ण पड़ते हुए दायरोंसे अलग करता है।

'कनुप्रिया'की राधाकी मन-बुद्धि एक वय:सन्धिके आसपासकी निश्छल, स्नेह-स्निग्ध किशोरीकी जैसी जान पड़ती है। उसकी मृदु-कोमल प्रतिक्रियाओंमें आकर्षक स्वच्छता और मासूमियत है—और परिपक्व स्थिरताका अभाव। कहीं-कहीं वह कृष्णको भी कुछ उसी साँचेमें ढालकर देखती है। 'तुम मेरे कौन हो?' गीतमें बड़े स्वाभाविक और भोले ढंगसे वह कृष्णके प्रति अपने बदलते हुए भावोंको प्रकट करती है और अन्तमें क़सम खाकर कहती है कि 'कान्हा मेरा कोई नहीं है।' 'पूर्वराग'में नायिकाकी इन विशेषताओंका बड़ा ही मार्मिक, सटीक और संगत चित्रण हुआ है।

पुस्तकका 'सृष्टि-संकल्प' अंश पहले भागसे विसंगत-सा दिखाई पड़ता है, किन्तु उसमें भी राधाका वय:सन्धिक व्यक्तित्व पूर्ववत् प्रतिफलित है। विसंगतिके एहसासका मूल कारण दूसरा है; यहाँ कवि पिछले भागके स्निग्ध-सुकुमार मानवीय धरातलको छोड़कर एकाएक, राधाके द्वारा, यह स्मरण दिलाने लगता है कि कृष्ण मात्र चतुर प्रेमिक मनुष्य नहीं, बल्कि भगवान् हैं। इस प्रकारका पट-परिवर्तन आकस्मिक ही नहीं, काव्यके आन्तरिक तर्कसूत्र और प्रभावकी दृष्टिसे भी अवांछनीय बल्कि घातक है। और 'सृष्टि-संकल्प'के—जहाँ राधाने अथाह शून्यमें अनन्त प्रदीप्त सूर्योंको····जुगनुओंकी तरह रेंगते देखा है, और सम्पूर्ण

सृष्टिको मात्र कृष्णकी इच्छा घोषित किया है—'इतिहास' खण्डमें कृष्णकी अठारह अक्षौहिणी सेनाओंका उल्लेख कुछ कमज़ोर-सी चीज़ मालूम होती है। 'कनुप्रिया'का दार्शनिक निष्कर्ष निरन्तर वय:सन्धिके विचार-परिवेशमें रहनेवाली राधाकी मन-बुद्धिके अनुरूप ही है। सच यह है कि जहाँ 'कनुप्रिया'में अधिकांश गीत, विशेषत: 'पूर्वराग'में, अपने ढंगकी परिपूर्ण रचनाएँ हैं—सार्थक अन्विति और प्रभावगत ऐक्यसे अनुप्राणित—वहाँ 'सम्पूर्ण' काव्यके बड़े धरातलपर दृष्टि और प्रभावके ऐक्यकी उपलब्धि नहीं हो सकी है। मैं इस कमीको बहुत हद तक बौद्धिक विभावन और निष्पत्तिकी कमी समझता हूँ।

मैथ्यू आर्नल्डने कहीं कहा है कि वर्ड्सवर्थके युगके कवि वैसी सफल लम्बी रचनाएँ प्रस्तुत नहीं कर सके जैसी कि जर्मन कवि गेटेने की हैं—रूमानी कवि बड़े विचारोंकी परिकल्पना और निर्वाह नहीं कर पाते। क्या 'कनुप्रिया'की उक्त कमी का मूल कारण उसके रचयिताके मानसिक गठनमें रूमानी मनोवृत्तिका दबाव हो तो नहीं है? यह देखनेकी बात है कि 'अज्ञेय'की एकमात्र लम्बी कविता 'असाध्य वीणा'की मूल दृष्टि शुरूसे अन्त तक रूमानी है—अर्थात् प्रतिभाके प्रति एक अतर्कित पूजा-उपासनाकी भावना, जैसी कि शैली आदिमें मिलती है—

राजा सिंहासन से उतरे—
रानी ने अर्पित की सतलड़ी माल,
जनता विह्वल कह उठी 'धन्य !
हे स्वरजित् ! धन्य ! धन्य !'

'कनुप्रिया'में नर-नारीके प्रेम-सम्बन्धको चरम मूल्यके रूपमें प्रकल्पित करनेका प्रयत्न है; 'असाध्य वीणा'में प्रतिभा और कलाके प्रति चरम उपासना एवं पूजाका निवेदन है। उक्त कृतियोंमें अभीतक नये बुद्धि-युगकी चेतनाका सचेत अवतरण नहीं हो सका है। यदि इस सबके बावजूद 'कनुप्रिया,' विशेषत: उसका पूर्वार्द्ध, एक मोहक कृति लगती है, तो उसका कारण उसे अनुप्राणित करनेवाली संवेदनाकी गहरी सचाई और अन्विति ही है। साथ ही, भारतीकी चित्र-सामग्री और अलंकारोंमें एक स्पृहणीय ताजगी है।

सम्भवत: 'कनुप्रिया'का इतिहास-सम्बन्धी चिन्तन, और जीवनकी सम्पूर्ति या चरितार्थता-सम्बन्धी विचारणा, अधिक प्रभावशील बन जाती यदि मध्यभागमें 'सृष्टि-संकल्प'के बदले, जीवनके यथार्थका ईमानदारीसे पर्यालोचन करते हुए,

राधाके मन-बुद्धि और उसकी दृष्टिके परिपक्व होनेकी प्रक्रियाका वर्णन रहता। उस तरहकी प्रौढ़ दृष्टिसे सम्पन्न होकर ही वह कृष्णकी जीवन-प्रगति, उनके तथा अपने सम्बन्ध और स्वयं मानव जीवन तथा इतिहासपर अधिक विवेकपूर्ण निर्णय दे सकती थी।

'कनुप्रिया'की सौन्दर्य-संवेदना, अपने निखरे रूपमें, एक प्रकारकी सात्त्विक मासूमियत लिये हुए है। उसकी नायिका, शारीरिक भोगके प्रति विरक्त न होते हुए भी, बहुत-कुछ वासना-मुक्त एवं सरस-स्वच्छ प्रेममयी है। वह अन्त तक वय:सन्धिकालकी 'बावरी' और संसक्त मित्र या प्रेयसी बनी रहती है। 'कनुप्रिया'में शारीरिक सम्पर्कके संकेतोंकी कमी नहीं है—

तुम्हारे चन्दन कसाव के बिना मेरी देहलता के
बड़े-बड़े गुलाब धीरे-धीरे टीस रहे हैं

किन्तु उन संकेतोंमें एक प्रकारकी निर्द्वन्द्व स्वच्छता और सहजता है। वहाँ वासना अभी सचेत और कलुषित—द्वन्द्व भावनाकी अवगतिसे प्रश्नांकित या अनाश्वस्त, भले-बुरेके विमर्शसे सहचरित—नहीं बनी है। इसीलिए उसमें भोलेपनका कुँवारा आकर्षण है।

—देवराज

• •

इस वर्ष
साहित्य अकादमी-द्वारा पुरस्कृत साहित्यकार

पत्रिकाके पिछले अंकमें इस वर्ष (१९६५) साहित्य अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत कृतियों सम्बन्धी जानकारी दी जा चुकी है। अब यहाँ प्रस्तुत है उन पुरस्कृत-सम्मानित कृतियोंके सर्जक साहित्यकारोंका परिचय।

१ बंगला

बंगलाकी पुरस्कृत कृति 'स्मृति सत्ता भविष्यत' के कवि हैं बंगलाके विशिष्ट कवि, समीक्षक और शिक्षाविद् श्री विष्णु दे। श्री देका जन्म कलकत्तामें १९०९ में हुआ और शिक्षा भी वहीं सेण्ट पॉल्स कॉलेज तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयमें हुई। बादमें ये अँगरेज़ी साहित्यके प्राध्यापक नियुक्त हुए और आजकल सेण्ट्रल कॉलेज, कलकत्ताके अँगरेज़ी विभागाध्यक्ष हैं। श्री देकी कविताओंका पहला संग्रह १९३३ में प्रकाशित हुआ, तब उनकी आयु चौबीस वर्षकी थी। इस पहले संग्रहकी ही सराहना रवि ठाकुरने की थी, और यह सही भी है कि इस संग्रहसे कविका स्वतन्त्र व्यक्तित्व काफ़ी उजागर हुआ था।

आधुनिक बंगला काव्यके प्रवर्तकोंमें अन्यतम श्री विष्णु दे 'कल्लोल' और 'परिचय' गोष्ठियोंके माध्यमसे बंगलाके प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलनोंसे घनिष्ठ रूपमें सम्बद्ध रहे हैं, और बँगलाकी विशिष्ट साहित्यिक पत्रिका 'साहित्य पत्र'के जन्म-दाताओंमें भी हैं। काव्य और गद्यकी अनेक मौलिक कृतियोंके अलावा श्री देने पश्चिमके कुछ कवियोंकी कविताएँ भी अनूदित की हैं, जिनमें टी० एस० ईलियटकी कविताका अनुवाद विशेष रूपसे प्रशंसित हुआ है। ललित निबन्धकारके रूपमें भी श्री देने अनेक महत्त्वपूर्ण निबन्धोंकी रचना की है। श्री विष्णु दे अपनी काव्य-रचना मोहक प्रगीतोंसे प्रारम्भ कर, क्रमशः अधिकाधिक वैयक्तिक और परिष्कृत अभिव्यक्तिकी ओर अग्रसर हुए हैं—जिसमें सामाजिक अन्यायके प्रति उत्कट रूपसे सचेत समसामयिक मनकी व्यथित संवेदना अंकित हुई है।

● अँगरेज़ी

अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत अँगरेज़ीकी पुस्तक 'द ट्राइबल वर्ल्ड ऑव वेरियर एल्विन' के रचयिता—विशिष्ट नृतत्त्व-शास्त्री, जनसेवक और भारतीय आदिवासी जीवनसे सम्बन्धित अनेक उल्लेखनीय ग्रन्थोंके प्रणेता, पद्मभूषण स्व० डॉ० वेरियर एल्विनका जन्म सन् १९०२ में इंग्लैण्डके एक बिशपके घर हुआ था और आकस्मिक मृत्यु १९६४ में भारतकी राजधानी दिल्लीमें।

डॉ० वेरियर एल्विनकी शिक्षा-दीक्षा ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालयमें हुई थी, और वे अनायास ही इंग्लैण्डमें उच्चपद प्राप्त कर सकते थे। लेकिन अपने उत्कट आदर्शवाद और बौद्धिक कुतूहलके कारण वे भारतके प्रति आकर्षित हो गये। भारतमें पहले-पहल डॉ० एल्विन मसीही व्रतधारीकी भावनासे आये थे और पूना-के क्रिष्ट सेवा संघमें सम्मिलित हुए थे। कुछ ही दिनों बाद वे गान्धीजीके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए—गम्भीर रूपसे। उन्हें लगा कि भारतीय जनोंसे एकाकार होकर ही ईसामसीहका सच्चा अनुगामी बना जा सकता है। और इसीलिए उन्होंने चर्चसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया तथा मध्य भारतके एक आदि-वासी गाँवमें रहने लगे। तभीसे स्व० एल्विनने अपना जीवन आदिवासी भारतीयों-की सेवा और उनके कल्याणमें अर्पित कर दिया। उन्होंने सरल, अबोध और तथाकथित 'बर्बर' आदिवासियोंके जीवनका बड़ी गहराईसे अध्ययन किया तथा उनके रहन-सहन, रीति-नीति और जीवनके तमाम तथ्योंकी व्याख्या करते हुए कई उल्लेखनीय ग्रन्थोंकी रचना की। स्व० एल्विनने भारतकी नागरिकता तो ग्रहण की ही थी, एक भारतीय नारीसे विवाह भी उन्होंने कर लिया था। १९६१ में राष्ट्रपतिने उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधिसे विभूषित किया था।

● गुजराती

विशिष्ट विद्वान् निबन्ध-लेखक तथा गान्धीवादके प्रमुख व्याख्याकार श्री दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकरका जन्म सन् १८८५ में हुआ था। उनके चिन्तन-प्रधान निबन्धोंका संग्रह 'जीवन व्यवस्था' इस वर्ष साहित्य अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत हुआ है। फरग्युसन कॉलेज पूनासे शिक्षा समाप्त करनेके बाद काका साहेब कालेलकरने पहले तो अध्यापन-कार्य प्रारम्भ किया लेकिन तत्कालीन राजनीतिक क्रान्तिकारी कार्योंसे प्रभावित होकर उन्होंने 'साधु दत्तात्रेय' के रूपमें सारे देशका भ्रमण किया। इस दौरान उन्होंने कश्मीरसे नेपालतक हिमालयकी

पैदल यात्रा भी की। बादमें, जब वे शान्तिनिकेतनमें अध्यापन कार्य कर रहे थे, १९१५में, वे महात्मा गान्धीके सम्पर्कमें आये और अहिंसा तथा राष्ट्रीय पुनर्रचनाके सन्दर्भमें उनके सहयोगी बन गये। काका साहेबने कुछ दिनों गुजरात विद्यापीठके उप-कुलपति पदका भी भार सँभाला है।

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद काका साहेब राज्य-सभाके सदस्य मनोनीत हुए और १९६४ में राष्ट्रपतिने उनकी सेवाओंके सम्मानमें 'पद्मभूषण' की उपाधि प्रदान की। जन्मना मराठी होते हुए भी काका साहेबने गुजरातीको लेखनका माध्यम बनाया और अबतक वे लगभग अस्सी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका प्रणयन कर चुके हैं।

• हिन्दी

पुरस्कृत हिन्दी कृति 'रस-सिद्धान्त' के लेखक, हिन्दीके विशिष्ट समीक्षक डॉ० नगेन्द्रका जन्म अलीगढ़ जिलेमें सन् १९१५ में हुआ था। अपनी प्रारम्भिक शिक्षाएँ पूरी करनेके बाद नगेन्द्रजीने आगराके सेण्ट जॉन्स कॉलेजसे अँगरेज़ीमें एम० ए० किया और १९३७ में नागपुर विश्वविद्यालयसे हिन्दीमें एम० ए०। तत्पश्चात् दिल्ली कमर्शियल कॉलेजमें अँगरेज़ीके शिक्षक नियुक्त हुए और १९४७ में आगरा विश्वविद्यालयसे हिन्दी साहित्यमें डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। आकाशवाणीमें कुछ दिनों कार्य करनेके बाद नगेन्द्रजी सन् १९५५ में दिल्ली विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए, और सम्प्रति इसी पदपर हैं।

अनेक समीक्षा-ग्रन्थोंके रचयिता डॉ० नगेन्द्रने भी अपना साहित्यिक जीवन एक कविके रूपमें किया किन्तु जल्दी ही वे समीक्षाकी ओर प्रवृत्त हो गये। भारतीय और पाश्चात्त्य काव्य सिद्धान्तोंके गम्भीर अध्येता और विचारकके रूपमें डॉ० नगेन्द्र ख्यातिप्राप्त हैं।

• कन्नड़

अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत कन्नड़ भाषाकी कृति 'रंग बिन्नप' के रचयिता श्री एस० वी० रंगण्ण कन्नड़के विशिष्ट विद्वान्, समीक्षक और कविरूपमें विख्यात हैं। श्री रंगण्णका जन्म सन् १८९८ में हुआ था। अपनी शिक्षाएँ समाप्त करनेके बाद वे मैसूर विश्वविद्यालयके अँगरेज़ी विभागके अध्यक्ष और आचार्य नियुक्त किये गये। १९५४ में अध्यापन कार्यसे निवृत्त होनेके बाद रंगण्ण स्वतन्त्र रूपसे स्वाध्याय और साहित्य-रचनामें रत हैं।

श्री रंगण्ण सत्ताईस वर्षकी आयुमें ही मुक्त छन्द और गद्यमें चिन्तन-प्रधान और वर्णनात्मक प्रगीतोंकी रचना-द्वारा कन्नडके साहित्य-जगत्में प्रतिष्ठित हो गये थे। वैसे उन्होंने कन्नड़ और अँगरेज़ी—दोनोंमें ही साहित्यिक एवं समीक्षात्मक निबन्ध प्रस्तुत किये हैं।

● मलयालम

मलयालमकी विशिष्ट कवयित्री और अनेक महत्वपूर्ण कृतियोंकी लेखिका श्रीमती नालापाट्ट बालामणि अम्माका जन्म केरलके सुदूर ग्राम पुन्नयूरकुलममें १९०९ में हुआ था। काव्य-प्रेरणा उन्हें बचपनमें ही अपने मामा श्री नालापाट्ट नारायण मेननसे मिली, जो विख्यात कवि थे। मलयालम और संस्कृतकी शिक्षा उन्होंने घरपर ही ग्रहण की और आगे चलकर अँगरेज़ी अपने प्रयत्नोंसे सीखी।

श्रीमती बालामणि अम्माका पहला कविता संग्रह 'कूप्पुकई' सन् १९३० में प्रकाशित हुआ लेकिन उनके कवि रूपकी प्रतिष्ठा दूसरे संग्रह 'अम्मा' से हुई जो सन् १९३३ में प्रकाशित हुआ था। गृहस्थ जीवनके सुख और वात्सल्य तो बालामणिजीके प्रिय काव्य-विषय रहे ही हैं, कुछ कविताओंमें राजनीतिक तथा आध्यात्मिक प्रतीतियोंकी भी अभिव्यक्ति हुई है।

● मराठी

साहित्य अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत मराठी कृति 'व्यक्ति आणि वल्ली' के रचयिता—मराठीके प्रसिद्ध नाटककार हास्य-लेखक और अभिनेता श्री पु० ल० देशपाण्डे सन् १९११ में जनमे। बम्बई और पूना विश्वविद्यालयके स्नातक श्री देशपाण्डे बचपनसे ही साहित्य, नाटक और शास्त्रीय संगीतकी ओर प्रवृत्त हो गये थे। कुछ समय बेलगाँवमें मराठीके अध्यापक रहनेके बाद वे आकाशवाणी चले गये। किन्तु मन वहाँ भी नहीं रमा और फिर तो स्वतन्त्ररूपसे लेखन और रंगमंचकी ओर ही प्रवृत्त हुए।

नाटककारके रूपमें देशपाण्डेजीकी ख्याति न केवल मराठी साहित्य-जगत्में है बल्कि अन्य भाषाओंके क्षेत्रमें भी आपकी उपलब्धियोंका सम्मान है। बहुमुखी प्रतिभाके धनी श्री पु० ल० देशपाण्डेके साहित्यिक निबन्धों, रेखाचित्रों और एकांकियोंने मराठीमें नये प्राण फूंके हैं। गतवर्ष ही उन्हें राष्ट्रपतिने 'पद्मश्री' की उपाधिसे भी सम्मानित किया है।

• उड़िया

'उत्तरायण' : अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत उड़िया कृतिके रचयिता श्री वैकुण्ठनाथ पट्टनायकका जन्म कटकके बरम्बा ग्राममें सन् १९०४ में हुआ था। पटना विश्वविद्यालयसे शिक्षा प्राप्त करके वैकुण्ठनाथजी प्रादेशिक शिक्षा-सेवा कार्य करने लगे। १९५९ में वे विद्यालय निरीक्षकके पदपर नियुक्त हुए। और जल्दी ही वहाँसे भी अलग होकर स्वतन्त्र रूपसे काव्य-रचनामें प्रवृत्त हो गये।

वैकुण्ठजीको अपनी पहली ही काव्य-कृति 'काव्य-संचयन' से उड़िया काव्य-क्षेत्रमें प्रमुख स्थान मिल गया था। 'मुक्ति-पथे' नाटक भी वैकुण्ठजीने लिखा जिसको पर्याप्त सम्मान मिला है। 'उत्तरायण' उनकी दीर्घ अवधिमें लिखी गयी कविताओंका संग्रह है।

• पंजाबी

पंजाबीके विशिष्ट साहित्यकार, जो अब हिन्दीके भी उतने ही अपने हैं, श्री कर्तारसिंह दुग्गलका जन्म रावलपिण्डीके धमियाल नामक स्थानमें सन् १९१७ में हुआ था। पंजाब विश्वविद्यालयसे एम० ए० करनेके बाद श्री दुग्गलने आकाशवाणीको अपनी सेवाएँ अर्पित कर दीं और सम्प्रति आकाशवाणीके ही कर्मचारी प्रशिक्षण विद्यालयमें काम कर रहे हैं।

बारह वर्षकी आयुमें ही कवि-रूपमें श्री दुग्गलने अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया। लेकिन जल्दी ही कहानी और नाटक-रचनाकी ओर भी दुग्गलजी उन्मुख हुए तथा उनका पहला कथा-संग्रह १९४१ में प्रकाशित हुआ। अबतक श्री दुग्गलके कई आंचलिक उपन्यास, कहानी-संग्रह तथा नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी अनेक कहानियाँ अन्य भारतीय भाषाओंमें अनूदित हुई हैं और कुछके तो पश्चिममें भी रूपान्तर प्रस्तुत किये गये हैं।

• तमिष्

सन् १८९६ में तिरुमेलवैलिके विट्ठलपुरम् नामक स्थानमें जनमे तमिष्के विशिष्ट विद्वान्, लेखक और पत्रकार श्री पी० श्री० आचार्यकी कृति 'श्री रामानुजर' इस वर्ष साहित्य अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत हुई है। अपनी शिक्षाएँ समाप्त करनेके बाद श्री पी० श्री० आचार्यने कुछ दिनों पुलिस विभागमें कार्य किया किन्तु तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनसे प्रभावित होकर सरकारी नौकरी

छोड़ दी और स्वतन्त्र रूपसे पत्रकार बन गये। श्री आचार्यने अनेक वर्षों तक 'आनन्द विकटन'के सम्पादकीय विभागमें सफलताके साथ काम किया था। बीचमें ही वे तमिष् साहित्य और संस्कृतिके अनुशीलनमें प्रवृत्त हुए और उनका गम्भीर अध्ययन किया; जिसके परिणामस्वरूप अबतक श्री आचार्यने पचाससे अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना की है। इस समय श्री पी० श्री० आचार्य मद्रास राज्य शासन-द्वारा परिचालित योजनाके अन्तर्गत तमिष् संस्कृतिके इतिहासकी रचनामें संलग्न हैं।

● तेलुगु

'मिश्रमंजरी': इस वर्ष अकादेमी पुरस्कार प्राप्त तेलुगुके कृतिकार विशिष्ट कवि आचार्य रायप्रोलु सुब्बारावुका जन्म गुण्टूर (आन्ध्र प्रदेश) के समीपस्थ एक गाँवमें सन् १८९२ में हुआ था। संस्कृतकी प्रारम्भिक शिक्षा घरपर ही ग्रहण करनेके बाद कवि आचार्यने आगेकी शिक्षा बामटला हाई स्कूल और हैदराबादके निजाम कॉलेजमें प्राप्त की। तदनन्तर उन्होंने आजीविका का प्रारम्भ मद्रास-स्थित तेलुगु-विवरण कोश-कार्यालयसे किया। इनकी पहली कविता सन् १९०९ में प्रकाशित हुई और फिर अगले छह वर्षोंमें चार प्रगीत संग्रह प्रकाशित हुए; जिन्होंने आचार्य रायप्रोलु सुब्बारावुको तेलुगु साहित्य-जगत् के मूर्धन्य कवियोंमें प्रतिष्ठित कर दिया।

सन् १९१५ में ये शान्तिनिकेतन चले गये और दो वर्षों तक रवीन्द्रनाथ ठाकुरके सम्पर्कमें रहे और सन् १९२२ में उस्मानिया विश्वविद्यालयमें तेलुगु विभागके अध्यक्ष नियुक्त हुए। तत्पश्चात् १९४९ में श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपतिमें तेलुगु विभागके अध्यक्ष-पदपर चले गये। आधुनिक तेलुगु-काव्यके निर्माताओंमें अन्यतम रूपसे समादृत आचार्य रायप्रोलु सुब्बारावुने अबतक तेलुगु-साहित्य-जगत्को तीससे भी अधिक मौलिक तथा अनूदित कृतियाँ दी हैं।

● उर्दू

उर्दूके विशिष्ट कथाकार, उपन्यासकार और नाटककार श्री राजेन्द्रसिंह बेदी (जन्म सन् १९१५) का लघु-उपन्यास 'एक चादर मैली-सी' इस वर्ष साहित्य अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत-सम्मानित हुआ है। प्रारम्भमें कुछ दिनों डाक-विभागमें कार्य करनेके बाद श्री बेदी आकाशवाणीमें प्रविष्ट हुए और १९४८ में जम्मू

रेडियो स्टेशनके केन्द्र-संचालक नियुक्त हुए। सरकारी नौकरीसे बड़ी जल्दी ही ऊब गये और बम्बई आकर फ़िल्मी दुनियामें लेखक और निर्माता हो गये।

श्री बेदीने अपने साहित्यिक जीवनकी शुरूआत अँगरेज़ी कविता-लेखनसे की थी, पर शीघ्र ही वे पंजाबीमें लिखने लगे और फिर समर्थ रूपसे उर्दूमें। बेदीकी कहानियोंका पहला संग्रह 'दाना ओ दाम' १९३८ में प्रकाशित हुआ और तीन वर्ष बाद दूसरा संग्रह 'ग्रहन', जिसे उर्दू कहानीके इतिहासमें नया मोड़ माना गया है। इनके अलावा बेदीके नाटक-संग्रह और उपन्यास भी प्रकाशित हुए हैं।

● ●

राष्ट्रभारती
परिवेश और उपलब्धियाँ

यह स्तम्भ इसीलिए कि सहवर्ती भाषाओंके साहित्यकी दिनप्रतिदिन गतिविधि और उपलब्धियोंसे हिन्दी-जगत् परिचित हो

• बंगला साहित्यकी गतिविधि

गीता बनर्जी

साहित्यकी गति या प्रकृतिका निर्णय रचनाके माध्यमसे ही सम्भव है। आज बंगला भाषामें प्रतिदिन किस क़दर पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं यह थोड़ा भी सचेत होने पर देखा जा सकता है। लेखका उद्देश्य इस बीच प्रकाशित समस्त पुस्तकोंकी तालिका प्रस्तुत करना नहीं बल्कि बंगला साहित्यकी विभिन्न विधाओं-में आयी विशिष्ट कृतियोंसे पाठक परिचित हो—विशेष प्रयत्न यही है।

श्री जाह्नवीकुमार चक्रवर्तीकी कृति 'प्राचीन साहित्य ओ बांगालीर उत्तराधिकार' (दो खण्डोंमें प्रकाशित) इधरके प्रकाशनोंमें विशेष गिनी जायेगी। वास्तवमें श्री जान्हवीजी का यह शोध-प्रबन्ध बंगला साहित्यकी न केवल सामयिक उपलब्धि है वरन् अपने प्रकारकी अकेली विचारपूर्ण कृति है।

जैसा कि यह सर्वविदित ही है कि बंगलामें रचा गया व्यंग्य साहित्य काफ़ी ठोस और समर्थ है। भवानोचरण बन्द्योपाध्यायसे लेकर राजशेखर बसु (परशु-राम) तक अनेक व्यंग्यकारोंने महत्त्वपूर्ण व्यंग्य-कृतियाँ दी हैं। इधर प्रकाशित हुई बंगलाकी व्यंग्य कृतियोंमें ओंकार गुप्तकी 'एई तो व्यापार' विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। अनेक सामाजिक विसंगतियों—'शेयर मार्केट' 'वणिक् सम्प्रदाय' आदि पर ओंकर गुप्तकी पैनी दृष्टिने गहरी चोटें की हैं। अ-बंगालियोंके बंगला उच्चारण, कुछ व्यक्तियोंके 'मैनरिज़म' पूर्व बंगीय संलाप आदिके भी सजीव और

शिल्प-गुण-सम्पन्न चित्रण इस व्यंग्य-कृतिमें उपलब्ध हैं।

समकालीन बंगला कहानीके क्षेत्रमें श्री विमलकर अग्रगण्य माने जाते हैं। वास्तवमें वे आधुनिक लेखकोंमें भी आधुनिकतम हैं। विमल बाबूके सद्यः प्रकाशित कहानी-संग्रह 'मनोनयन'को इस बीच प्रकाशित बंगला कथा-संग्रहोंमें प्रतिनिधि कहा जा सकता है। यह विमल बाबूको प्रकाशित कहानियोंमें प्रतिनिधि कथाओंका स्व-संकलन है भी। इसकी सभी कहानियाँ बंगला साहित्यके पाठकोंमें काफ़ी चर्चित रही हैं। उनकी बहुचर्चित कहानी 'जननी' तथा 'अपेक्षा' भी इस संकलनमें सम्मिलित हुई हैं।

रवीन्द्र शिक्षा दर्शनके सम्बन्धमें श्री सुनीलचन्द्र सरकार प्रणीत 'रवीन्द्रनाथेर शिक्षा दर्शन ओ साधना' भी एक उल्लेखनीय कृति है। गान्धीजीके शिक्षा-दर्शनके साथ रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी शिक्षा-भावनाकी तुलनात्मक विवेचना भी इस पुस्तकमें है। विवेकानन्द और अरविन्दके साथ भी रवीन्द्रनाथके शिक्षा-दर्शनका तुलनात्मक अध्ययन इसमें प्रस्तुत किया गया है।

एक और उल्लेखनीय पुस्तक है सीतादेवीकी 'पुण्य स्मृति' जो कि पुनर्मुद्रित है। बाईस वर्ष पूर्व प्रकाशित रवीन्द्र-जीवन-परिचय सम्बन्धी यह पुस्तक अपने पहले संस्करणके समय ही बहुख्यात और सम्मानित हुई थी। इसमें गुरुदेव रवीन्द्रनाथका सजीव जीवन-परिचय दिया हुआ है। अनेक दुर्लभ चित्रोंसे युक्त इस पुस्तकके दूसरे संस्करणकी बंगला साहित्य-जगत्में वास्तवमें बड़ी अपेक्षा थी।

अन्तमें यहाँ अमरनाथ रायके ग्रन्थ 'भारत आमार'की चर्चा भी आवश्यक है। तेईस अध्यायोंमें विभक्त इस ग्रन्थमें अमरनाथ रायने भारतकी भौगोलिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियोंपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की है। निस्सन्देह यह कृति एक सन्दर्भ-ग्रन्थके रूप में बहुत उपयोगी प्रमाणित होगी।

● ●

विकासके पथपर
माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला

जैन साहित्यके अमूल्य-अनुपलब्ध ग्रन्थोंको
प्रकाशित करनेका प्रथम श्रेय सहज ही जिस
ग्रन्थमालाको प्राप्त है।

गोकुलचन्द्र जैन

माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाकी स्थापना स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्र हीराचन्दजी जौहरीकी पुण्य स्मृतिमें विक्रम संवत् १७९२ में की गयी थी। जौहरीजी जितने बड़े धनी थे उतने ही बड़े उदारचेता और सांस्कृतिक रुचिके व्यक्ति भी। जीवनमें उन्होंने क्या नहीं किया—बोर्डिंग हाउस, विद्यालय, छात्रवृत्ति फण्ड, परीक्षालय, श्राविकाश्रम—न जाने कितनी संस्थाएँ उनके मूर्तिमान् स्मारक हैं। माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला तो उनकी सामाजिक और सांस्कृतिक अभिरुचि और उपलब्धियोंकी स्मृतिमें उनके आत्मीय जनोंने स्थापित की। घोषणाके शब्द थे : 'स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द्र हीराचन्दजी जे० पी० के कृति नामको स्मरण रखनेके लिए निश्चय किया गया कि उनके नामसे एक ग्रन्थमाला निकाली जाये, जिसमें संस्कृत और प्राकृतके प्राचीन ग्रन्थोंके प्रकाशित करनेका प्रबन्ध किया जाये, क्योंकि यह कार्य सेठजीको बहुत प्रिय था।"

और इस संकल्पके साथ ग्रन्थमाला आरम्भ हो गयी। समाजसे तो इसे संरक्षण मिला ही, बम्बई विश्वविद्यालयसे भी चौदह हजारका साहाय्य प्राप्त हुआ। ग्रन्थमालाके कुशल सूत्रधार स्व० पण्डित नाथूरामजी 'प्रेमी' तो स्वयं जैसे व्यक्ति, नहीं, संस्था थे। उनके संचालनमें ग्रन्थमालाने छियालीस ऐसे ग्रन्थ निकाल दिये जो पहले-पहल प्रकाशमें आये। न्यायकुमुदचन्द्र—जैसे सहस्राधिक पृष्ठोंके ग्रन्थ भी वे अल्पतम साधनोंसे निकाल ले गये। इसके बाद भी ग्रन्थमालाका यह उद्देश्य

सुरक्षित रहा : "जितने ग्रन्थ प्रकाशित होंगे उनका मूल्य लागत मात्र रखा जायेगा।"

जैन साहित्यके अमूल्य अनुपलब्ध ग्रन्थोंको प्रकाशमें लानेका प्रथम श्रेय माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाको दिया जाना चाहिए। आजसे लगभग अर्द्ध शताब्दी पूर्व इस तरहके कार्यका प्रारम्भ करना निहायत कठिन था। कहते हैं—उन दिनों प्राचीन ग्रन्थोंको उनके संरक्षक सूर्यकी धूप भी नहीं देखने देते थे, आदमी की छाया तो दूर रही। कमसे कम जैन साहित्यके विषयमें तो यह सत्य था ही। अनेक प्रकाशित ग्रन्थ तो अब भी ग्रन्थ-भण्डारोंमें पड़े हैं।

संस्थाएँ लम्बी उम्रकी होकर भी बालक ही रहती हैं। माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके विषयमें भी यह सत्य है। छियालीस वर्ष पूरे होते-होते इसकी पहली प्रबन्धकारिणीके सभी सदस्य चल बसे। संचालक भी न रहे। और जैसे इतनी लम्बी उम्रकी यह बालिका अकेली हो गयी। 'प्रेमी'जी अपने जीवन-कालमें ही इसके भविष्यके विषयमें चिन्तित हो चले थे, और वह चिन्ता ग्रन्थमालाके वर्तमान प्रधान सम्पादक डॉ० आ० ने० उपाध्ये तथा डॉ० हीरालाल जैनसे छिपी न रही। 'प्रेमी' जी तो चले गये पर इन विद्वान् सम्पादकोंने उस बालिकाको उठाकर भारतीय ज्ञानपीठकी गोदमें दे दिया। संस्थापक साहू शान्तिप्रसाद जैन तथा अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनने उसे स्नेह और दुलारपूर्वक स्वीकृत कर लिया।

ज्ञानपीठके नये संरक्षणमें माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाने सैंतालीसवाँ ग्रन्थ अभी पिछले दिनों ही प्रकाशित किया है। न्यायशास्त्रके ग्रन्थसे ग्रन्थमालाका श्रीगणेश हुआ था और नये संरक्षणका प्रारम्भ भी न्याय-ग्रन्थ 'प्रमाणप्रमेयकलिका'से हुआ, जिसका सम्पादन न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी कोठियाने किया है। नये संरक्षण-संचालनमें ग्रन्थमाला अपने उद्देश्योंके अनुरूप ही नहीं उनसे भी आगे कार्य कर सकेगी, यह प्रत्यक्ष है क्योंकि स्वयं मातृसंस्था (ज्ञानपीठ) का उद्देश्य है: "ज्ञानकी विलुप्त अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्यका निर्माण।"

अभी कुछ दिनों पूर्व माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें एक और नया प्रकाशन आया है—जैन शिलालेख संग्रह : भाग ४। इसका संकलन-सम्पादन डॉ० विद्याधर जोहरापुरकरने किया है। इसके पूर्व तीन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हींकी

शृंखलामें यह एक नयी कड़ी है। पिछले तीन संग्रहोंमें १०३५ शिलालेखोंका संग्रह हुआ था। इस चौथे भागमें ६५४ और लेख संगृहीत हुए हैं। ये लेख ईसा पूर्व चौथी सदीसे लेकर अठारहवीं सदी तकके हैं। ४४७ लेख मैसूर प्रान्तके हैं शेष २०७ राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, आन्ध्र, मद्रास और केरलके हैं। ४६० लेखोंकी भाषा कन्नड है। शेष प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, तेलुगु और तमिलके हैं। प्रयोजनकी दृष्टिसे सब लेखोंको चार वर्गोंमें रखा जा सकता है। ८७ लेख जिन मन्दिरोंके निर्माण अथवा जीर्णोद्धारसे सम्बन्धित हैं, १२६ लेखोंमें जिन मूर्तियोंकी स्थापनाका वर्णन है, २०८ लेखोंमें मन्दिरों तथा मुनियोंको गाँव, जमीन, सुवर्ण आदि करोंकी आय आदिके दानका वर्णन है। इसके अतिरिक्त १३ लेखोंमें गृहनिर्माणका, ४ लेखोंमें आर्थिक व्यवहारोंका, ३ में साम्प्रदायिक समझौतेका तथा एकमें सामाजिक कुनीतिनिवारणका वर्णन है।

मूल, गौड, द्राविड, माथुर, यापनीय आदि जैन संघोंके विषयमें भी प्रस्तुत शिलालेखोंसे पर्याप्त जानकारी मिलती है। परिशिष्टमें सम्पादकने नागपुरके प्रतिमा लेख दिये हैं।

मुद्रण और प्रस्तुतीकरणकी दृष्टिसे प्रस्तुत पुस्तक पहलेके प्रायः सभी प्रकाशनोंसे विशेष है। मूल्य भी माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाकी परम्पराके अनुकूल ५५२ पृष्ठोंकी पुस्तकका केवल सात रुपया रखा गया है।

इस तरह भारतीय ज्ञानपीठके संरक्षणमें आनेके बाद माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें 'प्रमाणप्रमेयकलिका' और 'जैन शिलालेख संग्रह' : भाग ४ का प्रकाशन देखकर यह आशा की जा सकती है कि सुयोग्य संरक्षणमें यह ग्रन्थमाला और भी अधिक फलेगी-फूलेगी।

● ●

अक्षरोंका सेतु
कृतियोंका प्रतिक्रिया

लेखन-प्रकाशनके आयोजन-श्रमकी इकाई अधूरी रहेगी
जबतक पारखी पाठककी प्रतिक्रिया प्रकाशकके
पास होती लेखककी मेज़तक न पहुँचे

• जुलूस : फणीश्वरनाथ 'रेणु'
पुनर्रचना और पुनर्गठनकी मंगलमय अनुगूँज

'मैला आँचल'के बादसे ही फणीश्वरनाथ 'रेणु'ने लेखनका एक ऐसा स्तर क़ायम कर दिया है कि उनकी किसी भी परवर्ती कृतिके मूल्यांकनके सन्दर्भमें उनकी पहली कृतिका नाम अनायास ही आ जाता है, आता रहा है। लेकिन किसी भी लेखककी सर्वश्रेष्ठ कृतिको पैमाना बना लेनेके बाद उसकी अन्य सामान्य कृतियोंके प्रति उस सीमा तक न्याय नहीं हो पाता जैसा कि अन्यथा उसके हो जानेकी सम्भावना रहती है या साधारण स्थितिमें हो सकता है। 'मैला आँचल' के पश्चात् 'परती : परिकथा'ने आलोचकोंके आपसी मतभेदको गहराया था और उसे लेकर बहुत-से परस्पर विरोधी वक्तव्य और विचार सामने आये थे। 'दीर्घ-तपा' रेणुकी पिछली दोनों कृतियोंसे कुछ अलग हटकर थी; उसकी साहित्यिक उपलब्धि और कलात्मक स्तर भी उस बिन्दुको नहीं छू सके थे जिसे उन्होंने पिछले दो उपन्यासोंमें छुआ था और किसी भी नये और निर्मित होते हुए लेखकके स्वाभाविक विकास-क्रमके लिहाज़से जिसकी आशा की जा सकती थी और जिसकी अपेक्षा 'रेणु'से इसलिए और भी अधिक थी क्योंकि 'परती : परिकथा' और 'दीर्घतपा' के प्रकाशनके बीच कई वर्षोंका अन्तराल था। लेकिन सब-कुछके बावजूद 'दीर्घतपा'की कुछ निजी और मौलिक उपलब्धियाँ थीं और शायद

बहुत-कुछ यही कारण था कि कुछ लोगोंने उसे विश्व-साहित्यकी चीज तक कहा और घोषित किया।

'दीर्घतपा'के पश्चात् जब 'जुलूस' पढ़नेको मिला तो स्वाभाविक ही 'रेणु'की पिछली कृतियोंके संस्कार मनको स्पर्श करते रहे। लेकिन पुस्तकको समाप्त कर देनेके बाद की पहली प्रतिक्रिया यही थी कि स्वरूप-विश्लेषणके लिए तुलनात्मक संकेतों तक तो ठीक है लेकिन किसी भी पिछली कृतिके आधारपर ही उसके सम्पूर्ण मूल्यांकनकी बातसे कृतिके प्रति न्याय तो नहीं ही हो सकेगा, हो सकता है एक अस्वस्थ परम्पराके बीज भी अनायास ही बो दिये जायें। दूसरी कृतियोंकी भाँति 'जुलूस' भी रेणु की एक ऐसी कृति है जिसपर यदि उनका नाम न भी हो, और यदि उनकी कोई और कृति पढ़ी जा चुकी है, तो उसके लेखकको पहचाननेमें कोई दिक़्क़त नहीं होगी। लेकिन उसे लेकर यदि उनके विकास-सूत्रों-को खोजा जाये तो निराशा हो सकती है और निराशाकी यह प्रक्रिया यहींसे शुरू नहीं होती है बल्कि उसका आरम्भ-बिन्दु कहीं और पहले खोजना होगा। लेकिन मैं पहले ही कह चुका हूँ कि किसी भी कृतिके स्वतन्त्र मूल्यांकनके लिए वह ढंग अधिक वैज्ञानिक नहीं है। ऐसा नहीं है कि एक ही दिशामें क्रमबद्ध विकास करनेवाले लेखक होते ही न हों, लेकिन अधिकांशमें ऐसा ही होता है कि लेखक स्वयं ही सृजनके जो मान एकबार स्थापित करता है, आगे चलकर वह बहुधा उनका स्पर्श नहीं कर पाता। वैसी स्थितिमें उसके आगे दो मार्ग होते हैं—या तो वह अपनेको दोहराने लगता है या फिर अपना कोण बदल लेता है और अपने पूर्व-परिचित यथार्थको ही अलग-अलग खण्डोंमें समेटने लगता है। फणीश्वरनाथ 'रेणु'ने अपनेको दोहराया नहीं है; बादवाले इस दूसरे रास्तेकी ओर ही वह बढ़े हैं। पहले जहाँ वह किसी खण्डविशेषसे सम्पूर्णको उजागर करनेका आग्रह लिये थे वहाँ अब खण्डको अपेक्षाकृत और भी छोटे खण्डोंमें उन्होंने विभक्त कर लिया है और फिर स्वाभाविक ही था कि सम्पूर्णताको रेखां-कित-संकेतित करनेकी उनकी क्षमता भी उसी अनुपातमें कम हुई हो।

'रेणु'के उपन्यासोंमें कथानकका संगठनात्मक रूप नहीं मिलता है; 'जुलूस' में भी वह नहीं है। वह छोटे-छोटे खण्डोंको इस कौशलसे सजा देते हैं कि उसके पीछे किसी ठोस आधारका आभास होता है, जो यथार्थ नहीं है। जैसे बहुत-से मानक मालाका आकार बनाकर रख दिये गये हों—लेकिन यह समझकर कि वे

किसी मज़बूत अदृश्य डोरेमें पिरोये हुए हैं, स्पर्शका साधारण-सा आग्रह भी उन्हें बिखेर दे सकता है। 'जुलूस'में कोई कथानक नहीं है। संक्षिप्त-सी भूमिकामें लेखकने स्वयं स्वीकार किया है कि जीवनके राज-पथपर निकलनेवाले इस बहुरंगी जुलूसको उमने एक सुसज्जित बॉलकनीसे देखनेका प्रयास किया है। अपने परि-चित अंचलके साधारण लोगोंकी रोज़मर्राकी सहज-सामान्य बातोंको ही उसने अभूतपूर्व कौशलसे सजा भर दिया है। कौशल घटनाओंमें नहीं है, चरित्रोंमें भी उतना नहीं है जितना कि उस सबको नियोजित करनेके ढंगमें है। पूर्वी बंगालके विस्थापितों और शरणार्थियोंको लेकर 'जुलूस' शुरू होता है और जैसे-जैसे यह जुलूस आगे बढ़ता है आस-पासके और भी बहुत-से चेहरे उसमें शामिल होते चलते हैं। सब मिलकर वे चेहरे कहींके भी परिचित चेहरे हो सकते हैं।

'जुलूस'के बहुत-से चेहरोंमें कुछ चेहरे ऐसे भी हैं जो वाक़ई महत्त्वपूर्ण और आकर्षक हैं, दरअसल उन कुछेक चेहरोंके लिए ही 'जुलूस'की पूरी योजना है—एक सौ सतासी पृष्ठोंकी मानसिक यात्रा है। वास्तवमें वे ही साध्य हैं जो अपने-को उजागर करनेके लिए आप ही यहाँ-वहाँ साधन जुटा लेते हैं। शुरूके कुछ पृष्ठोंको पढ़नेके बाद ही लगने लगता है कि हम किसी आर्ट-गैलेरीमें जा खड़े हुए हैं और अपने स्थानसे जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, एक नया चेहरा देखनेको मिलता है जो अपने रंग-रूपमें पिछले हर चेहरेसे अलग है। और मैं समझता हूँ कि चरित्र-चित्रणका यह जीवन्त रूप ही 'रेणु'की सफलताका सबसे बड़ा रहस्य है। पवित्रा, तालेवर गोड़ी, पहलवान रनवीर सिंह, मुसम्मात ठकुराईन, गोपाल पाइन, जयराम सिंघ और इनके अतिरिक्त भी बहुत-से परिचित-अपरिचित चेहरे—सबको 'रेणु'ने बहुत आत्मीयतासे तराशा है। उनकी इस पैनी तराशके पीछे जहाँ सामाजिक परिवर्तनोंका जीवन्त अहसास है वहीं व्यक्तिको उसके सम्पूर्ण अन्तर्बाह्यमें उपस्थित करनेवाली तलस्पर्शी अन्तर्दृष्टि भी। चरित्रोंको स्पष्ट करनेके लिए वे अनावश्यक बोझिल तफ़सीलोंका सहारा नहीं लेते हैं। 'रेणु'के संकेतोंके पीछे कुछ ऐसा सघन रचाव होता है जो व्यक्तिको उसके परिवेशसे ऐसे हाँक देता है कि उन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता। यही कारण है कि उनके अन्य उपन्यासोंकी भाँति 'जुलूस'में भी व्यक्ति तो मिलते ही हैं, उनका जीवन्त परिवेश भी मिलता है और वे प्रायः ही ऐसे एकम-एक होकर मिलते हैं कि उनको अलग करके देखना अकसर मुश्किल होता है।

'रेणु'के शिल्पमें कुछ ऐसा है जो उसे एक निजता देता है। अपने अंचल विशेष के हर रेशे और कणसे उनका परिचय और लगाव है। विस्तार वहाँ भले ही न हो, या फिर वह क्रमशः कम होता गया हो, लेकिन उसकी गहराईको लेकर कोई शिकायत ग़लत और बेमानी होगी। भाषाको तो वह इस क़दर निजता दे बैठे हैं कि उसे लेकर बहुधा ही आरोपों–आपत्तियोंकी आवाज़ें आयी हैं। भाषाकी यह निजता और संस्कार बहुत-कुछ अभिव्यक्तिको सीमित कर लेनेकी क़ीमतपर मिलते हैं। भाषाके इस निजी रूपके साथ कीर्तनके बोल हैं, लोकगीतोंकी धुनें हैं, शब्दोंकी कुछ ऐसी सहज भ्रष्टता और परिवर्तित उच्चारण हैं कि यह सारी चीज़ें मिलकर जो कुछ बनाती हैं वह 'रेणु'का इतना अपना होता है, सारी अच्छाइयों और बुराइयोंके साथ, कि उसका अनुकरण या तो असम्भव है या फिर अनुकरण-की प्रक्रियामें ढलकर वह ऐसा अनाकर्षक हो उठता है कि अनुकरणका सारा लोभ ही अर्थहीन हो जाता है। शिल्पके तौरपर पूर्व-दीप्ति 'रेणु'की प्रिय चीज़ है। 'जुलूस'में इन खण्डचित्रोंके माध्यमसे पवित्राका चरित्र बड़े कौशलसे उभारा गया है- बचपनमें उसके माता-पिताके सम्पर्ककी अनुभूतियाँ क़ासिम और विनोदकी भली-बुरी यादें आदि सारा कुछ। 'रेणु' बड़े कौशलसे वर्तमानका कोई सूत्र पकड़ लेते हैं जो कहीं अतीतको छूता और बाँधता है और तब साधारणसे एक झटकेसे ही वह अतीत निरावरण होकर वर्तमानसे जुड़ जाता है। सन्ध्या जब हरि यादवको लाया हुआ इत्र लगाकर पवित्राके पास आती है तो उसे तुरन्त एक झटका-सा लगता है। लखनऊका आतर !–और बड़े कौशलके साथ 'रेणु' क़ासिमके सम्पर्कमें बीते उसके अतीतको खींच लाते हैं। इस इत्रकी गन्ध कुछ ऐसी घुस गयी है पवित्राके नासापुटोंमें कि फिर भले ही सन्ध्या नहाकर आये, पवित्रा उसे अपने साथ नहीं सुला सकती। और सन्ध्या बिचारी भौंचक्की-सी सोचती रह जाती है कि : दीदी ठाकुरनकी बातकी भी गन्ध लगती है !!

लेकिन जहाँ 'जुलूस'की घटनाएँ, यदि ये शब्द उसके कार्य-व्यापारके लिए ठीक हैं तो, और पात्र अति-सामान्य और अति-परिचित हैं, वहीं कहीं-कहीं उनका नियोजन एक ऐसे अतिरंजित धरातलपर हुआ है कि उनका महत्त्व अनायास ही बहुत सीमित हो उठता है। तालेवर गोड़ी-जैसे मुजस्सिम किसी यथार्थके टुकड़ेमें से तराशा गया हो लेकिन पवित्राके प्रति उसका आकस्मिक भाव-परिवर्तन, बिना किसी मनोवैज्ञानिक उतार-चढ़ावके, 'रेणु'के सारे किये-करायेको ले डूबता है।

विनोद और नरेश वर्माके साम्यका संयोग भी उपन्यासका दुर्बल पक्ष है। और फिर 'दीर्घतपा'की वेला गुप्त हो या 'जुलूस'की पवित्रा, सामाजिक विकारके प्रतिरोधका माद्दा किसीमें भी नहीं है। वेलाको लेकर तो किसी हद तक यह भी कहा जा सकता है कि उसके वैसा करनेसे, प्रतिक्रियावादी सामाजिक शक्तियोंके सक्रिय विरोधके अभावमें, उनके घृणित रूपके प्रति एक पैनी कचोट पैदा होती है और उसका वर्तमान रूप उपन्यासके सम्पूर्ण धरातलसे बहुत-कुछ एकाकार हो सका है। लेकिन पवित्राके साथ ऐसी क्या मजबूरी थी? अभिशप्त होनेका एक अर्थहीन अहसास क्या उसके भटकावको और गहराता नहीं है? और फिर अन्तकी जो सामाजिक परिणति उसे मिली है—'मैं अपनी सत्ताको इस समाजमें विलीन कर रही हूँ....लोक-सांस्कृतिक समाजके गठनके लिए....'उसकी व्यक्तिगत आशा-आकांक्षासे उसका मौलिक विरोध कहाँ प्रकट हो सका है?

लेकिन यूँ फणीश्वरनाथ 'रेणु'के 'दीर्घतपा'के बाद 'जुलूस'का महत्त्व इस लिए और भी अधिक है क्योंकि 'दीर्घतपा'में जहाँ नैतिक-सामाजिक मूल्योंके स्खलनकी भयावह तस्वीर है वहाँ 'जुलूस'का धरातल निर्माणपरक है और उसमें समाजकी पुनर्रचना और पुनर्गठनकी मंगलमय अनुगूँज है।....

—मधुरेश

• प्रेत : मूल—इब्सेन, अनु० — नेमिचन्द्र जैन

एक महत्त्वपूर्ण कृतिका सफल अनुवाद

'घोस्ट्स' उन्नीसवीं सदीके महान् नारवेजियन नाटककार हेनरिक इब्सेनकी एक प्रमुख नाट्य कृति है। इस अनुवाद ('प्रेत') से काफ़ी पहले भी इब्सेनकी कृतियाँ 'पिलर्स ऑव सोसायटी' (समाजके स्तम्भ) तथा 'डौल्स हाउस' (खिलौनाघर) हिन्दीमें एक सशक्त लेखनी-द्वारा अनूदित होकर आ चुकी हैं। और अब नेमिचन्द्र जैनका यह अनुवाद भी इसी परम्परामें किया गया एक सफल प्रयास माना जायेगा।

नारवेने उन्नीसवीं सदीके अन्तिम चरणमें दो विख्यात साहित्यकार विश्वको दिये : इब्सेन तथा ब्योर्न्सन। परम्परासे समझौता कर लेनेके कारण ब्योर्न्सन अपने

समकालीनोंमें अधिक प्रतिष्ठित हुआ, नोबेल पुरस्कार भी पाया। किन्तु परम्पराके प्रति विद्रोही होनेकी वजहसे इब्सेन पश्चिमी यूरोपके तत्कालीन शुद्धतावादियोंके बीच लांछित होनेपर भी, बादको न केवल सराहा गया, बल्कि शॉ-जैसे नाटककार तथा नाट्य-साहित्यकी अभिनव यथार्थवादी धाराओंका प्रेरणास्रोत बना। हिन्दी समस्या-नाटकोंका भी अल्पकालिक उन्मेष प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपमें निस्सन्देह इब्सेनसे प्रभावित था। हिन्दीमें भी अच्छे नाटक लिखे गये हैं और वे, अपनी भिन्न विषय-वस्तुओंके साथ, फॉर्ममें वही रुझान क़ायम रखे हुए हैं, जिसे समस्या-नाटकोंने प्रतिष्ठित कर दिया है।

जहाँतक इस अनुवादकी बात है—कथोपकथनकी अनुवाद-भाषा काफ़ी चलती हुई है और इब्सेनके पात्रोंका सही प्रतिनिधित्व करती है। फिर भी जगह-जगह, भाषाको आम बनानेके फेरमें नेमिचन्द्रजी धड़ल्लेसे उर्दू शब्दावली देते गये हैं जो प्रचलित हिन्दी शब्दोंकी जगह छेंक लेते हैं। पाठक आश्चर्य ही करता रह जाता है कि जो पात्र अश्लील, विरुद्ध, व्यस्त, कृतज्ञ, आध्यात्मिक आदि शब्दोंका प्रयोग करते हैं वे कहीं-कहीं ऐसे बोलते हैं मानो उन्होंने एक भी हिन्दी शब्द न व्यवहृत करनेकी शपथ ले ली है। 'विवादास्पद' न कहकर 'बहसतलब' ('डिबे-टेब्ल'के लिए) और 'अनैतिकता' न कहकर 'बदकारी' ('इम्मॉरिलिटी'के लिए) कहना इसके प्रमाण हैं। यद्यपि यह बात मानी जा सकती है कि चालू ढंगके नाटकीय संलापोंकी अनुवाद-भाषामें शब्दावलीकी एकरूपता काफ़ी सतर्क रहकर ही निभायी जा सकती है, फिर भी यह आशा अनुभवी अनुवादक—वह भी नाट्यक्षेत्रसे संलग्न अनुवादक—से जरूर की जाती है। वैसे हम यह कह सकते हैं कि भाषा यथास्थान बड़ी सजीव है, विशेषत: जब मिसेज ऐल्विंग अपनी भावनाओंके मानस-प्रेतोंका आतंक वर्णन करती हैं अथवा जब पादरी मेण्डर्सके उनकी 'आदर्शों' पर बहस होती है।

कुल मिलाकर यह एक बड़ी बात है कि नेमिचन्द्र जैनके इस अनुवादमें मूल नाटकका प्रवाह कहीं बाधित हुआ नहीं लगता। पुस्तकके आवरणपर दिया भाऊ समर्थका चित्र उनकी एक स्वतन्त्र कृति होते हुए भी नाटककी मूल भावना-पर बड़ी चस्पा बैठती है।

और अन्तमें एक बात प्रकाशकीय वक्तव्यके बारेमें। विश्वके सभी प्रसिद्ध

प्रकाशक 'फ्लैप' पर दिये गये परिचयात्मक वक्तव्यको इतने संजीदे ढंगसे रखते हैं कि मूल ग्रन्थका सारांश बताता हुआ वह पाठकोंको बौद्धिक रूपसे उत्तेजित करता है। केगनपॉल, अनविन्, मैकमिलन्स आदि इसका उदाहरण हैं। नेपथ्य-उद्घोषणकी-सी शैली इसमें ले आना ठीक नहीं, विशेषत: किसी विदेशी लेखक अथवा क्लासिकको सामने रखते हुए।

—आनन्दभैरव शाही

• चिन्तककी लाचारी : माखनलाल चतुर्वेदी

परिस्थितियोंपर बोली हुईं वरेण्य पंक्तियाँ

श्रीयुत माखनलाल चतुर्वेदी युग-निर्माता कवि ही नहीं; उनके व्यक्तित्वके अन्य पहलू भी हैं—यद्यपि उनका कवि सर्वाधिक सशक्त व सफल है। उनके अन्य स्वरूपोंपर उनका कवि पूर्णरूपसे छाया हुआ है। काव्यके अतिरिक्त अन्य विधाओंमें निर्मित उनके रचनात्मक साहित्यपर कवित्व अर्थात् भावात्मकताका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। वे पत्रकार हैं, विचारक हैं, भाषणकर्त्ता हैं, निबन्ध-कार हैं, नाटककार हैं। हिन्दी-गद्यमें अभिनव शैलीके जनकके रूपमें उनका महत्त्व अक्षुण्ण है। यदि किसी कविकी श्रेष्ठताका मापक उसके द्वारा लिखित गद्य है तो यह कथन श्री माखनलाल चतुर्वेदीपर बड़ा सही उतरता है। हिन्दी-गद्यके महान् निर्माताओंमें उनका नाम अमर है। उन्होंने हिन्दी-गद्यको समृद्ध ही नहीं किया है; उसे विशिष्ट शैली भी दी है। विचार-प्रकाशनकी उनकी भंगिमा नितान्त मौलिक है—अत्यधिक रोचक, आकर्षक, अलंकृत एवं प्रभावी।

'चिन्तककी लाचारी' उनके प्रमुख भाषणोंका महत्त्वपूर्ण संकलन है। ये भाषण समय-समयपर विशिष्ट अवसरोंपर दिये गये थे। इन, भाषणोंके समय भिन्न-भिन्न हैं तथा वे भिन्न स्वभाव और स्तरके जन-जीवनके सम्मुख उपस्थित किये गये थे। स्वयं वक्ताके शब्दोंमें, "पहले तो कभी-कभी कुछ भाषण ऐसे स्थानोंपर भी दिये गये हैं जहाँ केवल शालाओंके विद्यार्थी अथवा भोले-भाले देश-वासी रहे हैं, जहाँ विचारों और चिन्तनका विश्लेषण किसी अँगरेजीको लैटिन बना देने-जैसी भूल होती है क्योंकि जो स्तर प्रत्यक्ष था उसे भूलकर खयालोंपर चढ़ जानेका मर्कटत्व कुछ शोभता नहीं था, सम्भव भी नहीं था। साथ ही

परिस्थितियोंपर बोली हुई ये पंक्तियाँ जाने किस समयके लिए थीं और आज उनका कुछ उपयोग भी है कौन जाने ?" (भूमिका पृ० २)।

'चिन्तककी लाचारी' में सब चौदह भाषण संकलित हैं जो सन् १९२६ से सन् १९५८ तक अर्थात् बत्तीस वर्षकी अवधिका अन्तराल लिये हुए है। यह काल आधुनिक भारतका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काल है। राजनीतिक एवं सामाजिक, सांस्कृतिक-साहित्यिक क्षेत्रोंमें इस अवधिमें देशमें युगान्तरकारी परिवर्तन हुए हैं। यह काल दूरगामी प्रभाव उत्पन्न करनेवाले अनेक आन्दोलनोंको अपनेमें समेटे हुए है। अनेक समाज-सुधारकों, राजनीतिज्ञों व विचारकोंका आविर्भाव इस कालमें भारतमें हुआ। राजनीतिक स्वाधीनताका संग्राम, तथा सांस्कृतिक क्षेत्रमें वैचारिक संघर्ष इस युगके प्रबुद्ध जन-जीवनके अंग रहे हैं। माखनलालजीने अपने व्यक्तित्वके अनेक पहलुओंसे इस कालका बहुमुखी नेतृत्व किया है। राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने और हिन्दी-साहित्यको दिशा देनेमें उनका योगदान आज भलीभाँति आँका जा सकता है। भारतीय स्वाधीनता-संघर्षको मुखरित करने तथा उसे शक्ति पहुँचानेमें अन्य भारतीय भाषाओंकी तुलनामें हिन्दी सबसे आगे रही है। कहना न होगा, यह सब वह माखनलाल-जैसे सरस्वती-पुत्रोंकी कर्मठता व प्रतिभाके बलपर ही सम्पन्न कर सकी। माखनलालजी हिन्दीकी राष्ट्रीय काव्य-धाराके अग्रगण्य कवियोंमें-से हैं। राष्ट्रीय स्वाधीनता व एकताकी भावना उनके राष्ट्रीय-काव्यके माध्यमसे भी प्रसारित हुई; पुष्ट हुई। अनेक बलिपन्थियों के वक्तव्य व संस्मरण इसके प्रमाण हैं। भारतीय जन-मानसको उत्तेजित व प्रेरित करनेमें माखनलालजी सिद्धहस्त हैं। वस्तुतः उन्होंने हिन्दी समझनेवाले विशाल भारतीय जन-समुदायके हृदय-लोकपर शासन किया है। यह सफलता अद्भुत है, चमत्कारी है, वरेण्य है। 'चिन्तककी लाचारी' में वक्ता माखनलाल चतुर्वेदीजी वाणीके जादूगरके रूपमें उपस्थित हैं। भाषा जैसे उनकी अनुचरी है। भावावेगके साथ उसके रंग गहरे हलके होते चलते हैं। परिष्कृत भाषामें ओजस्वी अभि-व्यंजन, गहन-गंभीर विचार-प्रकाशन, सरल-तरल मधुर अनुरोध निवेदन; सभी सहज अवतरित हैं।

विषयकी दृष्टिसे 'चिन्तककी लाचारी' अनेक पक्षोंको धारण किये हुए हैं। अपने समयके अनेक ज्वलन्त साहित्यिक प्रश्नोंको वक्ता लेखकने इन भाषणोंमें उठाया है। युग-धर्मके प्रति जागरूकतामें माखनलालजी अपनी सानी नहीं रखते।

युग-धर्मकी पृष्ठभूमिपर वे साहित्यिक प्रश्नोंका समाधान खोजते हैं। यही कारण है कि वे अपने युगको प्रभावित कर नयी पीढ़ीका मार्ग-दर्शन कर सके। उनका प्रगतिशील चिन्तन युग-धर्मका पालन तो करता ही है; अपनी प्राणवत्ता और कलात्मक अभिधानके कारण चिरजीवी भी हो उठा है। इन भाषणोंमें माखन-लालजीने अधिकतर साहित्य, भाषा, समाचार-पत्र, साहित्यिक संस्थाओं आदिपर अपने विचार व्यक्त किये हैं।

साहित्यके सम्बन्धमें माखनलालजीकी धारणा बड़ी उदात्त है। उसे उन्होंने व्यापक दृष्टिकोणसे देखा है। विषय-संकीर्णता उन्हें प्रिय नहीं। व्यक्ति और समाजके अभ्युत्थानका साधन है—साहित्य। एतदर्थ साहित्यकारका दायित्व भी उतना ही महान् है। साहित्यकारके लिए मौलिकता अनिवार्य है। माखनलाल जीने सूझ अथवा मौलिकताके महत्त्वको बड़े सशक्त रूपमें प्रस्तुत किया है। सूझके अभावमें वे साहित्यकारको रसोइयेके स्तरपर ले आते हैं। ऐसे तथाकथित साहित्यकारोंके प्रति व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं, "जिन्हें साहित्य-निर्माणको नहीं, केवल साहित्य परोसनेकी आदत है, वे महापुरुष हो सकते हैं, किन्तु साहित्यिक नहीं।....दूसरेकी वस्तुको कला-पूर्वक परोसनेके रसोइयेपनको भी आप अपनी मौलिकता न कहें।...."

माखनलालजीकी एक दुर्बलता है, जो उनके इन भाषणोंमें जगह-जगह व्यक्त हुई है—और वह है, उनकी शृंगार-रसके प्रति अनुदारता। इसका कारण युगीन प्रभाव हो सकता है। तत्कालीन समाज आदर्शवादी भावनाओंसे अनुप्राणित था। नैतिक नियमोंको कट्टरतासे पालन करनेका उद्घोष हो रहा था। ऐसी स्थितिमें नारी और शृंगारके प्रति समाज-चेता कवि उन्मुख नहीं हो सकते थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी-युगीन ही नहीं, परवर्ती छाया-वादी कवियोंमें भी यह भावना द्रष्टव्य है। द्विवेदी-युगमें यदि नारी, प्रणय और शृंगारका बहिष्कार किया गया तो छायावादी युगमें नारीके प्रति संकोच प्रदर्शित हुआ। रूप, सौन्दर्य और प्रेमकी अनुभूतियाँ अमांसल व सूक्ष्म रूपमें ही अभिव्यक्ति पा सकीं। माखनलालजी कुछ तो गान्धीवादी प्रभावके कारण तथा कुछ राष्ट्रीय काव्य-धाराके पुरस्कर्त्ता होनेके कारण शृंगार-वर्णनसे बचते रहे तथा ऐसे साहित्यको समाज-कल्याणके लिए घातक समझते रहे। ऐसी रचनाओंको उन्होंने रसीले साहित्यकी संज्ञा दी है। वास्तवमें, रसीले साहित्य

से उनका अभिप्राय अश्लील साहित्यसे नहीं है; प्रत्युत घोर शृंगारिक भावनाओंसे है। नारीको वे 'केवल चढ़ती उम्रकी विलासिनी' बनाये जानेके पक्षमें नहीं। वे नहीं चाहते कि इस प्रकार साहित्यकार नारीके साथ खिलवाड़ करें। ऐसे साहित्यके प्रशंसकोंकी मनोभावनाओंको उन्होंने 'भिनकनेवाली मक्खियाँ' कहा है। रसीला साहित्य उनके निकट 'ज़हरकी खैरात' है; खतरेका व्यापार है। स्थूल शारीरिक प्रेम व शृंगारकी भावनाओंसे आगाह करते हुए वे लिखते हैं, 'केवल जवानीके भिनकते बे-इख़्तियार क्षणोंको लिखना ही उचित न होगा।' प्रणय-व्यापार चित्रित करनेवालोंको बड़े तीखे अन्दाज़में वे कहते हैं, 'क्या नारीसे केवल अपरिपक्व तरुण आवेगोंकी प्रेरणा मिलती है? हम अपनी दुर्गन्धित अतृप्तिका विश्वकी जननीपर यह आरोप क्यों करते हैं कि वह प्रियतमके रंगमें केवल विषय-सुख ढूँढ़ती है।'' उन्होंने बड़े सन्तुलित ढंगसे एक स्थलपर लिखा है, ''मैं मीठे विचारोंके खिलाफ़ नहीं हूँ। मीठे विचार देना 'भी' साहित्यकारका कर्त्तव्य है, लेकिन मीठे विचार देना 'ही' नहीं। हमारे साहित्यिक मिठासको मर्यादा देते हुए साहित्य-निर्माण करें। विकारोंका मक्खियोंसे भिनभिनाता कुम्भीपाक नरक न बनायें।'' तभी कालिदासकी प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं, ''किन्तु शृंगार-रसका इतना मस्त गायक संस्कृति और शीलके किनारोंके बीच स्नेहकी धाराको बहाकर ले जाता है, यह देखकर अचम्भा हुए बिना नहीं रहता।'' पर भड़कीली भावनाओंको वे किंचित् भी सहन नहीं करते। ऐसे साहित्यको नष्ट कर देना ही उनकी दृष्टिमें उचित है; क्योंकि ऐसा साहित्य समाजको सर्वनाशकी ओर सहज ही ले जा सकता है। पर, प्रेम-भावनाओंकी मर्यादित अभिव्यक्तिका भी विरोध करनेके कारण माखनलालजीका शृंगारिक साहित्यके प्रति दृष्टिकोण अनुदार और कड़ा ही कहा जायेगा। इसमें दो मत नहीं, साहित्यमें अश्लीलताके लिए कोई स्थान नहीं।

माखनलाल चतुर्वेदीजीने साहित्यको समाज-सापेक्ष स्वीकार किया है। उन्होंने वैयक्तिकताको महत्त्व नहीं दिया। प्राचीन साहित्यके प्रति उनके क्रान्तिकारी विचारोंका समाहार इस प्रकार है, 'प्राचीन साहित्य, हृदयका सन्तोष बनकर भले रह ले, वह लोक-जीवनकी ग्राम-समस्याओंको नहीं सुलझा सकता।' स्पष्ट है, साहित्य लोक-जीवनसे सम्पृक्त है। उसे युगीन समस्याओंके समाधान भी प्रस्तुत करने हैं तथा लोक-रुचिका समुचित ध्यान रखना है। कालकी पृष्ठ-

भूमि चुननेमें साहित्यकारको अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए। सामयिकताकी अवहेलना अक्षम्य है। युगका प्रतिबिम्ब कलाओंपर अंकित होता ही है। 'आजका साहित्यिक जबतक आजकी समस्याएँ नहीं लिखेगा तबतक समाज उसके साथ नहीं रह सकता।' पर साथ ही, यह भी आवश्यक है कि 'वह क्षणिक लहरों और परिस्थितियोंसे ऊपर उठकर बोले।' सामयिकताके प्रति कर्तव्य-निर्वाह सतही साहित्य-लेखनका पर्याय नहीं है। न तेजस्विता ही साहित्यमें अनगढ़ कलाका दूसरा नाम है। 'उसमें राष्ट्रकी धमनियोंको छूनेवाली ज्योति, प्रेमकी उन्मादकारिणी लहर और चरित्रकी तपोपूर्ण आत्मा होनी चाहिए।' ऐसा सामयिक साहित्य ही शाश्वत होता है अन्यथा वह समाचारोंसे पहले ही मर जाता है। साहित्यिक कृतियोंमें भाव, विचार, कल्पना एवं कलाकी निहिति अनिवार्य है। इन तत्त्वोंकी उपेक्षा करके कोई भी सामयिक विषयसे सम्बद्ध कृति साहित्य कहलानेका दावा नहीं कर सकती। १३वें अखिल भारतीय साहित्य-सम्मेलनके अध्यक्षीय अभिभाषणमें साहित्यके प्रचार-प्रसारके सम्बन्धमें विधिवत् एक विस्तृत योजनाका प्रारूप भी प्रस्तुत करते हैं। साहित्य और समाज अन्योन्याश्रय हैं। वे अटूट हैं। ऐसे स्थलोंपर माखनलाल चतुर्वेदीजीका व्यक्तित्व एक साहित्यिक नेताके रूपमें प्रस्फुटित हुआ है।

'चिन्तककी लाचारी' में संकलित अनेक भाषणोंमें भाषापर भी विचार किया गया है। राष्ट्रभाषाके स्वरूपपर माखनलालजीके विचार आज विशेष महत्त्वके हो उठे हैं, भले ही वे वर्तमान जटिल सन्दर्भोंमें अभिव्यक्त न किये गये हों। उनकी सार्थकता आज भी है; प्रत्युत कहीं-कहीं तो पहलेसे भी अधिक। हिन्दीकी प्रकृति सारल्यकी ओर पायी जाती है। 'हिन्दीका दायरा इसलिए बढ़ा कि वह राष्ट्रकी वाणी होनेकी सरलता रखती है।' हिन्दी चिरकालसे भारतकी राष्ट्रभाषा रही है; यद्यपि राजभाषाका पद उसे स्वातन्त्र्योत्तर युगमें ही मिला। हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेका कार्य अज्ञात रूपमें ही हुआ; सहज आवश्यकतावश। उसके लिए कोई प्रयत्न नहीं किये गये। योजनाएँ नहीं बनायी गयीं। यह कार्य सोहार्द्रसे सम्पन्न हुआ। हिन्दीको देशव्यापी भाषा बनानेमें सन्तोंका योगदान प्रमुख है। सन्तोंने हिन्दीको सम्पूर्ण देशमें फैलाया। चतुर्वेदीजीके शब्दोंमें, "भारतमें एक जाति रही है, जो एक भाषाको तीर्थ-यात्रियोंके द्वारा दक्षिणसे उत्तर और उत्तरसे दक्षिण तक पहुँचाती रही है।....उन्हें सन्त कहते थे। "यह

भाषा थी हिन्दी। "इसके बचपनके दिन सन्तोंकी जीभकी गोदमें दुलारसे बीते हैं, सन्तोंकी क़लमपर खेलके इसने तारुण्य पाया है, और सन्तोंकी अखिल भारतीय यात्राओंमें, अखण्ड भारतकी वाणी बननेका इसे अवसर प्राप्त हुआ है।" व्यापारियों और शासकोंने भी हिन्दीके प्रसारमें योग दिया; इसमें सन्देह नहीं। पर, हिन्दीको जो गौरव और महत्त्व सन्तों द्वारा प्राप्त हुआ वह अद्वितीय है। हिन्दी इसी कारण संस्कृतके समान पूत बन सकी। हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाओंके परस्पर सम्बन्धोंके बारेमें माखनलालजीके विचार समन्वयवादी, प्रगतिशील एवं उदार हैं। वे 'भाषाका गृह-कलह' कदापि पसन्द नहीं करते। उनके विचार नितान्त स्पष्ट हैं। उर्दू, संस्कृत और अँगरेज़ी भाषाओंकी स्थिति एवं उपादेयताके सम्बन्धमें भी यत्र-तत्र प्रसंगानुसार विचार व्यक्त किये गये हैं; जो व्यावहारिकतापर आश्रित हैं। उर्दू और संस्कृत शब्दोंके बहिष्कार करनेवालोंसे वे कहते हैं, 'यदि विचारोंको बोलनेवालोंके पास पहुँचाना है, तो उत्तर भारतमें घूमती राष्ट्रवाणीसे उर्दू शब्दोंका तिरस्कार न हो सकेगा, और दक्षिण भारतमें प्रवेश करती राष्ट्रवाणीसे संस्कृत शब्दोंको देश-निकाला नहीं दिया जा सकता।' निश्चय ही, माखनलालजी किसी पूर्वाग्रहसे ग्रस्त नहीं हैं। वास्तविकताको ध्यानमें रखकर ही उनका चिन्तन आकार लेता है; इसी कारण वह बुद्धि और तर्कको बड़ी सुगमतासे प्रभावित करता है। उसमे न भावुकता है, न बौद्धिक एकांगिता।

हिन्दी-पत्रकारिताके क्षेत्रमें माखनलालजीकी सेवाएँ अविस्मरणीय रहेंगी। पत्रकारिताका उच्च-आदर्श स्थापित करनेवालोंमें वे अग्रगण्य हैं। राजाश्रय व सेठाश्रयसे मुक्त श्रमजीवी पत्रकारके रूपमें उन्होंने हिन्दीमें उदात्त परम्पराका सूत्रपात किया है। 'पत्रकारिता देशसेवाके लिए' – यह उनका मूलमन्त्र है। अपने सिद्धान्तोंपर अटल आस्थाके साथ सम्पादन-कार्यमें वे रत रहे हैं। पत्रकारिताके क्षेत्रमें एक अडिग चारित्रिक प्रतिमान उन्होंने स्थापित किया है। वे पत्रकारके उत्तरदायित्वोंसे भलीभाँति परिचित रहे हैं। उनका कथन है, "समाचार-पत्रोंके सेवकको अपनी क़लम तलवारसे कहीं अधिक सावधानीसे उठानी पड़ती है।" पत्रकारिता उनके लिए न व्यवसाय है, न शौक़ और न स्वार्थ-साधनका अंग। उनकी दृष्टिमें पत्रकार वही है, जिसका जीवन पत्र और सम्पादन-कलापर ही अवलम्बित है। पत्रकारिताका जो निकृष्ट स्तर देखनेमें आता है,

उनका विरोध उन्होंने सदा किया। वे कहते हैं, "मैं व्यक्तिगत आक्रमणको बुरी चीज मानता हूँ, और ज्ञानके ऐरावतपर गाली-गलौज़के रूपमें अथवा द्वेषपूर्ण बातोंके रूपमें म्युनिसिपैलिटीका कूड़ा-कर्कट ढोया जाना पसन्द नहीं करता।" वे समाचार-पत्रको ज्ञान और घटनाओंका नियन्त्रक व संचालक मानते हैं। हिन्दी-पत्रोंकी स्थितिपर 'चिन्तककी लाचारी' में विचार किया गया है। माखन-लालजीको सर्वाधिक अखरनेवाली बात जो दिखाई दी है वह है देशी भाषाओंके समाचार-पत्रोंकी जूठन-समेटना। अँगरेजी पत्रोंके मत अधिकतर उद्धृत किये जाते हैं। देशी भाषाओंके समाचार-पत्रोंके सम्पादकोंमें भी वस्तु-निर्माणकी क्षमता होनी चाहिए; मात्र वस्तु परोसना ही उनका कार्य नहीं है। सुदूरके समाचारोंके अनुवाद-मात्र देकर सन्तुष्ट हो जाना अच्छी व प्रभावी पत्रकारिता नहीं है। स्थानीय और आस-पासके समाचारों व घटनाओंका विवरण भी उसमें होना चाहिए। इसीमें सम्पादककी जागरूकता और निर्माण-क्षमता निहित है। भाषाके बारेमें भी वे स्पष्ट लिखते हैं, "समाचार-पत्रोंकी भाषा जनताकी भाषा होनी चाहिए।" इस प्रकार 'चिन्तककी लाचारी' में समाचार-पत्रोंके सम्बन्धमें भी माखनलालजीने अनुभवोंपर निर्मित विचारोंको सविस्तर व्यक्त किया है। उनसे इस सबकी अपेक्षा भी थी। यही कारण है कि पत्रकार-संघों व परिषदों-द्वारा आयोजित अधिवेशनोंमें वे प्रमुख वक्ताके रूपमें आमन्त्रित किये गये हैं। उन संस्थाओंमें दिये गये भाषण 'चिन्तककी लाचारी'में संग्रहीत हैं। निःसन्देह, 'चिन्तककी लाचारी' अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंपर प्रस्तुत मौलिक विचारोंसे समृद्ध है। उसके विचार और विचारक दोनों वरेण्य हैं।

—महेन्द्र भटनागर

● ●

हम विषपायी जनम के

स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
का
काव्य-संकलन

• •

प्रस्तुत काव्य-संकलनकी यह विशेषता है कि नवीनजीका समस्त अप्रकाशित काव्य-साहित्य इसमें आ जाता है। उनकी राष्ट्रीय और सर्वोत्कृष्ट प्रणय-रचनाएँ तो इसमें सम्मिलित हैं ही, विज्ञ पाठकोंकी उत्सुकता और जिज्ञासाका विषय 'दोहावली' और 'मृत्युधाम' भी संग्रहीत हुई हैं। अब प्रस्तुत है नया दूसरा संस्करण।

मूल्य १६.००

• •

नयी कृतियाँ
ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित

जो भारतीय साहित्य-जगत्में अनूठी और
अपूर्व हैं, और इसीलिए यह अपेक्षा
भी कि आप इनसे परिचित हों।

• नये प्रतिमान पुराने निकष : लक्ष्मीकान्त वर्मा

हिन्दी समीक्षापर जितने आरोप लगाये जाते हैं वे सच या सचके निकट नहीं है—यह कैसे कहा जाये ! जैसे, सर्जनकी नयी अभिव्यक्तिके साथ उसके मूल्यांकनकी समस्या भी उठती ही है। और तभी नये प्रतिमानोंको विकसित करने, पुराने और प्रतिष्ठित निकषोंको व्याख्या तथा उनकी सीमाओंके निर्धारण-की बात भी जरूरी हो जाती है। यह विशेष रूपसे इसलिए भी कि वास्तवमें यदि कुछ 'नया' है तो उस 'नये' को 'पुराने' के समक्ष—आमने-सामने, 'एन्काउण्टर'के रूपमें आना चाहिए।

साहित्य-चिन्तनकी अपनी मान्यताएँ भी हिन्दीमें अबतक कहाँ थिर हो पायीं। नये मूल्योंका आभास मात्र ही मिल रहा है, और प्रतिष्ठित पुराने मूल्यों-का खोखलापन स्पष्ट दिखाई तो देता है, पर वह जीवनसे छूट नहीं रहा है—अतः विभ्रमकी इन स्थितियोंके बीच यह कृति-साहित्य, कहें तो नवलेखनके, सर्जन, आस्वादन और मूल्यांकनके विविध सन्दर्भोंको दूर तक आलोकित करनेका एक सार्थक नव-प्रयत्न है : साहित्यिक और आलोचनात्मक लेखोंका संग्रह 'नये प्रतिमान : पुराने निकष'—तथ्यतः पठनीय एवं संग्रहणीय। मूल्य : ७.००

• मुरदा सराय : शिवप्रसाद सिंह

देखे हुएके भीतरसे अदेखेको देखने-समझनेकी शक्ति, वस्तुओंके सही सन्दर्भ और उनके उलझावोंको निबेरनेका विवेक, विविध जीवन-खण्डोंके आधारपर पूरे

'पैटर्न' को संकेतित करनेकी क्षमता, सामान्य ज़िन्दगीको गहराईसे अनुभव करने की वह संसक्ति जो ज़िन्दगीके अछूतेसे अछूते कोनेको प्रकाशित कर दे—ये सब कुछ मिल-जुलकर एक ऐसे मानसका निर्माण करते हैं जो बारीकसे बारीक स्पन्दनों को भी अंकित कर लेता है। 'मुरदा सराय' ऐसे ही अंकनों और धड़कनोंका 'बैरोमीटर' है। यही कारण है कि इन कहानियोंमें ज़िन्दगी पुनःकथित नहीं हुई है, वह पुनरुज्जीवित है, पुनर्भुक्त है!

प्रस्तुत है नयी हिन्दी कहानीके विशिष्ट कथाकार शिवप्रसाद सिंहकी नयी कहानियोंका नवीनतम संग्रह 'मुरदा सराय'—रोचक और संग्रहणीय।

मूल्य : ४.००

● प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी : रूपान्तर एवं संकलनकर्ता : दिनकर सोनवलकर

हिन्दीकी एक सहोदरी भाषाके आधुनिक काव्यका इस प्रकारसे हिन्दीमें प्रस्तुतीकरण कदाचित् यह पहला प्रयास है, — जो समकालीन मराठी कविता (१९४०-१९६२) की विविध प्रवृत्तियोंको रेखांकित करता है और प्रतिनिधि रचनाकारोंके कृतित्वकी झाँकी, एक बानगी, हिन्दी पाठकोंके सामने उपस्थित करता है। सब १८ समकालीन मराठी कवियोंकी चुनी-चुनी ९० कविताओंका हिन्दी रूपान्तर यहाँ प्रस्तुत है। साथमें डॉ० प्रभाकर माचवेकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका भी।

मूल्य : ४.००

● भारतीय इतिहास : एक दृष्टि : डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

इतिहासकी यह एक नयी लीक है, नयी दृष्टि है। भारतवर्षके समूचे इतिहास, विशेषकर उसके अतीतकाल और मध्यकालको यदि सही और सन्तुलित परिप्रेक्ष्य में देखना है तो इतिहासकी इस दृष्टिको भविष्यके इतिहास-लेखनमें समाविष्ट करना ही होगा। भारतीय इतिहास और भारतीय संस्कृतिकी प्रेरक घटनाओं और पूरक इतिवृत्तके ज्ञानके लिए यह पुस्तक अनिवार्य। परिवर्द्धित दूसरा संस्करण।

मूल्य : १०.००

• लेखनी बेला : वीरेन्द्र मिश्र

हिन्दीकी रसवन्ती गीतधाराके कवियोंमें विशिष्ट स्थान प्राप्त प्राणवान् कवि श्री वीरेन्द्र मिश्रकी चुनी हुई ऐसी नयी कविताओंका संग्रह जो भाव, रस और ओजमयताके कारण तो बाँध ही लेती हैं, छन्दशिल्पके कारण भी महत्त्वपूर्ण हैं। संग्रहमें कविकी प्रसिद्ध रचना 'देश' भी सम्मिलित है। अब प्रस्तुत है नये रूपमें संशोधित परिवर्द्धित दूसरा संस्करण—लोकप्रियताका अकाट प्रमाण !

मूल्य : ३.००

• देशान्तर : रूपान्तर एवं संकलनकर्त्ता : डॉ० धर्मवीर भारती

'देशान्तर'–अर्थात् इक्कीस पाश्चात्त्य देशोंकी 'एक सौ इकसठ' कविताओंकी हिन्दी छायाएँ। मूल कविताएँ उन कवियोंकी हैं जो विश्वमें 'आधुनिक काव्य-बोध' के निर्माता कहे जायेंगे और साथ ही जो अपनी-अपनी भाषाके सर्वश्रेष्ठ कवि गिने-माने जाते हैं। बड़ी बात यह कि यहाँ उन कवियोंकी प्रतिनिधि कवि-ताएँ प्रस्तुत हैं। हिन्दीमें अपने प्रकारकी सर्वप्रथम प्रामाणिक कृति—अब नये दूसरे संस्करणमें।

मूल्य : १२.००

• चाँदका मुँह टेढ़ा है : गजानन माधव मुक्तिबोध

स्व० मुक्तिबोधकी कविताओंका यह प्रथम और एकमात्र संग्रह हिन्दी काव्य-की नयी प्रखरता, क्षमता और युग-बोधकी सचेष्टताका ही प्रयोग नहीं, नयी उपलब्धियोंका भी मानक है। ये कविताएँ इसलिए भी हैं कि इन सशक्त शब्द-रेखाओंमें आयी अपनी छविके यथार्थसे सारा समाज परिचित हो और उस यथार्थ-की पीड़ाके साथ उसके संकल्प-स्वरको भी ग्रहण करे। नया द्वितीय संस्करण।

मूल्य : ८.००

• हरिवंश पुराण : मूल—आचार्य जिनसेन, सं० अनु०—पं० पन्ना-लाल साहित्याचार्य

जैन-साहित्यमें श्री कृष्णकी प्रिय एवं प्रेरक कथाका वर्णन करनेवाले इस ग्रन्थमें सम्पूर्ण हरिवंशका परिचय तथा जैनधर्म और संस्कृतिके उपादानोंका स्पष्ट

विवेचन तो किया ही गया है, भारतीय संस्कृति और इतिहासकी भी बहुविध सामग्री भरी पड़ी है।

मूल्य : १६.००

● **मयणपराजय चरिउ : मूल—कवि हरिदेव, सं०-अनु०—डॉ० हीरालाल जैन**

मदनपराजयकी उपर्युक्त कथावस्तुको अपभ्रंशमें निबद्ध करनेवाला एक विशिष्ट काव्य। हिन्दी-अँगरेज़ी प्रस्तावना, हिन्दी अनुवाद तथा परिशिष्ट आदि सहित। पृष्ठ संख्या सुपर रॉयल ८८ + ९०।

मूल्य : ८.००

● **जीवन्धरचम्पू : मूल—महाकवि हरिचन्द्र, सं०-अनु० — पं० पन्नालाल साहित्याचार्य**

सरल गद्य और पद्यमें निबद्ध वह जनप्रिय कथा जिसने मध्ययुगके अनेक साहित्यकारोंको संस्कृत, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड़, गुजराती, मराठी आदि अनेक भाषाओंमें कथा कहनेके लिए प्रेरित किया। पृष्ठ संख्या सुपर रॉयल ३९८।

मूल्य : ८.००

● ●

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित साहित्यिक पुरस्कार

प्रगतिके बढ़ते चरण

प्रथम पुरस्कार वितरण समारोह दिल्लीमें आयोजित होगा, तैयारी हो रही है। इस अवसरपर भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा एक विशेष स्मारिका प्रकाशित की जा रही है, जिसमें ज्ञानपीठ पुरस्कारसे सम्बन्धित प्रवर-परिषद्, भाषा परामर्श समिति और वर्ग-समितियोंके सदस्यों, समीक्षकों आदिके चित्र तथा प्रथम पुरस्कार-की पृष्ठभूमि और ज्ञानपीठकी प्रवृत्तियों आदिका परिचय होगा। पुरस्कार विजेता महाकवि जी० शंकर कुरुपकी पुरस्कृत पुस्तक 'ओड्डकुषल' (बाँसुरी, कविता संकलन) का हिन्दी अनुवाद भी ज्ञानपीठ प्रकाशित कर रही है। इस अनुवाद-की विशेषता यह होगी कि इसमें मूल पाठका देवनागरी लिप्यन्तर भी रहेगा।

सम्बन्धित विद्वानों, लेखकों, कवियों, आलोचकों, पत्रकारों, शिक्षाविदों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण महानुभावोंको इस अवसरपर आमन्त्रित किया जा रहा है।

महाकवि शंकर कुरुपको एक लाख रुपयेकी पुरस्कार-राशिके साथ वाग्देवी-की एक कांस्यमूर्ति भी भेंट की जायेगी। यह मूर्ति ज्ञानपीठ पुरस्कारके प्रतीक-चिह्नके रूपमें निश्चित की गयी है।

हर्षका विषय है कि ज्ञानपीठ पुरस्कार राशिको भारत सरकारने आयकर-मुक्त घोषित कर दिया है।

द्वितीय पुरस्कारके लिए भाषा परामर्श समितियोंकी बैठकें हो चुकी हैं। संस्कृत और कश्मीरीको छोड़कर बाक़ी सभी बारह भाषाओंकी एक-एक पुस्तक संस्तुत होकर आ चुकी है। किन्तु मलयालमकी पुस्तकपर इस वर्ष तथा आगामी वर्ष विचार न हो पायेगा। नियम यह है कि पुरस्कृत भाषा लगातार दो वर्षोंतक प्रतियोगितामें सम्मिलित नहीं हो सकती। इस प्रकार निम्नलिखित १० भाषाओं-

की पुस्तकें वर्ग-समितियोंके समक्ष प्रस्तुत की जा चुकी हैं। वर्ग-समितियोंका गठन इस वर्ष इस प्रकार किया गया है :

क—असमिया, बंगला, उड़िया

ख—गुजराती, मराठी

ग—उर्दू, पंजाबी,

घ—कन्नड़, तमिल, तेलुगु

च—हिन्दी-संस्कृत वर्ग समितिमें-से हिन्दीकी पुस्तक चुन ली गयी है।

उपर्युक्त चारों समितियों-द्वारा संस्तुत होकर आनेपर बाक़ी बची पुस्तकोंका तुलनात्मक साहित्यिक मूल्यांकन कराया जायेगा तथा फिर अन्तिम रूपसे ऊपर उठकर आनेवाली पुस्तकें हिन्दी अनुवाद सहित प्रवर-परिषद्के समक्ष निर्णयार्थ प्रस्तुत कर दी जायेंगी। अनुमान है कि दिसम्बर १९६६ के अन्तिम सप्ताह तक द्वितीय पुरस्कारकी घोषणा की जा सकेगी।

तृतीय पुरस्कारके लिए प्रस्ताव-पत्र आ गये थे। उन्हें भाषावार छटिनी परामर्श समितियोंके पास भेज दिया गया है। अब समितियोंकी बैठकें हो रही हैं। हिन्दी तथा कन्नड़की बैठकें हो चुकी हैं और उनकी सम्मतियाँ भी प्राप्त हो चुकी हैं। बाक़ी भाषाओंकी बैठकें भी शीघ्र ही होने जा रही हैं।

● ●

भारतीविश्व
कुछ सूत्र कुछ सन्दर्भ

सूचनाएँ : मनोरंजनके लिए
नहीं—विचारके ही लिए

• कटघरेमें लेखक

पूर्वी यूरॅपके साम्यवादी देशोंमें ४१ वर्षीय रूसी साहित्यकार इवान स्वित-ल्वनीपर भी अब जल्दी ही मुक़दमा चलाये जानेकी चर्चा तेज़ीपर हैं। पश्चिमी देशोंको रूस-विरोधी अपनी संलिपियाँ चोरीसे भेजनेके आरोपसे स्वितल्वनी गिरफ़्तार भी हो चुके हैं। उनकी यह गिरफ़्तारी कई हफ़्ते पहले हो चुकी है।

वैसे सोवियत रूसमें यह घटना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। बल्कि आश्चर्य तो इसका न होना हो शायद माना जायेगा।

• अश्लील पुस्तकें

हिन्दी शब्दकोशका 'अश्लील' शब्द भी घिसते-घिसते अपना अर्थ आज खो चुका है—शायद बहुतोंको नहीं मालूम। पिछले दिनों अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ-द्वारा आयोजित एक पुस्तक-विक्रेता प्रशिक्षण-कोर्सका उद्घाटन करते हुए केन्द्रीय शिक्षा सचिव महोदयने अपील की है कि हिन्दीके प्रकाशक इस बातका ध्यान रखें कि बाज़ारमें घटिया, अश्लील और अवांछित पुस्तकें न छपायें (या खपायें!)

ध्यान देनेकी बात है कि तीनों शब्द—'घटिया', 'अश्लील' 'अवांछित'—भिन्नार्थ हैं, और आजके सन्दर्भमें दूसरा और तीसरा तो 'बिनार्थ' भी! कहना न होगा कि इन शब्दोंकी अर्थ-पहेलियाँ समझने और सुलझानेमें जितनी लचर और दयनीय भूमिका सरकार अदा कर रही है—वह विशेष रूपसे चिन्तनीय और विचारणीय है। वास्तवमें आज आवश्यकता है इस शब्दको सही अर्थ देने और

सामयिक परिप्रेक्ष्यमें गहरे उतरकर इसे समझनेकी। क्योंकि, महज, चलनके लिए सर्वोदयी ढंगकी नारेबाज़ीसे अश्लीलता नहीं जा सकती।

• 'यूनेस्को कूरियर' : हिन्दी और तमिलमें

विश्वकी आठ भाषाओंमें प्रकाशित होनेवाले मासिक पत्र 'यूनेस्को कूरियर' अब दो भारतीय भाषाओं—हिन्दी और तमिल—में प्रकाशित होनेकी सम्भावना पत्रके प्रधान सम्पादक डॉ० सैण्डो कॉफ़लरने अपने भारत-प्रवासके समय व्यक्त की। डॉ० कॉफ़लरने आशा तो यहाँतक प्रकट की है कि एक समय वह भी आयेगा जब सभी भारतीय भाषाओंमें 'कूरियर'का प्रकाशन सम्भव होगा। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि 'यूनेस्को कूरियर'का हिन्दीमें प्रकाशन हिन्दीके लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वकी उपलब्धि होगी।

• अनुवाद : नामकी ज़रूरत नहीं

इस सदीके अन्त तक एक ऐसा दिन भी आयेगा जब अनूदित पुस्तकोंमें अनुवादकोंका नाम नहीं होगा। कारण,—तब अनुवाद मशीनें किया करेंगी; और मशीनोंको भला नामोंका मोह क्यों? वैसे भी अपने यहाँ (हिन्दीमें) ऐसे 'मशीनी' लेखक-अनुवादक उपलब्ध हैं जिन्हें किसी कारण—साफ़ ही कहें तो 'नामधारी' लेखकों-अनुवादकोंके कारण—प्राय: अपना मोह भंग करना पड़ता है।

जहाँतक इस तथ्यत: मशीनी अनुवादकी बात है, यह करिश्मा सोवियत रूसका है। सोवियत विशेषज्ञोंका कहना है कि इस शतीके अन्त तक रूस ऐसा यन्त्र पूर्णरूपेण तैयार कर लेगा जो किसी भाषण या लेखका सफल एवं द्रुत गतिसे अनुवाद प्रस्तुत कर सकेगा।

• हिन्दी टेलेप्रिण्टर

देवनागरी टाइपराइटरके कुंजीपटलको अन्तिम रूप देनेवाली समितिने हिन्दी टेलेप्रिण्टरके कुंजीपटलको अब अन्तिम रूप दे दिया है। वास्तवमें हिन्दीके विकासके सन्दर्भमें यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। नये हिन्दी-टेलेप्रिण्टरके कुंजीपटलमें सब साठ कुंजियाँ हैं। देवनागरी टाइप राइटरके अक्षर-विन्याससे इसके अक्षर-विन्यासमें थोड़ा अन्तर भी है।

• हिन्दी प्रचारकी आख़िरी तारीख़

जब कि आजिज आकर हिन्दी-हितैषियोंने भारत सरकारसे हिन्दीके सम्बन्धमें अब कुछ भी न कहनेका अनुरोध किया है, केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयने १९६६-६७ वर्षमें हिन्दीके प्रचार और विकासके लिए—विशेषकर अहिन्दी-भाषी राज्योंमें—स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओंको वित्तीय सहायता देनेके लिए 'अर्जियाँ' माँगी हैं। सरकारकी मरज़ीसे, अर्ज़ियाँ पहुँचनेकी आख़िरी तारीख़ ३० जून १९६६ है। जो संस्थाएँ वित्तीय सहायता लेना चाहती हैं वे निर्धारित फ़ार्मोंपर अपनी अर्जियाँ सम्बन्धित राज्य सरकारोंको मार्फ़त भेज सकती हैं।

निस्सन्देह शिक्षा-मन्त्रालयकी यह हिन्दी-हितैषणा सराहनीय है। लेकिन प्रश्न तो यह है कि इस तरहकी ख़ैरात जाने कबसे बाँटी जा रही है, मगर सबका परिणाम ?—शायद ०के बराबर ! और इसका कारण है—सिर्फ़ 'अपनी मरज़ी'।

• विकास भाषाओंका : आँकड़ोंमें

देशकी चौथी पंचवर्षीय योजनामें सभी भारतीय भाषाओंके प्रसार एवं विकासके लिए १२ करोड़ रुपयेकी व्यवस्था की गयी है। १९६५-६६ में इस कामके लिए ११ लाख रुपये विशेष रूपसे अहिन्दीभाषी राज्योंकी सार्वजनिक संस्थाओंको भुगतान किये गये। १९६५-६६ में वैज्ञानिक और शिल्पिक पारिभाषिक शब्दावली आयोगने चिकित्सासम्बन्धी ५ हज़ार और खेतीसम्बन्धी ८ हज़ार शब्दोंके हिन्दी पर्याय तैयार किये। आँकड़ोंके ही अनुसार आयोग मानवशास्त्र और समाजविज्ञान विषयोंके १८ हज़ार हिन्दी पर्याय पहले ही तैयार कर चुका है।

• •

पत्र-मंच

'ज्ञानपीठ पत्रिका' के अप्रैल अंकमें प्रकाशित श्री शिवचन्द्र शर्माका लेख 'समीक्षा और समीक्षा' विचारोत्तेजक है। श्री शर्माजीने समकालीन हिन्दी समीक्षा (और समीक्षक) के सन्दर्भमें तीखी मगर बहुत सही प्रतिक्रिया व्यक्त की है। 'प्रकाशित समीक्षाएँ : शेष स्वर' स्तम्भमें 'बूँद और समुद्र'को लेकर आपने अच्छा किया है। वैसे कुल मिलाकर यह अंक कुछ कमज़ोर लगा।

— सतीशकुमार, लखनऊ

पत्रिकाके अप्रैल अंकमें स्व० उदयशंकर भट्टपर लेख संक्षेपमें महत्त्वपूर्ण तथ्योंको समेटे हुए है। उनके समग्र कृतित्वकी प्रकाशित सूची तो शोध-सन्दर्भकी दृष्टिसे भी बड़ी उपयोगी है। बधाई लें—पत्रिकाके 'राष्ट्रभारती : परिवेश और उपलब्धियाँ' स्तम्भके लिए। हिन्दीमें सम्भवत: अपनी तरहका यह एकमात्र प्रयत्न है।

— प्रो० विमलाप्रसाद श्रीवास्तव, मथुरा

मार्च अंक पढ़ चुका हूँ। देख रहा हूँ कि पत्रिका अब माँगकर पढ़नेवालोंको देना ठीक नहीं होगा। इसी अंकमें डॉ० शिवप्रसाद सिंह, 'अज्ञेय', डॉ० बच्चन सिंह और चेक विद्वान् डॉ० ओडोलन स्मेकलके लेख बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ० स्मेकलने हिन्दीवालोंकी वास्तवमें सही खबर ली है।

डॉ० देवराजकी काव्य-कृति 'इतिहास-पुरुष' तो भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ही है, और उसपर श्री श्रीराम वर्माकी समीक्षा 'बिजलीकी भूमिकाएँ' का पत्रिकामें प्रकाशन एक साहसपूर्ण क़दम है। डॉ० देवराजकी यह कृति मैंने भी पढ़ी है और श्रीराम वर्माकी समीक्षासे सर्वांश तो नहीं पर अधिकांशसे मेरी भी सहमति है।

— डॉ० कुन्तल गोयल, मुरादाबाद

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

०

लोकोदय ग्रन्थमाला

राष्ट्रभारती

२२४	प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी	सं०—दिनकर सोनवलकर	४.००
२०७	प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी दो	नानक सिंह	४.००
२०४	प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी दो	प्रो० ना० सी० फड़के	४.५०
१९०	प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी	कर्तारसिंह दुग्गल	३.५०
१९१	प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी	सं०—अनिलकुमार	४.००
१६८	प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु	नार्ल वेंकटेश्वर राव	३.५०
१७०	प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला	'परशुराम'	३.००
१७१	प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी	व्यंकटेश दि० माडगूलकर	४.००

उपन्यास

२२५	अठारह सूरजके पौधे	रमेश बक्षी	३.००
१६४	सूरजका सातवाँ घोड़ा [च० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	२.००
२१५	जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	३.५०
१५४	पीले गुलाबकी आत्मा [द्वि० सं०]	विश्वम्भर 'मानव'	४.००
७९	गुनाहोंका देवता [आठवाँ सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	५.००
५५	रक्त-राग [द्वि० सं०]	देवेशदास आइ०सी०एस्०	३.००
५१	तीसरा नेत्र [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	२.५०
१९९	जो	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
१६९	महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सुनें !!	'भिक्खु'	२.२५
१३७	पलासीका युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	३.५०
१४३	अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय	३.००
८०	शतरंजके मोहरे [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अमृतलाल नागर	६.००
९५	शह और मात	राजेन्द्र यादव	४.००
११३	राजसी	देवेशदास आइ०सी०एस्०	२.५०

६२ संस्कारोंकी राह [पुरस्कृत]	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०
१२६ ग्यारह सपनोंका देश	सं०–लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००
१ मुक्तिदूत [द्वि० सं०]	वीरेन्द्रकुमार जैन	५.००

कहानी

२२७ मुरदा सराय	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	४.००
१७३ खोयी हुई दिशाएँ [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	२.५०
२ दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ [द्वि. सं.]	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	३.००
१५५ झाड़ी	श्रीकान्त वर्मा	३.००
१६६ मेज़पर टिकी हुई कुहनियाँ	रमेश बक्षी	३.५०
६० कालके पंख [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
३० खेल खिलौने [द्वि० सं०]	राजेन्द्र यादव	२.००
१५९ बोस्ताँ [द्वि० सं०]	शेख़ सादी	२.५०
६३ जय-दोल [तृ० सं०]	अज्ञेय	३.००
१४२ ज़िन्दगी और गुलाबके फूल	उषा प्रियंवदा	२.५०
८९ अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
८५ कर्मनाशाका हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.००
१३१ सूने अँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.००
१५१ प्यारके बन्धन	रावी	३.२५
८२ मोतियोंवाले [पुरस्कृत]	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
६९ हरियाणा लोकमञ्चकी कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२.५०
६५ मेरे कथागुरुका कहना है : १	रावी	३.००
१४४ मेरे कथा गुरुका कहना है : २	रावी	३.००
३५ पहला कहानीकार [पुरस्कृत]	रावी	२.५०
२४ संघर्षके बाद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विष्णु प्रभाकर	३.००
५८ नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
३७ अतीतके कम्पन [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
२० आकाशके तारे : धरतीके फूल [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.००
५० नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
५४ कुछ मोती कुछ सीप [द्वि०सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
४३ जिन खोजा तिन पाइयाँ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०

१२	गहरे पानी पैठ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
९४	एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००
११५	ऑस्कर वाइल्डकी कहानियाँ	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
१३९	लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.००

कविता

६४	लेखनी-बेला [द्वि० सं०]	वीरेन्द्र मिश्र	३.००
२२०	इतिहास-पुरुष	डॉ० देवराज	३.५०
१२०	देशान्तर [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	१२.००
२१८	अन्धा चाँद	मुनि रूपचन्द	३.००
२०१	चाँदका मुँह टेढ़ा है [द्वि० सं०]	मुक्तिबोध	८.००
२०८	आत्मजयी	कुँवरनारायण	३.५०
८६	कनुप्रिया [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.००
१९४	हम विषपायी जनमके [द्वि० सं०]	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१६.००
११८	वेणु लो गूँजे धरा [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
२०३	चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन	३.००
२०२	संक्रान्त	डॉ० कैलाश वाजपेयी	३.००
१९६	हिम-विद्ध	डॉ० जगदीश गुप्त	३.००
१८६	बीजुरी काजल आँज रही	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
१८५	अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	३.००
१७८	रत्नावली	हरिप्रसाद 'हरि'	२.००
६८	वाणी [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
६६	सौवर्ण [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	३.५०
१४६	आँगनके पार द्वार [अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत]	अज्ञेय	३.००
१३४	वीणापाणिके कम्पाउण्डमें	केशवचन्द्र वर्मा	३.००
१२२	रूपाम्बरा	सं०—अज्ञेय	१२.००
८८	अनुक्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	२.००
८१	तीसरा सप्तक [द्वि० सं०]	सं०—अज्ञेय	५.००
९०	अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	४.००
९१	सात गीत-वर्ष [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.५०
१२७	आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.००

९ पंच-प्रदीप	शान्ति मेहरोत्रा	२.००
८ मेरे बापू	तन्मय बुखारिया	२.५०
३९ धूपके धान [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.००
१३ वर्द्धमान [महाकाव्य पुरस्कृत]	अनूप शर्मा	६.००

शाइरी

१५८ गंगोजमन	'नज़ीर' बनारसी	३.००
७६ शाइरीके नये मोड़ : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७७ शाइरीके नये मोड़ : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१५६ शाइरीके नये मोड़ : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७५ शाइरीके नये मोड़ : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७७ शाइरीके नये मोड़ : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१३८ नग़मए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
७२ शाइरीके नये दौर : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७३ शाइरीके नये दौर : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१०४ शाइरीके नये दौर : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
११० शाइरीके नये दौर : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१४१ शाइरीके नये दौर : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१४ शेर-ओ-सुख़न : भाग–१ [द्वि०सं०पु०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
२६ शेर-ओ-सुख़न : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२७ शेर-ओ-सुख़न : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२८ शेर-ओ-सुख़न : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
३१ शेर-ओ-सुख़न : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
५ शेर-ओ-शाइरी [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
११९ ग़ालिब	श्री रामनाथ 'सुमन'	८.००
९२ मीर	श्री रामनाथ 'सुमन'	६.००

नाटक

९८ जनम कैद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	२.५०
२१९ प्रेत	इब्सेन, अनु० नेमिचन्द्र जैन	२.२५

७५	बारह एकांकी [द्वि० सं०]	विष्णु प्रभाकर	४.००
१६७	घाटियाँ गूँजती हैं [तृ० सं०]	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	२.५०
२०५	नाटक बहुरूपी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.५०
१७२	आदमीका ज़हर	लक्ष्मीकान्त वर्मा	३.००
१७	रजत रश्मि [द्वि० सं० पुरस्कृत]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
१५५	तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ	परिपूर्णानन्द वर्मा	४.००
१००	सुन्दर रस [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	१.५०
१३२	नाटक बहुरंगी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	४.५०
७८	कहानी कैसे बनी ?	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
५३	पचपनका फेर [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विमला लूथरा	३.००
५९	तरकशके तीर	श्रीकृष्ण	३.००
४७	और खाई बढ़ती गयी [पुरस्कृत]	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०
६७	चेखॅवके तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
१०१	कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ० भगवतशरण उपा०	३.५०
१०६	सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	२.००
१०८	भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०

विधा-विविधा

१५०	खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति मेहरोत्रा	४.५०
१४९	अंकित होने दो	अजित कुमार	४.००
८७	काठकी घण्टियाँ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	७.००
१०२	सीढ़ियोंपर धूपमें	रघुवीर सहाय	४.००
१२५	पत्थरका लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	३.००

रुचिर कलात्मक

१३२	शैशवांकन		१२.००
१६१	परिणय गीतिका	सं०—रमा जैन, कुन्था जैन	५.००

ललित-निबन्धादि

२१६	कुछ निबन्ध	अक्षयकुमार जैन	२.५०
१८३	क्षण बोले कण मुसकाये [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००

२११	चिन्तककी लाचारी	माखनलाल चतुर्वेदी	४.००
१९७	एक साहित्यिककी डायरी [द्वि. सं.]	गजानन माधव मुक्तिबोध	२.५०
११७	अमीर इरादे ग़रीब इरादे [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	२.००
१८१	हम सब और वह	दयानन्द वर्मा	२.००
१८०	बातें, जिनमें सुगन्ध फूलोंकी	अहमद सलीम	३.००
१६५	महके आँगन चहके द्वार	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
१६३	शिखरोंका सेतु	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.५०
५७	बाजे पायलियाके घुँघरू [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	४.००
१४८	फिर बैतलवा डालपर	विवेकी राय	३.५०
१४७	आँगनका पंछी और बनजारा मन	डॉ० विद्यानिवास मिश्र	३.००
१२८	नये रंग नये ढंग	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.००
७१	बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०
१२३	काग़ज़की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.५०
१११	सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
९६	वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२.५०
१०३	ठूँठा आम	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.००
२९	हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान [द्वि.सं.]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	१.००
७०	ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१.००
४६	क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२.५०
५६	माटी हो गयी सोना [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	२.००
२५	ज़िन्दगी मुसकरायी [तृ० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	४.००

यात्रा-विवरण

१८७	चीड़ोंपर चाँदनी	निर्मल वर्मा	३.००
१३०	एक बूँद सहसा उछली	अज्ञेय	७.००
८४	पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३.००
९९	सागरकी लहरोंपर	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
१३६	हरी घाटी	डॉ० रघुवंश	४.५०

संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी

७४	दीप जले शंख बजे [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	३.००

१६२	समयके पाँव [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
	हिन्दीके आदि मुद्रित ग्रन्थ	कृष्णाचार्य	७.००
२१	रेखाचित्र [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००
१२४	पराड़करजी और पत्रकारिता [पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	५.५०
१०९	आत्मनेपद	अज्ञेय	४.००
११४	माखनलाल चतुर्वेदी	'बरुआ'	६.००
१५	जैन-जागरणके अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१९	संस्मरण [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
१६	हमारे आराध्य [पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००

आलोचना, अनुसन्धान, रचना-शिल्प

२२१	विवेकके रंग	सं०-डॉ०देवीशंकर अवस्थी	७.००
२२३	घरेलू इलाज	वैद्यरत्न च० गो० ठक्कुर	२.००
१८९	हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि	डॉ० प्रेमसागर जैन	१२.००
१९३	भाषा और संवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.५०
१८८	हिन्दी गीतिनाट्य	कृष्ण सिंहल	४.००
१७४	साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य	डॉ० रघुवंश	५.००
१५७	जैन भक्ति-काव्यकी पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमसागर जैन	६.००
१३५	रेडियो वार्ता-शिल्प	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	२.००
४१	रेडियो नाट्य-शिल्प [द्वि० सं०]	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	३.००
३८	ध्वनि और संगीत [द्वि० सं०]	ललितकिशोर सिंह	४.५०
१८	भारतीय ज्योतिष [च० सं०]	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६.००
८३	प्राचीन भारतके प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०
४५	संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००
४८	संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन [द्वि.सं.]	डॉ० भोलाशंकर व्यास	५.००
१२९	हिन्दी नवलेखन	डॉ०रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.००
११२	मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
४२	शरतके नारी-पात्र	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.५०

४४ हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : १	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०
४९ ,, २	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०

इतिहास-राजनीति

१४५ भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०]	डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१०.००
११८ भारतीय संस्कृतिका विकास : वैदिक धारा	डॉ० मंगलदेव शास्त्री	७.००
१२१ समाजवाद	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५.००
३६ कालिदासका भारत : भाग १ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००
४० कालिदासका भारत : भाग २ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
३२ चौलुक्य कुमारपाल [द्वि० सं० पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.५०
५२ एशियाकी राजनीति	परदेशी	६.००
१०७ इतिहास साक्षी है	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
२३ खोजकी पगडण्डियाँ [द्वि० सं० पुरस्कृत]	मुनि कान्तिसागर	४.००
२२ खण्डहरोंका वैभव [द्वि० सं०]	मुनि कान्तिसागर	६.००

दार्शनिक-आध्यात्मिक

२१७ तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो	मुनि नथमल	२.००
२१२ क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?	आचार्य तुलसी	२.००
३३ अध्यात्म-पदावली [तृ० सं०]	डॉ० राजकुमार जैन	४.५०
२०६ दर्शन अनुचिन्तन	गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	३.००
२०० तान्त्रिक साधना	माधव पुण्डलीक पण्डित	१.५०
१० भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२.००
७ वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६.००

सूक्तियाँ

१४० सन्त-विनोद [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	२.५०
१८२ भाव और अनुभाव [द्वि० सं०]	मुनि नथमल	२.००
११ ज्ञानगंगा : भाग १ [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	६.००
११६ ज्ञानगंगा : भाग २	नारायणप्रसाद जैन	६.००
६१ शरतकी सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
१३ कालिदासके सुभाषित	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००

हास्य-व्यंग्य

२२२	बक रहा हूँ जुनून में	प्रकाश पण्डित	३.००
२०९	सिकन्दरनामा	सलमा सिद्दीक़ी	२.००
१३३	आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य [द्वि० सं०]	सं० – केशवचन्द्र वर्मा	४.००
१६०	तेलकी पकौड़ियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० प्रभाकर माचवे	२.००
१७६	जैसे उनके दिन फिरे [द्वि० सं०]	हरिशंकर परसाई	२.५०
१८४	काग़ज़के फूल शब्द : भारतभूषण अग्रवाल,	चित्र : प्रभाकर माचवे	३.००
१७९	चाय पार्टियाँ	सन्तोषनारायण नौटियाल	२.००
१५३	हास्य मन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	६.००
१०५	मुर्ग़-छाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	२.००
९७	अंगदका पाँव	श्रीलाल शुक्ल	२.५०

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर और साथमें दिया ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा । जैसे : 'सूरजका सातवाँ घोड़ा' के लिए 'लो' – १६४' मात्र।



मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला

तत्त्वज्ञान और सिद्धान्तशास्त्र

१ **समयसार [प्राकृत-अँगरेज़ी]** ८.००
मूल : आचार्य कुन्दकुन्द; सं०-अनु० : प्रो० ए० चक्रवर्ती

१० **तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग १**
२० ,, ,, **भाग २** २४.००
मूल : भट्ट अकलंक; सम्पादन : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

१३ **सर्वार्थसिद्धि [संस्कृत-हिन्दी]** १२.००
मूल : आचार्य पूज्यपाद; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

१० **पंचसंग्रह [प्राकृत-हिन्दी]** १५.००

संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री 15.00

८ जैन धर्मामृत [संस्कृत-हिन्दी]
संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री 3.00

जैन न्याय और कर्मग्रन्थ

११ कर्मप्रकृति [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य नेमिचन्द्र, सम्पादन : पं० हीरालाल शास्त्री 6.00

३० सत्यशासन-परीक्षा [संस्कृत]
मूल : आचार्य विद्यानन्दि; सम्पादन : गोकुलचन्द्र जैन 5.00

२२ सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग १
२३ " भाग २
मूल : भट्ट अकलंक और अनन्तवीर्य; सम्पादन : डॉ० महेन्द्रकुमार 30.00

३ न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग १
१२ " " भाग २
मूल : भट्ट अकलंक और वादिराज सूरि; सं० : डॉ० महेन्द्रकुमार 30.00

४ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग २
मूल : भगवन्त भूतबलि; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री 11.00

५ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ३ 11.00

६ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ४ 11.00

७ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ५ 11.00

८ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ६ 11.00

९ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ७ 11.00

आचारशास्त्र, पूजा और व्रत विधान

२८ उपासकाध्ययन [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : सोमदेव सूरि, सं०-अनु० : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री 12.00

३ वसुनन्दि श्रावकाचार [प्राकृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य वसुनन्दि; सं०-अनु० : पं० हीरालाल शास्त्री 5.00

७ ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि [संकलन]
संकलन-सम्पादन : डॉ० आ.ने. उपाध्ये व फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री 4.00

१९ व्रततिथिनिर्णय [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : अज्ञात; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य

६ मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन [हिन्दी] ३.००

लेखक : पं० नेमिचन्द्र शास्त्री ३.००

व्याकरण, छन्दशास्त्र और कोश

१७ जैनेन्द्र महावृत्ति [संस्कृत]

मूल : आचार्य अभयनन्दि; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी १५.००

५ सभाष्य रत्नमञ्जूषा [संस्कृत]

मूल : अज्ञात; सम्पादन : श्री हरि दामोदर वेलणकर २.००

६ नाममाला सभाष्य [संस्कृत]

मूल : कवि धनञ्जय—अमरकीर्ति; सम्पादन : पं०शम्भुनाथ त्रिपाठी ३.५०

पुराण साहित्य

२७ हरिवंशपुराण [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १६.००

८ आदिपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १

९ ,, ,, भाग २

मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य २०.००

१४ उत्तरपुराण [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : आचार्य गुणभद्र; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १०.००

२१ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १

२४ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग २

२६ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३

मूल : आचार्य रविषेण; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ३०.००

१५ पुराणसार-संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १

१६ ,, ,, भाग २

मूल : आचार्य दामनन्दि; सं०-अनु० : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी ४.००

चरित व काव्य-ग्रन्थ

६ सुगन्धदशमी कथा : सं० डॉ० हीरालाल जैन ११.००

४ करकण्डुचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]

मूल : कनकामर, सं०-अनु० : डॉ० हीरालाल जैन १०.००

२१ भोजचरित्र [संस्कृत]
मूल : राजवल्लभ, सम्पा० : डॉ० छाबड़ा, शंकरनारायणन् ८.००

५ मयणपराजयचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]
मूल : कवि हरिदेव; सम्पादन और अनुवाद : डॉ० हीरालाल जैन ८.००

१ मदनपराजय [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : नागदेव; सं०-अनु० : डॉ० राजकुमार जैन साहित्याचार्य ६.००

१ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग १
२ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग २
३ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग ३
मूल : कवि स्वयम्भू; सं०-अनु० : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन ९.००

१८ जीवन्धरचम्पू [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : कवि हरिचन्द्र
सम्पादन, अनुवाद और टीका : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ८.००

१ जातकट्ठकथा [पाली]
सम्पादन : भिक्षु धर्मरक्षित ९.००

५ धर्मशर्माभ्युदय [हिन्दी]
अनुवादक : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ३.००

ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र

२५ भद्रबाहु संहिता [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य भद्रबाहु; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ८.००

७ केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ४.००

२ करलक्खण [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी ०.७५

विविध

१ वर्ण, जाति और धर्म
लेखक : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ३.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

११ जिनसहस्रनाम [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री ४.००

१ थिरुकुरल [तमिल]
सम्पादन : ए० चक्रवर्ती ५.००

१ आधुनिक जैन कवि [हिन्दी]
संकलन-सम्पादन : श्रीमती रमा जैन ३.५०

२ कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची
संकलन-सम्पादन : पं० के० भुजबली शास्त्री १३.००

माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला

पुराण

३७ महापुराण [अपभ्रंश] आदिपुराण : भाग १
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य १०.००

४१ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग २
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य १०.००

४२ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग ३
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य ६.००

२९ पद्मपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल १.५०

३० पद्मपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल २.००

३१ पद्मपुराण [संस्कृत] भाग ३
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल २.००

३२ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल २.००

३३ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल १.५०

शिलालेख

२८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
सम्पादन : पं० श्री हीरालाल जैन — २.००

४५ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — ८.००

४६ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — १०.००

४८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ४
सम्पादन : डॉ० जोहरापुरकर — ७.००

चरित, काव्य और नाटक

४० वरांगचरित [संस्कृत]
मूल : श्री जटासिंहनन्दि; सम्पादन : डॉ० आदिनाथ उपाध्ये — ३.००

३५ जम्बूस्वामीचरित [संस्कृत]
मूल : पं० राजमल्ल; सम्पादन : श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री — १.५०

८ प्रद्युम्नचरित [संस्कृत]
मूल : श्री महासेन; सम्पादन : पं० मनोहरलाल, रामप्रसाद शास्त्री — .५०

रामायण [अपभ्रंश] (अलगसे)
मूल : महाकवि पुष्पदन्त — २.५०

२७ पुरुदेवचम्पू [संस्कृत]
मूल : श्रीमदर्हद्दास; सम्पादन : श्री जिनदास शास्त्री — .७५

४३ अंजनापवनंजय [नाटक]
मूल : श्री हस्तिमल्ल : सम्पादन—वासुदेव पटवर्धन — ३.००

जैन-न्याय

३८ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य — ८.००

३९ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य — ८.५०

४७ प्रमाणप्रमेयकलिका [संस्कृत]
मूल : श्री नरेन्द्रसेन; सम्पादन : पं० दरबारीलाल कोठिया — १.५०

सिद्धान्त, आचार और नीतिशास्त्र

२१ सिद्धान्तसारादि [प्राकृत-संस्कृत]
मूल : श्री जिनेन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी — १.५०

२० भावसंग्रहादि [प्राकृत-संस्कृत]
मूल : देवसेनसूरि; सम्पादन : पन्नालाल सोनी — २.२५

२५ पञ्चसंग्रह [संस्कृत]
मूल : श्री अमितगति सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — .८१

३६ त्रिषष्टिस्मृतिसार [संस्कृत, मराठी अनुवाद]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : मोतीलाल — .५०

४४ स्याद्वादसिद्धि [संस्कृत, हिन्दी-सारांश]
मूल : श्री वादीभसिंहसूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

२४ रत्नकरण्डश्रावकाचार [मूल, संस्कृत टीका]
मूल : श्री स्वामी समन्तभद्र; टीका : श्री प्रभाचन्द्राचार्य — २.००

२६ लाटी संहिता [संस्कृत]
मूल : श्री राजमल्ल; सम्पादन : पं० श्री दरबारीलाल — .५०

३४ नीतिवाक्यामृत (शेषांश) [संस्कृत टीका]
मूल : सोमदेवसूरि; टीका : अज्ञात — .३१

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर, भाषा और ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा। जैसे 'समयसार' के लिए 'मू-अं० १' या 'वरांगचरित' के लिए 'मा-४०' मात्र।

चौंसठ कविताएँ

इन्दु जैन
की कविताओं का संग्रह

कहें कुछ और, पर भिन्न और विशेष इन कविताओंके परिचयमें अवश्य कहा जायेगा। यह इसलिए नहीं कि श्रेष्ठ कविताके निकषपर ये खरी उतरती हैं, बल्कि इसलिए कि ये हिन्दी कविताकी अधुनातन दिशा, भाव-बोध, और शिल्पकी प्रामाणिक उपलब्धिका संकेत देती हैं। सब चौंसठ कविताएँ हैं, पर प्रत्येक जैसे एक सौम्य बिजलीकी कौंधका निमिष हो जो अन्दरकी अकुलाहटको, किसी दर्द या उल्लासको—सतरंगी प्रकाश-रेखाओंकी भाषामें उकेर जाये। अनुभूतियोंकी ऐसी अभिभूत करनेवाली अभिव्यक्ति इनमें हुई है कि क्षितिजपर क्षितिज सामने खुलते चले जाते हैं और भीतर एक गन्ध-भरी चाँदनी-सी छिटक पड़ती है।

मूल्य तीन रुपये



भारतीए ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता * दिल्ली * वाराणसी

भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसीसे मुद्रित।

रजिस्टर्ड सं० एल-

भारतीय ज्ञा
द्वारा प्रक

शिवप्रसाद सिंह
की चुनी हुई बारह नयी कहानियोंका
नवीनतम संग्रह

मुरदा सराय

• •

देखे हुए के भीतरसे अदेखेको देखनेकी शक्ति और सामान्य ज़िन्दगीको ग
अनुभव करनेकी वह संसक्ति जो ज़िन्दगीके अछूतेसे अछूते कोनेको प्र
कर दे — ये मिल-जुलकर एक ऐसे मानसका निर्माण करते हैं जो बा
बारीक़ स्पन्दनोंको भी अंकित कर लेता है। 'मुरदा सराय' ऐसे ही
और धड़कनोंका बैरोमीटर' है।

मूल्य चार

सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओंसे प्राप्त

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७.
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६.

ज्ञानपीठ पत्रिका

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

[illegible] प्रकाशनकी अधुनातन [illegible]-प्रवृत्ति और उपलब्धि-परिचायिनी मासिकी

[illegible] नये प्रकाशन

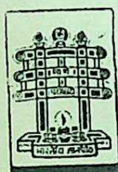
• अपभ्रंश भाषा और साहित्य

डॉ॰ देवेन्द्रकुमार जैनका बहुप्रतीक्षित शोध-प्रबन्ध । अपने विषय-क्षेत्रका सर्वथा मौलिक विश्लेषण । अनिवार्य रूपसे पठनीय एवं संग्रहणीय । १०.००

• कुछ निबन्ध

[illegible]कुमार जैनके लघु-ललित निबन्धोंका संग्रह : जो मनोरंजन तो करेंगे ही, कुछ [illegible]चनेको भी विवश करेंगे । २.५०

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन



भारतीय ज्ञानपीठ

सांस्कृतिक जागरण
साहित्यिक विकास-उन्नयन
राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी
साधिका विशिष्ट संस्था

● ●

संस्थापक : श्री शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा : श्रीमती रमा जैन

कार्यालय :
कलकत्ता, दिल्ली, वाराणसी

ज्ञानपीठ पत्रिका

वर्ष चार : अंक ग्यारह

जून १९६६

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

सम्पादक

लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जगदीश

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

मूल्य : छह रुपये वार्षिक, पचपन पैसे प्रति; द्विवार्षिक : ग्यारह रुपये

समाज-शिक्षा विभाग, राजस्थान-द्वारा उच्च, उच्चतर विद्यालय तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंके लिए प्रस्वीकृत

उद्घोष
साहित्यकी ज़िम्मेदारी

दूरदर्शनकी सुविधा साहित्यको ही है इसलिए साहित्यिकको राजनीतिके मतावेशोंके अधीन तत्कालपर ही समाप्त न हो वर्तमानको भावीकी दिशामें निर्माण देनेकी और मूल्योंकी भाषामें सोचना है।

जैनेन्द्र कुमार

भाषाओंको लेकर यदि कहीं सत्यका गर्व और अहंकार देखा जाता हो तो यह राजकारणकी देन है। अस्तित्व-विग्रहके क्षेत्रमें स्वत्वकी चिन्ता हठात् हो आती है। स्पर्द्धा-प्रतिस्पर्द्धाकी वासना वहाँ काम करती है। किन्तु हम जानते हैं कि स्वत्व और परत्वके बीच संघर्ष है तो वह सामयिक है। तात्कालिक आवेशोंके नीचे तो स्वत्व और परत्वके बीच आग्रह और दुर्भाव बन ही आते हैं। लेकिन इतिहास साक्षी है कि आवेश तत्कालके साथ ही जीते और उसीके साथ मर भी जाते हैं। उनकी सिद्धि और परिणति बस इसमें है कि अनबनके नाते ही होते-होते उनमें परस्परता और आत्मीयताका निर्माण होता जाये।

साहित्यकी निष्ठा पारस्पर्य और साहचर्यमें है। तत्काल तो अपना घड़ी-भरका खेल दिखाकर व्यतीत बन जाता है। उस समय व्यक्तिके पास निष्ठा न हो तो वैर ही प्रधान धर्म-कर्म बनता है और भविष्यके लिए अपनी बेल छोड़ जाता है। आवश्यकता है कि निष्ठावान् साहित्यिक राजनीतिके मतावेशोंके अधीन तत्कालपर ही समाप्त न हों, बल्कि वर्तमानको भावीकी दिशामें निर्माण देनेकी और मूल्योंकी भाषामें सोचें। दूरदर्शनकी सुविधा साहित्यको है और यह बड़ी ज़िम्मेदारी है।

तीन यदि

अर्थात् ऐसा ऐसा हुआ होता तो कविता लिखने-
की बजाय मैं कोई अन्य प्रीतिकर
कार्य करता

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

मैं कविता क्यों लिखता हूँ—मैंने कविता क्यों लिखी ? कहूँ कि किसी लाचारीसे ही लिखी। आजकी परिस्थितिमें कविता लिखनेसे अधिक सुखकर और प्रीतिकर कई काम हो सकते, और मैं कविता न लिखता यदि :

हिन्दीके आजके प्रतिष्ठित कवियोंमें एक भी ऐसा होता जिसकी कविताओंमें कविका एक व्यापक जीवन-दर्शन मिलता,

हिन्दीके गण्य-मान्य आलोचकोंमें एक भी आलोचक ऐसा होता जिसने प्रयोग-वादी या नयी कविताके बारेमें एक भी समझदारीकी बात कही होती,

हिन्दीका एक भी जागरूक पाठक ऐसा होता जिसने हिन्दीकी वर्तमान विभूतियोंकी नयी लिखी जानेवाली रचनाओंपर घोर असन्तोष न प्रकट किया होता।

केवल इतना ही नहीं, मैंने स्वयं कविता लिखनेकी लाचारी न महसूस की होती यदि :

अधिकांश पुराने कवि छन्द और तुककी बाज़ीगरीके नशेमें काव्य-विषयकी एक संकीर्ण परिधिमें घिरकर व्यापक जीवनके संघर्षोंको भूल न गये होते और उन्हें कविताके विषयोंमें-से निकाल न देते,

यह माना गया होता कि संसारका कोई भी विषय कविताका विषय है और कविकी दृष्टि इतनी व्यापक होनी चाहिए कि वह उसे उस कोणसे भी देख सके जहाँसे वह संवेदनाको छूता हो, यह सत्य स्वीकार कर लिया जाता कि भावनाओं-की नयी परतें खोलने और संवेदनाके गहनतम स्तरोंको छूनेके लिए कविताने सदैव नये रूप विधान धारण किये हैं।

परिस्थितिमें केवल इतनी ही बातें मुझपर बोझ डालती रही हों, ऐसा नहीं है। मुझे कविता लिखनेकी इतनी उत्तेजना न मिली होती यदि :

वर्तमान मठाधीश कवि अपनी औकात घटनेके डरसे नये प्रयोगोंके खिलाफ़ उछल-उछलकर चिल्लाते नहीं, उन्हें ग़लत कहनेके लिए दलबन्दी न करते, रिश्वतें न देते, बल्कि सद्भावसे उन्हें अपनाते, अपनी प्रतिभाका (यदि वह है तो) उपयोग रचनात्मक कार्यके लिए करते, बदलते हुए युग और मूल्योंको अपनानेके लिए अपने सीने चौड़े करते और अपनी दृष्टि प्रखर करते,

यदि सरकारी पत्रों और प्रसारण-संस्थाओं या मंचोंपर-से नयी रचनाओंका बहिष्कार करनेकी तानाशाही न बरती जाती,

यदि साहित्यके क्षेत्रमें भी राजनीतिक क़तारबन्दी न की गयी होती, पद-प्रतिष्ठाके लालचमें सत्यपर परदा न डाला गया होता, अध्ययन और लगनसे शास्त्रीय स्तरपर उठकर नये साहित्यकी परख ईमानदारीसे करनेकी कोशिश की गयी होती,

यदि स्वाधीनताप्राप्तिके बाद हमारे अधिकतर साहित्यकारोंने वजीफ़ेखाने, कुर्सियोंके लिए गोटें बैठाने और पदोंके लिए साहित्यकारका सम्मान बेचनेका धन्धा न अपनाया होता,

यदि अधिकतर प्रतिष्ठित साहित्यकारोंने नक़ली जीवन छोड़कर साहित्यकारका अनुभवप्रवण, लोकजनीन वास्तव जीवन अपनाया होता, अपनी शक्ति ऐसा विराट् साहित्य लिखनेमें लगायी होती जिसे हम गौरवपूर्वक विश्वके सम्मुख रख सकें।

यह सब हुआ होता, तो मेरे लिए कविता लिखनेकी कोई लाचारी न रही होती बल्कि, जैसा कि मैंने कहा, मेरे सम्मुख कई दूसरे सुखकर और प्रीतिकर काम होते। तब मैंने शायद कविता न लिखकर प्रशस्ति लिखी होती उन सभी साहित्यकारोंकी जिन्होंने अपने साहित्यको गौरव प्रदान करने और उसे विराट् व्यापक रूप देनेके लिए सच्चे ईमानदार साहित्यिकके रूपमें जीवनके संघर्षोंके आगे सीना ताना होता, जिन्होंने वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रोंमें जर्जर परम्पराओं, रूढ़ियों और विघटित मूल्योंसे लोहा लिया होता। आप सच मानिए, वह काम मेरे लिए आज इस वातावरणमें कविता लिखनेसे कहीं अधिक सुखकर होता।



दोहरे-तिहरे संघर्षकी भट्ठी

नयी पीढ़ी यानी साठके बादकी पीढ़ीका लेखक एक बड़ी लड़ाई लड़ रहा है? क्यों, किसलिए किसके लिए? यह विचारोत्तेजक प्रश्न यहाँ प्रस्तुत है, तथा और भी विचार पत्रिकाकी ओरसे आमन्त्रित हैं।

चन्द्रकान्त देवताले

आजका रचनाकार सचमुच एक बहुत बड़ी लड़ाई लड़ रहा है। यह दोहरा-तिहरा संघर्ष उसकी नियति है, उसकी मृत्यु! और इस मृत्युमें भी वह अपनेको तोड़ते हुए रचनाओंमें सहेजनेके लिए बेचैन है। रचनाके प्रति इतना अपृथक् लगाव, अनुभवोंके प्रति इतनी गहरी निर्मम आसक्ति, जीवनके द्वैतको तोड़नेका भीषण संकल्प, हड्डी-हड्डी तक नंगा होकर भी, चिथड़े-चिथड़े बिखरकर भी, ओढ़े हुएको उतार फेंकनेकी बौखलाहट—ऐसी भीतरकी लड़ाई किसी कालमें किसी भी पीढ़ीको सचमुच नहीं लड़नी पड़ी होगी।

और इसी लड़ाईके साथ जुड़ा हुआ अभिशाप—पत्रकारिता-स्तरकी चर्चा-समीक्षा, गुट-गिरोहका मत-मतान्तर, जोड़-तोड़ और अधिक ईमानदार बननेकी कोशिशमें ऊटपटांग—जिसका अस्तित्व-अनस्तित्व और ईमानदारी-बेईमानीसे निकट-दूरका कैसा भी सम्बन्ध नहीं।

मजमेबाज़ी-सी मजलिस, दवाईके विज्ञापनोंकी तरह वक्तव्य, ज़मीनके टण्टों-की तरह जाहिरनामे, वाद-प्रतिवाद यहाँतक कि वारण्ट।

हर जगह शोर-शराबा फेंकते हुए पत्र-पत्रिकाएँ, अखबार, मासिक-त्रैमासिक आते हैं। यह शोर-शराबा क्या सचमुच अहमियत रखता है? 'पत्रकारिताका कार्य आजकी रोचकता आजके पाठकोंको देना है, कलकी बात वहाँ कोई अर्थ नहीं रखती।'—आन्द्रे जीदकी यह उक्ति याद आ रही है।

एक बेईमानीके खिलाफ़, एक गिरोह तोड़नेके लिए सच्चे वलवलेके साथ कुछ लोग आते हैं और जिसके विरुद्ध थे उसीमें अपनेको धँसा पाते हैं।

जिन अहं सवालोंको लेकर नया रचनाकार बाहरी प्रतिबद्धतासे परे होकर भी रचनाधर्मी प्रतिबद्धताके कारण जीवन मूल्योंके अभावमें भी संघर्ष कर रहा है, उस अस्तित्व एवं माध्यम-खोजी संघर्षसे हटकर व्यावसायिक-स्फीतिका संवे उसकी स्वयंकी दृष्टिमें भी सम्मानजनक नहीं।

पर जिस दरवाज़ेको नहीं खटखटानेके संकल्पसे उसने जो हाथ ही काटकर फेंक दिया था, वह वहीं मेज़पर रखा उसका चेहरा देखता है कि वही कटा हुआ हाथ किसी सन्धि-पत्रपर हस्ताक्षर कर रहा है।

नये रचनाकारका ऐसा हस्ताक्षर बेईमानी नहीं है वरन् ईमानदारीकी मौत है। उसे इस मृत्युका तीखा एहसास है और गहरा असन्तोष भी। किन्तु जिस परिवेशको बेईमानीका लकवा मार गया हो उसमें ऐसी परिस्थितियोंके लिए कहाँ कहाँ कौन-कौन जिम्मेदार हैं कहना मुश्किल है।

● ●

अन्तरिक्ष जिस धातुका बना है उसपर मुझे आश्चर्य होता है। क्या धातु तरलतम होकर पारदर्शी नहीं हो सकती····विरल क्षीण होकर इतनी सूक्ष्म, वायवीय, जितना कि यह आकाशका तनोवा? अन्ततः सब धातें बिजलीकी शक्तियाँ हैं और हम भी उसीके प्रवाह हैं, अपनी शारीरिक सीमाओंमें संगठित। इसी संगठनमें कहीं कविता के स्रोत भी हैं, चित्र भी हैं, स्थापत्य और मूर्तियाँ भी हैं, दर्शन भी हैं, आन्दोलन भी हैं, विजय भी है, पराभव भी है····बन्धन भी, मुक्ति भी!

—शमशेर बहादुर सिंह

एक अन्तर्कथा
सन्दर्भ : शोलोखॅव

क्या सोवियत शासन भी शोलोखॅवको
नोबेल पुरस्कार दिलानेके लिए
कृतसंकल्प था ?

महेन्द्र कुलश्रेष्ठ

साहित्यके लिए दिये जानेवाले नोबेल पुरस्कारकी चर्चा और आलोचना प्रायः होती रहती है। इस वर्ष रूसी लेखक मिखाइल शोलोखॅवको दिये गये पुरस्कारके सम्बन्धमें यह कहा जा रहा है कि यह पुरस्कार देकर पुरस्कर्ताओंने बोरिस पास्तरनाकके साथ हुई दुर्घटनाकी कुछ क्षतिपूर्ति करने तथा अपनी निष्पक्षता स्थापित करनेकी चेष्टा की है।

इस कथनमें सत्य प्रतीत होता है। शोलोखॅव रूसकी कम्युनिस्ट सरकार-द्वारा मान्यता-प्राप्त उपन्यासकार हैं। उनकी प्रतिष्ठा कुछ इस प्रकारकी है कि उन्हींको पुरस्कार देनेसे सोवियत रूस और कम्युनिस्ट जगत्‌की प्रसन्नता प्राप्त हो सकती थी। इसलिए पुरस्कार समितिको अपनी कुछ विशेष परम्पराओंका उल्लंघन करना पड़ा।

वह यह कि पुरस्कार सामान्यतया या तो लेखककी समस्त कृतियोंपर दिया जाता है या उसकी लगभग उन्हीं दिनों प्रकाशित किसी अन्यतम कृतिपर। शोलोखॅवके लिए इन दोनोंका उल्लंघन करना पड़ा। पुरस्कारके वक्तव्यसे स्पष्ट है कि यह उनकी केवल एक ही कृतिपर दिया गया है जिसका नाम है 'धीरे बहे दोन रे'। इस कृतिका पहला खण्ड १९२८ में और अन्तिम १९४० में प्रकाशित हुआ था। तात्पर्य यह कि यह कम-से-कम २५ वर्ष पूर्वकी कृति है। इतनी पुरानी कृतिका पुरस्कृत किया जाना निस्सन्देह आश्चर्यजनक कहा जायेगा।

इसपर भी सोवियत अधिकारियोंने तुरन्त पुरस्कारका स्वागत नहीं किया।

पूरे दो सप्ताह बाद पार्टीको केन्द्रीय समितिने शोलोखॅवको तार भेजकर इसपर अपनी स्वीकृतिकी मुहर लगायी ! सोवियत पत्रोंने भी पुरस्कारकी घोषणा तुरन्त नहीं छापी, इसमें कई दिन लगे। शोलोखॅवने भी पुरस्कार स्वीकृत करनेका तार देनेमें कई दिन लगा दिये।

रूसका यह क्रोध उचित भी प्रतीत होता है। तॉल्सतॉय, तुर्गनेव, चेखव, दॉस्तॅवस्की-जैसे महान् लेखक उत्पन्न करनेके बाद भी यह पुरस्कार अबतक केवल दो रूसियोंको मिला है। इनमें एक पास्तरनाक ही हैं; दूसरे हैं इवान बुनिन जिन्हें १९३३ में पुरस्कार मिला। परन्तु ये भी कम्युनिज़्मके कट्टर विरोधी थे और रूस छोड़कर विदेशमें बस गये थे।

कहते हैं, नोबेल पुरस्कर्ताओंकी सूचीपर शोलोखॅवका नाम दस सालसे है। १९५८ में वे काफ़ी दिन स्वीडेनमें जाकर रहे भी, शायद इसी सिलसिलेमें, पर उसी साल पुरस्कार बोरिस पास्तरनाकको दे दिया गया। क्या पुरस्कार समिति शोलोखॅवके प्रयत्नोंके कारण ही पास्तरनाकको यह पुरस्कार देनेको बाध्य हुई? क्या फिर इसीका बदला लेनेके लिए कम्युनिस्ट शासनने पास्तरनाकपर इतने अत्याचार ढाये और उन्हें पुरस्कार अस्वीकृत करनेको बाध्य किया ?

जो हो, प्रतीत यह भी होता है कि सोवियत शासन शोलोखॅवको नोबेल पुरस्कार दिलानेके लिए कृत-संकल्प था। अब स्वयं ख़ुश्चेवने पाश्चात्य जगत्में शोलोखॅवके प्रचारका भार लिया। वे शोलोखॅवके गाँव गये और उन्हें अपने साथ अमेरिका चलनेको निमन्त्रित किया। इस यात्रामें शोलोखॅवका खूब ज़बर्दस्त प्रचार किया गया और उन्हें अधिकाधिक अमेरिकी लेखकोंसे मिलाया गया। इसका परिणाम कुछ देरसे ही सही, इस वर्ष निकल ही आया। अब कम्युनिस्ट देशोंको यह कहनेका मौक़ा मिल गया है कि शुद्ध सामाजिक यथार्थके कम्युनिस्ट लेखकोंको भी नोबेल पुरस्कार मिल सकता है। अब शोलोखॅवको विदेशोंकी यात्रा करायी जा रही है। कुछ समय बाद वे भारत भी आयेंगे। उधर पुरस्कार-दाताओंकी निष्पक्षता भी स्थापित हो गयी है।

अब पुरस्कार समितिके इस निश्चयको देखें कि उसने एक ही पुस्तकको पुरस्कारके लिए क्यों चुना। वह शोलोखॅवके समग्र कृतित्वपर पुरस्कार घोषित कर एक बहुत पुरानी कृतिको पुरस्कृत करनेके आरोपसे सरलतापूर्वक बच सकती थी। क्या उसने यह इस कारण किया कि शोलोखॅवका शेष कृतित्व पुरस्कार

योग्य नहीं है ? इसमें सन्देह नहीं कि 'धीरे बहे दोन रे' के अतिरिक्त शोलोखॅव-ने केवल दो उपन्यास 'वर्जिन सॉइल अपटर्ण्ड' और 'दे फ़ॉट फ़ॉर देयर कण्ट्री' और एक उपन्यासिका 'ए मैन्स फ़ेट' ही लिखे हैं। परिमाणमें कम होनेके साथ ही इनका स्तर भी सामान्य ही बताया जाता है। प्रायः देखनेमें यह आता है कि बड़े उपन्यास लिखनेवाले—'धीरे बहे दोन रे' चार खण्डोंमें है—संख्यामें भी अधिक रचनाएँ लिखते हैं। उदाहरणस्वरूप प्रेमचन्द।

यहाँ एक बात मनोरंजक है। जब 'धीरे बहे दोन रे' का पहला खण्ड प्रकाशित हुआ तब रूसमें यह प्रवाद फैला कि यह किसी अन्य व्यक्तिकी कृति है जो गृह-युद्धमें मारा गया। इसके खण्डनके लिए शोलोखॅवने तीन वर्ष बाद 'वर्जिन सॉइल अपटर्ण्ड' प्रकाशित की और पहली कृतिका प्रकाशन रोक दिया।

जो हो, 'धीरे बहे दोन रे' निस्सन्देह एक महान् कृति है जिसपर विश्वके सर्वोत्तम पुरस्कार दिये जा सकते हैं।

● ●

सेल्मा लागेरलॅफ़

(१८५८-१९४०)

जिसने २०वीं सदीमें कहा कि गार्हस्थ्य सुख ही
ऐहिक सुखोंकी कुंजी है।

प्रस्तोता : रंगनाथ राकेश

कुमारी सेल्मा लागेरलॅफ़ (स्वीडिश महिला) सर्वप्रथम नोबेल पुरस्कार प्राप्त करनेवाली लेखिका थीं। माता उनकी थीं राजमन्त्रीकी सम्भ्रान्त कन्या और पिता थे असाधारण सैनिक लेफ़्टिनेण्ट लागेरलॅफ़। संस्कृति-सम्पन्ना माता और पौरुषमय पिताका यह प्रभाव सेल्माके जीवनपर पड़ा।

दैव-दुर्विपाकसे जब वह मात्र साढ़े तीन सालकी बच्ची थी तभी उसे पक्षाघात मार गया। लकवेकी बीमारीसे ठीक होनेमें समय लगा और इस बीच वह अपनी पितामहीसे कहानियाँ सुना करती। 'दुलहिनका मुकुट' (द ब्राइडल क्राउन) और 'मारबाका' में बाल्य जीवनका जो मर्मस्पर्शी अंकन हुआ है वह मनोमुग्धकारी तेजस्वितासे अभिमण्डित है।

पक्षाघातके कारण वह लँगड़ी हो गयी थी—और शायद इसी कारण उसका विवाह भी नहीं हुआ – किन्तु कहीं भी उसके व्यक्तित्वमें हीनता-भाव नहीं आया। स्टॉकहोम विश्वविद्यालयसे स्नातिकाकी उपाधि ग्रहण करनेके बाद वह लैण्डुस्क्रोना नामक स्थानमें शिक्षिका बनकर जीवनके अनुभवोंको संजोने लगी। 'जेरुसलम' और 'पुर्तगालियाके सम्राट्' (द एम्परर ऑव पोर्चुगालिया) शीर्षक उनके दोनों उपन्यास 'लण्डन टाइम्स'में प्रकाशित हुए और कुमारी लागेरलॅफ़की ख्यातिका क्षितिज विस्तृत होता गया। 'गोस्टा बर्लिगकी कहानी' (द स्टोरी ऑव गोस्टा बर्लिंग) का फक्कड़-अक्खड़-पियक्कड़ नायक कवि गोस्टा स्कैण्डिनेवियन साहित्यमें छा गया। हैन्स क्रिश्चियन ऐण्डरसनके अतिरिक्त दूसरा कोई भी लेखक इतना लोकप्रिय नहीं हो सका जितनी सेल्मा लागेरलॅफ़।

१९०४ में 'स्वीडिश अकादमी' ने सेल्मा लागेरलॅफ़को स्वर्णपदक दिया था और १९०९ में नोवेल पुरस्कार। स्टॉकहोममें उसे देखनेके लिए मेला लग गया था। नोबेल पुरस्कार प्राप्त करनेवाली इस सर्वप्रथम महिलाके प्रति एडविन ब्जॉर्कमैनने यों लिखा है : 'स्वप्नदर्शी, भावनामयी और अभिलाषापूर्ण महिला हैं सेल्मा लागेरलॅफ़'। नोबेल पुरस्कार देते समय जो विज्ञप्ति स्वीडिश अकादेमीने निकाली थी उसमें इनके आदर्शवाद, आध्यात्मिकता और सृजनशीलताका उल्लेख विशेष रूपसे किया गया है।

अविवाहिता होनेके बावजूद गार्हस्थ्य सुखकी व्याख्यामें उन्होंने १९११ के अन्तर्राष्ट्रीय स्त्री-सुधार कांग्रेसमें कहा था : 'गार्हस्थ्य सुख ही समस्त ऐहिक सुखों-की कुंजी है।'

अंगरेजी अनुवादके आधारपर उनकी रचनाओंके नाम कालक्रमसे हैं :

१ द ब्राइडल क्रॉउन,
२ जेरुसलम,
३ एम्परर ऑव पोर्टुगालिया,
४ इनविज़िबिल लिंक,
५ मिरेकल्ज़ ऑव ऐण्टीक्राइस्ट,
६ फ़्रॉम ए स्वीडिश होमस्टेड,
७ द एम्परर्ज मनो-चेस्ट,
८ द वण्डरफुल ऐडवेंचर्स ऑव नील्स,
९ क्राइस्ट लीजेण्ड,
१० लिलिक्रोनाज़ होम,
११ द आउटकास्ट,
१२ द ट्रेज़र,
१३ द गर्ल फ़्रॉम द मार्शक्राफ़्ट' (इसका हिन्दी अनुवाद 'बहिष्कार' शीर्षकसे विश्ववाणी ग्रन्थमाला, प्रयागसे प्रकाशित हो चुका है)।



हिन्दी निदेशालय
कुछ उपलब्धियाँ कुछ योजनाएँ

ऐसा जान पड़ेगा कि निदेशालयका कार्य धीमी गतिसे चला है। पर उसके लिए क्या सरकारको दोषी ठहरा देना उचित होगा ?

जीवन नायक

भारतके संविधानकी धारा ३५१ को ध्यानमें रखते हुए हिन्दीके प्रसारके लिए जिन विविध कार्योंका सूत्रपात करना अभीष्ट था उनके सुचारु संचालनके लिए एक केन्द्रीय संगठन आवश्यक था। सम्भवतः इसीलिए सन् १९६० में शिक्षा मन्त्रालयके अन्तर्गत केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय नामक एक अधीनस्थ कार्यालयकी स्थापना की गयी थी।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय प्रारम्भसे जिन अनेक कामोंमें लगा हुआ है उन्हें इस तरह वर्गीकृत किया जा सकता है—

१ हिन्दीका विस्तार और समृद्धि,

२ हिन्दीका प्रचार,

३ देवनागरीका मानकीकरण और टाइपराइटर, टेलीप्रिण्टर और मुद्रण यन्त्रोंके लिए उसके रूप-परिवर्तनपर विचार,

४ हिन्दी वर्तनी और लिप्यन्तरणका मानकीकरण,

५ पारिभाषिक और वैज्ञानिक शब्दोंके हिन्दी प्रयोगोंका संकलन और प्रकाशन तथा अन्य प्रकाशन कार्य।

हिन्दीके विस्तार कार्यके अधीन वे सारे काम हैं जिन्हें देशमें हिन्दीके प्रचारसे सम्बन्धित संस्थाएँ करती आ रही हैं। इस काममें समन्वय आवश्यक था। इस दृष्टिसे विभिन्न संस्थाओंके प्रतिनिधियों और राज्य सरकारके सम्बद्ध विभागोंके

प्रतिनिधियोंकी सभा मन्त्रालय-द्वारा समय-समयपर बुलायी जाती रही है और उसकी सिफ़ारिशोंपर अमल किया जाता रहा है।

हिन्दीके प्रचारसे सम्बन्धित सभी ऐसे कार्योंके लिए जो भारत सरकार-द्वारा मान्य हैं, विभिन्न शर्तोंपर अनुदान दिया जाता है ताकि आवश्यक पुस्तकोंकी खरीद, भवन और छात्रावासका निर्माण, कार्यालयके सुचारु संचालनके लिए कर्मचारियोंकी नियुक्ति, परीक्षाओं और पुस्तकोंके लेखन-प्रकाशन आदिपर होनेवाले व्ययका आंशिक अथवा पूरा भुगतान सरकारकी आर्थिक सहायतासे किया जा सके।

देशके हिन्दी तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंके बीच सम्पर्क बढ़ाने और अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें बसनेवाले नागरिकोंमें हिन्दीके प्रति रुचि जागृत करनेके लिए नीचे लिखे 'विनिमय कार्यक्रम' चलाये जा रहे हैं—

अहिन्दी भाषी राज्योंमें हिन्दी शिक्षकोंकी संगोष्ठियाँ : इनमें हिन्दी-साहित्यकी प्रवृत्तियोंपर विचारके आदान-प्रदानकी सुविधा रहती है। हिन्दी-शिक्षणके सिद्धान्तों और समस्याओंपर भी विचार किया जाता है।

हिन्दी तथा अहिन्दी भाषी राज्योंमें विद्वानोंकी व्याख्यानमालाओंका आयोजन : इस आयोजनके अन्तर्गत हिन्दीके विद्वान् अहिन्दीके क्षेत्रोंमें और अहिन्दी क्षेत्रोंके विद्वान् हिन्दी क्षेत्रोंमें निर्धारित विषयोंपर भाषण देने जाते हैं। अबतक ऐसी ११ भाषणमालाएँ आयोजित की जा चुकी हैं।

हिन्दी तथा अहिन्दी भाषी विद्यार्थियोंके वाद-विवाद दल : इस आयोजनके अन्तर्गत हिन्दी तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंके बीच विद्यार्थियोंका विनिमय किया जाता है और निर्धारित विषयोंपर उनके वाद-विवाद (डिबेट) आयोजित किये जाते हैं। अबतक ऐसे ११ दल विभिन्न स्थानोंको जा चुके हैं।

पुस्तकोंकी प्रदर्शनी : हिन्दी साहित्यसे लोगोंको परिचित करानेके लिए विभिन्न अवसरोंपर हिन्दी पुस्तकोंकी प्रदर्शनी आयोजित की जाती है। अबतक वर्धा, दिल्ली, बम्बई, गोहाटी, बंगलौर, एरनाकुलम तथा उज्जैनमें ऐसी प्रदर्शनियाँ आयोजित की जा चुकी हैं।

हिन्दी पुस्तकोंपर पुरस्कार : अहिन्दी भाषी राज्योंके लेखकों और कवियोंको उनकी हिन्दी रचनाओंके लिए पुरस्कार देनेकी व्यवस्था है। यह योजना हालमें

हो शुरू की गयी है और इसके अन्तर्गत प्राप्त पुस्तकोंपर विचार किया जा चुका है। सरकारके निर्णयकी प्रतीक्षा की जा रही है।

हिन्दी पुस्तकोंका निःशुल्क वितरण : अहिन्दी भाषी राज्योंकी शिक्षा संस्थाओं और सार्वजनिक संस्थाओंको प्रति वर्ष चुनी हुई पुस्तकें भेंट की जाती हैं। पुस्तकोंका चुनाव मन्त्रालय-द्वारा गठित एक विशेष समिति-द्वारा किया जाता है।

सेनाके जवानोंको हिन्दीकी पुस्तकें भेंट-स्वरूप देनेकी व्यवस्था भी है। १९६१-१९६५ के बीच इन पुस्तकोंकी खरीदपर लगभग आठ लाख रुपयेका व्यय हो चुका है।

स्वयं शिक्षक पुस्तकें और प्रवेशिकाएँ : हिन्दी सीखनेके इच्छुक भारतीय और विदेशी नागरिकोंकी सुविधाके लिए द्विभाषी रीडरें और स्वयं-शिक्षक पुस्तकें तैयार की जा रही हैं। ऐसी प्रवेशिकाएँ भी तैयार की जा रही हैं जिनकी सहायतासे सुविधा-पूर्वक हिन्दी सीखी जा सके। इन पुस्तकोंकी रचना दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास तथा केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगराकी सहायतासे की जा रही है।

सरकारी कार्यालयोंमें काम आनेवाले साहित्यका अनुवाद : केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय हिन्दीके प्रचारका काम भी करता है। इस क्षेत्रमें उसके कामका एक पक्ष ऐसे सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियोंको हिन्दी सिखाना है जो हिन्दीसे अनभिज्ञ हैं और जिनके लिए हिन्दी जानना आवश्यक हो गया है। इनकी सुविधाके लिए विभिन्न मन्त्रालयों और अधीनस्थ कार्यालयोंमें प्रतिदिन काम आनेवाले सन्दर्भ साहित्यका हिन्दी अनुवाद किया जा रहा है। इस कामके लिए निदेशालय-में एक अलग शाखा है जो मैनुअल, कोड्स, फ़ॉर्म्स, सक्युर्लर्स आदिका अनुवाद और पुनरीक्षण करती है।

देवनागरीका मानकीकरण और टाइपराइटर, टेलिप्रिण्टर तथा अन्य यन्त्रोंके लिए उसके रूप-परिवर्तनपर विचार : प्रारम्भिक शिक्षाके लिए हिन्दी भाषा अपनानेवाले विद्यार्थियोंकी कठिनाइयोंको ध्यानमें रखते हुए तथा कतिपय अन्य कारणोंसे देवनागरीके वर्णोंमें संशोधन कर दिया गया है—यथा अ, ख, झ, ध, म, ज। इस संशोधित देवनागरी वर्णमालाको टाइपराइटर

और टेलिप्रिण्टर कुंजी-पटलोंके लिए अपनाया जा चुका है। 'लाइनो टाइप कॉरपोरेशन' संशोधित देवनागरी लिपिके आधारपर अपने यन्त्रोंमें आवश्यक परिवर्तन करनेके लिए मन्त्रालयसे विचार-विनिमय कर चुकी है। हिन्दी सीखनेवालोंकी सुविधाका ध्यान रखते हुए हिन्दी वर्तनीका मानक रूप तय कर लिया गया है। हिन्दीके रोमन लिप्यन्तरणकी पद्धति भी निश्चित कर ली गयी है। यह अन्तर्राष्ट्रीय नियमों और सूत्रोंपर आधारित है।

प्रकाशन-कार्यक्रम : हिन्दीके प्रचार, प्रसार और समृद्धिके लिए पुस्तकोंके प्रकाशनका कार्य विविध योजनाओंके अन्तर्गत किया जाता है। विश्वविद्यालय स्तरके विभिन्न विषयोंके सन्दर्भ-ग्रन्थों और पाठ्य-पुस्तकोंके लेखन, अनुवाद और प्रकाशनका काम अनेक विश्वविद्यालयों और हिन्दी संस्थाओं-द्वारा किया जा रहा है। ऐसी पुस्तकोंके प्रकाशनका शत-प्रतिशत व्यय-भार भारत सरकार वहन करती है। १ अक्तूबर, १९६५ से पुस्तकोंके प्रकाशनका यह कार्य वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोगको सौंप दिया गया है जो अब केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयके समान शिक्षा-मन्त्रालयके अधीनस्थ कार्यालयके रूपमें कार्य करने लगा है।

पुस्तकोंके प्रकाशनके इस कार्यक्रमके अधीन विभिन्न भारतीय भाषाओंमें मौलिक और अनूदित रचनाएँ प्रकाशित करनेकी व्यवस्था है। लगभग १३७५ स्वीकृत पुस्तकोंमें २७ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें एक पंजाबीकी तथा शेष हिन्दीकी हैं। वैज्ञानिक और तकनीकी पुस्तकोंके प्रकाशन और अनुवादके लिए सबसे पहले जरूरत यह थी कि विभिन्न वैज्ञानिक और तकनीकी विषयोंके पारिभाषिक शब्दोंके हिन्दी पर्याय स्थिर कर लिये जायें। निदेशालय-द्वारा यह काम १९६१ में आंशिक रूपसे पूरा कर लिया गया था और इसी उद्देश्यसे लगभग १२०० पृष्ठोंका एक हिन्दी पारिभाषिक शब्द संग्रह जनवरी १९६२ में प्रकाशित किया गया था। उक्त शब्दसंग्रहके अतिरिक्त 'विज्ञान शब्दावली' नामक एक अन्य कोश पिछले वर्ष प्रकाशित किया जा चुका है जिसमें ७ वैज्ञानिक विषयोंके हिन्दी पर्याय संग्रहीत हैं। लोकप्रिय पुस्तकोंके प्रकाशनकी एक योजना प्रकाशकोंके सहयोगसे चलायी जा चुकी है। इनके अन्तर्गत स्वीकृत २४० पुस्तकोंमें-से ३४ अबतक प्रकाशित की जा चुकी हैं।

निदेशालयके अन्य प्रकाशन कार्यक्रमके अन्तर्गत पिछले चार वर्षोंसे 'भाषा'

त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित की जा रही है जो हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के बीच आदान-प्रदानका मार्ग प्रशस्त करनेका यत्न करती है। अबतक 'भाषा'के २० सामान्य अंक और २ विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं।

पारिभाषिक कोशोंके अतिरिक्त हिन्दीके विभिन्न वर्गोंके पाठकोंके विचारसे विभिन्न स्तरके कोश तैयार करनेका काम निदेशालय-द्वारा किया जाता है। इस काममें विशेषज्ञों और शैक्षणिक संस्थाओंको सहायता भी दी जाती है। श्रीराम-चन्द्र वर्मा-द्वारा 'शब्दार्थ मीमांसा' नामक कोश हालमें ही प्रकाशित किया गया है।

अगली पंचवर्षीय योजनामें कुछ नयी योजनाएँ चलाने और प्रचलित योज-नाओंमें आवश्यक फेर-बदल करनेका निश्चय किया गया है। तदनुसार निदेशा-लयमें एक सूचना-केन्द्रकी स्थापना की जायेगी। यह केन्द्र हिन्दी भाषा और साहित्यके सम्बन्धमें जिज्ञासुओंको प्रामाणिक जानकारी निर्धारित अवधिके भीतर भेजेगा। 'हिन्दी-समाचार-दर्शन' नामक एक बुलेटिन प्रकाशित किया जायेगा जो देश-विदेशमें हिन्दी-सम्बन्धी गतिविधिका विवरण प्रतिमास प्रस्तुत करेगा। 'भाषा' मासिक पत्रिकाके रूपमें प्रकाशित की जायेगी। अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें हिन्दी क्षेत्रके विद्यार्थियोंके और हिन्दी क्षेत्रोंमें अहिन्दी क्षेत्रके विद्यार्थियोंके मेले आयोजित किये जायेंगे। सांस्कृतिक कार्यक्रमोंके लिए विद्यार्थियोंकी टोलियोंका आदान-प्रदान किया जायेगा।

प्रवासी भारतीयों और विदेशी नागरिकोंको हिन्दीका नियमित शिक्षण देनेके लिए ग्रामोफ़ोन रेकर्ड तथा पत्राचारपर आधारित पाठ्य-क्रम चलाये जायेंगे। विभिन्न स्तरके हिन्दी सीखनेवाले विद्यार्थियोंके उपयोगके लिए पाठ्य-सामग्री तैयार की जायेगी। 'द्वि-भाषी कोश' और व्यावहारिक (हिन्दी-अँगरेजी) कोश तैयार किये जायेंगे।

विद्वानोंकी भाषण-मालाएँ और शिक्षण-शिविर परिवर्तित प्रणालीके अनुसार आयोजित किये जायेंगे ताकि हिन्दी सीखने और सिखानेवालोंको आनेवाली कठि-नाइयोंके सम्बन्धमें विचार-विमर्श किये जायें और उनके समाधानके लिए क्रिया-शील बना जाये। 'हिन्दी-शिक्षण' नामक स्तम्भमें 'भाषा' त्रैमासिकके जरिए हिन्दी सिखानेवाले विद्वानोंके मार्गमें आनेवाली कठिनाइयोंके सम्बन्धमें लेखादि प्रकाशित किये जा रहे हैं।

भारतीय भाषाओंकी भावनात्मक एकताको प्रदर्शित करने तथा समसामयिक भारतीय साहित्यकी महत्त्वपूर्ण कृतियोंको एक पुस्तकमें संकलित करनेका कार्य भी निदेशालय कर रहा है। श्रेष्ठ भारतीय कृतिकारोंकी रचनाओंका एक संग्रह 'संकलन' नामसे शीघ्र प्रकाशित हो रहा है। इसमें हिन्दीके कवि, कथाकारोंकी कृतियोंका अनुवाद किसी दूसरी भारतीय भाषामें और अन्य भारतीय भाषाओंकी कृतियोंका अनुवाद मूल रचनाके साथ हिन्दीमें भी प्रकाशित किया जायेगा। भारतके सभी स्वनामधन्य कृतिकारोंकी कृतियोंको इसमें संकलित करनेका प्रयास किया गया है।

मार्च १९६६ से प्रसिद्ध हिन्दी-सेवी डॉ० ए० चन्द्रहासन्‌ने निदेशकका पद ग्रहण किया है। उनके संरक्षणमें निदेशालय हिन्दी प्रसारके विभिन्न कार्यक्रमोंको सक्रिय रूपमें कार्यान्वित कर रहा है और हमें आशा है कि ये कार्य महत्त्वपूर्ण और अनुकरणीय सिद्ध होंगे।



समयके प्रति लेखककी प्रतिबद्धता, युग-बोधके प्रति सचेत अभिज्ञानमें निहित है। समयका छन्द सचेत द्रष्टा लेखककी रचनाओंमें अपने-आप झंकृत होता है। हमारे जीवनका कोई भी ऐसा अंश नहीं है जो समयसे आबद्ध न हो। जीवनके प्रति साक्षी होनेका भाव, समयके प्रति साक्षी होना ही है। आज भी कथा-साहित्यमें समय तत्त्वकी अभिव्यक्तिका सर्वमान्य तरीका चेतना-प्रवाह-पद्धति (स्ट्रीम ऑव कांशसनेस) ही है। "मैं" वस्तुतः व्यक्ति-सत्यका उत्तम-पुरुष (फ़र्स्ट पर्सन) ही नहीं समय सत्यका साक्षी और भोक्ता पुरुष भी है। एक आलोचककी मुझसे यह शिकायत रही है कि मेरी कहानियोंमें प्रायः एक 'मैं' ज़रूर होता है। यह 'मैं' समयके प्रति मेरी निजी प्रतिबद्धताका साक्षी है, जिसके माध्यमसे जीवनके प्रत्येक अक्सको मैं सही ढंगसे देखना चाहता हूँ। दूसरी ओर यह 'मैं' इस बातका भी सबूत है कि 'मैं' वर्तमान युगमें, जो सामूहिक और यान्त्रिक सत्याभासोंसे परिचालित होनेके लिए विवश है, अपने निजी खून-मांससे उपलब्ध सत्यको कहनेका प्रयत्न करता है।

—शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय' से उद्धृत

अक्षरोंका सेतु
कृतियोंकी प्रतिक्रिया

लेखन-प्रकाशनके आयोजन-श्रमकी इकाई अधूरी रहेगी
जबतक पारखी पाठककी प्रतिक्रिया प्रकाशकके
पास होती लेखककी मेज़तक न पहुँचे

हिन्दी जैनभक्ति काव्य और कवि —

लेखकीय पुनर्वक्तव्य तथा अन्य मन्तव्य

'हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि' में पाँच अध्याय हैं। पहले अध्यायमें जैनभक्तिकी प्रवृत्तियोंका विवेचन है। यद्यपि भक्तिमार्ग सार्वभौम है, उसकी प्रवृत्तियाँ समान हैं; किन्तु फिर भी जैनभक्तिकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। इसका मूल कारण है उनका वीतरागी आधार। इसे मैं अपने प्रथम ग्रन्थ 'जैन-भक्तिकाव्यकी पृष्ठभूमि' में सिद्ध कर चुका हूँ। यहाँ इस अध्यायके विविध उप-शीर्षकोंके साथ वह विशेषतत्त्व यथास्थान अभिव्यक्त होता गया है। जैसे, हिन्दी भक्तिकाव्य निर्गुण और सगुण दो धाराओंमें बँटा हुआ है। एकने दूसरेका खण्डन किया है। जैनभक्तिमें 'निष्कल' और 'सकल' ब्रह्म एकमें ही समन्वित हैं। आज जो अर्हन्तके रूपमें सशरीर ब्रह्म है, वह ही अघातिया कर्मोंके क्षय होनेपर सिद्ध अर्थात् अशरीरी ब्रह्म बन जाता है। दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक ही हैं। जैन कवियोंने भी उनमें कोई अन्तर नहीं माना। उन्होंने दोनों-के गीत एक साथ गाये। इसी कारण अध्यात्म और भक्तिपरकताका जैसा समन्वय जैन भक्तिकाव्यमें पाया जाता है, अन्यत्र नहीं। प्रत्येक जैनकवि दोनोंको साथ लेकर चला। कवि बनारसीदासका 'नाटक समयसार' दर्शनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'समयसार' पर आधृत है, परन्तु भक्तिरसके संयोगसे वह उत्तम साहित्यकी कोटि-में गिना जाता है। बनारसीदास काव्यके परिप्रेक्ष्यमें 'अध्यात्म' और 'भक्ति'

को पृथक् न कर सके।

इसी भाँति भक्तकी मनोकामनाओंको भगवान् विष्णुने कृतार्थ बनाया और जिनेन्द्रने भी। दोनोंके ही भक्तोंने अपने-अपने भगवान्की कृपासे सांसारिक और पारलौकिक अभिलाषाओंकी पूर्तिकी बात स्वीकार की। तज्जन्य गीतोंसे उनकी अनुभूतियाँ मुखर हो-हो उठी हैं। किन्तु भगवान् विष्णुने जो काम स्वयं दौड़कर, विश्वमें आकर, शरीर धारण कर किया है, वह जिनेन्द्रने केवल अपनी प्रेरणासे सम्पन्न कर दिया है। जिनेन्द्र मोक्षसे हटकर विश्वमें नहीं आते! उसकी प्रेरणा ही भक्तको सब कुछ प्राप्त करनेमें समर्थ बनाती है। भक्त अपने भगवान्की इस वीतरागी विवशतासे अवगत है। उसे वह अच्छा मानता है, बुरा नहीं। आचार्य समन्तभद्रने झूमकर लिखा, "न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ विवान्त-वैरे। तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः॥" इसीको कवि द्यानतरायने एक उपालम्भकी रसीली व्यंजनामें अभिव्यक्त किया है, "तुम प्रभु कहियत दीनदयालु! आपन जाय मुकतिमें बैठे हम जु रुलत इह जगजाल।"

अनुरागमूला भक्तिमें 'दाम्पत्यरति' एक सामर्थ्यवान् प्रवृत्ति है। निर्गुण और जैन दोनों ही काव्योंमें उसे पर्याप्त स्थान मिला। रूपकोंका सहारा लिया गया। किन्तु जैन काव्योंके रूपक जहाँ पावनता सहेजे रहे, जो भक्तिका प्रमुख गुण है, वहाँ अन्य रूपकोंमें 'रति' वाले पहलूके अधिक उभर जानेसे अश्लीलता छलक उठी; उसे कोई रोक नहीं सका। 'दाम्पत्यरति' के अन्तर्गत ही 'आध्यात्मिक विवाहों' का निरूपण है। यह जैन भक्तिका नितान्त मौलिक तत्त्व है। वह कहीं अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता।

सतगुरुकी महिमा सन्त, वैष्णव और जैन तीनों ही कवियोंने स्वीकार की। तीनोंमें उसे प्रतिष्ठा मिली। सन्तोंने सतगुरुको गोविन्दसे भी बड़ा कहा। किन्तु उसकी भक्तिमें भाव-विभोर गीतोंका निर्माण केवल जैन कवि ही कर सके। सतगुरुके विरहमें जैन शिष्य बेचैन हो-हो उठा। जैन विरह काव्य उनकी बेचैनीके चित्रसे ओत-प्रोत है। प्रवासके बाद आये सतगुरुके मिलनसे शिष्यकी बाह्य और अन्तःप्रकृतिका पुलकन भी कम नहीं है।

जैन भक्तिकाव्यकी प्रवृत्तियोंके इन और अनेक विशेष मोड़ोंको मैं यथास्थान स्पष्ट करता गया हूँ। यह सब इस अध्यायमें निबद्ध है। फिर भी एक समीक्षकने इस ग्रन्थकी आलोचनाके रूपमें लिखा, "विद्वान् लेखक हिन्दी साहित्यके समीक्षा-

शास्त्रियों-द्वारा निर्धारित दायरोंमें स्वयंको कुछ बँधा-बँधा-सा पा रहा है।" अपने इस कथनके समर्थनमें उनका वाक्य है, "जैन साहित्यकी तथाकथित निर्गुण-भक्ति और सगुणभक्ति सर्वथा पृथक्-पृथक् दो वस्तुएँ या धाराएँ हैं ही नहीं—वह तो एक ही भावके दो स्तर हैं, एक ही कविकी प्रायः एक ही रचनामें दोनों भाव साथ-साथ दृष्टिगोचर होते हैं।" यह पढ़कर मुझे आश्चर्य हुआ है। मैंने इस ग्रन्थके पहले पृष्ठपर पहली प्रवृत्ति यह ही लिखी है। जान पड़ता है समीक्षकने ग्रन्थका पहला पृष्ठ भी नहीं पढ़ा। यह उनका दोष नहीं, आजकल 'ग्रन्थ-समीक्षा' चल ही हलके स्तरपर रही है। यह लेखकका भाग्य कि समीक्षाकी गोट चित्त पड़े या पट्ट। जहाँतक दायरोंका सम्बन्ध है, वे यदि सार्वभौम हैं और जैन काव्यों-पर भी घटित होते हैं तो उन्हें स्वीकार करनेमें क्या हानि है। उनसे जैन काव्यों-का विशेष अस्तित्व कैसे खतरेमें पड़ जाता है, मैं नहीं समझ सका।

इसी सन्दर्भमें एक बात और है। इस अध्यायको लिखते हुए जैन भक्ति-काव्यकी एक प्रवृत्ति छूट गयी थी। मैंने उसे अपनी भूमिकामें दे दिया। वह है 'वेलिकाव्य'। अपभ्रंश और हिन्दीके 'वेलिकाव्यों' की अधिकांश रचना जैन कवियोंने की। यह प्राप्त खोजोंसे प्रमाणित है। मैंने यह कहीं नहीं लिखा कि इस अपभ्रंश और हिन्दीके 'वेलिकाव्य' का मूल उद्‌गम भी जैन साहित्य ही था। मैंने उसके पूर्वचिह्न उपनिषद्‌में स्वीकार किये हैं। उत्स कहीं भी हो, यह प्रवृत्ति जैन काव्योंमें पनपी। मेरा मन्शा केवल इतना ही स्पष्ट करना था। किन्तु एक समीक्षकने 'सम्मेलन पत्रिका' में लिखा, "परन्तु विद्वान् लेखकने उसका (वेलि-काव्यका) मूल उपनिषद् साहित्य तकमें पाया है, जिसका जैन उत्स होना अभी-तक सिद्ध नहीं हो सका है।" इससे स्पष्ट है कि उन्होंने भूमिकाका यह पैराग्राफ़ ग़ौरसे नहीं पढ़ा। क्या उत्स उपनिषद्‌में होनेपर कोई प्रवृत्ति जैन काव्योंमें नहीं पनप सकती?

दूसरा अध्याय हिन्दीके जैन भक्तकवियोंके जीवन-वृत्त और साहित्यसे सम्बन्धित है। इसमें ९० कवियोंका विवेचन है। लगभग ५५ कवि ऐसे हैं जो नितान्त अज्ञात थे, जिनका किसीको परिचय नहीं था। प्रकाशित और ज्ञात कवियोंके भी प्रामाणिक परिचय और उनकी साहित्यिक कृतियोंके विशद विश्ले-षणकी आवश्यकता बनी हुई थी। कुछ सामग्री पत्र-पत्रिकाओं और सूचियोंमें बिखरी अवश्य थी। किन्तु वह न-कुछके बराबर और अप्रामाणिक थी। उनके

साथ तुलनात्मक और समीक्षात्मक दृष्टिकोण तो स्पष्ट ही था। इसकी पूर्ति तभी सम्भव थी जबकि उनकी सब और पूर्ण रचनाएँ देखनेको मिलतीं। मैं तीन वर्षोंके ग्रीष्मावकाशमें अजमेर, जयपुर, महावीरजी और वाराणसी रहा। समीपस्थ होनेके कारण दिल्लीके भण्डारोंको समय-समयपर टटोलता रहा। इसके अतिरिक्त बड़ौतके पंचायती मन्दिरमें भी एक विशाल भण्डार है, जिसका लाभ मुझे सदैव मिला। १५वीं और १६वीं शताब्दीके हिन्दी कवियोंने, किसी-न-किसी अंशमें, सिद्धान्त और पुराणसे सम्बन्धित रचनाएँ संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषामें भी रची थीं। इन कृतियोंकी प्रशस्तियोंमें उनका जीवनवृत्त थोड़ा-बहुत उपलब्ध हो जाता था, अतः उनका अध्ययन किया। कुछ कवि भट्टारक या सूरि थे। पद और परम्पराके अनुकूल उनका अधिकांश जीवन पुरातात्त्विक निर्माण और उनकी प्रतिष्ठाओंमें व्यतीत होता था। वहाँ उनका परिचय अंकित था। अतः उनको पढ़ना पड़ा या शिलालेख संग्रह तथा विभिन्न म्यूजियमोंकी रिपोर्टोंसे सहायता लेना अनिवार्य हो गया। श्वेताम्बर कवियोंका जीवन जाननेके लिए या तो गुजराती ग्रन्थोंका अध्ययन किया या उनके शिष्योंकी कृतियोंको पढ़ा। हिन्दी रचनाओंमें जहाँ प्रशस्तियाँ थीं, सहायता मिली; किन्तु इसके लिए एक ही कृतिकी अनेक पाण्डुलिपियोंको देखना पड़ा। देशी-विदेशी विद्वानोंके द्वारा लिखे अनेक इतिहास ग्रन्थोंको भी देखा। इस सबसे होकर गुजरा, ग्रन्थको भरसक प्रामाणिक बनानेका प्रयास किया। महापण्डित राहुल, काका कालेलकर, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, आचार्य कैलाशचन्द्र जैन-जैसे मनीषियोंने उसकी प्रशंसा भी की। किन्तु मैं विनम्रता-पूर्वक पुनः यह लिखता हूँ कि पाण्डुलिपियोंके आधारपर लिखा गया कोई भी ग्रन्थ अन्वेषणके अनन्तपथका अन्तिम पत्थर नहीं हो सकता। नयी-नयी पाण्डुलिपियाँ प्राप्त होती ही रहती हैं। उनके आधारपर संशोधन अपेक्षित होते हैं। हाँ, स्वागत है, किन्तु उनको भी एक ठोस भूमिपर टिका होना चाहिए। और इस कथनको लेकर ही यदि कोई अपनी बातको प्रामाणिक बनाना चाहे तो वह उसका दुराग्रह और अहंकार ही होगा। पहले मैंने अपने ग्रन्थकी भूमिकामें लिखा था, "उसमें कुछ कमी रह गयी है या वह नितान्त प्रामाणिक नहीं बन सका है तो आगे अनुसन्धित्सु उसे पूरा करेंगे, इसी आश्वासनके साथ यह ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ।" मैंने यह ईमानदारीके साथ लिखा था। एक समीक्षकने मेरी एक मान्यताका खण्डन करनेके लिए इस उद्धरणका ही

सहारा ले लिया। उन्हें मैं क्या कहूँ। पहले वे जैन साहित्यसे यत्किंचित् हो परिचित हो लें।

इन ९० कवियोंकी शतश: कृतियोंमें प्रत्येककी तीन-चार पाण्डुलिपियाँ प्राप्त करना और उनके पाठ-भेदोंको मिलाना न सम्भव था और न प्रसंगानुमोदित। यह सम्पादनकी बात हुई। एक रचनाका सम्पादन ही मुश्किल होता है, सैकड़ोंकी तो बात अलग है। हाँ, प्रतिलिपिकर्त्ताकी अशुद्धि शोधनेमें मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। और इसी कारण इन सब कृतियोंके उद्धरण इन्वर्टेड कॉमाज़में बन्द करके रखे हैं। यदि उनमें कोई विद्वान् अशुद्धि देखता है, वह उस प्रतिलिपिको पढ़नेका कष्ट करे, जहाँसे मैंने लिया है। प्रतिलिपिका नाम, स्थान पाद-टिप्पणमें दिया है। एक बात और, आधुनिक भाषा-ज्ञानके आधारपर मध्यकालीन काव्यकी शुद्धि और अशुद्धिकी परख नहीं हो सकती। ऐसा करना वैसा ही होगा जैसे कोई सोनेकी कसौटीपर कमलोंको जाँच रहा हो।

इस ग्रन्थके कवियोंके अतिरिक्त अन्य जैन भक्त कवि हैं ही नहीं, ऐसा मैंने कहीं नहीं लिखा। हैं और खूब हैं। कोई भी गुटका उठा लीजिए, किसी भी शास्त्रके पन्ने पलट लीजिए, कोई-न-कोई रचना मिल जायेगी। वह कविताका समय था। वैद्यक, गणित और ज्योतिषके ग्रन्थ भी कवितामें रचे जा रहे थे। यदि हम उसे कविता न कहकर पद्य कहें तो ठीक होगा। मैंने ऐसा समझा है कि किसी भी तीर्थंकर, देवी-देवता या मन्दिर-चैत्यकी स्तुतिमें खींची गयी पद्यबद्ध कोई भी पंक्तियाँ कविता नहीं हो सकतीं। कविता वह ही है जिसमें काव्य-रस हो। जिस प्रकार प्रत्येक तीर्थंकरकी मूर्ति वीतरागी भाव प्रकट नहीं कर पाती वैसे ही प्रत्येक कविता भक्तिरस नहीं ला पाती। मैं उन्हें न ले सका। मैंने चाहा कि हिन्दी जगत्के समक्ष उन्हीं जैन कवियों और उनकी रचनाओंको रखूँ जो रखने योग्य हों। खोजमें प्राप्त हुई है, हाथकी लिखी हुई है, पुरानी है—इसी आधारपर कोई रचना मूल्यवान् नहीं बन जाती। हो सकता है कि कोई ऐसा कवि और काव्य, जो भक्तिरसकी दृष्टिमें उत्तम हो और मैं यहाँ न दे सका होऊँ, किन्तु इसका कारण उनके प्रति मेरा उपेक्षाभाव नहीं है। अवश्य ही वे मेरे दृष्टि-पथमें न आ सकीं। उन्हें दूसरे विद्वान् प्रस्तुत करें। मैंने जिन कवियोंको लिया वे सभी भक्त कवि हैं। उनकी रचनाएँ भक्तिपूर्ण हैं। जो भक्ति-परक नहीं हैं, छोड़ दिया है। इन कवियोंकी कथात्मक कृतियोंको मैं भक्तिमय मानता

है। उनका मूलस्वर भक्तिसे नितान्त सम्बन्धित है। वह ग़ज़ल जिसमें किसी स्थानके मन्दिर, चैत्य, शिखर, स्तम्भ मूर्तियोंका विवेचन हो, क्यों भक्तिपूर्ण नहीं है? जैन परिप्रेक्ष्यमें आध्यात्मिक कृतियाँ भक्तिसे पृथक् नहीं हैं। जैन भक्ति काव्यकी विशेषता है उसकी अध्यात्म-परकता। वहाँ अध्यात्म और भक्ति एक है। दोनोंमें कोई अन्तर नहीं। इसी कारण इस ग्रन्थकी अध्यात्म कृतियाँ भक्ति-के दायरेमें ही आ जाती हैं। उनका औचित्य स्वतःसिद्ध है।

इस ग्रन्थके कवियोंका समय वि० सं० १४००–१८०० है। इसपर दो विद्वानोंकी दो प्रकारकी समीक्षाएँ हैं। दोनों एक-दूसरेकी विरोधी हैं। एकने लिखा, "विद्वान् लेखकने वि० सं० १८०० के लगभग ही हिन्दीके भक्त जैन कवियों और काव्योंकी परम्परा समाप्त कर दी।" दूसरेका कथन है, "हिन्दी साहित्यके इतिहास-लेखकों-द्वारा भक्तिकाल वि० सं० १४००-१७०० तक माना जाता है, किन्तु डॉ० जैनने अपने शोध-द्वारा उक्त कालको वि० सं० ९९० से १९०० तक विस्तृत होनेका आधार प्रस्तुत किया है, जो युगीन प्रमुख प्रवृत्तिके आलोकमें विचारणीय है।" यदि दोनोंने मेरे ग्रन्थकी भूमिका (पृ० १३) पढ़ ली होती तो ऐसा न लिखते। मेरा निवेदन है कि वे उसे पढ़ें; वहाँ मैंने लिखा है कि हिन्दीके तथाकथित वीरगाथाकालमें जैनभक्तिकी रचनाओंका प्रारम्भ हो गया था, किन्तु था वह प्रारम्भ ही। उसका विकास १४वीं शतीमें देखा जाने लगा। १५वीं शताब्दी तो जैन भक्तिके पूर्ण यौवनका समय था। मेरी दृष्टिमें वह १९वीं शती तक चलता रहा। इस भाँति मैं वि० सं० १४०० से १९०० तकके समयको जैन भक्तिकाव्यका विकास युग मानता हूँ। मैंने इस ग्रन्थका समय १८०० तक रखा है, यह समझकर ही कि ४०० वर्षका समय एक अनु-सन्धित्सुके लिए अधिकसे अधिक पर्याप्त है। इस प्रवृत्तिके अवशिष्ट समयपर अन्य विद्वान् लिखें। मैंने यह कहीं सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं की कि जैन भक्तिकाव्य १८०० तक ही है, आगे नहीं। मैंने वि० सं० १८०० से १९०० तकके अज्ञात जैन भक्त कवियोंका विवरण भूमिकामें दिया है।

तीसरे अध्यायमें जैनभक्तिके भावपक्षपर लिखा गया है। इसमें सख्य, वात्सल्य, प्रेम, विनय और शान्ति नामके पाँच भावोंका विवेचन है। इनमें आगे-आगे विशुद्धता आती गयी है। सर्वोत्तम है शान्त भाव। वैसे हरिभक्ति-रसामृत-सिन्धुमें माधुर्यको सबसे अधिक विशुद्ध स्वीकार किया है। यहाँ यह क्रम जैनभक्ति

साहित्यकी भावधाराके अनुरूप ही रखा है। सख्यभावमें जीव उस आत्माको अपना सखा मानता है जिसमें परमात्मशक्ति मौजूद है, किन्तु जो अपने रूपको न पहचानकर इधर-उधर बहक गया है। एक सच्चे मित्रकी भाँति यह जीव उसे मीठी फटकार लगाता है। वात्सल्यभावमें तीर्थंकरके बालरूप, बालिका राधा, सीता, अंजना और बाल हनूमान्का निरूपण है। तीर्थंकरके गर्भ और जन्म अव-स्थाओंका वर्णन जैनकाव्योंमें ही मिलता है। सूरदासका जितना ध्यान बालक कृष्णपर जमा, बालिका राधापर नहीं। जैन भक्तिकाव्योंमें उनका मनो-वैज्ञानिक विवेचन है। हनूमान्का बालरूप उदात्तता-परक है, मधुरताजन्य नहीं। इससे स्पष्ट है कि उसपर श्रीमद्भागवतका प्रभाव नहीं है। इसके अतिरिक्त, अनेक जैनकाव्योंके आधारपर इन सबकी विविध बाल मनोदशाओंको स्पष्ट करनेका भी प्रयास किया गया है। फिर भी मैंने माना है कि वह सूर-जैसा नहीं है। इस दिशामें सूरका सानी नहीं। प्रेमभावके अन्तर्गत दाम्पत्यरति, आध्यात्मिक विवाह, तीर्थंकर नेमीश्वर और राजुलका प्रेम, बारहमासा, आध्यात्मिक होलियाँ और अनन्य प्रेमपर लिखा है। प्रेममूला भक्तिके अध्येताओंको नवीन सामग्री उपलब्ध होगी, ऐसा मुझे विश्वास है। विनयभाव—सेवा, दीनता, लघुता, आराध्यकी महिमा, अन्यसे महत्ता, नामजप, जैसे उपशीर्षकोंमें विभक्त है। यह सब जैन भक्ति काव्योंपर आधृत है। बीच-बीचमें वैष्णव भक्तिकाव्यसे तुलना भी की गयी है। जैन तत्त्वोंकी अपनी विशेषता यथास्थान निबद्ध है। शान्तभावके प्रारम्भमें शान्तरसकी परिभाषा है। उसके निरूपणमें जैन और अजैन आचार्योंके साहित्य ग्रन्थोंका सहारा लिया है। अनन्तर, जैन-भक्तिकाव्यों शान्तभक्तिमूलक उत्कृष्ट स्थल और उनका विश्लेषण है। कवि वह है जो भावुक हो और जिसमें अपने भावोंको चित्रवत् उपस्थित करनेकी शक्ति हो। जैनकाव्य उसपर खरा उतरता है।

चौथा अध्याय जैन भक्तिकाव्यके कलापक्षसे सम्बद्ध है। उसमें भाषा, छन्दविधान, अलंकार-योजना और प्रकृति-चित्रणपर लिखा गया है। जैन आधारपर इन चारों उपशीर्षकोंमें बहुत-कुछ ऐसा है, जो हिन्दी भाषाशास्त्रियोंको नवीन प्रतीत होगा। उनसे वे अभीतक अनवगत थे। अब लाभान्वित होंगे। यदि हो सके तो ग्रन्थको गौरवान्वित मानूँगा। सच यह है कि मध्यकालीन जैन हिन्दी काव्यका भाषाविज्ञानकी दृष्टिसे अध्ययन होना चाहिए। मैं नहीं कर सका। अन्य

कोई मनस्वी विद्वान् कर सकेगा, इस विश्वाससे आश्वस्त हूँ।

पाँचवाँ अध्याय तुलनात्मक है। इसमें हिन्दीके सन्त और वैष्णव कवियोंसे तुलना की गयी है। भक्तिरस-समन्वित उत्तम काव्यको कसौटी माना है। उसपर जो खरा उतरा अच्छा कहा, चाहे वह जैन हो या अजैन। कबीर और उनका सम्प्रदाय निर्गुण ब्रह्मका उपासक था। उनकी भक्तिमय प्रवृत्ति सन्देहसे परे है। भक्तिके लिए यह आवश्यक नहीं कि भक्त पढ़ा-लिखा ही हो। भक्ति दिलसे सम्बन्धित है। उसके लिए ग्रन्थावलोकन आवश्यक नहीं। किन्तु यह दिल-दिलकी अलग-अलग बात है। कुछ दिलोंकी मूलवृत्तियाँ स्वतः जागृत हो जाती हैं और कुछकी शास्त्रके निमित्तसे। इसीको जैन आचार्योंने निसर्गज और अधिगमज कहा है। खैर, दोनों ही तरहसे भक्ति हो जाती है और वह भक्त बन जाता है। दोनोंके समान होते हुए भी बाह्य प्रवृत्तियोंमें अन्तर रहता है। पढ़े-लिखे भक्तके भावोंकी अभिव्यक्तिमें एक ऐसा परिमार्जन होता है, जो बेपढ़े-लिखे भक्तमें नहीं आ पाता। कबीर ऊँचे दर्जेके भक्त थे। उनकी भक्तिको मैंने कहीं चुनौती नहीं दी। उनके काव्यकी अधिकांश प्रवृत्तियाँ जैन कवियोंसे मिलती-जुलती हैं। मैंने उनको यथास्थान सादर ग्रहण किया है। किन्तु यह सच है कि यदि वे पढ़े-लिखे होते तो उनकी वाणीकी कड़वाहट मधुरतामें बदल जाती और उनकी अक्खड़तामें मार्दव आ जाता। उनमें माधुर्यके अभावकी बात डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल बहुत पहले लिख चुके थे, यह मैंने कुछ नया नहीं लिखा है। मेरे लिखनेपर श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी नाराज़ हो गये और उन्होंने लिखा कि एक भक्तके लिए शिक्षा-दीक्षा प्राप्त होना अथवा कथन-शैलीमें ग्राम्यदोषका परिहार अनिवार्य क्यों? अनिवार्यकी बात तो मैंने लिखी नहीं। किन्तु उसका बाह्यपक्ष शास्त्राध्ययनसे सुधरता अवश्य है। जैन कवियोंका सुधरा था, कबीरका नहीं। इसी परिच्छेदसे उनका समाधान होगा।

वैष्णव कवि सुसंस्कृत थे। उनका अन्तःपक्ष शुद्ध है तो बाह्यपक्ष प्रबल। जैन और वैष्णव दोनोंकी प्रवृत्तियोंमें साम्य है। जहाँ कुछ अन्तर है, स्पष्ट कर दिया है। मैंने उनके मुक्तक काव्योंकी तुलना की है। सूरके सूरसागर और तुलसीकी विनयपत्रिकाके पदोंसे जैन पद किसी भी दशामें कम नहीं हैं। उनमें माधुर्य है, प्रसाद है। भाषा सशक्त है। अलंकारोंमें स्वाभाविकता है। मैं चाहता हूँ कि हिन्दी साहित्यके अध्येता उनका अध्ययन करें। वे जैनधर्मसे सम्बन्धित हैं वैसे ही, जैसे सूर और तुलसी वैष्णव धर्मसे। किसी धर्मकी भूमिका होनेसे कोई

काव्य अपने पदसे च्युत नहीं हो जाता। उसमें मानवकी मूलवृत्तियोंकी अभिव्यक्ति ही मुख्य है, फिर चाहे उसका किसी धर्मसे सम्बन्ध हो या न हो। इस अध्यायमें जैन कवियों और उनके काव्यका मूल्यांकन है। अन्य विद्वान् भी कर देखें। यदि खरा पायें, उन्हें यथास्थान प्रतिष्ठित करें, ऐसी मेरी भावना है। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव, मुनिश्री नथमलजी आदिकी दृष्टिमें यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्यके इतिहासमें एक नया अध्याय जोड़ेगा। यदि ऐसा हुआ तो मैं अपने प्रयासको सार्थक मानूँगा।

—डॉ० प्रेमसागर जैन

● 'हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि'

भारतवर्षके मध्ययुगीन साहित्यकी सबसे बड़ी सम्पदा भक्ति-साहित्य है। उस युगमें भक्तिकी यह उच्छल तरंग हिन्दूधर्मकी वैष्णव और शैव धाराओं तक सीमित न रहकर जैनधर्ममें भी पूरे वेगके साथ प्रवाहित हुई थी। जैन धर्मके सम्बन्धमें कुछ ऐसी भ्रान्ति आज तक विद्यमान है कि यह धर्म वीतराग होनेकी प्रेरणा देनेवाला होनेके कारण ज्ञान-प्रधान है। किन्तु इस धारणाकी पुष्टि न तो जैन साहित्यके प्रमाणोंसे होती है और न जैन परम्परामें ही इसकी स्वीकृति है। जैन साहित्यके मनीषी अन्वेषक डॉ० प्रेमसागरने अपने अनुसन्धानसे जैन भक्ति-साहित्यका क्रमिक इतिवृत्त प्रस्तुत कर एक ऐसी अज्ञात धाराको भक्ति-सिन्धुसे संयुक्त कर दिया है जिसमें सगुण-निर्गुण दोनों रूप व्याप्त हैं। इस अनुसन्धानसे भारतीय भक्ति-साधनाका सम्पूर्ण चित्र अंकित करनेमें बहुत सहायता मिलेगी। वस्तुतः जैन भक्ति साहित्यकी लुप्त कड़ीके अभावमें भारतीय भक्ति साधनाका आकलन अपूर्ण ही था।

डॉ० प्रेमसागर जैनका शोध-प्रबन्ध दो खण्डोंमें विभक्त है। प्रथम खण्ड 'जैन भक्ति काव्यकी पृष्ठभूमि' सैद्धान्तिक विवेचन तथा तात्त्विक वस्तु-निरूपण-से सम्बद्ध है। इस खण्डकी सामग्रीके अनुशीलनसे जैन भक्ति साधनाका सर्वांगीण चित्र पाठकके मनमें उभर आता है और भक्तिके तुलनात्मक अध्ययनके

लिए प्रभूत सामग्री उपलब्ध होती है। द्वितीय खण्डमें उन जैन भक्त कवियोंके काव्यका अनुसन्धान है, जिन्होंने हिन्दी साहित्यमें भक्ति काव्यका सर्जन किया! अभी तक आदि काल तथा भक्ति कालमें कुछ कवियोंका ही उल्लेख इतिहास ग्रन्थोंमें होता था, किन्तु डॉ० जैनके इस शोध ग्रन्थके बाद शताधिक जैन कवि प्रकाशमें आये हैं और उनकी समृद्ध काव्य-सम्पदाका हिन्दी साहित्यके इतिहास ग्रन्थोंमे उपयोग हो सकेगा। हिन्दी भक्ति साहित्यका इतिहास लिखनेमें जिस प्रकार बंगाल, महाराष्ट्र और गुजरातके कवियोंकी चर्चा होती रही है, उसी प्रकार अब विशद रूपसे हिन्दीके जैन भक्त कवियोंका उल्लेख हो सकेगा।

डॉ० प्रेमसागर जैनका शोध कार्य निस्सन्देह हिन्दी साहित्यके प्रामाणिक इतिहास-लेखनमें अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगा और भक्ति-साहित्यकी सुदृढ़ किन्तु लुप्त कड़ी उसमें जुड़ सकेगी। इस गम्भीर एवं प्रामाणिक शोध कार्यके लिए डॉ० जैन हिन्दी जगत्में बधाईके पात्र हैं।

—डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

कुछ वर्ष पहलेकी बात है एक दिन अकस्मात् मेरे सामने प्रश्न आया—क्या जैन शासनमें भक्तिकी धारणा है? मैंने उसका उत्तर दिया है। किन्तु उस दिन मैं उतना स्पष्ट नहीं था, जितना आज हूँ। उस दिनका मेरा उत्तर जैन भक्ति काव्योंके अनुशीलनपर आधृत नहीं था किन्तु इस तर्कपर आधृत था कि जहाँ गुरु-शिष्यका सम्बन्ध है, वहाँ भक्ति कैसे नहीं होगी?

समयके साथ जैसे-जैसे काव्य-ग्रन्थोंका अनुशीलन हुआ तो मुझे लगा कि मेरा वह उत्तर तर्काश्रित ही नहीं, तथ्याश्रित भी है। डॉ० प्रेमसागर जैनका शोधनिबन्ध 'जैन भक्ति काव्यकी पृष्ठभूमि' तथा 'हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि' सामने आया तो ऐसा अनुभव हुआ—यह अपेक्षित दिशामें अभिनव प्रयत्न और खटकनेवाले अभावकी सम्पूर्ति है।

प्रस्तुत कृति डॉ० जैनके विशद अध्ययन और स्वतः स्फूर्त्त मनीषाका परिणाम है। इसमें शोधांशके साथ-साथ सामग्री स्कन्ध भी प्रचुर है। वह किसी अन्य शोध ग्रन्थका भी आधार बन सकता है।

विषय-चयन भी बहुत व्यवस्थित हुआ है। ग्रन्थके समग्र कलेवरमें जहाँ

गतिकी अबाधा है वहाँ कहीं-कहीं स्वल्पतम बाधा भी है, जैसे—'दुस्तर' और 'दुहिउ' का सम्बन्ध विमर्शनीय है। 'दुहिउ' का सम्बन्ध 'दुखित' से है, 'दुस्तर' से नहीं।

डॉ० जैनको मैं प्रकृतिसे पहले जानता हूँ, आकृतिसे पश्चात्। उनकी प्रकृति में शोधकी रुचि, अध्ययनका प्रेम और संग्रहणकी मनोवृत्ति है उससे मैं बहुत प्रभावित हूँ। प्रस्तुत कृतिके लिए मैं उन्हें आशीर्वाद दूँ या साधुवाद। उनके भविष्य और वर्तमानमें इन दोनोंको प्राप्त करनेकी क्षमता है।

—मुनि श्री नथमल

'हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि' के विषयमें मेरी निजी सम्मति यह है कि वह अपने-आपमें एक पूर्ण ग्रन्थ है। अनुशीलन करनेवाले विद्वान् इसे जितनी सूक्ष्मतासे पढ़ेंगे, उतनी ही नयी-नयी बातें उनके बुद्धिपथमें उद्भासित होंगी। आपने यह ग्रन्थ लिखकर उन हिन्दी जैन भक्त कवियोंका एकत्र समाहार किया है, जिनका परिचय सामान्य हिन्दी पाठकोंको अबतक नहीं मिला था। ऐतिहासिक दृष्टिसे शोध करनेवालेको तो जैन हिन्दी भक्ति काव्य हस्तामलककी भाँति प्रतीत होगा। इस ग्रन्थके प्रणयनमें आपने निश्चय ही अपने निश्छल और एकनिष्ठ परिश्रमका परिचय दिया है। हमारा विश्वास है, यह ग्रन्थ हिन्दी जैन वाङ्मयके लिए क्रोशशिलाका काम करेगा।

जैन साहित्यमें भक्ति-साधनाके पक्षको आप इतनी मार्मिकता एवं तेजस्विता के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं, यह मुझे अत्यन्त प्रिय लगता है और इस प्रियताके कारण ही आपके साहित्यका मैं एक प्रेमी पाठक रहा हूँ।

—डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

श्री प्रेमसागरजीने जैन भक्ति काव्य रूप समुद्रका अवगाहन करके जो रत्न प्राप्त किये हैं उनकी माला प्रस्तुत शोध-प्रबन्धके रूपमें हमारे सामने है। 'हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि' में उन्होंने भाव और कलाकी दृष्टिसे अनेक जैन कवियोंके परिचयके साथ उनका मार्मिक विश्लेषण भी किया है। उनकी समीक्षात्मक अर्हतासे मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ। इस ग्रन्थमें चर्चित अनेक जैन भक्त कवि ऐसे हैं जिनका हिन्दी भक्ति काव्यकी निधिमें अमूल्य योगदान है, किन्तु जिनसे हम अपरिचित रहे हैं। समस्त ग्रन्थ ज्ञातव्य सामग्रीसे परिपूर्ण है।

और उसके लिए श्री प्रेमसागरजी धन्यवादके पात्र हैं। उन्होंने यह ग्रन्थ अनवरत अनुसन्धान और गम्भीर अध्ययनके बाद लिखा है। ग्रन्थके समीक्षात्मक तीन अध्याय इसके साक्षी हैं। उनमें भक्त कवियोंके कलात्मक सौन्दर्य और भावात्मक चेतनाका सजीव चित्रण है। जैन दृष्टिसे निर्गुण और सगुण धाराओंकी उनकी तुलना मुझे विशेष प्रिय प्रतीत हुई। तुलनात्मक परीक्षणमें लेखककी निष्पक्षता सराहनीय है। मैं उनके शुभ भविष्यकी कामना करता हूँ।

—आचार्य कैलाशचन्द्र जैन

● ●

प्रकाशित समीक्षाएँ
शेष स्वर



स्तम्भका उद्देश्य है : समकालीन विशिष्ट हिन्दी कृतियोंपर प्रकाशित विभिन्न और विवेकी समीक्षाएँ एक साथ सामने आकर पाठकको कृतिके समस्त व्यक्तित्वसे परिचित करायें । 'लोकायतन', 'एक साहित्यिककी डायरी', 'शिखरोंका सेतु', 'चारु चन्द्रलेख', 'आँगनके पार द्वार' 'अँधेरे बन्द कमरे', 'अर्द्धशती', 'बूँद और समुद्र' तथा 'कनुप्रिया' पर समीक्षाएँ पत्रिकाके पिछले अंकोंमें क्रमशः आ चुकी हैं । इस अंकमें प्रस्तुत है—

'शहरमें घूमता आईना'
उपेन्द्रनाथ अश्क



: १ :

डॉ० बच्चन सिंह—

कथा-साहित्यकी आलोचना आलोचकसे व्यापक मानसिक संघटन और चिन्तनकी अपेक्षा रखती है । कहानी-उपन्यासकी विविधताएँ और प्रयोग आलोचनाके सुनिर्दिष्ट मानोंपर प्रश्नचिह्न लगाते रहते हैं । कविता और नाटकके सम्बन्धमें निर्धारित मान्यताओंमें कम अन्तर आता है क्योंकि वे स्वयं अपेक्षाकृत कम परिवर्तनशील होते हैं । देखते-देखते कथानक और चरित्रके सम्बन्धमें पूर्वनिश्चित धारणाएँ ध्वस्त हो गयीं । 'टॉपलेस' वस्त्रोंकी तरह कथानक-चरित्रहीन उपन्यासोंका अन्वेषण किया गया । और आज उपन्यासको परिभाषित करना अत्यन्त कठिन हो गया है । युरॅप और अमरीकामें रूपकी दृष्टिसे बिखरे हुए उपन्यास लिखे गये और वे जीवनको अपेक्षाकृत अधिक समग्रता तथा गहराईमें

आकलित करनेमें समर्थ हुए हैं। कथ्यके महत्त्वके साथ ही रूपका महत्त्व बँधा हुआ है। सुन्दर रूप-विन्यास जीवनहीन होनेपर अनाकर्षक होगा, परन्तु बिखरा हुआ उपन्यास जीवन्त होनेके कारण सशक्त और आकर्षक होगा। सच तो यह है कि आजके जीवनको, जो पहलेकी तरह सुनिर्मित नहीं है, सुगठित उपन्यास अभिव्यक्त नहीं कर सकते। आज उपन्यासगत रूपका रंगारंग जीवनकी अनिवार्य माँगका फल है।

'शहरमें घूमता आईना' अपने रूप-विन्यासमें नया होने, तथा गठित उपन्यास-परम्परासे अलग जा पड़नेके कारण अधिक लोगोंका ध्यान आकृष्ट कर सका है। इसमें संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, स्मृतियों, अन्तर्स्मृतियों आदिका जो अन्तर्भाव किया गया है वह इसे एक अनोखा रूप देता है। इससे यह प्रश्न लगा हुआ है कि : वह कौन-सा कथ्य है जिसके लिए इस नवीन रूप-विन्यासकी अनिवार्यता आ पड़ी ? क्या इसमें वस्तु और रूपका अभेद स्थापित हो पाया है ? लेखकका वह कौन-सा 'विज़न' है जो इसी रूपमें ही अँट सकता था, दूसरेमें नहीं। इस आईनेमें उभरनेवाले चित्र किस सीमा तक एक सम्पूर्ण चित्र आँक पाते हैं? और वह चित्र पाठकोंकी संवेदनाको किस प्रकार परिष्कृत करता है ?

इस आईनेमें अश्कके सुपरिचित नायक चेतनका चित्र मुख्य रूपसे उभरता है। जो लोग इसमें जालन्धर देखते हैं वे सैरबीन देखनेके पुराने अभ्यासी हैं अथवा पूरे सिने चित्रमें न रमकर केवल फ़ोटोग्रैफ़ीके सहारे दुनियाकी सैर कराना चाहते हैं। जालन्धर चेतनसे अलग नहीं है, न हो ही सकता है। कोई भी शहर जो मैं हूँ वही है। मेरे-आपमें जो भेद होगा वही एक शहरके सम्बन्धमें भी होगा। या यों कहिए कि यह आईना खुद चेतन है जिसमें एक-एक करके जालन्धरी छबियाँ प्रतिबिम्बित होती हैं। या फिर सारे चित्रोंमें चेतन उभरता है। तो क्या जहाँ चेतन नहीं उभरता वहाँका चित्र कक्षकी शोभा-मात्र है ? लगता है, चेतन अंशोंमें चेतन है। बद्दा भी चेतन है और बाँशीराम भी। चेतन कितना चेतन है, कितना बद्दा, कितना हकीम दीनानाथ आदि इसका विचार आगे होगा। फ़िलहाल सैरबीनमें उभरनेवाले चित्रोंको देख लिया जाये।

यह जो मुँह चियारे दिखाई पडता है, चौधरियोंका दीसा है—नक़्शानवीस। 'वह माईया···' की गाली देनेवाला बद्दा है। लट्ठेकी मैली कमीज और उटंग पायजामा पहने रामदित्ते हैं। 'ठल्लू जड़िये दा पुत्तर' दीनानाथ गंजीना-ए-अमलि-

यातकी साधना करते-करते हकीम बन बैठा है। दो गदरायी हुई जवान लड़कियाँ देखिए— अक्की और अम्बो। ये हुनर साहब रहे और ये हैं, निश्तर। 'सदाकत'के खुले हुए पृष्ठ। ये बैतबाज़ गुण्डे हैं। फलकपर एक ख़ूबसूरत मुसलमान लड़का दिखाई दे रहा है—हमीद। रुद्रसेन आरया गीताका अनुवाद फ़रमा रहे हैं। यह मक्खन-सा नर्म मुलायम लड़का कौन है? – रजत। जीवटकी तसवीरें भी हैं-- बिल्लादेवू। यह खालसा होटेल है। यह बाँशीधर हैं। यह आया जालन्धरी योगी। यह विधवा कुन्ती है जो हँस रही है। यह देखिए--बेकिनार झील अर्थात् चन्दा। यहींपर सैरबीनकी रील चुक जाती है। मंचपर झाँककर चले जानेवाले तो दसियों चित्र हैं--बेशुमार चेहरे हैं।

इन चरित्रोंके अतिरिक्त और भी बहुत-कुछ है – हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़े, खालसा होटेलकी लड़ाई, गली-कूचेका लम्बा विवरण-वर्णन, ज्ञानयोग-कर्मयोगकी चर्चा, सत्याग्रह आन्दोलनकी झलकियाँ, शेरो-शाइरी आदि-आदि।

इस उपन्यासके ताने-बानेमें चेतनको बुना गया है। या सारी बुनावट या टेक्स्चर चेतन है। इस बुनावटमें चेतन कैसा बन पड़ा है – इसे दो तरीक़ोंसे देखा जायेगा: एक तो स्वयं चेतनकी पहचान करते हुए, दूसरे टेक्स्चरका विश्लेषण करते हुए। दोनों विवेचनाएँ प्रकारान्तरसे चेतनकी ही व्याख्याएँ होंगी। पहले चेतनको ही देख लिया जाये। यह चेतन 'गिरती दीवारें'का चेतन है- अपनी अल्हड़ सुन्दरी सालीपर प्यार लुटानेवाला। चेतन वही है – अपनी सुन्दरी अल्पवयस्का सालीका एक अधेड़ उम्रके एकाउण्टेण्टसे विवाह करानेके लिए दायी। इस अपराधके बोधसे उसे निष्कृति नहीं मिलती। अपराध-भावनाके दंशसे वह चारों ओर भटकता है। यह उसके जीवनका एक छोर है तो कैरियरकी समस्या दूसरा छोर। एक छोर फ्रॉयडीय मनोविज्ञानसे उलझा हुआ है तो दूसरा क्षति-पूर्तिके सिद्धान्तसे।

सारा उपन्यास पढ़ लेनेके बाद लगता है कि चेतन वह चेतन नहीं है—उसमें बहुत-से परिवर्तन हो गये हैं। अब उसकी किशोर भावुकता झड़ गयी है। वह रोमैण्टिक नहीं रह गया है—बल्कि कुछ-कुछ ऐण्टी-रोमैण्टिक हो गया है। अनन्तका रोमान्स, कुन्तीकी कहानी या उसके पिताके दास्तान ऐण्टी-रोमैण्टिक ही हैं। ऐण्टी रोमैण्टिक होनेका अर्थ यह नहीं है वह बुद्धिवादी हो गया है। वह प्रौढ़ अवश्य है पर बौद्धिक परिपक्वता वयकी परिपक्वता नहीं होती। उसका बुद्धिवाद उपरले स्तर-

का बुद्धिवाद है। जहाँ कहीं वह बुद्धिवादीकी तरहसे बात करता है—उसका 'मीडियाकरपन' साफ़ ज़ाहिर हो जाता है। जालन्धरी योगी और उसके तर्कमें दिशाओंका अन्तर है पर दोनोंका स्तर एक ही है। इस सिलसिलेमें अश्ककी एक कहानी 'ठहराव' याद आती है। इस उपन्यासकी परिणति वही है जो उस कहानीकी है। अपने परिवेश-विशेषके कारण 'ठहराव' कहानी प्रीतिकर लगती है, लेकिन इस उपन्यासकी यह परिणति थकान, हार और लाचारी छोड़ जाती है।

इससे एक शंका और होती है। क्या चेतनकी अपराध-भावना कृत्रिम है? वह सारा भटकाव नीलाके प्रति किये गये अपराधके कारण है, पर उसके कारण उसे जो दर्द पैदा होता है वह ऐसा नहीं है कि चेतनके व्यक्तित्वको मथ डाले अथवा उसे माँजकर चमका दे। नीलाके प्रति उसका प्यार उसी प्रकारका था जैसा अम्बो और कुन्तीके प्रति—निष्क्रिय और हतचेत। बद्दे और जालन्धरी योगीके चमत्कारमें नीलाके प्यारको तो वह भूल ही बैठा। और उसका 'कैरियर'! उसके मित्रोंमें कोई डिप्टी कलेक्टर हो गया, कोई रेडियो स्टेशन डायरेक्टर। ऐसी स्थितिमें उसे अपनी स्थितिका जो बोध हुआ है, वह अत्यन्त सजीव बन पड़ा है। लगता है, इसको लेखकने सचाईसे दिया है। यह उसके जीवनका अनुभूतिमय अंश है। लेकिन जहाँ उसे कोई निश्चय करना पड़ता है, वहाँ उसके स्वर बड़े ही कमज़ोर प्रतीत होते हैं।

'अश्क'ने अपने एक निबन्धमें यह लिखा है कि आलोचकोंके सामने उपन्यासका एक नक़्शा होता है, उसका अपना 'विज़न' होता है और वे उन्हींको खोजते हैं। इस आरोपको स्वीकार करनेको मैं तैयार नहीं हूँ। आलोचक 'विज़न' की पकड़ रचनाके भीतरसे करता है। यदि अश्क निम्न मध्य वर्गकी हार-लाचारी, समझौतावादी मनोवृत्तियोंको ही चित्रित करना अपना लक्ष्य मानते हैं तो आलोचकके सामने आधुनिक जीवन-बोधकी समस्या उठ खड़ी होती है। आस्थाका प्रश्न झाँकने लगता है। आलोचकके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह देखे कि कोई साहित्यिक कृति आधुनिक जीवनको उसकी समग्रतामें कहाँतक आँक पायी है। आजके जीवनमें भी हार-लाचारी कम नहीं, पर वह चेतनकी हार-लाचारी नहीं है। उसमें आस्थाका तीखा स्वर भी है। चेतनमें आस्था नहीं है, आस्थाका दिवास्वप्न है। इसलिए यह आधुनिकतासे असम्पृक्त रह जाता है।

रह गयी बुनावट या टेक्सचरकी बात। टेक्सचरकी छानबीन चेतनकी छानबीन है। अलग-अलग कथाएँ, दृश्य, घटनाएँ चेतनके माध्यमसे ही प्रस्तुत की जाती हैं। और उनमें होकर ही चेतन अपने विविध आयामोंको उजागर करता है। प्रत्येक दृश्य, चित्र आदि जितनी गहराईसे उससे सम्पृक्त होगा, उसी अनुपातमें उसे सार्थक कहा जा सकता है।

चेतन और अनन्त खोसलेकी गलीके सामनेसे निकलकर बाज़ारकी ओर आ रहे थे कि बद्दा लपककर मिला। चेतनका मन उखड़ा हुआ था, फिर भी वह रुक गया। उसने पूछा कि इस बार तुम मेट्रिकमें बैठे? जवाब अनन्तने दिया कि पट्ठेने सेकेण्ड डिवीज़न मार लिया। झमानोका हंसा शरारतसे बाज नहीं आया—इससे पूछो कि इसका रोल नम्बर क्या है? बद्दने बता दिया ४२२९। देवू कानेका हवाला देते हुए जब उससे पूछा गया कि तुमने नम्बर ग़लत बता दिया है तो उसने देवूको भद्दी गाली दी। बद्दा गलीमें भाग गया। अनन्त और झमानोका हंसा ठहाके लगाते रहे। बद्दा चेतनसे दो वर्ष बड़ा था। उसकी माँ उसे पढ़ा-लिखाकर अफ़सर बनाना चाहती थी। बद्दा अपने पड़ोसियोंको आसपासके लोगोंकी जन्मतिथियाँ, शादीकी तारीखें, हर दुर्घटनाका समय बताकर चमत्कृत किया करता था। पहली बार मैट्रिकमें फ़ेल होनेपर उसने बहाना बनाया कि 'इनविजिलेटर' से उसकी लड़ाई हो गयी। दूसरे वर्ष फ़ेल होनेकी ज़िम्मेदारी उसने स्कूल टीचरोंके मत्थे मढ़ दी। तीसरे वर्ष उसकी माँने कहा कि वह प्राइवेट परीक्षा देगा और फ़र्स्ट डिवीज़नमें पास होकर दिखा देगा। वह घरमें ही पढ़ता और गलीकी औरतोंमें बैठा रहता। तभीसे वह बद्दा पुकारा जाने लगा। परीक्षामें उसने ऊटपटाँग उत्तर दिये और इस वर्ष भी रह गया। कई वर्ष बाद उसने अपने भाग्यको एक बार फिर आज़माया लेकिन असफल रहा। बद्दा ट्रिब्यूनका पुराना अंक लिये हुए आ धमका। रोल नम्बरोंमें एक जगह लाल पेन्सिलका निशान लगा हुआ था। चेतनने बधाई दी और बद्दने दाँत निपोर दिये।

यह है आईनेमें पड़ा एक प्रतिबिम्ब। देखना यह है कि क्या यह माध्यम है अथवा स्वयंमें अलग एक कहानी। या दोनों है। अथवा न यह न वह। इस माध्यमसे चेतनका एक पक्ष उभरता है—उसका घटिया दर्जेका वातावरण। पर सवाल है कि इस कहानीको चेतनसे कैसे सम्बद्ध किया जाये? इसका कोई जवाब नहीं

मिलता। बद्देके माध्यमसे जो कुछ कहा गया है वह न तो अपने-आपमें महत्त्वका है और न चेतनसे सम्बद्ध होकर भी (यदि वह किसी तरहसे सम्बद्ध है तो) महत्त्वपूर्ण हो पाता है। हमीद और चेतनके माध्यमसे चेतन अवश्य उभरता है—कुछ-कुछ भूखी पीढ़ी ('हंग्री जेनरेशन') के 'बीटनिक्स' की तरह। 'बीटनिक्स' की भूखमें नये पैमानेकी भी भूख है, पर चेतन ऐसा बुभुक्षित है कि कोई पाप नहीं कर सकता। वह ऐसा क्षीण जन है जो निष्करुण नहीं हो पाता।

जालन्धर और योगीका सम्बन्ध बहुत पुराना है। पूर्वमें कामरूप और पश्चिममें जालन्धर तान्त्रिक योगियोंका अड्डा था। जालन्धरी योगीके अभावमें जालन्धरका वर्णन अधूरा ही रह जाता। जालन्धरी योगीके सिलसिलेमें चेतन योग तथा योगियोंके चमत्कारके सम्बन्धमें जितने क़िस्से जानता था, सब सुनाकर चुक जाना चाहता है। यह योगी भी अन्य सभी पात्रोंकी तरह 'मीडियॉकर' है। चेतन उससे किसी मानेमें कम नहीं है। जैसा योगीका उपदेश, वैसा चेतनका प्रत्याख्यान। 'को बड़-छोट कहत अपराधू।' न तो उपदेशमें गहराई है और न जिज्ञासाओं और शंकाओंमें। योगी जिस स्तरपर ईश्वर और धर्म आदिकी व्याख्या करता है, चेतनके स्थितप्रज्ञ, ज्ञानयोग-कर्मयोगकी व्याख्याएँ भी उसी स्तरपर प्रस्तुत की गयी हैं।

अपने घटिया वातावरण और साधारण विचारोंमें उलझे रहनेपर भी चेतन कभी-कभी युगीन चेतनाकी झाँकी प्रस्तुत कर देता है। भागोंके सम्बन्धमें वह सोचता है: पति मिला तो अधेड़, दमेका मरीज़, सगे-सम्बन्धी टुच्चे और कमीने, फिर वह तेलूके साथ भाग गयी तो क्या बुरा किया? वह इस प्रकारकी भावनाको—साहसको—पसन्द करता है, लेकिन अपने संस्कारोंके कारण उसे अपने भीतर उँड़ेल नहीं पाता। इस उपन्यासमें अनन्त एक ऐसा पात्र है जो उसके संस्कारोंको सबसे अधिक कुरेदता है, सबसे अधिक खोलता है। इसलिए चेतनकी समग्रतामें उसका योग सबसे अधिक है। उपन्यासके समस्त 'फ्रॉड' चरित्रोंमें वही एक ऐसा व्यक्ति है जो 'फ्रॉड' से असम्पृक्त और यथार्थवादी है। सच्चे अर्थमें वह ऐण्टी-रोमैण्टिक है, यद्यपि उसके विचार काफ़ी अनगढ़, भद्दे या 'क्रूड' हैं।

अनन्त गोया चेतनका पूरक पक्ष है और सभीके 'फ्रॉड' को चीरनेवाला पैना नश्तर। उसके व्यंग्यकी तेज़ धार हलके-गहरे स्पर्शोंसे प्रत्येककी कुण्ठाको चीरती

चलती है। आरम्भमें ही चेतनकी सालीका उल्लेख आनेपर वह कहता है : तो दे गयी तुम्हें दाग़-जुदाई वो भी ?' बट्केके 'फ्रॉड' का परदाफ़ाश भी वही करता है। ठल्लूराम और दालचन्दकी हकीमीको उलटनेकी उसकी शरारत भी मज़ेदार है। हकीम दीनानाथके सम्बन्धमें उसका यह कहना कितना मौज़ूँ है : "इस साले को किसने कहा था कि जड़ियागिरी छोड़कर हकीम बने। ठगीके लिए वही पेशा क्या बुरा था ?" उसे प्रेम-वेममें विश्वास नहीं है। 'मूड' के खराब होनेके ज़िक्र चलते ही अनन्त कहता : "मूड खराब होनेसे तुम्हारी साली अब आनेसे रही....उसका खड़ा छोड़ो और दूसरा गाँव देखो। तुम नहीं और सही, और नहीं और सही।" अनन्तके चाबुकोंका असर चेतनपर हुआ था। वह उसकी बातमें तथ्य अवश्य देखता था। यह दूसरी बात है कि चन्दाके प्रति वफ़ादार रहने और नीलाके प्यार पानेके द्वन्द्वसे उसका छूट पाना कठिन था।

कुछ सार्थक दृश्यों, चरित्रों, विवरणोंको छोड़कर बहुत-से विवरण-वर्णन ऐसे हैं जो किसी भी तरह इसके अंग नहीं बन पाते। कथाओंके भीतरकी कथाएँ, एक पीढ़ीसे आगे बढ़कर और पीढ़ियोंको समेट लेनेकी आकांक्षा, स्मृतियोंको कुरेदकर उनसे सब-कुछ वसूल कर लेनेकी प्रवृत्ति आदिके जटाजूटमें सहृदयोंकी मानस-गंगा खो जाती है। उसे बाहर निकलनेके लिए काफ़ी मेहनत करनी पड़ती है। उपन्यास खत्म करते-करते बहुत-कुछ छूट जाता है। उपन्यासको खत्म कर लेना भी कम श्रमसाध्य नहीं है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उपन्यासका स्तर कुछ ऐसा बौद्धिक है कि वह नीरस हो गया है। बल्कि बौद्धिक न होनेके कारण ही वह नीरस हो गया है। पैटर्न बौद्धिक उपन्यासके लिए अधिक मौज़ूँ था। इस सिलसिलेमें लॉरेन्स डरेलका 'फ़ोरडेकर' उपन्यास याद आ जाता है। उसमें भी अलेग्ज़ेण्ड्रियाका काफ़ी वर्णन है—जो उबा देनेवाला वर्णन भी। लेकिन अलेग्ज़ेण्ड्रिया आधुनिक प्रेमकी 'बारीकियों' के साथ उभरता है। उसके वर्णनमें ऐसे प्रतीक और बिम्ब निर्मित होते हैं जो जीवनको उसकी पूरी गहराईमें उभारते हैं।

[अश्कजी फ़ोटोग्रैफ़िक पुनस्सर्जन आदिको आलोचकोंका विलक मानते हैं। उनका कहना है कि "दैनन्दिन जीवन खासा 'बोरिंग' और फीका" होता है। उसे रचनामें यों ढालनेके लिए कि वह जैसाका तैसा भी लगे और उबाये भी नहीं, ज़बरदस्त कल्पना और कलाकी आवश्यकता है। उत्कृष्ट रचना पुनस्सर्जित

ही होती है, जब कि भोंडी, फ़ोटोग्रैफ़िक। 'शहरमें घूमता आईना'के लगभग ५०० पृष्ठ उपन्यासके परम्परागत साधनों (रूमान, प्रेम, सेक्स) की मददके बिना यदि पाठक दिलचस्पीसे पढ़ जाता है और फिर भी उसे लगता है कि वह ज़िन्दगीको जैसीका-तैसा देख रहा है तो उसे समझना चाहिए कि लेखकने कल्पना और कलासे भरपूर काम लेकर उसे सिरजा है....'

अश्कजीके इस कथनमें एक स्पष्ट असंगति दिखाई पड़ती है। कल्पना और कला-द्वारा सर्जित साहित्यमें ज़िन्दगी जैसीकी-तैसी दिखाई पड़े—यह सर्वथा असम्भव है, अमनोवैज्ञानिक है। साहित्यमें यथावत् ज़िन्दगीका चित्रण न होकर उसका भ्रम ('इल्यूज़न') चित्रित होता है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रस्तुत उपन्यासमें ज़िन्दगीका यथावत् चित्र मिलता है, कल्पना-द्वारा पुनसर्जित जीवन नहीं। इसकी ऊबका एक बहुत बड़ा रहस्य यही है। सारे विवरण-वर्णन 'डाकुमेण्ट्री' हो जाते हैं। 'डाकुमेण्ट्री' तथ्यात्मक होती है, कल्पनात्मक नहीं। इसके माध्यमसे औपन्यासिक जगत्‌की सर्जना सम्भव नहीं है। आर्वेल, कोएस्लर और सार्त्रके उपन्यासोंकी असफलता उनके 'डाकुमेण्ट'में है। पर सवाल उठाया जा सकता है कि क्या तॉलस्तॉयका 'वार ऐण्ड पीस' 'डाकुमेण्ट्री' नहीं है? उसके 'डाकुमेण्ट्री' होनेमें दो मत नहीं हैं। तब उसकी सर्वश्रेष्ठताके क्या कारण हैं? तॉलस्तॉयके सामने ऐतिहासिक तथ्योंकी रक्षाका भी प्रश्न था। इसलिए भी उसने इस पद्धतिको अपनाया। उसकी कारयित्री प्रतिभा या कल्पनासे 'डाकुमेण्ट्री' सजीव हो उठी है। कोरी 'डाकुमेण्ट्री' उपन्यासको जगह-जगह बाँध लेती है और उसका प्रवाह अवरुद्ध हो उठता है। 'डाकुमेण्ट्री' अपने-आपमें एक स्वतन्त्र विधा हो सकती है, पर उपन्यासमें प्रविष्ट होकर उसे अपनी सत्ताको विलीन करना पड़ेगा। 'शहरमें घूमता आईना' में उसका विलीनीकरण सम्भव नहीं हो पाया है।

इन वर्णनोंके पक्षमें भी एक दलील दी जा सकती है कि इस प्रकारके उपन्यासमें सचित्र प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि सम्पूर्ण उपन्यासका युगपत् प्रभाव पड़ता है। समूचा उपन्यास पढ़ लेनेके बाद जालन्धरके अनेक आयाम एक साथ उभर आते हैं। जालन्धरमें पंजाब भी दिखाई देने लगता है। इस वातावरणमें जीनेवाले—किसी प्रकार साँस लेनेवाले—प्राणी रेंगते हुए नज़र आते हैं। साराका सारा वातावरण, माहौल अपने छलावेमें उभरने लगता है—बैतबाज़, बांशीधर, जालन्धरी योगी, निश्तर, हुनर, अनन्त, बद्दा आदि-आदि। जेम्स ज्वॉयसके 'यूलि-

सिस'के सम्बन्धमें भी युगपत् प्रभावकी बात कही जाती है। पर 'यूलिसिस'के एक पृष्ठके प्रसंग अन्य पृष्ठोंमें उभरनेवाले प्रसंगोंमें अन्तर्भुक्त न होते हुए भी कुछ इस प्रकारसे जुड़े हुए प्रतीत होते हैं कि एक प्रसंग अन्य प्रसंगोंको अनायास उभार देता है। अश्कजीके इस उपन्यासमें भी कुछेक प्रसंग प्रकारान्तरसे अन्य प्रसंगोंको संकेतित करते हैं, किन्तु वे बहुत कम हैं।

मैंने कहींपर संकेतित किया है कि यह उपन्यास रूपमें एकदम नया है। पर उसका वस्तुतत्त्व पुराना है। इस रूपके लिए वस्तुकी जो नवीनता अपेक्षित थी वह इसमें नहीं है। रूप-विन्यासकी नवीनताका आकर्षण पाठकोंको भी एक छला-वर्तमें छोड़ जाता है। वह अपने दैनन्दिनको बेतरतीब ढंगसे एकत्र देखकर चौंक उठता है। अस्तु, आजके बुद्धिवादियोंको आधुनिक चेतनासे संयुक्त व्यक्तियोंको यह अपील नहीं करता। चेतनका आईना आजके युगके लिए धुन्ध पड़ गया है।

तकनीक या शिल्पकी विविधताकी इसमें कमी नहीं बल्कि वह आवश्यकताओं अधिक है। बारह घण्टेमें सम्पूर्ण अतीतको उभार देना—जो लेना मैं नहीं कहना चाहूँगा—अपने-आपमें काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए संस्मरणोंको जुटाया गया है, रूपरेखाका चित्र बड़ी ही बारीकीसे खींचा गया है। 'डाकुमेण्ट्री'-द्वारा तथ्या-त्मक आकलन किया गया है। स्मृतियोंकी कौंधमें विगतके पृष्ठके पृष्ठ खोले गये हैं। 'फ़्लैशबैक'का प्रचुर प्रयोग किया गया है। जगह-जगह प्रतीकात्मक योजना भी की गयी है। बिम्बोंको मुख्यत: चाक्षुष बिम्बोंको उभारा गया है। अलग-अलग कथाओंके निर्माण-द्वारा इसे परम्परासे काटकर नये सौन्दर्यकी सृष्टिका प्रयास भी हुआ है। अश्कजीकी भाषाका क्या पूछना ? बारीक़से बारीक़ चित्रण में वह सहज ही समर्थ है।

इस प्रकारके अनेक उपकरणोंसे इस उपन्यासका भवन निर्मित किया गया है। इसके लिए देश-विदेशके शिल्पोंको भी एकत्र करनेकी कोशिश की गयी है। काफ़ी अरसेसे इसके सम्बन्धमें सोचा-विचारा गया है। ऐसी स्थितिमें इसमें एक नव्यता-का दीख पड़ना स्वाभाविक है। पर खेद है कि इस निर्मितिके पीछे श्रम है, श्रमिक नहीं है, शिल्प है, शिल्पी नहीं है।

(माध्यम)

●

: २ :

डॉ० कैलाश वाजपेयी—

अश्कजीका यह उपन्यास जैसा कि आवरण पृष्ठपर मुद्रित है, ठीक अर्थोंमें सैरबीन ही है। सुबहसे शाम तक इस सैरबीनमें सैकड़ों चित्र चढ़ते-बदलते हैं।

कहानीका नायक चेतन लाहौरके 'वन्दे मातरम्' पत्रका सहायक सम्पादक है। रहनेवाला वह जालन्धरका है; अरसे बाद कुछ छुट्टियाँ शिमलेमें बिताकर अब अपनी सालीकी शादीमें घर आया है। नीला उसकी सगी साली नहीं है। कम उम्रवाली इस लड़कीकी शादीका कारण वह स्वयं है। चेतनके सुझावपर ही जल्दी-जल्दीमें नीलाके पिताने अपनी बेटीका विवाह बरमाके एक अधेड़ मिलिट्री अफ़सरसे कर दिया है। नीला अभी इतनी बड़ी भी न हो पायी थी कि उसके मनमें किसीके प्रति कोई विकार जन्म लेता। चेतनकी बीमारीके दिनोंमें चन्दा (चेतनकी पत्नी) स्वयं चेतनके निकट न आकर नीलाको भेजती है। नीला अबोध है। वह उत्सुकतावश चेतनके निकट आती है। पवित्र-से खिचावके कारण वह चेतनके बालोंसे खेलती है—उसके माथेपर हाथ फेरती है। चेतनमें एकान्त और इस नैकटचके कारण अन्तर्द्वन्द्व होता है और उसके भीतरका मध्यवर्गीय धर्म-भीरु इसे ग़लत समझकर उसके पिताको संकेत देता है कि नीलाका विवाह जल्दी हो जाना ठीक है। विवाह हो जाता है—नीला निस्पन्द पत्थरकी तरह बिना कोई व्यथा व्यक्त किये, चली जाती है। तीन दिनकी थकानके बाद चौथी रात चेतन जब सोता है तो उसके भीतर अपराध-भावना जन्म लेती है—रात-भर चेतन अपने-आपसे लड़ता है और सुबह उठकर घरसे चल देता है।

उपन्यास सुबह, दोपहर, शाम—तीन खण्डोंमें विभक्त है और इस अवधिमें जालन्धर नगरके मध्यवर्गीय जीवनके सैकड़ों चित्र और पात्र उभरकर सामने आते हैं—बद्दा, जो आठ बार मैट्रिकमें बैठकर भी पता नहीं पास हुआ या नहीं; रामदित्ता हलवाई, जिसकी पत्नी-सम्बन्धी समस्या कभी सुलझ नहीं पायी; फलगूराम, जिन्होंने अपना नाम बताया, चिच्चल ख़ाँ चिच्चावल ख़ाँ।

जहिजात बिजात बिजली ख़ाँ, शेरबहादुर अहय्ये ख़ाँ, टल्लू, जडिए दा पुत्तर, दीना, जो अब हकीद दीनानाथ हो गये हैं; हमीद, जिसकी बौद्धिकता और शराफ़तसे चेतन अभिभूत रहा है; शायर हुनर साहब, जिन्होंने गीताका अनुवाद

आसान उर्दू शेरोंमें किया है; देवू, जगना और बिल्ला-जैसे खाये पिये साँड़, जिनपर कोई अंकुश नहीं। ऐसे और भी न जाने कितने पात्र हैं जो ज़िन्दगीके न जाने कितने पक्षोंका उद्घाटन करते हैं। राजनीति और योगविद्यासे लेकर औरतोंके भागने-भगाने तक। न जाने कितनी कहानियाँ एक-दूसरेसे गुँथी पड़ी हैं। ढेरों कहावतों और लोक-गीतोंसे भरा यह उपन्यास एक ज़िन्दा धड़कता हुआ शहर अपनेमें सँजोये है—जो पाठकके समक्ष प्रतिबिम्बित होता है चेतनके माध्यमसे। इस उपन्यासकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि शिल्प इसमें आरोपित नहीं लगता। हाँ, कथानककी दृष्टिसे अवश्य इसे पढ़कर यशपालके 'झूठा सच' की याद आती है। 'शहरमें घूमता आईना' कुल मिलाकर एक पठनीय उपन्यास है, पर एक बात समझमें नहीं आयी कि लेखकने हर पृष्ठपर अपना नाम क्यों मुद्रित किया है। (कल्पना)

नयी कृतियाँ
ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित

जो भारतीय साहित्य-जगत्में अनूठी और
अपूर्व हैं और इसीलिए यह अपेक्षा
भी कि आप इनसे परिचित हों।

• कुछ निबन्ध : अक्षयकुमार जैन

काफ़ी हद तक यह जरूर सच है कि निबन्ध बहुत प्रकारके होते हैं। और बहुत प्रकारके महज़ इस आधारपर वे नहीं होते कि लेखक अलग-अलग हैं। बहुत प्रकारके वे इसलिए भी होते हैं कि अलग-अलग स्तरके पाठकोंके लिए लिखे जाते हैं और अलग-अलग प्रयोजनोंको लेकर, अलग-अलग प्रेरणाओंपर।

ये 'कुछ निबन्ध' सचमुच कुछ निबन्ध हैं जो कुछ बातोंमें विशिष्ट पाये जायेंगे। छोटी-छोटी घटनाएँ इनकी मूल प्रेरणाएँ हैं, पर घटनाएँ ऐसी जो लेखकको लग गयीं और आपको अब बिना लगे न रहें। मनको ये निबन्ध छुएँगे और अपनी तरहसे सोचने और बूझनेको भी दो बार कहेंगे। हलके-फुलके, छोटे-छोटे, पर उपयोगी। स्वयं पढ़ें और परिवारमें सबको पढ़नेको दें।

मूल्य : २.५०

• अपभ्रंश भाषा और साहित्य : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

अपभ्रंश साहित्यके विशाल भण्डारका अभी कुछ ही अंश प्रकाशमें नहीं आ पाया है। विद्वानोंका ध्यान इस ओर गया है तो अब इस साहित्यकी गरिमा और महनीयता भी धीरे-धीरे सामने आ रही है। भाषाका लालित्य, शैलीकी सरसता, भावोंका सुन्दर विन्यास, साहित्यशास्त्रके अंगोंका निर्वाह, अपने युगके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवनका चित्रांकन—सभी दृष्टियोंसे देखने-परखनेपर इस

साहित्यकी उत्कृष्टता और इसके अध्ययनकी उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है और इस सबकी प्रामाणिक जानकारी लें डॉ० देवेन्द्रकुमार जैनकी इस कृतिसे।

प्रस्तुत कृति अपभ्रंश भाषा, उसका युग और स्रोत, अपभ्रंश कवि तथा अपभ्रंश काव्योंका तो परिचय कराती ही है, अपभ्रंश काव्योंके वस्तुवर्णन, रससिद्धि, अलंकार-योजना और वृत्त-विधानकी जानकारी देकर इस साहित्यमें वर्णित प्रकृति-चित्रण, समाज और संस्कृतिके तात्कालिक परिवेश तथा दार्शनिक मत-मान्यता आदिकी भी जानकारी देती है। परिशिष्टमें लेखकने तेरह ऐसे विषयों पर टिप्पणियाँ दी हैं, जो साहित्यके परिप्रेक्ष्यको उजागर करती हैं।

सम्पूर्ण अपभ्रंश साहित्य हर कोई भले ही न देख पाये पर उसका परिचय पाना और रसास्वाद प्राप्त करना हो तो प्रस्तुत कृति 'अपभ्रंश भाषा और साहित्य' पढ़ना अनिवार्य है। मूल्य : १०.००

● मुरदा सराय : शिवप्रसाद सिंह

देखे हुएके भीतरसे अदेखेको देखने-समझनेकी शक्ति, वस्तुओंके सही सन्दर्भ और उनके उलझावोंको निबेरनेका विवेक, विविध जीवन-खण्डोंके आधारपर पूरे 'पैटर्न'को संकेतित करनेकी क्षमता, सामान्य ज़िन्दगीको गहराईसे अनुभव करनेकी वह संसक्ति जो ज़िन्दगीके अछूतेसे अछूते कोनेको प्रकाशित कर दे—ये सभी कुछ मिल-जुलकर एक ऐसे मानसका निर्माण करते हैं जो बारीकसे बारीक स्पन्दनोंको भी अंकित कर लेता है। 'मुरदा सराय' ऐसे ही अंकनों और धड़कनोंका 'बैरोमीटर' है। यही कारण है कि इसकी कहानियोंमें ज़िन्दगी पुनःकथित नहीं हुई है,—पुनरुज्जीवित है, पुनर्भुक्त है।

प्रस्तुत है नयी हिन्दी कहानीके विशिष्ट कथाकार शिवप्रसाद सिंहकी चुनी हुई बारह कहानियोंका नवीनतम संग्रह—रोचक और संग्रहणीय—'मुरदा सराय।' मूल्य : ४.००

● प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी : रूपान्तर एवं संकलनकर्ता : दिनकर सोनवलकर

हिन्दीको एक सहोदरी भाषाके आधुनिक काव्यका इस प्रकारसे हिन्दीमें प्रस्तुतीकरण कदाचित् यह पहला प्रयास है,—जो समकालीन मराठी कविता

(१९४०-१९६२) की विविध प्रवृत्तियोंको रेखांकित करता है और प्रतिनिधि रचनाकारोंके कृतित्वकी झाँकी, एक बानगी, हिन्दी पाठकोंके सामने उपस्थित करता है। सब १८ समकालीन मराठी कवियोंकी चुनी-चुनी ९० कविताओंका हिन्दी रूपान्तर यहाँ प्रस्तुत है। साथमें डॉ० प्रभाकर माचवेकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका भी।

मूल्य : ४.००

• सुगन्धदशमी कथा : सं०-अनु० डॉ० हीरालाल जैन

अपभ्रंश, संस्कृत, गुजराती, मराठी तथा हिन्दी भाषामें निबद्ध एक जनप्रिय लोककथा जिसके बीज प्राचीन भारतीय साहित्यमें तो उपलब्ध होते ही हैं सागर पारकी जर्मन और फ्रेंच लोक-कथाओंमें भी पाये जाते हैं। लोक-कथा साहित्यके तुलनात्मक अध्ययनकी दृष्टिसे विशिष्ट तो भाषा-विज्ञान और सांस्कृतिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण। विद्वत्तापूर्ण सम्पादन और सुरुचिपूर्ण प्रस्तुतीकरण।

मूल्य : ११.००

• मयणपराजय चरिउ : मूल-कवि हरिदेव, सं०-अनु०—डॉ० हीरालाल जैन

मदनपराजयकी उपर्युक्त कथावस्तुको अपभ्रंशमें निबद्ध करनेवाला एक विशिष्ट काव्य। हिन्दी-अँगरेज़ी प्रस्तावना, हिन्दी अनुवाद तथा परिशिष्ट आदि सहित। पृष्ठ-संख्या सुपर रॉयल ८८ + ९०।

मूल्य : ८.००

• जीवन्धरचम्पू : मूल—महाकवि हरिचन्द्र, सं०-अनु०—पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

सरल गद्य और पद्यमें निबद्ध वह जनप्रिय कथा जिसने मध्ययुगके अनेक साहित्यकारोंको संस्कृत, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड़, गुजराती, मराठी आदि अनेक भाषाओंमें कथा कहनेके लिए प्रेरित किया। पृष्ठ संख्या सुपर रॉयल ३९८।

मूल्य : ८.००



भारतीय ज्ञानपीठ साहित्यिक पुरस्कार
प्रगतिके बढ़ते चरण

मलयालम भाषाके महाकवि श्री जी० शंकर कुरुपको प्रथम साहित्यिक पुरस्कारकी घोषणा कर चुकनेके बाद हम चाहते तो यही थे कि १५ मई १९६६ से पहले ही दिल्लीमें यह समारोह हो जाता, परन्तु प्रशासनिक दायित्वोंके कारण राष्ट्रपति अथवा प्रधान मन्त्रीके लिए समारोहमें सम्मिलित हो पानेकी निश्चित तिथि प्राप्त न हो सकी ।

इसके अतिरिक्त दिल्लीमें अब गरमी भी बहुत अधिक पड़नी शुरू हो चुकी है। अतः यही निर्णय लेना पड़ा कि पुरस्कार वितरण समारोह अब अगस्त '६६ के तीसरे-चौथे सप्ताहमें या सितम्बरके आस-पास सम्पन्न किया जाये । तब-तक दिल्लीका मौसम भी अनुकूल हो जायेगा तथा उन दिनों संसदका अधिवेशन भी चल रहा होगा । इस बीच यह प्रयास भी कर रहे हैं कि किसी नोबेल पुरस्कार विजेता साहित्यकारको इस समारोहमें भाषण देनेके लिए आमन्त्रित कर सकें । आमन्त्रित साहित्यकारकी सुविधा आदिके विचारसे कुछ समय हाथमें रखना अपेक्षित होगा । अतः ये सारे प्रबन्ध पूरे होते ही समारोहकी तारीख निश्चित की जायेगी ।

संक्षेपमें तीनों पुरस्कारोंकी अद्यतन स्थिति यह है :

प्रथम पुरस्कार (सन् १९२० से १९५८ के बीच प्रकाशित साहित्यिक कृतियोंपर) पुरस्कार वितरण समारोहकी स्थिति ऊपर स्पष्ट है । इस अवसर-पर हम एक पुस्तिका प्रकाशित करने जा रहे हैं, जिसमें पुरस्कार एवं इसकी कार्यप्रणाली सम्बन्धी जानकारीके अतिरिक्त प्रवर परिषद्, चौदह भाषाओंकी परामर्श समितियों, छह भाषा वर्ग-समितियों तथा उन साहित्यिक समीक्षकों और अनुवादकों आदिके चित्र परिचय रहेंगे, जिन्होंने प्रथम पुरस्कार सम्बन्धी निर्णयमें ज्ञानपीठ तथा प्रवर परिषद्की सहायता की है। पुरस्कार विजेता महाकवि

जी० शंकर कुरुपकी मलयालम कविताओंके संग्रह 'ओडक्कुषल' का हिन्दी अनुवाद भी 'बाँसुरी' शीर्षकसे ज्ञानपीठ-द्वारा ही प्रकाशित किया जा रहा है।

यह उचित होगा कि एक लाख रुपयेकी पुरस्कार-राशि भेंट करते समय ज्ञानपीठ पुरस्कारके प्रतीक स्वरूप कोई कलाकृति पुरस्कार विजेताको भेंट की जाये, अतः इस बारेमें विभिन्न पुरस्कार समितियोंके सदस्यों तथा अन्य महानुभावों एवं कलापारखियोंकी सम्मतियाँ आमन्त्रित करनेके बाद निर्णय किया गया है कि 'वाग्देवी' की मूर्ति प्रतीक रूपमें प्रस्तुत की जाये। यह मूर्ति एक सुप्रसिद्ध शिल्पी-द्वारा बनायी जा रही है। वाग्देवीकी यह मूर्ति साहित्य एवं कलाके प्रतीक रूपमें अत्यन्त उपयुक्त है, क्योंकि यह मूर्ति उज्जयिनीके महाराज भोजने धारके विद्वत्सभागारमें विराजमान करवायी थी, जो अब लन्दनके ब्रिटिश म्यूज़ियममें है।

द्वितीय पुरस्कार (सन् १९२५ से १९५९ के बीच प्रकाशित साहित्यिक कृतियोंपर) : सभी भाषा परामर्श समितियोंकी बैठकें हो चुकी हैं। उनकी संस्तुतियाँ भी प्राप्त हो चुकी हैं। संस्तुत पुस्तकें अब भाषा वर्ग समितियोंके समक्ष प्रस्तुत कर दी गयी हैं। इस बार वर्गसमितियोंके गठनमें परिवर्तन करना पड़ा, क्योंकि पुरस्कारके नियमोंके अनुसार पुरस्कार प्राप्त भाषा मलयालम दो वर्षों तक प्रतियोगितामें भाग नहीं ले सकती। वर्गसमितियाँ अब इस प्रकार गठित हैं :

१. असमिया–बंगला–उड़िया।

२. गुजराती–मराठी।

३. कश्मीरी–पंजाबी–उर्दू।

४. कन्नड़–तमिल–तेलुगु।

गत वर्षकी भाँति इस वर्ष भी हिन्दी-संस्कृत वर्ग समितिका गठन आवश्यक नहीं समझा गया, क्योंकि संस्कृत परामर्श समिति-द्वारा कोई पुस्तक संस्तुत नहीं की गयी। अतः हिन्दी कृति इस वर्गमें अकेली ही रही। तमिलको, (जो पहले मलयालमके साथ सम्बद्ध थी) कन्नड़के साथ संयुक्त कर दिया गया है। इन सभी वर्गसमितियोंकी बैठकें नियोजित हैं।

तृतीय पुरस्कार (१९३५ से १९६० के बीच प्रकाशित कृतियोंपर) : परामर्श समितियोंकी बैठकें हो रही हैं। अनेक परामर्श समितियोंकी संस्तुतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं।

अबतकके अनुभव तथा साहित्यिक क्षेत्रसे प्राप्त व्यापक सहयोगके बलपर हम आश्वस्त हैं कि द्वितीय तथा तृतीय पुरस्कारको अन्तिम रूप देनेके हमारे प्रयत्न प्रथम पुरस्कारकी तरह ही सफल रहेंगे। इस सहयोगके लिए ज्ञानपीठ आभारी है।

• •

राष्ट्रभारती
परिवेश और उपलब्धियाँ

यह स्तम्भ इसीलिए कि सहवर्ती भाषाओंके साहित्यकी दिनप्रमित गतिविधि और उपलब्धियोंसे हिन्दी-जगत् परिचित हो

दिल्लीमें गत २४ अप्रैलसे २९ मई तकके ६ रविवारोंको 'साहित्यिकी'-द्वारा संयोजित षड्दिवसीय कहानी-गोष्ठी आयोजन—

प्रथम गोष्ठी विवरण :

प्रथम गोष्ठीके अपने उद्घाटन भाषणमें सुपरिचित चिन्तक लेखक जैनेन्द्रजीने इस प्रकारकी गोष्ठियोंकी उपादेयतापर बोलते हुए कहा कि ये गोष्ठियाँ लेखकोंको सावधान अवश्य करती हैं, पर प्रोत्साहित कितना करती होंगी, पता नहीं। यह अच्छा है कि हर पाठक अब समीक्षक बने : इतना प्रबुद्ध हो वह कि हर काल-को, जो उसके सामने रखा जाये, परख कर सके। उन्होंने आगे कहा कि जब आदमी जिज्ञासु होता है—अपने भीतर या बाहर होते हुए घटनात्मकको टटो-लना चाहता है, प्रेरणा-तत्त्वोंको जानना चाहता है, अर्थात् सत्यका खोजी है—वह अपने लिए आवश्यक पाता है कि इस घटनात्मकताके नीचे उतरे, उन सूत्रोंको प्राप्त करे जिनके पीछे घटना घट रही है, कार्यके पीछे कारणोंकी खोजमें जाये और उनका सम्बन्ध जीवनसे बैठाये। बहुत खोजी ऐसे होते हैं जो व्यवहार-पक्षसे निश्चिन्त व विमुख होकर सत्यकी खोज किया करते हैं। वे तात्त्विक और दार्शनिक हो जाते हैं। जीवनसे मुड़कर जो सत्यकी खोज है उससे, मैं समझता हूँ, अच्छी रचना नहीं होती। इससे मतवाद निकलते हैं। मतवाद परस्पर विरुद्ध हो जाते हैं। जीवनका लाभ उनसे नहीं हुआ, हानि अवश्य हुई। समयके साथ नया नया और पुराना पुराना नहीं पड़ जाता, बल्कि जो आदमीका कथ्य

है वह बराबर खोजमें रहता है; जो अवर्णनीय है, अकथनीय है, शब्दमें अ[illegible] नहीं है, उसे शब्द देता है। अपने भाषणके उपसंहारमें जैनेन्द्रजीने प्रस्तुत [illegible] जनके प्रति आशावान् होते हुए कहा कि इस गोष्ठीसे मुझे आशा करनी चा[illegible] कि इसका परिणाम विधायक होगा, यह छह रविवारों तक चलनेवाली [illegible] कहानी-साहित्यके इतिहासमें स्मरणीय काम कर जायेगी।

उद्घाटन-भाषणके बाद जाने-पहचाने कहानीकार श्री भीष्म साहनी[illegible] अध्यक्षतामें तीन कहानियाँ लेखकों-द्वारा पढ़ी गयीं : 'ध्वंस' श्री कुलभूषण-द्वारा, 'एक समुद्र भी' श्री हिमांशु जोशी-द्वारा, और 'खण्डहरोंके बीच' श्री नित्यानन्द-द्वारा। तीनों कहानियोंपर चर्चा-प्रवर्तन डॉ० तारकनाथ बालीने किया।

'ध्वंस' पर डॉ० बालीने कहा कि बुनियादी बात है मूल्य और तथ्यके संघर्ष की। दीना और बन्तीका सम्बन्ध नैतिकताके विरुद्ध है। वहाँ मूल्य और तथ्य[illegible] संघर्ष है। दीनाका चित्रण करते हुए लेखक कहता है : "कोमलता नंगी[illegible] गयी हो, जैसे बालक मर गया हो····।" इसलिए प्रतीत होता है कि जीत मूल्य[illegible] ही होती है, तथ्यकी नहीं। 'ध्वंस' व्यक्तिका ही होता है, परम्परा या मूल्य[illegible] नहीं। यह रचना प्राचीन और नवीन बोधके बीचकी एक स्वाभाविक कड़ी[illegible] रूपमें समझी जा सकती है। डॉ० बालीने सुझाव दिया कि कार्यकी समाप्ति[illegible] बाद बन्ती और दीनाकी मनोदशाका वर्णन न किया जाये और अन्तिम ५ पै[illegible] ग्राफ़ोंके स्थानपर इस एक पंक्तिसे कहानीका सारा रुख बदला जा सकता है: "इसके बाद धीरे-धीरे भाभीका बोझ उसपर-से हट गया।"

'एक समुद्र भी' की समीक्षा करते हुए डॉ० तारकनाथने कहा कि इस[illegible] व्यक्तिके माध्यमसे समाज और परम्पराकी निरर्थकता व्यंजित है। यहाँ मूल्य और तथ्यके संघर्षके चित्रणकी आवश्यकता नहीं समझी गयी। मूल्य परा[illegible] है। व्यक्ति मूल्यहीनतामें, पूर्ण आज़ादीमें, सिर्फ़ तथ्यमें ही जीता है। इसे [illegible] भावबोधकी प्रतिनिधि रचनाके रूपमें स्वीकार किया जा सकता है।

'खण्डहरोंके बीच', कहानीपर चर्चा करते हुए डॉ० बालीने इसके प्रारम्भको विचारोंका अध्ययन कहा। दूसरे उनका कहना था कि नायकका व्यक्तित्व विभक्त है। खण्डहरोंके बीच रहनेवाले अछूतोंकी चर्चा विचारणीय है। उनका मत था कि इस रचनामें विचारोंका आख्यान अधिक मात्रामें हुआ है। लगता है रचना नहीं, रचनाकार बोल रहा है।

उपसंहारमें तीनों कहानियोंको समग्र रूपमें लेते हुए डॉ० बालीने बताया कि पहली समस्या मूल्य और तथ्यकी है जो कई रूपोंमें सामने आती है। प्रयोग और परम्परा, आस्था और उच्छृंखलता आदि रूपोंपर उन्होंने जमकर विचार करनेकी आवश्यकता बतलायी। उनका कहना था कि डार्विन, फ़ायड, यान्त्रिक उन्नति, विश्वयुद्ध, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद और अणुशक्तिके सम्मिलित प्रहारने सभी पुराने दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, सामाजिक मूल्यों और मान्यताओंको निराधार कर दिया है। इसलिए आज व्यक्ति मूल्योंका सहारा नहीं पकड़ पाता। आदर्श और सिद्धान्त उसे सन्तोष प्रदान नहीं करते। वह तथ्योंकी दुनियामें निराश्रित एवं भटकी आस्थावाला होकर जीता है।

अन्तमें अपनी पीढ़ीकी ओरसे उन्होंने निवेदन करना चाहा कि "मेरी पीढ़ीने जिस तरह गुलामीको भोगा है उसी तरह वह आज़ादीको भी भोग रहा है। जहाँतक दूसरी बातका सवाल है, हमसे पहली पीढ़ी बहुत भाग्यशाली रही है, ऐसा स्पष्ट है; और आनेवाली पीढ़ी अधिक खुशनसीब होगी, ऐसा विश्वास है। आजके नये साहित्यको उसी सन्दर्भमें रखकर देखनेकी कोशिश होनी चाहिए। यह सन्दर्भ राष्ट्रीय सीमाओंमें व्यक्त होते हुए भी उस व्यापक संकटसे अभिन्न रूपसे सम्बद्ध है जो मानव सभ्यताके इतिहासकी सबसे बड़ी चुनौती है, जहाँ उसे सारा पुरातन मरा हुआ दिखाई देता है, भविष्यका कोई रूप उभरता नहीं और सब ही जीवनका माध्यम प्रतीत होता है।"

इस चर्चा-प्रवर्तनके बाद अध्यक्ष श्री साहनीके आमन्त्रणपर उपस्थित साहित्यिकोंने अनने अभिमत व्यक्त किये। डॉ० कृष्णबिहारी मिश्रने केवल 'ध्वंस' कहानीको महत्त्वपूर्ण मानते हुए कहा कि तमाम मान्यताओंका ध्वंस करके आजका लेखन आगे आया। कहानीमें डॉ० बाली-द्वारा सुझाये गये परिवर्तनके सन्दर्भमें उन्होंने कहा कि कहानी कहाँ ख़त्म हो या कैसे इस बारेमें आलोचकको कहनेका अधिकार नहीं है। श्री रमेश लबानियाकी 'एक समुद्र भी' कहानीसे विशेष प्रसन्नता हुई क्योंकि जिस वास्तविकताको यह सामने लाती है वह विचारणीय है। श्री मनहर चौहानने पढ़ी गयी कहानियोंकी चर्चा न करते हुए कहा कि कहानियाँ वही चुनी जानी चाहिए थीं जो गोष्ठी-मंचपर पढ़ी जाने लायक हों।

श्री रमेश गौड़ने 'खण्डहरोंके बीच' को प्रेमचन्द-युगकी और 'एक समुद्र भी'

को आधुनिक कहानी माना। उनके अनुसार कहानीका रूप पकड़ने या बाँधने वाला नहीं बल्कि झकझोरनेवाला होना चाहिए। श्री एम० एस० गोयलने कहा कि आस्थाके अभावमें निरन्तर टूटते हुए आजके व्यक्तिको आस्था मिलना अत्यन्त आवश्यक है, वह चाहे कैसी भी हो। डॉ० सत्यपाल चुघने 'छंद' शीर्षकको कहानीके शिल्पका अनिवार्य अंग बताया और कहा कि कहानीमें वीभत्स तत्त्व आया है और वही उसकी संवेदना है। श्री प्रदीप पन्तके विचारसे तीनों कहानियाँ निहायत घटिया थीं। डॉ० रणवीर रांग्राने तीनों कहानियोंमें एक ही चीज़ पायी : संस्कारोंकी बात। तीनोंमें संस्कारोंसे छूटनेका संघर्ष है; तीनोंमें 'सेन्स ऑव गिल्ट' है जिससे संघर्ष किया जा रहा है।

चर्चा-समापनके बाद अध्यक्ष श्री साहनीसे सबने कहानीके बारेमें कुछ कहने का आग्रह किया तो वह बोले कि मैं तो अध्यक्षतामें ही मस्त था, आप सबके बीच श्रोता बनकर जब बैठूँगा तभी कुछ कहना ठीक होगा।

द्वितीय गोष्ठी विवरण :

कुछ कारणोंसे गोष्ठीका प्रारम्भ बिना उद्घाटन-परिपाटीके किया गया। अध्यक्षता श्री विष्णु प्रभाकरने की। इस गोष्ठीमें चार कहानियाँ पढ़ी गयीं: 'युद्धज' श्री मनहर चौहान-द्वारा, 'पीढ़ियाँ' श्री राजेन्द्र अवस्थी-द्वारा, 'एक ठहरी हुई कहानी' श्री श्याम विमल-द्वारा, और 'तोता' जो श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाके उपस्थित न हो सकनेके कारण बाँची गयी।

चारों कहानियोंपर चर्चाका प्रवर्तन श्री श्याममोहन श्रीवास्तवने किया। 'युद्धज'को उन्होंने एक अश्लील, घटिया, फ़ॉर्म्युलावादी कहानी बताया : एक ऐसी कहानी जो न प्रेमकथा है न युद्ध-सम्बन्धी रिपोर्ताज़। 'पीढ़ियाँ' कहानी शीर्षकसे आधुनिक है, अन्यथा एक क़िस्सा है कहानी नहीं, नयी कहानी तो नहीं ही। 'तोता' सही अर्थोंमें एक प्रतिकथा है जो कहानीके प्रारम्भिक तत्त्वोंको नकारती है और फिर सीधे आघात करती है। इसमें कथानक नगण्य है पर आजके मानवपर बहुत बड़ा व्यंग्य करती है जो निर्भीकताका इतना अनभ्यस्त हो गया है कि बिना विशेष कारण उसे स्वीकार नहीं करता। यह कहानी अपने-आपमें एक अनुपम कलाकृति है और कहानी विधाकी उपलब्धि है। 'एक ठहरी हुई कहानी' में छायावादी भावुकताका स्वर प्रधान है। बेशक लेखकके पास भाषा है और प्रतिभा भी।

इस चर्चा-प्रवर्तनके बाद श्रीवास्तवजीने 'आजकी कहानी : कुछ प्रश्न' शीर्षक निबन्ध पढ़ा जिसमें कहानीमें व्यावसायिकताका प्रश्न उठाया गया। उनका कहना था कि फ्री-लान्सरोंके कारण ही हिन्दीमें घटिया साहित्यकी भरमार हुई है। इन लोगोंमें आमतौरपर यह विश्वास पाया जाता है कि वर्षमें दो-एक अच्छी रचना देनेके बाद उन्हें पूरा हक़ है कि अपनी प्रसिद्धिके बलपर दर्जनों घटिया रचनाएँ भी छपवा लें।

श्रीवास्तवजीके इस निबन्ध-पाठके उपरान्त प्रस्तुत की गयी चारों कहानियों-पर सबने अपना-अपना अभिमत देना शुरू किया। डॉ० कृष्णबिहारी मिश्रने 'युद्धज' को मानसिक अव्यवस्थाकी कहानी बताया जिसमें संवेदनाकी शून्यता है। 'पीढ़ियाँ'के बारेमें उनका कहना था कि यथार्थबोधको सामने रखकर लिखी जानेवाली नयी कहानी धीरे-धीरे जिस तरह लिखी जाने लगी उसका एक उदाहरण है। लेकिन लिखनेवालोंने दिल्लीमें एक मौतकी कहानी लिखी, फिर दूसरी मौतकी लिखी, और शायद अब तीसरी मौतकी भी लिखी जायेगी। 'तोता' डॉ० मिश्रकी दृष्टिमें अकहानीका एक अच्छा उदाहरण थी जिसमें मनोवैज्ञानिक सन्दर्भके साथ सामाजिक सन्दर्भ भी था। 'एक ठहरी हुई कहानी'को उन्होंने पुराने और देवदासी भावबोधकी कहानी बताया।

श्री देवेन्द्र शर्माको 'युद्धज'में कोई अश्लीलता नजर नहीं आयी किन्तु कलात्मक दृष्टिसे सुन्दर नहीं लगी। 'पीढ़ियाँ' इन्हें बहुत पसन्द थी। 'तोता'में प्रतीक अधिक थे, कहानी बस सो-सो! 'एक ठहरी हुई कहानी' विवरणात्मक होते हुए भी काफ़ी अच्छी जान पड़ी क्योंकि उसमें भावनाएँ थीं। श्री रामकृष्ण शर्माको चारोंमें 'एक ठहरी हुई कहानी' श्रेष्ठ लगी। उन्हें दुःख हुआ कि आलोचकोंने ईमानदारी नहीं बरती। श्री अंचल राजपूतने भी 'एक ठहरी हुई कहानी'को अच्छा बताते हुए कहा कि उसमें पुरातन शैली है पर हममें सहअस्तित्वका भाव यथार्थमें होना चाहिए।

डॉ० सत्यपाल चुघने 'एक ठहरी हुई कहानी'में कुछ नयी चीज़ पायी। लेखक देवदासी वातावरणको मूर्त करानेमें सफल हुआ है। उसकी शब्दावली छायावादी ढंगकी है पर वह कहानीकी माँग थी। कथ्यकी दृष्टिसे पहले दर्जेकी तो नहीं, पर बीचके दर्जेकी अवश्य है। 'युद्धज' अत्यन्त कलात्मक कहानी है, केवल ढंग थोड़ा विमुख करता है, इसीलिए इसे सफल नहीं कहूँगा। 'पीढ़ियाँ'में

शीर्षकको पूरी कहानीसे अलग नहीं रखा जा सकता। कहानीमें पिताके बारेमें डोटेल्स अधिक आ गये, सूत्र होने चाहिए थे। इसीलिए कहानी उतनी प्रभावपूर्ण नहीं रही। 'तोता' पर डॉ० चुघ श्री श्याममोहन श्रीवास्तवसे सहमत थे।

श्री रमेश गौड़ने कहा कि 'युद्धज'में टेक्निकल खामियाँ हैं। कहानी विशेष प्रभावित नहीं करती। 'पीढ़ियाँ' बँधी-बँधायी साधारण ढंगकी कहानी है। 'तोता'को अकहानी कहना महज़ प्राध्यापकीय आलोचनाका नमूना है। 'एक ठहरी हुई कहानी'में पाठकपर अविश्वास किया गया है कि लेखक देवदासका सहारा न लेता तो पाठकीय सहानुभूति नहीं पाता। श्री कुलभूषणने कहा कि 'युद्धज' एक विशेष वातावरण उपस्थित करनेके लिए लिखी गयी है, पर युद्धके अनुभवकी कमी खटकती है। अश्लीलता-जैसी बात नहीं है लेकिन रोमान्सपर जिस ढंगसे जो घटाया गया है वह अस्वाभाविक है। 'पीढ़ियाँ' एक फ़ॉर्म्युला-कहानी तो है मगर फ़ॉर्म्युलेकी एक कड़ी छूट गयी है : संघर्ष। कहानी तीसरी कोटि-की है। 'तोता'के द्वारा लेखकने कुछ कहा अवश्य है पर बात अनुभवकी तलहटोंमें नहीं पहुँचती। 'एक ठहरी हुई कहानी'की शैली सुन्दर है लेकिन कहानीमें ठहराव है, गति नहीं।

श्री पूर्णचन्द्र बाहतीने केवल 'एक ठहरी हुई कहानी'के बारेमें कहा कि उद्गम नदीको बहाव नहीं देता, उसमें ठहराव होता है। ऐसा ही ठहराव इस कहानीमें है और उसका अपना ही सौन्दर्य होता है। श्री रमेश उपाध्यायने श्रीवास्तवजीकी व्यावसायिकता और फ़्रीलान्सरोंवाली बातपर कहा कि कहानी व्यावसायिकता-को सामने रखकर नहीं लिखी जाती, उसके लिए दूसरे प्रकारकी रचनाएँ लिखी जाती हैं। श्री रतनलाल शर्माने कहा कि दोनों गोष्ठियोंमें सब ७ कहानियाँ हुई। इसमें ६ फ़ॉर्म्युलेको चित्रित करती थीं, केवल 'एक समुद्र भी' थी जिसमें पकड़ है।

चारों कहानियोंपर इस चर्चाके उपरान्त गोष्ठीके अध्यक्ष श्री विष्णु प्रभाकर-का अध्यक्षीय भाषण हुआ। उन्होंने पिछली गोष्ठीके अध्यक्ष श्री भीष्म साहनीके भाषण न देनेकी बातको स्मरण कराते हुए कहा कि सभापतिके लिए परिपाटी पड़ चुकी है कि कहानियोंपर कुछ न कहा जाये। इसलिए आवश्यक है कि अगली बार मुझे कहानी पढ़नी है। कहानी मैं लिख नहीं पाया हूँ जो मैं पढ़ना चाहता हूँ। अब वह लिखी भी नहीं जायेगी क्योंकि व्यावसायिकता आड़े आ

गयी है, फिर भी मुझे कोई-न-कोई कहानी पढ़नी पड़ेगी ही। जो प्रश्न इस गोष्ठीमें उठाये गये—व्यावसायिकता, अश्लीलता आदिके—ऐसे प्रश्न आइन्दा अलगसे उठें तो अच्छा है। प्रश्न सार्थक हैं।

अपनी एक घटनाको उद्धृत करते हुए भी विष्णु प्रभाकरने कहा—मुझे स्वयं अनुभव है। कोई अप-टू-डेट महिला मिली थीं। मुझसे परिचय पूछा था, मैंने कहा था कि मैं पेशेवर लेखक हूँ। वह बोली—आप तो भाषाका ठीक प्रयोग करना नहीं जानते, आप पेशेवर शब्दका इस्तेमाल कर रहे हैं। मैंने कहा—आप तो बिलकुल आधुनिका हैं, मॉडर्न हैं, आप आपत्ति क्यों करती हैं? आपत्ति मुझे नहीं हो सकती थी। यह मेरा पेशा है, मुझे शरम नहीं आती। रेडियोके लिए जो लिखना चाहता हूँ वह ब्रॉडकास्ट नहीं हो सकता। सालमें एक बार तो रेडियोके लिए कहानी लिखनी ही पड़ती है। मेरे आगे समस्या आ जाती है कि मैं उस तरहकी कहानी कैसे लिखूँ जो रेडियोवालोंको चाहिए।

जब मैं आकाशवाणीमें काम करता था, वहाँ यह श्लीलता-अश्लीलता शृंगार-प्रेम-जैसे प्रश्न बड़े भयंकर रूपमें आते थे। मैंने इस विषयपर डायरक्टरसे वर्डिक्ट माँगा था कि मैं किस सीमा तक यह ड्रामा ब्रॉडकास्ट कर सकता हूँ। वहाँ फ़ाइलें पड़ी हैं जिनमें देखा जा सकता है मेरे सारे नोटिंग्स हिन्दीमें हैं। एक बहुत बड़े अधिकारीने हिन्दीमें लिखा था: बड़ा कठिन है यह बताना, आप आबाल-वृद्ध बाल-वनिताका खयाल करके ब्रॉडकास्ट कर सकते हैं। मैंने सोचा—अब क्या किया जाये? मैं विचार करने उनके पास गया। प्रेम क्या हो, कैसा हो—इसपर बात उठी। वह बेचारे बूढ़े आदमी थे। उन्होंने कहा—प्रेम तो ठीक है, लेकिन अपनी पत्नीसे होना चाहिए। मैंने कहा—पत्नीसे और कुछ तो हो सकता है, प्रेम तो होता नहीं। इसके बाद मूल प्रश्नपर आते हुए श्री विष्णुजीने कहा—ये समस्याएँ तो ऐसी हैं कि बहस करते जाइए, कोई हल निकलता नहीं। नयी-पुरानी कहानीकी चर्चा भी चलती है। प्रस्तुत कहानियोंपर अपने विचार व्यक्त करते हुए श्री विष्णु प्रभाकरने कहा कि श्री राजेन्द्र अवस्थीकी कहानी 'पीढ़ियाँ' पिछली कहानियोंसे अच्छी नहीं। मुझे लगा, मेरे युगका ही कोई आदमी लिख रहा है। 'खिलौने और बेटे' नामक कहानी मैंने भी इसी विषयपर लिखी थी।

'युद्धज'में मनहरजोने विषय तो बहुत अच्छा लिया है, लेकिन उस विषयकी अनुभूतिसे, मेरा यह मतलब नहीं कि वह स्वयं क्लर्क बनते और अनुभव लेते।

दूसरे तरीक़ोंसे भी अनुभव प्राप्त किये जा सकते थे। चौहान उसे पूरी तरह ग्रहण नहीं कर पाये जिसे त्रास कहा जाये—युद्धका त्रास। टेक्निकल ग़लतियाँ भी इसमें हैं जो बतायी भी गयीं। वैसे प्रेमचन्दकी कहानीमें भी शिमलामें टाँगा चलाया गया है। 'तोता'में जो बात कही गयी है वह महत्त्वपूर्ण तो है लेकिन इसी तरहकी बहुत कहानियाँ लिखी जा चुकी हैं। 'एक ठहरी हुई कहानी'को देवदासी कहानी कहा गया है। देवदाससे मैं बहुत आतंकित हूँ। सात सालसे देवदासकी खोज कर रहा हूँ। शरच्चन्द्र उसे अपनी निकृष्टतम रचना मानते थे। छिपाये रखा। देवदास दुनियाका सर्वोत्तम पात्र होते-होते रह गया। वह वेदनाको पूरी तरह झेल नहीं पाया। श्याम विमलने देवदासके शब्दोंका ज़्यादा प्रयोग किया है। इन शब्दोंकी वजहसे सारी आलोचना प्रभावित हो गयी है। अगर इन शब्दोंसे हटकर उसकी स्थितिको समझनेकी कोशिश करते तो शायद कहानी इतनी बुरी नहीं मालूम पड़ती।

—प्रस्तुतकर्त्ता : श्याम विमल

● ●

भारतीविश्व
कुछ सूत्र कुछ सन्दर्भ

जिनका उद्देश्य मनोरंजन करना न
होकर तथ्योंकी थाती सौंपना है

• मलयालमकी पुरस्कृत कृतियाँ

भारतीय साहित्य अकादमी-द्वारा १९६५ के पुरस्कारके लिए चुनी गयी मलयालम पुस्तकका नाम "मुत्तश्शी" (नानी) है। यह कविता संग्रह है। कवयित्रीका नाम है श्रीमती नालप्पाट्टु बालामणि अम्मा।

श्रीमती बालामणि अम्मा मुख्यत: कवयित्री हैं। उनकी डेढ़ दर्जन कविता पुस्तकें प्रकाशित हो गयी हैं। 'सोपानम्' उनकी चुनी हुई कविताओंका संग्रह है। वे मुद्दत तक कलकत्तेमें रह चुकी हैं और उनकी अधिक कविताएँ वहीं रची गयी थीं। आपकी कविताओंका मुख्य स्वर नारीत्व है। नारीकी विविध अवस्थाओंसे गुजरनेवाले भावोंका उतार-चढ़ाव इन कविताओंमें स्पष्ट है। इनकी आयु ५८ सालकी है और अभी भी तत्परतासे सृजनशील हैं।

इधर केरल साहित्य अकादमीने भी १९६५ के पुरस्कारके लिए तीन पुस्तकोंका नाम घोषित किया है। 'एणिप्पटि' (सीढ़ियाँ) इसके लेखक हैं केरलके प्रसिद्ध कलाकार श्री तकषि शिवशंकर पिल्लै जिनका 'चेम्मीन' उपन्यास विदेशी भाषाओंमें भी अनूदित हो गया है।

'अविल् पोति' (चिउड़ेकी पुड़िया) काव्य-संग्रहके लेखक हैं श्री वी० के० गोविन्दन नायर। स्वच्छन्दवादकी टूटी-सी लगनेवाली कड़ीको आप अभी थामे हुए हैं। अत: नयी पीढ़ीकी काव्यधारासे कटी-सी हैं इनकी कविताएँ। फिर भी जिह्वास्वाद बदलनेके इच्छुक 'अविल् पोति' पढ़ ही लेते हैं।

'काफर' (नाटक) के लेखक हैं श्री के० टी० मुहम्मद, जो कुछ साल पहले भारतीय कहानी प्रतियोगितामें प्रथम पुरस्कार पा चुके हैं और आजकल नाटककारके रूपमें प्रसिद्ध हैं। आपके प्रयोगवादी नाटकोंकी यहाँ बड़ी चर्चा है।

केरल साहित्य अकादमीने ज्ञानपीठकी पुरस्कार प्राप्तिपर महाकवि शंकर कुरुपको बधाइयाँ दी हैं।

● मराठी लेखक : मानदण्डकी खोज

यह समाचार प्रकाशित हुआ है मराठी-मासिक 'ललित' के मार्च '६६ के अंकमें ! आप सोचेंगे, यह क्या ? उक्त पत्रके (मार्च '६६) सम्पादकीयकी प्रारम्भिक पंक्तियोंसे ही महाराष्ट्रीय हृदयका वर्चस्वी सरस प्रतिफलन स्पष्ट हो जाता है—

'विश्व साहित्यान्त मराठी साहित्याला मानाचें स्थान मिळालें पाहिजे, असें आज सर्वत्र बोललें जातें. नोबेल पारितोषिक हा त्याचा एक मानदण्ड.' अर्थात् 'मराठीका मान विश्व साहित्यमें होना चाहिए, ऐसी चर्चा आज सर्वत्र है। नोबेल पुरस्कार उसका एक मानदण्ड होगा।' 'ललित'—सम्पादक श्री केशव कोठावलेने साहसिक कल्पना की, यदि मराठीमें नोबेल पुरस्कार दिया ही गया तो वह किस लेखकको मिलेगा ?' इस सर्जनात्मक कल्पनाका आवाहन जनवरी '६६ के ललितमें किया गया। फलस्वरूप १५५ पाठकोंके मत सकारण प्राप्त हुए। मतदान-फल यों रहा :

आचार्य प्रह्लाद केशव अत्रे	२६
पद्मश्री पु० ल० देशपाण्डे	२४
वि० स० खाण्डेकर	२०
पद्मभूषण ना० सी० फड़के	८
रणजीत देसाई	८
स्वातन्त्र्य वीर सावरकर	५
आचार्य विनोबा भावे	५
गो० नी० दाण्डेकर	५

व मो० पुरन्दरे	५
पद्म श्री अनन्त काणेकर	३
बाबा आपटे	३
ना० पेंडसे	३
विश्राम बेडेकर	२
ग० दि० माडगूलकर	२
महादेव शास्त्री जोशी	२
भालचन्द्र नेमाडे	२
भाऊ पाध्ये	२

जिन्हें एक-एक मत प्राप्त हुए वे हैं :

वा० ल० कुलकर्णी, ना० ह० आपटे, सौ० मुक्ताबाई दीक्षित, विंदा करन्दीकर, द० रा० वेन्द्रे, पु० भा० भावे, गंगाधर गाडगिल, व्यंकटेश माडगूलकर, श्री० ए० कुलकर्णी, वि० वा० शिरवाडकर, दिलीप पुरुषोत्तम चित्रे, द० मा० मिरासदार, बसंत सबनीस, मधु गंगेश कर्णिक, मनोहर तल्हार, ना० स० इनामदार, ज० श्री० देशपाण्डे, चन्द्रकान्त काकोडकर, बाबूराव अर्नालकर, तु० ग० तेर्ली।

शेष मतदान मिश्रित प्रकारके रहे अर्थात् किसीने विकल्पसे तीन लेखकोंका उल्लेख किया और किसीने दोका।

• 'कवितावली'का अँगरेज़ी, अनुवाद

यूनेस्कोकी 'प्रतिनिधि भारतीय ग्रन्थमाला'के अन्तर्गत गोस्वामी तुलसीदासजीकी 'कवितावली'का अँगरेजी अनुवाद जार्ज एलेन एण्ड अनविन, लन्दनने ३२ शि० मूल्यपर प्रकाशित किया है। अनुवादक हैं डॉ० रेमण्ड आलविन। आरम्भके लगभग ७०पृष्ठोंमें तुलसीदासके जीवन तथा कृतित्वपर सामग्री है। फिर छन्दोंके अनुवाद हैं जिनके कथाक्रमको अनुवादक अपनी टिप्पणियोंसे जोड़ता चलता है। अनुवादकी अपनी विशेषता यह है कि वे मूल हिन्दी छन्दोंके समान ही चलते हैं और उनकी गतिको ध्वनि देते हैं। विशेष शब्दोंका अनुवाद उनके अर्थोंके पूर्णतया अनुरूप हो रखा गया है। कृति सभी प्रकारसे अभिनन्दनीय है।

● साहित्यिक फ़ासिस्टवाद

आन्द्रै सिन्यावस्की और यूरी डेनियल नामक जिन दो रूसी लेखकोंको सोवियत सरकारने क्रमशः सात-पाँच वर्षकी क़ैद की सज़ा दी, उनका दोष यही तो था कि वे रूसके अन्य समकालीन लेखकोंकी तरह सरकारी संकेतोंपर अपनी क़लमकी कठपुतली नहीं नचा सके। मगर उनपर इल्ज़ाम यह कि उन्होंने सोवियत विरोधी कृतियोंको पश्चिमी देशोंमें भेजा!

कौलिन्स एण्ड हारविल प्रेस नामक लन्दनके एक प्रकाशन संस्थानने सिन्यावस्कीके उपन्यासोंके अँगरेज़ी 'द ट्रायल बिगिन्स' (१९६०) 'द इसाइस्ड' (१९६३), तथा 'द मेकपीस एक्स्पेरिमेण्ट' (१९६५) शीर्षकोंसे प्रकाशित किये। इन उपन्यासोंपर छपा लेखकका नाम है अब्राहम टर्स, जो कि सिन्यावस्कीका ही छद्म नाम है। इसी प्रकार यूरी डेनियलने निकोलाई अर्ज़ाकके नामसे अँगरेज़ी अनुवाद किये।

इन्हीं दो लेखकोंके सन्दर्भमें लन्दनकी एक प्रेस कॉन्फ़्रेन्समें बोलते हुए एक अन्य रूसी लेखक वलेरी तारसिसने यह स्वीकारा कि उसे भी अपनी दस पाण्डुलिपियाँ चोरी-छिपे रूससे बाहर भेजनी पड़ी थीं, जो अब प्रकाशनकी प्रतीक्षामें हैं। सन् १९६२ में श्री तारसिसको सोवियत सरकार-द्वारा धमकी भी दी गयी थी कि अगर उसने अपनी पुस्तकें पश्चिमी देशोंमें छपवायीं तो उसे गोली मार दी जायेगी। उन दिनों वह जबरदस्ती पागलखानेमें भरती कर दिये गये थे, तथा रूसी कानूनके अनुसार किसी भी पागलके खिलाफ़ मुक़दमा नहीं चलाया जा सकता, इसलिए वह जेलसे तो बच गये, किन्तु आठ महीने तक पागलोंके बीच रहनेकी सज़ा भुगतनी ही पड़ी थी। उन्हीं दिनोंके अनुभवोंको श्री तारसिसने 'वार्ड ७' नामक एक उपन्यासमें व्यक्त किया था जो १९६५ में अँगरेज़ीमें ही पहली बार छपा था।

तारसिसको रूससे बाहर जानेकी अनुज्ञा दे देनेके पीछे भी सोवियत सरकारकी कूटनीतिक चाल स्पष्ट है, कि तारसिसके ब्रिटेन जानेपर सिन्यावस्की-डेनियल काण्डकी ओरसे लोगोंका ध्यान शायद हट जायेगा। किन्तु यह चाल कारगर न हो सकी, और दुनिया-भरके समाचार पत्रोंमें यह विषय भी चर्चित हुआ तथा तारसिसका मामला भी सामने आया।

सोवियत दण्ड विधानकी धारा ७० के अन्तर्गत दण्डकी अवधि छह महीनेसे लेकर सात साल तक की है। और सिन्यावस्कीको अधिकतम सजा ही दी गयी।

कुछ वर्ष पूर्व जब पास्तरनेक कृत 'डॉक्टर ज़िवागो' पर नोबेल पुरस्कार घोषित हुआ था तब पास्तरनेकको क्या कुछ भुगतना पड़ा होगा, यह कौन जान सकता है! रूसी लौह पटसे बाहर तो मात्र पास्तरनेककी मृत्यु सूचना ही आ सकी थी।

स्पष्ट है कि सोवियत भूमिपर जो कुछ हो रहा है, वह साहित्यिक अभिव्यक्तिके मार्गमें बाधक है। यही कारण है कि रूसमें गोर्की और चेखॅव फिर नहीं हुए। प्रचार साहित्यके सरकारी पैम्फलेट लिखवानेके लिए ही वहाँ देशभरके साहित्यकारोंको जर-खरीद गुलाम बनाकर रखा जाता है। जिसमें जब भी, ज़रा-सा भी अहं जगता है, उसे कुचल डाला जाता है।

पी० ई० एन० की एक समितिने सोवियत प्रधान मन्त्री श्री कोसीजिनको जो तार भेजा उसमें इस प्रकारके कृत्योंको खुलकर 'वहशी और अमानवीय' कहा गया।

स्वयं रूसी लेखक तारसिसके शब्दोंमें 'सोवियत सरकार इन अमानुषिक दण्डोंके माध्यमसे स्टालिनी तानाशाहीकी ओर लौट रही है, तथा इस प्रकार रूसी निज़ामका फ़ासिस्टवादी पक्ष साफ़-साफ़ उभरकर दुनियाके सामने आ रहा है। सिन्यावस्की और डेनियलने कोई सोवियत क़ानून नहीं तोड़ा, और उन्हें ग़ैरक़ानूनी तौरपर सजा दी गयी है।'

• मॉमकी वसीयत

उपन्यासकार समरसेट मॉमकी वसीयतके अनुसार एलेन सीर्ले नामक व्यक्तिको आजीवन मॉमकी पुस्तकोंकी रायल्टी मिलती रहेगी। सीर्लेकी मृत्युके उपरान्त यह आय रायल लिटरेरी फण्डमें जमा हुआ करेगी, जिससे कि संघर्षरत लेखकोंको आर्थिक सहायता मिला करेगी।

श्री एलेन सीर्ले तीस वर्षसे भी अधिक समय तक स्वर्गीय मॉमके निजी सहायकके रूपमें हर समय उनके पास रहे।

मॉमकी पुस्तकोंकी वार्षिक रॉयल्टी राशि लगभग २० हज़ार पौण्ड है।

• उपन्यास जो दण्ड-गृहमें लिखा गया !

२४ फ़रवरी, १९६५ को 'कैसेल'-द्वारा प्रकाशित 'इन दँ स्प्रिग वार एण्डेड' उपन्यासके बारेमें एक मजेदार कहानी है। स्टीवेन लिनकिसके इस उपन्यासके चरित्र युद्ध-जयी शूरवीर न होकर ५०,००० भगोड़े अमेरिकन सिपाही हैं—जो नारमैण्डी आक्रमणके समय समस्त युरॅपमें तितर-बितर होकर फ़रार हो गये थे। इस उपन्यासका लेखक भी उन्हीं आधे लाख भगोड़ोंमें-से था, ग्यारह महीनों तक वह चोरी-तस्कर व्यापार आदि अनैतिक साधनोंसे जीवन-यापन करता रहा। आखिरी बार जब पकड़ा गया तो 'कोर्टमार्शल'के अनुसार उसे बारह वर्षकी सज़ा दी गयी।

लुइसबर्ग दण्ड-सुधारगृहमें उसने हाई स्कूलकी परीक्षा समाप्त की, १९ साल की उम्रमें जब उसे फौजमें नामज़द कर लिया गया तो शिक्षामें व्याघात पहुँचा, उसी समय अख़बारनवीसीके पाठचक्रममें साहित्यका विशेष अध्ययन भी किया, दास्तावस्कीसे हेमिंग्वे तक सब कुछ पढ़ा। पिछले वर्षके हेमन्तमें जब यह उपन्यास प्रकाशित हुआ तो समीक्षकोंने इसे १९६५ के श्रेष्ठतम १४ उपन्यासोंमें एक माना, 'न्यूयार्क टाइम्स' ने इसे 'आकर्षक और असाधारण शक्तिशाली' कहा। लिनकिस आशान्वित है कि राष्ट्रपति जॉनसन उसके सामरिक अपराधोंको क्षमा कर देंगे जिसके द्वारा मतदान और नागरिकताके खोये हुए अधिकार वह पुनः प्राप्त कर लेगा। उसके न्यूयार्कस्थ प्रकाशकों, पुटनामने एक प्रार्थनापत्र वितरित करनेकी योजना बनायी है—जिसपर अमेरिकन साहित्यिकोंकी स्वीकृति भी होगी। राष्ट्रपति जॉनसनका निर्णय प्रतीक्षित है।

● ●

पत्र-मंच

'ज्ञानपीठ पत्रिका' के मई अंकमें प्रकाशित आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीका लेख 'हिन्दीकी वर्तनी' न केवल महत्त्वपूर्ण लगा बल्कि बहुत उपयोगी भी। वास्तवमें हिन्दीकी वर्तनी सम्बन्धी समस्या पुरानी है और समय-समयपर इसपर विद्वानों-द्वारा बहसें भी खूब हुई हैं किन्तु अभी और बहस भी जरूरी है; कमसे कम इस दृष्टिसे भी कि हिन्दी अब हमारे देशकी शीर्ष भाषा हो चुकी है।

—डॉ० मनोहर काले, पूना

पत्रिकाका मई अंक सामने है। श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठका लेख 'कुछ नये विदेशी साहित्यकार' टिप्पणी पढ़ा। क्या नये विदेशी साहित्यकारोंका निजी स्तर यही है? जिसका उदाहरण श्री कुलश्रेष्ठजीके लेखमें सम्मिलित दो लेखक और एक लेखिका प्रस्तुत करते हैं। कुलश्रेष्ठजीके लेखने ऐसे विदेशी लेखकोंके बारेमें दिलचस्पी तो पैदा की ही है! अच्छा होगा यदि वे अन्य नये विदेशी लेखकोंके बारेमें भी लिखेंगे।

—सोमनाथ चतुर्वेदी, आगरा।

'ज्ञानपीठ पत्रिका' का मई '६६ का अंक सम्पूर्ण रूपसे उपादेय लगा। प्रायः सारी सामग्री महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक है। 'राष्ट्रभारती : परिवेश और उपलब्धियाँ' स्तम्भको अधिक समर्थ बना सकें तो ज्यादा अच्छा हो। वैसे हम लोगोंके बीच तो सर्वाधिक चर्चाका विषय पत्रिकाका 'प्रकाशित समीक्षाएँ : शेष स्वर' स्तम्भ हो रहा है। निस्सन्देह हिन्दी जगत्में अपने प्रकारका यह मौलिक प्रयोग है।

—सन्तोष अग्रवाल, बरेली।

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन
और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक
साहित्यिक कृतिपर प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ



उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित
सामग्रीका अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी मौलिक
साहित्यका निर्माण

●

श्रेष्ठ उपयोगी संग्रहणीय प्रकाशन

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

● ●

प्रधान कार्यालय
९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

विक्रय केन्द्र
३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला

राष्ट्रभारती

२२४	प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी	सं०—दिनकर सोनवलकर
२०७	प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी दो	नानक सिंह
२०४	प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी दो	प्रो० ना० सी० फड़के
१९०	प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी एक	कर्तारसिंह दुग्गल
१९१	प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी	सं०—अनिलकुमार
१६८	प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु	नार्ल वेंकटेश्वर राव
१७०	प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला	'परशुराम'
१७१	प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी एक	व्यंकटेश दि० माडगूलकर

उपन्यास

२२५	अठारह सूरजके पौधे	रमेश बक्षी
१६४	सूरजका सातवाँ घोड़ा [च० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती
२१५	जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु'
१५४	पीले गुलाबकी आत्मा [द्वि० सं०]	विश्वम्भर 'मानव'
७९	गुनाहोंका देवता [आठवाँ सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती
५५	रक्त-राग [द्वि० सं०]	देवेशदास आइ०सी०एस०
५१	तीसरा नेत्र [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन
१९९	जो	डॉ० प्रभाकर माचवे
१६९	महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सुनें !!	'भिक्खु'
१३७	पलासीका युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय
१४३	अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय
८०	शतरंजके मोहरे [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अमृतलाल नागर
९५	शह और मात	राजेन्द्र यादव

११३ राजसी	देवराजदास आइ०सी०एस्०	२.५०
६२ संस्कारोंकी राह [पुरस्कृत]	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०
१२६ ग्यारह सपनोंका देश	सं०—लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००
१ मुक्तिदूत [द्वि० सं०]	वीरेन्द्रकुमार जैन	५.००

कहानी

२२७ मुरदा सराय	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	४.००
१७३ खोयी हुई दिशाएँ [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	२.५०
२ दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ [द्वि. सं.]	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	३.००
१९५ झाड़ी	श्रीकान्त वर्मा	३.००
१६६ मेज़पर टिकी हुई कहानियाँ	रमेश बक्षी	३.५०
६० कालके पंख [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
३० खेल खिलौने [द्वि० सं०]	राजेन्द्र यादव	२.००
१५९ बोस्ताँ [द्वि० सं०]	शेख़ सादी	२.५०
६३ जय-दोल [तृ० सं०]	अज्ञेय	३.००
१४२ ज़िन्दगी और गुलाबके फूल	उषा प्रियंवदा	२.५०
८९ अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
८५ कर्मनाशाका हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.००
१३१ सूने आँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.००
१५१ प्यारके बन्धन	रावी	३.५०
८२ मोतियोंवाले [पुरस्कृत]	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
६९ हरियाणा लोकमंचकी कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२.५०
६५ मेरे कथागुरुका कहना है : १	रावी	३.००
१४४ मेरे कथा गुरुका कहना है : २	रावी	३.००
३५ पहला कहानीकार [पुरस्कृत]	रावी	२.५०
२४ संघर्षके बाद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विष्णु प्रभाकर	३.००
५८ नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
३३ अतीतके कम्पन [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००

२० आकाशके तारे : धरतीके फूल [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
५० नये बादल	मोहन राकेश
५४ कुछ मोती कुछ सीप [द्वि०सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय
४३ जिन खोजा तिन पाइयाँ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय
१२ गहरे पानी पैठ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय
९४ एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर
११५ ऑस्कर वाइल्डकी कहानियाँ	डॉ० धर्मवीर भारती
१३९ लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय

कविता

६४ लेखनी-बेला [द्वि० सं०]	वीरेन्द्र मिश्र
२२० इतिहास-पुरुष	डॉ० देवराज
१२० देशान्तर [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती
२१८ अन्धा चाँद	मुनि रूपचन्द
२०१ चाँदका मुँह टेढ़ा है [द्वि० सं०]	मुक्तिबोध
२०८ आत्मजयी	कुँवरनारायण
८६ कनुप्रिया [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती
१९४ हम विषपायी जनम के [द्वि० सं०]	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
११८ वेणु लो गूँजे धरा [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी
२०३ चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन
२०२ संक्रान्त	डॉ० कैलाश वाजपेयी
१९६ हिम-विद्ध	डॉ० जगदीश गुप्त
१८६ बीजुरी काजल आँज रही	माखनलाल चतुर्वेदी
१८५ अर्द्धशती	बालकृष्ण राव
१७८ रत्नावली	हरिप्रसाद 'हरि'
६८ वाणी [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त
६६ सौवर्ण [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त
१४६ आँगनके पार द्वार [अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत]	अज्ञेय
१३४ वीणापाणिके कम्पाउण्डमें	केशवचन्द्र वर्मा

१२२ रूपाम्बरा	सं०—अज्ञेय	१२.००
८८ अनुक्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
८९ तीसरा सप्तक [द्वि० सं०]	सं०—अज्ञेय	५.००
९० अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	४.००
९१ सात गीत-वर्ष [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.५०
१२७ आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.००
९ पंच-प्रदीप	शान्ति मेहरोत्रा	२.००
८ मेरे बापू	तन्मय बुखारिया	२.५०
३९ धूपके धान [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.००
१३ वर्द्धमान [महाकाव्य पुरस्कृत]	अनूप शर्मा	६.००

शाइरी

१५८ गंगोजमन [द्वि० सं०]	'नज़ीर' बनारसी	३.००
७६ शाइरीके नये मोड़ : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७७ शाइरीके नये मोड़ : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१५६ शाइरीके नये मोड़ : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७५ शाइरीके नये मोड़ : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७७ शाइरीके नये मोड़ : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१३८ नग़मए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
७२ शाइरीके नये दौर : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७३ शाइरीके नये दौर : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१०४ शाइरीके नये दौर : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
११० शाइरीके नये दौर : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१४१ शाइरीके नये दौर : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१४ शेर-ओ-सुख़न : भाग—१ [द्वि०सं०पु०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
२६ शेर-ओ-सुख़न : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२७ शेर-ओ-सुख़न : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२८ शेर-ओ-सुख़न : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००

३१	शेर-ओ-सुख़न : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.००
५	शेर-ओ-शाइरी [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
११९	ग़ालिब	श्री रामनाथ 'सुमन'	८.००
१२	मीर	श्री रामनाथ 'सुमन'	६.००

नाटक

१८	जनम क़ैद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.००
२१९	प्रेत	इब्सेन, अनु० नेमिचन्द्र जैन	२.२५
७५	बारह एकांकी [द्वि० सं०]	विष्णु प्रभाकर	४.००
१६७	घाटियाँ गूँजती हैं [तृ० सं०]	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	२.५०
२०५	नाटक बहुरूपी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.५०
१७२	आदमीका ज़हर	लक्ष्मीकान्त वर्मा	३.००
१७	रजत रश्मि [द्वि० सं० पुरस्कृत]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
१५५	तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ	परिपूर्णानन्द वर्मा	४.००
१००	सुन्दर रस [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	१.५०
१३२	नाटक बहुरंगी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	४.५०
७८	कहानी कैसे बनी ?	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
५३	पचपनका फेर [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विमला लूथरा	३.००
५९	तरकशके तीर	श्रीकृष्ण	३.००
४७	और खाई बढ़ती गयी [पुरस्कृत]	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०
६७	चेखॅवके तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
१०१	कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ० भगवतशरण उपा०	३.५०
१०६	सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	२.००
१०८	भूमिजा	[illegible]	१.५०

विधा-विविधा

१५०	खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति मेहरोत्रा	४.५०
१४९	अंकित होने दो	अजित कुमार	४.००
८७	काठकी घण्टियाँ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	७.००

सीढ़ियोंपर धूपमें	रघुवीर सहाय	४.००
पत्थरका लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	३.००

कलात्मक

शैशवांकन		१२.००
परिणय गीतिका	सं०—रमा जैन, कुन्था जैन	५.००

निबन्धादि

कुछ निबन्ध	अक्षयकुमार जैन	२.५०
क्षण बोले कण मुसकाये [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
चिन्तककी लाचारी	माखनलाल चतुर्वेदी	४.००
एक साहित्यिककी डायरी [द्वि० सं०]	गजानन माधव मुक्तिबोध	२.५०
अमीर इरादे ग़रीब इरादे [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	२.००
हम सब और वह	दयानन्द वर्मा	२.००
बातें, जिनमें सुगन्ध फूलोंकी	अहमद सलीम	३.००
महके आँगन चहके द्वार	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
शिखरोंका सेतु	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.५०
बाजे पायलियाके घुँघरू [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	४.००
फिर बैतलवा डालपर	विवेकी राय	२.५०
आँगनका पंछी और बनजारा मन	डॉ० विद्यानिवास मिश्र	३.००
नये रंग नये ढंग	लक्ष्मीचन्द्र जैन	[illegible]
बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०
कागज़की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.५०
सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२.५०
ठूँठा आम	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.००
हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान [द्वि.सं.]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	१.००
ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१.००
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२.५०

५६ माटी हो गयी सोना [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	३.००
२५ ज़िन्दगी मुसकरायी [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००

यात्रा-विवरण

१८७ चीड़ोंपर चाँदनी	निर्मल वर्मा	३.००
१३० एक बूँद सहसा उछली	अज्ञेय	७.००
८४ पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदो	३.००
९९ सागरकी लहरोंपर	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
१३६ हरी घाटी	डॉ० रघुवंश	४.५०

संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी

७४ दीप जले शंख बजे [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	३.००
१६२ समयके पाँव [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
२१ रेखाचित्र [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००
१२४ पराड़करजी और पत्रकारिता [पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	५.५०
१०९ आत्मनेपद	अज्ञेय	४.००
११४ माखनलाल चतुर्वेदी	'बरुआ'	६.००
१५ जैन-जागरणके अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१९ संस्मरण [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
१६ हमारे आराध्य [पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००

आलोचना, अनुसन्धान, रचना-शिल्प

१५२ अपभ्रंश भाषा और साहित्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	१०.००
२२१ विवेकके रंग	सं०-डॉ० देवीशंकर अवस्थी	७.००
२२३ घरेलू इलाज	वैद्यरत्न च० गो० ठक्कुर	२.००
१८९ हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि	डॉ० प्रेमसागर जैन	१२.००
१९३ भाषा और संवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.५०
१८८ हिन्दी गीतिनाट्य	कृष्ण सिंहल	४.००
१७४ साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य	डॉ० रघुवंश	५.००

१५७ जैन भक्ति-काव्यकी पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमसागर जैन	६.००
१३५ रेडियो वार्ता-शिल्प	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	२.००
४१ रेडियो नाट्य-शिल्प [द्वि० सं०]	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	३.००
३८ ध्वनि और संगीत [द्वि० सं०]	ललितकिशोर सिंह	४.५०
१८ भारतीय ज्योतिष [च० सं०]	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	८.००
८३ प्राचीन भारतके प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०
४५ संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००
४८ संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन [द्वि.सं.]	डॉ० भोलाशंकर व्यास	५.००
१२९ हिन्दी नवलेखन	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.००
११२ मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
४२ शरत्के नारी-पात्र	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.५०
४४ हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : १	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०
४९ हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : २	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०

इतिहास-राजनीति

१४५ भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०]	डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१०.००
१९८ भारतीय संस्कृतिका विकास : वैदिक धारा	डॉ० मंगलदेव शास्त्री	७.००
१२१ समाजवाद	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५.००
३६ कालिदासका भारत : भाग १ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००
४० कालिदासका भारत : भाग २ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
३२ चौलुक्य कुमारपाल [द्वि०सं० पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.५०
५२ एशियाकी राजनीति	परदेशी	६.००
१०७ इतिहास साक्षी है	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
२३ खोजकी पगडण्डियाँ [द्वि० सं० पुरस्कृत]	मुनि कान्तिसागर	४.००
२२ खण्डहरोंका वैभव [द्वि० सं०]	मुनि कान्तिसागर	६.००

दार्शनिक-आध्यात्मिक

२१७ तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो	मुनि नथमल	२.००
२१२ क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?	आचार्य तुलसी	२.००

३३	अध्यात्म-पदावली [तृ० सं०]	डॉ० राजकुमार जैन	४.५०
२०६	दर्शन अनुचिन्तन	गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	३.००
२००	तान्त्रिक साधना	माधव पुण्डलीक पण्डित	१.५०
१०	भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२.००
७	वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६.००

सूक्तियाँ

१४०	सन्त-विनोद [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	२.५०
१८२	भाव और अनुभाव [द्वि० सं०]	मुनि नथमल	२.००
११	ज्ञानगंगा : भाग १ [द्वि०सं०]	नारायणप्रसाद जैन	६.००
११६	ज्ञानगंगा : भाग २	नारायणप्रसाद जैन	६.००
६१	शरतकी सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
९३	कालिदासके सुभाषित	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००

हास्य-व्यंग्य

२२२	बक रहा हूँ जुनूनमें	प्रकाश पण्डित	३.००
२०९	सिकन्दरनामा	सलमा सिद्दीक़ी	२.००
१३३	आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य [द्वि० सं०]	सं० — केशवचन्द्र वर्मा	४.००
१६०	तेलकी पकौड़ियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० प्रभाकर माचवे	२.००
१७६	जैसे उनके दिन फिरे [द्वि० सं०]	हरिशंकर परसाई	२.५०
१८४	काग़ज़के फूल शब्द : भारतभूषण अग्रवाल,	चित्र : प्रभाकर माचवे	३.००
१७९	चाय पार्टियाँ	सन्तोषनारायण नौटियाल	२.००
१५३	हास्य सन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	६.००
१०५	मुर्ग़-छाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	२.००
९७	अंगदका पाँव	श्रीलाल शुक्ल	२.५०

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर और साथमें दिया ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा । जैसे : 'सूरजका सातवाँ घोड़ा' के लिए 'लो' — १६४' मात्र ।



मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला

तत्त्वज्ञान और सिद्धान्तशास्त्र

१ समयसार [प्राकृत-अँगरेज़ी]
मूल : आचार्य कुन्दकुन्द; सं०-अनु० : प्रो० ए० चक्रवर्ती ८.००

१० तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग १
२० तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग २
मूल : भट्ट अकलंक; सम्पादन : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य २४.००

१३ सर्वार्थसिद्धि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य पूज्यपाद; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री १२.००

१० पंचसंग्रह [प्राकृत-हिन्दी] १५.००
संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री १५ ००

८ जैन धर्मामृत [संस्कृत-हिन्दी]
संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री २ ००

जैन न्याय और कर्मग्रन्थ

११ कर्मप्रकृति [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य नेमिचन्द्र, सम्पादन : पं० हीरालाल शास्त्री ६.००

३० सत्यशासन-परीक्षा [संस्कृत]
मूल : आचार्य विद्यानन्दि; सम्पादन : गोकुलचन्द्र जैन ५.००

२२ सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग १
२३ सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग २
मूल : भट्ट अकलंक और अनन्तवीर्य; सम्पादन : डॉ० महेन्द्रकुमार ३०.००

३ न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग १
१२ न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग २
मूल : भट्ट अकलंक और वादिराज सूरि; सं० : डॉ० महेन्द्रकुमार ३०.००

४ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग २
मूल : भगवन्त भूतबलि; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ११.००

५ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ३ ११.००
६ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ४ ११.००
७ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ५ ११.००
८ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ६ ११.००
९ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ७ ११.००

आचारशास्त्र, पूजा और व्रत-विधान

२८ उपासकाध्ययन [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : सोमदेव सूरि, सं०-अनु० : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री १२.००

३ वसुनन्दि श्रावकाचार [प्राकृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य वसुनन्दि; सं०-अनु० : पं० हीरालाल शास्त्री ५.००

७ ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि [हिन्दी]
संकलन-सम्पादन : डॉ० आ०ने० उपाध्ये व फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ४.००

१९ व्रततिथिनिर्णय [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ३.००

६ मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन [हिन्दी]
लेखक : पं० नेमिचन्द्र शास्त्री २.००

व्याकरण, छन्दशास्त्र और कोश

१७ जैनेन्द्र महावृत्ति [संस्कृत]
मूल : आचार्य अभयनन्दि; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी १५.००

५ सभाष्य रत्नमञ्जूषा [संस्कृत]
मूल : अज्ञात; सम्पादन : श्री हरि दामोदर वेलणकर २.००

६ नाममाला सभाष्य [संस्कृत]
मूल : कवि धनंजय–अमरकीर्ति; सम्पादन : पं०शम्भुनाथ त्रिपाठी ३.५०

पुराण-साहित्य

२७ हरिवंशपुराण [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १६.००

८ आदिपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १

९ आदिपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य २०.००
१४ उत्तरपुराण [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य गुणभद्र; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १०.००
२१ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
२४ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
२६ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३
मूल : आचार्य रविषेण; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ३०.००
१५ पुराणसार-संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
१६ पुराणसार-संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
मूल : आचार्य दामनन्दि; सं०-अनु० : डॉ० गुलाबचन्द्र चोधरी ४.००

चरित व काव्य-ग्रन्थ

६ सुगन्धदशमी कथा : सं० डॉ० हीरालाल जैन ११.००
४ करकण्डुचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]
मूल : कनकामर, सं०-अनु० : डॉ० हीरालाल जैन १०.००
२९ भोजचरित्र [संस्कृत]
मूल : राजवल्लभ, सम्पा० : डॉ० छावड़ा, शंकरनारायणन् ८.००
५ मयणपराजयचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]
मूल : कवि हरिदेव; सम्पादन और अनुवाद : डॉ० हीरालाल जैन ८.००
१ मदनपराजय [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : नागदेव; सं०-अनु० : डॉ० राजकुमार जैन साहित्याचार्य ६.००
१ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग १
२ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग २
३ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग ३
मूल : कवि स्वयम्भू; सं०-अनु० : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन ९.००
१८ जीवन्धरचम्पू [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : कवि हरिचन्द्र

सम्पादन, अनुवाद और टीका : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

१ जातकट्ठकथा [पाली]
सम्पादन : भिक्षु धर्मरक्षित

५ धर्मशर्माभ्युदय [हिन्दी]
अनुवादक : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र

२५ भद्रबाहु संहिता [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य भद्रबाहु; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य

७ केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य

२ करलक्खण [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी

विविध

९ वर्ण, जाति और धर्म [हिन्दी]
लेखक : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

११ जिनसहस्रनाम [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री

१ थिरुकुरल [तमिल]
सम्पादन : ए० चक्रवर्ती

१ आधुनिक जैन कवि [हिन्दी]
संकलन-सम्पादन : श्रीमती रमा जैन

२ कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची
संकलन-सम्पादन : पं० के० भुजबली शास्त्री

७

माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला

पुराण

३७ महापुराण [अपभ्रंश] आदिपुराण : भाग १
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य

४१ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग २
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — १०.००

४२ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग ३
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — ६.००

२९ पद्मपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

३० पद्मपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

३१ पद्मपुराण [संस्कृत] भाग ३
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

३२ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

३३ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

शिलालेख

२८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
सम्पादन : पं० श्री हीरालाल जैन — २.००

४५ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — ८.००

४६ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — १०.००

४८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ४
सम्पादन : डॉ० जोहरापुरकर — ७.००

चरित, काव्य और नाटक

४० वरांगचरित [संस्कृत]
मूल : श्री जटासिंहनन्दि; सम्पादन : डॉ० आदिनाथ उपाध्ये — ३.००

३५ जम्बूस्वामीचरित [संस्कृत]
मूल : पं० राजमल्ल; सम्पादन : श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री — १.५०

८ प्रद्युम्नचरित [संस्कृत]
मूल : श्री महासेन; सम्पादन : पं० मनोहरलाल, रामप्रसाद शास्त्री .५०

रामायण [अपभ्रंश] (अलगसे)
मूल : महाकवि पुष्पदन्त २.५०

२७ पुरुदेवचम्पू [संस्कृत]
मूल : श्रीमदर्हद्दास; सम्पादन : श्री जिनदास शास्त्री .७५

४३ अंजनापवनंजय [नाटक]
मूल : श्री हस्तिमल्ल : सम्पादन—वासुदेव पटवर्धन ३.००

जैन-न्याय

३८ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ८.००

३९ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ८.५०

४७ प्रमाणप्रमेयकलिका [संस्कृत]
मूल : श्री नरेन्द्रसेन; सम्पादन : पं० दरबारीलाल कोठिया १.५०

सिद्धान्त, आचार और नीतिशास्त्र

२१ सिद्धान्तसारादि [प्राकृत-संस्कृत]
मूल : श्री जिनेन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी १.५०

२० भावसंग्रहादि [प्राकृत-संस्कृत]
मूल : देवसेनसूरि; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी २.२५

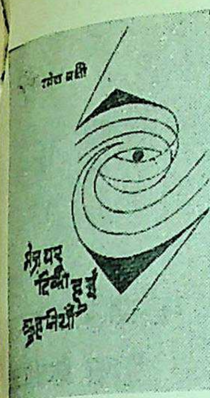
२५ पञ्चसंग्रह [संस्कृत]
मूल : श्री अमितगति सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल .८१

३६ त्रिषष्टिस्मृतिसार [संस्कृत, मराठी अनुवाद]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : मोतीलाल .५०

४४ स्याद्वादसिद्धि [संस्कृत, हिन्दी-सारांश]
मूल : श्री वादीभसिंहसूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल १.५०

२४ रत्नकरण्डश्रावकाचार [मूल, संस्कृत टीका]
मूल : श्री स्वामी समन्तभद्र; टीका : श्री प्रभाचन्द्राचार्य २.००

● ●



मेज़ पर टिकी हुई कुहनियाँ

• •

रमेश बक्षी

युग-प्राणोंके कम्पनको सहेजकर नवीनतम पृष्ठ-भूमिपर कथनको नया अन्दाज़ देती रमेश बक्षीकी ये कहानियाँ कभी तो चित्रकलाके सभी सहज सिद्धान्तोंको उरेहती हैं और कभी मनकी बेहद गहरेसे ध्वनित स्वर-सज्जाको उघारती हैं। कहानियाँ पढ़ते समय लग सकता है कि ये कहानियाँ नहीं हैं और यह भी कि ये ही तो कहानियाँ हैं।

मूल्य ३.५०



भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और
सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसीसे मुद्रित।

रजिस्टर्ड सं० एल-१०३६

भारतीय ज्ञानपीठ
द्वारा प्रकाशित

चीड़ों पर चाँदनी

निर्मल वर्मा

बीसवीं सदीके स्मारक चिह्नोंकी खोजमें एक भारतीय लेखकके, नयी पीढ़ीके सशक्त कथाकारके, ये यात्रा-संस्मरण अपने-आपको खोजने का प्रयास तो हैं ही, कुछ ऐसे अनुभव-खण्ड भी हैं जिनमें एककी निरपेक्षता दूसरेकी आत्मीयतासे घुल-मिल गयी है।

मूल्य ३.

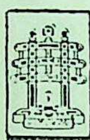
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता • दिल्ली • वाराणसी





ज्ञानोदय



भारतीय ज्ञानपीठ

सांस्कृतिक जागरण
साहित्यिक विकास-उन्नयन
राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी
साधिका विशिष्ट संस्था

● ●

संस्थापक : श्री शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा : श्रीमती रमा जैन

कार्यालय :
कलकत्ता, दिल्ली, वाराणसी

ज्ञानपीठ पत्रिका

लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन
दिशा-प्रवृत्ति और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

वर्ष चार : अंक बारह
जुलाई १९६६

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जगदीश
प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
मूल्य : छह रुपये वार्षिक, पचपन पैसे प्रति; द्विवार्षिक : ग्यारह रुपये
समाज-शिक्षा विभाग, राजस्थान-द्वारा उच्च, उच्चतर
विद्यालय तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंके लिए प्रस्वीकृत

उद्घोष

पूर्णता उस काव्यको प्राप्त हुई कहेंगे जो सर्जनात्मक हो और जिसमें रूप और आत्मा इतने अधिक ओत-प्रोत हों कि विलग करके न देखे जा सकें

गुलाबदास ब्रोकर

काव्यके उपादान शब्द हैं और शब्दोंके उपादान उनके अर्थ। प्रत्येक कलाको अपने प्रयुक्त उपादानसे बल भी मिलता है और उत्तरदायित्व भी वहन करना पड़ता है। काव्यके प्रसंगमें भी यही सत्य है। यही कारण है कि सौन्दर्यशास्त्रियोंने काव्यकलाको शब्द और अर्थसे निर्मित कला कहा है। लेकिन वे जानते थे कि काव्यमें न तो 'शब्द' ही मात्र सीधा-सादा शब्द रहता है और न 'अर्थ' ही सीधा-सादा अर्थ। इसके विपरीत काव्यमें तो रस-निष्पत्तिके लिए इन दोनोंका एक-दूसरेमें सम्पृक्त होना अनिवार्य है—इतना अधिक संयुक्त कि एकको दूसरेसे अलग करके न देखा जा सके। उनकी इसी संयुक्तताके लिए ही कालिदासने एक प्रतीककी योजना की थी। यह प्रतीक है अर्द्धनारीश्वरके रूपमें एक पदार्थके सदृश संयुक्त बन जानेवाले पार्वती और परमेश्वरका। प्राचीन रसाचार्योंके द्वारा प्रयुक्त शब्द और अर्थके शब्दयुग्मके स्थानपर हम रूप और आत्मा शब्दयुग्मका प्रयोग करके कहें तो कहा जा सकता है कि जब किसी सर्जनात्मक कृतिमें रूप और आत्मा एक-दूसरेमें इतने अधिक ओत-प्रोत हो जायें कि एकको दूसरेसे अलग करके न देखा जा सके तब समझना चाहिए कि काव्यको पूर्णता प्राप्त हुई। ऐसा काव्य संसारको केवल आह्लाद और माधुर्य ही नहीं प्रत्युत प्रकाश और चेतनाकी सजगताका प्रसाद भी देता है।

• • •

आधुनिक साहित्य
सामयिक परिवेश

आधुनिक साहित्यकी विशिष्टता उसके परिवेशसे नहीं परिवेश-
के प्रति उसकी दृष्टिसे उद्‌भूत है। उसमें परम्पराको बढ़ाने
या तोड़नेका आग्रह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना कि
अपनी सामान्यताकी सीमाको विशाल पटपर प्रतिक्षेपित
करनेका संकल्प

विद्यानिवास मिश्र

रचना और रचनाकारके परिवेशमें एक मौलिक अन्तर है, वह यह कि रचनाकारका बहुत सारा परिवेश रचनाकी दृष्टिसे निरर्थक है, जब कि रचनाका आन्तरिक या बाहरी प्रत्येक परिवेश रचनाकारको भी घेरे हुए है। रचनाकार जिस संसार और जिन अनुभवोंके बीचसे गुजरता है, वे रचनाके लिए उसी अंश तक परोक्ष रूपसे सार्थक हैं, जिस अंश तक वे रचना-प्रक्रियाकी विषयवस्तु, रचनाकारकी गहरी सम्पृक्ति, चिन्ता, संकल्पना और रचनात्मक मन्थनासे सम्बद्ध हैं। इसलिए रचनाकारका हर एक परिवेश या हर एक परिवेशकी हर एक प्रतिक्रिया, लाचारी या समृद्धि रचनाको उपकृत नहीं करती, उपकृत सिर्फ़ वह अंश करता है, जो रचनाकारको उस परिवेशसे मुक्त करानेके लिए यत्नशील है, तीव्र साधक या तीव्र बाधक है और जो रचनाकारको रचनाके माध्यमसे जन्म लेनेके लिए विवश करता है।

जहाँतक रचनाके परिवेशका सवाल है, यह मानकर चलना चाहिए कि साहित्यकी रचना जिस माध्यमसे होती है, वह माध्यम अर्थात् भाषा पूर्वनिश्चित संकेतोंपर आश्रित है, नये संकेत भी निश्चित संकेतोंके सरणिपर ही निर्धारित होते हैं, इससे दूर खिंचकर अप्रेषणीय हो जाते हैं। रचनाकार इस जड़ और स्थिर माध्यमसे, इस आकार-गृहीत उपादानसे अबोधपूर्ण अर्थकी खोज करके विषम संकटसे ग्रस्त है। वह इसको छोड़ नहीं सकता, पर इसकी नाकाफ़ियतसे भी त्राण नहीं पा

सकता, उस दशामें वह जितना ही इस अपर्याप्तताका तीव्रतर अनुभव करता है, जितना ही खीझ-खीझकर बार-बार घड़े सकोरे भिगोता है, कड़ी पड़ी मिट्टी-को रूँधता है, नये आकार गढ़ता है उतना ही वह भाषाकी सामयिकतासे ऊपर उठता है और युगबद्धभाषासे युगातीत भाषाकी प्रबुद्धता उसमें जाग्रत् होती है, वह भाषामें आगे आनेवाले परिवर्तनोंके संकेत, नये बननेवाले संकेतोंके संकेत पा जाता है और यह पूरी प्रक्रिया एक ओर उसे समसामयिकतामें बोरती है, दूसरी ओर सामयिकतासे, रुढ़िसे तारती भी है। इस दृष्टिसे भाषाका प्रत्येक स्तर जो कहीं-न-कहीं जिया जा रहा है या वह स्तर जो पुराना होनेपर भी जिये जानेकी योग्यता, नये दायित्वोंको सँभालनेकी योग्यता, नव-अधिगत समग्रताको समेटनेकी योग्यता रखता है; अन्वेषणका, प्रयोगका, स्वीकारका, प्रत्याख्यानका, विस्तारका, संकोचका विषय बनता जाता है। रचना वही समृद्ध होती है, जो जीवनगर्भ भाषाके द्वारा सम्प्रेषित होती है। यह ज़रूर है कि भाषा भी रचनाकी अंग नहीं, आन्तरिकता नहीं, महज़ सवारी है। इसलिए भाषाके साथ खिलवाड़ ज़रूरतसे ज़्यादा होनेपर तमाशा खड़ा हो जाये तो हो जाये, रचना पीछे छूट जाती है या कहीं बग़ल झांकने लगती है। भाषागत परिवेश प्रमुख बल है सही 'कविहिं एक आखर बल सांचा' पर वह परिवेश बड़ा ही खतरनाक है। उसकी ओर ज़्यादा उन्मुख होना और भी खतरनाक; आँखें अन्धी हो जाती हैं, उसकी ओरसे विमुख होना भी ख़तरनाक, क्योंकि तब कान बहरे हो जाते हैं और तब प्रेषण एक-पक्षीय होनेके कारण बड़ा ही ज़िद्दी, जटिल और उबाऊ हो जाता है। यह परिवेश वही झेल सकता है, जो इसमें छेद कर सके या जो इसके लचीले अंशको, संवेदनशील अवयवको छूकर इसे गुद्गुदा सके। इसको उन्मुक्त कर सके, इसको सहज कर सके। आजके साहित्यके सन्दर्भमें इस परिवेशके खतरे और भयावह हैं। अँगरेजियत, अतिरिक्त आँचलिकता, अतिरिक्त शहरीपन, अतिरिक्त सादगी, अतिरिक्त सर्वग्राह्यताका आग्रह, अतिरिक्त अटपटापन और अतिरिक्त बोझीलापन—इनसे उबर पाना आधुनिकताकी अभिव्यक्तिके लिए एक घोर संकट है। और आधुनिकताके लिए एक बड़ी चुनौती भी।

रचनाका दूसरा महत्त्वपूर्ण बाहरी परिवेश है रचना, जो अबतक हो चुकी है, और जो अचेत या अवचेत या सचेत किसी-न-किसी रूपमें रचनाकारके मनमें छायी हुई है, यह रचनात्मक परिवेश काव्य-रचनामें कुछ और विशिष्ट महत्त्व

रखता है। वहाँ भीतरसे श्रव्यताकी खोज छन्दकी समंजसलयोंकी डगरपर ही होती है। दूसरे प्रकारकी साहित्य-रचनामें कथ्यका, कथ्यभंगिमाका, और संयोजनतन्त्रका ही महत्त्व है। आधुनिकताके सन्दर्भमें रचनात्मक बाहरी परिवेशका महत्त्व दो कारणोंसे है, एक तो अधिकांश रचनाकार जिस शिक्षा-प्रणालीसे होकर निकले हैं या निकल रहे हैं वह द्विधा रूपमें समस्त मानवीय उपलब्धिको देखनेके अभ्यस्त हैं—पश्चिमी-दर्शन-भारतीय दर्शन, पश्चिमी साहित्यशास्त्र-भारतीय साहित्यशास्त्र, पश्चिमी अर्थनीति-भारतीय अर्थनीति, पश्चिमी नीतिशास्त्र-भारतीय नीतिशास्त्र। अब इस विभाजनको एक सीधी रेखा काटने लगी है, वह है विज्ञान, विज्ञान अबँटनीय है। इसका परिणाम यह है कि जो मानवीय उपलब्धिकी एकताको नहीं ग्रहण कर सकता, वह एक-न-एक तरफ़ झुक जाता है, जो ग्रहण कर पाता है, वह इतर हो जाता है, वह भारतीय नहीं रहता, पश्चिमी नहीं रहता। इस प्रकार इस परिवेशका भी महत्त्व इसमें सन्निहित 'जोखिम'के ही कारण है। दूसरा कारण है छापाखाना। साक्षात् प्रेषणका अनुपात परोक्ष प्रेषणके अनुपातसे आज कहीं कम है, इसलिए स्वभावतः एक अधूरा ग्रहण हो रहा है, पर हज़ारों तरफ़से एक साथ कई प्रकारके ग्रहण हो रहे हैं। पहले विवेककी शिक्षा होती थी, विवेक अपने-आप आसानीसे संकल्प-मात्रसे हो भी जाता था। अब विवेक कठिन हो गया है। सिद्ध रचनाके सम्बन्धमें इसलिए कि उसकी विवेचनाएँ इनके प्रकारकी अब उपलब्ध हैं कि उजलतबाज़ रचनाकारको भटकनेकी काफ़ी गुंजाइश है और सामयिक साहित्यके सम्बन्धमें, इसलिए कि वहाँ विवेचना नहीं है, है प्रस्थापना या ठीक कहें, उत्थापना। विवेकके अभावमें संस्कार ग्रहण करनेका संकल्प खण्डित हो जाता है, वह न तो जुड़ पाता है उन रचनाओंसे जिनसे प्रभाव ग्रहण करता है, और न जोड़ पाता है अपनी रचनाको उन रचनाओंकी सम्भावनासे। नकारनेकी निर्ममता ही विवेककी पहली शर्त है, पर बहुतसे लोग नकारनेके जोशमें दूध पीना ही भूल जाते हैं। ऐसा इकहरा विवेक भी बहुत अच्छा नहीं।

रचनाका तीसरा परिवेश है (और यह आजकी हिचकिचाती आधुनिकताके सन्दर्भमें महत्त्वपूर्ण है) उसका समकालीन ग्रहण, साधारण और विशिष्ट पाठकद्वारा। यह परिवेश रचनाको सीधे समृद्ध या दरिद्र उतना नहीं करता जितना कि रचनाकारको उत्साहित, अनुत्साहित या हतोत्साहित करता रहता है और

इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूपमें रचनाकी आगेकी सम्भावनाको प्रभावित करता है। आज इस परिवेशको इसलिए भी विशेष रूपसे सार्थकता मिल गयी है कि यह परिवेश अधिकतर एक अन्धी दीवारके रूपमें सामने खड़ा है और रचनाकार विवश है स्वयं ग्रहीता बननेके लिए, यह उसकी एक दयनीय स्थिति है, इस स्थितिके कारण रचनाका आन्तरिक स्तर ग्रन्थिल हो रहा है। इस स्थितिका इलाज छोटे पाठक, छोटी गोष्ठियाँ, छोटी जगहोंकी छोटी पर्युत्सुकताएँ तो अपनी जगहपर हैं ही, इसका सही इलाज प्रबुद्ध प्रकाशक, सम्पादक और आलोचकके पास है।

अन्तमें बात आती है रचनाके आन्तरिक परिवेशकी, विशेषतः आधुनिक साहित्यके परिवेशकी। यह तो अबतक अत्यन्त असन्दिग्ध रूपमें स्वीकार किया जा चुका है कि आधुनिकता आधुनिकीकरण नहीं है, वह इतिहास बोध, यान्त्रिक जीवनकी तेज़ी, तनावका बोझ, मूल्योंका विघटन, मूल्योंका अन्वेषण, समकालीन समाजसे सम्पृक्तता, व्यक्तित्वका निर्वैयक्तिक अभिमान, यथार्थसे संलग्नता-जैसी चीज़ें नहीं, वह वस्तुतः मूल्यरूप होनेकी, मानवतावादी होनेकी यथार्थसे नहीं, उसकी यातनासे मुक्त होनेकी और विज्ञनावादी होनेके प्रमाणरूपमें निर्विशेष अनुभवको भी अपनी तीव्र वैयक्तिकतासे अर्थ देनेकी संस्कारिता है। यह संस्कारिता प्रक्रिया है, निष्पन्नता नहीं, निष्पन्नतासे अतृप्ति है और आजका संघर्षमय जीवन या उस जीवनका दुर्वह बोझ रचनाके आन्तरिक या दुर्निवार परिवेशसे नियत रूपमें सम्बद्ध नहीं, नियत रूपमें सम्बद्ध है, इस जीवनको अर्थसे प्रमाणित करनेकी सक्रिय इच्छासे (अर्थका प्रयोग मैं 'वैल्यू'के अर्थमें कर रहा हूँ), यह अर्थ विनिमेय नहीं है, सापेक्ष नहीं, यह अर्थ निरपेक्ष है, यह ध्रुव नहीं, संचरणशील है, कूटस्थ नहीं, सन्तानवाही है। दूसरी बातें इस सिसृक्षाके फल या उपफलकी हो सकती हैं, निमित्त हो सकती है, उपादान कारण नहीं हो सकती। जो लोग समकालीन मूल्यगत संकट, ह्रास, वैषम्य या विश्वबन्धुताकी अनिवार्यताकी आड़ लेकर अपनी रचनाको विलग करनेका आग्रह करते हैं, वे वास्तविक अर्थमें सर्जक नहीं हैं, वे बस नक़लनवीस हैं या हदसे हद रिपोर्टर हैं। वे दूसरोंका संकट अपने ऊपर ओढ़ते हैं, अपनी पुकार नहीं सुनते। कितना भी व्यापक या सनातन मूल्य कोई क्यों न हो, उसकी मूल्यवत्ता उसके 'अँजुरी-भर पिये जाने' तक ही वास्तविक है।

इसलिए एक ओर जहाँ आजके रचनाकारके बाहर और भीतरका जगत् इतना प्रसरणशील है, इतना अछोर है, वहीं दूसरी ओर उसकी सम्पृक्तता उतनी ही केंद्रित और नुकीली है। उसका आक्रोश इसलिए हजार चीजोंके खिलाफ़ न होकर मनुष्यकी कुछ असमर्थताओंके खिलाफ़ है। उसका रागात्मक सम्बन्ध विषयोंसे नहीं, वस्तुओंसे है, (वस्तु जिस रूपमें गृहीत हो रही है) दूसरे शब्दोंमें उसका चित्त दृश्यसे अधिक दृष्टिमें है, और इसीलिए उसकी रचना मूर्तको प्रमाणित करनेके लिए स्वयं अमूर्त है। आधुनिकताका तादात्म्य इस प्रकारकी प्रक्रियासे जोड़ लेनेपर यह स्वतः उद्भूत हो जाता है कि प्रेरणाका स्रोत कोई भी हो (और यदि प्रेरणाका स्रोत है तो वह स्वदेशी है या विदेशी है इसका महत्त्व है कि वह आत्मीय है या अनात्मीय है?) वह स्रोत जबतक रचनाकारके व्यक्तित्वके निर्माणमें सहायक न हो और जबतक वह व्यक्तित्व रचनाकी यन्त्रणासे उन्मथित न हो, तबतक वह स्रोत अपने-आपमें कोई मूल्य नहीं रखता।

इसी प्रकार ज़िन्दगीकी बहुत सारी तल्खी बिना कोई चोट जगाये, बिना चित्तपर अपनेको टंकित कराये उफनकर नीचे चली जाती है, उसका रचनाकी दृष्टिसे कोई महत्त्व नहीं, महत्त्व सिर्फ़ उस तल्खीका या उस उमंगका है, जो रचनाकी आवश्यकताको जन्म दे, जो अभिव्यक्त हुए बिना रह न सके (क्योंकि उसकी अभिव्यक्ति रचनाकारकी ज़िन्दगी है)।

आधुनिक साहित्यकी विशिष्टता उसके परिवेशसे नहीं परिवेशके प्रति उसकी दृष्टिसे उद्भूत है। उसमें परम्पराको बढ़ाने या तोड़नेका आग्रह उतना मानी नहीं रखता, मानी रखता है अपनी सामान्यताकी सीमाको बहुत विशाल पटपर प्रतिक्षेपित करनेका संकल्प।

● ●

मैं क्यों लिखता हूँ

मैं लिखता हूँ—अपनी अन्तश्चेतनताको जगाने और सौन्दर्यबोधको सूक्ष्म तथा व्यापक दृष्टिसे देखनेके लिए

अमृतलाल नागर

मेरे एक आदरणीय साहित्यिक बन्धु एक बात कहकर अपने नये-पुराने लेखक-बन्धुओंको अकसर नाराज़ कर दिया करते हैं। 'क्यों लिखता हूँ' प्रश्नके उत्तरमें वे कहते हैं कि पैसेके लिए। वह कहते हैं कि जब कहींसे रुपये मिलनेकी सम्भावना दिखलाई देती है तो क़लम चलने लगती है। लिखनेसे रोटी चलती है, इसलिए लेखन कला-कौशलको साधता हूँ।

लिखनेके कामसे ही रोटी कमानेवाले कई स्वनामधन्य कलाकारों और खुद अपनी भी जीवनचर्यामें मैंने बन्धुवरकी यह बात आज़माकर देखी है। एक हद तक उसे सही भी पाया है। किसी पत्र-पत्रिकासे चिट्ठी आयी कि रचना भेजो, हमें मालूम है कि उस पत्र या पत्रिकासे पारिश्रमिककी सन्तोषजनक रक़म मिलती है, इसलिए जी कुनमुनाने लगता है और ध्यान किसी प्लॉट या विषय-वस्तुकी ओर दौड़ने लगता है।

लेकिन क्या हमारे अन्दरकी लेखन-स्फूर्ति केवल रोज़ी कमाने तक ही सीमित है? एक तरुण साहित्यिक बन्धुने एक बार मेरे उक्त आदरणीय मित्रकी बातपर मेरा यह प्रश्न सुनकर व्यंग्य-भरी हँसीके साथ कहा था—खैर पैसेके लिए न सही तो नामके लिए लिखते होंगे। बहरहाल पुरानी पीढ़ीके यशस्वी कथाकार अब लिखनेके लिए नहीं लिखते।

यशके सम्बन्धमें भी एक बात कही जा सकती है। सफलताकी हद तक पहुँचनेके बाद यश केवल इसलिए ज़रूरी होता है कि वह यशस्वीकी आमदनीको बढ़ानेका साधन बन जाता है। पद-प्रतिष्ठा भी यशके कारण ही प्राप्त होती है और उससे भी आमदनी बढ़ती है।

अपनी रचनाओंमें तरह-तरहके आदर्शों और सिद्धान्तोंकी प्रतिष्ठापना करनेके सम्बन्धमें भी यह दलील दी जा सकती है कि वह भी बाज़ारू माल है, चूँकि वे रचनाके बिकने और ख्याति-लाभ करानेमें सहायक होते हैं, इसलिए हम उनका समावेश करते हैं।

आजके लेखकके चेतन मानदण्डको इस तरहसे भी पेश किया जा सकता है और इस स्थितिमें सृजनशील लेखनका काम शुद्ध शिश्नोदरवादकी हैसियतपर आकर स्थापित हो जाता है। हमें अपना हलवा माँडा चाहिए; कोठी, कार, फ्रिजिरेटर चाहिए, दुनियाका सैर-सपाटा, कामिनी-कांचन सिद्ध करना ही हमारा इष्ट है। यदि इसकी सम्भावना न हो तो हम न लिखें। थोड़ी देरके लिए इस सत्यको स्वीकार किये लेता हूँ।

अब यह भी मान लें कि पेशेवर यशस्वियोंकी धन-सुख-चैन कमानेकी आपसी होड़में किसी स्थितिपर पहुँचकर किसी कलाकारके जीवनमें यह नौबत आ जाये कि उसे पैसा, मान कुछ भी न मिल सके, तब क्या उसका जीवन-भरका लेखन-अभ्यास, उसकी कला घुटनमें क़फ़न तानकर खामोशीसे सो जायेगी ? स्वयं हमारे उक्त आदरणीय मित्र, जो कि अपने कथनानुसार पैसेके लिए लिखते हैं, बिना पैसेके लालचके, बिना किसी फ़रमाइशके भी लिखते हैं। मैंने देखा है व्यक्तिगत चोट खानेपर या अपने अन्दरके खोखलेपनको मिटानेके लिए उन्होंने अपनी अन्त-र्वृत्तिसे विवश होकर लिखा है, सोचा है। सृजनात्मक लेखनका काम महज़ लिपिक बनने तक ही तो सीमित नहीं है, विचारक और द्रष्टा बनने तक उसकी दौड़ है। यह काम करके उसे आत्मतुष्टि मिलती है। विचार और मनोदृश्य तीव्र संवेदनशील व्यक्तियोंको जीवित रखते हैं, अन्यथा ऐसे लोग किसी भी हालतमें जी ही नहीं सकते। जिनमें संवेदनशीलताका गुण औसत रूपसे होता है, या जिनकी तीव्रता बाहरी आघातोंसे कुण्ठित होकर गहरे समझौते कर लेनेके लिए क्रमशः राज़ी हो जाती हैं, वे लोग कलाका सर्जन प्रायः कर ही नहीं पाते। मेरा अपना अनुभव तो यही कहता है कि भाव निरन्तर भजे जानेपर ही अपनी शब्द-शक्ति देता है।

मेरा दूसरा अनुभव यह कहता है कि भाव-भजनके लिए कलाके उपकरण जो हमें स्थूल जगत्से ही मिलते हैं, हमारा समाज, हमारा वातावरण ही हमारी भीतरवाली अमूर्त कलाको मूर्तिवन्त करता है। अपने लिए तो मैं यह कह ही

सकता हूँ। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओंसे मेरा परिचय अक्षर-शब्द-ज्ञान हो जानेके कुछ बादसे ही बढ़ने लगा था। बचपनमें खेलनेके लिए साथी मुझे शामके समय केवल डेढ़-दो घण्टेके लिए पार्क जानेपर ही मिलते थे। सारा दिन घरके सामनेवाली गुलज़ार सड़क, घरके नीचे दूकानोंमें बसे हुए सब्ज़ीफ़रोश कबाड़िये, कबाड़िनों और उनके ग्राहकोंकी बातचीत, लड़ाई-झगड़े, गालीगलौज, हँसी-मज़ाक़, तरह-तरहके दृश्य, बातें, भाव-भंगिमाएँ देखना-सुनना, सड़कके बादवाले विशाल कम्पनीबाग़, उसके आगे चमकती रूपहली गोट-सी गोमती नदी, दूसरेके अन्तरिक्ष तक हुई हरियाली, दायें-बायें इमामबाड़े और रूमी दरवाज़े, घण्टाघरकी ऐतिहासिक भव्यताको निहारना या नियमित रूपसे घरपर आनेवाली 'सरस्वती', 'गृहलक्ष्मी' और 'हिन्दू पंच' के साथ समझे-बेसमझे सिर खपाना, यही मेरा धन्धा था। इन्हीं सबसे पायी हुई बातों और दादीकी कहानियोंके सहारे मैं अपने मनसे बोलता-बतियाता था। शुरूसे ही एक मेरा अभाव भी उदय हो गया, गणितका विषय मेरा बड़ा ही जानलेवा बन गया। शिक्षारम्भसे हाईस्कूल पास करने तक इसने मुझे बेहद सताया। स्कूलमें मेरी हर घण्टेमें कमोबेश कमाई हुई इज़्ज़त गणितके घण्टेमें धुल जाती थी। मास्टर हँसते, लड़के हँसते और फिर मुझे स्वयं भी अपने ऊपर हँसना आ गया। मेरे पिता मेरे लिए यश चाहते थे। गणितकी कमज़ोरीपर उनके उपदेश, उनकी खीझ और मार, घरपर और स्कूलमें पढ़ानेवाले गणित-मास्टरकी मार और ताने सहते-सहते मेरा अन्तर विद्रोही हो उठा था। एक ओर जहाँ उसके कारण मैं अपने अन्दर यह अभाव पा रहा था, वहीं वादविवाद प्रतियोगिता, नाटक, क्लब संगठन, अन्य पाठ्य-विषयों और पुस्तकालयवाली पुस्तकोंकी पढ़ाईमें बराबर कुछ-न-कुछ महत्त्व भी अर्जित करता जा रहा था। दस-ग्यारह वर्षकी आयुसे ही एक क़िस्मकी जोशीली लीडरी भी मुझमें पनपने लगी थी। सन् १९२८ ई० में बारह-तेरह वर्षकी आयुमें, 'साइमन गो बैक' के उस ऐतिहासिक जुलूसमें मैं भी शामिल होकर भीड़में दबा-कुचला था, जिसमें जवाहरलाल नेहरू और गोविन्दवल्लभ पन्तने पुलिसकी लाठियाँ खायी थीं। वहाँसे घर आते-आते तन-मनके उबालमें एक तुकबन्दी फूट पड़ी—'कब लौं कहो लाठी खाया करें, कब लौं कहो जेल सहा करिए।' घर आकर लिख डाली, मगन हुआ, दूसरे दिन 'आनन्द' में छपने दे आया और तीसरे दिन थोड़े-बहुत संशोधनके साथ वह मुझे छपी हुई देखनेको

मिल गयी। हियाव खुला, शायद दस-बारह तुकबन्दियाँ लिखीं, सबके विषय इसी प्रकारके थे—गुलामी, ग़रीबी, जात-पाँत, विधवा आदि। मेरा एक प्रिय मित्र अपनी बड़ी भाभीकी कलहसे दुःखी होकर एक दिन घरसे भाग गया। घरसे वह सीधा मेरे यहाँ आया था, दो-तीन घण्टे बिताये, खाया-पिया और फिर जो गया तो ग़ायब हो गया। इस घटनासे मनको जबर्दस्त धक्का लगा। मेरी पहली कहानी यों फूटी। एक बार गद्यकी ओर मुड़ आनेपर फिर तुकबन्दीका मोह छूटा और मेरे मनमें यह भी स्पष्ट हो गया कि यही मेरा भविष्यका काम है।

इस तरह मैं यह कह सकता हूँ कि बिना जाने आरम्भ ही से मैं जीवनवादी लेखक बन गया था। खैर, कोई जीवनवादी लेखक बने या न बने, पर मैं यह निश्चित रूपसे कह सकता हूँ कि हर सृजनशील लेखक और कवि अपनी भौतिक परिस्थितियोंके कारण ही अपने अन्तरका वह भाव-स्पर्श पाता है जो उसे आगे बढ़ाकर यशमान और धन-वैभव तक देता है। जीवनके यथार्थसे उसका परिचय वहींसे आरम्भ होता है, उसकी आध्यात्मिक या कलात्मक कसौटी भी स्थूल जगत् ही है।

'जीवनका यथार्थ समझना ही कलाका उद्देश्य है, कला जीवनके लिए है'—यह दृष्टि, यह सिद्धान्त अब मेरे लिए आस्थाकी वस्तु बन गया है। 'कला-कलाके लिए है' वाला सिद्धान्त भी अकसर मेरी मनःदृष्टिके आगे चक्कर लगा जाता है। मैं अकसर अपने पूर्वाग्रह छोड़कर उसे ध्यानसे देखनेका प्रयत्न करता हूँ। खाली बैठे या कभी-कभी दूसरेकी बातोंको गम्भीरतापूर्वक सुनते हुए भी लोग अकसर काग़ज़पर आड़ी तिरछी लकीरें खींचते हैं, थोड़ा-बहुत रूपाकार बना सकनेवाले मनुष्य पशु-पक्षियों, कुरसी-मेज़-जैसी कोई पूर्व-निश्चित आकारवाली वस्तु आँकने लगते हैं। मैंने देखा है, अकसर निरर्थकमें-से कुछ ऐसा सार्थक रूप भी बन जाता है जिसे यदि हम जानबूझकर अंकित करने बैठते तो शायद कभी न बन पाता। कभी-कभी अमूर्तको मूर्त करते-करते सहसा एक प्रतिध्वनि उसमें-से गूँज उठती है और हम एक नये अर्थगाम्भीर्यसे सजग हो उठते हैं। उदाहरणके रूपमें एक दृष्टान्त दूँगा—एक दिन खाली समयमें बैठे-बैठे यों ही काग़ज़पर कुछ लोटा-लाटी करने लगा, करते-करते मछली या आँखके आकारकी रेखाएँ बनीं। मछली न बनाकर मैंने उसके अन्दर बीचोबीच पुतलीका एक गोला बना दिया। अब चेतनाकी ऊपरी सतहपर यह स्पष्ट हो गया कि आँख बन रही है, इसलिए

पुतलीके गोलेमें दृष्टि-बिन्दुका छोटा गोला बनने लगा, उँगलियाँ कुछ इस तरह घूमीं कि वह गोली सही-सही न बनकर कुछ प्रश्न-चिन्ह-सी खिंच गयी। प्रश्न-चिह्नने शायद मुझे लुभाया न होगा, इसलिए प्रश्नचिह्नकी खड़ी लकीरको नोचेसे फिर थोड़ा घुमाव दे दिया। अब मुझे लगा कि यह कान बन गया। आँख-की पुतलीके अन्दर दृष्टि-बिन्दुकी जगह यह कान-जैसी आकृतिका बोध सहसा अजीब तरहसे इस बातका बोध करा गया कि आँखके अन्दर कान है। यह मेरे लिए एकदम नया बोध न था, लेकिन उस समय ताज़गी दे गया। पुरानी पढ़ी-सुनी बात सहसा अपना दर्शन बन गयी—रूप और ध्वनिको हम विश्लेषण-के लिए भले अलग-अलग करके एक हद तक देख लें पर अन्ततोगत्वा दोनों एक-दूसरेसे अभिन्न हैं। रेडियो नाटक लिखते समय मैं कानको आँख बनानेका मन्त्र बराबर याद रखता हूँ। ऊपरी सतहपर यदि हम आँखमें कान और कानमें आँख होनेकी बात कहें तो औसत समझवाला हमारी समझपर हँसेगा, पर यह जीवनका यथार्थ है। अकसर सिद्धान्तोंको अपना लेनेके बाद हम उनके एक लोकसम्मत अर्थको ग्रहण कर लेते हैं और उसपर अपनी आस्था जमाकर, उसके अनुसार कार्य-व्यवहार करने लगते हैं। यदि कोई उसे नयी परिभाषा देता है तो हमारे बँधे-बँधाये (सोचनेकी 'इल्लत'से बचे हुए) विश्वास-को सहसा धक्का लगता है और हम विरोध करने लगते हैं। यह दुराग्रह है। 'बूँद और समुद्र' में दूसरेके मनकी बात जान लेनेवाले या दूरसे ही अपने मनो-संकेत दूसरेके मनमें स्पन्दित करनेवाले साधुरामजीपर बन्धुवर राजेन्द्र यादव-ने ज़ोरदार आक्षेप किया था। उनके लिए यह अविश्वसनीय था, किन्तु मेरे लिए विश्वसनीय यथार्थ। अब रूसवाले टॅलीपैथीका प्रयोग कर रहे हैं, पता नहीं राजेन्द्र यादव उसपर क्या कहेंगे।

कुछ समय पहले मैंने दो ऐसी कहानियाँ लिखीं जो यथार्थवादकी औसत कसौटीपर चमत्कारिक या अस्वाभाविक भी कही जा सकती हैं। मैं आमतौरपर ऐसी कल्पनाओंसे अपना गम्भीर नाता स्थापित नहीं कर पाता, हास्यकी बात दूसरी है। जिन दिनों वे कहानियाँ मनमें उमगीं और उभरीं, उन दिनों उनमें वर्णित घटनाओं-जैसी कोई भी बात मेरे देखने-सुननेमें नहीं आयी थी। एक दिन सुबह सुचित सन्तुष्ट और मगनमौजमें एक पत्रिकाकी माँग पूरी करनेके इरादेसे कहानीकी धुन अपने मनमें बाँधी। स्मृतियोंका रजिस्टर खुलने लगा, लेकिन

मनको कहीं स्फुरणा नहीं मिल रही थी। यथासमय मेरा लिपिक आ गया, उसे तो कुछ-न-कुछ लिखाना ही है, यह विचार सताने लगा। अकसर ऐसे खाली समयको मैं निरर्थक ड्राइंग बनानेके अनुसार ही लिखा-लिखाकर भरने लगता हूँ, इसमें मुझे एक प्रकारकी क्रीड़ाका आनन्द आने लगता है। एकाध पेज़ लिखाते-लिखाते अन्त:स्फूर्ति किसी चरित्र या विषयवस्तु (रूप या ध्वनि) से सजग हो उठती है और फिर अपनी कल्पनाके सातों घोड़ोंकी बागडोर थामकर मैं यथार्थ जगत्‌के जाने-पहचाने सुदृढ़ धरातलपर अपने अनुभवरूपी प्रकाशका व्याख्यात्मक रथ दौड़ाने लगता हूँ। उस दिन भी ऐसा ही किया। तुरन्त कुछ लिखानेकी तेज़ तलब-में मेरी आँखोंके सामने सहसा एक ही दिन पहले रातमें पुलिसकी मदद लेकर एक किरायेदारसे मकान खाली कराये जानेका दृश्य आ गया। इस दृश्यके साथ ही दो-तीन वर्ष पहले दूरसे ही कई बार देखे हुए एक बड़े ही सुन्दर तरुण दम्पतिके चेहरे एकदमसे बड़ी मीठी झलक मनमें दे गये। मैंने लिखाना आरम्भ कर दिया। लेकिन उस दिन मुझे एक पेज़ क्या एक पैराग्राफ़ तक भी भटकना न पड़ा। कहानी-का सूत्रपात हुआ और वह बढ़ती गयी, दो दिनमें पूरी भी हो गयी। ख़ैर, पत्रिका-की फ़रमाइश तो पूरी हो गयी मगर मनमें यह सवाल उठा कि इस कहानीको लिखनेके पीछे मेरा उद्देश्य क्या था। एकाएक मन स्पष्ट न हो सका। यह ठीक है कि कहानीमें वर्णित चामत्कारिक बात मैं बहुत पहले एक प्रसंगमें सुन चुका था, वह अचानक स्मृतिसे काग़ज़पर उतरती चली आयी।........लेकिन हर देखी-सुनी बातको मैं सहसा काग़ज़पर तो उतार नहीं देता। अकसर ऐसा हुआ है कि मनलायक़ न बन पानेपर कहानी, पैसोंके लालचके बावजूद, मैं माँगने-वाली पत्रिकाको न भेजकर सम्पादकसे क्षमा माँग लेता हूँ। सोचने लगा कि इसे भी न भेजूँ। माना कि वह चमत्कार मैंने स्वयं नहीं देखा, केवल सुना-भर था, पर रामजी बाबाको देख चुका हूँ। कहानीमें वर्णित घटना भी सम्भव हो सकती है। मुझे यह नहीं लगता कि इसे लिखकर मैं स्वयं अपनेको या अपने पाठकोंको किसी अन्धविश्वासमें फँसा रहा हूँ। फिर विचार आया कि यदि सही मानते हो तो जब यह बात सुनी थी तभी क्यों न लिखी? आज अनायास ही इसने सृजनशील क्षणोंको क्यों स्पर्श किया? जवाब नदारद। स्व० 'प्रसाद'जी-की एक बात याद आयी, लिखनेकी प्रेरणाके सम्बन्धमें बात चलनेपर एक बार उन्होंने मुझे यह बतलाया था कि कभी-कभी वे कहानी लिख जाते हैं और स्वयं

उन्हें ही उसका उद्देश्य समझमें नहीं आता। इस सिलसिलेमें उन्होंने अपनी 'रमला' कहानीका नाम लिया था। सारे ऊहापोहको समेटते हुए अन्तिम निर्णय यही किया कि कहानी प्रकाशनार्थ भेज दूँ, यही नहीं, कुछ और भी उसे चामत्कारिक यथार्थ, जो मेरे अनुभवमें आये हैं, उन्हें भी लिख डालूँ, और पाठकों, समालोचकोंके मत एकत्र करके अपनी चिन्तन-परिधिको व्यापक बनाऊँ। कहानी मैंने छपने भेज दी।

मैं लोक-प्रचलित मतसे मुक्त होकर अपनी आग्रह-भरी अन्तर्दृष्टिसे नया अनुभव देखनेवाले कलाकारपर रोक लगानेके लिए हरगिज़ राज़ी नहीं हो सकता, लेकिन इसके साथ-ही-साथ इस बातसे भी कभी राज़ी नहीं हो सकता कि कलाकार अपनी मुग़लिया तानाशाहीको समाजपर आरोपित करनेका जोम बरते। दोनों ही बातें ग़लत हैं। व्यक्ति और समाज सूक्ष्म-दर्शनार्थ विवेचन-विश्लेषणके लिए तो अलग-अलग करके देखे जा सकते हैं, वस्तुतः वे 'गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न' हैं। हम यदि समाजको शब्द मान लें तो व्यक्ति उसका अर्थ है, इसी तरह व्यक्तिको शब्द माननेपर समाज उसका अर्थ हो जाता है।

कलाकारका नैतिक, आध्यात्मिक सौन्दर्य-बोध भी ठोस यथार्थके धरातलसे ही उमगता है। इसी तरह अन्तश्चेतना भी मेरे लिए कोरमकोर अमूर्त वस्तु नहीं, अपने समाजसे अन्तरंग होनेकी प्रक्रियामें ही वह मुझे मिलती है—मैं अपनी अन्तश्चेतनाको जगाने और सौन्दर्य-बोधको सूक्ष्म और व्यापक दृष्टिसे देखनेके लिए लिखता हूँ। इसके बिना जीना, रोटी या नाम कमाना सब बेकार है। हाँ, जो लोग बहसके लिए बातको ग़लत ढंगसे पेश कर लिखनेसे रोटी-रोज़ी या यश कमानेको हीन कार्य समझते हैं, उन्हें कोरा हाजी बगलोल मानकर उनकी बातोंको रद्दीकी टोकरीमें फेंकने लायक़ ही समझता हूँ।



नया युग

हम सबके लिए विचारणीय
एक महत्त्वपूर्ण बात,
जरूरी नहीं कि हम राजी ही हों !

विश्वम्भर 'मानव'

आधुनिक युगकी सबसे प्रमुख विशेषता साहित्यमें खड़ी बोलीका ग्रहण है। इस दृष्टिसे हम इसे खड़ी बोलीका युग भी कह सकते हैं। लेकिन किसी दिन यह युग आधुनिक नहीं रहेगा और खड़ी बोली तो अभी सहस्रों वर्ष जीवित रहेगी; अतः अब इसे कोई ऐसा नाम दे देना चाहिए जो इसकी विशेषताओंको व्यक्त कर सके। इस युगको प्रारम्भ हुए सौ से ऊपर वर्ष हो गये। खेदकी बात है कि अभीतक इसका कोई प्रामाणिक इतिहास तक नहीं लिखा गया। मेरी दृष्टिसे खड़ी बोलीने सभी विधाओंमें इतनी अधिक उन्नति कर ली है कि इसके इतिहासका लेखा-जोखा किसीको लेना चाहिए; क्योंकि विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत शोध-प्रबन्धोंपर निर्भर करनेसे अब काम नहीं चलेगा।

हिन्दी-साहित्यमें जो अनायास हो जाता है, उसे हो जाने दिया जाता है। इसके आलोचक और विचारक इस बातकी चिन्ता नहीं करते कि साहित्यके क्षेत्रमें कोई ग़लत काम न होने पाये। छायावाद-युगका ग़लत नाम पड़ गया, सो पड़ गया। इस युगमें आलोचनामें एक शुक्ल-युग चलता है, उपन्यासोंके क्षेत्रमें प्रेमचन्द युग–शायद नाटकोंमें 'प्रसाद' युग भी। ऐसी ही उलझन सन् १९३५ के बादके काव्यको लेकर खड़ी हो गयी है। इस युगको उत्तर-छायावाद-काल कहा जाता है। प्रश्न यह है कि यह उत्तर-छायावाद-काल कबतक चलेगा ? इसके सम्बन्धमें अब कुछ अन्तिम निर्णय हो जाना चाहिए।

सन् १८५० से लेकर आज तकके कालको हम स्थूल रूपसे इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं—

भारतेन्दु युग	सन् १८५० से १९०० तक
द्विवेदी युग	सन् १९०० से १९१५ तक
छायावाद युग	सन् १९१५ से १९३५ तक
उत्तर-छायावाद-काल	सन् १९३५ से —

उत्तर-छायावाद-कालमें नये गीति-काव्य, प्रगतिवादी काव्य एवं प्रयोगवादी काव्य तीनोंका जन्म और विकास हुआ है। जैसे भारतेन्दु युगके प्रमुख कवियोंमें हम भारतेन्दु और प्रेमघनके; द्विवेदी युगमें मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूरामशंकर शर्मा और गोपालशरणसिंहके; छायावाद युगमें प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवीके; वैसे ही उत्तर-छायावाद-कालमें बच्चन, नागार्जुन और 'अज्ञेय' के नाम ले सकते हैं। ये तीनों तीन दिशाओंके कवि हैं। व्यक्तिगत रूपसे इस युगके सभी प्रमुख कवियों और लेखकोंमें मुझे 'अज्ञेय' का साहित्यिक व्यक्तित्व श्रेष्ठतर प्रतीत होता है और उनकी देन कुल मिलाकर अधिक महत्त्वपूर्ण लगती है। ऐसी दशामें यदि छायावादोत्तर-युगको 'अज्ञेय युग' घोषित कर दिया जाये, तो कोई अनुचित बात न होगी।



कविताका अनुवाद स्वरूप तथा समस्याएँ

मूल रचनाके आधारपर अपनी प्रतिभासे अनुवादक-द्वारा निर्मित नयी कृति ही सर्वोत्तम अनुवाद है।

दिनकर सोनवलकर

स्वतन्त्रताके पश्चात् हिन्दी साहित्यको समृद्ध करनेमें अनुवाद-साहित्यका महत्त्वपूर्ण योगदान है। ये अनुवाद भारतीय भाषाओंसे तो किये ही गये हैं; विदेशी भाषाओंकी कृतियोंके अनुवाद भी प्रस्तुत किये गये हैं। हिन्दीकी प्राय: सभी पत्र-पत्रिकाओंके प्रत्येक अंकमें एक-न-एक अनुवादित रचना रहती ही है। न केवल हिन्दीकी अभिव्यक्ति-क्षमताको विकसित करनेकी दृष्टिसे, वरन् उसे एक 'सेतु-भाषा' बनानेके लिए भी अनुवाद एक अनिवार्य विधा है। जो लोग विभिन्न भाषाओंसे हिन्दीमें अनुवाद-कार्य कर रहे हैं, वे सभी सेतुबन्धनके पुण्यमें हिस्सेदार हैं।

अनुवादके स्वरूप तथा उसकी समस्याओंपर अकसर विचार-विमर्श किया जाता रहा है और कुछ प्रश्न उठाये गये हैं। तकनीकी एवं शास्त्रीय विषयोंका अनुवाद करनेमें शायद उतनी समस्याएँ उत्पन्न नहीं होतीं क्योंकि उनमें विश्लेषण, व्याख्या तथा परिभाषासे ही सामना होता है। असली कठिनाई सृजनात्मक साहित्यका अनुवाद करते समय महसूस होती है और वह भी कविताका अनुवाद करते समय। कविताका अनुवाद अपने-आपमें एक चुनौती है; और मज़ेकी बात ये है कि इस चुनौतीको स्वीकारनेवाले साहसी लोगोंकी संख्या बढ़ती जा रही है।

पहला प्रश्न अनुवादके स्वरूपको लेकर है। अनुवादकी परिभाषा ही बड़ी विचित्र है और अपने-आपमें विरोधाभासको छिपाये है। "श्रेष्ठ अनुवाद वही है जो अनुवाद होकर भी अनुवाद न जान पड़े" अर्थात् जो अनुवाद होते हुए भी

मौलिक रचनाका आनन्द प्रदान करे। यह परिभाषा अनुवादका निकष भी है और उसकी सीमा भी। अनुवादकके चारों तरफ़ मूल रचनाका घेरा खींचकर उससे कहा जाता है कि अब वो अपना कमाल दिखाये। ज़ाहिर है कि यह ना-मुमकिन नहीं है क्योंकि कुछ लोगोंने यह करिश्मा दिखाया है; मगर जब छान-बीन की गयी तो पता चला कि वे मूल रचनाके वृत्तसे बाहर आ गये हैं।

डॉ० धर्मवीर भारतीने अपने एक लेखमें कहा है: और ऐसी स्थितिमें शाब्दिक अनुवाद प्रस्तुत करें तो वह सफल नहीं हो पाता और सफल अनुवाद प्रस्तुत करें तो वह शाब्दिक अनुवाद नहीं हो पाता—(ज्ञानपीठ पत्रिका: फ़रवरी ६६, पृष्ठ १४)। उपर्युक्त शब्दोंमें भी इसी समस्याको प्रस्तुत किया गया है: शब्दोंका माध्यम स्वीकार करके भी, शब्दोंसे परे जानेकी विवशता। दार्शनिकोंका ब्रह्म भी तो ऐसी ही एक उलझन है: सृष्टिमें अभिव्यक्ति होकर भी सृष्टिसे परे। अनुवादका यह स्वरूप ही उसकी दूसरी समस्याओंका मूल है। अनुवादकको कुछ स्वतन्त्रता होनी चाहिए अथवा नहीं तथा इस स्वतन्त्रताका दायरा कितना हो? एक भाषाके वाक्य-प्रयोगों, मुहावरों, विशिष्ट सन्दर्भों, सूक्ष्म व्यंजनाओंको अनुवादमें कैसे सुरक्षित रखा जा सकता है? क्या प्रत्येक भाषाकी प्रकृति तथा अभिव्यक्ति-क्षमता अलग-अलग नहीं होती?

शायद इन्हीं सब समस्याओंसे घबराकर, कुछ लोगोंने यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि "श्रेष्ठ काव्यका अनुवाद सम्भव नहीं होता।"

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित आधुनिक मराठी कविताओंके प्रतिनिधि अनुवादकी भूमिकामें डॉ० प्रभाकर माचवेने लिखा है—"मर्ढेकर और तत्सम आधुनिकतावादी कवियोंकी रचनाका बहुत बड़ा भाग भाषा-विषयक उनके प्रयोगों पर निर्भर करता है। उसकी पूरी अन्तर्कथाएँ और अर्थच्छटाएँ अन्य भाषामें उप-लब्ध कराना प्राय: असम्भव होता है। मेरा तो यह भी मत है कि आधुनिकता-वादी कविके हर शब्द, उसकी योजना, छन्द, यहाँतक कि पंक्ति तोड़ने और लिखनेकी पद्धतिमें भी कोई सचेतन अर्थ होता है। मैं यदि अनुवादक होता तो इन सब बातोंको ज्योंका त्यों रखनेका यत्न करता। पर प्रस्तुत अनुवादकी धारणा कुछ भिन्न है।"

इसके ठीक विपरीत डॉ० हरिवंशराय बच्चनका मत है। उनके द्वारा प्रस्तुत

किये गये ईट्सके अनुवादोंके सन्दर्भमें जब कुछ प्रश्न किये गये तो बच्चनजीने लिखा—"रूसी कविताओंका अनुवाद करते समय भी मुझे यह अनुभूति हुई थी कि छन्द-तुकोंका बन्धन स्वीकार कर लेनेसे अभिव्यक्तिमें कृत्रिमता आ जाती है। मौलिक कविताओंमें छन्दोंका संयम एक प्रकारका सौन्दर्य भी दे सकता है, अनुवादोंमें वह बाधा बनता है।"

इसी सन्दर्भमें उन्होंने आगे लिखा : "श्रेष्ठ काव्यमें कुछ ऐसा अंश होता है जो अनुवादमें भी नष्ट नहीं होता है—जो शब्दोंकी सीमासे परे होता है—इसीलिए किसी भाषाके शब्द उसकी सीमा अथवा बाधा नहीं बन पाते। श्रेष्ठ काव्यका ही अनुवाद करना भी चाहिए क्योंकि अनुवाद बहुत-कुछ खोकर भी कुछ ऐसा बचा लेता है जिससे मूलकी पूंजीका आभास मिल सके। अनुवाद मूलका स्थानापन्न कभी नहीं हो सकता, पर जिसे मूल उपलब्ध न हो उसे अनुवादसे कुछ सन्तोष दिलानेपर क्यों प्रतिबन्ध लगाया जाये ?"

उपर्युक्त पंक्तियोंमें एक बहुत बड़े सत्यकी स्वीकृति है। अनुवादोंपर चर्चा करते समय हम प्रायः यह भूल जाते हैं कि अनुवादका पाठक कौन है ? फ़िट्ज़जेराल्डको पढ़नेवाले प्रायः वही हैं जो मूल फ़ारसी नहीं पढ़ पाते। 'मरकत द्वीपका स्वर' अथवा 'देशान्तर' को पढ़नेवाले अधिकांश पाठक वे हैं जो मूल रचनाओं तक नहीं पहुँच पाते। जो मूल पढ़ सकते हैं वे अनुवादका सहारा लेंगे ही क्यों ? बँगला गीतांजलिका रसास्वादन करनेमें सक्षम पाठक उसका हिन्दी अनुवाद क्योंकर पढ़ेगा ? जो मूल रचना और अनुवाद दोनों पढ़ते हैं उनकी दृष्टि समीक्षककी दृष्टि होती है, पाठक या जिज्ञासुकी नहीं। और ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत कम है।

यह बात माननेमें अब आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि सफल अनुवाद प्रस्तुत करनेके लिए अनुवादकको कुछ न-कुछ स्वतन्त्रता मिलनी ही चाहिए। इसीलिए कुछ लोग अनुवादको मौलिक सृजनके बराबर ही महत्त्व देते हैं। इस स्वतन्त्रताकी भी अलग-अलग डिग्रियाँ हो सकती हैं।

'आत्माकी आँखें' की भूमिकामें डॉ० रामधारी सिंह दिनकरने एक मज़ेदार किस्सा सुनाया है कि किस तरह उनकी 'सीपी और शंख'की कविताओंको (जो खुद अनुवाद थे) दिनकरजीकी मूल रचनाओंके साथ रूसी अनुवादके लिए संकलित कर लिया गया : यह जानते हुए भी कि वे मौलिक रचनाएँ नहीं हैं।

कारण पूछनेपर श्रीमती स्वेतलानाने जो जवाब दिया वह उल्लेखनीय है : "हमारे देशके कवियोंने 'सीपी और शंख' से ली गयी कविताओंको मूल अँगरेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश या चीनी कविताओंसे मिलाकर देखा भी। मगर उनकी राय यह हुई कि 'सीपी और 'शंख' की कविताएँ मूलसे केवल प्रेरणा लेकर चली हैं। बाक़ी वे, सबकी सब, दिनकरजीकी अपनी कल्पनासे तैयार हुई हैं। इसलिए हम अगर उन्हें मौलिक रचनाएँ मानकर चलें तो इसमें कोई दोष नहीं है।"

आगे दिनकरजीने कहा है कि "'आत्माकी आँखें' भी मेरी मौलिक कृतियोंका संकलन नहीं है। इनमें-से प्रत्येक कविता अँगरेज़ीके कवि स्वर्गीय डॉ॰ एच॰ लारेन्सकी किसी कविताको देखकर गढ़ी गयी है। और यहाँ भी तरीक़ा मैंने वही अख्तियार किया है जिसका प्रयोग 'सीपी और शंख' में किया गया था।"

तो इस तरह अनुवादककी स्वतन्त्रताका यह क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। उसका निम्नतम बिन्दु है : शाब्दिक अनुवाद जो सफल नहीं हो पाता और जिसे लोग यान्त्रिक तथा घटिया अनुवाद मानते हैं। उच्चतम बिन्दु है : स्वच्छन्द अनुवाद जिसमें मूल कृति प्रेरणाके स्फुरणका मात्र प्रारम्भ-बिन्दु होती है। मगर, इसे अनुवादको मौलिक सृजन मान लिया जाता है। इन्हीं दो बिन्दुओंके बीच अनुवादककी स्वतन्त्रताका पेण्डुलम घूमता है।

आज जब कि हिन्दीको समृद्ध बनानेके लिए केन्द्रीय शासन तथा राज्य सरकारों-द्वारा अनुवादकी नयी-नयी योजनाएँ बनायी जा रही हैं; भारतीय भाषाओंकी सर्वश्रेष्ठ कृतिके लिए पुरस्कार निश्चित कर दिया गया है, प्रकाशक अनुवादके प्रतिनिधि संकलन प्रकाशित कर रहे हैं, तब सृजनात्मक साहित्यके अनुवादक, उसके स्वरूप एवं सीमाओंपर गहरा विचार-विमर्श होना चाहिए।

डॉक्टर माचवेके अनुसार, सर्वोत्तम अनुवाद-पद्धति जीवित कवियोंके मामलेमें कवि और अनुवादकका कोलेबोरेशन (सहचिन्तन, सहकार्य) है। जहाँ यह सम्भव नहीं, वहाँ स्वतन्त्र अनुवादकी छूट, कुछ मात्रा तक, समर्थनीय हो सकती है।

"दूसरी सबसे बड़ी सीमा, अनुवादककी संवेदना और अभिव्यक्ति क्षमताके साथ-साथ, जिस भाषामें काव्यानुवाद किया जाता है, उसकी अपनी है ।"

इसी सीमाके कारण शायद बच्चनजीने अनुवादके सम्बन्धमें एक मौलिक सूक्ति दी है : "अनुवाद भाषाका गर्व नहीं, उसकी विनम्रता है । बहुत-सी ऊंचाइयां विनम्रताके लिए ही सुलभ हैं ।"

उपर्युक्त सभी दृष्टिकोणोंमें अन्तर्निहित अनुभव-सत्योंके प्रकाशमें यह कहना अनुचित न होगा कि मूल रचनाके आधारपर अपनी प्रतिभासे अनुवादक जो नयी कृति निर्माण करता है; वही सर्वोत्तम अनुवाद है ।

ऐसा करते समय उसे शाब्दिक अनुवादके निम्नतम बिन्दु तथा स्वच्छन्द अनुवादके उच्चतम अतिवादोंसे यथासम्भव बचना चाहिए ।

अनुवाद सुन्दर भी बने और विश्वसनीय भी; इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए बुद्ध-का 'मध्यम मार्ग' तथा अरस्तूका 'स्वर्णिम मध्य' ही एकमात्र विकल्प है ।

नोबेल पुरस्कार प्राप्तकर्त्री लेखिकाएँ : २

ग्रेज़ियाँ दे लेदाँ

(१८७२-१९३८)

●

जिसने उच्चादर्शोंसे प्रेरित होकर अपनी मातृभूमिकी
परम्परा और उसके रिक्थका
जीर्णोद्धार किया

●

कुमारी सेल्मा लागेरलॅफ़के पश्चात् जिस नारीको नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने-
का सौभाग्य मिला उसका नाम था ग्रेज़ियाँ दे लेदाँ। १९२६ का 'नोबेल' पुरस्कार
सार्डीनिया (इताली) वासिनी ५४ वर्षीया इसी महिलाके उपन्यास 'ला माद्रे' (माँ)
पर मिला था ।

ग्रेज़ियाँके पिता थे तो क़ानूनके मर्मज्ञ किन्तु कृषि-व्यापारमें ही उन्होंने अपना
व्यक्तित्व खपा दिया था । सार्दीनयाके प्रख्यात नूरो शहरके वे तीन-तीन बार
मेयर चुने गये थे। उस समयकी रूढ़िवादी इतालवी परम्पराओंको तोड़कर
ग्रेज़ियाँके पिताने उसे स्नातकीय स्तर तककी शिक्षा दिलवायी, मातृभाषा इता-
लियनके अतिरिक्त ग्रेज़ियाँ फ्रेंचमें भी निष्णात थी । प्रतिभाशालिनी तो इतनी
कि मात्र १३ वर्षकी उम्रमें ही रोमके एक फ़ैशन जर्नल 'ट्रिब्यून' ने उसका एक
गीत प्रकाशित किया और पारिश्रमिक-स्वरूप ५० लीराका एक चेक भेंट
किया। रोमनगरके प्रवुद्ध पाठकवर्गके कौतूहल और प्रसंशापरक जिज्ञासाका
ठिकाना न रहा । सभीने आकर इस सुकोमल, व्रीड़ामयी भीरु बालिकाको बधा-
इयाँ दी थीं लेकिन साथ-ही-साथ कुछ रूढ़िवादी मतिमन्दोंने दुर्वाक्य कहे और
ग़लतफ़हमियाँ भी फैलायीं । 'प्रारभ्य तूत्तमजनाः न परित्यजन्ति' ग्रेज़ियाँ
हिम्मतके साथ लिखती ही रही । 'सार्डिनियाके फूल' नामकी पुस्तक सत्रह वर्षकी
अवस्थामें ही लिखी थी ग्रेज़ियाँने । बादमें 'एनीम ऑनेस्ट' (साधु आत्मा)
नामक उपन्यास । 'यदि इस उपन्यासका प्रकाशनाधिकार मेरे ही पास रहा होता

तो मैंने लाखों रुपये पीट लिये होते'—ग्रेज़ियाँने इस उपन्यासकी खपत और लोकप्रियताको देखकर कहा था।

लोम्बार्डी-निवासी मिस्टर मदेसानीके संग उनका विवाह हुआ और पतिके संग ही उन्हें रोम जाना पड़ा। उनके पति इटलीके सैन्य-विभागमें उच्च पदस्थ कर्मचारी थे। इतालीके राष्ट्रनायक तानाशाह मुसोलिनी ग्रेज़ियाँके परम प्रशंसक थे, मुसोलिनी-द्वारा स्थापित 'अकादमी ऑव इमॉर्टल्स' की सदस्या चुनी गयी थीं वे।

अपने देशकी माटी उन्हें प्रिय थी। उन्होंने सार्डिनियाके सम्बन्धमें स्वयं लिखा है—'मैं सार्डिनियाको अच्छी तरह जानती और उससे प्रेम करती हूँ। इसके निवासी मेरे निजी आदमी हैं। इसके पर्वत और घाटियाँ मेरे ही अंग हैं।' अनुभूतिकी प्रामाणिकता उनके उपन्यासोंमें गुँथी हुई है। जीवनके सत्त्वके प्रति उनकी दृढ़ आस्था और ईश्वरके प्रति सम्पूर्ण श्रद्धा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। 'द फ्लावर ऑव सार्डिनिया' (सार्डिनियाका फूल), 'रीड्ज़ इन द विण्ड' (हवामें सरकण्डे) नामक दोनों पुस्तकें बीस वर्षकी उम्रके भीतर लिखी गयीं। 'ऐशेज़' (राख) और 'डिवॉर्स' (तलाक़) शीर्षक दो उपन्यास मानवीय दुर्बलताके सहानुभूति-शील चित्रांकनके लिए विश्वसाहित्यमें प्रख्यात हैं : विषादकी स्याह छाया इनमें लरजती रहती है। किसी किसानका ग़ैर-क़ानूनी बेटा रोम विश्वविद्यालय तथा रोम नगरकी चकाचौंधसे आकर्षित होकर एक नागरिक महिलासे विवाह कर लेता है, व्यक्तित्व उसका आकर्षक किन्तु चरित्र दुर्बलतर है, यह युवक अपनी सीधी-सादी माँको देखकर ग्लानिमें डूब जाता है क्योंकि उसकी माँ नागरिका नहीं ग्रामीणा है। अन्ततोगत्वा वह पत्नी और माँ, दोनोंका ही विश्वास खो बैठता है।

'तलाक़' उपन्यासकी गिवोवनी और ब्राण्टू दोनों ही चरित्रोंके हर कोण इतने स्वाभाविक ढंगसे तराशे गये हैं कि एक उदात्ततर दुःखान्त भाव हमें चारों ओरसे वलयित कर लेता प्रतीत होता है, दिल-दिमाग़पर छा जाती है वह ट्रैजेडी।

दास्तॉव्हस्की और गोर्कीके शिल्पका हलका-झीना-सा असर उनकी प्रारम्भिक रचनाओंमें-से झाँकता नज़र आयेगा। किन्तु परवर्ती प्रौढ़तर रचनाओंमें वे विशुद्ध हैं, विशुद्ध ग्रेज़ियाँ दे लेदाँ। तथ्यों और आदेशोंका मणिकांचन-योग उनके प्रत्येक उपन्यासमें है। इतालवी वाङ्मयकी सर्वश्रेष्ठ नारी लेखिकाके रूपमें श्रीमती दे लेदाँ आज भी मानदण्डके रूपमें गणनीया हैं। जिस प्रकार फ्रेडरिक मिस्त्रालने

प्रॉविन्सका, यीट्सने आयर्लैण्डका चित्रण किया है, उसी प्रकार ग्रेज़ियाँने उच्चादर्शोंसे प्रेरित होकर अपनी मातृभूमि सार्डीनियाकी परम्परा और उसके रिक्थका जीर्णोद्धार किया है।

अँगरेज़ी अनुवादके आधारपर उनकी प्रमुख रचनाओंके नाम कालक्रमसे हैं : १. फ़्लॉवर ऑव सार्डीनिया, २. एनीम ऑनेस्ट, ३. रीड्ज़ इन द विण्ड, ४. फ्लाइट इण्टू इजिप्ट, ५. नोस्टालिजया, ६. हेट्रेड (नाटक), ७. ऐशेज़, ८. द मँदर (ला माद्रे), ९. डिवॉर्स।

१८९१ ईसवीसे १९३१ ईसवी-बीच उनकी चौवालीस पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

—प्रस्तोता : रंगनाथ राकेश

● ●

प्रकाशित समीक्षाएँ
शेष स्वर

स्तम्भके अन्तर्गत अबतक 'लोकायतन', 'एक साहित्यिककी डायरी', 'शिखरोंका सेतु', 'चारु चन्द्रलेख', 'आँगनके पार द्वार', 'अँधेरे बन्द कमरे', 'अर्द्धशती', 'बूँद और समुद्र', 'कनुप्रिया', और 'शहरमें घूमता आइना' पर समीक्षाएँ पत्रिकाके पिछले अंकोंमें आ चुकी हैं। इस अंकमें प्रस्तुत है :

'चाँदका मुँह टेढ़ा है'

गजानन माधव मुक्तिबोध

• अँधेरेकी अनुभूतियाँ : नागात्मक कविताएँ

हिन्दी कविताके क्षेत्रमें मुक्तिबोध प्रयोगशीलता और प्रगतिशीलताकी समन्वित चेतनासे युक्त ऐसे व्यक्तित्वके रूपमें दिखाई देते हैं जिसका जीवन-संघर्ष और यथार्थ-आश्रित अभिव्यक्ति सबसे अधिक जटिल एवं प्रखर है। यदि केवल प्रगतिवादसे अनुप्रेरित हिन्दी काव्यको दृष्टिमें रखा जाये तो उन्हें उसकी सबसे बड़ी देन कहा जा सकता है। 'तार सप्तक' के कवियोंमें अज्ञेय और गिरिजाकुमार माथुरके बाद उनका नाम सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। कटुतिक्त अनुभवोंकी विषमतम प्रतीति और तज्जन्य गहरे तीव्र आवेगको धारा-प्रवाह फ़ैण्टेसीके रूपमें परिणत करते हुए विचित्र प्रतीक-विधान एवं बिम्बात्मकताके साथ शब्द-बद्ध करनेकी शक्ति उनमें अज्ञेय और माथुरसे भी अधिक मिलती है। सप्तक परम्परामें शमशेरबहादुर, धर्मवीर भारती और उसके बाहर के कवियोंमें लक्ष्मीकान्त वर्मा ही इस प्रसंगमें उनके सबसे निकट दिखाई देते हैं पर उनमें फ़ैण्टेसी रचनेकी इतनी पिपासा नहीं है जितनी 'चाँदका मुँह टेढ़ा है' के कविमें आद्यन्त अनुभव होती हैं। उन्होंने नये जीवन, नये मान-मूल्यों और

'नये इन्सान' का जो स्वप्न देखा वह नयी कविताके सन्दर्भमें बहुचर्चित 'लघु-मानव' तथा 'नये मनुष्य' की परिकल्पनासे बहुत भिन्न नहीं है। यह अवश्य है कि 'वैज्ञानिक मानवीय दर्शन' एवं 'वैज्ञानिक मानवीय दृष्टि' के रूपमें उन्होंने मार्क्सवादको जितनी आवेगपूर्ण निष्ठासे ग्रहण किया उतनी निष्ठा और वैसा आवेग आजके परिवृद्ध अनुभवके अनुकूल नहीं लगते पर उनकी ईमानदारी और मानव-मुक्तिकी अदम्य आकांक्षापर किंचित् भी प्रश्नचिह्न अंकित नहीं किया जा सकता। यही तो उनके व्यक्तित्वके घटक तत्त्व रहे हैं। उनका आवेग और आवेश भी कविताओंमें ही विशेष लक्षित होता है। चिन्तनके धरातलपर वे स्वयं उसके पक्षमें नहीं थे—हो सकता है कि आधुनिक कविता गहरी न मालूम हो। किन्तु वास्तविकता यही है कि उसमें आवेशको स्थान नहीं। 'आजकी कविता बौद्धिक और आत्मीय है।'—यह स्थिति एक अन्तर्विरोधकी द्योतक है। उनमें निहित सूक्ष्म आत्मविश्लेषण एवं आत्मबोधकी भावनाने इसको अलक्षित नहीं छोड़ा है—"अपना भाव दबा डालनेकी मुझे आदत है। यह मेरी बौद्धिक संस्कृति है।.... किन्तु इसमें एक आत्म-विरोध भी है। वह निस्संगता जल्दी ही खलने लगती है। मन चाहता है संगी-साथी रहें।....मस्ती रहे। नशा रहे।"

एक ओर बौद्धिकतापर आग्रह दूसरी ओर आत्मीयताका वह रूप जो 'मस्ती' और 'नशा' शब्दोंसे अभिव्यक्त होना चाहे, आवेग और आवेशको आत्मसात् किये बिना सम्भव नहीं है, अतः उसकी अस्वीकृति मुक्तिबोधकी बौद्धिकतासे उत्पन्न मुद्रा-मात्र रह जाती है।

जहाँतक उनके कल्पना-बहुल काव्यका प्रश्न है, मैं कहूँगा कि उसके लिए भीतरी आवेग आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। जैसी फ़ैण्टेसी उनकी कविताओंमें संग्रथित मिलती है उसको धारण करने और उद्भूत करनेके लिए निरावेग मानस अनुकूल नहीं कहा जा सकता। उनका मानस वैसा रहा भी नहीं। उन्होंने स्वयं फ़ैण्टेसीको 'अनुभवकी कन्या' कहा है। परिस्थितियोंके 'अँधेरे समुद्र' की उत्ताल लहरोंने उनकी बौद्धिकताको हर बार मथकर निरावलम्ब तट-पर छोड़ दिया जहाँ आस्था और अनास्थाके बीचकी रेखा सर्वथा धुँधली पड़ जाती है। उस मानसिक दशामें जो चित्रात्मकता उभरती है वही धुँधलेपनसे विचित्र प्रकारकी रहस्यमयता ग्रहण करती हुई उस फ़ैण्टेसीमें परिणत हो जाती है जिससे उनकी कविताएँ आपूरित हैं। डायरीके अन्तर्गत 'तीसरा क्षण' में

उन्होंने स्वयं ही फ़ैण्टेसीके विषयमें अपनी धारणाएँ बड़ी सूझ-बूझके साथ अनुभूत रूपमें व्यक्त की हैं। चित्रकलाके क्षेत्रमें फ़ैण्टेसीने मुझे बहुत आकृष्ट किया है और सुरियलिस्टिक चित्रोंमें मुझे जिस प्रकारका एक विचित्र एवं आकर्षक वातावरण मिलता है मुक्तिबोधकी कविताओंमें भी वही परिलक्षित होता है। उन्होंने भी यथार्थकी भूमि तोड़कर उसके भीतर लावेकी तरह निहित अति-यथार्थको उद्घाटित करनेकी बहुमुखी चेष्टा की है। विशेषता यह है कि उनका यह अति-यथार्थ मानवतावादी सामाजिक यथार्थसे अनुप्रेरित है और उसमें एक जागरूक युगबोध भी समाविष्ट है। जो सामाजिकता उन्हें वरेण्य लगती थी वह समूह और परिवारके प्रति आत्मीय भावसे लेकर चलनेवाली है। 'अद्वितीय' रहनेवालों और 'भीड़' से घृणा करनेवालोंसे उनकी मानसिक एकता कभी भी सम्भव नहीं हो सकी। उनकी 'डायरी' का 'विशिष्ट और अद्वितीय' शीर्षक लेख इसे प्रमाणित करता है। 'चकमककी चिनगारियाँ' नामक कविताकी यह पंक्तियाँ भी इसीकी साक्षी प्रस्तुत करती हैं—

> अरे जन-संग ऊष्मा के
> बिना व्यक्तित्व के स्तर जुड़ नहीं सकते।
> ....
>
> कि अपनी मुक्ति के रास्ते
> अकेले में नहीं मिलते।

उनकी कविताके लिए 'नागात्मक' विशेषण मेरा दिया हुआ नहीं है। उन्होंने स्वयं अपनी कविताओंको 'नागात्मक' और 'हिडिम्बा' विशेषणोंसे विभूषित किया है। आप न मानें तो यह लीजिए, प्रमाण—

१. लहर ओ लहराओ नागात्मक कविताओ

२. इसीलिए, मेरी ये कविताएँ
   भयानक हिडिम्बा हैं,
   वास्तव को विस्फारित प्रतिमाएँ
   विकृताकृति-बिम्बा है।

अपनी रचना-प्रक्रियाके प्रति सजगता न्यूनाधिक मात्रामें आजके सभी नये कवियोंमें उपलब्ध होती है किन्तु मुक्तिबोध उसके प्रति विशेष रूपसे सजग रहे

हैं। न केवल निजी रचनाओंकी प्रक्रियाका उन्होंने सूक्ष्म अवलोकन किया वरन् काव्यमात्रकी रचना-प्रक्रियाको भी पर्याप्त अन्तर्दृष्टिके साथ विश्लेषित एवं विवेचित किया है। कहना न होगा कि उन्होंने अपनी अभिव्यक्तिका रास्ता ईमानदारीके साथ लम्बी कविताओंके फैण्टेसी-भरे वातावरणमें खोज लिया था जो उनकी कुछ छोटी कविताओंसे भी प्रमाणित होता है। रही 'कण्डीशण्ड रिफ्लेक्सेस' से जूझनेकी बात तो यह जूझना उनकी रचना-प्रक्रियामें दोहरे स्तर पर मिलता है। प्रथम तब जब वे अभिव्यक्तिका रास्ता खोजनेमें संलग्न होते थे, द्वितीय तब जब कविताएँ रच जानेके बाद भी वे उन्हें धोते-माँजते कई-कई बार लिखते रहते थे। उनका यह श्रम मध्यकालीन कविके आलंकारिक शब्द-कौशल-परक मँजावसे नितान्त भिन्न अभिव्यंजनाके क्षेत्रकी कठिनाइयोंसे सम्बद्ध दिखाई देता है। उन्हें लगता रहा होगा कि अभी उन्होंने अपनी बात उतनी शक्तिसे या उस तरह नहीं कह पायी है जैसे और जैसी वह उनके मनमें आयी थी। उनकी कवि-सुलभ ईमानदारीका तक़ाज़ा यह रहा है कि उन्होंने अपने अभिप्रेत मूल अथवा उद्दिष्ट काव्य-रूपको अभिव्यक्त करनेका प्रयत्न छोड़ नहीं दिया वरन् उसका प्रातिभ-स्तरके बाद प्रयासके स्तरपर भी उपलब्ध करनेका प्रयत्न बराबर जारी रखा। सम्भव है इस प्रयत्नमें उनकी कविताएँ और भी लम्बी हो गयी हों, हो सकता है कहीं-कहीं उनमें संक्षेप भी हुआ हो। बहरहाल, कविके लिए कविता उसकी चिन्ताका केन्द्रीय और सर्वप्रधान विषय बनी रही, जीवन-संघर्ष विषमतम होते हुए भी, जब उन्हें लगा कि 'मेरी ज़िन्दगी असफलताकी डाढ़ोंमें पड़ी हुई एक बेबस आँत है।' 'एक लम्बी कविताका अन्त' उनके इस तरहके ऊहापोह और संशोधन-परिवर्द्धनकी कथाको 'डायरी'के पृष्ठोंमें सहेजे हुए है।

इसी लेखमें उन्होंने उस मान्यताका भी निर्देश किया है जिसके कारण वे छोटी कविताएँ नहीं लिख पाये और यदि लिखीं भी तो उनकी दृष्टिमें वे छोटी न होकर अधूरी सिद्ध हुईं। यह आवश्यक नहीं कि कविताओंके विषयमें हम कविकी कही हुई हर बातसे सहमत ही हों। 'शून्य' नामक उनकी छोटी कविता प्रभावमें 'चाँदका मुँह टेढ़ा है' में संग्रहीत अनेक बड़ी कविताओं जैसे 'डूबता चाँद कब डूबेगा' आदिसे कम प्रभावशाली नहीं है। वरन् मैं तो यह कहूँगा कि कुछ ऐसी कविताओंसे जिनमें प्रतीकोंकी पुनरावृत्ति, रूपकोंका लम्बायत विस्तार तथा शिथिल जोड़वाले अंश साफ़ झलक जाते हैं उनसे यह कविता छोटी होकर भी

श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें वह सब होनेकी गुंजाइश नहीं है। बड़ी कविताओंमें कविने बहुधा मोड़के अंशोंको नाटकीय बनाकर उनके एकरस विस्तारको प्रदीप्त किया है। ये गुण मुक्तिबोधकी अबाध विस्तरशीलताकी लहरदार रेतीके बीच 'ओसिस'-का सारा सुख देते हैं।

'चाँदका मुँह टेढ़ा है' में अन्तिम कविताका शीर्षक 'आशंकाके दीप' अंश हटाकर केवल 'अँधेरेमें' कर दिया गया, बीमारीके दौरान उनकी इच्छाके मुताबिक, सहमत न होते हुए भी। क्यों उन्हें ऐसी इच्छा हुई यह प्रश्न मार्मिक है और मैं समझता हूँ कि मुझे आश्चर्य तब होता जब वे ऐसी इच्छा व्यक्त न करते। अँधेरा, स्याह, श्याम, काला, साँवला, नील उनकी अनुभूतिको आदिसे अन्त तक आच्छादित किये रहा। शमशेरजीको इस कवितामें उनका 'कवि व्यक्तित्व' वाल्ट ह्विटमैन और मायकॉवस्कीके शिल्प और 'शक्तिसे टक्कर लेता' दिखाई दिया और मुझे भी लगा कि उनकी बात मानी जा सकती है। पर 'साँवले' विशेषणसे युक्त 'साँवले जुलूस', 'साँवले जल', 'साँवले तल', 'साँवला चौराहा', 'साँवली हवाओं', 'साँवले मुख' यहाँतक कि 'साँवला बन्दूक़ जत्था'-जैसी भारी पुनरावृत्ति देखकर मुझे ठिठक हुई। विशेषतः तब जब साँवला शब्द साधारणतया 'भयानक' के स्थानपर 'आकर्षण' की प्रतीति कराता हो। कविने इस शब्दका व्यंग्यमें प्रयोग करके भयानकताका बोध कराया हो ऐसा भी मुझे नहीं लगा। मैं टटोलने लगा कि इसकी जड़ें बहुत गहरी होनी चाहिए। सामान्यतया कोई मुक्तिबोध-जैसा सजग कवि ऐसा शिथिल प्रयोग नहीं कर सकता। सारी कविताओंमें मैंने पाया कि गहरे या गहराते हुए अँधेरे और समुद्रकी सम्मिलित प्रतीकात्मक अनुभूति उनकी काव्य-चेतनाकी केन्द्रीय अनुभूति है। 'तीसरा क्षण' में लिखी उनकी पंक्तियाँ 'इस अथाह काले जलमें कोई बैठा है। वह शायद मैं ही हूँ' मेरी धारणाकी पोषक हैं। मैं तो यह भी कहूँगा कि लम्बाईके कारण ही नहीं वास्तवमें इस अँधेरेकी भयावह अनुभूतिके कारण भी उनकी कविताएँ नागात्मक हैं। मुक्तिबोधकी मान्यता थी कि 'जो कवि भाषाका निर्माण करता है, विकास करता वह निःसन्देह महान् कवि है।' मैं उनकी कविताओंको पढ़कर इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि उन्होंने अपनी अभिव्यक्तिके अनुरूप रूपकों, प्रतीकों और बिम्बोंकी परिकल्पना करते हुए पर्याप्त सशक्त भाषा गढ़ी है। अतः जितने अंशोंमें उनकी अभिव्यक्ति सफल हुई है उतने अंशोंमें वे अपनी ही मान्यताके

अनुरूप महान् कहलानेके हक़दार हैं, वैसे मैं इस शब्दका प्रयोग बहुत संयत होकर ही करना चाहता हूँ क्योंकि मृत्युके बाद उन्हें भावातिरेकमें महान् कहनेवालोंकी पंक्ति उनकी कविताओंसे भी बड़ी और साँवली है। मैं उसे और लम्बी नहीं करना चाहता। मुझे उनकी भाषामें जगह-जगह 'हाय-हाय' भी सुनाई देती है, 'व' और 'हिम'-जैसे पिछड़े शब्द-रूप भी दिखाई देते हैं, 'सम्पताभिरुचिवश, व्यक्तित्वान्तरित' और 'तडिल्लता'-जैसे बड़े समास भी टोकते हैं, तथा बार-बार आनेवाले 'तमाचे'-जैसे प्रतीक भी अपनी पुनरावृत्तिके कारण कुछ अन्यथा सोचने-पर विवश करते हैं। उनकी काव्यभाषाके गौरवको नितान्त अकलुष रूपमें स्वीकार करनेसे एक क्षणको विरत करते हैं। उनकी आन्तरिक रचनाशीलता और शिल्प सामर्थ्यके प्रति सहज होते हुए भी मैं जानता हूँ कि यह नितान्त छोटी बातें हैं पर इनका होना ही मुझे इस बड़े तथ्यकी ओर ले जाता है कि मुक्तिबोध-को कवि कहनेके स्थानपर, यों कि 'निराला' बना देनेकी जगह, यह कहना अधिक उचित होगा कि वे एक सशक्त ईमानदार मौलिक प्रतिभासम्पन्न संघर्षशील कवि हैं जिसका यथार्थ बोध व्यक्तिगत और युगीन दोनों स्तरोंपर उसके समकालीन अन्य कवियोंकी अपेक्षा प्रखरतर है।

— जगदीश गु[illegible]

सत्-चिद् वेदनाका नरकाव्य

मुक्तिबोध बीस वर्ष बादके कवि हैं। आजकी अधुनातन कविता उनको सम-झनेकी 'निसैनी'-भर है। मैंने उनके काव्यके सन्देश या सौष्ठव या स्वरूपपर कुछ कहनेका साहस नहीं किया है, केवल एक चीज़ मुझे ऐसी लगी (जिसकी थाह तो शायद मैं न सकूँ), जो मुझे छू जाती है क्योंकि मेरे समग्र सांस्कृतिक बोधको छू जाती है। मैं अपने विचार उस संस्पर्श तक ही सीमित रखना चाहता हूँ। सच्चिदानन्दकी दार्शनिक व्याख्यासे अधिक उसकी काव्यानुभूतिसे परिचित रहा हूँ क्योंकि सच्चिदानन्द इस धरतीके एक छोटे-से आँगनमें 'गोधूलि धूसरांग' होकर नाचे हैं। इसी परिचयके सहारे 'सत् चिद् वेदना'की अनुभूतिको पहचाननेकी कोशिश करूँगा।

मुक्तिबोध मसीही चेतनाके कवि नहीं हैं, दु:ख उनके लिए प्रसाधन नहीं, जीवन है। वे दु:खके सहारे नहीं दु:खमें जीनेवाले कवि हैं। दु:ख भी उनके लिए सत्य है इसलिए कि इस दु:खको समझनेवाले वे अकेले चाहे हों, भोगनेवाले अकेले नहीं हैं। यह मार्क्सीय बोध हो भी, मार्क्सवादी तो कमसे कम नहीं है, क्योंकि मार्क्सवादेतर चिन्तनका भी यह उतना ही अंग है जितना मार्क्सवादी चिन्तनका। बुद्धका प्रथम आर्यसत्य भी यही है। मसीही तटस्थ दु:खवादी दर्शनसे मुक्तिबोधको बहुत तीव्र असन्तोष है—उनका दु:खका बोध जितना ही गहरा है, उतना ही व्यापक है। उनके पैर 'धरतीका फैलाव' 'महसूस' करते हैं। उनका मस्तक 'आकाश अनुभव' करता है, उनके दिलमें तड़पता है 'अँधेरेका अन्दाज़', उनकी 'आँखें तथ्यको सूँघती-सी लगती' हैं, यह सब इसलिए कि,

आत्मामें भीषण

सत् चिद् वेदना जल उठी, दहक उठी

है। उनकी वेदना केवल दु:खकी साझीदार नहीं, दु:खके कारणकी भी साझीदार है। वे दु:ख झेलकर दु:खके दायित्वसे छुटकारा नहीं चाहते, दु:ख देनेवाली सत्ताका पाप फल भी भोगनेके लिए तैयार हैं, उनका दु:खबोध 'अपनी दस्युरूप आकृति'-को स्वीकार करके ही पूर्ण होता है, इस आकृतिकी निर्मात्री 'सामंजस्योंकी दुष्ट व्यवस्था'की जानकारी कराके समग्र होता है, इसीलिए तो वे 'अकेले मुक्ति'के प्रत्याशी नहीं, क्योंकि वे सबके बन्धनके सहकारण हैं। और इसीसे वे गलनेमें नहीं 'गलने और टूटने'में टूटकर विस्फोट शब्दके रूपक 'सबकी कहानी' बननेमें जीवनकी सार्थकता मानते हैं। मुक्तिबोधके काव्यमें जो बात आजकी खण्डित चेतनावादी मनोवृत्तिको आलोकित करती है, वह है विराटतासे सम्पृक्तता। वे 'तिमिरमें झरते हुए समयको' और 'उसके गिर रहे एक-एक कणसे चिनगियोंका दल' देखते-देखते अभ्यस्त हो गये हैं। उनके 'अनाकार कन्धे' 'सुनील शून्य'को वहन करते-करते कड़े हो गये हैं। उनकी भुजाओंमें 'आसमानी शमशीरें' शक्ति बनकर बस गयी हैं। वे 'अगम अथाहकी वर्जित सिन्धुयात्रा' कर चुके हैं, वे 'अपाहिज पूर्णताओं'को तोड़ चुके हैं। उनके काव्यमें बार-बार दिक्काल मूर्त राशि बनकर आते हैं। वे दिक्कालकी महिमामयी चेतनासे 'तड़ितका उजाला' निरन्तर फैलाते रहते हैं। उनके विराट् बोधके आगे 'अम्बरके हाथ-पैर फूलने लगते हैं', 'कालकी जड़ें सूखने' लगती हैं।

भारतीय विचारककी सामान्यसे तादात्म्य बुद्धि ही मुक्तिबोधकी कारयित्री प्रतिभा-को उपादान सामग्री है। मुक्तिबोधका काव्य इसीलिए सत्-चिद्का आनन्द नहीं, सत्-चिद्की वेदना है, वह ऐसा नरकाव्य है जिसमें नारायणकी आँखोंकी व्यथा भरी है। मुक्तिबोधकी वेदना सत्-चिद्की भूमिकापर अधिष्ठित है सही, पर वह नक़ली नहीं है। यह वेदना बड़ी व्यापक है, पर साथ ही बड़ी गहरी, इसके लिए कवि 'सारेके सारे खतरे उठानेके' लिए तैयार है, उनका काम 'रंगीन पत्थर फूलोंसे' चलनेवाला नहीं। वे अपनी इस वेदनाके अकेलेपनको समझते हैं पर घबराते नहीं, वे 'बौद्धिक जुगालीमें' 'अपनेस दुकेले' बन लेते हैं। वे इस अकेलेपनको सार्थक पाते हैं 'मानने और मनवाने'के आग्रहमें। उनकी वेदना कुण्ठा नहीं है, विफलता नहीं है, उनकी वेदना परिणति है। वे 'वर्तमान समाजमें चल नहीं सकते'की व्यथाको झेलकर 'किरायेके विचारोंके उबाससे और नपुंसक श्रद्धाकी गटरमें छिपनेवाली त्रासभावनासे गुज़रकर, 'अर्थोंकी वेदना'के घावोंके आसपास 'आत्मा-में चमकीली प्यास' भरनेवाले कवि हैं। उनका कविसत्य—

> तड़ित्त रंगीय वही गतिमयता,
> अत्यन्त उद्विग्न ज्ञान तनाव वह
> सकर्मक प्रेम की वह अतिशयता
> वही फटेहाल रूप !!

है। वह मध्ययुगीन सन्तके सत्यकी तरह ही भारतीय सत्यका एक अनछुआ पहलू है। कविकी वेदनाका साकार रूप है वह 'स्याह पहाड़' जिसकी देहपर—

> जिन्दगी के भयंकर स्वप्नों के मेह
> रहते तैरते, मसानी आसमान में।

पर यही पहाड़ जब 'सब जनोंकी विशेषताएँ उधार लेता' है, जब 'भयभीत आंखों-के हंसों' और 'घाव-भरे कबूतरों'की सुधि करता है। 'एककी शिबरी लाल-लाल जलती हुई ढिबरी' और अपने प्यारे देशके 'लाल-लाल सुनहले आवेश'की स्मृतिकी आगमें पिघलता है तो कविकी हथेलीपर 'अग्नि-विवेककी आग' बन जाता है, उस आगमें-से 'ज्वलन्त सरसिज' पैदा हो जाता है 'भीतरसे गीला, पंकसे आवृत और स्वयंमें घनीभूत' और तब कविको 'तेरी' बिलकुल ज़रूरत नहीं रहती।

कविकी यह वेदना 'मानवन्याय संवेदन' है जो 'हृदयमें प्राकृतिक' रूपमें
रही है, यह मन और आत्माके चकमक पत्थरको रगड़कर आग पैदा करती
'जीवन-स्वप्न चमकाती है' और 'ज्ञान तड़पाती है।' 'इस वेदनाने कविको
क्तित्वान्तरित' कर दिया है और दूसरी 'अधूरी दीर्घ कविता'को आवेग-
रित कालयात्री' तथा आगमिष्यत्‌को गहन गम्भीर छाया' बना डाला है।
वेदना विद्यापतिकी तरह सजीव है। 'दुहु दिसि दास दहन जइसे दगधइ
कुल कीट-परान्'।

यह वेदना 'नत होकर उन्नत होनेकी बेचैनी' है। इस वेदनाके जहाजपर
(इस 'क्षोभ विद्रोह संगीत विरोधके साहसी समाजपर ही) आरूढ़ होकर
भीतर-बाहरके पूरे दलिन्दरसे मुक्तिकी तलाशमें चलता रहा है और उसने
गामी कल'को 'आगत आज'के रूपमें पा लिया है। कविकी यह वेदना आत्म-
की व्यर्थताकी नहीं आत्मदानकी अयथेष्टताकी वेदना है—

जितना भी किया गया
उससे ज़्यादा कर सकते थे,
ज़्यादा कर सकते थे।

को समझनेके लिए हिन्दीकी उस काव्य-सम्पदाका बोध होना चाहिए जिसने
ना घर जलाकर हाथमें लाठी ली है' जिसने श्मशानमें शिवको जगाया है
और जिसने दोनों जहाँके ऐशको खारमें मिलाया है। मुक्तिबोध उस श्यामचंचला
केके हाथमें सत्-चिद्-वेदनाके अँधेरेमें चमकनेवाले फूल हैं।

—विद्यानिवास मिश्र

• तिलस्मी खोह, लाल कुहरा और रक्तालोक पुरुष

मुक्तिबोध या कोई स्तरका कवि काव्यकी समूची जीवन्त परम्पराको आत्म-
सात् करते हुए अपने समयकी समस्याओंसे जूझता है। नयी पीढ़ीके कवियोंको,
जो परम्पराको नकार कर, युद्धकी स्थितिसे अन्यमनस्क होकर, शाश्वत साहित्यकी
वकालत करने लगे हैं; उन्हें मुक्तिबोधसे सबक़ लेना चाहिए। समसामयिक होते

हुए भी साहित्य उसका अतिक्रम कर जाता है। अपनी नयी पीढ़ीके प्रति मुक्ति-बोधकी जो अटूट आस्था है वह उसे वाल्मीकि तथा 'कुमारसम्भव'के कालिदास-की परम्परासे जोड़ती है। आधुनिक युगमें वह छायावादी रोमानियत, प्रगति-वादी दृढ़ता और प्रयोगवादी वैयक्तिक चेतना, बौद्धिकता, दर्द आदिसे अपना निर्माण करता है। नये ज्ञान-विज्ञानने भी उसकी निर्मितिमें अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया है। इसका मतलब यह नहीं है कि उपर्युक्त प्रभावोंमें वह जीता है। अर्थ यह है कि वह अपने स्नायुओंसे पूर्ववर्ती काव्य-सम्पदाको भरकर नवीन काव्य परम्पराको समृद्ध करता है, उसे आगे बढ़ाता है, बल और स्फूर्ति प्रदान करता है, उसे युगानुरूप नया रूपाकार देता है। अज्ञेयकी परम्परा कुछ और ढंगकी है जो रहस्य-चेतनासे धूमिल है। उनके नामानुरूप आंशिक रूपसे अज्ञेय हैं। उनकी व्यक्ति चेतना इतनी अहं-सम्पृक्त है कि वह नदीका द्वीप बनकर रह जाती है। वह बौद्धिक अधिक है मुक्त कम। मुक्तिबोधके इस संग्रहके आ जानेसे नयी कविताका पुनर्मूल्यांकन अपेक्षित हो जाता है। इसके प्रकाशमें कवियोंको नये अनुक्रममें बाँधनेकी आवश्यकता आ पड़ी है।

आजके युगको अँधेरेने अपनी गुंजलकमें इस प्रकार बाँध रखा है कि आँख वालोंको भी कुछ नहीं सूझता, अन्धोंकी तो बातें ही जाने दीजिए। यदि उनसे पूछा जाये कि सत्यान्वेषणके नामपर तुमने किस सत्यको अन्वेषित किया है, किस मूल्यको उपलब्ध किया है तो उत्तरमें उनके चेहरेपर खोखले दम्भकी आकृति उभर आयेगी। सम्भव है वे 'व्याज गर्व' या 'मिथ्या विनय'के साथ कोई दार्श-निक नाम लें और अपनी रहस्यवादी गद्य शैलीमें समझा दें। लेकिन अंदरका अँधेरा नहीं जाता। मुक्तिबोध अँधेरेमें चक्कर काटता है, दीवालोंसे टकराता है, लहूलुहान हो जाता है लेकिन ज्योतिर्मयी मणियाँ भी खोज निकालता है, यदि हाथ न लगें तो चकमक पत्थर ही खोज निकालेगा—उसे तो आग पैदा करनी है। इसके प्रकाशमें जिस सत्यको अँधेरेने अपने कई परतोंमें छिपा रखा है वह अना-वृत हो उठेगा।

मुक्तिबोधकी कवितामें रहस्योंकी कमी नहीं है। अँधेरा····और अँधेरेमें सुनाई पड़नेवाली मर्मभेदी पुकार उसके जीवनमें है और कवितामें भी। मर्मभेदी पुकारका सुनना उसका 'विज़न' है। उसकी काव्य-प्रक्रियाको समझनेके लिए

रेकी 'मर्मभेदी' चीखको विश्लेषित करना होगा ।

यदि नयी कविताके प्रतीकोंको छाँटा जाये तो मुक्तिबोधके प्रतीक अन्य कवियोंके प्रतीकोंसे भिन्न मिलेंगे—रूपाकारमें, इसलिए अर्थवत्तामें भी। एट्सने कहीं लिखा है कि गहन जीवन-दर्शनकी उपलब्धि 'टेरर'से होती है। हमारे पैरोंसे नीचेकी धरती खिसक जाती है उसके स्थानपर गुफा-गह्वर बन जाते हैं। फिर जिन्दगीकी वास्तविकता, ईश्वर, आत्मा, मूल्य-चेतना जाने क्या-क्या प्रश्न उठने लगते हैं। द्रष्टा कवि उनका उत्तर खोजता है।

मुक्तिबोधके कुछ प्रतीकोंको लें—ब्रह्मराक्षस, ओरांग-उटांग, चकमक पत्थर, जलकी घाटी आदि। ब्रह्मराक्षस 'ऑरकेटाइप' प्रतीक है जो युगीन ट्रैजेडीका बोध जगाता है और यह बोध मूल्योंके अन्तर-सम्बन्धोंकी ओर ले जाता है। प्रतीक 'ऑरकेटाइप' हो अथवा न हो इसका विशेष महत्त्व नहीं है। मेरे खयाल-से अर्थगर्भ प्रतीककी पहचान तीन प्रश्नोंके उत्तरसे होती है—१. क्या वह वैयक्तिक विज़नकी सृष्टि है ?, २. क्या उसे काव्यात्मक सन्दर्भ मिला है ?, ३. क्या वह मूल्योंका अन्तर-सम्बन्ध स्थापित करता है ?

'ब्रह्मराक्षस'को कविने अपना वैयक्तिक विज़न देकर उसे व्यक्ति और समष्टि मूल्योंकी ट्रैजेडीका प्रतीक बना दिया है। इसके साथ-साथ चलनेवाले अन्य प्रतीक बावड़ी, जीना आदि ब्रह्मराक्षसको मिथ बना देते हैं। और मिथ विचारों-की अनेक परतोंको खोलता है। काव्यात्मक सन्दर्भका तात्पर्य है कि कविता की सेटिंगमें—अनुभूत्यात्मक विचारोंसे प्रतीक-सहित कितनी व्यापक और जीवन्त है। प्रतीक अलंकार नहीं है। अलंकार काव्यका शोभाकर धर्म है तो प्रतीक कविताका मूल्यगत धर्म। ब्रह्मराक्षस अचेतन-चेतन मनके स्तरोंपर आजके सन्त्रास, अकेलापन, पीडा को उजागर करता हुआ उन्हें रचनात्मक अर्थ देता है।

जैसा संकेतित किया जा चुका है, मुक्तिबोधका केन्द्रवर्ती प्रेरक तत्त्व 'टेरर' है। वह ऐसा आसुरी और सन्त्रासपूर्ण है कि मानवीय मूल्यों और सौन्दर्य-चेतना-को सहज ही विघटित कर देता है और समस्त वातावरणको सनसनीखेज बना देता है। इस 'टेरर' से जो माहौल पैदा होता है वह स्वयंमें वक्तव्य वस्तु नहीं है। इसमें सबसे ज्यादा महत्त्व वक्तव्यका ही है ! वह गुफाओंके अँधेरेमें भटकता है। वह अँधेरा उसका भी है और आजके युगका भी है। किन्तु वह अँधेरेके

माध्यमसे 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की तलाश करता है। वह विवरके अन्तरालमें लाल कुहरा और लाल कुहरेमें रक्तालोक स्नात पुरुष देखता है।

पर ये डरावने घाट, अन्धे तिलस्मी खोह, मृतात्माओंका जुलूस, त्रिलियोंके नाख़ून, स्याह समुन्दर, धड़ाकेकी अनुगूँज, मोरियाँ, मीनारें, किरणीला दीप्त पत्थर आदि क्या है ? क्या ये स्नायविक हैं ? क्या ये विक्षिप्त व्यक्तिकी फैण्टेसी हैं ? निश्चित ही नहीं। ये प्रभूत रूपसे अर्थ-सम्पन्न है। जुंगकी भाषामें वे 'प्रीमोरडियल विज़न'के सबूत हैं।

यह सच है कि आज सर्वत्र एक प्रकारकी उद्देश्यहीनता व्याप्त हो उठी है। एक अजीब तरहकी पीड़ामें पड़ा मनुष्य कराह रहा है। लेकिन इसीको सत्य मान लेनेपर मानवीय नियतिका क्या होगा ? वस्तुतः इस दुःख, दैन्य और पीड़ासे जूझनेपर ही मानवताके प्रति आध्यात्मिक रुचिका आविर्भाव हो सकता है। इसके लिए बहुत ज़रूरी है कि हम अपने अहंको विसर्जित करें। लेकिन हुआ है ठीक इसका उलटा—

सत्य के बहाने
स्वयं को चाहते हैं प्रस्थापित करना
अहं को तथ्य के बहाने।

पर मुक्तिबोधको व्यथाका मूल ख़ूब मालूम है। वह पूरी ज़िन्दगी इसीमें जीता रहा है। ब्रह्मराक्षसके साथ यही दिक़्क़त थी कि वह इसे मूल्योंसे नहीं बाँध सका। वह अपनी आन्तरिकताका महत्त्व नहीं समझ पाया। वस्तुतः इस आन्तरिकताको आजके 'टेरर'में जो मूल्य दिया गया है वही उसकी उपलब्धि है, वही उसका अन्वेषित सत्य है।

यह आन्तरिकता क्या है ? मेरे विचारसे जीवनको विशिष्ट अर्थ देना ही आन्तरिकता है। दार्शनिक और कविके जीवन-बोध और तज्जन्य परिणतियोंमें फ़र्क़ होता है। पहलेकी चिन्तन-प्रक्रिया चेतन स्तरपर होती है। दूसरे कि चिन्तन-प्रक्रिया बहुत-कुछ अचेतन स्तरपर चलती है। फलतः जहाँ पहला तर्कपूर्ण भाषाका व्यवहार करता है, वहाँ दूसरा चित्रमयी या प्रतीक-भाषाका। पहला जहाँ जीवनके सिद्धान्त या सिद्धान्तोंकी पद्धति बनाता है, वहाँ दूसरा सीधे जीवनको सम्बोधित करता है।

नयी कविताकी प्रदर्शनीमें यदि मुक्तिबोधकी रचनाएँ रख दी जायें तो अपने कथ्य और रूपाकृतिके कारण वे बिलकुल अलग मालूम पड़ेंगी। यों प्रत्येक कविकी कृतिका अपना अस्तित्व होता है पर बिलकुल अलग अस्तित्वका होना दूसरी बात है। छायावादी कवियोंकी कवितामें ठीक यही स्थिति निरालाकी है। छायावादके निरालासे इतर कवियोंमें आंशिक एकरूपता मिल जायेगी पर निरालाकी प्राणवत्ता, रूपाकार भिन्न है।

सन् १९४३ के बाद हिन्दी कवितामें जो पैटर्न अपनाया गया वह अपने छन्द-बन्ध, शब्द-योजना, बिम्ब-प्रतीक-विधान आदिमें बहुत रूढ़ और रीतिबद्ध हो गया है। उसपर स्पष्ट रूपसे एक प्रकारके आभिजात्य, अधिक जगहोंपर सूडो आभिजात्यकी छाप है। मुक्तिबोध इस अभिजात्यसे मुक्त हैं। उन्होंने बौद्धिक दर्दको नहीं बल्कि सामान्य जीवनकी समस्त कटुताओंसे गहरा संघर्ष किया है, उसको भोगा है, झेला है। उनकी गहरी संवेदनशीलता और पैनी बौद्धिकताने उनकी अनुभूतियोंको जो काव्यरूप दिया है वह जीवनके नये यथार्थसे संसक्त तथा नवीन मूल्य-चेतनासे अनुप्राणित है। अन्य कवियोंसे उनका कथ्य कुछ ऐसा भिन्न है कि उसे नयी कविताकी रीतिबद्धताको तोड़ना पड़ा है। लेकिन एक रीतिको तोड़कर उन्होंने दूसरी रीति (रेहटारिकल पैटर्न) का निर्माण किया। फलस्वरूप उनमें विविधताकी कमी आ गयी है।

वह भावानुप्रेरित बौद्धिकताको बोधके कई स्तरोंपर अभिव्यक्त करता है, सिने-रीलकी तरह। एक-एक रीलमें अनेक खण्ड-दृश्य जुड़े रहते हैं जो कुछ विचित्र किन्तु स्पष्ट, ताजे और अर्थपूर्ण होते हैं। वस्तुतः उसकी कवितामें जो सान्द्रता, द्वन्द्वात्मकता मिलती है वह पाठकोंको उसकी सम्पूर्ण आवेगात्मकतामें (कैनेस्थेटिकली) लय कर लेती है। निरालाकी कविताका निर्बन्ध आवेग मुक्तिबोधकी कवितामें आकर स्नायविक तनावोंसे युक्त हो जाता है और सम्पूर्ण कविता एक प्रकारकी वैद्युत् गतिमयतासे परिचालित हो जाती है। आभिजात्य निष्क्रिय बौद्धिकता उसे पसन्द नहीं है। उसके स्थानपर, कुछ देरके लिए वह गड़बड़ (कन्फ़्यूजन) भी चाह सकता है, बशर्ते वह क्रियात्मक हो। वह 'टेरर' और अराजकताके बीचसे गुजरता हुआ एक क्रियात्मक परिणतिपर पहुँचता है। वह परिणति जितनी उसकी अपनी है उतनी ही दूसरोंकी भी।

भय, आतंक, अनिश्चय, जिज्ञासा, कुतूहल और समाधान, घबराहट और

दुश्चिन्ता' आदिको अभिव्यक्त करनेकी कोशिश रूपात्मक होगी। इसके लिए आवश्यक है कि काव्यमें कथाका आभास मिले। मुक्तिबोधकी रचनाओंकी यह सार्वत्रिक विशेषता है। वे काव्यरूपक नहीं हैं, रूपात्मक काव्य हैं।

ब्रह्मराक्षसके सम्बन्धमें लिखते समय उसने कहा है—'पागल प्रतीकोंमें निरन्तर कह रहा।' ब्रह्मराक्षस वह स्वयं है और उसकी सभी कविताएं प्रतीकोंमें कही गयी हैं। ये प्रतीक अलग-अलग भी हैं और पूरे बन्दमें भी। एक-एक भाव खण्डका वह एक विवरणात्मक बिम्ब बनाता है और फिर पूरा बिम्ब प्रतीक हो जाता है।

भाषा उसकी संस्कृतनिष्ठ है—निरालाकी भाषाकी तरह। जहाँतक ऊर्जाके सर्जनका प्रश्न है मुक्तिबोध निरालाके उत्तराधिकारी हैं पर निरालामें विषय-वस्तु, भाषा, शैली आदिकी जो विविधता दिखाई देती है वह मुक्तिबोधमें नहीं है। अँधेरा इनका अपना है और ज्योति उन्हें निरालासे प्राप्त कही जा सकती है। इनकी कवितामें जहाँतक रंगोंका सवाल है मुख्यत: दो ही रंग दिखाई देते हैं—'श्याम और श्वेत, अँधेरा और प्रकाश।'.........सहज मानवीय आकांक्षाओं-की पूर्तिके सामाजिक वातावरणके अभावमें, उसके काव्यात्मक रंग अधिक श्यामल बोझिल और अधिक आत्मग्रस्त हो जाते हैं। 'हाँ तो मैंने अपनी एक कवितामें (अनेक कविताओंमें) उन्हीं काजली रंगोंका प्रयोग किया है। अन्तर केवल यह है कि इस श्यामलताके कार्य-कारण सम्बन्ध भी वहाँ प्रस्तुत किये गये हैं।' जल चाहे समुद्रका हो, नदीका हो, बावड़ीका हो सर्वत्र स्याह है। इस अँधेरेमें कहीं मणियोंकी ज्योति दिखाई देती है तो कहीं लाल मशाल, अंगार, विद्युत्की चकाचौंध। ये सभी ज्योतियाँ उसीकी हैं जो एक स्थितिमें मणि-द्युति है, दूसरीमें लाल मशाल तो तीसरीमें अंगारोंकी चिनगारियाँ।

वातावरण निर्माणमें उसका रेहटारिक कहीं-कहीं जरूरतसे ज्यादा लम्बा हो जाता है जिसमें बहुतसे भरती शब्द या निरर्थक विशेषण भर जाते हैं। पर समग्रतः मुक्तिबोधने शब्दों, ध्वनियों, लयोंको नया अर्थ देनेका प्रयास किया है—यह नया अर्थ निराकार नहीं है, पूरा साकार, ठोस और समर्थक है। उसने अपने युगकी खोखली मान्यताओंको नंगा कर दिया है। और इसके लिए उसे भारी मूल्य भी चुकाना पड़ा है।

—बच्चन सिंह

● ●

अक्षरोंका सेतु
कृतियोंकी प्रतिक्रिया

लेखन-प्रकाशनके आयोजन-श्रमकी इकाई अधूरी रहेगी
जबतक पारखी पाठककी प्रतिक्रिया प्रकाशकके
पास होती लेखककी मेजतक न पहुँचे

• इतिहास-पुरुष : देवराज

एक समाहारात्मक काव्य-कलश

'इतिहास-पुरुष' हिन्दी-साहित्यकी एकाधिक विधाओंके पुरोधा लेखक-कवि डॉ० देवराजकी सद्यः प्रकाशित काव्यकृति है, जिसमें तेरह लघु-दीर्घ शीर्षकीय कविताएँ एकजुट होकर प्रस्तुत होती हैं। पुस्तकका नामकरण इसमें आगत प्रथम लघु काव्य—इतिहास-पुरुषको आधारभूत मानकर किया गया है, जो साधारणतः ग्राह्य और श्लाघ्य भी माना जा सकता है।

इतिहास-पुरुष अपने-आपमें एक लघु काव्य है, जिसमें प्रबन्धात्मक उदात्तता (सब्लिमिटि) का भरपूर निर्वाह किया गया है। यह काव्य तीन खण्डों—'परिचय', 'द्वन्द्व-बोध' और 'प्रज्ञापारमिता'—में क्रमशः विभाजित होकर प्रस्तुत होता है। प्रथम खण्डमें इतिहास-पुरुष आत्म-परिचयका नाटकीय भंगिमाके साथ प्रस्तुतीकरण करता है।

इतिहास-पुरुषको कविने 'जड़ताकी तहदार और राशि-राशि कींचसे विकसित शतदल' कहा है, जिसमें सौन्दर्यका बिम्बकलश दीख पड़ता है। इस उक्तिमें डॉ० देवराजका चिन्तक, दार्शनिक और कविर्मनीषी व्यक्तित्त्व स्पष्ट ही परिलक्षित होता है। 'कीचसे शतलद-सा पढ़ना' औपनिषदिक सत्य है, जिसे कविने काव्य-सत्यके रूपमें ढालनेकी श्लाघ्य चेष्टा की है।

कविने अपनी प्रतिभाके सहारे अमूर्त्त ब्रह्मको 'इतिहास पुरुष'के रूपमें चित्रित कर चिन्तन और कवित्वका एक नया खेमा गाड़नेका प्रयास किया है। ब्रह्मके स्वरुप विवेचनके लिए शास्त्रों वेदों और उपनिषदोंमें एक स्वरसे अनादि, निर्गुण तथा ऐसे ही कई शब्द प्रयुक्त किये जाते रहे हैं। प्रस्तुत कविकी मौलिक चिन्तना ने ब्रह्मको जीवनका समतलीय रूप प्रदान कर, उसे सगुण और प्रगतिशील भाव भूमिपर अधिष्ठित किया है। स्रष्टाके स्वरूप-विवेचनके प्रसंगमें विभिन्न दार्शनिकों और धर्मशास्त्रियोंने स्वानुरूप उसका नामकरण किया है। कवि देवराजने उसे 'इतिहास पुरुष' नामसे अभिहित किया है। उनके मतसे यह 'इतिहास पुरुष' ही जीवन-चेतना और सृष्टिका मूल तथा केन्द्रबिन्दु है। वह विशाल वट-वृक्षकी तरह प्रशस्त और व्यापक है, जिसमें-से अगणित प्रशाखाएँ फूटती हैं। वही एक है, जो अतीत और अनागतकी खाईको वर्त्तमानसे पाटता चलता है। उसकी ही चेतना और अरुणिमामें एकाकार होकर मानव अपनी चेतनाका द्वार खोलकर सृष्टिके अखण्ड और अप्रतिम प्रयोजनको समझ सकता है और तभी नये अर्थ बोधके ग्रहण करनेमें सक्षमता भी हासिल कर सकता है। परम मनीषी होनेके कारण चेतनाका वह स्वयं सम्राट् और राशिपति ही नहीं प्रत्युत् चेतनाका स्वयं साकार रूप भी वही है। 'परिचय'के अन्तिम अर्थात् सातवें गीतमें निर्गुण, क्रिया-विरत और अशरीरी ब्रह्मको त्याज्य बतलाकर लघुमानवकी कुण्ठाको विरामका स्वर देकर, कर्मकी आस्थापर अवधान दिया गया है। प्रकारान्तरसे, लघु मानवके निजी अस्तित्वको उभारते हुए कविने कर्म और गुणको प्रमुखता देनी चाही है। उसके लिए वही ब्रह्म—'इतिहास पुरुष' मान्य, ग्राह्य और भज्य है जो चेतनाका द्वार खोलकर कर्मको गति देनेमें समर्थ हो।

द्वितीय खण्डमें कवि डॉ० देवराजने जगत् और जीवनके 'द्वन्द्व-बोध'को प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की है। यह खण्ड अत्यन्त ही वैचारिक चिन्तनपूर्ण, कवित्वातुर, सौन्दर्य गुम्फित है, और इसीलिए प्राणवान् भी बन पड़ा है।

इस सम्पूर्ण खण्डमें कविने अरविन्द दर्शन और अस्तित्ववादके मिले-जुले रुपका प्रकारान्तरसे प्रस्तुतीकरण करना चाहा है। कविके सामने एक प्रश्न रेंगता है कि आख़िर विविध वर्ण गन्धभरे भूमिके पड़ावोंमें, देश कालके शब्दित चौड़े फैलावोंमें मानव अपनेको उदास और एकाकी क्यों अनुभव करता है? वह भी तो उसी चेतन और व्यापक ब्रह्म अर्थात् इतिहास-पुरुषकी ही परम्परा

और उसका तत्त्व है। और अधिकांश भारतीय दार्शनिक भी इस पक्षमें अपना मत प्रस्तुत करते हैं कि मनुष्य अर्थात् आत्मा भी परमात्माका ही अंश है, अतः दोनोंमें तात्त्विक भेद नहीं जान पड़ता। दोनोंमें अंशी और अंश अथवा अंगी और अंगका सम्बन्ध है, फिर मनुष्यका लघुत्वकी भावनासे ग्रस्त होना और निराशावादी होना—दोनों ही अज्ञानताका सूचक है। श्री अरविन्दने भी लघु-मानवकी कुण्ठा और उसकी लघुताको अमान्य घोषित करते हुए, 'स्वर्गीय जीवनकी संस्थापनाकी। उनका दर्शन खासा अस्तित्ववाद भले ही न हो लेकिन कुछ उसीसे सटा हुआ तत्त्व-चिन्तन अवश्य है।

जीवनके द्वन्द्व बोधके उपस्थापनके क्रममें कवि डॉ० देवराजने कल्पनाकी कमनीयता, बिम्बोंका संकुल प्रयोग तथा भावों और चित्रोंके अप्रतिम अम्बार बिछानेमें नैसर्गिक सफलता हासिल की है। उनके अन्तःमें रोमानियतकी बिजली है, जो रह-रहकर कौंध जाती हैं, जिससे दर्शनकी गूढ़ात्मकता रसपेशिल बनकर प्रत्यक्ष होती है। 'आश्विनके स्वच्छ नील अम्बर'को 'झील' और फिर उसमें तैरती हुई बदलियोंको 'हंसी' कहनेमें एक सुन्दर और संश्लिष्ट चित्र तथा बिम्बका स्वतः मानसिक बोध होता है। कालिदासके 'मेघदूत'में भी कतिपय ऐसे चित्र देखनेको मिलते हैं। डॉ० देवराजने सम्भवतः कालिदाससे ही किसी-न-किसी प्रकार प्रभावित होकर इस बिम्बकी सृष्टि की हो। और भी; 'रात' को 'शरमीली परियों'से उपमानित करनेमें भी कविकी सूक्ष्म कल्पना और प्रतिभाका एहसास होता है। 'शरमीली परियों-सी रात' कथनमें कई ऐसी विशिष्टताएँ स्वतः झलकती हैं, जो कविके काल्पनिक रूपको शीर्षस्थ करनेमें सक्षम होती हैं। यहाँ सूक्ष्म (रात)को स्थूल रूप प्रदान कर उसे विशेषतः ग्राह्य बनाया गया है।

'इतिहास-पुरुष' लघु काव्यका 'प्रज्ञापारमिता' शीर्षक अन्तिम खण्ड सचमुच, प्रज्ञात्मक तथा भावात्मक बन पड़ा है। 'इतिहास-पुरुष' स्वयं लघुमानव—की क्षुद्रताओं और उसकी संकीर्ण सीमाओंको एक-एक कर इंगित करते हुए मानवीय विकास और महज्जीवनकी ओर प्रयाण करनेकी उत्प्रेरणा भरता है। 'इतिहास-पुरुष'के रूपमें डॉ० देवराजका कवि प्रस्तुत खण्डमें उपसंहारात्मक रूपमें पगहारे—निराश मानव-मनमें आशाकी किरण छिटकानेका आकांक्षी है। कुल मिलाकर, वह मानववाद को विकसित और सबल बनाना

चाहता है। अन्त में, 'इतिहास-पुरुषके स्वरमें कवि डॉ० देवराजका दृष्टिकोण जीवनकी सफलता और विकासकी पूर्णता तथा इयत्ताके निमित्त समग्रात्मक और समन्वयवादी ठहरता है। उनका चरम विश्वास है कि ज्ञानकी रूपरेखा मात्र भावात्मक कर्मनिष्ठताके द्वारा ही साकार बनायी जा सकती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि आलोच्य काव्यमें डॉ० देवराजके चिन्तक, दार्शनिक, कवि तथा अध्येता—सभी-के-सभी रूप अपेक्षाकृत अधिक निखार पर है। 'इतिहास-पुरुष' कविता सच पूछें तो दर्शन और काव्यके ताने-बानेसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें बुनी हुई प्रतीत होती है, जिसका अपना एकान्तिक और अप्रतिम मान, मूल्य और महत्व है। किन्तु, 'निवेदन'के क्रममें देवराज-द्वारा आत्म स्वीकृतिके कतिपय भावुकतापूर्ण शब्द उनका अवमूल्यन (डिवल्यूशन) ही प्रस्तुत करते हैं।

'इतिहास-पुरुष' के अतिरिक्त और बारह कविताएँ प्रस्तुत संग्रहमें संग्रहीत हैं, जिनमें क्रमशः 'क्लिओपेट्राका पत्र : सीताके नाम' तथा 'नूरजहाँ' विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। 'इतिहास-पुरुष'में जहाँ डॉ० देवराजका दार्शनिक रूप प्रतिनिधित्व करता है, वहाँ इन दोनों ही कविताओंमें इनका कवि रूप साकार और सफल हुआ है। प्रकारान्तरसे ऐसा कहा जा सकता है कि 'इतिहास-पुरुष' काव्यकी आत्मामें दर्शनकी पैठ है तो उक्त दोनों ही कविताओंमें भारतीय इतिहास और संस्कृतिके खोखले सेतुको काव्यात्मक पटरियोंसे पाटनेका प्रयास किया गया है। तात्पर्य यह है कि 'क्लिओपेट्राका पत्र : सीताके नाम' तथा 'नूरजहाँ' ये दो कविताएँ ही इस संग्रहको अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर और वज़नदार बनानेमें सक्षम होती हैं।

'क्लिओपेट्राका पत्र : सीताके नाम' शीर्षक कवितामें कवि मूर्त्तको अमूर्त रूप प्रदान कर उसे कई चित्रोंके सहारे बाँधनेके पश्चात् निष्कर्ष और आप्त वाक्य प्रस्तुत करता है। यहाँ मूर्त्त दो हैं—एक 'क्लिओपेट्रा' और दूसरी, 'सीता'। एक पाश्चात्य देशकी सभ्यताका प्रतिनिधित्व करती है तो दूसरी भारतीय संस्कृति को सामने लाती है। प्रस्तुत कवितामें डॉ० देवराजकी सबसे बड़ी विशेषता उनकी तटस्थता, ईमानदारी और पूर्वग्रह-मुक्तता है। कुल मिलाकर, कवि प्रस्तुत कवितामें पूरब और पश्चिम, नीति, आदर्श और मर्यादा तथा यथार्थ, और वैसे ही हृदय और मस्तिष्ककी एकांगिताको त्यागकर 'समन्वय' पर अवधान का पूर्ण विराम देना चाहता है।

और, एक है 'नूरजहाँ', जो अपने काव्य सौन्दर्यकी रश्मियोंको विकीर्ण कर प्रस्तुत संग्रहकी अन्वितिको अपने-आपमें समदेत् करनेकी चेष्टा करती है। दर्शन, चिन्तन और इतिहास या किसी अन्य तत्त्वकी दृष्टिसे भले ही किसी अन्य कविताका नाम ले लिया जाये, किन्तु काव्यत्वके भाव और अर्थ-बोध को 'नूरजहाँ' शीर्षक कविता ही अपने-आपमें समेटनेको आतुर है। भाव और विधान (शैली) दोनों ही दृष्टियोंसे प्रस्तुत कविता अकेली ठहरती है। एक ओर इसमें व्यंग्यात्मकताको काव्यसत्यका रूप दिया गया है, तो दूसरी ओर ऐतिहासिक भाव-भूमिपर काव्यका तानाबाना सघनतापूर्वक बुना गया है। कहीं-कहीं तो लगता है जैसे 'नूरजहाँ'के शब्दोंमें कविका ही अनुभव गुनगुना रहा हो। उदाहरणके लिए ये पंक्तियाँ विशेष तौरपर ध्यातव्य है :

जिन्दगी एक अँधेरी, दिलचस्प भूलभुलैया है
और प्रेम एक खूबसूरत ख्वाब········!

इसके अतिरिक्त संग्रहकी अन्य कविताओंके पारायणमें एक विशेष प्रकारके आयासिक भारका एहसास होता है, जिससे पाठकोंके मनमें एक प्रकारकी स्वाभाविक ऊब-सी पैदा होने लगती है। फिर भी संग्रहकी अधिकांश कविताओं को रचना-प्रक्रियामें एक विशिष्ट ढंगका नयापन देखनेको मिलता है। इनको शैलीमें कसावट तथा भाषामें संश्लिष्टता सहजही देखी जा सकती है। इसीलिए सामासिक शब्दों विशेषकर द्वन्द्व समासका भरपूर प्रयोग कविने किया है। सबसे बड़ी बात यह है कि काव्यके भीतर जहाँ एक ओर रोमानियतकी छिटक मिलती है, वहाँ दूसरी ओर शैली तथा भाषाका शास्त्रीय पक्ष भी शीर्षस्थ बन सका है। संग्रहकी अधिकांश कविताओंका केन्द्रीय भाव समाहारात्मक ठहरता है। अतः इस दृष्टिसे, कुल मिलाकर, इसे समाहारात्मक काव्य-कलश कहना ही उचित और साभिप्राय लगता है।

— नन्दकुमार राय

● ●

नयी कृतियाँ
ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित

जो भारतीय साहित्य-जगत्में अनूठी और
अपूर्व हैं और इसीलिए यह अपेक्षा
भी कि आप इनसे परिचित हों।

• सवेरा-संघर्ष-गर्जन : डॉ० भगवतशरण उपाध्याय

प्रस्तुत कहानियोंका विषय नवीन और असामान्य है। इन्हें लिखकर लेखकने हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें एक नया पथ निर्मित किया है, जिसपर वे चले हैं नव-निर्माताके साहित्यसे, कविके चक्षुसे, दार्शनिककी अन्तर्दृष्टिसे, और निरन्तर विकसित होते और महत्त्वाकांक्षी मानव-प्रेमीके हृदयसे।

'सवेरा', 'संघर्ष' और 'गर्जन' तीन खण्डोंमें लिखी इन तीस कहानियोंका आधार है मानव जातिका प्राथमिक इतिहास—विशेषकर सामाजिक; तथा प्राचीन भारतीय संस्कृतिका मर्मस्पर्शी जीवन्त अंकन इनका उद्देश्य है। 'सवेरा' की कहानियाँ मानव-जातिके शैशवसे ऋग्वैदिक युग तककी कहानियाँ हैं, 'संघर्ष'में ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विकासकी कहानियाँ (सातवीं सदी ई० पू०से तीसरी सदी ई० पू० तक), तथा 'गर्जन'की कहानियाँ तीसरी सदी ई० पू०से दूसरी सदी ई०पू० तककी हैं।

रोचक और पठनीय इन कहानियोंकी भाषा तो प्राचीन संस्कृतिके अनुरूप है ही; विचार, प्लाट आदि भी तद्विषयक और तत्कालीन हैं। अब प्रस्तुत है नया परिमार्जित तीसरा संस्करण।

मूल्य ७. ००

• नये प्रतिमान पुराने निकष : लक्ष्मीकान्त वर्मा

सर्जनकी नयी अभिव्यक्तिके साथ उसके मूल्यांकनकी समस्या भी उठती ही

है। और तभी नये प्रतिमानोंको विकसित करने, पुराने और प्रतिष्ठित निकषोंकी व्याख्या तथा उनकी सीमाओंके निर्धारणकी बात भी ज़रूरी हो जाती है। यह विशेष रूपसे इसलिए भी कि वास्तवमें यदि कुछ 'नया' है तो उस 'नये'को 'पुराने'के समक्ष—आमने-सामने 'एन्काउण्टर'के रूपमें आना चाहिए।

साहित्य-चिन्तनकी अपनी मान्यताएँ भी हिन्दीमें अबतक कहाँ थिर हो पायीं। नये मूल्योंका आभास-मात्र ही मिल रहा है, और प्रतिष्ठित पुराने मूल्योंका खोखलापन स्पष्ट दिखाई तो देता है, पर वह जीवनसे छूट नहीं रहा है। अतः विभ्रमकी इन स्थितियोंके बीच यह कृति साहित्य—विशेष रूपसे नवलेखन (ताज़ी कविता तक) के—सर्जन आस्वादन और मूल्यांकनके विविध सन्दर्भोंको दूर तक आलोकित करनेका एक सार्थक नव-प्रयत्न है : साहित्यिक और आलोचनात्मक लेखोंका संग्रह—तथ्यतः पठनीय और संग्रहणीय।

मूल्य : ७.००

● शहर अब भी सम्भावना है : अशोक वाजपेयी

एक कविकी रचनाओंमें आप क्या खोजते हैं? यही कि—भाषाका एक ताज़ा और उत्तेजक उपयोग, और उसके माध्यमसे एक ऐसा संसार जिसमें चीज़ोंके सम्बन्ध कुछ गहरे, कुछ बदले हुए और कुछ अप्रत्याशित-से हों? सन् साठके आसपास उभरनेवाली पीढ़ीके कवि श्री अशोक वाजपेयीके प्रस्तुत संग्रहकी कविताएँ अवश्य ही विनयपूर्वक इस आशाको पूरा करती लगेंगी।

ऊपर-ही-ऊपरसे तो लगेगा कि ये कविताएँ आक्रामक या हिंसा-भरी नहीं हैं,—अधिक गहरे उतरकर अवश्य ही आप इनमें मातृ-करुणा, प्रेम, आशा आदि कुछ बुनियादी लगावोंका एक रचनात्मक और विकल विन्यास पायेंगे।

दुनियाकी बढ़ती हुई असंगति और अर्थक्षीणताके पूरे एहसासके साथ ये ऐसी कविताएँ हैं जो मानवीय होनेके अनुभव और तनावोंको आत्मीय स्तरपर परिभाषित तो करती ही हैं; दुनियाके सारे विनाशके विरुद्ध कुछ गहरे मानव-सम्बन्धोंमें अर्थ और सम्भावनाकी लगातार खोज भी करती हैं। इसी खोजने इन कविताओंको जन्म दिया है—जो बिना शोर मचाये वहाँ शब्द रखनेका प्रयत्न करती हैं जहाँ पहले वे नहीं थे।....

मूल्य ३.००

• मुरदा सराय : शिवप्रसाद सिंह

देखे हुएके भीतरसे अदेखेको देखने-समझनेकी शक्ति, वस्तुओंके सही सन्दर्भ और उनके उलझनोंको निबेरनेका विवेक, विविध जीवन-खण्डोंके आधारपर पूरे जीवनको संकेतित करनेकी क्षमता, सामान्य ज़िन्दगीको गहराईसे अनुभव करनेकी वह संसक्ति जो ज़िन्दगीके अछूतेसे अछूते कोनेको प्रकाशित कर दे—ये सभी कुछ मिल-जुलकर एक ऐसे मानसका निर्माण करते हैं जो बारीकसे बारीक स्पन्दनोंको भी अंकित कर लेता है। 'मुरदा सराय' ऐसे ही अंकनों और धड़कनोंका 'बैरोमीटर' है। यही कारण है कि इन कहानियोंमें ज़िन्दगी पुनःकथित नहीं हुई है, वह पुनरुज्जीवित है, पुनर्भुक्त है।

प्रस्तुत है नयी हिन्दी कहानीके विशिष्ट कथाकार शिवप्रसाद सिंहकी नयी कहानियोंका नवीनतम संग्रह 'मुरदा सराय'—रोचक और संग्रहणीय।

मूल्य : ४.००

• कुछ निबन्ध : अक्षयकुमार जैन

काफ़ी हद तक यह ज़रूर सच है कि निबन्ध बहुत प्रकारके होते हैं। और बहुत प्रकारके महज इस आधारपर वे नहीं होते कि लेखक अलग-अलग हैं। बहुत प्रकारके वे इसलिए भी होते हैं कि अलग-अलग स्तरके पाठकोंके लिए लिखे जाते हैं और अलग-अलग प्रयोजनोंको लेकर, अलग-अलग प्रेरणाओंपर।

ये 'कुछ निबन्ध' सचमुच कुछ निबन्ध हैं जो कुछ बातोंमें विशिष्ट पाये जायेंगे। छोटी-छोटी घटनाएँ इनकी मूल प्रेरणाएँ हैं, पर घटनाएँ ऐसी जो लेखकको लग गयीं और आपको अब बिना लगे न रहें। मनको ये निबन्ध छुएँगे और अपनी तरहसे सोचने और बूझनेको भी दो बार कहेंगे। हलके-फुलके छोटे-छोटे, पर उपयोगी। स्वयं पढ़ें और परिवारमें सबको पढ़नेको दें।

मूल्य : २.५०

• सुगन्धदशमी कथा : सं०-अनु०—डॉ० हीरालाल जैन

कथाके माध्यमसे नीतिकी शिक्षा भारतीय साहित्यकी प्राचीन परम्परा है। बहुत बार तो एक ही कथा-बीज अनेक रूप लिये दृष्टिगोचर होता है और सागर-

पार तकके साहित्यमें उसके तत्त्व प्रतिभासित होते हैं। सुगन्धदशमी कथा एक ऐसी ही कथा है जिसके बीज महाभारतमें भी मिलते हैं और जर्मन-कथा साहित्यमें भी। जैन लेखकोंने इसे जो स्वरूप दिया वह विशेष है। एक ही भावभूमि, एक ही कथावस्तु, पर भाषाएँ भिन्न-भिन्न, लेखक अलग-अलग। प्रस्तुत संस्करणमें पाँच भाषाओं—अपभ्रंश, संस्कृत, गुजराती, मराठी और हिन्दी—में रची गयी सुगन्धदशमी कथाएँ संकलित हैं।

संस्करणकी अन्यतम विशेषताओंमें भी विशेष है इसका सम्पादन और प्रस्तुतीकरण। कथाके मूल भागको प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंपर-से तो संशोधित किया ही गया है, अपभ्रंश और संस्कृतका सरस हिन्दी अनुवाद भी दे दिया गया है। जहाँ लोककथाओंके तुलनात्मक अध्येताके लिए विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना और परिशिष्टमें दिये गये मूल स्रोत-संकेत पर्याप्त सामग्री देते हैं, वहीं भाषाविज्ञानके विद्यार्थीके लिए कथाओंके मूल पाठ मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय-आर्य भाषाओंके तुलनात्मक अध्ययनके लिए प्रभूत सामग्री प्रस्तुत करते हैं। जैन परम्पराके श्रद्धालु जनोंके लिए तो यह कृति विशेष है ही क्योंकि यह कथा आज भी पर्युषण पर्वमें भाद्रपद शुक्ल दशमीके दिन पढ़ी और सुनी जाती है तथा सुगन्धदशमीका व्रत रखा जाता है।

प्रस्तुत संस्करण एक विशिष्ट कलात्मक कृति भी है क्योंकि इसमें है मराठी कथालेखकको सचित्र पाण्डुलिपिका सम्पूर्ण रूपमें प्रस्तुतीकरण जो भारतीय चित्रकलाके सन्दर्भमें इसे कला-पारखी विद्वानोंके लिए विशेष अध्ययनकी वस्तु बनाता है।

अनेक दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण और पठनीय।



राष्ट्रभारती
परिवेश और उपलब्धियाँ

यह स्तम्भ इसलिए कि सहवर्ती भाषाओं के साहित्यकी दिनप्रमित गतिविधि और उपलब्धियोंसे हिन्दी जगत् परिचित हो

• तमिल

विजयलक्ष्मी अयंगार

२१ और २२ मई को नागपुरके भारती तमिल संघम्ने अपना द्वितीय वार्षिकोत्सव मनाया। इस अवसरपर कांचीपुरम्के पच्चेयप्पा कॉलेजके तमिल विभागके प्राध्यापक श्री ना० आरूमुगम् प्रमुख अतिथिके रूपमें उपस्थित थे ।

पहले दिनकी सान्ध्य कालीन गोष्ठीमें तमिल शैवम् विषयके अन्तर्गत श्री आरू मुगम्ने शैव साहित्यमें वर्णित धर्म, भक्ति, ज्ञान, चिन्तन आदिका विवेचन किया। उन्होंने कहा कि भारतकी सांस्कृतिक एकताका आधार अध्यात्म चिन्तन और धार्मिकता ही है। उपासनाके विविध स्वरूपोंका विवेचन करते हुए उन्होंने कहा कि उपासक और उपासनाके आधारपर ही उपास्यकी स्थिति है। जीवनकी अन्य आवश्यकताओंकी तरह आराधना हमारे जीवनका एक अभिन्न अंग है। ईश्वर-चिन्तन एक जन्मजात प्रवृत्ति होती है। चिन्तनका सदैव एक लक्ष्य होता है इसलिए आराध्यका अस्तित्व तो सर्वदा रहता है।

शैव साहित्यका आरम्भ १३वीं शतीसे माना जाता है किन्तु उसके पहले भी तेवारम्, पेरिय पुराणम् आदि के रूपमें कुछ साहित्य रचा गया है। तमिल कवियोंने तमिल और संस्कृत—दोनों भाषाओंमें समान रूपसे साहित्य सर्जना की है। इन दोनों भाषाओंका साहित्य अपने-आपमें समृद्ध एवं वाद-विवादकी संकीर्णतासे परे है। स्कन्ध पुराण एवं व्यासके महाभारत-जैसे ग्रन्थोंका पठन-पाठन विल्लीपुत्तूर, आलवार, काची अप्पर-जैसे कवियों-द्वारा हुआ है। उसी प्रकार वाल्मीकि रामायणको भी कम्बन-जैसे महाकविने

तमिलमें लिखा। तमिलका पेरिय पुराणम् जिसमें ६३ शिव भक्तोंकी जीवनी है—उसको 'उपमान्य भक्त विलासम्'के नामसे रूपान्तरित हुआ है।

शिव, शैव एवं शैव्य साहित्यम्के सम्बन्धमें श्री आरू मुगमने कहा कि तमिल साहित्यमें धर्म ही शिव है। शिव और कार्तिकेय साहित्य और भाषाके आदि देवता माने जाते हैं। शिवभक्तोंने अपने आराध्यसे दया, धर्म और प्रेमकी ही भिक्षा माँगी है और मानवके इन चिरन्तन गुणोंका ही उल्लेख तत्कालीन साहित्यमें हुआ है।

दूसरे दिनकी गोष्ठीका विषय था—संघकालीन जीवन और संस्कृति।

तमिलका संघकालीन साहित्य समृद्ध एवं लोकप्रिय है। आरू मुगम्जीने संघकालीन साहित्यका समय ई० पू० तीसरी शतीसे ईसवी तीसरी शतीके बीच माना है। विश्व विख्यात 'तिरुकुरल' और 'मणिमेखलै'-जैसे महाकाव्य संघकालके अन्तिम समयकी रचनाएँ मानी जाती हैं। उन्होंने इन महाकाव्योंके कुछ महत्त्वपूर्ण अंशोंको उद्धृत करते हुए प्राचीन साहित्यमें निहित विविध विधि-विधानोंका विवेचन किया। आराधनाका लक्ष्य दया, धर्म और प्रेमकी प्राप्ति था। इस व्यापक प्रेमका गरिमामय रूप हमें संघकालीन साहित्यमें दिखाई देता है।

प्राचीन तमिल साहित्यमें सामान्य जन-जीवनके विविध अनुभवोंको दो रूपोंमें बाँटा गया है। वे अनुभव जो लौकिक अनुभूतियोंसे सम्बद्ध है 'अगम' और जो अनुभव पारलौकिक हैं पुरम् कहलाये।

प्रेम संघकालीन जीवन एवं साहित्यका एक अभिन्न अंग है। प्रणयी युगलकी विविध क्रीड़ाओं—मिलन, वियोग, प्रवास, मृत्यु और मुक्तिके सम्बन्धमें चर्चा करते हुए आरू मुगम्जीने कहा कि नारीके गरिमामय जीवनका अंकन हर साहित्यकारका गौरव रहा है। साथ ही उन्होंने उसके संघर्षमय जीवनका चित्रण भी किया है। यहाँ इलञ्भगो, वल्लुवर, भारती-जैसे कवियोंकी नारी सम्बन्धी ऊँची विचारधाराएँ उल्लेखनीय हैं। नारी शक्ति है किन्तु उसकी शक्तिका रक्षक नर है। संरक्षण शक्ति ही पुरुषका गौरव एवं उसकी वीरताका प्रतीक है।

गार्हस्थ्य जीवनके सम्बन्धमें संघकालीन साहित्यमें यत्र-तत्र कई प्रकारके विचार मिलते हैं। शरीर और और प्राणका जो सम्बन्ध है—वही सम्बन्ध पति-पत्नीका है। वल्लूवरके कथनानुसार दोनोंका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। जैसे जल ही जीवन है और उसके बिना सांसारिक कार्य अवरुद्ध हो जाते हैं—उसी प्रकार परस्पर प्रीतिपर ही गार्हस्थ्य जीवनका आधार है। स्वप्न, शील, चरित्र और काम (वासना) से जीवनमें पूर्णता आती है।

आतिथ्य गृहस्थ जीवनका एक अंग माना गया है। वल्लूवर उसे दाम्पत्य सुखके समकक्ष मानते हैं। यहाँतक कि अतिथिके आगमनसे मानवती नायिकाका मान भंग हो

जाता है और पति-पत्नीमें फिर मेल हो जाता है। तिरुकुलका एक अध्याय ही अतिथि सत्कारसे सम्बन्धित है। संघकालीन साहित्यसे स्पष्ट है कि आतिथ्य-सत्कार-हीनता असभ्यता एवं वन्य जीवनके समान है।

संन्यासके सम्बन्धमें श्री आरूमुगम्ने कहा कि अपना अज्ञान दूर करना अज्ञानी व्यक्तिका कर्त्तव्य है। मानव जब अकेला होता है तो उसका अहं सर्वोपरि एवं सजग रहता है। लेकिन जीवन-संगिनीके आते ही वह बँट जाता है और सन्तानोत्पत्तिके साथ ही दोनोंकी प्रीति उस नवागन्तुक शिशुपर केन्द्रित हो जाती है। वही अहं सर्वव्यापी होकर कल्याणकारी हो जाता है। ऐसा वैराग्यपूर्ण जीवन ही संन्यास है। वैराग्य एवं संन्यास-सम्बन्धी आधुनिक युगकी विविध मान्यताएँ हैं किन्तु संघकालीन साहित्य बताता है कि जीव और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं। वे अभिन्न क्यों और कैसे होते हैं?—वियोगकी क्षणिक अनुभूतिके बाद जो मिलन होता है—वह आत्मा-परमात्माके मिलनके समकक्ष है। मानव जीवनको दुःख-सुखकी मिश्रित अनुभूतियोंके अनुभवके बाद ही मुक्ति है। वास्तवमें एकान्त जीवन संन्यासका लक्षण नहीं है—वरन् पति-पत्नीके दाम्पत्य जीवनकी तन्मयता, सरसता और नीरसताके बाद ही मुक्ति है।

इस प्रकार संघकालीन साहित्यमें वर्णित सामान्य जन-जीवनके उच्च आदर्शोंका प्रतिपादन कर आरू मुगम्जीने कहा कि तत्कालीन साहित्यमें विविध शास्त्रों सम्बन्धी ज्ञानका भी उल्लेख है, जिसमें गृहशास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि प्रमुख हैं। इस प्रकार सभ्यता एवं सौजन्यताकी सीमारेखापर संस्कृति समृद्ध हुई और उससे तमिल साहित्य भी।

● ●

: समसामयिकी :

भाषाका सवाल सहयोग और संघर्ष

धर्मवीर भारती

समझनेकी बात है कि भाषाके सवालको लेकर बुद्धिजीवियोंके चिन्तनमें अ-संगतियाँ, दैन्य और सत्तापूजा आखिर आयी कहाँसे ? वास्तवमें, हुआ यह है कि चाहे भाषाकी स्थिति हो, साहित्यिक योजनाओंकी स्थिति हो या बुद्धिजीवियोंका सवाल हो, ये लोग इन तमाम चीज़ोंको तन्त्र (सरकार) के ही सन्दर्भमें देखनेके आदी हो गये हैं। 'जन' के सन्दर्भमें भाषा, साहित्य या बुद्धिजीवीकी क्या स्थिति है, इसे उन्होंने सोचना ही बन्द कर दिया है।

यदि आप तन्त्रके वकील या पुरज़े बनकर बोलने लगते हैं, वह भी खुद अपनी अक़लसे सोचकर नहीं वरन् तन्त्रकी बातोंको 'हिज़ मास्टर्स वायस' की तरह दोहराते हुए, तो न आपमें चिन्तनकी संगति रह जाती है, न दूरदर्शिता, न संकल्प-शक्तिकी दृढ़ता। आप समझते हैं कि कभी यह और कभी वह कहकर सामान्य जनको फुसला ले जायेंगे। यह भी बहुधा आपका भ्रम साबित होता है। जनता असंगत चिन्तनवाले बुद्धिजीवियोंके मुक़ाबलेमें अपनी नियतिको समझनेमें ज्यादा सचेत साबित होती है।

होता यह है कि जब शासन संस्कृति, भाषा और साहित्यके मामलेमें कोई राष्ट्रविरोधी नीति अपनाता है तब बुद्धिजीवीका पहला कर्त्तव्य यह है कि वह सही स्थिति जनताके सामने रखे और उस नीतिके विरोधमें जनताकी आवाज़को और भी मज़बूत और बुलन्द बनाये ताकि तन्त्रकी निरंकुशता थोड़ी कम हो। लेकिन सत्तापरस्त बुद्धिजीवी बिलकुल दूसरा रुख अपनाते हैं। वे बहुधा दौड़कर मध्यस्थका 'रोल' अपनाने लगते हैं और उनका पूरा प्रयास यह होता है कि सच्ची राष्ट्रीय दृष्टिसे उठनेवाली जनताकी सशक्त आवाज़ मन्द पड़े, जनताकी संकल्प-शक्ति डावाँडोल हो, जनताके चिन्तनमें भ्रम और असंगतियाँ पैदा हों ताकि

सरकार अपनी नीति लादनेमें सफल होती रहे ।

सिद्धान्तहीन चिन्तनकी भूल-भुलैया इसी प्रकार रहबर बननेवालोंको गुमराह करती आयी है । लेकिन इससे जो ज़्यादा बड़ा नुक़सान हुआ वह यह कि जन-शक्तिके विक्षोभको उचित संगठन न मिल पाया । राहुलजीकी भाँति दलसे भी बड़ा हिन्दीको मानकर जनशक्तिके बीच जाकर खड़ा हो जानेवाला, या सरकारकी जन-विरोधी नीतिपर उसे कसकर डाँट बतानेवाला और सरकारकी निरंकुशताको दबानेके लिए हिन्दीके तत्त्वोंको संगठित करनेवाला, टण्डनजी-जैसा कोई व्यक्तित्व बुद्धिजीवियोंमें-से उभरकर न आया ।

अर्जुनने दो प्रतिज्ञाएँ की थीं : 'न दैन्यम् न पलायनम् ।' सत्तापूजक बुद्धि-जीवीकी प्रतिज्ञाएँ हैं : 'दैन्य भी पलायन भी ।' यह स्थापना कि साहित्यकारके लिए राजकीय यन्त्रके समक्ष स्वाधीन चिन्तन अनावश्यक है, यह दैन्यके बाद पलायनकी अनिवार्य स्थिति है । पलायन किसी औरसे नहीं, अपने कचोटते हुए अन्तःकरणसे ! 'जन'की नियति और गतिसे विच्छिन्न होनेकी दुःसह यन्त्रणा झेलते हुए, रेतमें शुतुरमुर्ग़की तरह सिर गाड़ लेना और घोषित करना कि हमें न इन पंखोंकी कभी जरूरत थी, न इस समय है, न आगे कभी होगी, हमारे ये अनावश्यक पंख काट लिये जायें—कितनी दयनीय है यह चिन्तन-पद्धति ! कौन बताये इन्हें कि जो पक्षी आँधी-तूफ़ानोंका सामना रेतमें सिर गाड़कर नहीं वरन् पंख फैलाकर करना चाहते हैं उनके लिए पंख अनावश्यक बोझ नहीं होते, उनके गौरव होते हैं; यही नहीं, इक़बालके शब्दोंमें वे किसी भी क़ीमतपर 'परवाज़में कोताही' सहन नहीं करना चाहेंगे ।

संक्रमण और संकटके समयमें अज्ञान बहुधा उतनी बुराइयाँ नहीं पैदा करता जितना अधूरा, उलझा हुआ लक्ष्यहीन चिन्तन । वह कायरता, निर्णय न ले पानेकी संकल्पहीनता—प्रतिक्रियाकी कुण्ठा और मौक़ापरस्तीका आधार बनने लगता है । यह चिन्तन बहुधा जिन चीज़ोंका मुखौटा लगाता है, वास्तवमें उससे बिलकुल उलटी दिशामें ले जाता है । बात यह करता है व्यवस्था और समझदारीकी, ले जाता है अराजक अवसरवादिता और नासमझीकी ओर । हिन्दीके बहुतेरे दुर्भाग्य रहे हैं पर शायद सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि जिनके हाथों हिन्दीने राजयन्त्रके समक्ष अपने प्रतिनिधित्वकी ज़िम्मेदारी सौंपी थी, उन्हें जब संकल्पपूर्वक जन-चेतनाको जगानेके लिए उठ खड़े होना

चाहिए था, तब वे सत्ताकी परिक्रमा करनेमें लगे रहे; जब उन्हें जनताको सरकारके इरादोंके प्रति सचेत करना चाहिए था तब वे सरकारके प्रति जनताके मनमें झूठा आश्वासन देकर विश्वास जगानेमें लगे रहे; और अब उनकी दृष्टि इस क़दर रुद्ध हो चुकी है कि हिन्दीके प्रति विश्वासघात भी मानसिक दैन्य और पलायनसे उन्हें मुक्त नहीं कर पा रहा है।

जो एक मूल्यहीन चिन्तनकी भूल-भुलैयामें भटक-भटककर पूर्णत: जड़ हो चुके हैं, उनकी बात जाने दीजिए। जिन्हें हर तरहकी मार खाकर भी सहयोगके अलावा कोई रास्ता नहीं सूझता, उनकी बात भी जाने दीजिए। पिंजरेमें जिनके पंख इस क़दर बेकाम और कमज़ोर हो गये हैं, कि वे उड़ानें भरनेकी कल्पना-मात्रसे सिहरकर कहने लगे हैं कि ये पंख अनावश्यक हैं, उनकी बात भी जाने दीजिए। हर युगमें ऐसा होता आया है और इतिहास ऐसे पैग़म्बरों, रहबरों और चिन्तकोंको ख़ाली डिब्बों, टूटी बोतलों और उतरे छिलकोंकी तरह सड़कके किनारे फेंककर आगे बढ़ता रहा है।

इस बीच हिन्दी भाषा और हिन्दी-प्रेमी जनताने बहुत-कुछ सीखा है। उसने यह सीखा है कि यदि तन्त्र निरंकुश होकर उसे अनावश्यक आघात पहुँचा सकता है तो वह भी तन्त्रके लिए वैधानिक अंकुशका प्रयोग कर सकती है। सहयोग या संघर्ष दोनों ही अपनेमें स्वत:सिद्ध नीतियाँ नहीं हैं। जनताने जिस तन्त्रको चुना है वह अगर उसके, उसकी संस्कृतिके, उसकी भाषाके हितमें काम करता है तो जरूर सहयोग, जिस हद तक सरकारकी नीति जनभाषाके हित की है उस सीमा तक सहयोग, लेकिन जहाँ वह अँगरेज़ीकी कुटिल पक्षपातिनी बनने लगती है वहाँ असहयोग और अगर 'तन्त्र' जनको धोखा देकर निरंकुश होकर एक विदेशी भाषाकी गुलामी हमपर लादनेको तुल जाये तो—संघर्ष! वैधानिक तरीक़ोंसे, मर्यादाके अन्दर, लेकिन पूर्ण निश्चयसे, संकल्पसे। इतिहासकी प्रमुख जनधारा नयी शक्ति पाकर दुगने वेगसे आगे बढ़ती है। हिन्दीकी जन-चेतनाको भी नयी शक्ति, निश्चित मिलेगी। वह किसी भी निरंकुश, विश्वासघाती, अँगरेज़ीका जहर फैलानेवाले सत्तारूढ़ दलको निश्चित रूपसे अंकुश और नियन्त्रणमें लाकर रहेगी—सत्तापरस्त संकल्पहीन स्वाभिमानहीन, दृष्टिहीन, झूठे मसीहों और रहबरोंके बावजूद!

● ●

भारतीविश्व
कुछ सूत्र कुछ सन्दर्भ

कुछ तथ्य : जो केवल मनोरंजनके
ही लिए नहीं, विचारके लिए भी हैं।

एक सन्देश : एक चुनौती

"मेरा स्वास्थ्य मुझे बोलनेकी अनुमति नहीं देता, फिर भी बहुत सारी बातों-मेंसे एक दो बातें कहनेका यत्न करता हूँ। बात यह है कि हिन्दीको प्रशासनके व्यवहारमें अब सम्पूर्णत: आ जाना चाहिए। बहुत देर हो चुकी है। अब और भी अधिक देरी और भी अधिक नासमझीकी बात होगी। हिन्दीके ही द्वारा सारे जन-जीवनको बाँधा जा सकता है और उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिममें फँसी हुई स्वदेशकी सम्पूर्ण सीमा तक पहुँचा भी जा सकता है। किसी नीतिकी या आदर्शकी नहीं किन्तु यह सम्पूर्ण देशके हितकी और व्यवहारकी बात है। मेरा विश्वास है—इन्दिराजीके नेतृत्वमें इस सचाईको शीघ्र ही समझा जा सकेगा।

इधर साहित्यकी बहसोंमें मतभेदोंकी चर्चा भी बहुत होती सुनाई पड़ती है। सृजनकी जब बोली बन्द हो जाती है तो बोलनेवालोंका सृजन शुरू हो जाता है। मैं नहीं मानना चाहता कि इस देशकी सर्जना इतनी असहाय है। सृजनको स्वयं बोलने दीजिए। उसके आगे-पीछे वकीलोंकी क्या ज़रूरत है।"

—रोग-शय्यापर पड़े हुए, कुछ पत्रकारोंके आग्रहपर, दिया गया श्रद्धेय श्री माखनलाल चतुर्वेदीका यह वक्तव्य बहुत सही और सामयिक है,—इतना-भर कहना या मानना काफ़ी न होगा। वास्तवमें यह गम्भीर रूपसे विचारणीय भी है। यह 'एक भारतीय आत्मा' की वाणी है हिन्दीके लिए और साथ ही नये सृजनको बोलने देनेके लिए एक मर्मस्पर्शी चुनौती भी!

• सदाबहार पी० ई० एन०

दुनियाके तमाम साहित्यकारोंकी संस्था पी० ई० एन० के ३४वें वार्षिक अधिवेशनमें एक बार फिर पुराने आदर्शको दोहराया गया है कि लेखकके अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्यको अक्षुण्ण रखना चाहिए। गोकि पी० ई० एन० का यह सुझाव अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है, किन्तु बीती हुई आधी सदीका अनुभव तो यही बताता है कि अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्यके अधिकारकी रक्षा सम्भवतः हमेशा लेखकको ही करनी पड़ती है। चाहे कितना भी प्रगतिशील समाज या राष्ट्र हो—उसमें लेखकों-द्वारा निरूपित सत्योंकी तपनको बर्दाश्त करनेकी क्षमता नहीं होती। और इसके परिणाम भी जो हुए, वे स्पष्ट हैं : लेखकोंको (और उनकी कृतियोंको भी) देश निकाला, जेलखाना, मौत तथा अन्य अनेक प्रकारकी यातनाएं सहनी-झेलनी पड़ी हैं। अतः अब तो यह भी मान लिया जाना चाहिए कि इन पीड़ाओंसे मुक्ति लेखकको कभी न होगी और यह स्वीकार करके ही उसे क़लमका सिपाही बनना चाहिए।

पी० ई० एन०-द्वारा प्रस्तुत सुझावके मुख्य प्रस्तोता प्रसिद्ध अमरीकी नाटककार आर्थर मिलरने कहा है कि "नव स्वतन्त्र एशियाई, अफ्रीकी और लैटिन-अमरीकी देशोंके साहित्यको विश्व-साहित्य मंचपर लाकर उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तरका महत्त्व देना चाहिए।" वैसे यह एक सचाई भी है कि आज मानव-जीवनकी युगान्तरकारी घटनाओं और प्रवृत्तियोंकी रंगस्थली एशियाई, अफ्रीकी और लैटिन-अमरीकी देश होनेके बावजूद दुनियापर युरॅपीय साहित्य ही छाया हुआ है। कारण इसके कुछ भी हों, उनपर विचार यहाँ अप्रासंगिक होगा। ऐसी परिस्थितिमें पी० ई० एन०-द्वारा दिया गया सुझाव युरॅपीय तथा अमरीकी लेखकोंके लिए तो और भी अधिक उपयोगी है। क्योंकि जीवनके संस्पर्शसे उनकी बीमार क़लमको स्वास्थ्य मिलेगा, उनकी जड़ता छूटेगी, और तब वे जीवनके नये आलोक-क्षितिजोंको भी देख सकेंगे!

• 'हिन्दी कखनो इंगराजीर स्थान पूर्ण करते पारे ना'

जी हाँ—'हिन्दी कखनो इंगराजीर स्थान पूर्ण करते पारे ना' अर्थात् हिन्दी कभी भी अँगरेज़ीका स्थान पूरा नहीं कर सकेगी—यह शीर्षक है एक हिन्दी विरोधी वक्तव्यका जो बंगालके प्रमुख दैनिक 'युगान्तर' के दो कॉलमोंमें प्रकाशित हुआ है। और यही क्यों—बंगला भाषाके पत्र और पत्रिकाएँ ऐसा एक भी

खबर नहीं चूकते जब किसीने हिन्दीके विरुद्ध कुछ कहा और वे मोटे शीर्षक देकर उसे न प्रकाशित करते हों। वास्तवमें इससे इतरकी हमारी अपेक्षा क्या भूल न होगी? बहरहाल, यह तो स्पष्ट ही है कि बंगालमें हिन्दीपर क़रारे व्यंग्य कसे जाते हैं, उसे हेय दृष्टिसे देखा जाता है।........

बावजूद इन तथ्योंके बंगालके ही एक अन्य दैनिक 'आनन्द बाजार पत्रिका'के ८ मईके अंकमें एक पाठकने हिन्दीके जादूका क्या असर है—यह बताते हुए लिखा है कि "........ग़ैर-सरकारी क्षेत्रोंके सभी स्थानोंकी नौकरियोंमें अँगरेज़ी और हिन्दीको प्रमुखता मिली है। व्यक्तिगत औद्योगिक प्रतिष्ठानोंमें भी नौकरी पानेके लिए अँगरेज़ीके साथ ही हिन्दीका अच्छा ज्ञान होना बहुत आवश्यक है। यह विशेषकर इसलिए कि इन प्रतिष्ठानोंके व्यावसायिक सम्बन्ध अधिकांशतया हिन्दी-भाषी प्रान्तोंके साथ हैं। इन प्रतिष्ठानोंमें जो बंगाली पहलेसे काम कर रहे हैं उनके सामने भी हिन्दी न जाननेके कारण कठिनाइयाँ आ गयी हैं।—यद्यपि बंगाली लड़कियाँ बुद्धि और कार्यक्षमतामें तेज़ होती हैं फिर भी हिन्दीकी जानकारी न होनेके कारण नौकरियोंकी प्रतिद्वन्द्विताओंमें पीछे रह जाती हैं और परिणाम यह है कि आज बंगालमें हजारों लड़कियाँ बेकार घूम रही हैं।

एक और रोचक तथ्य यह है कि केरल, मद्रास आदि अहिन्दी प्रान्तोंसे आजीविकाकी खोजमें आनेवाली लड़कियाँ जो अँगरेज़ीके साथ हिन्दीका भी अच्छा ज्ञान रखती हैं, सरकारी व ग़ैर-सरकारी स्थानोंमें प्रायः सभी नौकरियाँ पा जाती हैं। बाहरसे आनेवाली लड़कियोंकी इस प्रकारकी हिन्दीकी योग्यता देखकर स्थानीय लोगोंमें एक भयानक चिन्ता व्याप गयी है। और यही कारण है कि बंगालके लड़कों और लड़कियोंकी आजीविका खतरेमें पड़ गयी है, जिससे उन्हें बेहद परेशानी उठानी पड़ रही है।

और अब तो स्थिति यह है कि बंगालके जिन लोगोंने हिन्दीकी प्रगतिमें बाधा पहुँचायी है उनसे ये लडके-लड़कियाँ—जो नौकरी न मिलनेके कारण बेकार हैं और जिनका भविष्य अँधेरेमें है—पूछते हैं कि 'हम आजीविकाके लिए क्या करें?'

वास्तवमें यह बड़ी दुःखद स्थिति है। और कहना न होगा कि इसके लिए दोषी भी वे 'कठमुल्ले' हैं जो महज अपनी टेक पूरी करनेके लिए नयी पीढ़ीके हाथ, जाने-अनजाने, अपने हथौड़ोंकी बेपनाह चोटोंसे तोड़ रहे हैं। वैसे अब बंगालके सभी बड़े-छोटे लोग, अधिकारी, लेखक, पत्रकार अपने बच्चोंको तेज़ीसे हिन्दी पढ़ा रहे हैं—क्योंकि समयकी रास कठमुल्लोंके हाथोंसे अब धीरे-धीरे छूट रही है।

● ●

साहित्य - संगम

मध्य प्रदेश मराठी साहित्य सम्मेलन

द्वितीय अधिवेशन

विगत ८, ९ एवं १० मई को जबलपुरमें उज्जैनके वयोवृद्ध मराठी साहित्यकार श्री के० ना० डाँगेकी अध्यक्षतामें मध्यप्रदेश मराठी साहित्य सम्मेलनका द्वितीय अधिवेशन सम्पन्न हुआ। अध्यक्ष पदसे बोलते हुए श्री डाँगेने साहित्यकारोंसे अपील की कि वे देश-काल-परिस्थितिके अनुकूल साहित्यका सृजन करें।

स्वागताध्यक्ष मुख्य न्यायाधीश श्री दीक्षितने अपने स्वागत भाषणमें प्रादेशिक भाषाओं-के साहित्यके आदान-प्रदानपर जोर देकर कहा कि आज हमारा साहित्य पाश्चात्यसे प्रभावित है।

प्रथम दिनके मध्याह्नकालीन सत्रमें विषय निर्वाचन समितिने आठ विभिन्न प्रस्तावोंपर बहस की और फिर तभी खुले अधिवेशनमें समुचित मीमांसाके बाद उन्हें सर्व-सम्मतिसे पारित किया गया। प्रथम प्रस्तावमें देशकी दस महान् विभूतियोंके प्रति श्रद्धा सुमनांजलि अर्पित की गयी। शेष प्रस्तावोंमें मराठी माध्यमसे शिक्षा, म० प्र० के आकाशवाणी केन्द्रोंपर मराठीको योग्य स्थान, भोपालमें मराठी भवनकी स्थापना, राज्य स्तरीय साहित्य अकादेमीमें मराठीका सही प्रतिनिधित्व आदि थे। एक प्रस्ताव-द्वारा हालमें ही पुरस्कृत मराठी साहित्यकारोंका भी अभिनन्दन किया गया। मराठी माध्यमसे शिक्षावाले प्रस्तावमें श्रीकवीश्वरने जीवनका व्यावहारिक पक्ष उपस्थित करते हुए कहा कि मराठी माध्यमसे पढ़े लड़के-लड़कियाँ अँगरेज़ीमें होनेवाली उच्चस्तरीय प्रतियोगी परीक्षाओंमें सफल नहीं हो पाते अतः उतनी ही मराठी शिक्षा दी जाये जितनी उचित है।

दूसरे दिन सुबह आयोजित था एक अन्तर्भारतीय परिसंवाद जिसका विषय था 'भारतीय सन्त साहित्य'। इसमें पाँच भाषाओंके वक्ता बोले और अध्यक्षता की डॉ० उदयनारायण तिवारीने, बंगाली सन्त साहित्यपर संगीतका प्रभाव निरूपित करते हुए श्री सुकुमार दे ने गीतोंको महिलाओं-द्वारा गेय रूपमें प्रस्तुत किया जिसे सुनते समय श्रोताओंको यह शंका हुई कि यह परिसंवाद है अथवा संगीत-सभा। शैव और वैष्णवके ऐतिहासिक मतभेदको स्पष्ट करते हुए श्री कृष्णस्वामीने कहा कि तमिल साहित्यमें भक्तिको

विशेष महत्त्व दिया गया है। पंजाबी साहित्यका प्रतिनिधित्व करनेवाले श्री ज्ञानी गुरुदयाल-सिंह ने सन्तोंकी सेवाका वर्णन किया जब कि हिन्दी सन्त परम्पराका सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए श्री व्योहार राजेन्द्रसिंहने सभी भाषाओंके सन्तोंके उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि सन्त साहित्यकी मूल प्रेरणा एक ही है। सागरके प्रो० अडोणीने मराठी सन्त रामदास, तुकाराम, ज्ञानेश्वरका उल्लेख करते हुए बताया कि मराठी साहित्यको सन्तोंकी अपार देन है। अध्यक्ष पदसे बोलते हुए डॉ० उदयनारायण तिवारीने कहा कि सन्तोंने भावनात्मक एकता लानेमें उल्लेखनीय योगदान किया है।

नाटकोंपर सर्वप्रथम श्री पु० अ० कुलकर्णी बोले जिन्होंने कहा कि मैं तो अभिनेता हूँ, साहित्यकार नहीं। आज व्यापारिक दृष्टिकोणसे जैसी माँग होती है उसके अनुसार ही नाटकोंकी भरमार है। साहित्यकारका दायित्व है कि वह अपने प्रति ईमानदार रहकर ही साहित्यका सृजन करे। ग्वालियरके श्री पेंढरकरने आजके नाटकोंपर पाश्चात्य प्रभावकी चर्चा करते हुए कथा-कविताके विषय-वस्तुकी बात की। भोपालके प्रो० कवठेकरने बताया कि नाटक आनन्दके लिए लिखा जाता है और आजके समस्यामूलक नाटक नीरस होते हैं, मामा वरेरकरका जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि स्व० मामाने सदा नयी कथावस्तु दी तथा अत्रे नारीको घरके दायरेसे निकालकर समाजमें ले आये। आपके मतानुसार आजका नाटक न तो पूर्णतया भारतीय रहा है और न पूरी तरह पाश्चात्य हो पाया है। अन्तमें श्री गो० मो० रानाडेने आशावादी दृष्टिकोण उपस्थित कर कहा कि आजके नाटक शाश्वत मूल्य स्थापित करेंगे। आपने पार्श्व संकेतको घातक ठहराते हुए कहा कि नाटकमें अभिनय पक्षको ऊपर उठाना जरूरी है। अन्तमें अध्यक्ष पदसे श्री डाँगेने अपने जमानेके नाटकोंके संस्मरण सुनाये।

त्रिदिवसीय सम्मेलन समाप्तिकी घोषणाके बाद उसी रात मराठी कवि सम्मेलनका आयोजन था जिसकी अध्यक्षता वयोवृद्ध कवियित्री सौ० मनोरमा बाई नावलेकरने की और संयोजकका काम निभाया शरद महाजनने। इसमें-से दस कवि और छह कवियित्रियोंने रचना-पाठ किया। चन्द्रशेखर पटवर्द्धनकी कविता सशक्त मालूम पड़ी वैसे महाजन, धाँडे, खंडेकर भी अच्छे रहे। बाल कवि तुंगारकी रचना 'आई' (माँ) उसकी उम्रके लिहाजसे बहुत अच्छी थी। कवियित्रियोंमें सौ० विजयाताई जोशी, एवं सौ० चान्दोरकरकी रचनाएँ प्रभावशाली थीं जब कि सौ० शिवलकरकी रचना अच्छी होने पर प्रस्तुतीकरणकी कमजोरी-के कारण नहीं जम पायी। मराठी मंचपर उर्दू पाठ हुआ परन्तु मराठी-भाषी, हिन्दी कविको हिन्दी रचनाको अनुमति न दी जा सकी।

—शरद मोझरकर

● ●

पत्र-मंच

यथातथ्यता और विशुद्धताकी आवश्यकता

(अप्रैल '६६ की ज्ञानपीठ पत्रिकामें पृष्ठ २०–२३ पर श्री सोमशेखर सोमके लेख 'कन्नड़का कहानी साहित्य पर एक प्रतिक्रिया)

हिन्दी मासिक 'ज्ञानपीठ पत्रिका'का एक वर्षसे पाठक और तीन वर्षोंसे कन्नड़ साहित्यका विद्यार्थी होनेके नाते मैं आश्चर्यचकित हूँ। इस आश्चर्यका कारण है अप्रैल '६६की पत्रिकामें प्रकाशित श्री सोमशेखर सोमका लेख 'कन्नडका कहानी साहित्य'। मैं जो कुछ कहने जा रहा हूँ वह मेरा सुझाव नहीं बल्कि भ्रम-निवारणके लिए जरूरी तथ्य हैं।

कहा गया है कि कन्नड़ कहानी साहित्यका प्रारम्भ श्री पंजे मंगेश रावसे हुआ और वे कन्नड़ कथा-साहित्यके जनक हैं, इस सम्बन्धमें यह ज्ञातव्य है कि श्री केरूर वासुदेवाचार्य, श्री पंजे और श्री एम० एन० कामथके सम्मिलित प्रयासोंसे ही कन्नड़ कथा-साहित्यका आविर्भाव हुआ। बादमें अवश्य मास्ति वेंकटेश अय्यंगार 'श्री निवास'के रेखाचित्रों और कथाओं-द्वारा कन्नड़ साहित्यका रूप-शिल्प एक निश्चित दिशा पा गया। यह सर्वस्वीकृत है कि श्री मास्ति कन्नड़-कथाके जनक हैं न कि श्री पंजे (प्रथम पैराग्राफकी तृतीय पंक्तिमें जो मंजे हैं वह श्री पंजे होना चाहिए था, द्वितीय पैराग्राफकी द्वितीय पंक्तिमें मारुति है वह होना चाहिए था श्री मास्ति)। यह सर्वमान्य है कि श्री मास्तिकी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं—'हेमकूटदिन्द हिन्दिरुगि बन्द मेले' और 'सारिपुत्रके अन्तिम दिन' न कि 'माया'।

विस्मयकर तो यह है कि श्री आनन्दका नाम छोड़ दिया गया है, जिनका नाम श्री मास्तिके पश्चात् ही है और वे दूसरे सर्वश्रेष्ठ कन्नड़ कथाकार हैं। समग्र लेखमें श्री आनन्दका नामोल्लेख कहीं भी नहीं हुआ है। श्री सोमने लिखा है—

'कन्नड़ कथा-साहित्यमें दूसरा महत्त्वपूर्ण नाम श्री आनन्दकन्दका है जो हमारे बीचसे दो वर्ष पहले ही चले गये।' प्रथमतः, कन्नड़ कथा-साहित्यका कोई भी पाठक या विद्यार्थी इस तथ्यको नहीं स्वीकार कर सकता। वे स्वर्गीय श्री आनन्द (ए० सीताराम) हैं जिनका नाम द्वितीय सर्वश्रेष्ठ कथाकारके स्थानपर है न कि श्री आनन्दकन्द (बी० कृष्ण शर्मा)। द्वितीयतः श्री आनन्दकन्द अभी हमारे बीचमें हैं और वह श्री आनन्द थे जो हमारे बीच अब नहीं रहे। इसीसे लेखक-की जानकारीके बारेमें साफ़ पता चल जाता है। श्री आनन्दकी कहानियाँ अपनी अभिव्यंजना, कथापरकता, कथ्यकी विशिष्ट तकनीकके लिए कन्नड़ कथा-साहित्यमें मणि-रत्नकी तरह जगमगाती हैं। आनन्दने ही १८३० में कन्नड़ कथा-साहित्यका मार्ग प्रशस्त किया, विकासके नये क्षितिज दिये। उनकी सर्वश्रेष्ठ कथाकृतियाँ हैं 'नन्नु कोण्डु हुडिगि', 'कोण एन्तने', और 'पत्नीका पत्र'। उनके तीन कथा-संग्रह हैं १. कुछ कहानियाँ, २. मातगटि और अन्य कहानियाँ, ३. चन्द्रग्रहण और अन्य छोटी कहानियाँ। पहले और दूसरे संग्रहमें पाँच-पाँच कथाएँ संग्रहीत हैं और तीसरे संग्रहमें चार कहानियाँ।

छूटनेवाले प्रमुख कहानीकारोंमें-से इनके नाम जोड़े जा सकते हैं—चतुरंग, भारतीप्रिय, कुवेम्पु, एस० वी० सीतारमैय्या, अनन्तनारायण और स्वर्गीया गौरम्मा। श्री चतुरंगके तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। श्री चतुरंगकी श्रेष्ठ कथाकृतियाँ हैं—शवद मने (लाश घर), इणिकु नोट (ताक-झाँक और काली) आदि। भारतीप्रियका संग्रह है—रुद्रवीणा। श्री चतुरंग और भारतीप्रियकी ख्याति कन्नड़ साहित्यमें काफ़ी है। एम० वी० सीतारमैय्याकी 'बिसिलु-बेलदिंगलु,' कुवेम्पुका 'मोनाक्षी मने मेमेस्ट्रु', अनन्तनारायणका 'बेलुदिङ्गल राष्ट्रीयलिल' और स्वर्गीया गौरम्माका 'कम्बनि'। ये सभी संग्रह लोकप्रिय हैं। श्री केरूर-द्वारा सम्पादित पत्रिकाका नाम 'शुभोदय' है 'शुमोदय' नहीं।

अन्ततोगत्वा यह कहा जा सकता है कि अन्य भाषा-भाषियोंके समक्ष श्री सोमका लेख कन्नड़ साहित्यका एकांगी परिचय प्रस्तुत करता है। उसमें प्रचारात्मक अन्विति (इम्प्रेशन ऑव प्रोपेगेण्डा) नहीं होनी चाहिए थी, प्रमुख कृतिकारोंके नाम अनुल्लिखित नहीं होने थे—इसके कारण तो वह विषय, लेखकों और कन्नड़ साहित्यके प्रति अन्याय करता है।

—एम० वी० वी० वेंकटेश कृष्णमूर्ति 'विद्यार्थी', बंगलोर

• —और समाधान

भाई श्री 'विद्यार्थी' जीकी टिप्पणी पढ़ी। सच कहता हूँ, पढ़कर बहुत दुःख हुआ। मुझसे कुछ त्रुटियाँ अवश्य ही अनजाने हो पायी हैं, एतदर्थ मैं क्षमा चाहता हूँ। प्रस्तुत टिप्पणीका समाधान मैं इस प्रकार करना चाहूँगा।

मैंने श्री पंजे मंगेशरायजीको इसलिए कन्नड़ कहानी-साहित्यका जनक माना है कि उन्होंने ही कहानी साहित्यकी नींव डाली है। मैंने आगे जाकर लेखमें लिखा है कि "कहना आवश्यक है कि कन्नड़ कथा-साहित्यको यदि वास्तविक स्वरूप किसीसे प्राप्त हुआ है, तो वह 'श्रीनिवास' जीकी ही कहानियोंसे।—श्रीनिवासजी कन्नड़ साहित्यके सम्राट् हैं।" 'विद्यार्थी' जीने 'जनक' शब्दका अर्थ जिस रूपमें लिया है, वह शायद मेरा नहीं। पूरे लेखको पढ़नेके पश्चात् पाठकोंको यही भास होता है कि श्री श्रीनिवासजी ही कन्नड़ साहित्यके अद्वितीय कहानीकार हैं।

मैंने अपने लेखमें कन्नड़ कहानी-साहित्यकी एक संक्षिप्त झाँकी-मात्र प्रस्तुत की है। अतः यदि कहीं किसी कहानीकारका नाम छूट गया हो, या अनेक कहानियोंके नामोल्लेख नहीं हो पाये हैं, तो केवल पत्रिकाकी सीमाएँ सामने रखनेके कारणवश वैसा हो पाया है। 'पत्रिका'के लिए यह मेरा सर्वप्रथम लेख था तथा मैंने लेख, विशेषतः संक्षिप्त रूपमें लिखा था। जहाँतक 'माया' कहानीकी श्रेष्ठताकी बात है, वह मेरे दृष्टिकोणपर निर्भर है।

श्री आनन्द तथा श्री आनन्दकन्दके नामोंके उल्लेख करनेमें मेरी बहुत बड़ी भूल हुई है। कारण यह है कि मेरे मनमें श्री आनन्दजीपर लिखना था, पता नहीं कि कैसे मैं श्री आनन्दके स्थानपर आनन्दकन्द लिख गया। इस असावधानीपर मैं अवश्य लज्जित हूँ। पंजेके स्थानपर मंजे, शुभोदयके स्थानपर शूमोदय, तथा मास्तीके स्थानपर मारुती प्रकाशित हुए हैं जो प्रेसके कारण हैं।

मैं श्री 'विद्यार्थी' जीका आभारी हूँ कि उन्होंने मेरे लेखको पढ़नेका कष्ट किया और मेरे ध्यानको, अनजानेमें हुई भूलोंपर, आकृष्ट किया।

—सोमशेखर 'सोम', बंगलोर-११

• •

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका तथा भारतीय भाषाओंकी सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर प्रतिवर्ष एक लाख रुपये पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका विशिष्ट संस्था



भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्यका निर्माण

श्रेष्ठ
उपयोगी
संग्रहणीय
प्रकाशन

संस्थापक

श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा

श्रीमती रमा जैन

प्रधान कार्यालय

९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

विक्रय केन्द्र

३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

○

लोकोदय ग्रन्थमाला

•

राष्ट्रभारती

२२४ प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी	सं०—दिनकर सोनवलकर	४.००
२०७ प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी दो	नानक सिंह	४.००
२०४ प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी दो	प्रो० ना० सी० फड़के	४.५०
१९० प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी एक	कर्तारसिंह दुग्गल	३.५०
१९१ प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी	सं०—अनिलकुमार	४.००
१६८ प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु	नार्ल वेंकटेश्वर राव	३.५०
१७० प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला	'परशुराम'	३.००
१७१ प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी एक	व्यंकटेश दि० माडगूलकर	४.००

उपन्यास

२२५ अठारह सूरजके पौधे	रमेश बक्षी	३.००
१६४ सूरजका सातवाँ घोड़ा [च० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	२.००
२१५ जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	३.५०
१५४ पीले गुलाबकी आत्मा [द्वि० सं०]	विश्वम्भर 'मानव'	४.००
७९ गुनाहोंका देवता [आठवाँ सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	५.००
५५ रक्त-राग [द्वि० सं०]	देवेशदास आइ०सी०एस्०	३.००
५१ तीसरा नेत्र [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	२.५०
१९९ जो	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
१६९ महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सुनें !!	'भिक्खु'	२.२५
१३७ पलासीका युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	३.५०
१४३ अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय	३.००
८० शतरंजके मोहरे [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अमृतलाल नागर	६.००
९५ शह और मात	राजेन्द्र यादव	४.००

११३ राजसी	देवेशदास आइ०सी०एस्०	२.५०
६२ संस्कारोंकी राह [पुरस्कृत]	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०
१२६ ग्यारह सपनोंका देश	सं०—लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००
१ मुक्तिदूत [द्वि० सं०]	वीरेन्द्रकुमार जैन	५.००

कहानी

२२९ सवेरा संघर्ष गर्जन	डॉ. भगवतशरण उपाध्याय	७.००
२२७ मुरदा सराय	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	४.००
१३३ खोयी हुई दिशाएँ [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	२.५०
२ दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ [द्वि. सं.]	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	३.००
१९५ झाड़ी	श्रीकान्त वर्मा	३.००
१६६ मेज़पर टिकी हुई कुहनियाँ	रमेश बक्षी	३.५०
६० कालके पंख [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
३० खेल खिलौने [द्वि० सं०]	राजेन्द्र यादव	२.००
११९ बोस्ताँ [द्वि० सं०]	शेख़ सादी	२.५०
६३ जय-दोल [तृ० सं०]	अज्ञेय	३.००
१४२ ज़िन्दगी और गुलाबके फूल	उषा प्रियंवदा	२.५०
८९ अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
८५ कर्मनाशाकी हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.००
१३१ सूने अँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.००
१११ प्यारके बन्धन	रावी	३.२५
८२ मोतियोंवाले [पुरस्कृत]	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
६९ हरियाणा लोकमंचकी कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२.५०
६५ मेरे कथागुरुका कहना है : १	रावी	३.००
१०४ मेरे कथा गुरुका कहना है : २	रावी	३.००
३५ पहला कहानीकार [पुरस्कृत]	रावी	२.५०
३४ संघर्षके बाद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विष्णु प्रभाकर	३.००
४८ नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
३७ अतीतके कम्पन [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००

२०	आकाशके तारे : धरतीके फूल [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.१०
५०	नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
५४	कुछ मोती कुछ सीप [द्वि०सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
४३	जिन खोजा तिन पाइयाँ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
१२	गहरे पानी पैठ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
९४	एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००
११५	ऑस्कर वाइल्डकी कहानियाँ	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
१३९	लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.००

कविता

२२८	शहर अब भी सम्भावना है	अशोक वाजपेयी	३.००
६४	लेखनी-बेला [द्वि० सं०]	वीरेन्द्र मिश्र	३.००
२२०	इतिहास-पुरुष	डॉ० देवराज	३.५०
१२०	देशान्तर [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	१२.००
२१८	अन्धा चाँद	मुनि रूपचन्द	३.००
२०१	चाँदका मुँह टेढ़ा है [द्वि० सं०]	मुक्तिबोध	८.००
२०८	आत्मजयी	कुँवरनारायण	३.५०
८६	कनुप्रिया [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.००
१९४	हम विषपायी जनम के [द्वि० सं०]	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१६.००
११८	वेणु लो गूँजे धरा [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
२०३	चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन	३.००
२०२	संक्रान्त	डॉ० कैलाश वाजपेयी	३.००
१९६	हिम-विद्ध	डॉ० जगदीश गुप्त	३.००
१८६	बीजुरी काजल आँज रही	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
१८५	अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	३.००
१७८	रत्नावली	हरिप्रसाद 'हरि'	२.००
६८	वाणी [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
६६	सौवर्ण [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	३.५०
१४६	आँगनके पार द्वार [अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत]	अज्ञेय	३.००
१३४	वीणापाणिके कम्पाउण्डमें	केशवचन्द्र वर्मा	३.००

१२२ रूपाम्बरा	सं०—अज्ञेय	१२.००
८८ अनुक्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
८९ तीसरा सप्तक [द्वि० सं०]	सं०—अज्ञेय	५.००
९० अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	४.००
९१ सात गीत-वर्ष [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.५०
१२७ आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.००
९ पंच-प्रदीप	शान्ति मेहरोत्रा	२.००
८ मेरे बापू	तन्मय बुखारिया	२.५०
३९ धूपके धान [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.००
१३ वर्द्धमान [महाकाव्य पुरस्कृत]	अनूप शर्मा	६.००

शाइरी

१५८ गंगोजमन [द्वि० सं०]	'नज़ीर' बनारसी	३.००
३६ शाइरीके नये मोड़ : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
३७ शाइरीके नये मोड़ : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१५६ शाइरीके नये मोड़ : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७५ शाइरीके नये मोड़ : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७७ शाइरीके नये मोड़ : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१३८ नग़मए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
७२ शाइरीके नये दौर : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७३ शाइरीके नये दौर : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१०४ शाइरीके नये दौर : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
११० शाइरीके नये दौर : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१४१ शाइरीके नये दौर : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२४ शेर-ओ-सुख़न : भाग—१ [द्वि०सं०पु०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
२६ शेर-ओ-सुख़न : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२७ शेर-ओ-सुख़न : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२८ शेर-ओ-सुख़न : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००

३१	शेर-ओ-सुख़न : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
५	शेर-ओ-शाइरी [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
११९	ग़ालिब	श्री रामनाथ 'सुमन'	८.००
९२	मीर	श्री रामनाथ 'सुमन'	६.००

नाटक

९८	जनम क़ैद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.००
२१९	प्रेत	इब्सेन, अनु० नेमिचन्द्र जैन	२.२५
७५	बारह एकांकी [द्वि० सं०]	विष्णु प्रभाकर	४.००
१६७	घाटियाँ गूँजती हैं [तृ० सं०]	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	२.५०
२०५	नाटक बहुरूपी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.५०
१७२	आदमीका ज़हर	लक्ष्मीकान्त वर्मा	३.००
१७	रजत रश्मि [द्वि० सं० पुरस्कृत]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
१५५	तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ	परिपूर्णानन्द वर्मा	४.००
१००	सुन्दर रस [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	१.५०
१३२	नाटक बहुरंगी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	४.५०
७८	कहानी कैसे बनी ?	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
५३	पचपनका फेर [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विमला लूथरा	३.००
५९	तरकशके तीर	श्रीकृष्ण	३.००
४७	और खाई बढ़ती गयी [पुरस्कृत]	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०
६७	चेख़ॅवके तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
१०१	कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ० भगवतशरण उपा०	३.५०
१०६	सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	२.००
१०८	भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०

विधा-विविधा

१५०	खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति मेहरोत्रा	४.५०
१४९	अंकित होने दो	अजित कुमार	४.००
८७	काठकी घण्टियाँ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	७.००

१०२ सीढ़ियोंपर धूपमें	रघुवीर सहाय	४.००
१२५ पत्थरका लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	३.००

रुचिर-कलात्मक

१६२ शैशवांकन		१२.००
१६१ परिणय गीतिका	सं०—रमा जैन, कुन्था जैन	५.००

ललित-निबन्धादि

२१६ कुछ निबन्ध	अक्षयकुमार जैन	२.५०
१८३ क्षण बोले कण मुसकाये [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
२११ चिन्तककी लाचारी	माखनलाल चतुर्वेदी	४.००
१९७ एक साहित्यिककी डायरी [द्वि० सं०]	गजानन माधव मुक्तिबोध	२.५०
११७ अमीर इरादे ग़रीब इरादे [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	२.००
१८१ हम सब और वह	दयानन्द वर्मा	२.००
१८० बातें, जिनमें सुगन्ध फूलोंकी	अहमद सलीम	३.००
१६५ महके आँगन चहके द्वार	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
१६३ शिखरोंका सेतु	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.५०
५७ बाजे पायलियाके घुँघरू [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
१४८ फिर बैतलवा डालपर	विवेकी राय	३.५०
१४७ आँगनका पंछी और बनजारा मन	डॉ० विद्यानिवास मिश्र	३.००
१२८ नये रंग नये ढंग	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.००
७१ बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०
१२३ काग़ज़की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.५०
१११ सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
९६ वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२.५०
१०३ ठूँठा आम	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.००
२१ हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान [द्वि. सं.]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	१.००
७० ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१.००
४६ क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२.५०

५६	माटी हो गयी सोना [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	२.००
२५	ज़िन्दगी मुसकरायी [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००

यात्रा-विवरण

१८७	चीड़ोंपर चाँदनी	निर्मल वर्मा	३.००
१३०	एक बूँद सहसा उछली	अज्ञेय	७.००
८४	पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३.००
९९	सागरकी लहरोंपर	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
१३६	हरी घाटी	डॉ० रघुवंश	४.५०

संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी

७४	दीप जले शंख बजे [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	३.००
१६२	समयके पाँव [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
२१	रेखाचित्र [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००
१२४	पराड़करजी और पत्रकारिता [पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	५.५०
१०९	आत्मनेपद	अज्ञेय	४.००
११४	माखनलाल चतुर्वेदी	'बरुआ'	६.००
१५	जैन-जागरणके अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१९	संस्मरण [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
१६	हमारे आराध्य [पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००

आलोचना, अनुसन्धान, रचना-शिल्प

२१४	नये प्रतिमान : पुराने निकष	लक्ष्मीकान्त वर्मा	७.००
१५२	अपभ्रंश भाषा और साहित्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	१०.००
२२१	विवेकके रंग	सं०-डॉ०देवीशंकर अवस्थी	७.००
२२३	घरेलू इलाज	वैद्यरत्न च० गो० ठक्कुर	२.००
१८९	हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि	डॉ० प्रेमसागर जैन	१२.००
१९३	भाषा और संवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.५०
१८८	हिन्दी गीतिनाट्य	कृष्ण सिंहल	४.००
१७४	साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य	डॉ० रघुवंश	५.००

१५७ जैन भक्ति-काव्यकी पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमसागर जैन	६.००
१३५ रेडियो वार्ता-शिल्प	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	२.००
४१ रेडियो नाट्य-शिल्प [द्वि० सं०]	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	३.००
३८ ध्वनि और संगीत [द्वि० सं०]	ललितकिशोर सिंह	४.५०
१८ भारतीय ज्योतिष [च० सं०]	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	८.००
८३ प्राचीन भारतके प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०
४५ संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००
४८ संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन [द्वि.सं.]	डॉ० भोलाशंकर व्यास	५.००
१२९ हिन्दी नवलेखन	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.००
११२ मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
४२ शरत्‌के नारी-पात्र	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.५०
४४ हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : १	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०
४९ हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : २	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०

इतिहास-राजनीति

१४५ भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०]	डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१०.००
१९८ भारतीय संस्कृतिका विकास : वैदिक धारा	डॉ० मंगलदेव शास्त्री	७.००
१२१ समाजवाद	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५.००
३६ कालिदासका भारत : भाग १ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००
४० कालिदासका भारत : भाग २ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
३२ चौलुक्य कुमारपाल [द्वि०सं० पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.५०
५२ एशियाकी राजनीति	परदेशी	६.००
१०७ इतिहास साक्षी है	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
२३ खोजकी पगडण्डियाँ [द्वि० सं० पुरस्कृत]	मुनि कान्तिसागर	४.००
२२ खण्डहरोंका वैभव [द्वि० सं०]	मुनि कान्तिसागर	६.००

दार्शनिक-आध्यात्मिक

२१७ तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो	मुनि नथमल	२.००
२१२ क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?	आचार्य तुलसी	२.००

३३	अध्यात्म-पदावली [तृ० सं०]	डॉ० राजकुमार जैन	४.५०
२०६	दर्शन अनुचिन्तन	गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	३.००
२००	तान्त्रिक साधना	माधव पुण्डलीक पण्डित	१.५०
१०	भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२.००
७	वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६.००

सूक्तियाँ

१४०	सन्त-विनोद [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	२.५०
१८२	भाव और अनुभाव [द्वि० सं०]	मुनि नथमल	२.००
११	ज्ञानगंगा : भाग १ [द्वि०सं०]	नारायणप्रसाद जैन	६.००
११६	ज्ञानगंगा : भाग २	नारायणप्रसाद जैन	६.००
६१	शरतकी सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
९३	कालिदासके सुभाषित	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००

हास्य-व्यंग्य

२२२	बक रहा हूँ जुनूनमें	प्रकाश पण्डित	३.००
२०९	सिकन्दरनामा	सलमा सिद्दीक़ी	२.००
१३३	आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य [द्वि० सं०]	सं० — केशवचन्द्र वर्मा	४.००
१६०	तेलकी पकौड़ियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० प्रभाकर माचवे	२.००
१७६	जैसे उनके दिन फिरे [द्वि० सं०]	हरिशंकर परसाई	२.५०
१८४	काग़ज़के फूल शब्द : भारतभूषण अग्रवाल,	चित्र : प्रभाकर माचवे	३.००
१७९	चाय पार्टियाँ	सन्तोषनारायण नौटियाल	२.००
१५३	हास्य मन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	६.००
१०५	मुर्ग़-छाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	२.००
९७	अंगदका पाँव	श्रीलाल शुक्ल	२.५०

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर और साथमें दिया ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा। जैसे : 'सूरजका सातवाँ घोड़ा' के लिए 'लो' — १६४' मात्र।



मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला

तत्वज्ञान और सिद्धान्तशास्त्र

१ समयसार [प्राकृत-अँगरेज़ी]
मूल : आचार्य कुन्दकुन्द; सं०-अनु० : प्रो० ए० चक्रवर्ती ८.००

१० तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग १
२० तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग २
मूल : भट्ट अकलंक; सम्पादन : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य २४.००

१३ सर्वार्थसिद्धि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य पूज्यपाद; सं०-अनु० : पं०फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री १२.००

१० पंचसंग्रह [प्राकृत-हिन्दी] १५.००
संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री १५.००

८ जैन धर्मामृत [संस्कृत-हिन्दी]
संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री ३.००

जैन न्याय और कर्मग्रन्थ

११ कर्मप्रकृति [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य नेमिचन्द्र, सम्पादन : पं० हीरालाल शास्त्री ६.००

३० सत्यशासन-परीक्षा [संस्कृत]
मूल : आचार्य विद्यानन्द; सम्पादन : गोकुलचन्द्र जैन ५.००

२२ सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग १
२३ सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग २
मूल : भट्ट अकलंक और अनन्तवीर्य; सम्पादन : डॉ०महेन्द्रकुमार ३०.००

३ न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग १
१२ न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग २
मूल : भट्ट अकलंक और वादिराज सूरि; सं० : डॉ०महेन्द्रकुमार ३०.००

४ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग २
मूल : भगवन्त भूतबलि; सं०-अनु० : पं०फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ११.००

५ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ३ ११.००
६ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ४ ११.००
७ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ५ ११.००
८ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ६ ११.००
९ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ७ ११.००

आचारशास्त्र, पूजा और व्रत-विधान

२८ उपासकाध्ययन [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : सोमदेव सूरि, सं०-अनु० : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री १२.००

३ वसुनन्दि श्रावकाचार [प्राकृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य वसुनन्दि; सं०-अनु० : पं० हीरालाल शास्त्री ५.००

७ ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि [हिन्दी]
संकलन-सम्पादन : डॉ० आ०ने० उपाध्ये व फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ४.००

१९ व्रततिथिनिर्णय [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ३.००

६ मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन [हिन्दी]
लेखक : पं० नेमिचन्द्र शास्त्री २.००

व्याकरण, छन्दशास्त्र और कोश

१७ जैनेन्द्र महावृत्ति [संस्कृत]
मूल : आचार्य अभयनन्दि; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी १५.००

५ सभाष्य रत्नमञ्जूषा [संस्कृत]
मूल : अज्ञात; सम्पादन : श्री हरि दामोदर वेलणकर २.००

६ नाममाला सभाष्य [संस्कृत]
मूल : कवि धनंजय—अमरकीर्ति; सम्पादन : पं०शम्भुनाथ त्रिपाठी ३.५०

पुराण-साहित्य

२७ हरिवंशपुराण [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १६.००

८ आदिपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १

९ आदिपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य २०.००
१४ उत्तरपुराण [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य गुणभद्र; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १०.००
२१ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
२४ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
२६ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३
मूल : आचार्य रविषेण; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ३०.००
१५ पुराणसार-संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
१६ पुराणसार-संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
मूल : आचार्य दामनन्दि; सं०-अनु० : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी ४.००

चरित व काव्य-ग्रन्थ

६ सुगन्धदशमी कथा : सं० डॉ० हीरालाल जैन ११.००
४ करकण्डुचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]
मूल : कनकामर, सं०-अनु० : डॉ० हीरालाल जैन १०.००
२९ भोजचरित्र [संस्कृत]
मूल : राजवल्लभ, सम्पा० : डॉ० छावड़ा, शंकरनारायणन् ८.००
५ मयणपराजयचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]
मूल : कवि हरिदेव; सम्पादन और अनुवाद : डॉ० हीरालाल जैन ८.००
१ मदनपराजय [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : नागदेव; सं०-अनु० : डॉ० राजकुमार जैन साहित्याचार्य ६.००
१ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग १
२ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग २
३ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग ३
मूल : कवि स्वयम्भू; सं०-अनु० : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन ९.००
१८ जीवन्धरचम्पू [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : कवि हरिचन्द्र

सम्पादन, अनुवाद और टीका : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य 8.00

१ जातकट्ठकथा [पाली]
सम्पादन : भिक्षु धर्मरक्षित 9.00

५ धर्मशर्माभ्युदय [हिन्दी]
अनुवादक : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य 3.00

ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र

२५ भद्रबाहु संहिता [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य भद्रबाहु; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य 8.00

७ केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य 4.00

२ करलक्खण [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी 0.75

विविध

९ वर्ण, जाति और धर्म [हिन्दी]
लेखक : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री 3.75

११ जिनसहस्रनाम [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री 4.00

१ थिरुकुरल [तमिल]
सम्पादन : ए० चक्रवर्ती 5.00

१ आधुनिक जैन कवि [हिन्दी]
संकलन-सम्पादन : श्रीमती रमा जैन 3.75

२ कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची
संकलन-सम्पादन : पं० के० भुजबली शास्त्री 13.00

माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला

पुराण

३७ महापुराण [अपभ्रंश] आदिपुराण : भाग १
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य 10.00

४१ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग २
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य १०.००
४२ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग ३
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य ६.००
२९ पद्मपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल १.५०
३० पद्मपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल २.००
३१ पद्मपुराण [संस्कृत] भाग ३
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल २.००
३२ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल २.००
३३ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल १.५०

शिलालेख

२८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
सम्पादन : पं० श्री हीरालाल जैन २.००
४५ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति ८.००
४६ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति १०.००
४८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ४
सम्पादन : डॉ० जोहरापुरकर ७.००

चरित, काव्य और नाटक

४० वरांगचरित [संस्कृत]
मूल : श्री जटासिंहनन्दि; सम्पादन : डॉ० आदिनाथ उपाध्ये ३.००
३५ जम्बूस्वामीचरित [संस्कृत]
मूल : पं० राजमल्ल; सम्पादन : श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री १.५०

८ प्रद्युम्नचरित [संस्कृत]
मूल : श्री महासेन; सम्पादन : पं० मनोहरलाल, रामप्रसाद शास्त्री .५०
रामायण [अपभ्रंश] (अलगसे)
मूल : महाकवि पुष्पदन्त २.५०
२७ पुरुदेवचम्पू [संस्कृत]
मूल : श्रीमदर्हद्दास; सम्पादन : श्री जिनदास शास्त्री .७५
४३ अंजनापवनंजय [नाटक]
मूल : श्री हस्तिमल्ल : सम्पादन—वासुदेव पटवर्धन ३.००

जैन-न्याय

३८ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ८.००
३९ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ८.५०
४७ प्रमाणप्रमेयकलिका [संस्कृत]
मूल : श्री नरेन्द्रसेन; सम्पादन : पं० दरबारीलाल कोठिया १.५०

सिद्धान्त, आचार और नीतिशास्त्र

२१ सिद्धान्तसारादि [प्राकृत-संस्कृत]
मूल : श्री जिनेन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी १.५०
२० भावसंग्रहादि [प्राकृत-संस्कृत]
मूल : देवसेनसूरि; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी २.२५
२५ पञ्चसंग्रह [संस्कृत]
मूल : श्री अमितगति सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल .८१
३६ त्रिषष्टिस्मृतिसार [संस्कृत, मराठी अनुवाद]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : मोतीलाल .५०
४४ स्याद्वादसिद्धि [संस्कृत, हिन्दी-सारांश]
मूल : श्री वादीभसिंहसूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल १.५०
२४ रत्नकरण्डश्रावकाचार [मूल, संस्कृत टीका]
मूल : श्री स्वामी समन्तभद्र; टीका : श्री प्रभाचन्द्राचार्य २.००

● ●



शतरंज के मोहरे

• •

अमृतलाल नागर

का

अप्रतिम उपन्यास

यह यथार्थमें एक ऐतिहासिक उपन्यास है जो सवा डेढ़ सौ वर्ष पहलेकी नवाबी और ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी नीतियोंका प्रारम्भिक इतिहास-सा प्रस्तुत करता है। चित्र इतने व्यापक और सजीव हैं कि आप उपन्यासकी रसधारमें बहते चले जायेंगे, और पात्र ऐसे सच्चे और जीवन्त कि अनेककी स्मृति मनपर छायी रहेगी। दूसरा संस्करण।

मूल्य ६.००



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता * दिल्ली * वाराणसी

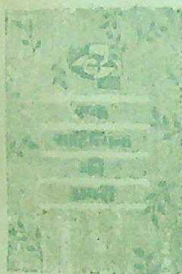
भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसीसे मुद्रित।



चाँद का मुँह टेढ़ा है

● ●

मुक्तिबोधकी कविताओंका प्रथम और एकमात्र संग्रह, जो हिन्दी काव्यकी नयी प्रखरता, क्षमता और युगबोधको सचेष्टताका प्रयोग ही नहीं, नयी उपलब्धियों-का भी मानक है। नया दूसरा संस्करण। ८.००



एक साहित्यिककी डायरी

● ●

स्व० मुक्तिबोधकी हिन्दीमें अपने प्रकारकी अकेली डायरी-रचना। जिसमें अनूठे ललित निबन्ध तो हैं ही, समकालीन साहित्यपर लेखकका विशिष्ट निजी चिन्तन भी मुखर है। नया दूसरा संस्करण। २.५०

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

भारतीय ज्ञान[illegible]
द्वारा
प्रकाशित
गजानन माधव मु[illegible]
की
महत्त्वपू[illegible]
दो कृति[illegible]
●
पठनीय
एवं
संग्रहणीय



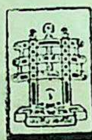
भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित
ज्ञान-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा प्रवृत्ति
और उपलब्धि-परिचायिनी मासिकी



वर्ष पाँच : अंक एक
अगस्त १९६६

ज्ञानपीठ पत्रिका

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन



भारतीय ज्ञानपीठ

सांस्कृतिक जागरण
साहित्यिक विकास-उन्नयन
राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी
साधिका विशिष्ट संस्था

• •

संस्थापक : श्री शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा : श्रीमती रमा जैन

कार्यालय :
कलकत्ता, दिल्ली, वाराणसी

ज्ञानपीठ पत्रिका

वर्ष पाँच : अंक एक
अगस्त १९६६

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जगदीश

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

मूल्य : छह रुपये वार्षिक, पचपन पैसे प्रति; द्विवार्षिक : ग्यारह रुपये

समाज-शिक्षा विभाग, राजस्थान-द्वारा उच्च, उच्चतर विद्यालय तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंके लिए प्रस्वीकृत

कविताका प्राण
प्राणकी कविता

कविकी कृति उस सजीव कविताका शब्द-चित्र
मात्र होती है जिससे उसका व्यक्तित्व और
संसारके साथ उसकी एकता जानी
जाती है

महादेवी वर्मा

कवि एक संसारमें रहता है और उसने अपने भीतर इस संसारसे अधिक सुन्दर, अधिक सुकुमार एक और संसार बसा रखा है। मनुष्यमें जड़ और चेतन दोनों एक प्रगाढ़ आलिंगनमें आबद्ध रहते हैं। उसका बाह्याकार पार्थिव और सीमित संसारका भाग है और अन्तस्तल अपार्थिव असीमका—एक उसको विश्वसे बाँध रखता है तो दूसरा उसे कल्पना-द्वारा उड़ाता ही रहना चाहता है।

जड़ चेतनके बिना विकास-शून्य है और चेतन जड़के बिना आकार शून्य। इन दोनोंकी क्रिया और प्रतिक्रिया ही जीवन है। चाहे कविता किसी भाषा या वादके अन्तर्गत हो, चाहे उसमें पार्थिव विश्वकी अभिव्यक्ति हो, चाहे अपार्थिव की और चाहे दोनोंके अविच्छिन्न सम्बन्धकी, उसके अमूल्य होनेका रहस्य यही है कि वह मनुष्यके हृदयसे प्रवाहित हुई है। कितनी ही भिन्न परिस्थितियों होनेपर भी हम हृदयसे एक ही हैं। यही कारण है कि दो मनुष्योंके देश, काल, समाज आदिमें समुद्रके तटों-जैसा अन्तर होनेपर भी वे एक-दूसरेके हृदयंगत भावोंको समझनेमें समर्थ हो सकते हैं। जीवनकी एकताका यही छिपा सूत्र ही कविताका प्राण है। • •

आजकी कविता चमत्कारकी आतिशबाज़ी ?

आजके कविको परम्पराओंसे नहीं समस्याओंसे संघर्ष कर दायित्वका निर्वहन करना होगा

रामधारी सिंह 'दिनकर'

अक्सर लोग पूछते हैं : हिन्दी कविताको क्या हो गया है कि इतनी दुबली है? मैं कह देता हूँ : चुस्तीके लिए ! आजका युग अलंकरणका नहीं चुस्तीका है। आज वेष-भूषाकी पसन्द और स्वास्थ्यसम्बन्धी मान्यताएँ तेज़ीसे बदल रही हैं। फ़ालतू चीज़ोंको छोड़ना आजकी सभ्यताका गुण है। चुस्त होनेके लिए ही कविताने फ़ालतू चीज़ोंको छोड़कर दुबली होना पसन्द किया है। आजका कवि उस तत्त्वकी तलाशमें है जिसके बिना कविता कविता नहीं रहती। कविताका प्रतिलोम विज्ञान हो गया है। पश्चिमी देशोंके कवि ध्वनिको पकड़नेकी कोशिश कर रहे हैं। परम्परावादी कवि कवितामें भावोंको प्रमुख स्थान देते थे, आजका कवि भावोंको दोष मानता है।

प्रश्न उठता है कि वह कौन-सा तत्त्व है जिसके फेरमें आजकी कविता है। सोचनेपर भी इस विचारको समुचित भाषा नहीं मिली। एक दूसरी दृष्टि भी है काव्य-बोधकी, जिसके अनुसार कविताका आदर्श आनन्द और ज्ञान है। हमारे देशमें कविताको कला नहीं, विद्या माना गया है। युरपमें कवि और कविताके सम्बन्धमें परस्पर विरोधी ढंगसे सोचा गया है। प्लेटोने कहा : मैं जिस राज्यकी कल्पना करता हूँ उसमें कवि नहीं होंगे, उस राज्यके सब नागरिक सन्तुलित व्यवस्थित होंगे। अरस्तूने इस कथनका खण्डन करते हुए कहा कि कवि लोगोंको उत्तेजित नहीं बनाता, वरन् वह भावोंका परिष्कार करता है। तब, कविताका उद्देश्य क्या हो; कविताका अस्तित्व क्यों रहे? कोई बात होनी चाहिए जो

कविताके माध्यमसे कवि कहे, दूसरा कोई नहीं। वर्ड्सवर्थने कहा : मैं तो चाहता हूँ कि उपदेशक बनूँ या कुछ नहीं। पीकॉकने कहा : कविता असभ्यताको बाधा है; विज्ञानके युगमें तो विज्ञानको अधिकृत करना चाहिए। शेलीका कहना हुआ : कवि समाजका विधायक है। रोमैण्टिक कवियोंकी धारणा रही है कि हमारी कविताका उद्देश्य चाहे न हो, परिणाम है। और तब—इस युगकी समाप्तिपर फिर वही प्रश्न सामने आ गया : कविताका उद्देश्य ज्ञान है या आनन्द ?

—और तभी यह कहा जाने लगा कि कविका काम चौंकाना है। कविका काम प्रत्येक वस्तुके भीतर भौतिकोत्तर रूपका उद्घाटन करना है। यह उत्तर भी समीचीन नहीं है। अमेरिकाके कवि एडगर ऐलेन पोने रोमैण्टिक कवियोंपर आक्रमण करते हुए कहा था : "कलाको कलाके लिए जियो, किसी उद्देश्यके लिए नहीं।" उसी समय पेरिसमें तीन कवि हुए—रेम्बो, बॉदलेयर, और बेलार्ड। इन्होंने पोके सूत्रको पकड़ा और कवितामें सूत्रके विशिष्टीकरणके प्रयत्न किये। इन कवियोंने अपनी कवितामें अकथ्य या अनिर्वचनीयको व्यक्त करनेका प्रयास किया। इस दुष्कर कार्यमें ये कवि विक्षिप्त-से हो गये। इसका यह अर्थ नहीं कि नयी कविता लिखनेवाला पागल हो जाता है। इन कवियोंको तो नयी भाव-भूमिपर झण्डा गाड़नेके प्रयासमें पागल होना पड़ा। वास्तवमें नयी कविताके सच्चे गुरु ये ही तीन कवि थे। बादकी कवितापर इनका भयानक प्रभाव पड़ा है। इन कवियोंका लक्ष्य शुद्ध कविता था। इनकी मान्यता थी कि जो कविता भावका वर्णन कर समाप्त हो जाती है वही शुद्ध कविता है और ज्ञान या आनन्द देनेवाली कविता मिश्रित कविता है। अब कौन कविता शुद्ध है और कौन अशुद्ध —यह पसन्दकी बात है। पश्चिममें जब नया आन्दोलन चला तो एक ऐसा संग्रह निकाला गया जिसमें संकलित कविताओंका कोई उद्देश्य ही नहीं था।

मेरी मान्यता है कि जनता निरुद्देश्य कविताको कभी ग्रहण करती ही नहीं और जनताकी पसन्दकी कविता कथित 'शुद्ध' कविता हो ही नहीं सकती। शुद्ध कविताको बड़ा नहीं माना जा सकता। बड़ी और सार्थक कविता तो वह है जो जीवनसे सम्बद्ध हो। आज भारतमें बीटनिक और 'ऐंग्री यंगमैन'की चर्चा है। दुनियाके अन्य देशोंमें भी दूसरे-दूसरे नामोंसे हैं ये लोग। यह ठीक है कि वे पपड़ी तोड़कर नयी चीज़ चाहते हैं, किन्तु समझमें नहीं आता कि ये नाराज़ क्यों हैं ? कारण कोई नहीं बताता। जिस कारण नाराज़गी है उसे हम

कहनेका प्रयास भी कोई नहीं करता। हर्बर्टने 'एंग्री यंगमैन'को लक्ष्य करते हुए लिखा है : "हम पुराने लोग तुम्हारी तरह गर्भके द्वारसे ही 'फ्रस्ट्रेशन' लेकर नहीं आये। लेकिन अब तुमसे क्या जूझना? सम्भव है हमारी उम्र तक पहुँचते तुम्हें भी अक़ल आ जाये"

यह तो स्पष्ट है कि नयी कविता पुरानी कविताकी शैलीसे अलग है। और नये लोगोंकी भीड़में हम पुराने छिप गये हैं। यानी हम लोग साहित्यकी मोटर के 'बैकसीटर' हैं और स्टीयरिंगपर नया कवि बैठा है। ऐसेमें नया कवि दायित्व-हीन बनेगा, तो जाने क्या होगा? मगर एक बातकी ओर मैं नये कवियोंका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। वे देशके मनीषी हैं या नहीं? यदि वे समाजसे रोज़ी-रोटी पाते हैं तो जवाबदेही लेनेको क्यों तैयार नहीं होते? मुझे लगता है कि युरॅपका अतीत भारतका वर्तमान होता जा रहा है। डॉक्टर, वकील, इंजीनियर आदि मनीषी नहीं विशेषज्ञ हैं, मनीषी वह क़ौम है जो समाजको देती है। उसके हाथमें लोक-परलोक होता है। उसके नयनोंमें त्रैलोक्य तैरते हैं। वे अपने कलेजेपर चोटें झेलते हैं।

कबीरकी कविताका आदर क्यों है? कबीरकी कविताको लोग न तब समझते थे न अब समझते हैं। कबीरमें जो चरित्र-बल था उसके कारण उनकी व्यथाको मान्यता मिली। रहस्यवाद चला। किन्तु जीवनमें साधारण रहकर रहस्यवादी नहीं बना जा सकता। प्रश्न है कि कविका दायित्व किस प्रकार निभे? इसके लिए आवश्यक है कि कविके द्वारा समाजको क्रान्तिबोध हो, दिशा मिले। नयी कविता यदि शैलीकी आराधनामें ही रह गयी तो समाजका कुछ कल्याण न होगा। सतही आन्दोलनोंसे क्या होता है? ऐसे आन्दोलन कविके साथ ही समाप्त हो जाते हैं। चमत्कारकी आतिशबाज़ीसे भी सार्थक साहित्य नहीं बनता। कवितासे दो चित्र बनते हैं : एक अन्धा चित्र और एक पारदर्शी। पारदर्शी चित्रसे पता चलता है कि कविताकी जड़ कहाँ है, उसमें कितनी दूरतककी बात है, कितनी दृष्टि-सम्पन्नता है। और यह तबतक सम्भव नहीं जबतक कि कवि समाजसे सम्बद्ध न हो। गोर्कीने कहा है : कवि रिचर या जड़ नहीं होता; वह समाजसे पूर्णता (इण्टिग्रेशन) हासिल करता है।

कविमें दृष्टिबोध रहना चाहिए। लिखते समय उसे मालूम होना चाहिए कि वह क्या लिख रहा है। दृष्टिबोधके बहिष्कारका परिणाम आजके साहित्यको

भोगना पड़ रहा है। समाजमें साहित्यका प्रवेश तो प्लेगकी तरह होना चाहिए। पश्चिममें लिखनेका प्रचलन हुआ, धीरे-धीरे जनता अभ्यस्त हो गयी। साथ ही वहाँ धक्कामार साहित्यकी भी रचना होती रही, किन्तु उससे समाज विचलित नहीं हुआ। कुछ ऐसी ही स्थिति हमारे यहाँ भी हो गयी है। नया कवि जब देखता है कि उसके ऊटपटाँग लेखनसे समाज विचलित नहीं हो रहा है तो वह बौखला उठता है। पश्चिमके कवि तो इसलिए क्रुद्ध हैं कि उनके हल करनेके लिए समस्याएँ नहीं हैं। किन्तु भारतमें तो समस्याओंकी कमी नहीं है। वास्तवमें नये कवियोंको परम्पराओंसे नहीं समस्याओंसे संघर्ष कर दायित्वका निर्वहन करना चाहिए। अमेरिकामें 'अति' सुखसे बीटनिक हो रहे हैं। कृत्रिम सुख वहां 'ऐंग्री यंगमैनों'को जन्म दे रहा है। किन्तु भारतमें बीट और 'ऐंग्री यंगमैनों'की कतई आवश्यकता नहीं है। नया कवि कुछ ऐसा लिखे कि देशकी जड़ता छूटे।



हिन्दी साहित्यके परिप्रेक्ष्यमें बाह्य प्रभाव

सभी बाह्य प्रभाव अकल्याणकर नहीं पर
उनके प्रति समर्पण भाव या उनसे
आतंकित हो रहना अवश्य
अकल्याणकर होगा

वालकृष्ण राव

बाह्य प्रभावसे मेरा तात्पर्य केवल विदेशी प्रभावसे नहीं है। वे भी बाह्य प्रभाव हैं जो सामान्यतः इस अर्थमें ग्रहण नहीं किये जाते। मेरी मान्यता है कि वह सभी बाह्य प्रभाव है जो साहित्यकी सर्जनाके लिए सौन्दर्यकी सृष्टिके अतिरिक्त, या सहज सर्जनाकी प्रेरणासे भिन्न, कोई प्रेरक तत्त्व हैं।

आज जो बहुत-से प्रभाव हिन्दी साहित्यपर, विशेषकर नये साहित्यपर, देखनेमें आते हैं वे सर्वथा बाह्य हैं और अभद्र हैं। वास्तवमें उनके फलस्वरूप जो साहित्य सामने आ रहा है वह साहित्य नहीं है कूड़ा-करकट है। इन अभद्र शब्दोंके प्रयोगके लिए मैं किसीसे क्षमा नहीं माँगता, क्योंकि वास्तवमें मैं उसे कूड़ा-करकट ही मानता हूँ।

बीटनिकका प्रभाव शुद्ध नक़ल है। नक़ल भी ऐसे साहित्य और ऐसे समाजकी जिसकी हमारे यहाँ कोई रूपरेखा नहीं है, और यदि हम चेष्टा करके उसे अपने यहाँ उत्पन्न नहीं करते तो शायद उसकी कोई सम्भावना भी नहीं है। जो दुनिया-भरकी कविताएँ और कहानियाँ इस प्रभावके अन्तर्गत लिखी जा रही हैं उनके पीछे इसके सिवा और कोई दृष्टि नहीं कि हम उनकी नक़ल करें जो इस समय युरॅपमें फ़ैशनेबल हैं। क्योंकि उनकी तरह चलेंगे तभी हम आधुनिक हैं, नहीं तो नहीं। इसीलिए हमारी बहुत-सी नयी कहानियों और नयी कविताओंमें अनेक तत्त्व ऐसे हैं जिन्हें हम आत्मसात् नहीं कर सकते, जिनका पूरा तथाकथित सौन्दर्य देखने-समझनेके लिए हमें एक प्रकारकी विशिष्ट टीकाकी आवश्यकता होती है।

पर मैं समझता हूँ यह सब चिन्तित होनेकी बात नहीं है। निश्चय ही जो कुछ अस्वस्थ और बाह्य है वह अस्थायी प्रमाणित होगा। इसके लिए हम बैठकर

चिन्ता करें, इसे दूर करनेकी कोशिश करें—इसकी मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता। विदेशी साहित्यसे प्रभावित होना न केवल स्वस्थ है, बल्कि आवश्यक और अनिवार्य है। किन्तु विदेशी साहित्यका अनुकरण करना अस्वस्थ है। जो अनुकरणात्मक साहित्य है वह स्वयं अपनी मौतका पैग़ाम लेकर सामने आता है, वह चल नहीं सकता। जिस अर्थमें जिस हद तक वह बाह्य प्रभाव रह जाता है वह विदेशी साहित्य होनेके कारण नहीं; वह प्रभाव जिस रूपमें ग्रहण किया जाता है या उसकी प्रेरणाके फलस्वरूप जिस साहित्यकी सर्जना होती है, वह अस्वस्थ और क्षीण होता है।

उदाहरणके लिए, बहुत-से बाह्य प्रभाव जो हमारे जीवनपर, गतिपर, चिन्तन पर, दिनचर्यापर, पड़ रहे हैं, वे अन्ततः साहित्यपर भी पड़ेंगे। रेडियो, टेलेविज़न, फ़िल्मका प्रभाव निश्चयपूर्वक सर्जनापर भी पड़ता है। क्योंकि इनके कारण जो वातावरण पैदा हो जाता है, जो स्थिति उत्पन्न हो जाती है, उस स्थितिमें साँस लेनेवाला सर्जक, उस स्थितिसे, वातावरणसे स्वयं प्रभावित होगा ही। रेडियोके लिए साहित्य लिखाया जाता है। कुछ विधाएँ ऐसी हैं जो रेडियोने स्वयं आविष्कृत की हैं। रेडियो नाटक एक विधा ही बन गयो है। उस विधाका उपयोग करके यदि हम साहित्यको कोई नयी समृद्धि दे सकें, जैसा कि इंग्लैण्डमें हुआ है, या फ़िल्मके द्वारा हम यदि साहित्यको नयी चीज़ दे सकें, कोई नयी विधा उत्पन्न कर सकें, किसी नये प्रकारके लेखनका मार्ग-प्रदर्शन कर सकें—तब उस अर्थमें और उस हद तक वह स्वस्थ है, कल्याणकारी है। लेकिन जिसका मुख्य उद्देश्य प्रसारण है और उस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए तदनुरूप ढाल कर साहित्यकी सृष्टि की जाती है तो वह एक बाह्य प्रभावके अन्तर्गत होगी; उस हद तक क्षीण होगी।

बाह्य प्रभाव मात्र अकल्याणकर है, यह कहना बिलकुल निरर्थक बात है। क्योंकि साहित्यपर प्रायः सभी प्रभाव बाह्य प्रभाव ही होते हैं। बाह्य प्रभाव, बाह्य प्रभाव ही रह जायें, बाह्य प्रभाव ही कहे जायें—यह साहित्यकी असफलता है और मैं समझता हूँ कि यदि हम बाह्य प्रभावोंके प्रति आतंक भाव न रखें, केवल सावधान रहें और अपने साहित्यको बाह्य प्रभावोंके लिए समर्पित न होने दें तो यह यथेष्ट है। उसके बाद हममें यदि सर्जनाकी शक्ति है, यदि हम सचमुच साहित्यकार हैं, तो हम देखेंगे कि वह स्वस्थ साहित्य ही होगा।



नोबेल पुरस्कार प्राप्तकर्त्री लेखिकाएँ : ३

सीग्रिद उण्डसेत

(१८८२–१९४९)

जो इतिहासकी परतोंके आर-पार, वस्तु-
सत्यसे परे, चिरन्तन मानव-सत्य को
उजागर कर सकी

रंगनाथ राकेश

सन् १९२८ की नोबेल पुरस्कार-विजयिनी सीग्रिद उण्डसेत ! सेब-जैसा गोल मुखड़ा, कसे हुए दृढ़ पातरे होंठ, गौरकायामें आपादमस्तक झिलमिलाता लावण्य और उस लावण्यपर चिन्तन और पुरातत्त्वकी पारदर्शी ज्योति-परत, यह थी क्रिस्टीन लैवरांसडैटर'की पिंगलकेशा उपन्यास-लेखिका सीग्रिद उण्डसेत। विख्यात नार्वेजियन इतिहासवेत्ता और पुरातत्त्वविद्, इंगवाल्ड मार्टिन उण्डसेतकी प्रतिभाशालिनी बेटी। पिता परम्परामुक्त तो माँ परम्पराबद्ध, माँ डेनिश तो पिता नार्वेजियन ! पिताने दीं वे आँखें जिनसे वह उत्तरी युरॅपके मध्यकालीन इतिहास-को हस्तामलकवत् देख सकी और माँने दिया अजस्र-अमित उदात्त ममत्व और डेनिश मक्खन-जैसा संवेद्य हृदय : वह हृदय जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव त्रस-रेणुओंको अनायास आत्मस्थ कर ले। बाल्टिक समुद्रका प्रशान्त हिममय प्रवाह, आर्किडकी नानावर्णी पखुरियाँ, ट्यूलिपके हँसते शोख फूल, चटखते गुलाब-फूलों-का सौरभ—यह सब कुछ साराका सारा स्वयमेव सीग्रिदकी लेखनी-कोरपर उतरता चला गया है और उतरता चला गया है डेनिश वातावरण, विस्तृत चरा-गाह नार्वेजियन नदी-पहाड़-गिरि-कान्तार, और उसकी लेखनी-कोरपर उतरा आया है वह पौरुष जो अपने प्रस्वेद-विन्दुसे ललाटकी भाग्य-लिपि भी पोंछ दे !

डेन्मार्कका नगर कैलॅण्डबर्ग, यहीं २० मई १८८२ को जन्मी सीग्रिद उण्ड-सेत। ओस्लो यूनिवर्सिटीके क्रिश्चियाना मर्कण्टाइल कॉलेजसे शिक्षा-दीक्षा। अठारह वर्षकी उम्रमें ग्रेजुएशन। १८९९ से १९०७ तक शहरके एक ऑफ़िसमें क्लर्की। एकसे नौ और नौसे एक तक गिनना, जोड़ना-घटाना, निरन्तर पिट्-पिट्-पट्-पट्···टाइप मशीनोंकी खड़खड़ाहट। एक ओढ़ी हुई सदाशयता—'डियर सर···ग्लैड टु रीड योर लेटर—विथ बेस्ट ऑव रेगार्डज़, योर्स सिन्सियर्ली'। ऑफ़िस-गर्ल्ज़की खोखली-वज़मुरदा-बासी ज़िन्दगीका प्रत्यक्ष जीवन्त चित्र यहीं देखा था सीग्रिदने। 'फ्रु मार्ता आउली' (१९०८) उपन्यासका मसाला यहीं मिला था उसे। नॉर्वेके महानतम इतिहासवेत्ता अपने पिताकी सेक्रेटरी भी रही वह, और उसे जो अमूल्य निधि मिली वह पिता श्री इंगवॉल्डके संसर्गसे ही। इतिहासके वे विविध नोट्स उपन्यासोंके ताने-बाने बने, इन्हीं ऐतिहासिक नोट्सके आधारपर 'क्रिस्टीन लैवरांसडेटर' की बुलन्द इमारत भी बनी। बादमें 'जेनी' (१९११) के प्रकाशनने उण्डसेतकी प्रतिभाकी धाक जमा दी समस्त युरोपमें। सन् १९२८ में साहित्यका नोबेल पुरस्कार उण्डसेतके प्रतिभा-सौध-शिखरका सर्वोच्च कीर्ति-कलश बना और विश्वकी आँखें चालीस वर्षीया मादाम सीग्रिद पर जा टिकीं।

'स्विस अकादमी' ने नोबेल पुरस्कार देते समय जो प्रशस्तिका दी है वह है 'प्रिन्सिपली विथ रिगार्ड टु हर पावरफ़ुल पिक्चर्स ऑव मेडीवल टाइम्ज़।' मध्य-कालीन इतिहासके सशक्त चित्रणकी दृष्टिसे उण्डसेत चार्ल्स डिकेन्सके ही समकक्ष खड़ी की जा सकती है। स्कॉटमें मन्थरता है लेकिन सीग्रीदमें त्वरा है, तुर्शी है और है उदग्र रागात्मक चित्रण—

'वह घोड़ा अपनी मजबूत काठी और तेज़ चालके लिए लोगोंमें चर्चाका विषय था—अपने मालिकके सामने वह मेमनेकी तरह नम्र हो उठता—उसकी हिनहिनाहटमें जादू था—और लावरांसडैटर कहा करता था कि वह घोड़ा उसका अनुज है····

—'क्रिस्टीन लैवरांसडेटर'

पशुके प्रति मनुजका यह सौहार्द शकुन्तला-पालित आश्रम-मृगकी याद ताज़ी

...ना देता है। पुरुष-स्वभावकी तुलनामें सीग्रिद स्त्री-चरित्रोंके चित्रणमें सहज ही ...क सफल हुई है। 'क्रिस्टीन लैवरांसडैटर' के लेखन-कालमें उसने जो विविध ...प लिये थे, उनकी झांकी—

पाप ? पाप-पुण्य ? वैचारिक कायरता और पौरुष-हीनता। जो प्र-कृत है ...कृतमें तो उतरेगा ही—पत्नीत्व और प्रणयिनी तत्त्व और मातृत्व !····पुरुष ...हाँ समझ पाता है नारीको—नारीका सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य उसकी ममतामें ही ...हित है—उद्धत यौवनका काठिन्य जहाँ विगलित होकर, मातृत्व बनकर चू ...ता है····

····शरीर तो आकार चाहता है, वह आकार सूक्ष्म भगवत्-प्रेममें मिलेगा ...? वासना—वासना ही तो कायाकी यथार्थ सत्ता और उसकी संज्ञा देती है— ...वती संज्ञा : जिसे कहते हैं प्रेम—प्रणय और परिणय : एक दूसरेकी आव- ...कता है, पूरक है····

····जो मर्द स्त्रीकी बांह पकड़कर, सीना तानकर अपने सम्बन्धोंको उजागर ...र देता है और एक वह जो घोंघेकी तरह, शंबूकवत् आदर्शोंकी खोलमें लिपटा ...रहता है : दोनोंमें अन्तर है। जीवन—जीवन निष्पाप हो ही नहीं सकता— ...च्छिष्ट स्मृतियोंका स्वाद लेकर वर्तमानको भुला देना नपुंसकोंका ही प्रिय काम ...सकता है···वर्तमान तो गरम लोहा है जिसे पीट-पीटकर शक्ल देनी होती है, ...चाही शक्ल।

कोपैनहैगन बन्दरगाहपर एक 'समुद्र अप्सरा' (मर्मेड) की मूर्ति खड़ी है : ...एरिक्ज़े-द्वारा तराशी गयी समुद्र-अप्सरा। पता नहीं क्यों मुझे उसी वरुण ...की याद सीग्रिदपर लिखते समय हो आयी है। ऑकिडके लाल-पीले, हरे- ..., बैंगनी-भूरे, मूँगिया और गुलाबी फूलोंकी तरह हैं सीग्रिदके उपन्यास। ...समयके प्रख्यात अँगरेज़ समीक्षक जे० ई० ऐरो स्मिथने सीग्रिदके बारेमें ...था है···

'उण्डसेत मँजे और जमे हाथोंसे लिखती है। मानवीय दुर्बलताओं और वासनाओंका परीक्षण, उनका सूक्ष्मांकन क्रिया-प्रतिक्रिया-सापेक्ष करती है ये, जो सहज है, स्वाभाविक है। उण्डसेतकी उत्प्रेक्षाएँ गिरजाघरकी घण्टीकी तरह बजती रहती हैं और उन घण्टियोंकी आवाज एक दूसरे से भिन्न है।...

—'लण्डन मर्करी'

१९१३में कुमारी सीग्रिदने विवाह किया ए० सी० स्वार्सटेड नामक चित्र-शिल्पीसे। 'जेनी' का प्रकाशन हो चुका था तबतक। प्रकाशकोंकी दस्तकें उनके दरवाज़ोंपर पड़ने लगी थीं। उनकी प्रमुख कथाकृतियाँ जो अँगरेज़ीमें अनूदित हैं, वे हैं :

१. द मिस्ट्रेस ऑव हस्बी; २. द वाइल्ड ऑर्किड; ३. इडा आइज़ाबेथ; ४. जेनी; ५. क्रिस्टीन लैवरांसडैटर; ६. द लॉङ्गेस्ट; ईयर ७. मैन विमेन ऐण्ड प्लेसेज़; ८. ऐण्ड अनटू ऐण्ड अँदर नॉर्स टेल्ज़; ९. कैथेरीन ऑव सीन; १०. फ़ोर स्टोरीज़।

मादाम सीग्रिद उण्डसेत की आँखोंमें वह अन्तर्वेधी ज्योति थी जो इतिहासकी परतोंके आर-पार, वस्तु-सत्यके परे, चिरन्तन मानव-सत्यको उजागर कर सकी। सीग्रिदने वातावरणके झीनेसे झीने और हलकेसे हलके स्पन्दनका चित्रण इस कौशलसे किया है कि वह परिवेश हमारे समक्ष मूर्त हो उठता है, चौदहवीं सदीके ग्रामीण नॉर्वेका दृश्य साक्षात् हमारे सामने उपस्थित हो उठता है। 'फ्रु मार्था आउली' (१९०८) और 'जेनी' (१९११) से ही उसकी वर्णन-शक्तिकी दिशा स्पष्ट होने लगती है—आनन्दोपभोग और परम शान्ति प्राप्त करनेकी इच्छाके बीच त्रिशंकु-से झूलते हुए चरित्र, जाति-बन्धन और नैतिक-विधानको तोड़नेवाले पात्र : यूनानी नाटकोंकी त्रासदी।

'जेनी' उपन्यासकी नायिका, तरुणी जेनी बुद्धि-दीप्ता सुन्दरी है, नॉर्वे छोड़कर वह रोम जा पहुँचती है ललित-कलाके अध्ययन हेतु। रंग-रेखाओंसे ही उसका हृदय-स्पन्दन शान्त नहीं हो पाता—जेनीके मनमें प्रणय जागता है, हेल्जसे उसका परिचय होता है : जो कायर और दुर्बल स्वभावका है। एक विचित्र-सी आत्म-रतिमें डूब जाती है जेनी और उसका अन्त होता है करुणापूर्ण, दुःखद, कारुणिक

सन् १९१९ में सीग्रिदका निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हुआ 'ए वीमन्स व्यूपॉएण्ट' 'एक स्त्रीका दृष्टि-बिन्दु', एक स्त्रीका हो दृष्टि-बिन्दु, न होकर समूचे स्त्रीत्व, पत्नीत्व और मातृत्वका भाष्य बन जाता है। 'क्रिस्टीन लैवरांसडैटर' का पैनार-एक औपन्यासिक धरातल सीग्रिदके परिपक्व चिन्तनकी इकाई है—जहाँ बीसवीं सदीके पाप-बोध, कुण्ठा, संशय, अनास्था, व्यर्थता-बोधके आयाम भी खुलते नज़र आते हैं सहज-सरल-सुबोध्य, ऑर्किड-फूलोंकी पँखुरियोंकी तरह।

'वाइज़ वर्जिन्स'; 'द स्पिलिण्टर ऑव ए टॉल मिरॅर', 'द ब्राइडल रीथ' 'द क्रॉस', 'द मास्टर ऑव हेस्टविकेन', 'द स्नेक पिट', 'द सॅन ऐट एवेंजर', इन द विल्डरनेस', 'द वनिड्बुश' आदि अन्य रचनाओंमें नैतिक अराजकताकी धध-कती आगके ऊपर मर्यादा और आदर्शके शीतल छींटें! सेसिलियाके चरित्रमें जो दुर्निवार वासना है: जो ज्वार है उसे देखकर लारेन्सकी कॅनी चैटर्लेकी याद हो उठती है मुझे। सेसिलिया अपने पति तथा प्रणयीके बीच धूमकेतु-सी आती है—'हेस्ट विकेनके स्वामी' को यह उप-नायिका स्त्री-चरित्रोंमें 'क्रिस्टीन' के बाद रखी जा सकती है। मैंने मर्यादा और आदर्शके छींटोंकी जो बात कही उसका रूप क्रिस्टीनमें ही सर्वोपरि है। 'क्रिस्टीन लैवरांसडैटर' की अप्रतिम नायिकाको अन्तमें एक ईसाई-मठ-निवासिनी बनाकर उसे मोक्ष दिलवा देना ही क्या उसकी अन्तिम नियति थी? एक निश्चित ईसाई दर्शनके सिद्धान्तोंकी जकड़में जहाँ उसकी क़ैद हो गयी है वहीं उसकी प्राणवत्ता भी सूखने-सी लगी है।

नॉर्वेकी यह ऑर्किड-लता द्वितीय महायुद्धके कदर्य प्रभावको नहीं झेल पायी और १९४९ में यह बिदा हो गयी। परन्तु इसका यश-सौरभ अम्लान है, उसकी कृतियाँ ऑर्किड-फूलों-सी आज भी मनमोहक हैं।



लेखक-कवि

राजदूत बनाये जायँ

दूसरे महायुद्धके बाद युरॅपके कई देशोंके कवि-लेखक राजदूत बनाकर विदेशोंमें भेजे गये—जिन्होंने देशकी कूटनीतिका तो संचालन किया ही, अपनी संस्कृतिका भी जीवन्त प्रतिनिधित्व करते रहे हैं। लेकिन भारतकी स्थिति आज भी युद्धपूर्व युरॅपके समान ही है!

महेन्द्र कुलश्रेष्ठ

डच भाषामें एक पुस्तक प्रकाशित हुई है 'पर डिप्लोमाटीक कोरियर' जिसमें नीदरलैण्ड्स और बेल्जियमके कूटनीतिज्ञ—यानी विदेश विभागमें कार्य करनेवाले राजदूत इत्यादि—लेखकोंकी चुनी हुई रचनाओंका संकलन है। इसका सम्पादन सर्वश्री ऐल्बर्ट हेलमन, मॉक्विस गिजसेन और एम्० मूरिकने किया है। ये तीनों भी लेखक और कूटनीतिज्ञ हैं और संकलनमें इनकी अपनी रचनाएं भी सम्मिलित हैं।

एक समय था जब युरॅपमें कूटनीतिज्ञोंके लेखक होनेका विचार भी बड़ा अजीब समझा जाता था। ऐसे व्यक्तियोंको कूटनीतिज्ञ लोग पराया मानते थे और उनसे प्राय: अच्छा व्यवहार भी नहीं किया जाता था। इसलिए लेखक अपना नाम बदलकर लिखते थे, जैसे सेण्ट जॉह्न पर्स। पर द्वितीय महायुद्धके बाद स्थिति बदली। लेखक होना सम्मानकी बात समझा जाने लगा। इसके आगे यह भी हुआ कि कुछ देश कवि और लेखकोंको विशेष रूपसे राजदूत बनाकर भेजने लगे। लैटिन अमेरिकी देशोंके अनेक कवि विदेशोंमें राजदूत हैं। ये न केवल अपने देशकी कूटनीतिका संचालन करते हैं अपितु अपनी संस्कृतिका जीता-जागता प्रतिनिधित्व भी करते हैं। मेक्सिकोके प्रसिद्ध कवि ऑक्टावियो पाज भारतमें अपने देशके राजदूत हैं। डॉक्टर राधाकृष्णनको भी कुछ इसी दृष्टिसे राजदूत बनाकर रूस भेजा गया। पर भारतमें यह परम्परा चली नहीं। राजनीतिक क्षेत्रोंके नेताओंको तो जब-तब

राजदूत बनाया जाता है परन्तु लेखक-कवियोंको नहीं । इस ओर अभी शासनका ध्यान भी नहीं गया है । इस सम्बन्धमें भारतकी स्थिति युरॅपकी युद्धपूर्वी स्थितिके समान ही है । अस्तु ।

हॉलैण्ड और बेल्जियममें अनेक प्रसिद्ध लेखक और कवि विदेश-सेवाओंमें प्रायः जाते रहते हैं । युद्धसे पूर्व जो लेखक इन सेवाओंमें गये उनमें जे० वॉन ऊडशूर्न तथा टरबोर्गके नाम उल्लेखनीय हैं । ऊडशूर्नकी गणना डच भाषाके अच्छे उपन्यासकारोंमें की जाती है । इनका एक उपन्यास इनकी मृत्युके बाद अँगरेजी भाषामें भी अनूदित होकर प्रकाशित हुआ—नाम 'एलाइनेशन' । टरबोर्गने महायुद्धसे कुछ पूर्व ही लेखन आरम्भ किया और बादमें प्रसिद्ध हुए । लेकिन इनमें पॉल क्लाडेल ता पर्सके समान प्रथम श्रेणीका कोई लेखक नहीं था ।

इसके बाद आये मॉनिक्स गिजसेन और डॉ० एल्० लिख्टवेल्ड । गिजसेन कवि, उपन्यासकार और निबन्धकार सभी हैं । आपने जे० ए० गोरिसके नामसे भी लिखा है । डॉ० लिख्टवेल्ड उपन्यासकार हैं । और ऐलबर्ट हेलमनके नामसे लिखते हैं, आप मूलतः सुरीनामके निवासी हैं और पहले नीदरलैण्ड्सके प्रतिनिधि रहे, अब स्वयं अपने देशके प्रतिनिधि हैं । 'एम०' या मार्टिन मूरिक अभी युवक हैं, और अच्छे कवि हैं ।

संकलनकी भूमिका भी दोनों देशोंके विदेश मन्त्रियों, पॉल हेनरी स्पाक तथा जोज़ेफ़ लुन्स, ने लिखी है । इसमें कविता, कहानी, निबन्ध, यात्रावर्णन तथा अनुवाद (चीनी-जापानी कविताके) सभी हैं। अनुवाद दिये हैं रॉबर्ट वॉन गूलिकने जो जासूसी उपन्यासोंके माने हुए लेखक हैं । इससे पता लगता है कि डच साहित्यकार अपने देशके साहित्य तक ही सीमित नहीं हैं, विदेशी साहित्योंमें भी उनकी अच्छी पैठ है । ऐसा ही एक लेख अफ़्रो-कैरिबियन कवि निकोलस गुइलेन तथा उनके ग्रूपके कवियोंके कृतित्वपर है । टरबोर्गने, जो अब राजदूत बन गये हैं, बोडिसिसकी अन्तिम यात्रापर एक चिन्तनपूर्ण निबन्ध प्रस्तुत किया है । इनके अतिरिक्त और भी बीसियों कूटनीतिज्ञ-लेखकोंकी रचनाएँ हैं जो प्रायः सभी उच्च स्तरको हैं ।

कवि-लेखकोंको राजदूत बनानेका विचार भारतके लिए नया है । इसका स्वागत किया जाना चाहिए । इसमें उत्तम कलाकारोंको भी सम्मिलित किया जा सकता है ।



राष्ट्रभारती
परिवेश और उपलब्धियाँ

यह स्तम्भ इसलिए कि सहवर्ती भाषाओं-
के साहित्यकी दिनप्रमित गतिविधि और
उपलब्धियों से हिन्दी जगत् परिचित हो

• तेलुगुका कथा साहित्य

भीमसेन निर्मल

युरोपीय भाषाओंके सम्पर्कसे भारतके आधुनिक साहित्यको परिपुष्ट बनानेवाली साहित्य विधाओंमें कहानीका विशिष्ट स्थान है। प्राचीन भारतीय साहित्य कहानीके अनेक रूपोंसे भरा पड़ा है! किन्तु आधुनिक कहानी 'बृहत्कथा', 'कथासरित्सागर', 'पंचतन्त्र', 'हितोपदेश', आदिकी कहानियोंसे एकदम भिन्न है। आजकी भारतीय कहानी उक्त प्राचीन भारतीय परम्पराको छोड़ पश्चिमी साहित्य प्रवृत्तियोंकी अनुगामिनी बनी हुई है। आधुनिक आन्ध्र गद्य-साहित्यमें कहानीने अपने क्रमिक और समुचित परिणतिके कारण अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है और समस्त भारतीय साहित्यमें गौरवप्रद स्थान की अधिकारिणी बन चुकी है।

नयी कहानीके प्रचारमें 'प्रेस' का प्रचलन मुख्य कारण है। पत्र-पत्रिकाओं के लिए नित नूतन और लघु रचनाओंकी आवश्यकता बनी रहती है। उक्त आवश्यकताकी पूर्तिके लिए लेखकोंकी दृष्टि इस साहित्य-विधाकी ओर आकृष्ट हुई। जीवनसे सम्पृक्त होकर कहानीने अपना प्रभाव लम्बे-लम्बे उबाऊ उपन्यासोंके पढ़ सकनेवाले अवकाश-अभावके परिवेशमें और भी गहराया। कहानीका जीवन या व्यक्तित्वसे सम्बन्धित अंशों या समस्याओंकी अभिव्यक्तिका सफल साधन सिद्ध होना भी, कहानीके बहु-प्रचारका

मुख्य कारण बना। तेलुगु कहानीने स्वरूप, शिल्प, स्वभाव आदिमें भी अपनी एक विशिष्टता सम्पादित कर ली है। संक्षिप्तता, विषयकी एकोन्मुखता, चरित्र-चित्रणकी मनोवैज्ञानिकता, प्रभावकी एकाग्रता आदि विशिष्ट गुणोंसे युक्त तेलुगु कथा साहित्य समस्त भारतीय साहित्यमें प्रतिष्ठित हो चुका है।

आधुनिक तेलुगु साहित्यके युगपुरुष श्रीवीरेशलिंगम् पन्तुलुने यदि किसी साहित्य-विधाको स्पर्श नहीं किया तो वह कहानी है। यह सौभाग्य श्री गुरुजाडा अप्पारावका रहा। सन् १९१० में आपने अपनी पहली कहानी अँगरेजीमें प्रकाशित की। तदनन्तर 'आपका नाम' 'सुधार' आदि कहानियाँ लिखी थीं। हालमें अप्पारावजीकी कहानियोंका संग्रह 'आणि मुत्यालु' (चोखे मोती) के नामसे प्रकाशित हुआ है। पन्तुलुजी समाज-सुधारक थे। भाषाके क्षेत्रमें भी 'ग्रान्थिक भाषा' (व्याकरण-सम्मत शिष्ट भाषा) को छोड़ 'व्याव-हारिक भाषा' (बोलचालकी भाषा) को ही आपने प्रश्रय दिया। अप्पाराव-जीने लघु-कथा रचनाकी जो परम्परा चलायी वह आज तक अबाध रूपसे चली आ रही है और प्रत्येक वर्ष हज़ारोंकी संख्यामें कहानियाँ प्रकाशित हो रही हैं।

श्री वेदमु वेंकट राय शास्त्री और तिलकमूर्ति लक्ष्मी नरसिंहम्ने प्राचीन ढंगकी बहुत-सी कहानियाँ लिखी थीं। शास्त्रीजीने संस्कृतके कथा साहित्यका सुन्दर अनुवाद भी प्रस्तुत किया था।

शतावधानी और महापण्डित श्री वेलूरि-शिवराम शास्त्रीजीने प्राचीन और नवीनका सामंजस्य स्थापित करते हुए विभिन्न विषयोंकी पृष्ठभूमिपर सुधारवादी दृष्टिकोणसे कई कहानियाँ लिखीं। ये कहानियाँ किसी विशिष्ट धर्म-का संकेत करती हैं अथवा किसी विशेष सन्देशको देनेवाली होती हैं। 'कथा पट्कमु' में आपकी श्रेष्ठ कहानियाँ संगृहीत हैं। 'आनन्द भवनमु' नामकी कहानी सर्वश्रेष्ठ आदर्शवादी कहानी मानी जाती है।

श्री श्रीपाद सुब्राह्मण्य शास्त्री तेलुगुके प्रथम श्रेणीके कहानीकार थे। पश्चिमी प्रभावसे अस्पृष्ट तेलुगु कथा-साहित्यका ठेठ रूप इनकी कहानियोंमें परि-लक्षित होता है। इनकी रचनाएँ प्राचीनतावादी परिवारोंके वातावरणके अनुरूप हैं। सहज सुन्दर वार्तालाप और यथार्थ घटनाओंसे युक्त ये कहानियाँ अमृतकी बूँदें हैं। 'गुलाबका इत्र' और 'सीधा जवाब' नामक कहानियाँ अधिक लोकप्रिय हुई हैं। शास्त्रीजीकी कहानियोंके आठ संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

आपने केवल वार्तालापमय कुछ कहानियाँ लिखी थीं।

कथावस्तु, भावाभिव्यक्ति, शैली और भाषामें नवीनताको लानेवाले हैं श्री गुडिपाटि वेंकटचलम्। सम्प्रदाय और परम्पराका विरोध, स्वेच्छाचार आपको प्रिय रहे हैं। कथा-साहित्यके इतिहासमें 'विपथगा' और 'विप्लव-कारी' के नामसे प्रख्यात रहे हैं। ये विरोधी दलकी कटु आलोचनाका सामना करके भी अपने मार्गपर दृढ़ रहे। जिन्हें इनकी रचनाएँ पसन्द आयीं उन्होंने इन्हें उपदेष्टा कहा, दूसरोंने 'बाढ़' और उपद्रव। जो भी हो, ये अत्यन्त प्रज्ञाशाली लेखक थे और एक तरहसे आधुनिक कहानीमें शक्ति और जीवनका प्रसार करनेका श्रेय आपको ही है। 'हम्पी कन्याएँ', 'सिनेमा-ज्वर', प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

कवि सम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण कहानी-रचनामें भी सिद्धहस्त सिद्ध हुए हैं। कविताके समान ही आपकी कहानीमें शिल्प अद्वितीय है। हाल ही में आपकी कहानियोंके संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'तीन भिखारी', 'माकी दुर्गका कुत्ता', 'ज़मींदारका लड़का', 'रिसर्च स्कालर' आदि आपकी सुन्दर कहानियाँ हैं। आधुनिक सभ्यतापर कटु व्यंग्य भी आपकी कुछ कहानियोंमें परि-लक्षित होता है।

श्री त० शिवशंकर शास्त्रीजीकी 'नीलकण्ठकी कहानियाँ' विशेष रसपूर्ण और लोकप्रिय हैं। आप कहानीके अच्छे आलोचक भी हैं। अडिवि बापिराजुमें समस्त ललित कलाओंका समन्वित रूप परिलक्षित होता है। वाणीके अतीत रूपको चित्रमें और चित्रके अतीत भावको वाणीमें अभिव्यक्त कर सकनेवाले आप सहज कलाकार थे। इसी कारण कथा-साहित्यमें आपका विशिष्ट स्थान है। कल्पनाप्रवण काव्यात्मक कहानियोंके निर्माणमें ये बेजोड़ रहे हैं तेलुगु साहित्यमें। कहानियोंमें तिरुपति पहाड़की सीढ़ियाँ, 'भोगीराकी घाटी', 'शैल बाला', 'हम्पीके खण्डहर' अधिक लोकप्रिय हुई हैं। 'तरंगिणी', 'रागमालिका', 'अंजली' नामसे कहानियोंके संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

कथाकार और कथा-समीक्षक हैं श्री कोडवटिगण्टि कुटुम्बराव। प्रगतिशील दृष्टिकोणके संग मध्यम वर्गका यथार्थ चित्रण बड़ी सफलतासे उभरा है इनमें। विविध विषयोंको लेकर विभिन्न प्रकारकी कहानियोंको लिखनेवालोंमें आपका नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। तेलुगु कथा-साहित्यमें 'गल्पिका' नामक कथाभेद-

की रूप-कल्पना करनेवाले हैं आप। 'पक्षीके लिए गया पिंजड़ा', 'भागी हुई औरत', 'औरतका जन्म' आदि श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

क्लान्त और श्रान्त दैनिक जीवनमें माधुर्य भरनेवाली मृदु मधुर हास्य रचना करनेवालोंमें मुनिमाणिक्यम् नरसिंहाराव सर्वप्रथम हैं। आपकी कहानियोंकी नायिका 'कान्तम्' तेलुगु साहित्यमें अमर बन गयी है। दुःखपूर्ण और निराशामय पारिवारिक जीवनको रसपूर्ण सिद्ध किया है मुनिमाणिक्यम्ने। आन्ध्रदेशमें कहानियोंके अधिक प्रचारका कारण कान्तम्की कथाएँ हैं, यह कहनेमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

कथक चक्रवर्तीके नामसे प्रसिद्ध श्री चिन्ता दीक्षितुलुने कहानीकी रूपरेखाओंका निर्माण कर छोटे-बड़े सभी अवस्थाओंवाले पाठकोंकी रुचिके अनुकूल कई कहानियाँ रची थीं। प्राचीन सम्प्रदायके समर्थक होते हुए आपने आधुनिक सभ्यतापर मीठी चोटें की हैं। आपकी कहानियोंमें मधुर व्यंग्य पाठकको गुदगुदा देता है। 'वठीरावुकथलु', 'एकादशी' कहानी संग्रह हैं इनके।

बैरिस्टर पार्वतीराम नामसे हास्य-व्यंग्यप्रधान प्रसिद्ध उपन्यास लिखनेवाले श्री मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्रीने पारिवारिक जीवनको चित्रित करते हुए कुछ कहानियाँ लिखी हैं। इनमें 'चित्र' नामक कहानी अति प्रसिद्ध है। अच्छे पण्डित होते हुए भी कलाकारके भावुक हृदयके साथ रचना करनेवालोंमें श्री इन्द्रगण्टि हनुमच्छास्त्री प्रसिद्ध हैं। आपके स्केच और कल्पना-चित्र कहलानेवाली रचनाओंमें कहानी शिल्पके उत्कृष्ट रूप दृष्टिगोचर होते हैं। आपकी कहानियोंका एक संग्रह प्रकाशित हुआ है।

श्री करुणकुमारकी कहानियोंके तीन-चार संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इन कहानियोंमें आपका नाम सार्थक हुआ है। ग्रामीण जनताके पीड़ित जीवनके करुण चित्रोंसे ये कहानियाँ भरी पड़ी हैं। ग्रामीण जीवनकी गहराइयाँ तथा मानव-मनोविज्ञानकी प्रवृत्तियोंका चित्रण आपकी कहानियोंको पठनीय बनाते हैं।

आधुनिकतम उत्थानके कहानीकारोंमें पालगुम्मि पद्मराजु, गोपीचन्द, बुच्चिबाबू आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। श्री पद्मराजुने यद्यपि संख्यामें कम ही कहानियाँ लिखी हैं, किन्तु ये कहानियाँ ही इनकी उपलब्धि हैं। 'तूफ़ान' नामक कहानीने विश्व-लघुकथा-प्रतियोगितामें द्वितीय पुरस्कार प्राप्त कर तेलुगु भाषाको अनन्य गौरवसे समलंकृत किया है। कहानीका निर्माणशिल्प, संयोजनाक्रम,

संवादोंकी सहज सुन्दरता आदि इन कहानियोंकी विशेषताएँ हैं। ग्रामीण तथा नागरिक जीवनके कई मनोवैज्ञानिक चित्र आपने उपस्थित किये हैं। 'जिसका इन्तज़ार था', 'निर्गन्ध कुसुम', 'नौकायात्रा' आदि प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। आप कहानीके आलोचक भी हैं।

गोपीचन्द इस युगके अत्यन्त प्रतिभाशाली और सबल कथाकार हैं। आपकी रचनाएँ पाठकके मस्तिष्कको उद्वेलित कर चिन्तनके लिए बाध्य कर देती हैं। ऐतिहासिक घटनाक्रमों, सामाजिक परिस्थितियों, व्यक्तियोंकी मानसिक गति-विधियों और उनके हेतुभूत भिन्न-भिन्न वातावरणको समझकर, रचना करनेवाले बौद्धिक लेखक हैं गोपीचन्द। वे हृदयकी अपेक्षा मस्तिष्कको अधिक प्रभावित करते हैं। सामाजिक और राजनैतिक विषयोंसे आपकी क़लम अधिक प्रभावित रही है। अतः आपके भाव एवं आदर्श सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओंसे अधिक सम्बद्ध दीखते हैं। 'उदार सूद', 'अँधेरे कोने' 'स्वगत' आदि प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। आपकी कहानियोंके पाँच संग्रह निकल चुके हैं।

नवीन लेखकोंमें श्री बुच्चिबाबूका स्थान विलक्षण है। आप पहले अँगरेज़ीके प्राध्यापक रह चुके थे, अतः आपकी रचना-शैलीपर अँगरेजीका अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आपकी कहानियोंकी विशेषता है। रचना-शिल्पपर सम्पूर्ण अधिकार होनेसे, बुच्चि बाबू अपनी कहानियोंमें विविधता ला सके हैं। रचनाओंमे दृष्टिगत होनेवाले उपमान लेखककी व्युत्पत्तिको बतलाते हैं तो व्याख्याएँ प्रतिभाको। फ्रॉयडके मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तोंका प्रभाव बुच्चि-बाबूकी रचनाओंमें परिलक्षित होता है। 'मेरे बारेमें कहानी लिखो न?' 'जंगल-को चाँदनी', 'ज़ीनेकी सीढ़ियाँ', 'मणिदीप', 'निरन्तर-त्रय' आदि आपकी सुप्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

भरद्वाज, धनिकोंड, अनिसेट्टि आदि फ्रॉयडके सिद्धान्तोंको मानकर लिखनेवाले लेखक हैं तो शण्डिला, मधुरान्तकम्, राजाराव, बलिवाडा कान्ताराव, भास्कर भट्ल, कृष्णाराव आदि पारिवारिक जीवनकी समस्याओंका चित्रण करते हुए अच्छी कहानियाँ लिख रहे हैं। अन्य उदीयमान लेखक असंख्य रचनाओंसे तेलुगु के कथा-साहित्यको सम्पन्न बना रहे हैं।

कथा-साहित्यको सम्पन्न बनानेवाली लेखिकाओंकी संख्या भी कम नहीं है। पारिवारिक जीवनके सुन्दर तथा मार्मिक चित्र इनकी रचनाओंमें दृष्टिगत होते

हैं। श्रीमति इल्लिन्दल सरस्वती देवी, मालती चन्दूर, वसुन्धरा, एल्लाप्रगड़ सीता कुमारी, वासिरेड्डी सीता देवी, अद्दैपल्लि विवेकानन्द देवी, नन्दगिरि इन्दिरा देवी, ए० रमा देवी, छाया देवी, श्रीदेवी, जानकी रानी आदि प्रसिद्ध लेखिकाएँ हैं।

तेलुगुमें अन्य भाषाओंकी कहानियोंके सुन्दर अनुवाद हुए हैं और हो रहे हैं। प्राच्य और पाश्चात्य कहानी-साहित्यके द्वारा नयी चेतना और शक्तिका अनुभव कर, लेखक कई सुन्दर और मौलिक रचनाएँ कर रहे हैं। तेलुगुका कथा-साहित्य-भारतीय साहित्यमें उत्कृष्ट स्थानका अधिकारी बना हुआ है। वस्तु संविधान और शिल्पकी उत्तमताको लेकर, आशा है, अद्यतन भविष्यमें तेलुगुके कथाकार भारतीय कथा-साहित्यको और भी सुसम्पन्न बनायेंगे।

• बंगला कथा-साहित्यकी नयी दिशा 'विवर'

गीता बनर्जी

बंगला साहित्याकाशमें 'विवर' एक धूमकेतु है। 'विवर' अर्थात् समरेश बसुका नया उपन्यास : जिसे पढ़कर बंगलाका बुद्धिजीवी वर्ग भरपूर झकझोर उठा है। कुछ तो यह कहते हैं कि 'विवर'में युगधर्मी रचनाके सारे लक्षण उपस्थित हैं। यह एक दुःसाहसी, वास्तवधर्मी, मननशील रचनाका प्रतिभू होनेका अधिकारी है। यही नहीं, कहा तो यह भी जाता है कि बंगलाके सर्वश्रेष्ठ दस उपन्यासोंमें इसे स्थान मिलना चाहिए। वहीं कुछ यह भी कहनेवाले हैं कि यह उपन्यास आदिसे अन्त तक अश्लीलताका प्रवाह है। 'विवर' एक अस्वस्थ, विकृत दृष्टि-प्रसूत रचना है जिसे पढ़नेसे घिन आती है।

यदि साहित्यमें तत्कालीन सामाजिक जीवनकी प्रतिच्छवियाँ न अंकित हुईं, वहो परिवेश न प्रस्तुत हुआ तो शायद उसे साहित्य स्वीकार भी करना कठिन होगा। कल्पना-प्रसूत रंगीन साहित्यका युग तो बहुत पहले ही समाप्त हो चुका

है। आज यदि हम ध्यानसे देखें, तो स्पष्ट दिखाई देगा कि हमारा युग भयानक सन्त्रासकी स्थितियोंसे गुज़र रहा है, सड़े हुए सामाजिक जीवनमें गन्दे कीड़े रेंग रहे हैं। और अगर सचमुच हमें यह लगता है, हम यह स्वीकार करते हैं तो हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि 'विवर' ने गन्दगी फैलायी नहीं बल्कि उस गन्दगीको सिर्फ़ दिखा-भर दिया है।

'विवर' के नायकके चरित्रको विश्लेषित करनेपर हमें यह स्पष्ट दीखता है कि वह एक भटकता हुआ नायक है जो चिकनी और बनावटी सभ्यताके धक्केसे क्षुब्ध है। और इसीलिए युगीन मन्त्रणाओंके प्रकोपसे वह सभी प्रकारके, सभी वर्गोंके जीवनकी परिक्रमा करके एक अशान्त अपराधी बन गया है। वह आजके बंगालके नवयुवक वर्गका प्रतिनिधि है। दरअसल १९वीं सदीसे लेकर आज तक जो स्वेच्छाचारी शिल्पकरण बंगालमें चल रहा है उसकी प्रतिक्रियाएँ व्यापक और भयंकर रूपसे आजके बंगालके नवयुवक-मनपर हो रही हैं। उसके लिए अब आदर्श और नीति-बोध सर्वथा खोखले हो चुके हैं तथा 'सेण्टीमेण्ट' को वह केवल उपहासकी चीज़ मानता है। 'विवर'का नायक भी अपने दमघोट परिवेशमें मनुष्यकी स्वतन्त्रता और उसके अस्तित्वकी सुरक्षाके लिए जूझ रहा है, परेशान है।

समरेश वसुने, चूँकि अपने उपन्यासको नैतिक मूल्योंकी कसौटीपर भी कसना चाहा है इसीलिए उन्होंने नायकके प्यार उसकी प्रेमिका 'नीता' की हत्या और नायकके नौकरसे अलग होने तककी कथा भी कही है। यही कारण है कि उपन्यासमें मुख्य रूपसे नायकके अस्तित्व और स्वतन्त्रताका प्रश्न तेज़ीसे मुखर होता गया है। बड़ी बात जो ध्यानमें रखनेकी है वह यह कि सामाजिक पृष्ठभूमि-में ही समरेशने अपने नायक-चरित्र, और उसकी समस्याओंको चित्रित करना चाहा है। और यह निस्संकोच भावसे कहा जा सकता है कि अपने इस प्रयासमें समरेश वसुको पूरी सफलता मिली है।

यदि हम एकान्तमें कभी यह सोचें कि आपकी सभ्यतामें सत्य, शिव और सुन्दर कहाँ हैं, तो हमें स्पष्ट यह दीखेगा कि हम बनावटी सभ्यताके शिकार बन गये हैं। दूसरे महायुद्धके बादके दर्द और पीड़ासे आज भी हमारा समाज कराह रहा है। और समरेश वसुने इसी निराशामय जटिलताके बीच 'विवर' के नायक-को प्रतीक रूपमें प्रस्तुत किया है।

'विवर' के ही सन्दर्भमें बहुत-से लोग इस बातसे चिन्तित हैं कि यदि यह उपन्यास 'नाबालिगों' के हाथमें पड़ गया तो ? यह प्रश्न लोगोंको जितना परेशान किये हुए है उत्तर उसका उतना ही सरल है। सच तो यह है कि हमारी आजकी सभ्यता ही इस समस्याका समाधान प्रस्तुत करती है। आजके तरुण छात्र और छात्राएँ 'लोलिता', 'लेडी चैटर्लीज लवर' और 'कारपेट बैगर' के इतने समझदार पाठक और पत्रिकाएँ हैं कि उनके लिए 'विवर' साधारण है।

बुद्धदेव वसुने एक बार लिखा था कि जिस बातको उन लोगोंने लिखना चाहा और लिख नहीं सके, 'शेष्टेर कविता' लिखकर रवीन्द्रनाथने पथ-निर्देश किया था। ठीक उसी प्रकार, आज जो लोग क्रुद्ध-क्षुब्ध भूखे समाजके क्षीयमान वास्तविक चित्र तथा आधुनिक जीवन-दृष्टिकी प्रत्ययहीनताके सम्बन्धमें लिखना चाहते हैं, पर लिख नहीं पा रहे हैं वास्तवमें, उनके लिए 'विवर' एक दिशा-निर्देश है।

'दुर्गेश नन्दिनी' से लेकर 'पुतुल नाचेर इतिकथा' के बीच बंगला कथा-साहित्यके राजपथपर, 'मीलके पत्थर' बहुत थोड़े हैं। जो हैं उनमें अब एक यह 'विवर' भी निस्सन्देह सम्मिलित हुआ, जो बंगला कथा-साहित्यकी नयी दिशाका पता बतायेगा।

• कन्नड़-साहित्यको महिलाओंकी देन

सोमशेखर 'सोम'

साहित्य जिस प्रकार पुरुषोंकी साहित्य-साधनाका ऋणी है, उसी प्रकार महिलाओंका भी चिर ऋणी है। किन्तु पुरुषोंने साहित्यकी जितनी सेवाएँ की हैं उतनी शायद महिलाओंने नहीं। कन्नड़ साहित्यके साथ भी यही हुआ। फिर भी कन्नड़ साहित्यके लिए महिलाओंका जो योग प्राप्त हुआ है, उसकी परम्परा बहुत ही प्राचीन है। दसवीं शताब्दीमें ही राजशेखरने अपनी काव्य-मीमांसामें ये विचार व्यक्त किये थे कि पुरुषोंकी भाँति महिलाएँ भी कवियित्रियाँ बन सकती हैं। राजकुमारियाँ देवदासियाँ आदि कवियित्रियाँ

बनी हैं, और ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामने सम्मुख हैं। कन्नड़ साहित्यमें भी दसवीं शताब्दीमें तथा इसके पूर्व भी अवश्य ही कवियित्रियाँ होंगी। किन्तु अबतक इस सम्बन्धमें सम्पूर्णतः सही जानकारी अनुपलब्ध है। मूलतः महिलाओंकी देन कन्नड़ साहित्यके लिए १०१० ईसवीमें मानी जा सकती है। इनमें गंगादेवी, जो विजय नगरके कुँवर कंपण्णकी धर्मपत्नी थीं, का नाम गौरवके साथ लिया जा सकता है। द्वारसमुद्र बल्लाल रायके आस्थानमें कंति नामक महिला थी जिन्हें 'अभिनव वाग्देवी' की उपाधि मिली थी – इन्होंने भी कन्नड़ साहित्यकी बड़ी सेवा की, जिसकी परम्परा विजयनगरकी हदिबदेय धर्मकी रचनाकर्त्री तिरुमलाम्बे, होन्नम्मा, तथा इनके भी पूर्व अक्कमहादेवी, हेलवनकट्टे गिरियम्मा मोलिगे मारय्यकी पत्नी महादेवी तक बनी रही। हिन्दी साहित्यमें मीराका जो स्थान, मान, साधना है, वही कन्नड़में अक्कमहादेवीका है।

अक्कमहादेवीके वचन कन्नड़ संस्कृतिकी मूल शाखाएँ हैं। इन्होंने अपनी वाणीमें जो आत्मनिवेदन किया है वह वास्तवमें हृद्य है। शुद्ध भक्ति इनकी वाणीमें कूट-कूटकर भरी है।

इनकी परम्परा २०वीं शती तक बनी रही है। स्वतन्त्रताके पूर्व तथा तदनन्तर जो कुछ भी महिलाओंसे लिखा गया है वह अपेक्षाकृत कम ही रहा है। फिर भी उपन्यास कहानी आदि विधाओंकी अभिवृद्धिके लिए जो कार्य महिलाओंसे बन पड़ा है, वह कम सराहनीय नहीं है २० वीं शताब्दीके पूर्वकी परम्परामें नंजनगूडकी तिरूमलाम्बे तथा बेंगलोरकी आर० कल्याणम्माके नाम बड़े गौरवके साथ लिये जा सकते हैं। इनका साहित्य आगे आनेवाले साहित्यके लिए एक नींव-सा रहा है। उनका साहित्य उपदेशात्मक था फिर भी साहित्यमें रसका परिपाक कम नहीं हुआ है।

आधुनिक कन्नड़में यदि किसीने सुन्दर काव्य रचना की है तो वे हैं बेलगेरे जानकम्मा जिन्होंने उत्तम कोटिका काव्य लिखा है। विशेष तौरपर यह देखा गया है कि पुरुषोंकी अपेक्षा महिलाएँ बहुत कम काव्य-रचना किया करती हैं यह विश्व साहित्यकी एक कमी ही मानी जा सकती है। आधुनिक-काव्यके लिए श्रीमती जानकम्माका जो योगदान रहा है वही कथा-साहित्यके लिए कोडगुकी श्रीमती गौरम्माजीका है। इस परम्पराकी लेखिकाओंकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि अपेक्षाकृत उपदेशात्मकता इनमें कम है। जीवनके रागात्मक

भाव-विभावोंमें, बिम्ब-प्रतिबिम्बोंमें एक प्रकारकी नवीनता इनमें झलकती है। भाषा तथा शैलीमें भी पूर्व साहित्यकी अपेक्षा एक असीम परिवर्तन हुआ है। काव्यात्मकता तथा आलंकारिकता इनकी भाषाकी सबसे बड़ी विशेषता रही है। सामाजिक समस्याएँ साहित्यमें उठायी गयीं तथा समाधान भी ढूँढ़े गये। मानवका व्यक्तित्व साहित्यका विषय बना। मानव तथा उनकी व्यक्तिगत समस्याएँ साहित्य-के विषय बने। साहित्यकी कलात्मकता अपनी चरम सीमापर पहुँच गयी।

इस दशकमें जिस साहित्यका निर्माण महिलाओं-द्वारा हुआ, वह वास्तवमें कन्नड़की एक अमूल्य निधि है, अपार सम्पत्ति है। इन दस वर्षोंमें अनेकानेक नयी लेखिकाएँ कन्नड़ साहित्यके क्षितिजपर उभरी हैं। जो गत १० वर्षोंसे साहित्य-साधनामें तल्लीन थीं, उनका साहित्य आज ठोस बन पड़ा है। उसमें हर दृष्टिसे गाम्भीर्य आया है। यहाँपर दो नाम बड़े गौरवके साथ लिये जा सकते हैं जिन्होंने कन्नड़ साहित्यकी वृद्धिके लिए अपना सब कुछ त्याग कर दिया। वास्तवमें कन्नड़ साहित्य दुर्भाग्यशील रहा है। क्योंकि वह इन दोनों स्रष्टाओंको कालके गर्तसे बचा न सका। इन दोनोंने अभी-अभी साहित्यके बीज बोये थे टहनियाँ निकली ही थीं कि मृत्यु-तूफ़ानने उन्हें जड़से उखाड़ फेंका। ये दोनों हैं श्रीमती त्रिवेणी तथा श्रीमती एम०के० जयलक्ष्मी। श्रीमती त्रिवेणी तो अँगरेज़ी-की जेन आस्टिन थीं, इनका साहित्य मानवका साहित्य था। और जयलक्ष्मीका विषय था महिला–जगत्।

कथा साहित्य : इस दशकको समृद्धतम साहित्यिक विधा है कहानी। इस विधाके विकासार्थ महिलाओंने भी परिश्रम किया है। श्रीमती वाणी, एच०बी० सावित्रम्मा, जयलक्ष्मी श्रीनिवास, त्रिवेणी, अनूपमा, गीता कुलकर्णी, उषादेवी, आनन्दी सदाशिवराव, राजलक्ष्मी, एन० राव, राजेश्वरी नरसिंहमूर्ति, एम० के० इन्दिरा, एम०के० जयलक्ष्मी, सुशीला कोप्पर, एच० एस० पार्वती, इन सबने सर्वोत्तम कहानियाँ लिखी हैं। इनकी कहानियाँ कहानी तत्त्वोंके आधारपर लिखी गयी हैं। सामाजिक समस्याएँ तथा मानव-जीवन इनकी कहानियोंमें पूर्णताके संग उभरे हैं। प्रयोगात्मक शैलीके माध्यम-द्वारा अतीव स्वाभाविक ढंगसे विचार व्यक्त किये गये हैं। श्रीमती जयलक्ष्मी श्रीनिवासन् तथा एच० बी० सावित्रम्माके कथा-संग्रह १० वर्ष पूर्व प्रकाशित हुए थे।

श्रीमती वाणी, गीतादेवी, एम० के० इन्दिरा, आनन्दी सदाशिवराव, राजे-श्वरी नरसिंहमूर्तिकी कहानियाँ बहुत ही सरल, अतीव सुन्दर बन पड़ी हैं तथा हर कहानी परिवारका प्रतीक है। श्रीमती वाणीके दो कथा संग्रह 'अर्पणे' (१९५७) में तथा 'नाणिय मदुवे' (१९६२) में प्रकाशित हुए। ये दोनों संग्रह वाणीके कहानी-कलाके सजीव प्रतिनिधि हैं। गीता कुलकर्णीने तो इस छोटी-सी विधाके द्वारा ही पाठकोंको रसास्वादन कराया। 'पुट्ट गौरम्म' इनकी बहुत ही सुन्दर एवं सफल कहानी है। 'तेलिहोद मोड़' तथा 'मौन सन्धान' इनके ये दो कथा-संकलन नारी-जगत्के मार्मिक चित्र हैं।

श्रीमती आनन्दी सदाशिव रायका 'अर्पणा' कथा-संग्रह भी नारी-जीवनकी विविध भावनाओंका प्रतिनिधि है। श्रीमती राजेश्वरी नरसिंह मूर्तिकी 'बेलदिंगल रात्रि', 'सीनामावके सेरिदलु', 'आशा निराशा' आदि कहानियाँ पारिवारिक समस्या-ओंके चित्र हैं। श्रीमती सुशीला कोप्परका कहानी संग्रह 'लेखक न हेण्डती', श्री-मती एच०एस० पार्वतीका 'हेण्णु हृदय' आदि उल्लेखनीय कहानी संग्रह है।

उपन्यास-कथा-साम्राज्ञी त्रिवेणीने तो मनोवैज्ञानिक कहानियोंका निर्माण किया। समस्येय मूगु, 'हेडतिय हसरु' ये दोनों मनोवैज्ञानिक कहानियाँ हैं। चिनन्द रस' 'बेड नम्बर एकु' त्रिवेणीकी कहानियाँ हैं।

श्रीमती अनुपमा निरंजनका नीटिगे नैदिले श्रृंगार एक अत्युत्तम कहानी संग्रह है। आजकल तो इनकी अधिक कहानियाँ आ रही हैं। जिनमें 'बेलकु कत्तलि-नाट' 'वेवकं केलगु' अनुपमाजीकी कहानी कलाके विकसित रूप हैं। कहानी विधानमें एक नवीनता आ गयी है। ये दोनों कहानियाँ इनकी प्रौढ़ रचनाएं मानी जा सकती हैं।

उपन्यास साहित्य : जीवन, साहित्य, समस्याएँ त्रिवेणीके उपन्यासोंके विषय हैं। यही त्रिवेणी-संगम, त्रिवेणीके साहित्यमें साकार हो उठा है। श्रीमती त्रिवेणीने अपने जीवनकी अल्पावधिमें बीस उपन्यास लिखे जिनमें 'हण्णेले चिगुरि-दाग' उनका अन्तिम उपन्यास है। उनके उपन्यासोंमें 'बेक्किल कण्णु', 'दूरद बेट्ट', 'मुच्चिद बगिलु' प्रमुख हैं। मानव-हृदय-अन्तरके घात-प्रतिघातका सजीव चित्रण ही इनके उपन्यासोंकी सर्वोत्तम विशेषता है। 'अपस्वर', 'कंकण', 'वसन्तगान', 'हृदयगीते' 'तावरेय कोल', 'काशीयात्रे', उपन्यासोंमें स्त्रीके बाह्य एवं आन्तरिक मनोभावोंका जो सुन्दर चित्रण हुआ है, वह अत्यन्त दुर्लभ है।

श्रीमती वाणीके उपन्यास 'बिडुगड़े', 'चिन्नद पंज' 'एरडु कनसु' (मनेमगलु) 'शुभ मंगल', 'कावेरिय मडलल्लि' आदि पारिवारिक जीवनके जीते-जागते चित्र हैं। अनुपमाने अपने उपन्यास 'श्वेताम्बरी'में स्त्री-स्वातन्त्र्यपर प्रकाश डाला है। 'नूलु नेरद चित्र' उपन्यासमें गाँवका सजीव चित्र उपलब्ध होता है।

श्रीमती एम०के० जयलक्ष्मीके सामाजिक उपन्यास 'निदेय नेले' 'मायदबले', 'संसार-समर' 'बालु बेलगितु' पारिवारिक समस्याओंके प्रतिनिधि हैं। श्रीमती उपादेवीके 'मोग्गिन जड़े' तथा 'धूमकेतु' आम जनताके मनोविकारोंके हृदय-स्पर्शी रंगीन चित्र हैं।

काव्य : श्रीमती जयदेवी लिगाड़े तथा कुमारी एल०जी० सुमित्रका योगदान इस दिशामें सराहनीय है। सुमित्रजीके काव्य 'मुत्याल मडु', 'काव्य कावेरी' प्रकृतिके प्रांगणमें विकसित हुए हैं। श्रीमती जयदेवीजीकी 'ताई य पदगलु' काव्य साहित्यके लिए एक नयी देन है। ये गीत लोक-गीतोंकी शैलीमें विरचित हैं। इन गीतोंमें जीवन-ही-जीवन है, अनुभव-ही-अनुभव है। सहज रूपसे प्रस्फुटित ये गीत मानव हृदयके सुन्दर उद्‌गार हैं।

काव्य-नाटक : काव्य-नाटक लेखिकाओंमें एक मात्र महिलाका नाम उल्लेखनीय है। श्रीमती भारतीने सन् १९५७ में 'महासती' नामक एक काव्य-नाट्यकी रचना की। इस काव्य-नाटकने कन्नड़ साहित्यमें अपना एक मात्र स्थान स्थापित किया।

नाटक : यहाँपर श्रीमती टी० सुन्दरम्माका नाम बड़े गौरवके साथ लिया जा सकता है। 'आदर्शद आडम्बर', 'सामूहिक पाठशाले', 'दीपावली धूपावली', 'अत्तेमने दीपावली' आदि एकांकी अपना विशेष स्थान स्थापित करते हैं। सन् १९६४ में इनके तीन नाटक 'गृह लक्ष्मी', 'कूसु हुट्टुबुदक्केमुंचे' 'चिक्कप्पन वडूलु' प्रकाशित हुए। इनके सबके सब नाटक अभिनीत हुए हैं।

जीवनियाँ : श्रीमती एच० वी० सावित्रम्माने पूज्य महात्माजीकी जीवनीका अनुवाद किया है। एम०, आर० लक्ष्मम्माकी, 'एलिनार रूज़वेल्ट', उषादेवीकी 'अमेरिकद महिलेयरु', शकुन्तल नाडिगकी 'विजयलक्ष्मी पण्डित', चि० न० मंगलकी 'हेलन केलर' आदिकी जीवनियाँ कन्नड़ साहित्यके जीवनी-साहित्यके लिए गौरवास्पद हैं।

बाल-साहित्य : श्रीमती जयलक्ष्मी श्रीनिवासन्ने 'मोहन मालै' कथा-संग्रहमें बालोपयोगी कहानियाँ लिखी हैं। श्रीमती पुट्टतायम्माकी 'चिटारी मोल' कहानी बाल-साहित्यकी सुन्दर कला-कृति है।

विचार, विज्ञान, आलोचना : श्रीमती भारती, सरोजनी, महिषी और मंगला आदिके आलोचनात्मक लेख इसके अन्तर्गत उल्लेखनीय हैं। डॉक्टरी विषयपर आधारित अनुपमा निरंजनकी अप्रकाशित पुस्तक 'ताई मल्लुमगु' इस दिशामें एक महत्त्वपूर्ण कलाकृति मानी जा सकती है। गृह-विज्ञानसम्बन्धी लिखित ग्रन्थोंमें श्रीमती सरोजनी महिषी तथा शान्तादेवी मालवाड़का नाम उल्लेखनीय है।

इसके अलावा कन्नड़ साहित्यके अनुवाद साहित्यका भी विकास महिलाओं द्वारा हुआ है। रवीन्द्र बाबूके उपन्यास 'गोरा', नौकाघात 'मने जगत्तु' आदिके अनुवाद श्रीमती सावित्रम्माने किये हैं। आर० के० नारायणके अँगरेजी उपन्यासों का अनुवाद श्रीमती मंगलने किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कन्नड़ साहित्य अपनी अभिवृद्धिके लिए महिलाओंका चिर ऋणी है। महिलाओंने अपनी कृतियोंमें मानव जीवनकी समस्याएँ, राजनीतिक समस्याएँ तथा आर्थिक, धार्मिक समस्याएँ उठायी हैं तथा उनके समाधान भी ढूँढ़े हैं। महिलाओंने सरस्वतीकी आराधना की है तथा कन्नड़ साहित्यके विकासमें अपना सहयोग दिया है। वास्तवमें कन्नड़ साहित्य नारी-जगत्का हार्दिक ऋणी है। यह आशा की जा सकती है कि आगामी दशकमें भी इसी प्रकारका सहयोग उनसे प्राप्त होगा।

— सोमशेखर 'सोम'

● ●

[इस लेखके लिखनेमें 'कन्नड़ नुड़ि' की सहायता ली गयी है। लेखक उक्त पत्रिकाका आभार मानता है।]

एक उपन्यासके बारेमें

जो तेरह भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित
हुआ है और अब अमेरिकासे अँगरेजीमें भी !

सुधाकर सर्वज्ञ

श्री अनन्त गोपाल शेवड़ेके प्रसिद्ध उपन्यास 'ज्वालामुखी' का अँगरेज़ी अनुवाद 'द वॉल्कैनो' नामसे हालमें ही न्यूयॉर्कसे प्रकाशित हुआ है। उल्लेखनीय बात यह कि मूल कृति हिन्दीमें है और अँगरेजी अनुवाद स्वयं लेखकने किया है।

लेखक श्री शेवड़े अनेक वर्षोंसे अँगरेज़ी पत्रकारितासे सम्बद्ध हैं। सद्यः 'नागपुर टाइम्स' से। इस प्रकार जहाँ उनकी मातृभाषा मराठी है, अँगरेज़ी पत्रकारिताको उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र बनाया है, और गान्धीजीकी प्रेरणापर राष्ट्रभाषा हिन्दीको अपने साहित्यिक लेखनका माध्यम। अबतक उनके ९ उपन्यास, २ कथा-संग्रह और ७ निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

शेवड़ेजीके कई उपन्यासोंका अन्य भारतीय भाषाओंमें भी अनुवाद हुआ है। पर 'ज्वालामुखी'को नैशनल बुकट्रस्टने सभी भारतीय भाषाओंमें अनुवादके लिए चुना था। अबतक १० भारतीय भाषाओंमें यह प्रकाशित हो चुकी है : हिन्दी, बांगला, गुजराती, कन्नड़, मराठी, मलयालम, पंजाबी, तमिल, तेलुगु, उर्दूमें। तीन अन्य भारतीय भाषाओं—असमिया, उड़िया, कश्मीरी—में मुद्रणस्थ है।

'ज्वालामुखी' के अँगरेज़ी अनुवाद 'द वॉल्कैनो' के प्रकाशकने इसके विषयमें कहा है कि पश्चिमी देशोंके पाठकोंको भारतीय संस्कृति एवं जीवनप्रणाली तथा गान्धीजीका अहिंसात्मक दर्शन समझनेमें इस पुस्तकसे बड़ी सहायता मिलेगी। अमेरिकामें इन दिनों रंग-विभेदके विरुद्ध और समानाधिकारोंके लिए जो तीव्र आन्दोलन चल रहा है उसके सन्दर्भमें उन्होंने 'द वॉल्कैनो' के प्रकाशनको बड़ा सामयिक तथा उपयोगी बताया है।

'ज्वालामुखी' लिखनेकी कल्पना लेखकके मनमें तब आयी जब यहाँ स्वतन्त्रता-आन्दोलन खूब जोरोंपर था और वह स्वयं जेलमें बन्द था। और क्योंकि पुस्तकमें उस युगके भीषण दमनका ही चित्रण और गान्धीवादी राज्यक्रान्तिका निरूपण किया जाता, इसलिए प्रकाशनसे पूर्व ही जप्त कर लिये जानेके भयसे लिखी यह बादमें गयी जब लेखक कारामुक्त हो गया। मूल हिन्दी संस्करण १९५६ में प्रकाशित हुआ।

भारतके प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसादने इस उपन्यासको सन् '४२ के राष्ट्रीय आन्दोलनके 'सजीव एवं यथार्थ चित्रण' के रूपमें सराहा तो डॉ० सम्पूर्णानन्दने उसे 'स्फूर्तिदायक' कहा। और जहाँ एक ओर वह हिन्दीके वरिष्ठ साहित्यकारों-द्वारा प्रशंसित हुआ वहाँ दूसरी ओर उसपर पाठकोंकी प्रतिक्रियाएं भी बड़ी उत्साहजनक रहीं।

इस उपन्यासके प्रकाशनके बाद कुछ समय इसकी कटु आलोचनाएँ भी हुईं। यह आलोचनाएँ कुछ तो ऐसे क्षेत्रोंसे हुईं जो गान्धीवादी विचारधारासे गहरा मतभेद रखते थे; और कुछ अन्य समीक्षकोंकी ओरसे हुईं जो प्रामाणिकताके साथ मानते थे कि उपन्यासमें कोई दम नहीं है और नैशनल बुकट्रस्टका निर्णय सही नहीं रहा।

जो हो; तीन वर्ष बाद अर्थात् १९६९ में गान्धीजीकी जन्मशती है। तब गान्धीजीके विचारोंको फिरसे, नयी पृष्ठभूमिमें, देखने-समझनेका वातावरण उप-स्थित होगा। हो सकता है इस उपन्यासकी ओर ऐसे समीक्षकोंका फिर ध्यान जाये और अपनी शक्तिशालिताको यह तब प्रभावित कर सके।



लेखक और पाठक और प्रकाशक भी

यह आवश्यक है कि आजका लेखक अपने परिवेशको ईमानदारीसे देखे और चित्रित करे

सुबोध शास्त्री

आज देशमें छपनेवाली पुस्तकोंकी भरमारके बावजूद सृजनात्मक रचनाओंके पाठकोंकी संख्या बहुत कम है। ऐसा नहीं है कि यह स्थिति केवल भारतमें (या विशेषकर हिन्दीमें) ही है। पश्चिमी देशोंमें भी कमोबेश यह एक बड़ी समस्या बनी हुई है। समाजवादी देशोंमें तो लेखकों-पाठकों और प्रकाशकोंकी समस्याओंपर पत्र-पत्रिकाओंमें खुलेआम बहसें होती हैं; और यथासम्भव समाधानोंकी तलाश भी की जाती है। इन बहसोंमें लेखक-पाठक-प्रकाशक तीनों भाग लेते हैं। लेकिन पूँजीवादी देशोंमें समस्या (कमसे कम लेखकके सन्दर्भमें) ही भिन्न है। वहाँका लेखक तो 'अकेलेपन' और 'अलगाव'की अनुभूतियोंमें जी रहा है और यही उसकी बड़ी समस्याएँ हैं।

अपने यहाँ बिलकुल भिन्न समस्याएँ हैं। पाठकोंका एक वर्ग ऐसा है जो महज 'समय काटनेके लिए' या 'मन-बहलाव'के लिए पढ़ना चाहता है। एक वर्ग ऐसा है जो अपने मतलबकी यानी 'कोर्स बुक्स' पढ़ता है। बहुत थोड़े पाठकोंका वर्ग है जो गम्भीर सृजनात्मक रचनाएँ पढ़ना चाहता है। यह सब तो एक तरफ़—एक बड़ी पुरानी समस्या साथ ही यह भी है कि इनमें-से कितने हैं जो अपने 'मतलब'की किताब खरीदकर पढ़ते हैं? यह सही है कि हमारे देशकी अधिकांश जनता रोटी-रोज़ीके पाटोंमें पिस रही है। वह अपनी दैनिक आवश्यकताओंकी चीज़ें जुटानेमें ही परेशान रहती है। बावजूद इस सबके इनमें-से बहुतेरे ऐसे होते हैं जो पुस्तकें खरीदकर पढ़ते हैं। लेकिन इन खरीदनेवालोंकी संख्या इतनी कम है कि प्रकाशन-व्यवसाय इनके भरोसे नहीं चल सकता। और

तब विवश होकर प्रकाशन-व्यवसायको राजकीय खरीदकी ओर झुकना पड़ता है, जिसकी सफलताके लिए उसे तमाम कूटनयिक पेशबन्दियाँ भी आयोजित करनी पड़ती हैं। वैसे, प्रकाशकोंके लिए यह जरूरी है कि पुस्तकोंके वितरण और प्रचार-प्रसारके सम्बन्धमें उन्हें सरकारी खरीदपर निर्भर न करके स्वावलम्बी बनना चाहिए और पुस्तकोंको अधिकसे अधिक लोकप्रिय बनानेका प्रयत्न करना चाहिए। ठीक इसी प्रकार पाठकोंके लिए भी, अपनी तमाम कठिनाइयों और 'पेचीदगियों'के बावजूद, यह जरूरी है कि वे अधिकसे अधिक पुस्तकें खरीदकर पढ़ें। क्योंकि इससे न केवल प्रकाशन-व्यवसायकी एक महत्त्वपूर्ण समस्याके समाधानकी सम्भावना है बल्कि, एक हद तक, लेखककी भी कुछ कठिनाइयाँ सुलझ सकती हैं, उसे आर्थिक दृष्टिसे कुछ बेफ़िक्री हो सकती है।

कहना न होगा कि आजके (सीधे-सीधे कहें तो हिन्दीके) लेखकके सामने सिर्फ़ आर्थिक कठिनाई ही नहीं है। यद्यपि मूल प्रश्न तो यही है कि लेखक आज अपनी कृतियोंसे क्यों नहीं जी पाता ? यह एक जटिल प्रश्न है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह सही है कि आजका लेखक आगे बढ़ रहा है जिसके चलते साधारण पाठक और लेखकके बीच खाई बढ़ रही है, बढ़ती जा रही है। आजका लेखक अपने व्यक्तित्वकी स्वतन्त्रता और अपने अस्तित्वकी सुरक्षाके लिए परेशान है। आगे आनेवाले एक बड़े खतरेको भी वह महसूस कर रहा है। कहा यह भी जा सकता है कि इन सारी परेशानियों और बड़े खतरेके लिए बहुत अंशोंमें स्वयं लेखक भी जिम्मेदार है। हम देखते हैं कि जहाँ लेखकोंकी संख्यामें लगातार वृद्धि हो रही है उसी अनुपातमें साधारण पाठकके शिक्षा और सांस्कृतिक धरातलको सामूहिक रूपसे उठानेका प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। न इस प्रकारकी कोई योजना ही बनी है। यही नहीं, हो तो यह रहा है कि सामान्य पाठकके पास 'हॉट लिटरेचर' बड़ी सुगमतासे पहुँच रहा है। और इसीका यह परिणाम भी कह सकते हैं कि लिजलिजी आधुनिकतावादी लेखकोंका एक वर्ग 'नंगी-देहोंमें सरसराहट पैदा करनेवाला साहित्य' धुआँधार लिख रहा है। वास्तवमें आजके अधिकांश लेखक बिना श्रम किये अधिकसे अधिक श्रेय प्राप्त करना चाहते हैं। वे पाठकोंके 'नजदीक' आनेकी कोशिश नहीं करते। वे यह नहीं महसूस करते कि उन्हें अपने 'पाठक-मण्डल'का भी सृजन और संगठन करना चाहिए ताकि किसी समय वे सही अर्थोंमें 'आत्म-

निर्भर' बन सकें। कहना न होगा कि अब वह समय आ गया है जब मौलिक सृजनशक्तिसे ही काम नहीं चलेगा। आजके लेखक खासतौरसे बिलकुल नये लेखकोंके लिए आजकी तथाकथित 'वास्तविकताओं'को भी आत्मसात् करना आवश्यक है। जरूरी है कि आजका लेखक जीवनके विविध प्रसंगोंको अभिव्यक्तिके विभिन्न माध्यमोंसे प्रस्तुत करे और उन्हें पहचाने। ईमानदारीसे लिखना और रहना आज बहुत आवश्यक है; और यह सम्भव भी है।

पुस्तक प्रकाशन-व्यवसाय गिने-चुने लोगोंके हाथोंमें केन्द्रित है। यद्यपि इस व्यवसायमें भी अब 'कुटीर उद्योग' जैसे प्रयोग देखने-सुननेमें आ रहे हैं। कई दृष्टियोंसे यह लेखकोंके लिए हितकर भी है किन्तु इसकी सफलतामें बड़े खतरे भी सामने हैं। व्यवसायी प्रकाशक तो अपने सामने किसी भी पुस्तकको छापते समय यह कसौटी रखता है कि पुस्तक बाज़ारमें बिक सकेगी या नहीं। शायद मुद्रणका खर्च बढ़नेके कारण कुछ प्रकाशक खासतौरपर 'पेपर बैक्स'वाली पुस्तकोंको अधिक संख्यामें छापनेपर ही ज़ोर दे रहे हैं।

ऐसी परिस्थितिमें यह आवश्यक है कि आजका लेखक समाजको, अपने परिवेशको ईमानदारीसे देखे और चित्रित करे। क्योंकि तभी वह 'सत्य'की अभिव्यक्ति करनेमें सफल होगा। अगर हम अच्छा लिखेंगे और सस्ता बेचेंगे तो वह क्यों नहीं बिकेगा? लेखक, पाठक और प्रकाशककी समस्याएँ भी तब क्या अपने-आप एक सहज पद्धतिसे नहीं सुलझेंगी? कहना न होगा कि समाजवादके संघर्षमें सबसे बड़ा समर्थक 'सत्य' होता है। और यह एक बड़ी ज़िम्मेदारी आजके पाठककी है कि वह लेखकोंसे 'सत्य'की, अन्तरात्माके अनुसरणकी माँग करे। क्योंकि तभी हम एक ऐसी संस्कृतिका निर्माण कर सकेंगे जो हमारे राष्ट्रके चरित्र और आत्माको निखार दे, खोयी हुई जड़ोंको खोजनेमें सहायता दे और जो हमारे देशवासियोंको ऊँचा उठाये, बिना किसी भय या लज्जाके रोटी और फूल बांटे!



अक्षरोंका सेतु
कृतियोंकी प्रतिक्रिया

लेखन-प्रकाशनके आयोजन-श्रमकी इकाई अधूरी रहेगी
जबतक पारखी पाठककी प्रतिक्रिया प्रकाशकके
पास होती लेखककी मेज तक न पहुँचे

● **संक्रान्त** : कैलाश वाजपेयी

परास्त बुद्धि (जीवी) का वक्तव्य

कैलाश वाजपेयीका प्रस्तुत संग्रह कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। जिन्हें उनका पूर्व परिचय ही प्राप्त होगा, या जिन्हें वे पसन्द आते होंगे, वे इससे चकित होंगे या निराश होंगे, क्योंकि कैलाश वाजपेयी एक अच्छे गीतकार रहे हैं। उनका विकास गीतसे नयी कविताकी ओर होना उनकी अधीति-सम्पन्नता, सतर्क इतिहास-बोध, परम्पराके प्रति अत्यन्त तटस्थता तथा समग्र वैश्व-चेतनाके प्रति पूर्ण सजगताका प्रमाण है। वे वस्तुतः रोमाण्टिक उद्भावोंके कवि रहे हैं। लेकिन संघर्ष, अनुभव और यथार्थने उनसे काट देनेकी भरपूर कोशिश की। इसे अन्तर्बोध मानें तो इसका कारण बहिर्बोध भी है या हो सकता है। वे भी बहुतोंकी तरह अतीतसे गौरवान्वित तथा भविष्यके प्रति पुलकित रहे हैं। जीवनके विभिन्न सन्दर्भोंमें उनका दृष्टिकोण भी बड़ा सुखद या सुखकी सम्भावनासे परिपूर्ण रहा है। जीवन और जगत्के अनुभवने इस आशाको, इस सम्भावनाको, इस गौरवको नष्ट कर दिया, छिन्न-विच्छिन्न कर दिया। कैलाश वाजपेयी इसीलिए आज विसंगतियोंके कवि हैं। व्यंग्य उनका अस्त्र है। उनकी दृष्टि नकारात्मक है। वे झूठ और विवशताके जहरसे या तो लोहा लेते हैं या उससे कतराते हुए-से या एक स्थिति मानकर तटस्थ हो जाते हैं। वे समूह-चेतनासे बेहद खीझे हुए व्यक्ति-स्वातन्त्र्य अथवा व्यक्ति-व्यक्तिके

प्रति स्वतन्त्रताके प्रति हामी भरनेवाले यानी सम्पूर्णको नकारनेके बाद एक विशिष्ट पर संयत और ठोस, किन्तु नयेके प्रतिष्ठाता हैं। सम्पूर्ण नकार सम्पूर्ण स्वीकार है क्योंकि वह है और उनकी कविता इसीलिए इसे प्रमाणित करती है। यानी वे अनास्थाके कवि हैं। अनास्थाका इतना लयपूर्ण स्वर अन्योंमें अनुपलब्ध है। यह अनास्था इतनी शक्तिशाली है कि उसीसे आस्थाका पल्लवन स्पष्टतः गोचर हो जाता है। वस्तुतः कई अर्थोंमें कैलाश वाजपेयीका देहान्तर हो गया है।

एक वाक्यमें कहना हो, तो कह सकते हैं, कैलाश वाजपेयीकी कविताएँ खौलते पानीमें ताजा कमल-सी हैं। पूरे कविता-संग्रहमें एक जीवन है जो अनुमानतः यूँ है : हरा-भरा अन्धकार है, जिसके हरा-भरा होनेके कारण व्यक्ति मोहग्रस्त है। उसका देहसे सम्पर्क छूट गया है। वह एक दम तोड़ती शताब्दीमें जी रहा है। वह रिक्तिमें प्यार करता है। वही एक ज़िन्दा रहनेकी शर्त है। वरना व्यक्ति आत्महत्या कर लेता। उसका आकाश छोटा हो गया है। भैंसों और ट्रांजिस्टरोंके बीच ज़िन्दगीको धड़कते देखकर वह बिदकता है। उसके इर्द-गिर्द सर्पोंकी घाटी हैं। बिच्छुओंसे भरे हुए कुएँ हैं। जिसमें एक द्वार है। व्यक्ति विकल्पोंसे सोचता है। अनाकर्षणसे गुज़रता है। वह अग्नि-परोक्षितकी स्थितिमें आता है।

इन स्थितियोंको और विस्तारसे या दूसरे शब्दोंमें भी कहें तो भी इसमें शब्दावली और अनुभूतिको दृष्टिसे मायावादसे अद्वैतकी ओर सन्तोंका-सा आकर्षण मिलेगा। अद्वैतसे पहले भी द्वैत और द्वैताद्वैत मिल जायेंगे। जो इन कविताओंमें अस्तित्ववाद ढूँढ़नेकी तनिक भी कोशिश करेंगे, उन्हें या तो निराशा होगी या लगेगा कि सब-कुछ लादा हुआ या ओढ़ा हुआ है। 'दिनमान'वालोंने यही 'साधारण' भूल की थी, क्योंकि इसके अलावा वे कौन-सी बकवास कर पाते!

कैलाशकी कवितामें जोड़ है। वे न पूरे यथार्थके संकटके साझेदार हैं न पूरे रोमाण्टिक। उनकी आधी देहपर समूची शताब्दीका ज़हर है और किसीकी आवाज़का आधी देहपर जादू है। वे जादू और ज़हरके कवि हैं। कविता भी ताज़े कमलोंसे रची देह ही है क्योंकि उनकी कवितामें मांस-वृक्षके फूलोंकी महक है। गुलमोहरका दहकना (उनकी उपमा) भी इसका प्रमाण है। धूप और गुलमोहर, जादू और ज़हर, खौलता पानी और ताज़ा कमल, भैंस और ट्रांजिस्टर

लयध्वनि-भरा जादूमहल और नयी कविता—यही द्वन्द्व, यही मिलावट, यही द्वैत, यही द्वैताद्वैत उनकी—कैलाश वाजपेयीकी अद्वितीयता है। यह द्वैत, द्वैताद्वैत उन्हें अद्वैत (शुद्ध) नहीं रहने देता पौराणिक बना देता है। वे युगकी गाथा कहने लगते हैं अतिरंजनाके साथ। अभिस्यन्दन समाप्त हो जाता है। वे पूरे नये कवि इसीलिए नहीं हैं। 'संक्रान्त' की कुछ कविताएँ गायी जा सकती हैं, क्योंकि वे शुद्ध गीत हैं। वे पूरे गीतकार नहीं हैं क्योंकि उन्होंने पंक्तियाँ तोड़ी हैं और नयी कविता लिखनी चाही है। वे अर्थकी ओर पत्तियोंकी तरह दौड़ते हैं और शब्दके लयात्मक बसन्तमें बँध जाते हैं। उनकी कविताका यही मायावाद उन्हें न तो पूर्ण चिन्तकका स्तर प्रदान करता है, न उनकी मौलिकताको पूर्णता दे पाता है। इसीलिए वे इस रेतके समुद्रसे निकल जानेकी प्रार्थना करते हैं। टूटे अक्षरोंका कड़ुवे सीमान्तपर विलाप करते हैं। यही है परास्त बुद्धि (-जीवी) का वक्तव्य। जो उन्हें सूर और तुलसीकी वैष्णव दीनतासे जोड़ता है।

उनकी कवितामें अनुकृतिकारका ओछा दम्भ नहीं है, लेकिन उनकी कविता परम्परासे लाभ अवश्य उठाती है। वे ऐसा करते हुए कविताका सरलीकरण करते हैं। कैलाश वाजपेयीकी कवितासे पारेकी तरह 'प्रसाद', गिरिजाकुमार माथुर, रघुवीर सहाय, कुँवरनारायण निकल आते हैं। कहीं-कहीं शमशेर, भारती, लक्ष्मीकान्त, जगदीश गुप्तकी भी धुँधली आकृति उभरती है। इसका अर्थ यह नहीं कि उनकी सीधी पंक्तियाँ याद आती हैं, बल्कि उन पंक्तियोंकी समानान्तरता पायी जाती है, जो कौंधके कारण कैलाश वाजपेयीकी सफलता, घुप्प अँधेरेके कारण शुद्ध असफलता भी है। ये कवि शब्दको अर्थ तक ही नहीं ले जाते, बल्कि कई अर्थों तक ले जाते हैं। यूँ कहें कि शब्दोंके विस्फोटसे अर्थों-का अनन्त गूँजने लगता है। लेकिन इन कवियोंकी समानान्तरताके बावजूद कैलाश वाजपेयीके शब्द सीमित अर्थों तक सिमटकर रह जाते हैं। अच्छीसे अच्छी उपमा, दिव्यसे दिव्य बिम्ब, चुनिन्दासे चुनिन्दा शब्द, बढ़ियासे बढ़िया रूपक सब पूरी छविमयतासे चमकते हैं लेकिन अर्थ वही होता है जो हो सकता है। कैलाश वाजपेयीकी कवितामें अर्थ एकवचन है, बहुवचन नहीं। कभी-कभी तो अर्थ भोंड़ा भी हो जाता है। सिलकी तरह स्वतन्त्रताका गिरना सटीक है। लेकिन देशके साथ पिचकनेकी संगति बहुत घटिया है या बैठती नहीं।

यह, कायरता और ओछा इतिहास तक पहुँचनेका बहुत अच्छा प्रमाण है।

यद्यपि ओछा इतिहास भी प्रगतिशीलताका प्रमाण-पत्र तो है ही। पर निश्चय ही कैलाश वाजपेयीकी कविताकी उपलब्धि कायरता और ओछा इतिहास भी है। यह कायरता और ओछा इतिहास अनेकार्थी हो गया है कैलाश वाजपेयीके सन्दर्भ-में। और यह भी कि कैलाश वाजपेयीकी कवितामें बहुत-सी चीज़ें अनुत्तरित हैं या अतिरिक्त हैं या व्यर्थ हैं।

कुल मिलाकर उनकी कविता उस पृथ्वीके समान है जो एटलसकी शक्ति-पर स्थिर तो है, लेकिन उस पृथ्वीसे साँप लिपटा है, जो आजके एटलसको भी क्षति पहुँचाता है।

— श्रीराम वर्मा

●

• अठारह सूरजके पौधे : रमेश बक्षी

रमेश बक्षीको एक बात उसकी पीढ़ीके दूसरे लेखकोंसे ऊपर और अलग करती है। उसके अन्दर अब १९६६ तक एक अबोध बालक ज़िन्दा है, और उसकी ज़्यादातर रचनाओंमें उसके लेखकको अपनी बाँहोंमें और अपने मचलते रहनेकी बेदाग़ अदाओंमें समेट लेता है। भूख और बीमारियोंसे अकाल-वृद्ध बना दिये गये हिन्दी-लेखकोंकी दुनियामें रमेश बक्षी इसलिए एक बेहद खूबसूरत विकल्प है।…सर्जिकल अस्पतालके इस ठण्डे बिस्तरेमें लेटे हुए 'अठारह सूरजके पौधे' पढ़ते वक़्त यह बात बार-बार मुझे अच्छी लगी है। अकारण उत्सुकता, अकारण प्यार, अकारण निद्रा, और अकारण स्टेशनके बाद स्टेशन तक जगे रह जाना—अकारण यात्राएँ, और अकारण अपनी यात्राओंके विषयमें पलायन और पराजयकी बातें सोचते रहना—'फ़्रेममें जड़ा हुआ कमरा'—'मख़मली रूप'—'साबुत आँखें'—अन्दर खुलनेवाले दरवाज़ोंसे, बीते दिनोंसे मेरा कोई वास्ता नहीं'—'अँधेरा मेरे ख्यालोंको छेड़ता है,'—'एक तसवीर बनती है और उसके ऊपर एक साँचीका स्तूप कहींसे आ गिरता है' —'ऐडोलेसेन्स' की सुविधा यही है कि इसमें यही सब होता है और हर बार यही सब होता है—अकारण। अर्थात्, अन्तमें, 'यात्राएँ, केवल यात्राएँ शेष रह जाती हैं।'

बड़ी मिहनत और बेहद फ़नकारीसे शब्दों, उपमाओं, स्थिति-चित्रों और

व्यक्तिगत इच्छाओंके घरौंदे बनाता रमेश बक्षीकी निजी विशेषता है। 'अठारह सूरज' में इस विशेषताके प्रति वह प्रतिबद्ध हो जाता है, जब कि प्रतिबद्ध होनेके लिए और भी कई विशेषताएँ उसकी दृष्टिकी सीमाओंमें हैं।—इन सारी बातोंके साथ, यह सच है कि 'अठारह सूरज' काफ़ी मनोरंजक सामग्री है और, जैसा कि भूमिकामें स्वयं बक्षीने कहा है, इसे रेल-यात्रामें ही पढ़ा जाना चाहिए। मैंने इसे बीमारीके बिस्तरेमें पढ़ा, यह मेरा दुर्भाग्य।

— राजकमल चौधरी

●

● काग़ज़के फूल : भारतभूषण अग्रवाल

कोई माने चाहे न माने, मैं अपने इस निर्णयपर दृढ़ हूँ कि भारतभूषण अग्रवालके तुक्तकोंके मूलमें कवि लीअरके प्रख्यात लिमेरिक नहीं भारतीय लोक-गीत, लोक कथन और बुझौवल आदि हैं। यह और बात कि कवि लीअरकी शैली भी यही है। कहा गया है कि भारतभूषण जीने उक्त कविके लिमेरिकसे प्रभावित होकर लिखा है अथवा उसकी शैलीको उन्होंने अपनाया है। नया नाम दिया गया है तुक्तक।

इनमें जो कुछ चमत्कार है वह तुकोंकी योजनामें है। सायास कोई विशेष अर्थ ध्वनित करनेका प्रयास नहीं है क्योंकि उद्देश्य मनोरंजन, हास्य-व्यंग्य, छेड़-छाड़ और चुहलबाज़ी है। शब्दोंका यह चित्र-विचित्र प्रयोग एक प्रकारसे नयी प्रयोगवादी कविताका ही अंग है जिसका सामयिक महत्त्व भी कम नहीं। खोजने-पर मुख्यतः दो विभाजित प्रकार लक्षित हो रहे हैं: समाजकी चाल-ढालपर परिहास और व्यक्ति-विशेषके शील-स्वभावपर विनोद-वार्ता।

वास्तवमें इन तुक्तकोंके बारेमें जो कुछ कहा गया है वह अधूरा है। वास्तवमें ये सभी मुक्तक हैं। सहज मुक्तकके समस्त गुण इनमें विद्यमान हैं। काव्यसे अधिक ये कलाके निकट हैं। एक बात और। मुझे तो प्रत्येक तुक्तकमें एक हलका कथासूत्र मिलता है। सरस सरल भाषामें चट शुरू होकर पट खतम हो जानेवाली एक चुटीली कहानी। इनमें 'अर्थहीनता' कहाँ है? कवि लीअरके लिमेरिक अर्थहीन हो सकते हैं परन्तु ये तुक्तक तो अपनेमें पूर्ण एक सार्थक मुक्तकके

रूपमें हैं। ये 'नीरस' भी कहाँ ? ये सरस हैं क्योंकि इनमें हास्य है। हाँ 'व्यंग्य' इनमें प्रायः नहीं है। वास्तवमें इनके स्वरूप-निर्धारणकी समस्त झंझटें कवि लीअर-के निकट रखनेसे उत्पन्न प्रतीत होती हैं।

मुक्तकके वजनपर ही इनका नाम तुक्तक रखा गया है जो तुक और अटपटे भाषा प्रयोगोंको देखते हुए बहुत सार्थक प्रतीत होता है। हम यहाँ बिना काट-छाँटके भोजपुरी लोकगीत क्षेत्रके दो तुक्तक प्रस्तुत कर रहे हैं। इस प्रकारके तुक्तक लड़के परस्पर मनोरंजनार्थ कहते-सुनते पाये जाते हैं।

(१)

नरमा अकड़ा भकड़ा तुम
बड़े जवान के छोकड़ा तुम
सीस बदल
भोमन चल

(२)

इच्चो बिच्चो पान पलिच्चो
पान के बुल्ला
पाँव फुल्ला
खिरकी काट के करवन भेजो
लाल बँदरिया भीतर राखो
गाव
गुल्लर
गेल्हा

कहनेकी आवश्यकता नहीं तुक्तकके गुण यहाँ विद्यमान हैं। एक लड़का कहता है और तुरन्त दूसरेपर उसका प्रभाव हो जाता है। और वह भी उत्तर देता है। यही बात इन तुक्तकोंकी है। संक्रामकता इनकी विशेषता है। भारत-भूषणके तुक्तकोंसे श्रीलक्ष्मीचन्द्र जैन प्रभावित हो गये और उन्होंने 'अपुनश्च' में पंच-सूत्रीय निष्कर्ष लिखते-लिखते श्यामानन्द जालान, भँवरमल सिंघी, राजेन्द्र यादव और विष्णुकान्त शास्त्रीपर तुक्तक लिख मारा। यही वाग्विदग्धता और प्रसंगोद्-भावना गाँवोंमें लोक-कथनके उत्तर-प्रत्युत्तरोंमें पाते हैं। कबीरकी अनेक वाणियों-

में, जोगीड़ोंमें, गोरखकी बानियोंमें, घाघ-भड्डरीकी कहावतोंमें लोकवार्ताओं और बुझौवल-पहेलियों आदिमें।

'काग़ज़के फूल' के गुण बताते हुए भारतभूषणजी कहते हैं कि ताजे आप चाहें लगा लें बबूलमें; तो इसी बबूलयाना 'ग्राम गीत' में हम इसे स्थान दे रहे हैं। हाँ स्वीकार करना पड़ेगा कि ग्रामगीतोंसे इसमें अधिक चुस्ती, तराश, सज्जा कला और सुरुचि है।

चित्रोंके कारण तुक्तकोंका मूल्य और बढ़ गया है। पढ़ते ही याद हो जाते हैं और चित्र देखकर मनपर जम जाते हैं। कहीं-कहीं तुकोंकी कलाबाज़ी ख़ूब है। जब 'मित्र थे हमारे एक प्रभाकर माचवे' लिखा गया तो पढ़नेवालोंको आशा नहीं थी कि कबीरकी तरह 'हुरपेट शैली' में अन्तका तुक 'मारकर कुलांचे' आ जायेगा। चमत्कृत कर देने अथवा हँसा देनेके लिए इस 'सिद्ध' शैलीका प्रयोग कविने ख़ूब किया है।

—विवेकी राय

नयी कृतियाँ
ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित

जो भारतीय साहित्य-जगतमें अनूठी और
अपूर्व हैं, और इसीलिए यह अपेक्षा
भी कि आप इनसे परिचित हों।

• तार सप्तक : सम्पा० 'अज्ञेय'

'तार सप्तक' अर्थात् वह जो नयी हिन्दी कविताके एक ऐतिहासिक दस्तावेज़को उपलभ्य बनाता है और साथ ही अब परवर्ती काव्य-प्रगतिको भी देखने-समझनेके लिए आवश्यक सहायक कड़ी प्रस्तुत करता है।

इसी समकालीन अर्थवत्ताकी पुष्टिके लिए इस महत्त्वपूर्ण कृतिके प्रस्तुत संस्करणको मात्र 'पुनर्मुद्रण' तक सीमित न रखकर नया संवर्द्धित रूप देनेका प्रयत्न किया गया है।

इस संस्करणमें पहलेकी सब सामग्री तो अविकल दी ही गयी है, अतिरिक्त रूपसे सातों कवियों—गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा, अज्ञेयके 'वक्तव्य'-पर 'पुनश्च' और प्रत्येककी कुछ विशिष्ट नयी कविताएँ भी संकलित की गयी हैं, जो सातों कवियोंके कृतित्वको समझनेके लिए तो उपयोगी होगा ही 'तार सप्तक'-के पहले प्रकाशन (सन् १९४३) से अबतकके काव्य-विकासपर भी नया प्रकाश डालेगा।

मूल्य : ८. ००

• हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थ : कृष्णाचार्य

प्रस्तुत कृति अपने विषयकी हिन्दीमें पहली कृति है। एक साथ और आधुनिक पद्धतिसे व्यवस्थित इतनी महत्त्वपूर्ण सूचना-सामग्री अन्यत्र नहीं आयी।

इसका प्रकाशन एक ऐसे अभावकी पूर्ति करता है जो हिन्दी साहित्य सम्बन्धी शोध-अनुसन्धानके क्षेत्रोंमें बराबर खटका है। इतना ही नहीं, इसमें अब उन क्षेत्रोंको नयी कार्यदिशाएँ भी इंगित होती मिलेंगी।

यह कृति एक ग्रन्थपुटी है : हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थोंकी बिब्लियोग्रेफ़ी। इसमें उन ग्रन्थोंकी विवरणी दी गयी है जो ईसवी सन् १८१० से १८७० के बीच, अर्थात् लल्लूजी लाल कविसे लेकर शिवप्रसाद सितारेहिन्द तककी कालावधिमें मुद्रित और प्रकाशित हुए। जितना ज्ञान इस युगकी कृतियोंके बारेमें था भी वह सीमित था और बिखरा हुआ, विशृंखल। यह ग्रन्थपुटी उपलब्ध और ज्ञात कृतियोंका प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत कर देती है और अपेक्षित सन्दर्भों सहित, व्यवस्थित रूपमें।

हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थोंकी इस विवरणीको पूर्णता देनेके उद्देश्यसे प्रास्ताविकीमें हिन्दी मुद्रणके प्रारम्भिक कालका एक सुसंहत विहगावलोकन भी दिया गया है। भारतमें मुद्रण-कलाका प्रवेश, हिन्दी मुद्रणके प्रारम्भिक प्रयत्न, नागरी टाइपोंका आविष्करण और निर्माण, उस युगके मुद्रणालय और राजकीय विधि-नियम आदि विषयोंकी प्रामाणिक जानकारी यहाँ दी गयी है, जो अन्यत्र सुलभ न होगी। प्रत्येक ग्रन्थागारके लिए अनिवार्य और तत्कालीन हिन्दी साहित्यके शोधार्थियोंके लिए नितान्त आवश्यक। मूल्य ७.००

● नये प्रतिमान पुराने निकष : लक्ष्मीकान्त वर्मा

हिन्दी समीक्षापर जितने आरोप लगाये जाते हैं वे सच या सचके निकट नहीं हैं—यह कैसे कहा जाये! जैसे, सर्जनकी नयी अभिव्यक्तिके साथ उसके मूल्यांकनकी समस्या भी उठती ही है। और तभी नये प्रतिमानोंको विकसित करने, पुराने और प्रतिष्ठित निकषोंकी व्याख्या तथा उनकी सीमाओंके निर्धारणकी बात भी ज़रूरी हो जाती है। यह विशेष रूपसे इसलिए भी कि वास्तवमें यदि कुछ 'नया' है तो उस 'नये' को 'पुराने' के समक्ष—आमने-सामने एन्काउण्टर'के रूपमें आना चाहिए।

साहित्य-चिन्तनकी अपनी मान्यताएँ भी हिन्दीमें अबतक कहाँ थिर हो पायीं। नये मूल्योंका आभास मात्र ही मिल रहा है, और प्रतिष्ठित पुराने मूल्योंका खोखलापन स्पष्ट दिखाई तो देता है, पर वह जीवनसे छूट नहीं रहा है—अतः

विभ्रमकी इन स्थितियोंके बीच यह कृति-साहित्य, कहें तो नवलेखनके, सर्जन आस्वादन और मूल्यांकनके विविध सन्दर्भोंको दूर तक आलोकित करनेका एक सार्थक नव-प्रयत्न है : साहित्यिक और आलोचनात्मक लेखोंका संग्रह नये, प्रतिमान : पुराने निकष'—तथ्यतः पठनीय एवं संग्रहणीय । मूल्य ७. ००

० शहर अब भी सम्भावना है : अशोक वाजपेयी

एक युवा कविकी रचनाओंमें आप क्या खोजते हैं ?—यही कि भाषाका एक ताज़ा और उत्तेजक उपयोग, और उसके माध्यमसे एक ऐसा संसार जिसमें चीज़ोंके सम्बन्ध कुछ गहरे, कुछ बदले हुए और कुछ अप्रत्याशित-से हों ! सन्' साठके आसपास उभरनेवाली पीढ़ीके कवि अशोक वाजपेयीके प्रस्तुत संग्रहकी कविताएँ अवश्य ही विनयपूर्वक इस आशाको पूरा करती लगेंगी ।

ऊपर-ही-ऊपरसे तो लगेगा कि ये कविताएँ आक्रामक या हिंसा-भरी नहीं हैं—अधिक गहरे उतरकर अवश्य ही आप इनमें मातृ-करुणा, प्रेम, भाषा आदि कुछ बुनियादी लगावोंका एक रचनात्मक और विकल विन्यास पायेंगे ।

दुनियाकी बढ़ती हुई असंगति और अर्थक्षीणताके पूरे एहसासके साथ ये ऐसी कविताएँ हैं जो मानवीय होनेके अनुभव और तनावोंको आत्मीय स्तरपर परिभाषित तो करती ही हैं, दुनियाके सारे विनाशके विरुद्ध कुछ गहरे मानव-सम्बन्धोंमें अर्थ और सम्भावनाकी लगातार खोज भी करती हैं । इसी खोजने इन कविताओंको जन्म दिया है—जो बिना शोर मचाये वहाँ शब्द रखनेका प्रयास करती हैं जहाँ पहले वे नहीं रहे थे ।........

मूल्य : ३. ००

० सवेरा-संघर्ष-गर्जन : डॉ० भगवतशरण उपाध्याय

प्रस्तुत कहानियोंका विषय नवीन और असामान्य है । इन्हें लिखकर लेखकने हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें एक नया पथ निर्मित किया है, तिसपर वे चले हैं नव-निर्माताके साहित्यसे, कविके चक्षुसे, दार्शनिककी अन्तर्दृष्टिसे, और निरन्तर विकसित होते और महत्त्वाकांक्षी मानव-प्रेमीके हृदयसे ।

'सवेरा', 'संघर्ष' और 'गर्जन' तीन खण्डोंमें लिखी इन तीस कहानियोंका आधार है मानव जातिका प्राथमिक इतिहास—विशेषकर सामाजिक; तथा प्राचीन भारतीय संस्कृतिका मर्मस्पर्शी जीवन्त अंकन इनका उद्देश्य है। 'सवेरा' की कहानियाँ मानव-जातिके शैशवसे ऋग्वैदिक युग तककी कहानियाँ हैं, संघर्षमें ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विकासकी कहानियाँ (सातवीं सदी ई० पू०से तीसरी सदी ई० पू० तक), तथा 'गर्जन'की कहानियाँ तीसरी सदी ई० पू० से दूसरी सदी ई० पू० तककी हैं।

रोचक और पठनीय इन कहानियोंकी भाषा तो प्राचीन संस्कृतिके अनुरूप है ही; विचार, प्लाट आदि भी तद्विषयक और तत्कालीन हैं। अब प्रस्तुत है नया परिमार्जित तीसरा संस्करण।

मूल्य ७.००

● मुरदा सराय : शिवप्रसाद सिंह

देखे हुएके भीतरसे अदेखेको देखने-समझनेकी शक्ति, वस्तुओंके सही सन्दर्भ और उनके उलझावोंको निबेरनेका विवेक, विविध जीवन-खण्डोंके आधारपर पूरे 'पैटर्न' को संकेतित करनेकी क्षमता, सामान्य ज़िन्दगीको गहराईसे अनुभव करने-की वह संसक्ति जो ज़िन्दगीके अछूतेसे अछूते कोनेको प्रकाशित कर दे-ये सभी कुछ मिल-जुलकर एक ऐसे मानसका निर्माण करते हैं जो बारीकसे बारीक स्पन्दनों-को भी अंकित कर लेता है। 'मुरदा सराय' ऐसे ही अंकनों और धड़कनोंका 'बैरोमीटर' है। यही कारण है कि इन कहानियोंमें ज़िन्दगी पुनःकथित नहीं हुई है, वह पुनरुज्जीवित है, पुनर्भुक्त है!

प्रस्तुत है नयी हिन्दी कहानीके विशिष्ट कथाकार शिवप्रसाद सिंहकी नयी कहानियोंका नवीनतम संग्रह 'मुरदा सराय'—रोचक और संग्रहणीय।

मूल्य : ४.००

ज्ञानपीठ साहित्यिक पुरस्कार
प्रगति-सूचना

प्रथम पुरस्कार समारोहको सितम्बरमें ही सम्पन्न कर देनेकी दिशामें प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किया जा रहा है, तथा हमें विश्वास है कि अगस्तके अन्त तक समारोहको तारीख भी घोषित कर दी जायेगी। देश-विदेशके साहित्यिकों एवं साहित्य-प्रेमियों तथा शिक्षाविदोंको निमन्त्रण-पत्र भेजनेकी भी तैयारियाँ लगभग पूरी हो चुकी हैं, और तारीखकी घोषणा होते ही सबको निमन्त्रण भेज दिये जायेंगे। समारोहको विशिष्ट बनानेके लिए जो-जो पग उठाये जा रहे हैं उन सबका उल्लेख इस टिप्पणीके लिए विषयान्तर प्रतीत होता है।

द्वितीय पुरस्कारकी प्रगति-स्थिति यह है कि सभी भाषा परामर्श समितियों-द्वारा संस्तुत होकर आयी पुस्तकें सम्बद्ध भाषा वर्ग-समितियोंके सदस्योंके मन्तव्यार्थ प्रस्तुत कर दी गयी थीं, जिनमें-से लगभग ५० प्रतिशत सदस्योंकी सम्मतियाँ हमें प्राप्त भी हो चुकी हैं। द्वितीय पुरस्कारसे सम्बन्धित पुस्तकोंके हिन्दी अनुवादका कार्य भी शुरू हो चुका है।

तृतीय पुरस्कारके लिए आये पुस्तक-प्रस्तावपत्र चौदहों भाषा परामर्श समितियोंको भेज दिये गये थे, और लगभग सभीकी बैठकें हो चुकी हैं। असमिया, बंगला, गुजराती, हिन्दी, कश्मीरी, कन्नड़, मराठी, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू समितियोंकी रिपोर्टें हमें प्राप्त हो चुकी हैं : तमिल, संस्कृत और उड़ियाकी प्रतीक्षित हैं।

चतुर्थ पुरस्कारका कार्य प्रारम्भ करनेकी दिशामें प्रारम्भिक कृतियोंकी कालावधि निश्चित करनेके लिए प्रवर परिषद्, भाषा परामर्श समितियों तथा वर्ग समितियोंके सदस्योंसे सुझाव माँगे गये हैं। उत्तर प्राप्त हो रहे हैं। निर्धारित समयपर पुस्तक-प्रस्तावपत्र भिजवानेकी तैयारियाँ की जा रही हैं।

● ●

: समसामयिकी :

आलोचनाकी मर्यादा

पाठकोंको भी चाहिए कि यदि किसी समीक्षकको धाँधलेबाजी करते देखें तो उसके सम्बन्धमें अवश्य लिखें

देवराज

किसी भी क्षेत्रमें मौलिक स्रष्टा और आलोचक दोनोंका, अलग-अलग दृष्टियों से, अपना महत्त्व होता है। स्रष्टा एक विशेष कोटिकी मानव-चेतनाकी अभिव्यक्ति या निर्माण करता है; समीक्षक इस निर्माणके सौन्दर्य, प्रौढ़ता अथवा धरातलकी नाप-जोख करता है। इन दोनों ही क्रियाओंका उद्देश्य है जीवनके ऐसे स्पन्दनोंकी सृष्टि जो मनुष्यके आत्मिक जीवनको समृद्ध करते हुए उसे ऊँचे गुणात्मक धरातलपर प्रतिष्ठित कर सके। विभिन्न क्षेत्रोंका सांस्कृतिक इतिहास उन्हीं कृतियोंको सुरक्षित रखनेकी चिन्ता करता है जो मानव-चेतनाको स्थायी रूपमें विकसित एवं समृद्ध करनेवाली सिद्ध होती हैं।

किसी भी महत्त्वपूर्ण समीक्षकको अपने उस दायित्वका बोध होना चाहिए जो उसका जातीय एवं मानवीय सांस्कृतिक चेतनाके प्रति है। इस कोटिका समीक्षक एक गहरे अर्थमें सच बोलनेवाला होगा, वह अपनी अनुभूति तथा संवेदनाके प्रति तो ईमानदार होगा ही, साथ ही यह भी ध्यानमें रखेगा कि उसे अपनी भाषा, देश अथवा मानवीय संस्कृतिके प्रति ग़द्दारी नहीं करनी है।

हम प्रायः सुनते हैं कि हिन्दीमें बड़ी दलबन्दी है, और एक दलके लोग दूसरे दलके लोगोंके प्रति सहिष्णु नहीं हो पाते। इसका नतीजा यह होता है कि विभिन्न दलोंके समीक्षक विरोधी कैम्पोंके लेखकोंकी चर्चा एवं मूल्यांकन करते हुए निष्पक्षताका निर्वाह नहीं कर पाते। इसके कई परिणाम होते हैं। एक यह कि दल-विशेषको अपना लेनेसे कुछ लेखक सहज समर्थन पा जाते हैं, और इस प्रकार

शीघ्र ही विज्ञापित होने लगते हैं। लेकिन चूँकि दलबद्ध आलोचनापर आधारित ख्याति अधिक स्थायी नहीं हो पाती, इसलिए ये लेखक थोड़े ही दिनों बाद पीछे पड़ते दिखाई देने लगते हैं। हम यह नहीं कहते कि नये लेखकोंका प्रोत्साहन नहीं होना चाहिए—प्रोत्साहनकी प्रवृत्ति लाभदायक ही है—किन्तु इस आरम्भिक प्रोत्साहनका अर्थ लेखक-विशेषको इस भुलावेमें डालना नहीं होना चाहिए कि वह सिद्धहस्त एवं कृती कलाकार बन गया। वस्तुतः दलबद्ध आलोचना प्रायः एकांगी होती है, वह लेखक-विशेषको या तो आसमानपर चढ़ा देना चाहती है, या फिर उसे रसातलमें भेज देना।

दलबद्ध आलोचकमें प्रायः संयम नामकी वस्तुका अभाव रहता है, उसमें सच बोलनेका आग्रह भी नहीं रहता। वस्तुतः वह अपने दल-विशेषके महत्त्वख्यापनके लिए लिखता है, साहित्यिक सत्यकी विवृतिके लिए नहीं। यही नहीं, वह इस सत्य-की उपलब्धिके लिए स्वयं भी प्रयत्नशील नहीं होता। वे आलोचक जो प्रसिद्ध एवं प्रभावशील बन जाते हैं, प्रायः प्रतिभाशाली होते हैं। किन्तु दल-विशेषसे सम्ब-न्धित हो जानेके कारण वे अपनी प्रतिभाका उचित विकास एवं प्रयोग करना भूल जाते हैं। प्रायः प्रत्येक व्यक्तिमें भावुकता एवं साहित्यका रस लेनेकी क्षमता मौजूद होती है, किन्तु प्रत्येक व्यक्तिके, और प्रत्येक जातिके, जीवनमें इन योग्यताओंके निरन्तर परिष्कारकी जरूरत बनी रहती है। इस परिष्कारका हम एक ही रास्ता जानते हैं, विश्वके श्रेष्ठतम लेखकोंका लगातार सम्पर्क रखना और उनके महत्त्वकी विश्लेषणात्मक अवगति प्राप्त करनेका निरन्तर प्रयत्न करना। बड़े लेखकोंकी विशेषताएँ अनेक कोटियोंकी होती हैं, शैलीकी, विषयसे सम्बन्धित गरिमा एवं सार्वभौमताकी, जीवन-दर्शनकी, सहृदय मनुष्यताकी। इनमें-से किसी भी कोटिकी महत्ताका पूर्ण, सर्वांगीण परिचय प्राप्त करना, लम्बे अध्ययन एवं मननकी अपेक्षा रखता है! छिछले अर्थमें यह देख लेना कि कोई लेखक नैतिक शिक्षण करनेकी क्षमता रखता है कि नहीं जितना सरल है, लेखकके नैतिक स्तर-का इतिहासानुमोदित मूल्यांकन करना उतना ही कठिन। यही बात रचनाकारकी सौन्दर्य-दृष्टि आदिकी परखपर भी लागू होती है।

हम कह रहे थे कि दलबद्ध आलोचक न सचाईकी ही चिन्ता करता है, न अपने विकासकी। उसका वादमूलक प्रारम्भिक जोश उस विवेकके विकसित होनेमें बाधक बन जाता है जो आलोचनात्मक अवगतिके परिष्कारके लिए

आवश्यक है। हिन्दीमें एक और प्रवृत्ति भी देखी जाती है। एक लेखकका प्रारम्भमें बड़े ज़ोर-ज़ोरसे स्वागत किया जाता है किन्तु थोड़े ही दिनों बाद उसके प्रति सचेत भावसे विरक्तिका बरताव शुरू हो जाता है। यह बात समझमें आ सकती है कि लेखक लोग आपसमें एक-दूसरेसे ईर्ष्या महसूस करें, लेकिन यह समझमें नहीं आता कि आलोचक लोग लेखकोंके प्रति क्यों वैसा बरताव करें। किसी लेखकके प्रति आलोचकोंकी विरक्तिका एक ही कारण हो सकता है—उस लेखकका विकासशील न रहना, किन्तु ऐसी दशामें एक महत्त्वपूर्ण लेखकके बारेमें समीक्षकोंको बतलाना चाहिए कि क्यों उसका विकास नहीं हो रहा है।

मतलब यह कि आलोचकको लेखकों तथा पाठकोंके प्रति, और जातीय संस्कृतिके विकासके प्रति भी, अपनी ज़िम्मेदारीका निर्वाह करना चाहिए। स्वयं समीक्षकके अपने विकासकी दृष्टिसे भी यह ज़रूरी है कि वह अपनी ज़िम्मेदारी की अनेकरूपताका पूर्ण आभास रखे। सम्भवतः प्रत्येक लेखकके जीवनमें कभी-कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं जब उसे व्यक्तिगत वाद-विवादमें फँस जाना पड़ता है, लेकिन इन वाद-विवादों-द्वारा उसके विकासकी मुख्य दिशाओंका निर्धारण नहीं होना चाहिए कि पाठक उसे ईमानदार एवं विश्वसनीय समझे। जब चारों ओर दलबद्ध आलोचना होती है तो वे ईमानदार जिज्ञासाशील पाठक, जो सही मूल्योंकी चेतना प्राप्त करना चाहते हैं, बड़े असमंजस और परेशानीमें पड़ जाते हैं। एक ही लेखकके बारेमें वे भिन्न और कभी-कभी विरोधी वक्तव्य पढ़ते हैं, और इस प्रकार यह निश्चय करना असम्भव पाते हैं कि लेखक-विशेष इस योग्य है कि नहीं कि उसकी कृतिको आदरपूर्वक पढ़ा जाये।

क्या निष्पक्ष कोटिके पाठक हमारे साहित्यकी इस स्थितिको सुधारनेमें मदद कर सकते हैं? हमारा उत्तर है—हाँ। लेखक कभी-कभी समीक्षकोंसे डरते भी हैं, और जो समीक्षक जितना ही दल-विशेषका प्रचारक होता है, और राग-द्वेषके स्तरपर लिखता है, वह लेखकोंको उतना ही अधिक खतरनाक प्रतीत होता है। किन्तु साधारण पाठकोंको ऐसे समीक्षकोंसे डरनेका कोई कारण नहीं होना चाहिए। पाठकोंसे हमारा निवेदन है कि वे जहाँ कहीं किसी समीक्षककी धाँधले-बाज़ी करते देखें, वहाँ उसके सम्बन्धमें लिखें। अवश्य ही इस कोटिकी शिकायतोंमें स्वयं लेखक-द्वारा शिष्टताके धरातलका परित्याग नहीं होना चाहिए।



प्रकाशन जगत्
समाचार एवं सूचनाएँ

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघका वार्षिक अधिवेशन

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघका ११ वाँ वार्षिक अधिवेशन दिल्लीमें १६-१७ जुलाई '६६ को श्री रामलाल पुरीकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ। श्री पुरीने अपने अध्यक्षीय भाषणमें प्रकाशन व्यवसायकी उन सभी कठिनाइयों एवं समस्याओंपर प्रकाश डाला जो आज प्रकाशनके मार्गमें बाधा बनकर खड़ी हैं। उन्होंने बताया कि इसमें-से कुछ समस्याएँ तो हिन्दी प्रकाशक संघको ही संगठित होकर हल करनी हैं और कुछके लिए हमें सरकारके सहयोगकी आवश्यकता है।

श्रीपुरीने केन्द्रीय और राज्य सरकारों-द्वारा प्रकाशन व्यवसायमें हस्तक्षेपकी भर्त्सना करते हुए कहा कि इस प्रकारके सरकारी कार्य प्रकाशन व्यवसाय एवं विकसित राष्ट्रके लिए हितकर नहीं हैं। प्रकाशन व्यवसाय राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक विकासका उद्योग है जिसमें कोरी व्यवसायकी बात नहीं है। भारतमें पुस्तकें खरीदने और पढ़नेकी रुचिका नितान्त अभाव है। आज हमारे देशमें चलचित्र, शराब एवं सिगरेट तथा विलासिताकी चीज़ोंपर जितना अधिक व्यय होता है, यदि उसका थोड़ा-सा अंश भी पुस्तकोंपर व्यय हो तो यह पुस्तक व्यवसाय दिन-दूनी, रात-चौगुनी वृद्धि करे और प्रकाशक भी नयी-नयी पुस्तकोंका प्रकाशन करें। वास्तवमें आज ज्ञानवर्द्धन और सांस्कृतिक उत्थानकी आवश्यकता है। पुस्तक खरीदना मनुष्यको अपना धर्म एवं कर्त्तव्य बनाना चाहिए।

श्री पुरीने इस बातपर भी बल दिया कि राष्ट्रभाषा हिन्दीमें कालेज स्तरकी पाठ्य पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित होनी चाहिए और इसके लिए सरकार प्रकाशकोंको आर्थिक सहयोग प्रदान करे। साथ ही उत्तम कृतियोंके प्रकाशनमें फ़िल्म उद्योगकी भाँति प्रकाशकोंको भी ऋण दिया जाये। टेण्डर प्रणाली-द्वारा पुस्तकोंका क्रय देशकी सांस्कृतिक चेतनाके लिए घातक है। क्योंकि टेण्डरके द्वारा खरीद अधिक की जा सकती है, ज्ञानकी खरीद नहीं।

ग्रामोंमें पुस्तकोंका प्रसार

१७ जुलाईको दिल्ली पब्लिक लायब्रेरीमें एक गोष्ठीका आयोजन किया गया था, जिसमें

विचारके लिए विषय था—'ग्रामोंमें पुस्तक प्रसार कैसे हो'। प्रारम्भमें गोष्ठीके संयोजक श्री दयानन्द शर्माने इस गोष्ठीके महत्त्वपर प्रकाश डाला। तत्पश्चात् श्री कृष्णचन्द्र बेरीने अपने एक लिखित वक्तव्यमें कहा कि ग्रामोंमें पुस्तकोंका प्रसार करनेके लिए हमें छह बातोंपर विशेष रूपसे विचार करना आवश्यक होगा, जो इस प्रकार हैं : १. साहित्य सर्जन, २. प्रकाशन मुद्रण, ३. प्रचार, ४. वितरण, ५. पाठकोंकी पठनाभिरुचि, और ६. सरकारी तथा गैर-सरकारी सहयोग। यदि हम ग्रामीण रुचिके अनुसार सरल भाषामें सस्ता साहित्य उत्पादित करें और उसको सामूहिक प्रयाससे प्रसारित करें तो अवश्य ही ग्रामोंमें पुस्तकोंकी बिक्री होगी। इसके लिए हम ग्रामोंके प्रमुख पुस्तक-विक्रेताओंका सहयोग ले सकते हैं। जहाँपर पुस्तक-विक्रेता नहीं हैं, वहाँपर बिसात, गल्ला या कपड़ा बेचनेवालोंको ही वापसीकी शर्तपर पुस्तकें दी जायें। हमें ग्रामोंके पोस्ट मास्टरोंसे भी सम्पर्क स्थापित करके ऐसी सन्दर्भ-सूची बनाना चाहिए जिससे पता चले कि ग्रामोंमें कौन-कौन-से ऐसे व्यक्ति हैं जो पुस्तक पढ़नेमें रुचि रखते हैं।

श्री बेरीने कहा कि आजके परिवर्तित युगमें हमें प्रसारके लिए नये-नये साधनोंका प्रयोग करना आवश्यक है। हमारे विज्ञापन ऐसे हों जो पाठकोंके हृदयको छू लें। स्टेशनों और पोस्ट ऑफ़िसोंमें पुस्तक पठनकी अभिरुचिमें वृद्धि करनेवाले पोस्टर लगाये जायें। सरकार ग्रामोंमें अधिकाधिक पुस्तकालय खोले और इस प्रकारकी व्यवस्था करे कि पंचायत और ग्राम पुस्तकालयोंमें जो पुस्तकें ख़रीदी जाती हैं, वे पाठकोंको अवश्य ही दी जायें। हम आजके साहित्यकारोंको इस बातके लिए प्रेरित करें कि वह ग्रामोंकी रुचिको देखकर ग्रामीण साहित्यका सृजन करें। इस कार्यके लिए अकेला प्रकाशक सफल नहीं हो सकता, दस-दस प्रकाशक मिलकर यह कार्य करें तो यह शीघ्र ही हो सकता है। गोष्ठीमें श्री कस्तूरचन्द गुप्त, श्री व्यास, श्री सालिग्राम 'पथिक', श्री गिरधर शुक्ल, श्री दयानन्द वर्माने भी अपने विचार व्यक्त किये। अन्तमें श्री बाँकेबिहारी भटनागरने कहा कि आज ग्रामीणोंके लिए जो साहित्य सृजन किया जा रहा है वह ग्रामोंका नहीं होता, अपितु उसका शहरोंमें बैठकर निर्माण किया जाता है। हमें वही साहित्य निर्माण करना चाहिए जो ग्रामोंके लिए लाभदायक हो। ग्रामीण साहित्यके प्रकाशन एवं वितरणके लिए धनी लोगोंसे भी सहयोग लिया जाये। ग्रामीणोंके लिए पुस्तक आकर्षक और मोटे टाइपमें हो, किन्तु उनको इतना आकर्षक भी न बनाया जाये कि वह महँगी होनेके कारण ख़रीदी न जा सकें। इस अवसरपर श्री भटनागरने कहा कि जहाँतक प्रसार और प्रचारका प्रश्न है, 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' इस विषयमें आपको सहयोग प्रदान करेगा।

खुला अधिवेशन

१७ जुलाईको ही सायंकाल खुला अधिवेशन हुआ। जिसमें कार्य-समिति, विषय निर्वाचन समिति-द्वारा स्वीकृत प्रस्तावोंपर विचार हुआ। इस अवसरपर वार्षिक अधिवेशनमें बीससे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किये गये—जिनमें प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता-

ओंका सहयोग और व्यापारिक कमीशन सम्बन्धी आचार संहिताका निर्माण, लेखकों के हितका संरक्षण, पुस्तकों की व्यापारिक एवं निष्पक्ष समीक्षा करनेवाली पत्रिकाओं का प्रकाशन, प्रत्येक बाजारमें पुस्तक-विक्रयकी एक दूकान अनिवार्य हो, पुरस्कारके सम्बन्धमें किसी भी कृतिको पुरस्कृत करते समय प्रकाशकको भी लेखकके समान ही सम्मान दिया जाय और पुरस्कृत पुस्तकको खरीदा जाये। टेण्डर प्रणाली-द्वारा पुस्तकें खरीदनेका विरोध, पुस्तक-व्यवसाय सम्बन्धी तकनीकी इन्स्टीट्यूटकी स्थापना, पाठ्य-पुस्तकों के राष्ट्रीयकरणका विरोध, विश्वविद्यालय स्तरकी पाठ्य-पुस्तकोंका हिन्दीमें प्रकाशन, पुस्तक-व्यवसायको उद्योगके रूपमें मान्यता प्रदान करके ऋण सुविधा प्रदान की जाय, डाककी दरें कम हों, आदि प्रमुख हैं।

वार्षिक सभाने संघके प्रधान मन्त्री श्री कन्हैयालाल मलिक-द्वारा प्रस्तुत वार्षिक रिपोर्ट तथा आय-व्ययको सर्वसम्मतिसे स्वीकार किया और आगामी वर्षके लिए कार्यक्रमकी कुछ रूपरेखा स्वीकृत की गयी। १९६६-६७ के लिए संघके पदाधिकारी इसप्रकार निर्वाचित किये गये—अध्यक्ष : श्री रामलाल पुरी। उपाध्यक्ष : श्री मार्तण्ड उपाध्याय, श्री ओमप्रकाश, श्रीमती प्रकाशवती पाल, श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, श्री दीनानाथ मल्होत्रा। प्रधान मन्त्री : श्री कृष्णचन्द्र बेरी। संयुक्त मन्त्री : श्री रघुवीरशरण बंसल, श्री पुरुषोत्तम मोदी, श्री रमेश सन्त,। कोषाध्यक्ष : श्री कन्हैयालाल मलिक,। इसके अतिरिक्त अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघकी कार्यकारिणीमें देशके विभिन्न भागों से १८ व्यक्ति कार्य-समितिमें निर्वाचित हुए।

संघके ११वें वार्षिक अधिवेशनमें विशेषकर राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं भारतके अन्य राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस अवसरपर देशके विभिन्न भागों से आये हुए प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओंने प्रकाशन व्यवसायकी समस्याओंपर विचार किया और निश्चय किया कि शीघ्र ही एक सम्मेलन प्रकाशकों, पुस्तक-विक्रेताओं एवं शिक्षा-शास्त्रियों-का आयोजित किया जाये, जिसमें राष्ट्रीयकरणकी समस्याओं तथा पुस्तक-विक्रेताओंकी समस्याओं पर विचार हो।

भारतीविश्व
कुछ सूत्र कुछ सन्दर्भ

जिसका उद्देश्य तथ्योंकी थाती
सौंपना है, मनोरंजन नहीं।

• भारत सरकार : पुस्तकालयोंके लिए नये राष्ट्रीय सलाहकार

भारत सरकारने चौथी योजनामें पुस्तकालयोंके लिए योजना-आयोग-द्वारा गठित कार्यकारी दलकी रिपोर्टके अनुसार केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रीकी अध्यक्षतामें राष्ट्रीय सलाहकार मण्डलका गठन किया है। यह मण्डल केन्द्रीय शासन और राज्य शासनोंको देशमें पुस्तकालयोंकी स्थापना, सुधार, पुनर्गठन, प्रचलन और समन्वित विकासके लिए सलाह देगा। कार्यकारी दलकी सिफ़ारिशपर ही केन्द्रीय सरकारने इस कार्यके लिए अस्थायी रूपमें २८ करोड़ रुपयेकी व्यवस्था भी की है।

गठित मण्डलमें केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रीके अलावा भारत सरकार-द्वारा नामजद पांच सदस्य रहेंगे। इनके अतिरिक्त लोकसभा और राज्यसभासे क्रमशः तीन और एक सदस्य तथा भारत सरकारके अवैतनिक लायब्रेरी सलाहकार भी मण्डलमें सम्मिलित किये जायेंगे। अन्य सदस्य होंगे राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ताके पुस्तकालयाध्यक्ष, सलाहकार : (शिक्षा) योजना-विभाग, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग-द्वारा नामजद सदस्य, तथा भारतीय पुस्तकालय संघ, अखिल पुस्तक प्रकाशक व विक्रेता संघ, राष्ट्रीय शिक्षा अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ, नेशनल बुक ट्रस्ट और चिल्ड्रन बुक ट्रस्टके भी एक-एक प्रतिनिधि मण्डलके सदस्य होंगे।

कहना न होगा कि देशके पुस्तकालयोंकी समृद्धि और विकासके लिए भारत सरकारकी यह योजना, संकल्प और उद्देश्यको देखते, एक सराहनीय प्रयत्न है।

किन्तु इसकी सफलताके लिए, जो कि बहुत आवश्यक है, यह अपेक्षित है कि मण्डल अपने पूरे दायित्व-बोधके साथ कार्य भी करे।

● कलाकी भेंट

भारत सरकारने लेनिनग्राद (रूस) के हरमिटेज संग्रहालयको भारतीय कलाकृतियोंका एक ऐसा प्रतिनिधि संग्रह भेंट करनेका निश्चय किया है जिसमें पत्थर और काँसेकी मूर्तियाँ, पाण्डुलिपियाँ, चित्र तथा लोक-कलाके नमूने होंगे। पत्थरकी मूर्तियोंमें यक्ष, गोमुख, यक्षिणी चक्रेश्वरी, त्रिविक्रम और महिषासुर-मर्दिनीकी मूर्तियाँ तो हैं ही, होयशाल युगकी पत्थरकी एक उत्कीर्ण पटिया भी है। कांस्य मूर्तियोंमें नन्दीपर आसीन उमा-महेश्वरकी एक भव्य प्रतिमा प्रमुख है। लोक-कलाके एक श्रेष्ठ नमूनेके रूपमें दो घोड़ोंका रथ भेंटमें जायेगा। इसी प्रकार पाण्डुलिपियोंके जो नमूने हैं उनमें राजस्थानी क़लमसे चित्रित एक पृष्ठ है दूसरा पृष्ठ नागरी लिपिकी एक चित्रित पोथीका है और तीसरा पश्चिमी भारतसे प्राप्त एक प्राचीन पाण्डुलिपिका पृष्ठ है। स्वीकार किया जा सकता है कि भारतके गौरव- पूर्ण अतीतकी परिचायिनी यह भेंट सोवियत संघके कला-प्रेमियोंको सन्तोष दे सकेगी।

● पुस्तकको देश-निकाला

दक्षिण अफ्रीकी सरकारकी रंगभेद नीतिकी सख्त विरोधी तथा प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती हेलेन जोसेफ़की, जो अक्तूबर १९६२ से नज़रबन्द हैं 'टुमारोज सन' नामक पुस्तककी सारीकी सारी प्रतियाँ प्रकाशनसे पहले ही देश-निकाला कर दी गयीं। 'टुमारोज सन'—जिसका उपशीर्षक है 'ए स्मगल्ड जरनल फ्राम साउथ अफ्रीका' (दक्षिण अफ्रीकासे तस्करी हुई पत्रिका)—गत २० जूनको प्रकाश्य थी। पुस्तककी प्रतियाँ जिस समय देशसे बाहर भेजी जा रही थीं, जोहानीज़बर्ग-के एक मकानमें बन्दी पड़ी हुई श्रीमती जोसेफ़ने कहा था कि 'मैं अपनी पुस्तक अब दोबारा नहीं देख पाऊँगी।'

● मानक ग्रन्थोंकी सूची

शिक्षा मन्त्रालयके वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोगने एक पुस्तक-सूची प्रकाशित की है जिसमें उसके प्रकाशनोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। ज्ञातव्य है कि शिक्षा मन्त्रालय-द्वारा विश्वविद्यालय स्तरके प्रकाशित होनेवाले मानक ग्रन्थोंकी यह प्रथम सूची है।

• अवमूल्यन : सस्ती पाठ्य-पुस्तकें

रुपयेके अवमूल्यनका असर शिक्षा-जगत्पर भी पड़ा है—यह अस्वाभाविक नहीं। अवमूल्यनके कारण पाठ्य-पुस्तकें महँगी न होने पायें और समय रहते ऐसी व्यवस्था कर ली जाये जिससे छात्रोंको पाठ्य-पुस्तकें उचित समय और मूल्यपर मिल सकें।—इसके लिए श्रीमती इन्दिरा गान्धीने शिक्षा मन्त्रालयसे कहा है कि वह देश-भरके स्कूलों और कॉलेजोंकी माँग पूरी करनेके लिए पाठ्य-पुस्तकें छापनेका काम शुरू करे।

वास्तवमें यह कार्य कई दृष्टियोंसे बहुत उपयोगी और महत्त्वपूर्ण होगा। बड़ी बात तो यही होगी कि देशमें शिक्षाका स्तर उठाने, उसमें एकसूत्रता लाने और भावात्मक एकताको मजबूत करनेका सहज अवसर मिलेगा। किन्तु जिस प्रकार-की सफलताएँ (!) पाठ्य-पुस्तकें छापकर प्रदेश सरकारोंको मिली हैं अगर वही या उसी प्रकारसे इसका भी होना है तो अभीसे कुछ न कहना ही भला।

• हिन्दीकी डायरी

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयने इस बीच एक और महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया है। निर्णय है—एक मासिक 'हिन्दी डायरी'का प्रकाशन। इस मासिक 'हिन्दी डायरी'-में राष्ट्र और राजभाषा हिन्दीके विकास और प्रसार सम्बन्धी विभिन्न कार्यक्रमोंके बारेमें जानकारी तो रहा ही करेगी, साथ ही केन्द्रीय मन्त्रालयों तथा विभागों, राज्य सरकारों और स्वैच्छिक हिन्दी संगठनों-द्वारा हिन्दीके विकासके लिए चालू योजनाओंके बारेमें भी इसमें सूचनाएँ रहेंगी। सम्भवतः डायरीका प्रवेशांक १५ अगस्त १९६६ को प्रकाशित होगा।

• सागरकी लहरोंपर विश्वविद्यालय

एक प्रकाशित समाचारके अनुसार डच जहाज़ 'रिनदम' आगामी शिक्षा सत्रके दौरान तैरनेवाले विश्वविद्यालयका काम करेगा। एक सत्रमें यह जहाज दो यात्राओंपर जाया करेगा, जिनमें-से प्रत्येक १०७ दिनोंकी होगी। इस अवधिमें जहाजपर सवार हुए विद्यार्थी अध्ययनका एक कार्यक्रम पूरा करेंगे जिसे कैलिफ़ोर्नियाके चैपमैन कॉलेजने तैयार किया है।

यह जहाज अक्तूबरके आरम्भमें न्यूयार्कसे रवाना होगा और भूमध्य सागर होता हुआ एशियाकी यात्रा करेगा। प्रथम यात्राके विद्यार्थी फ़रवरी १९६७ में

लास एंजिल्स उतरेंगे और वहींसे कुछ दिनों बाद विद्यार्थियोंका दूसरा दल रवाना होगा।

● कविता और विद्वत्ता

एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ, जिसका नाम है 'एन्साइक्लोपीडिया ऑव पोएट्री ऐण्ड पोएटिक्स'। इस ग्रन्थका सम्पादन किया है प्रेमिगर वार्न्के और हार्डिसन तीन धुरन्धर विद्वान् सम्पादकोंने; प्रकाशक हैं प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस, और मूल्य २५ अमेरिकन डॉलर अर्थात् १८७)५० भारतीय रुपये। पुस्तक अत्यन्त मूल्यवान् और उपयोगी है विशेषत: शोधकर्त्ताओंके लिए और कवियोंके लिए।

शिप्लेकी 'डिक्शनरी ऑव वर्ल्ड लिटरेचर' सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दीकी प्रविष्टियों (एण्ट्रीज़) के लिए तो ठीक है पर अधुनातन और अद्यतन उद्धरणके लिए अब शिप्लेसे काम नहीं चल पाता। उदाहरणस्वरूप इस'कविता और काव्यशास्त्रका विश्वकोष'की एक प्रविष्टि लीजिए—'पोएट्री, थियरीज़ ऑव', कविताके सिद्धान्त एम्० एच० एब्रम्ज-द्वारा लिखित। वैज्ञानिक पद्धतिसे टकसाली सारभूत तथ्योंको इतनी पकड़के साथ उपस्थित किया गया है कि और कुछ कहनेको जैसे शेष नहीं रह जाता। विभिन्न वादोंके खेमे-तम्बुओंकी बनावट और काव्य-रूपोंकी बुनावटका पारदर्शी विवेचन। प्राचीनसे अर्वाचीन तकका सटीक लेखा-जोखा। टी० एस० इलियट और एज़्रा पाउण्डकी अभूतपूर्व व्याख्या। रूपक (ऐलेगॅरी) पर नॉर्थप फ़्राइने अपनी क़लम चलायी है जो इस विषयपर विश्वका प्रामाणिकतम व्यक्ति है। दो सौ से अधिक प्रामाणिक विद्वानोंका सक्रिय सहयोग इस ग्रन्थको प्राप्त हुआ है।

वैसे भी समकालीन कविताको समझने-परखनेके लिए एक विश्वकोषकी आवश्यकता पड़ सकती है। एक नया काव्यशास्त्र, नयी शब्दावली, नये बिम्ब, विचार और भाव-प्रत्यय, प्रेषणीयता, व्यंग्य, अमूर्तता और सूक्ष्मताका आविर्भाव हुआ है। आधुनिक काव्य-क्षेत्रमें। यह भी सत्य है कि विश्वकोष पढ़कर कोई कवि नहीं बन सकता परन्तु इस विश्वकोषका पाठक यदि कवि हुआ तो उसकी सर्जनात्मक क्षमतामें वृद्धि अवश्य होगी।

● जहाँ ५००० रु० महीनेपर भी पत्रकार नहीं मिलते

हमारे देशके पढ़े-लिखे बेरोज़गारोंमें शायद सबसे अधिक बेरोज़गार पत्रकार

रिताके ही पेशेमें दिखाई पड़ते हों, परन्तु अमरीकामें स्थिति यह है, छह सौ डालरके मासिक वेतनपर भी कोई व्यक्ति इस पेशेमें जानेके लिए मुश्किलसे तैयार होता है, सम्बद्ध क्षेत्रोंमें इस बारेमें काफ़ी चिन्ता व्यक्त की जा रही है।

विशेषज्ञोंने इस स्थितिके कारणोंकी जाँच करनेके बाद जो कारण बताये हैं, उनमें सबसे बड़ा यह है कि आजकलका अमरीकी युवक बड़े-बड़े काम करना चाहता है, तथा पत्रकारिताका धन्धा उसकी दृष्टिमें अपेक्षाकृत छोटा काम है।

• अफ्रीकी समाचार पत्रको विश्व पुरस्कार

सबसे अधिक विभिन्न एवं व्यापक क्षेत्रोंके समाचार प्रकाशित करनेके लिए सन् १९६६ का 'विश्व समाचार पत्र उपलब्धि पुरस्कार' 'रैण्ड डेलीमेल' नामक एक अफ्रीकी अखबारको मिला है, दक्षिण अफ्रीकाके जोहन्स बर्ग नामक नगरसे यह पत्र प्रकाशित होता है तथा हर सुबह इसकी सवा लाख प्रतियाँ बिकती हैं, 'रैण्ड डेलीमेल' सरकार विरोधी नीतिके लिए दक्षिण अफ्रीकाका सबसे अधिक लोकप्रिय पत्र है।

• एक मिनिटमें ७०० लाइनें कम्पोज़ करनेवाली मशीन

अमरीकामें एक मशीन बनकर पहली दफ़ा बाज़ारमें बिकनेके लिए आ गयी है जो एकदम स्वचालित है तथा जिसपर एक मिनिटमें ७०० लाइनें कम्पोज़ हो जाती हैं। इसका नाम हैल डिजिसेट इलेक्ट्रानिक मशीन है, बड़े-बड़े दैनिक पत्रों तथा प्रकाशन संस्थानोंके लिए यह मशीन बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी।

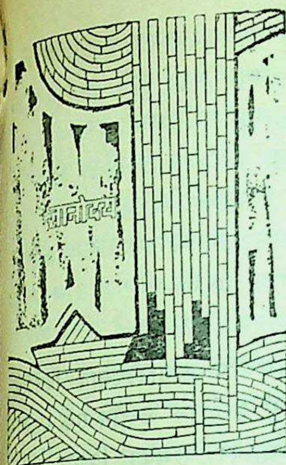
• पाठकोंकी बैठक

'मिन्नियापोलिस दैनिक' नामक एक अमरीकी समाचार पत्रने हाल ही में अपनी नयी नीति निर्धारित करनेके उद्देश्यसे विचार-विमर्शके लिए अपने तमाम ग्राहकों-को भी निमन्त्रण पत्र भेजकर बुलाया। पत्रकारिताके क्षेत्रमें यह अपनी तरहका पहला प्रयोग था तथा इसके फलस्वरूप उक्त पत्रने दो डालर प्रति माह शुल्क देने-वाले डेढ़ हज़ार ग्राहक तत्काल बढ़ा लिये।

• राष्ट्रीय पत्रिका पुरस्कार

सन् १९६६ का राष्ट्रीय पत्रिका पुरस्कार लुक मैगज़ीनके नाम घोषित किया गया है, यह पुरस्कार इस वर्ष पहली बार दिया गया है तथा कोलम्बिया विश्व-विद्यालयके पत्रकारिता विभागने इसे शुरू किया है।





अगस्त १९६६ का अंक :

इस अंकके स्तम्भ एवं शीर्षक :
समय बोध : हो लो नाराज़ लेकिन...., मुक्त चिन्तन : अस्तित्ववाद कुछ नयी स्थापनाएँ, साहित्य-भूमि : इतालवी पोएते दिआगी, ताज़े सन्दर्भ : भूमण्डलीय युद्ध पटमें भारतका स्थान, नयी कला : एक बीट शिल्पी डेविड पेकार्ड, प्रश्नान्तक : अज्ञेयके प्रति जिज्ञासा, गोष्ठी : पी० ई० एन० का नगर, आधुनिक अमरीकी कविता : जैक लडविगसे बातें, समीक्षा : कथा-संचेतनाका बदलता फ़ोकस' पैंसठकेउपन्यासक

• ज्ञानोदय •

सम्पादकीय कार्यालय :
९ अलीपुर पार्क प्लेस,
कलकत्ता-२७

•

वितरण कार्यालय :
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

•

प्रमुख वितरक :
बैनेट कोलमैन एण्ड कं० लि०
बम्बई १

•

इस अंकके लेखक :
यूजिन इयोनेस्को, श्यामसुन्दर मिश्र, भारतभूषण अग्रवाल, कैलाश बाजपेयी, श्याम परमार, अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार, विष्णु प्रभाकर, अरबिल, लाल पुष्प, सुनीता, सुधा अरोड़ा, दुष्यन्त कुमार, केशव कालीधर, वीरेन्द्रकुमार जैन, गंगाप्रसाद विमल, प्रयाग शुक्ल, बाफा यूनियल, अतुल भारद्वाज, ओंकार ठाकुर, पानू खोलिया, शलभ, सुरेश सेठ, चित्रा मुद्गल, उर्मिला,

इस बार पूजा-दिवाली पर
१९६६ का वार्षिक विशेषांक (नवम्बरमें प्रकाश्य)

मा। हा। न। ग। र वि। शे। षां। क

पत्र-मंच

एक सही-सुलझी दृष्टि
एक भ्रान्त चिन्तन-प्रक्रिया

'ज्ञानपीठ पत्रिका'के मई अंकमें प्रकाशित आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीके लेख 'हिन्दी वर्तनी' को पढ़कर चाहता हूँ कि दाद दूँ उन्हें कि उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण समस्या उठायी। हिन्दी वर्तनीकी बहुरूपतापर उनका विचार है कि इसके लिए भाषाशास्त्रीय नियमों और व्युत्पत्ति सम्बन्धी तर्कोंका आश्रय अवश्य लिया जाय और हिन्दीकी प्रकृति एवं मुद्रण-प्रकियाकी सुविधाको ध्यानमें रख कर ही कोई निर्णय किया जाय। वह लिखते हैं कि "मुझे सबसे अधिक चिन्ता य श्रुतिकी अव्यवस्थापर है, लेकिन मुझे इसे ठीक अव्यवस्था नहीं कहना चाहिए क्योंकि हम लोगोंके बोलनेमें श्रुति समान भावसे सब जगह नहीं आती। कभी वह हलके रूपमें आती है और कभी स्पष्ट रूपमें आती है, कभी वह बिलकुल ही सुनाई नहीं देती। जान पड़ता है कि पुरानी भारोपीय भाषाएँ यह कभी हलके रूपमें और कभी पूर्णरूपमें सुनाई देती थी। संस्कृतमें दो स्वरोंका निषेध हो गया और उनमें 'य' और 'व' श्रुतिका प्रवेश हुआ। परन्तु पाणिनिने सिर्फ़ दो स्थलोंपर संस्कृतके दो स्वरोंको एक साथ रखनेको अनुमति दी वह भी पदान्तमें एक पुराने आचार्य शाकल्यके सम्मानके लिए। संस्कृत व्याकरण-शास्त्रियोंने 'य' और 'व' श्रुतियोंका कठोरतासे पालन किया है पर वर्तमान साहित्यिक हिन्दीमें इन नियमोंका पालन नहीं किया जाता।"

डॉ० द्विवेदीके चिन्तनकी भटकाव समझनेके लिए जरूरी है कि श्रुतिको समझ लिया जाये। उच्चारण प्रक्रियामें श्रुति उस ध्वनिको कहते हैं जो मुखविवरमें जिह्वाके एक स्थानसे दूसरे स्थानपर आने-जानेसे कभी-कभी सुनाई देने लगती है और अधिक स्पष्ट होनेपर श्रुति ध्वनिके रूपमें स्वीकार कर ली जाती है। एक स्वरके बाद दूसरे स्वरके उच्चारणमें जीभको अधिक आयास होता है अतः वहाँ

श्रुति अपेक्षाकृत अधिक अवश्यम्भावी हो उठती है। अँगरेज़ोमें इसे ग्लाइड (Glide) कहते हैं। भारतीय आर्य भाषामें 'य' और 'व' श्रुति ध्वनियाँ हैं और इस रूपमें इनका सम्बन्ध भारोपीय भाषासे नहीं है, जैसा कि श्री द्विवेदीजीने कहा है। संस्कृतकी प्रकृति दो स्वरोंको पास रखनेके विरुद्ध है जबकि प्राकृत व उससे उपजी भाषाओंमें दो स्वरोंको रखनेपर ज़ोर दिया जाता है। इसी प्राकृत-भावके कारण प्राचीन वैयाकरण शाकल्यने सम्भवतः दो स्थानोंपर दो स्वरोंको पास रखना उचित समझा और पाणिनि जो दो स्वरोंको साथ रहनेकी अनुमति देते हैं वह शाकल्यको सम्मान देनेके लिए नहीं बल्कि उच्चारणकी अनिवार्यताके कारण। यहाँपर अनुमति देना मुहावरा ही ग़लत है क्योंकि वैयाकरण भाषाओंका शासक नहीं अनुशासक है, जो प्रचलित भाषाका विश्लेषण करता है। अनुमति देनेका प्रश्न ही नहीं उठता। इस तारतम्यमें, यह कहना भी एक भ्रामक चिन्तन है कि संस्कृतमें जहाँ दो स्वर आते हैं वहाँ 'य' और 'व' श्रुति आती ही है। संस्कृत-की मुख्य प्रवृत्ति दो समीप रहनेवाले स्वरोंमें सन्धि करनेकी है, गुण वृद्धि और यण् सन्धिमें कथित 'य'-'व' श्रुतियोंका प्रश्न ही नहीं उठता। अयादि सन्धिमें जहाँ 'य' और 'व' आते भी हैं वे श्रुति रूपमें नहीं। 'य' 'व' अर्द्ध स्वर हैं और इनका क्रमशः 'इ' 'उ' से विनिमय सम्भव है क्योंकि इनके उच्चारणका स्थान और प्रयत्न लगभग समान है। 'इ' और 'उ' दो स्वर श्रेणियाँ हैं, 'य' 'इ' श्रेणीमें आता है और 'व' 'उ' श्रेणीमें। इसलिए इनमें विनिमय सम्भव है। जब 'य' और 'व' क्रमशः 'इ' और 'उ'में बदलते हैं तो यह प्रक्रिया संप्रसारण कहलाती है और जब 'इ' और 'उ'—'य' और 'व' बनते हैं तो यण् विधि। इसी प्रकार 'ए' और 'ओ' क्रमशः अ + इ और अ + उ हैं इनके स्थानपर अय् और अव् होते हैं। इसी प्रकार 'ऐ' और 'औ' क्रमशः आइ और आउ हैं और उनके स्थानपर आय् और आव् होते हैं। अयादि सन्धिमें पाणिनिने स्वयं स्पष्ट कर दिया है। यहाँ हम इन्हें श्रुति नहीं मान सकते। श्रुति किसीके स्थानपर नहीं आती, वह आदेश नहीं आगम है।

ह्रिया, श्रिया, धियाकी तरह हिन्दीमें लड़कियाँ, आदमियोंकी व्युत्पत्ति मान भी ली जाय, जैसा कि डॉ० द्विवेदी कहते हैं, परन्तु बध्वाकी तरह उकारान्त हिन्दी स्त्रीलिंग, पुलिंग शब्दोंमें बहुओंकी जगह बहुवों रूप नहीं अपनाया जा सकता और इसमें पक्षपातका कोई प्रश्न नहीं है। व्याकरणकी दुनियामें ऐसा

आरोप ही बेबुनियाद है। क्योंकि संस्कृतके नियम हिन्दीपर लगाना उसके विकास की सहज प्रक्रियाको जटिल बनाना है। यह ठीक है कि स्वराघातके कारण लड़कियोंमें ई ह्रस्व हो गयी परन्तु ह्रस्वादेशसे 'य'श्रुतिका कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि हम एकरूपताके नामपर 'बहुओं' के स्थानपर 'बहुवों' कहेंगे तो मालाओं विधवाओंमें भी 'व' या 'य' श्रुति आना चाहिए। पर यह कितना विचित्र होगा और हिन्दीकी प्रकृतिके विरुद्ध भी।

हिन्दीमें प्राकृतोंकी तरह दो स्वर पास आ सकते हैं जैसे 'आईएगा। और पाणिनिने भी बहुरूपता यानी वैकल्पिक प्रयोग स्वीकार किये हैं। उनका एक सूत्र है 'जराया जरसन्यतरस्याम्'—जराके स्थानपर जरस् होता है विकल्पसे। यहाँ 'अन्यतरस्याम्' विशेषण है जो अपने लुप्त विशेष्य भाषायाम्को इंगित करता है। इसका अर्थ है कि किसी दूसरी बोलीमें जराके स्थानपर जरस् होता है और यह इतना लोकप्रिय है कि संस्कृतमें उसे स्वीकार करना पड़ा। इससे सिद्ध है कि पाणिनिके दिमाग़में समकालीन दूसरी वोलियां भी थीं। सभी जगह 'य' श्रुति नहीं होती इसलिए श्रुति कोई नियम नहीं है वह उच्चारणकी लाचारी है या प्रमाद या सुकरता। जो भी हो श्रुतिके सम्बन्धमें कोई नियम नहीं बनाये जा सकते, अतः संस्कृतके नियमोंके अनुसार नहीं वल्कि हिन्दोकी प्रकृति और उसकी विकासशोल स्थितिको देखते हुए ही इस सम्बन्धमें कोई निर्णय लिया जाना चाहिए, ताकि उसकी विकासशीलता और एकरूपतामें सामंजस्य स्थापित किया जा सके।

— देवेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर

• परमतत्त्वकी शोधमें (?) :

'तारसप्तक' के कवि

'तार सप्तक' किसी सुचिन्तित काव्य-आन्दोलनका अग्रदल था, इस भ्रमका निवारण करते हुए श्रीनेमिचन्द्र जैनने 'ज्ञानपीठ पत्रिका' (नवम्बर '६५ का अंक) में प्रकाशित अपनी टिप्पणीमें दो बातें स्पष्ट रूपसे प्रकट की हैं :

१. 'तार सप्तक' के कवियों और उनके निमित्त मोड़ लेती हुई नयी 'काव्य-चेतना' के सन्दर्भमें मात्र उसके सम्पादक, 'अज्ञेय', की आलोचना होती रही और संकलित कवियोंका व्यक्तित्व उपेक्षित रहा।

२. संकलनमें 'सम्पादक महोदय स्वयं इस कारण अधिक थे (अर्थात् सम्मिलित किये गये थे) कि वे उस प्रकाशनमें प्रमुख रूपसे सहायक हो रहे थे।'

जहाँतक पहली बातका सम्बन्ध है, लेखकका यह ख़याल कि नयी काव्य-चेतनाका 'तार सप्तक' में संकलित कवियोंके कारण हुआ, आत्म-श्लाघा मात्र है। संकलनमें 'संयोगवश' कुछ कवियोंके जुट जानेसे ऐसा नहीं होता। 'तारसप्तक'से इतर तब हिन्दीमें और भी कवि थे जिन्हें संकलनमें नहीं लिया गया, जबकि मोड़ लेती हुई काव्य-चेतनामें उनका भी योग हिन्दी आलोचनाने स्वीकारा है। यदि 'संयोगवश' उपलब्ध संकलनों मात्रसे सम्भव होता तो दूसरे और तीसरे सप्तकका स्थान आजकी काव्यस्थितियोंमें समाप्त न हो गया होता। लेखककी इस बातसे सहमत हुआ जा सकता है कि परवर्ती आलोचनाने 'अज्ञेय' व्यक्तित्वको समूची नयी काव्य-चेतनाका अगुवा बताया और जिसका परिणाम यह हुआ काव्यके परवर्ती मानदण्डोंमें विकृति उत्पन्न हुई तथा अहितकर प्रभावोंको प्रश्रय मिला। सिलसिलेमें मूल प्रश्न यह है कि अगर 'तारसप्तक' सुचिन्तित काव्य-आन्दोलनके इरादे-संयोजित नहीं किया गया होता तो उसमें कवियोंकी सूची कुछ और होती और उसकी संग्रहके प्रकाशनका विवरण न होकर अथवा कवियोंमें 'कुछ' होनेके कारण पाठकों-सामने लाये जाने योग्य पात्रकी कैफ़ियतसे भिन्न होती। लेकिन नेमिजीका कहना कि 'तार सप्तक'में 'संग्रहीत कवि' मूलतः सम्पादककी पसन्दके कारण नहीं थे, कुछ संगत नहीं लगता। निश्चय ही यह योजना वात्स्यायनजीकी पूरी सोची-समझी हुई थी। जिस कालमें छाया-वादका पतन हुआ उस कालमें नयी कविताके आरम्भकी सन्धिभूमिपर 'तार सप्तक'का प्रकाशन कारण रखता है। यही समय था जब नेतृत्वकी भावनासे 'अज्ञेय'ने आगे आना उपयुक्त समझा और उसी नेतृत्वके नैरन्तर्यकी दृष्टिसे आगामो 'सप्तकों'का सम्पादन किया। लेकिन दुर्भाग्यवश बादके 'सप्तकों'का सन्दर्भ नयी कविताकी उपलब्धियोंका प्रतिनिधित्व करनेमें असमर्थ रहा। जिन दिनों 'तार सप्तक'की योजना चर्चित की जा रही थी उन दिनों 'अज्ञेय'-के समक्ष जार्जियन कविताओंके संग्रह अथवा बंगलाकी 'एक पोयशाय सीरीज़' अथवा रवि-ठाकुर मण्डलके सप्तर्षि-अंकित मराठी काव्य-संग्रह थे। और जैसा कि डॉ० माचवेका कथन है, 'तार सप्तक' नाम चुननेके पूर्व 'सप्तर्षि' नाम रखना चाहा गया था। अतः 'तार सप्तक' कोई मौलिक कल्पना नहीं थी। अन्य भाषाओंमें उपलब्ध संग्रहोंके अनुकरणपर ही 'तार सप्तक'की योजना बनी थी। इसलिए 'संयोगवश' कवियोंका एक साथ होना उतना ही ग़लत लगता है जितना कि उनका 'व्यक्तिगत कारणों' से, संकलनमें आना। यह होता तो इनके साथ वीरेन्द्रकुमार जैन (जिनकी कविताएँ 'अज्ञेय' जी-द्वारा मँगायी जाकर भी लौटायी नहीं गयीं), नागार्जुन, शमशेर बहादुर, प्रभागचन्द…भी हो सकते थे। सात ही कवि क्यों? इसलिए कि मात्र वे ही तब नयी कविताके राही थे, और 'सभी परम-तत्त्वकी शोध'में लगे हुए थे? सवाल यह है कि यदि कविताकी अभिव्यक्ति कविके लिए

विवशता है और वह विवशता 'जेन्युइन' है तो उसकी काव्य-चेतना सूखनी नहीं चाहिए। 'जेन्युइन' काव्यानुभूति निरन्तर (चाहे रुक-रुककर ही सही) अपना मार्ग खोजती रहती है। 'तार सप्तक'के कवियोंमें रामविलास शर्माने कविता लिखना बन्द कर दिया, नेमिचन्द्र जैनके लिए नाटककी महत्ता सर्वोपरि हो गयी, भारतभूषण अग्रवालका ह्रास तुकबन्दीके रूपमें हो गया। 'परमतत्त्वकी शोध करनेवाले', जिसमें 'अज्ञेय' भी हैं (मुझे 'साँप' शीर्षक कवितापर किये जा रहे सन्देहोंका खयाल आ रहा है), क्या अब भी उसीकी शोधमें लगे हैं? यदि अभिव्यक्ति एक विवशता है और संकलित कवि 'जेन्युइन' हैं तो उनकी परिणतियाँ यों नहीं होना चाहिए थीं।

इस परिप्रेक्ष्यमें 'तार सप्तक'के कवि संयोगवश एक जगह नहीं थे, बल्कि 'अज्ञेय'ने अपने नेतृत्वके खयालसे उन्हें सोच-समझकर चुना था। सम्भवतः उनका अनुमान यह रहा होगा कि अधिकांश कवि जल्दी ही चुक जायेंगे।

नेमिजीकी दूसरी बात कि स्वयं 'अज्ञेय' तार सप्तकमें इसलिए अधिक थे कि वे प्रकाशनमें सहायक हो रहे थे, इस ओर इंगित करती है कि उस संकलनमें कविकी हैसियतसे 'अज्ञेय'की स्थिति कमज़ोर थी। अगर किसी अन्य व्यक्तिने 'तार सप्तक'का सम्पादन-प्रकाशन किया होता तो शायद 'अज्ञेय' उसकी सूचीमें सम्मिलित नहीं होते। जो बात 'तार सप्तक'के प्रकाशनके दिनों स्पष्ट नहीं हो सकी थी, उसे नेमिचन्द्र जैनने अब स्पष्ट करके हिन्दी काव्यके प्रति अनुग्रह किया है: 'अज्ञेय'जीको 'तार सप्तक'के कवियोंने अपना सम्पादक, या कि कहें प्रकाशक, चुना था, वहाँ बादके दोनों 'सप्तकों'के कवियोंको सम्पादकने चुना था, अर्थात् 'तार सप्तक'के समय 'अज्ञेय' उसके कवियोंपर अवलम्बित थे, 'सप्तकों'के कवि सम्पादकके अनुग्रहपर। बादमें स्थिति उलटी थी।

तीस वर्ष पश्चात् (तार सप्तकका प्रकाशन १९४३ में हुआ था) पूर्वापर स्थितिपर नज़र डालनेसे 'तार सप्तक'के पुनर्मूल्यांकनका प्रश्न सहज आ खड़ा होता है। 'तार सप्तक'की कैफ़ियतवाली भूमिका अगले 'सप्तकों'की भूमिकाओंके सन्दर्भमें गुटबन्दी और संकीर्णताका आरम्भ लगती है। नेमिजीके शब्दोंमें उसे 'दुश्चक्रकी पहली कड़ी' कहा जा सकता है। चूँकि यह आरोप 'तार सप्तक'के एक कविका है, इसलिए जिज्ञासा होती है कि क्या 'तार सप्तक'के अन्य कवि भी ऐसा मानते हैं? क्या 'तार सप्तक' 'साहित्यिक संरक्षण-वृत्तिकी उपज'से सम्बद्ध है? मूल्यांकन और स्पष्टीकरणकी आवश्यकता आज बहुत ज़रूरी है। प्रकट है 'तार सप्तक'की भूमिकासे नयी कविताकी तत्कालीन स्थितियाँ स्पष्ट नहीं होतीं, बल्कि संकलित कवियोंके वक्तव्य, सात छोटी-छोटी भूमिकाओंके रूपमें, अधिक गम्भीरतासे स्थितियोंपर प्रकाश डालते हैं। यह बात अलग है कि जिन राहोंके अन्वेषणकी बात वात्स्यायनजीने अपनी भूमिकामें कही, क्या वे राहें अब भी अन्वेषणाधीन हैं? या उनपर प्रवृत्त होकर 'तार सप्तक'के कवि किसी मंजिलपर पहुँच चुके हैं? उनका 'परमतत्त्व' किस तरहका था? क्या उन्हें उसकी प्राप्ति हो गयी?

—श्याम परमार, नयी दिल्ली

• •

भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और
सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसीसे मुद्रित।

रजिस्टर्ड सं० पू० १०...

अज्ञेय-द्वारा संकलित-सम्पादित
नयी हिन्दी कविताका
महत्त्वपूर्ण संकलन



तार सप्तक

(संशोधित परिवर्द्धित-संस्करण)

समकालीन अर्थवत्ताकी पुष्टिके लिए इस महत्त्वपूर्ण कृतिके इस नये संस्करण में पहलेकी सब सामग्री अविकल देते हुए अतिरिक्त रूपसे सातों कवियों के 'वक्तव्य' पर 'पुनश्च' और कम-से-कम एक-एक नयी विशिष्ट रचना संकलित की गयी है।

मूल्य ८...

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता * वाराणसी

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

वर्ष : पाँच
अंक : तीन

ज्ञानपीठ पत्रिका

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

अक्तूबर
१९६६

लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति और उपलब्धि-परिचायिनी मासिकी

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापित सन् १९४४

सांस्कृतिक जागरण
साहित्यिक विकास-उन्नयन
राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी
साधिका विशिष्ट संस्था



संस्थापक : श्री शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा : श्रीमती रमा जैन

ज्ञानपीठ पत्रिका

वर्ष पाँच : अंक तीन :: अक्तूबर १९६६

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जगदीश

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

मूल्य : वार्षिक ६.००, ००.५५ पैसे प्रति, द्विवार्षिक ११.००

समाज शिक्षा विभाग, राजस्थान-द्वारा उच्च, उच्चतर विद्यालय तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत

उद्घोष

प्रतिनिधि रचना

अपनी अनुभूतियोंकी संकुचित परिधिसे ऊपर उठकर रचनाकार अपनेको समाजमें खो सके तभी उसकी रचना प्रतिनिधि रचना होगी

सम्पूर्णानन्द

किसी साहित्यकार विशेषकी कृतिमें वहींतक ग्राहकता, ग्राह्यता या प्रेषणीयता होती है जहाँतक उसका सर्जक अपने व्यक्तित्वके ऊपर उठ पाता है।

हो सकता है कि किसी कविकी आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो और अपनी इस निर्धनताके कारण वह जगत्‌को विशेष प्रकारके रंगीन चश्मेसे देखता हो। जब वह अपने भावोंको व्यक्त करता है तो पढ़ने या सुननेवालेके ऊपर विशेष प्रकारकी प्रतिक्रिया होती है। यदि उस समाजमें सामान्यतः लोगोंकी अवस्था अच्छी होगी तो कविकी कृति बहुत प्रभावशाली नहीं होगी। परन्तु यदि समाजमें निर्धनोंकी संख्या बड़ी है, तो फिर कविकी कृति एक निर्धनका क्रन्दन नहीं प्रत्युत वर्ग-विशेषकी मानस-अवस्थाका चित्र होगी और वह चित्र उस बाहरी वास्तविकताका चित्र होगा जिसके आधारपर निर्धन वर्गकी मानस अवस्था वैसी हुई है।

जहाँतक कवि या लेखक अपनी अनुभूतियोंकी संकुचित परिधिके ऊपर उठ सकता है, जहाँतक वह अपनेको समाजमें खो सकता है, वहाँतक उसकी रचना प्रतिनिधि रचना होती है। जहाँतक किसी कृतिमें यह बात झलकती है कि कवि केवल अपना रोना नहीं रो रहा है प्रत्युत उसको निरन्तर उस 'कृत्स्न'का भान हो रहा है जिसका वह अंग है, वहाँतक उस कृतिमें सप्राणता होती है। पाठक और श्रोता उस कविके शब्दोंमें अपने हृदयके स्पन्दनको सुन सकते हैं।

एक पन्ना इतिहास

जिसके परिशिष्टमें शायद आनेवाली पीढ़ियों-
को लिखा मिले कि भारतमें जिस नक़ली इंग्लिस्तानकी रचना
मैकॉलेने की थी वह बीस सालकी आज़ादीके बाद
भी असली भारतको दबाये हुए था
और समझा यह जाता रहा
कि देश आज़ाद है

रामधारी सिंह 'दिनकर'

१८वीं शतीके अन्तिम और १९वींके प्रारम्भिक दशकोंमें जब कम्पनी सरकार इस द्वन्द्वमें पड़ी थी कि भारतवासियोंको शिक्षा किस भाषा-माध्यमसे दी जाये तब यहाँके शासक वर्गमें तीन मत प्रचलित थे।

हेस्टिंग्स और मिण्टो, अन्य वरिष्ठ अधिकारियों सहित, संस्कृत-फ़ारसी-अरबीके पक्षमें थे! इनसे भिन्न, मनरो और एलिफ़न्स्टन आदिका मत था कि शिक्षाको व्यापक बनाने और पाश्चात्य ज्ञानके प्रचारकी दृष्टिसे माध्यम जनताकी भाषाएँ ही होनी चाहिए। दोनोंसे अलग ग्राण्ट, वॉर्डेन और मैकॉलेका दल था जो अंगरेज़ीको ही माध्यम बनाकर शिक्षाको ऊपरी तबक़ों तक सीमित रखना चाहता था; मिशनरी लोग और नये सिविलियन इसी दलके साथ थे।

ग्राण्ट, वॉर्डेन और मैकॉले भारतीय जनताके हितचिन्तक नहीं थे; इनका उद्देश्य भारतको नक़ली इंग्लिस्तान और अँगरेज़ी-द्वारा ईसाई धर्मका ज्ञान कराके हिन्दुओंको क्रिस्तान बनाना था। लेकिन एलिफ़न्स्टन उन श्रेष्ठ अँगरेजोंमें-से थे जिनका लक्ष्य भारतको आत्मनिर्भरता प्रदान करके उसे अपने पाँवोंपर खड़ा होने योग्य बनाना था। जन-शिक्षाके निमित्त जिस 'बम्बई नेटिव एडुकेशन सोसाइटी' की उन्होंने स्थापना की उसकी मान्यता थी कि भारतीय जनताकी नैतिक और मानसिक उन्नतिके कार्यमें अँगरेज़ीका स्थान गौण है, जनतामें पाश्चात्य ज्ञानका प्रचार भी केवल अँगरेज़ीके द्वारा होना असम्भव है, और जिनमें क्लैसिक भाषाके

रूपमें अँगरेज़ी सीखनेकी विशेष प्रवृत्ति हो उनके लिए अँगरेज़ी स्कूल अलग खोले जायें!

एल्फ़िन्स्टनकी इस शिक्षा-नीतिकी व्याख्यामें स्पष्ट कहा गया है कि "भारतके नैतिक और बौद्धिक विकास-कार्यमें अँगरेज़ीको ज़रूरतसे ज़्यादा महत्त्व देना व्यर्थ है, उसका भरोसा करना बेकार है। भारतीयोंकी शिक्षाके क्रममें अँगरेज़ी केवल विषय और विचार दे सकती है, शिक्षाका माध्यम नहीं बन सकती। जिस भाषाके द्वारा जनता शिक्षित की जायेगी वह जनताकी मातृभाषा ही हो सकती है, न अँगरेज़ी न संस्कृत। संस्कृतको मैं उस महान् भण्डारके रूपमें देखता हूँ जिससे आधुनिक भाषाएँ शक्ति और सौन्दर्य ग्रहण कर सकती हैं।" सीधे-सरल रूपमें एलिफ़न्स्टनकी नीति यह हुई कि ज्ञानकी सामग्री अँगरेज़ीके भण्डारसे ली जाये, जनता तक यह ज्ञान आधुनिक भारतीय भाषाओं-द्वारा पहुँचे, और इन भाषाओंकी शक्ति बढ़ानेके लिए सहायता प्रमुख रूपसे संस्कृतसे ग्रहण की जाये।

यह नीति चली होती तो देश अपनी वर्तमान भाषागत कठिनाइयोंमें न फँसता। लेकिन ग्राण्ट, वॉर्डेन और मैकॉलेके कारण नहीं चल सकी। उस समय इसके फलस्वरूप बम्बईमें ज़िला प्राइमरी स्कूलोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी थी जहाँ इतिहास-भूगोल, ज्यामिति-ट्रिग्नॉमेट्री-बीजगणित, और दर्शनकी पढ़ाई मराठीके माध्यमसे होती थी। अनेक पुस्तकें भी इन विषयोंपर भारतीय भाषाओंमें उन दिनों लिखी गयीं। वह परम्परा चलती रहती तो नये शब्दोंकी खोजको लेकर जो विवाद अब चलता है वह उठता ही नहीं, क्योंकि शब्द इस बीच तैयार हो गये होते। एलिफ़न्स्टनकी इस नीतिको जगन्नाथ शंकर सेट (१८०३-१८६५) ने कार्यरूप दिया: इन्होंने विचार युरॅपसे लिये, भाषा जनतासे उठायी, और नये शब्दोंकी रचना संस्कृत-भण्डारसे की।

एलिफ़न्स्टन बम्बई प्रान्तके गवर्नर थे, उनके ही समान पश्चिमोत्तर प्रदेशके गवर्नर थॉमसन भी भारतीय जनताके हितैषी थे। फलतः उत्तरप्रदेश आदिमें जन-शिक्षाका कार्य हिन्दी और उर्दूमें चलता था, तथा विविध विषयोंकी पुस्तकें भी इन भाषाओंमें प्रकाशित होती थीं। विचित्र बात यह कि इस समूची शिक्षा-योजना और उसकी मूल दृष्टि-नीतिका विरोध देशके उस भागसे हुआ जहाँसे आगे चलकर राष्ट्रीयताका आन्दोलन अग्रसर होनेवाला था। मैकॉलेने जब कहा कि भारतीय भाषाएँ बिलकुल रद्दी हैं, उनमें युरॅपीय विद्याओंके

अनुवाद भी नहीं किया जा सकता, तब बंगालसे इस आक्षेपका कोई प्रतिवाद नहीं किया गया; इतना ही नहीं बल्कि १८२३ में जनरल कॅमिटी ऑव पब्लिक इन्स्ट्रक्शनने कलकत्तेमें भी एक संस्कृत कॉलेजकी स्थापना की तब उसका विरोध किया गया और विरोधकर्ताओंमें प्रमुख थे स्वयं राजा राममोहन राय। जनरल कमिटीने विरोधका सामना करना चाहा, पर जनमत तक प्रान्तका अँगरेज़ीके पक्षमें था ! मिशनरियोंने जिन्हें अँगरेज़ी पढ़ा दी थी वे नौकरी पा गये थे : बाक़ी लोग उन्हींका अनुकरण करना चाहते थे।

यह सचमुच आश्चर्य और ग्लानिकी बात है कि विदेशी शासक आधुनिक भारतीय भाषाओंको शिक्षाका माध्यम बनानेके प्रस्ताव और प्रयत्न कर रहे थे लेकिन ऐसे भारतीयोंका सर्वथा अभाव था जो अपनी ही भाषाओंका पक्ष लेकर उन प्रस्तावों और प्रयत्नोंका बल बनते। उतने बड़े दूरदर्शी नेता राजा राममोहन रायको भी न हुआ कि एक बार बंगला और हिन्दीके बारेमें भी सोच लें। भारतीय भाषाएँ अयोग्य प्रमाणित नहीं हो रही थीं। फिर भी १९वीं शतीके मध्यमें सरकारकी शिक्षा-नीति यह स्थिर हुई कि जनसाधारणकी शिक्षाका माध्यम मातृभाषा रहेगी मगर ऊँची शिक्षाका माध्यम अँगरेज़ी ही होगी। इस द्वैध नीतिका ही परिणाम यह कि देशमें शिक्षाका प्रसार व्यापक नहीं हुआ और भारतीय भाषाओंकी सम्पन्नता-असम्पन्नताके बारेमें आज भी वही स्थिति है जो उस समय थी।

शायद मैकॉले सचमुच ही जीत गया है। भारतीय जनताका जो भाग अँगरेज़ी नहीं जानता या कम जानता है उसे ही भारतीयताका सबसे अधिक ध्यान है। जो लोग अँगरेज़ीमें माहिर हैं और देशके संचालक-सूत्रधार हैं वे तो भारतके अतीतको भूलनेकी मुद्रामें हैं। जिस दिन अँगरेज़ी भारतकी राजभाषा बनायी गयी उसी दिन यह घोषित हो गया कि अँगरेज़ी इस देशके अतीतपर परदा डालनेपर उतारू है। और मैकॉलेके जादूका यह हाल कि आज़ादीके इतने बरस बाद भी भारतके अँगरेज़ी-परस्त भारतीय इस परदेको ऊपर उठानेको तैयार नहीं !

• •

तीन हिन्दी

तीनों तीन रहें पर देशव्यापी बननेकी
आवश्यकताको ध्यान रखते हुए

प्रो० एस्० एन्० गणेशन

प्रत्येक भाषाके व्यवहारमें प्रायः तीन रूप हो जाते हैं। जिन भाषाओंका क्षेत्र बड़ा है उनके कई-कई रूप-भेद भी होते हैं। हिन्दीका ऐसा ही है। मगर मूल रूप तीन ही हैं। ये हैं : बोलियाँ, सामान्य रूप, साहित्यिक रूप। हिन्दीके वर्तमान दायित्वोंके सन्दर्भमें इन रूपोंपर विचार करना उपयोगी होगा।

बोली अर्थात् बालककी घुट्टीकी भाषा, जिसका ढाँचा अबोधावस्थामें ही उसके मन और मस्तकपर अंकित हो जाता है। स्वभावतः इसके अनेक रूप-भेद होते हैं, और क्योंकि प्रत्येकका सीमित भौगोलिक क्षेत्रसे सम्बन्ध होता है इसलिए किसी भी बोलीका विस्तृत रूपमें प्रयोग असम्भव होता है। पर बोलियोंकी शक्ति आधार होती हैं; उनके प्रभाव महत्त्व और उपयोगिताको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। विशेषकर इस कारण कि उनका विकास नैसर्गिक होता है।

स्वाभाविक रूपमें विकसित बोलियाँ जीवनके सभी प्रसंगोंको व्यंजित करनेमें तथा मनोभावोंकी सूक्ष्म रंग-रेखाओंको प्रकट करनेमें सक्षम होती हैं। कारण उनका जीवनसे सीधा और आमूल सम्बन्ध रहता है। किन्तु उच्च सांकेतिक विषयोंके माध्यम रूपमें उनका प्रयोग सम्भव नहीं होता। उसके लिए भाषाके अन्य दो रूपोंको ही लेना होगा। वे रूप धीरे-धीरे और सहज भावसे बोलियोंको कम-अधिक मात्रामें प्रभावित करें यह बिलकुल सम्भव है, और यह भी सम्भव है कि वे दो रूप भी इनसे प्रभावित हों। सचमुच एक-दूसरेको प्रभावित करनेकी यह क्रिया इतनी स्वाभाविक है कि अपने-आप चलती ही रहती है। किन्तु बोलियोंकी इकाई एक स्वतन्त्र इकाई है और वह अक्षुण्ण बनी रहती है।

व्यवहार आदिकी दृष्टिसे सबसे अधिक महत्त्व भाषाके सामान्य रूपका होता

है। हिन्दीके सामान्य रूपका तो कार्यक्षेत्र अत्यन्त विशाल है। इसीलिए इस बात-की अधिकाधिक आवश्यकता अनुभव की जा रही है कि उसमें लचीलापन हो, सरलता और लाघव हों। हिन्दी भाषाका यही रूप है जो हिन्दी क्षेत्रकी विभिन्न बोलियाँ बोलनेवालोंके परस्पर पत्र-व्यवहार तथा शिक्षण आदिके लिए, हिन्दी-भाषी भारतीयोंके प्रयोगके लिए और साहित्येतर विषयोंके माध्यमके रूपमें सबसे अधिक उपयुक्त रहेगा।

हिन्दीका यह रूप दीर्घकालसे बनता आया है, इस समय भी बन रहा है, और अभी आगे बनेगा भी। कह सकते हैं कि कुछ परिवर्तन भाषाके रूपमें तो विशेषकर सदा ही होते रहेंगे। ये स्वभावत: होते हैं; भाषाकी समृद्धि और उसके परिष्कारकी दृष्टिसे अभीष्ट और अपेक्षित। इनसे भाषाका बेसिक स्ट्रक्चर प्रभावित नहीं होता। अवश्य, शब्द-भण्डारके आधारपर हिन्दी भाषाके इस सामान्य रूपके दो स्तर हो सकते हैं। एकको 'सहज' सामान्य रूप कहा जा सकता है, दूसरेको 'विशेष' सामान्य रूप।

सहज सामान्य रूपका क्षेत्र स्वभावत: अधिक विशाल होगा। हिन्दी-भाषी क्षेत्रकी तमाम सामान्य आवश्यकताओंकी पूर्तिका माध्यम तो यह रूप होगा ही, अहिन्दी-भाषी क्षेत्रोंमें भी इसीके प्रचलनकी सम्भावनाएँ हैं। यही भाषा-रूप जनसाधारण-द्वारा पढ़ी जानेवाली पत्र-पत्रिकाओंमें ग्रहण किया जायेगा और यही उन रचनाओंमें जो वैज्ञानिक विषयोंको लेकर सामान्य पाठकके लिए लिखी गयी हों। वर्तमान स्थिति यह है कि इन आवश्यकताओंको पूरा करनेमें हिन्दीका यह रूप-स्तर अभी पूरा-पूरा समर्थ नहीं है। जो प्रयत्न इसे समर्थ बनानेके लिए किये जा रहे हैं वे सहजता और स्वाभाविकतापर आधारित हों तो अधिक सफल होंगे। अनेक शब्द संस्कृत, अँगरेज़ी तथा अन्य भाषाओंसे अपनाने पड़ेंगे; पर ये शब्द ऐसे होने चाहिए जो अपने ध्वनि-रूप और संरचनाके लाघवके कारण सामान्य भाषामें पच सकें।

विशेष सामान्य रूपकी आवश्यकता उभरकर तब सामने आती है जब इति-हास-भूगोल-राजनीति और सामान्य विज्ञान आदिसे सम्बन्धित विषयोंपर लिखना होता है। यदि इन विषयोंके विशेष सांकेतिक शब्दोंको सहज सामान्य रूपमें सम्मिलित कर लिया जाये तो काफ़ी सीमा तक कठिनाई दूर हो जाये। यह भी सम्भव है कि परिचित एवं प्रचलित वर्गके मूल अँगरेजी शब्दोंको पचा लिया

जाये । इस प्रकार इस विशेष सामान्य रूपका एक प्रारम्भिक रूप सामने आ जाता है । इस रूपमें विशेष ध्यान शब्दोंकी उपयुक्तताका रखना होता है : शब्द यथासम्भव सरल और स्वाभाविक तो हों पर वे अभीष्ट भावको व्यक्त भी अवश्य करते हों ।

हिन्दी भाषाका तीसरा रूप, साहित्यिक रूप, विशेषकर गम्भीर सर्जनात्मक साहित्य, आलोचनात्मक साहित्य और साहित्येतर विषयोंके माध्यमके रूपमें प्रयुक्त होता है । कुछ समयसे इस क्षेत्रमें एक विचित्र द्वन्द्वकी स्थिति दिखाई पड़ती है । यह अस्वाभाविक नहीं कि भाषाका यह रूप कुछ क्लिष्ट हो, फिर भी प्रयत्न किये जा रहे हैं कि वह सबके लिए बोधगम्य रहे । इन प्रयत्नोंको सफलता मिलती है तो उससे इस भाषा-रूपका प्रसार-क्षेत्र और भी विस्तृत होगा ।

● ●

कुछ सन्दर्भ अपने आजके सन्दर्भोंमें

अर्थात् नयी कहानीसे सम्बन्धित अनेक प्रश्न जो प्रस्तुत परिपार्श्वमें देखे जानेपर निरर्थक ठहरते हैं।

नरेश मेहता

किसी भी विधामें केवल रचना प्रस्तुत कर देना पर्याप्त नहीं होता; वास्तवमें उस विधामें अपने वैशिष्टयको प्रस्तुत करना होता है। लेखकका यह वैशिष्टय क्या है? प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवनानुभवोंसे इस प्रकारका वैशिष्टय प्राप्त करता है। लेकिन इस वैशिष्टयको कलाके स्तरपर पुनः अनुभव करना होता है। जबतक जीवन, कलामें द्विजत्व रूपमें प्रस्तुत नहीं होता तबतक रचनामें वह गुण नहीं आता जो साहित्यको क्लासिकीयता प्रदान करता है। आवेशमें भले ही हम साहित्यके क्लासिकीय गुणको अस्वीकार दें लेकिन प्रत्येक अच्छे लेखककी वह नियति है। वही एकमात्र निकष है जिससे किसी अच्छे लेखककी मुक्ति कभी नहीं हो सकती। मेरे इस कथनका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि क्लासिकीयता किसी साँचेका नाम है या यह कोई सिद्धान्त विशेष है जिसे माननेका अर्थ किसी मध्ययुगीन अन्धी घाटीमें भटकना है। साहित्यका यह वह सार्वजनीन गुण है जो किसी सीमाको नहीं स्वीकारता। सैद्धान्तिक राग-द्वेष, काल विशेषकी सीमाएँ, इस गुणके लिए कभी बाधक नहीं रहे हैं और फलस्वरूप सब देशोंके महान् लेखक सारी मानवताके धरोहर बन सके हैं। इस परिपार्श्वमें यदि हम आजकी कहानीके अनेक प्रश्नोंको देखें तो उनकी निरर्थकता स्पष्ट हो जायेगी।

उदाहरणार्थ, आजकी कहानीका 'नयी' विशेषणके प्रति इतना दुराग्रह : यह कहना कि आजकी कहानी पहलेकी भाँति फ़ॉर्मूलापर नहीं चलती। ठीक है, पहलेकी भाँति आज हमारे जीवन-मूल्य या उसकी पद्धतियाँ वैसी नहीं रह गयी

हैं। और फलतः वैसे फ़ॉर्मूले भी नहीं रह गये हैं। आज मूल्यों एवं पद्धतियोंमें बहुत-कुछ आवश्यक एवं अनावश्यक मिश्रण हो रहा है। ऐसी स्थितिमें फ़ॉर्मूले हो ही कैसे सकते हैं। लेकिन इससे कलात्मक उपलब्धिका क्या सम्बन्ध? लेखक हमेशा अपनी समकालीनताको ही महत्त्व देगा। ऐसी स्थितिमें मोपासाँ या चेखॅवकी कहानीसे आपका क्या झगड़ा? समाज बदला हुआ है, मान्यताएँ बदली हुई हैं, तब भला कोई भी कैसे पहलेके लेखकों-जैसी कहानियाँ लिखेगा? हर युगकी अपनी विशेषताएँ तथा आवश्यकताएँ होती हैं; लेकिन क्या इसके लिए पहलेके लोगोंको नीचा दिखाना ज़रूरी है? यह निरी हीन भावना है कि हमारी रचनाओंको "मास्टर्स" के साथ रखकर न देखा जाये। हम भले ही आज ऐसा किसी कारणसे करवा लें लेकिन आगामी कल हमारे लेखनको उसी पंक्तिमें रखकर देखा जायेगा।

दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि आजकी कहानी कहींसे भी आरम्भ होकर कहीं भी समाप्त हो सकती है क्योंकि वह कलाके नियमोंसे निर्देशित न होकर जीवनकी अबाधतासे प्रभावित होती है। पहलेकी कहानी एक विशेष ढंगसे आरम्भ होकर विकसित होती थी और उसके बाद निष्पत्तित होते हुए समाप्त होती थी, अतएव उसमें कलाका बनावटीपन अधिक लगता था। सम्प्रति इस बातको हम मान भी लें कि आजकी कहानी पहलेकी भाँति नहीं रह गयी है, पर इतना तो तय है कि आजकी कहानी भी जब आरम्भ होती है तो उसे समाप्त भी होना ही पड़ता है। लेकिन क्या आजकी कहानीके आदि और अन्तका भी अपना एक प्रकार नहीं बन गया है? माना कि बड़ा ही लचकीला प्रकार है, पर है तो? आपने अपनी आवश्यकताओंके लिए इस प्रकारको चुना है तो 'मास्टर्स' ने अपनी आवश्यकताओंके अनुरूप प्रकार निर्मित किया था। कल आपका ढंग भी उसी रूपमें अनावश्यक हो जायेगा। तो आजके कहानीकारोंका आग्रह सुखकर नहीं प्रतीत होता, क्योंकि लगता है जैसे हम किसी स्तरपर अपनी रचनाओंके लिए साहित्यमें कुछ रियायत चाहते हैं। नवोदित लेखकोंका ऐसा दृष्टिकोण तो समझमें आता है, पर एक सीमाके बाद ऐसी बातें यही सिद्ध करती हैं कि हमारे लेखनमें ही किसी-न-किसी प्रकारकी कमी है जिसे छुपानेके लिए हम इस प्रकारका आग्रह करते हैं। वस्तुतः होना यह चाहिए कि आजकी कहानी अपनी उपलब्धियोंको लेकर खुले आकाशके नीचे आये।

साहित्यको जो केवल या मुख्य रूपसे मनोरंजनका साधन मानते हैं उन लेखकों एवं पाठकोंसे कोई बात नहीं की जा सकती क्योंकि ऐसे महानुभाव साहित्यका अ-ब-स भी नहीं जानते होते हैं। वस्तुतः साहित्यकी कोई भी विधा अन्वेषणकी प्रक्रिया है। प्रश्न तब यह उठता है कि यह अन्वेषण किस चीज़का है? अपना आन्तरिक एवं बाह्य जीवन जीनेके दौरान हमें जो संघर्ष करना होता है उससे हमारे व्यक्तित्वमें कुछ टूटता है तथा कुछ जुड़ता है। हम इसी निर्मिति-का अन्वेषण कभी अमूर्त प्रतीकों, कभी मूर्त चित्रों-द्वारा प्रस्तुत करते हैं। चूँकि यह सारा प्रयोजन जीवन्त सार्थकताके लिए होता है और ऐसी सार्थकता सहज उपलब्ध नहीं हुआ करती इसलिए कोई भी रचना कलात्मक प्रक्रिया हुआ करती है, रिफ्लैक्स ऐक्शन नहीं होती। अन्य कलाओंमें जीवन-दृष्टि या व्यक्तित्व-बोधका इतना बड़ा हाथ नहीं माना जाता जितना साहित्यमें। बिना इन दोनों बातोंके रचना ही साहित्यिक नहीं मानी जा सकती। अतएव यह कहा जा सकता है कि साहित्य अपनेसे पृथक्को जाननेकी वैयक्तिक प्रक्रिया है।

यह सारी बात कहानीपर भी लागू होती है, क्योंकि वह भी साहित्यका वैसा ही महत्त्वपूर्ण अंग है जैसी कि कविता। जैसे मनोरंजन करनेवाली कविता-को गम्भीरतासे नहीं लिया गया है वैसे ही मनोरंजन करनेवाली व्यावसायिक, जासूसी, पेशेवर कहानियोंको भी नहीं लिया जा सकता। वैसे निष्प्रयोजन तो कुछ नहीं होता पर मुख्य रूपसे कहानीका जन्म विश्वसनीय दृष्टान्तके रूपमें हुआ था। जैसे-जैसे समाज बदलता गया वैसे-वैसे कहानीकी दृष्टान्तताका स्वरूप भी बदलता चला गया। कहानी आज भी दृष्टान्त ही होती है जिसे आधुनिक भाषामें कहानीका प्रभाव कहते हैं। पुराने अर्थमें दृष्टान्तका प्रयोजन भी यही है। यह माना जा सकता है कि आजकी कहानी आदर्श या नीतिका दृष्टान्त न होकर यथार्थका दृष्टान्त है। आदर्श या नीति जैसे शब्दोंसे डरनेकी आवश्यकता नहीं। हम कितना ही नकारें पर आज भी हम किसी-न-किसी प्रकारके आदर्शके लिए ही लिखते हैं। यह बात भिन्न है कि आज आदर्श स्वयं समस्याके रूपमें नहीं प्रस्तुत किया जाता, वह यथार्थकी यथार्थतामें गुम्फित है। आदर्श-युगकी भाषा हमने चाहे छोड़ दी हो पर श्रेष्ठतर बकनेकी कामनाका क्या तिरस्कार किया जा सका है? हत्याको पहले पाप कहा जाता था और आज अमानवीय या असामाजिक कृत्य कहा जाता है। हत्याको प्रश्रय तो कोई भी

लेखक नहीं देगा। यह आदर्श नहीं तो और क्या है ? आदिमकालकी नीतिपरक कहानियाँ जिस प्रकार आजकी सामाजिक बोधवाली कहानियोंकी जननी हैं उसी प्रकार उस युगकी परियोंकी कहानियाँ आजकी वैयक्तिक कहानियोंकी जननी हैं। कहानीका यह व्यक्तिवादी स्वर न तो आधुनिक युगकी विषमताओंके कारण है न ही पश्चिमी। हाँ, इनके आकार-प्रकारपर वर्तमान युग तथा अन्य साहित्योंका प्रभाव निश्चित हुआ है और ऐसा होना भी चाहिए।

प्रायः इस बातपर लोगोंमें मतभेद पाया जाता है कि कहानीको कैसा होना चाहिए। वस्तुतः यह प्रश्न कोई बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। कहानीका क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा है अतः उसमें एक प्रकारकी क्षिप्रता आवश्यक है। ऐसी क्षिप्रता आकारकी भी हो सकती है तथा उसके प्रभावकी भी। ऐसी क्षिप्रता या अनुभवकी तीक्ष्णता संसारके सारे बड़े कहानीकारोंमें अपने-अपने ढंगसे मिलती है। कुछ लेखकोंको ढीली बुनावटकी कहानी कहनेमें सिद्धहस्तता प्राप्त हो सकती है तो किसीको एकदम चुस्त बनावटकी कहानीका ढंग प्रिय हो सकता है। किसीको सीधे-सादे लोग और उनकी अत्यन्त सादी ज़िन्दगीको प्रस्तुत करना रुचिकर हो सकता है तो किसीको गुम्फित व्यक्तित्वके लोग और बड़े तामझामको आँकनेमें अच्छा लग सकता है। और अगत्या ये बातें ही कहानीके रूप, प्रभाव आदिको शासित करती हैं। अतः किसी भी रचनाके बारेमें सैद्धान्तिक या व्यवस्थात्मक व्यवस्था दे सकना भ्रामक होगा। मूल प्रश्न है कि रचनाका आपपर प्रभाव हुआ या नहीं ? प्रभावसे तात्पर्य है कि रचनाने आपके निकट सार्थकता ग्रहण की या नहीं ? जिस प्रकार आग्रह करके हम इस या उस ढंगकी कहानीसे प्रभावित नहीं होते, उसी प्रकारकी कहानियोंके लिखे जानेका हठ भी नहीं किया जा सकता। कहानी यदि लेखककी कलात्मक रचना-प्रक्रियामेंसे निःसृत हुई है तो निश्चय ही वह पाठक एवं कालके सन्दर्भमें सार्थकता प्राप्त करके रहेगी। प्रयोगशील या चौंकानेवाली कहानियाँ किसी भी समयमें ऐसी सार्थकता नहीं ग्रहण कर सकी हैं। कभी-कभी कई कारणोंसे ऐसी कहानियाँ प्राशमिकता पा जाती हैं, पर समय लोगोंकी ऐसी भूलोंको ठीक कर दिया करता है।

प्रायः एक भूल यह भी की जाती रही है कि जो कहानी ज़रा भी गहरे स्तरपर चलने लगती है उसे न जाने कितने प्रकारसे लांछित कर पंक्ति-च्युत कर

देनेकी चेष्टा की जाती है। सच तो यह है कि जिस कहानीमें कलात्मक-बोध एवं जीवनी-दृष्टि एकरूप हो जाते हैं वहीं उपलब्धि जन्म लेती है। कलात्मक-बोधसे मुझे गलत न लिया जाये कि इसके द्वारा किसी उलझे शिल्पकी मैं वकालत करना चाहता हूँ। कलात्मक बोध भी सापेक्ष्य चीज़ है। हम प्रायः दैनन्दिन जीवनमें देखते हैं कि कुछ लोगोंको कोई भी बात नहीं छूती और किसीको खपरैलपर उड़ता धुआँ भी उदास कर जाता है। यदि संवेदनके इस महत्त्वपूर्ण अन्तरको न समझा गया तो हम अनेक अच्छी रचनाओंके आस्वादनसे वंचित रह जायेंगे। कलाका काम सार्थकता ग्रहण करना तो है ही, साथ ही वह हमें संस्कारित भी करती है। इसके लिए हमें अपने ही अनुभवको अन्तिम आप्तवाक्यके रूपमें नहीं मानना चाहिए, बल्कि कलात्मक वैशिष्ट्यसे प्रभावित होनेके लिए तैयार रहना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि लिखते समय लेखकके सामने कोई-सा भी पाठक नहीं हुआ करता है। रचनाके समय तो वह ग्रहण एवं अभिव्यक्तिकी प्रक्रियामें लगा होता है। हाँ, हम अपनी रुचिके अनुसार अपना प्रिय लेखक चुन सकते हैं कि हमें दॉस्तोएव्सकी चाहिए या तॉल्स्तॉय। लेकिन किसी एकको किसी दूसरेसे बदला नहीं जा सकता। साहित्यके इतिहासमें जब कभी राग-द्वेषके आधारपर श्रेणियाँ बनायी गयी हैं तब उनसे न पाठकोंका कुछ भला हुआ है न लेखकोंका ही। साहित्यमें चुनाव सम्भव है, श्रेणियाँ नहीं। सूर और तुलसीको भिन्न श्रेणीमें खड़ा करना अपना ही छोटापन है। केवल दो ही श्रेणियाँ हुआ करती हैं कि कोई हमारे लिए लेखक है, या नहीं है। साहित्यमें भी सारे बड़े लेखक इतने विभिन्न स्तरोंपर विशिष्ट होते हैं कि उसे समझनेके लिए हमें विनम्र होना पड़ता है।

• •

माचवेजी
'परन्तु'से 'जो' तक

"सम्प्रति हम 'ब्राह्मण समाजमें ज्यों अछूत' हैं पर आगेका
युग हमारी ही तरह सोचने-लिखने और
मूल्यांकन करनेवालोंका होगा"

रणवीर राँग्रा

प्रत्येक साहित्यकार विलक्षण होता है, पर प्रभाकर माचवे अनेक विलक्षणताओंके स्वामी हैं। उनका व्यक्तित्व अनेक विरोधाभासोंका संगम है।

देखनेमें पहलवान, वास्तवमें बुद्धिजीवी। मातृभाषा मराठी, पर साहित्य-सृजन हिन्दीमें करते हैं। अपनेको मूलत: चित्रकार मानते हैं, पर कोई तो विधा और किसी विधाका कोई तो पहलू नहीं जिसपर धड़ल्लेसे लेखनी नहीं चलाते। मनसा सरल, स्वच्छ और सौम्य हैं, पर इतने मुँहफट कि अप्रिय सत्य उनकी ज़बानपर उतरते देर नहीं लगती—प्रिय सत्यको तो वे चुपचाप पचा जाते हैं। अपने और परायेका भेद किये बिना उनके व्यंग्यबाण भीतर तक बेधते चले जाते हैं। हिन्दीमें लिखते तीस-पैंतीस वर्ष हो गये, लगभग तीस पुस्तकें लिख चुके, पत्र-पत्रिकाओंमें सर्वाधिक छपते हैं, पर हिन्दी-जगत्में लोग उन्हें साहित्यकार तक माननेको तैयार नहीं—शायद उनकी इन्हीं विचित्रताओंके कारण जिनमें-से अधिकांशका सम्बन्ध उनके सर्जनकी अपेक्षा व्यक्तित्वसे अधिक है।

माचवेने अपने चारों और इन विचित्रताओंकी एक लक्ष्मण-रेखा खींच रखी है। जिसे लाँघना कठिन है, पर जिसे लाँघनेपर ही उनके वास्तविक निश्छल रूपकी झाँकी मिल सकती है। जो इस रेखाको लाँघ नहीं पाते उनके लिए माचवे पराये बने रहते हैं। मुझे इस रेखाको पार करनेके अनेक अवसर मिले हैं और मैंने माचवे एवं उनके साहित्यको निकटसे देखा है। पर उनके अपने साहित्यपर उनसे कभी जमकर चर्चा नहीं हो पायी थी। एक दिन यह साध पूरी हुई जब

उनके साहित्यकी मूल प्रेरणा जाननेके उद्देश्यसे मैंने पूछा, "साहित्य-सृजनकी प्रेरणा आपको जीवन और जगत्से सीधे मिलती है या उनके प्रति बन चुके अपने किसी दृष्टिकोण से ?"

प्रश्नको गम्भीरतासे लेते हुए माचवे बोले, "जीवन और जगत्से सीधे प्रेरणा और उनके प्रति बन चुके अपने किसी दृष्टिकोणसे प्रेरणा, इन दोनोंमें मैं कोई विरोध नहीं देखता। एक उत्कट अनुभूतिके उसकी तात्कालिक प्रतिक्रिया है तो दूसरी उसकी सुचिन्तित, बौद्धिक पूर्वग्रहयुक्त, समीक्षा द्वारा काट-छाँटकर की हुई जाँचका परिणाम। 'भाव-दशा' और 'रस-दशा' के नामसे पुराने समीक्षकोंने इन्हें सम्बोधित किया है। मैं नहीं मानता कि मेरे व्यक्तित्वके ऐसे कोई खाने हैं कि पहले मैं अनुभव करता हूँ, फिर उसपर जुगाली करने बैठता हूँ, फिर उसे पकने देता हूँ, फिर उसमें-से चुन-चुनकर कुछ ही (जो स्मृतिमें अटकी रह जायें वे ही) बातें कल्पनाका नमक-मिर्च लगाकर अधिक चटपटी बनाकर परोसता हूँ। मैं काफ़ी संवेदनशील और विचारवान् प्राणी हूँ : यानी एक-साथ ही जल्दबाज़ और दर्शनप्रिय, भोक्ता और तटस्थ। गति और स्थितिके द्वन्द्वमें निरन्तर रहता हुआ मेरे अन्दरका सर्जक अपने समूचे 'होने' (अस्तित्व : बीइंग) से 'होते-जाने' (भूयमानता : बिकमिंग्) में विश्वास करता है। इसलिए जीवन और जगत्से कोई भी प्रेरणा मैं नहीं नकारता : समग्र सत्य, वर्जनीय कुछ नहीं, अनुभव योग्य है। इस अनुभूतिके साथ-साथ दृष्टि बनती जाती है। पूर्वाग्रह या मतवादिताका मैं कभी भी हामी नहीं रहा; और इस दृष्टिसे कहा जा सकता है कि 'दृष्टिकोण' मेरी प्रेरणा नहीं, 'जीवन और जगत्'का सीधे प्रत्यय लेना ही सच्ची प्रेरणा है।"

प्रभाकर माचवे बहुमुखी प्रतिभाके लेखक हैं। उनकी रचना-प्रक्रियाके विषयमें जानकारी प्राप्त करनेके विचारसे मैंने पूछा, "आप तो कविताएँ भी लिखते हैं और उपन्यास भी। इन दोनों विधाओंमें आपकी रचना-प्रक्रिया मूलतः एक-सी रहती है या उनमें कोई मौलिक अन्तर आ जाता है ?"

अपने भीतर टटोलते हुए-से वे बोले, "दोनोंकी रचना-प्रक्रिया इस मानेमें एक-सी है कि मूल प्रेरक बिन्दु एक ठोस, एक खास सूझ—चाहे शब्द ही हो, या कोई दृश्य, व्यक्ति या घटना हो—कुरेदती रहती है। पर जब कविता बनती है तो एक रास्ता वह अनुभूति पकड़ लेती है; उपन्यासमें दूसरा। पद्य और

गद्यकी विधाओंका, संस्कारोंका अन्तर भी है। कई आलोचकोंका कहना है कि मेरी कविताएँ गद्यात्मक होती हैं और मेरा गद्य पद्यात्मक। हो सकता है यह बात सही हो। मेरे लिए 'रूप' की बाह्य साहित्यिक मर्यादाएँ विशेष अर्थ नहीं रखतीं। मेरा मानना है कि कलाकृति अपने साथ एक आकृति-बन्ध भी जन्मसे लेकर आती है और यह असम्भव होगा कि कवितावाली बात ज्यों-की-त्यों गद्यमें कही जा सके या गद्यकी बात कवितामें। कविता और उपन्यास इन दोनों विधाओंमें मेरे लेखे 'मौलिक' अन्तर नहीं है।"

पीढ़ियोंका संघर्ष एक चिरन्तन सत्य है। प्रत्येक पीढ़ी अपने पूर्ववर्तियोंको पिछड़ा हुआ और परवर्तियोंको अपक्व मानती है। इतिहासकी तरह साहित्य भी अनेक बार पीढ़ियोंके संघर्षका शिकार हो जाता है। हिन्दी साहित्यमें 'नयी कविता' और 'नयी कहानी' का नारा इसी संघर्षका द्योतक है। 'नयी कविता' के प्रति डॉ० माचवेकी प्रतिक्रिया जाननेके लिए मैंने प्रश्न किया, "आजके युवक कविकी दृष्टिमें उसकी अपनी कविता ही कविता, बल्कि 'नयी कविता' है; उससे पहलेकी समूची हिन्दी-कविता उसके निकट सन्दर्भहीन भटकनके सिवा कुछ नहीं। 'तार सप्तक' के कवियोंका भी लगभग यही दावा था। इन कवियोंमें आपका नाम भी प्रमुख है। 'नयी कविता' के प्रति आपकी प्रतिक्रिया जान सकूँ तो उससे ज्ञानलाभ होगा।"

मेरे प्रश्नको तौलते हुए वे बोले, "आपके प्रश्नमें तीन आरोप हैं। एक: आजके कविकी मान्यता अहं केन्द्रित है, वह पूर्व परम्पराको नकारता है। दो: 'तार सप्तक' के कवियोंका भी लगभग यही दावा था जिनमें मैं भी एक हूँ। तीन: 'नयी कविता' के प्रति अब मेरी क्या प्रतिक्रिया होगी। आपने कवि पोपकी दो पंक्तियाँ पढ़ी होंगी: "हम अपने पिताजनोंको मूर्ख कहते हैं, और हमारे बच्चे भी हमें यही कहेंगे।" ज़ाहिर है कि हर पीढ़ीके साथ (युग मैं नहीं कहता क्योंकि हिन्दीमें युग बहुत जल्दी-जल्दी बदल रहे हैं) कविताकी रुचि मान्यताएँ बदल रही हैं; और हर 'नये' के आग्रहमें पुरानेको नकारनेकी बात होती है, कम या अधिक मात्रामें। लेकिन परम्परा-खण्डन, परम्परा-अस्वीकृति, रूढ़ि-भंजन और नव-निर्माणके पीछे अलग-अलग कारण हो सकते हैं; उन्हें व्यक्त करनेके ढंग और प्रणालियाँ भी अलग-अलग हो सकती हैं। पता नहीं 'तार सप्तक' आपके देखनेमें आया भी है या नहीं, पर उसमें मैंने अपने कवि-

वक्तव्यमें स्पष्टतः छायावाद और प्रगतिवादसे अपने मतभेद व्यक्त किये हैं। दोनोंका मनोविश्लेषण करके मैंने बतलाया है कि वे मेरे लिए नाकाफ़ी हैं।

"आजके युवक कविका नकार या अहंकेन्द्रितता भिन्न प्रकारकी है। हमारे समयमें आस्थाका अभाव नहीं था; आज युग अनास्थाका है। हम लोगोंने सचेतन रूपसे चाहा था कि हिन्दी-कविताको पुरानी लीकोंसे मुक्त किया जाये : स्वस्थ, शुद्ध, ताजे वातावरणमें उसे अधिक सहज और जीवनके यथार्थके सन्निकट लाया जाये। आजके कविके समयमें यथार्थबोध गये बाईस वर्षोंमें बहुत बदल गया है। 'नयी कविता' पत्रिकाका सातवाँ अंक आपने देखा होगा, मेरा एक वक्तव्य उसमें भी है। मैं 'नयी कविता' में बहुत अधिक सम्भावनाएँ देखता हूँ। मैं विश्वकी उन सभी भाषाओंकी नवीनतम कवितासे अपनेको परिचित रखता हूँ जिन्हें मैं मूलमें या अनूदित रूपमें पढ़ सकता हूँ। 'नवीन' का मैं सदा स्वागत करता हूँ : परम्परा इसी तरह बनती जाती है, ऐसा मेरा विश्वास है। परन्तु दुर्भाग्यसे हिन्दीके सभी काव्य-समीक्षक, आलोचक या कवि मेरी तरह उदार नहीं हैं।"

प्रभाकर माचवे उपन्यासकार भी बेजोड़ हैं। अब तक उनके पाँच उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं : 'एक तारा', 'परन्तु', 'द्वाभा', 'साँचा', 'जो'। इसलिए चर्चाको मोड़ देकर मैं उनके उपन्यास 'परन्तु' पर ले आया। यह उपन्यास चार संवेदनाओंकी आदिम प्रवृत्तियों और सामाजिक समस्याओंके संघर्षको चित्रित करता है। यह संघर्ष उन्हें कहींका नहीं छोड़ता, उन्हें आत्मकेन्द्रित करके उनके जीवनमें निष्क्रियता और गतिरोध ला देता है। टेकनीककी दृष्टिसे यह रचना अपने समयसे बहुत आगे है। इसकी कमज़ोरी बस यह है कि पात्रोंके जीवनकी विडम्बनाके चित्रणकी धुनमें पात्र व्यंग्य-चित्र बन गये हैं। इसकी ओर संकेत करते हुए मैंने पूछा, "आपने 'परन्तु' में स्वीकारा है कि 'चित्रणके आवेशमें कहीं-कहीं पात्र व्यंग्य-चित्र बन गये हैं।' 'परन्तु' ही क्यों, यह बात न्यूनाधिक आपके अन्य उपन्यासोंपर भी लागू होती है। 'ख़रगोशके सींग' वाला आपका व्यंग्यकार बार-बार आपके उपन्यासकारपर हावी हो जाता है और पात्रोंके चरित्र-चित्रणका सन्तुलन बिगाड़ता हुआ उन्हें एकांगी बनाता जाता है। यह तो माना कि उपन्यासमें व्यंग्य निषिद्ध नहीं, पर क्या उसमें वह उतना नहीं होना चाहिए जितना कि आटेमें नमक ?"

मेरे आरोपको झुठलाते हुए माचवे बोले, "आपने 'आटेमें नमक' कहकर उपन्यासमें व्यंग्यकी मात्रा निश्चित कर दी है। मैं नहीं समझता कि ऐसी कोई मात्रा निश्चित की जा सकती है। वॉल्टेयर, बर्नार्ड शॉ, स्टील, सर्वान्तीस, ऑर्वेल, आदि अनेक ऐसे कथाकार-नाटककार विश्व-साहित्यमें हुए हैं जो व्यंग्य-कार भी थे और जिन्होंने व्यंग्यको ही अपनी कृतियोंकी आत्मा बनाया है। अधुनातन पाश्चात्य साहित्यमें यह प्रवृत्ति और भी तीव्र है—बैकेट और सोल्बेलो आदि। ख़ैर, मैं व्यंग्यको एक प्रमुख साहित्यिक अस्त्र मानता हूँ। उपन्यासमें मैंने उसका प्रयोग किया है। यदि अधिक ग़ौरसे और थोड़ी तटस्थता और वृथा-भावुकतासे मुक्त होकर देखा जाये तो हम सभीमें एक व्यंग्य-चित्र छिपा हुआ है। 'तेलकी पकौड़ियाँ' की भूमिकामें मैंने अपनी इस शैलीके समर्थनमें कुछ लिखा है।"

"आपकी बातसे मैं सहमत हूँ कि 'ख़रगोशके सींग' का लेखक मेरा मुख्य रूप है : शब्दोंके साथ खेलनेवाला। और वही मुझसे कविता भी लिखवाता है और कथा भी। 'पात्रोंका सन्तुलन बिगाड़ना और एकांगी बनाना' चूँकि मैं जानबूझ कर करता हूँ इसलिए यह आरोप मुझे मान्य है। उस इल्ज़ामकी सज़ा भी भुगत रहा हूँ : मुझे कोई न तो कवि मानता है न उपन्यासकार। और चूँकि मैं सबकी मुँहफट आलोचना करता हूँ इसलिए आलोचक-विद्वानोंकी पंक्तिसे भी जात-बाहर हूँ। मैं समझता हूँ यह स्थिति बुरी नहीं है। एक पुस्तक लिखकर इतने 'सफल' हो जाना कि बादमें पुरानी कीर्त्तिपर जीते रहें, इसकी बजाय निरन्तर नयी 'असफल' कृतियाँ लिखना, प्रयोग करना और सफलताकी सदा आशा या कामना करते रहना कहीं अच्छा होता है। मेरा यही ख़्याल है : मेरे व्यंग्यने अपने-आपको भी नहीं बख़्शा है।"

माचवेजीका उपन्यास 'साँचा' मानवतापर यन्त्रयुगके अभिशापकी कहानी है। मनुष्यने यन्त्र बनाये, साँचोंका निर्माण किया—अपनी सुविधाके लिए। पर हुआ यह कि यन्त्र और साँचा ही सब-कुछ बन बैठे और मनुष्यकी देह और आत्माको पेरने लगे। यन्त्र-युगके विशाल साँचोंमें घुटती-पिसती-कराहती मान-वता, विकारग्रस्त सुन्दरता और पीड़ित बौद्धिकताका करुण स्वर इस समूची कृतिमें व्याप्त है जो मन और प्राणपर छा जाता है। पर टेकनीकके नये प्रयोगोंके कारण, पाठकके मस्तिष्कपर बहुत ज़ोर पड़ता है। उपन्यासकी दुरूहताको व्याव-

रखते हुए मैंने पूछा, "आपके उपन्यास 'साँचा' में यन्त्रयुगकी जिस हृदय-हीनताका चित्रण हुआ है वह यथार्थ और तीखी है, नपे-तुले जीवन-साँचेके प्रति विद्रोहका जो भाव यह रचना जगाती है वह भी स्तुत्य है, पर इस कृतिने स्वयं भी उपन्यासके साँचेमें ढलनेसे जो इनकार कर दिया है उससे मुझे लगता है कि पाठकोंके साथ ज़्यादती हुई है। 'द्वाभा'में तो यह ज़्यादती चरम सीमाको छू गयी है। क्या आपको भी कभी ऐसा लगा है?" यह पूछते समय मेरे मनमें 'साँचा'के प्रथम संस्करणमें अन्तमें जोड़ी गयी 'पीठिका' की लेखकीय स्वीकारोक्ति गूँज रही थी: "कृपया यह ध्यानमें रखें कि इस उपन्यासमें सुनिश्चित कथानक, सुव्यवस्थित पात्रनिर्माण, प्लान, तख़मीना आदि पाठकोंको नहीं मिलेगा—यह इसलिए नहीं हुआ है कि आधुनिकताके नामपर जान-बूझकर असम-विषम चीज़ उपस्थित की जाये। पर लेखकको लगता है कि जो विषय उसने उठाया है उसकी अभिव्यंजना और किसी तरह हो ही नहीं सकती थी।"

मेरे प्रश्नको चुटकीमें उड़ाते हुए माचवेजी बोले, "आपका 'साँचा'से क्या अभिप्राय है, मैं नहीं समझा। निवेदन कर चुका हूँ कि प्रत्येक कला-कृति अपने साथ एक रूपाकार भी लेकर आती है। पाठकको ध्यानमें रखकर उसे खुश करनेके विचारसे मैं कभी नहीं लिखता। यदि पाठक यह समझता है कि 'उसे मीठा-मीठा गप और कड़ुआ थू-थू'—प्रेमचन्द-शरच्चन्द्र जैसी सीधी-सपाट कहानी पिलायी जाये और यदि हिन्दीके उपन्यास-लेखक इसी पाठकीय माँगसे चलते तो उपन्यासकी शिल्प-शैली आगे बढ़ ही नहीं पाती। पाठककी माँग है या नहीं, मैं नहीं जानता; पर 'द्वाभा' और 'साँचा' के दो-दो संस्करण हो गये हैं और मेरे-जैसे सामान्य लेखकके लिए यह सन्तोषकी बात है जब कि बड़े-बड़े उपन्यासकारोंकी प्रसिद्ध और बहुचर्चित कृतियोंका एक संस्करणसे अधिक नहीं बिक पाया है। असलमें हिन्दी-पाठकके बारेमें आप जैसे आलोचकोंका दिमागी-'साँचा' (स्टीरियोटाइप) काफ़ी 'द्वाभा'-पूर्ण है। हिन्दी-पाठक बड़ी तेज़ीसे प्रबुद्ध होता जा रहा है।"

अपने उपन्यासोंमें जितनी अधिक 'टेकनीकों' का माचवेजीने प्रयोग किया है उतना शायद ही हिन्दीके किसी अन्य उपन्यासकारने किया हो। अपने-आपमें ये प्रयोग चाहे जितने मौलिक रहे हों, उपन्यासकी अन्वितिको इनके बाहुल्यसे ठेस ही पहुँची है। मैंने उनके इस टेक्नीक-मोहका कारण जाननेकी इच्छासे पूछा,

"नयी-नयी टेक्नीकोंके प्रयोगके लिए आपके उपन्यास बेजोड़ हैं, पर टेक्नीककी बारीकियोंमें खोकर कई बार कथानक इतना बिखर जाता है कि उसके सूत्रोंको ढूँढ़ता-ढूँढ़ता पाठक उपन्यासके गोरख-धन्धेमें फँसकर छटपटाने लगता है। उसकी इस छटपटाहटमें आपको क्या रस मिलता है?"

पाठककी छटपटाहटमें जैसे सचमुच रस लेते हुए वे बोले, "मैं उपन्यासमें कथानकको प्रधान नहीं मानता। वस्तुतः कथानक-प्रधानतामें रस लेनेवाले पाठकोंको मैं पर्याप्त 'आधुनिकता-बोध' वाला पाठक ही नहीं मानता। हाँ, टेक्नीकके प्रयोग मैंने किये हैं पर उनके कारण कोई अपॉलॅजी देनेकी ज़रूरत मुझे नहीं जान पड़ती। प्रयोग असफल हो सकते हैं, पर इस कारणसे प्रयोग करनेका साहस ही न किया जाये—यह मैं नहीं मानता। पाठक यदि मेरी कृतिको पढ़नेमें कुछ 'छटपटाये' भी तो मुझे उसका बुरा नहीं लगेगा। आखिर तमाम छटपटाहट इकतरफ़ा—लेखककी ओरसे ही—क्यों हो?"

डॉ॰ माचवेका नवीनतम उपन्यास 'जो' मुझे उनके सभी उपन्यासोंमें अच्छा लगा। यह एक अमेरिकी-नीग्रोके संघर्ष-भरे जीवनकी करुण कहानी है। जाज़ संगीतके विशेषज्ञके नाते ख्यातिके शिखरपर पहुँच जानेपर भी 'जो' को नीग्रो होनेके कारण ही असंख्य मानसिक और सामाजिक यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। इस उपन्यासकी विशेषता यह है कि अमेरिकाकी नीग्रो समस्याको भारतके अछूत समस्याके सन्दर्भमें बड़े मार्मिक ढंगसे चित्रित किया गया है। कलाकी दृष्टिसे भी यह कृति सुन्दर बनी है। इसलिए इसका स्वागत करते हुए मैंने कहा, "आपके नवीनतम उपन्यास 'जो' में अमेरिकाकी नीग्रो समस्याको भारतके अछूत समस्याके सन्दर्भमें जिस मार्मिकतासे प्रस्तुत किया गया है वह स्तुत्य है। यह उपन्यास आपकी अन्य कृतियोंसे भिन्न और अपेक्षया प्रौढ़ है। क्या इसे आपकी अमेरिका-यात्राकी साहित्यिक उपलब्धि माना जाये?"

माचवेके व्यंग्यकारने झट चुटकी ली, "आपके सुन्दर, आशंसात्मक प्रमाण-पत्रके लिए आभारी हूँ। मेरी अमेरिका-यात्राकी अनेक 'उपलब्धियोंमें चार हिन्दी-पुस्तकें भी हैं: 'गोरी नज़रोंमें हम' और 'जो' छप गयी हैं, एक लम्बी डायरी है जो अप्रकाशित है, और चौथी विदेश-यात्रामें लिखी कविताओंका संग्रह है जो शीघ्र प्रकाश्य है।" दो क्षण रुककर वह बोले—

"वैसे आपने 'उपलब्धि' शब्दका प्रयोग किया है। मैं अपनी ४८ वर्षकी

आयु और प्रकाशित तीस पुस्तकोंमें-से एकको भी अपनी 'उपलब्धि' इस अर्थमें नहीं मानता कि अब पूर्णविराम हो गया, आगे कुछ नहीं करना है। मूलतः मैं एक चित्रकार हूँ जो हलके रंगोंमें दृश्यांकन भी करता है (कविताएँ साक्षी हैं, शब्दोंमें), गहरे शोख़ रंगोंके पोस्टर भी बनाता है (मेरी आलोचनाएँ साक्षी हैं), व्यंग्यचित्र भी बनाता है (मेरे अनेक निबन्ध साक्षी हैं), शबीहें या पोर्ट्रेट्स भी बनाता है (मेरे अनेक संस्मरण और रेखाचित्र छपे हैं) और जो अब धीरे-धीरे शुद्ध-ऐब्स्ट्रैक्ट चित्रकलाकी ओर मुड़ रहा है। ('जो' में कुछ खेल या 'साँचा' के अन्तमें जॉएस—जैसे प्रयोग साक्षी हैं)—हो सकता है कि मेरी अगली कृतियाँ और भी दुर्बोध और 'ऐब्सर्ड' हों।"

माचवेजी कहते गये, "मेरा मत यह है कि सारा युग ही विसंगतिका युग है। अतः हम 'अ-कविता' और 'अ-कथा' की ओर बढ़ते जा रहे हैं। और 'एब्राकेडैब्रा', 'गलीके मोड़पर' एकांकी-संग्रहमें, 'पागलखानेमें' शीर्षक नामक तीन रेडियो एकांकियोंमें, 'उलटफेर' एकांकी और 'तेलकी पकौड़ियाँ' में तथा 'बेरंग'के कई निबन्धोंमें मानसिक विक्षेपपर और चेतन-अवचेतनके गड्ड-मड्डपर जो रचनाएँ मैंने लिखी हैं—वे 'अ-नाटक'के क्षेत्रमें आती हैं। इन सब 'अ'-कारात्मक प्रयोगोंके कारण मैं समझ सकता हूँ कि परम्परित आलोचनाके माननेवालोंको कष्ट हो सकता है मुझे समझनेमें। पर मुझे विश्वास है कि अगली नहीं तो उससे अगली पीढ़ी इस 'खाद' को समझेगी जो उन आगामी फूलोंके लिए आवश्यक है, बशर्ते कि हमें काम करने दिया गया। हमें उपेक्षाकी सिकता और अवहेलनाकी मिट्टीमें पूरी तरह मिटा नहीं दिया गया, तो। सम्प्रति हम 'निराला'के शब्दोंमें 'ब्राह्मण समाजमें ज्यों अछूत' हैं। पर उसका गिला नहीं; आगेका युग हमारी ही तरह सोचने, संवेदना करने, लिखने और मूल्यांकन करनेवालोंका होगा—यह आत्म-विश्वास है।"

• •

शब्द चिन्तन
'मधु' और 'मद'

कम मिलेंगे शब्द जिनका इतना विविध और
व्यापक प्रयोग हुआ और जिनका प्रभाव
परिचय व्यक्ति तो व्यक्ति पूरे-पूरे
समाजके लिए दूरगामी हुआ

सूर्यदेव शास्त्री

शब्द हमारी संस्कृतिके सच्चे संवाहक हैं। साहित्य और भाषा जब 'श्रुति' रूप थे, ये एक धाराकी तरह हमारे संस्कारोंको एक पीढ़ीसे दूसरी तक ले चलते थे। जब हमने लिखना प्रारम्भ किया, ये शब्द संस्कृतिके अक्षर प्रतीक बनकर गर्तों-गुहाओं और शिलाओं और पत्रोंसे आज तक हम तक आये हैं। वाक्य-सूत्रमें पिरोये जाकर ये शब्द हमारी चेतना प्रवाहको भावोंके आदान-प्रदानके माध्यम-के रूपमें ढोते हैं; पर मुक्त रूपमें ये हजारों-लाखों वर्ष पुरानी कथाको हमसे जोड़ते हैं।

यहाँ प्रस्तुत उन शब्दोंकी कथा जो मद्य या पेयके रूपमें प्रयुक्त उपादानोंसे हमें परिचित कराती है; आश्चर्य है, पेयके उन नाना रूपोंकी व्याख्यासे प्रस्फुटित होनेवाले ये द्रव्य-बिम्ब कभी तो आर्योंका 'सोम' कभी ईरानियोंका 'अहोम' तो कभी पंचमकार-सेवी तान्त्रिकोंका 'मद्य' बनकर, कितना कुछ देते-लेते रहे हैं!

भारोपीय आर्य जिस पेयका प्रारम्भमें मादकताके लिए प्रयोग करते थे उसका नाम था मधु। यह ईरानी 'मीड', पुरातन नोर्स 'म्जोद्', पुरानी अँगरेजी 'मेदु' के रूपमें प्राप्त है। हुन्निस दरबारमें ग्रीक लोग इस पेयको 'नेडोस' कहते थे। रूमानियन 'माइड', बोहिमियन 'मेडोविना', लिथुआनियन 'मिडुस'का प्रयोग मदिराके लिए ही हुआ है। संस्कृत शब्द 'मधु' किसी भी मधुर और मादक द्रव्यका पर्याय रहा है, पर ऋग्वेदमें इसे सोमरसके अर्थमें ही प्रयुक्त पाते हैं। अवेस्ताका 'मदु' और ग्रीक शब्द 'मधु' भी मदिराके ही पर्याय हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि इसका अभ्यस्त प्रयोग भूमध्यसागर क्षेत्रमें प्रारम्भ होकर रोम और अन्य युरॅपीय देशोंमें हुआ।

संस्कृत 'द्राक्षारस' हमें समस्त रूपमें ही प्राप्त है। अवेस्ताका 'ख्शुद्र' इसीका पर्याय है। संस्कृत 'क्षोद' तरंगप्लवके रूपमें व्यवहृत होकर उस उन्मादी अवस्थाका द्योतक है जब मद्यपायी तरंगित और विश्रृंखलित होने लगता है।

संस्कृत 'सोम' या 'सोमरस' उस पौधेके रसका द्योतक है जिसमें मादक शक्ति थी। संस्कृत 'सु' धातुसे 'सोम' 'सव', 'आसव' आदि विकसित शब्द मूल धातुके मसलना, निचोड़ना, चूसना आदि अर्थोंका ज्ञापन करनेके साथ ही तापके द्वारा वाष्पित रसका भी ज्ञापन करते हैं।

'बीयर' भी किसी-न-किसी रूपमें सर्वत्र प्रयुक्त होता रहा है। ग्रीक 'ब्रतोस', लैटिन 'जिथुम', रूमानियन 'बेरे', फ्रेंच 'बाइरे', पोलिश 'पिओ', संस्कृत 'यवसुरा' और ईरानियन 'हुरा' शब्द सब इसीके द्योतक हैं। थ्रेसियन बियरके लिए ग्रीक 'ब्रतोस' और मिस्र देशीयके लिए ग्रीक 'जुथांस' का प्रयोग होता रहा है। लैटिन 'ज्यथुम' इसीके निकट है। लैटिन 'क्रेमोर' और संस्कृत 'करम्म' भी बीयरके ही एक प्रकार विशेषके लिए प्रयुक्त हैं। पुरानी अँगरेज़ीका शब्द 'सोरा' भी इसके निकट ही है। संस्कृत 'सुरा'से सम्बद्ध होकर भी अवेस्ता (ईरानियन) 'हुरा' शब्द दूध या उसकी सहायतासे निर्मित 'बीयर' के लिए प्रयुक्त होता रहा है।

आगे चलकर 'मद्' धातुसे विकसित होनेवाले शब्द अर्थोंके विकासकी विभिन्न वृत्तियोंको पार कर उस अवस्थाके द्योतक बन जाते हैं जो सुरापानका प्रतिफल है। 'मदलोलुप', 'मदमत्त' आदि अहंवृत्ति और मोहका संकेत देते हैं। उस उपसर्गसे युक्त होकर यह अपने 'उन्माद', 'उन्मद', 'उन्मन' आदि रूपोंमें पागलपनकी हेयावस्थाको छूता है। इसी तरह 'मदिर', 'मदित' आदि आँखकी उस संप्लुतावस्थाके द्योतक हो जाते हैं जो एक ओर तो रूमानी मुद्राका चित्र खींचती है और दूसरी ओर मादकताकी संज्ञा उत्पन्न करती है। संस्कृत 'मधुकर' और प्राकृत 'महुअर' आदि शब्द मद्य बनानेवालेके लिए प्रारम्भमें प्रयुक्त थे, पर आगे चलकर उस एक प्रकारके कीड़ेके लिए प्रयुक्त हुए जो 'भ्रम' कर या 'भ्रमण' कर अपनी भ्रमर-वृत्तिसे फूलोंका रस चूसता था। फूलोंके रससे मद्य बनानेकी ओर भी इससे एक प्रकारका संकेत होता है।



अक्षरोंका सेतु
कृतियोंकी प्रतिक्रिया

लेखन-प्रकाशनके आयोजन-श्रमकी इकाई अधूरी रहेगी
जबतक पारखी पाठककी प्रतिक्रिया प्रकाशकके
पास होती लेखककी मेज तक न पहुँचे

शिवप्रसाद सिंहके कथा-संग्रह 'मुरदा सराय' पर दो समीक्षाएँ

● एक :

आत्मीयताका आत्मीय परिचय

बहुत कहानियाँ ऐसी होती हैं जो प्रबुद्ध पाठकोंको विचारका अवसर देती हैं। वे कम कहानियाँ अपने समग्र रूप-विन्यासमें ही अलग नहीं होतीं बल्कि उनकी कथाकी 'अपील' भी भिन्न होती है। हमारे समयमें अधिकांश कथाएँ 'लोकप्रियता' की आरोपित रुचिके आग्रहके कारण बनावटी कथाएँ होती हैं, उनमें मनोरंजन तत्त्व और वक़्त-कटीकी सतही आवश्यकताके चिह्न स्पष्ट होते हैं, चाहे वे एक बड़े पाठकवर्गको तुष्ट करनेमें सक्षम होती होंगी, यह निश्चित है कि अन्ततः उन कथाओंका वह व्यापक प्रभाव नहीं पड़ता जो अपने-आपमें उल्लेखनीय होता है। डॉ० शिवप्रसाद सिंहकी कहानियोंमें एक ओर 'विचार' के पर्याप्त अवसर हैं तो दूसरी ओर उनमें 'मानवीय होने'की ऐसी 'अपील' है जो दूसरोंसे उन कहानियोंको भिन्न करती हैं परन्तु उस 'मानवीय होने'में लेखक अपनी ओरसे पाठकको बाँधने (एक्सप्लाएट) की जो कृत्रिमता रचता है उससे शिवप्रसाद सिंह बचे हुए नहीं हैं। उनकी कथाएँ ग्राम-जीवनकी जिस इकाईको स्पर्श करती हैं उसकी भौगोलिक उपयोगिता उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं होती जितनी

कि चरित्रोंके कार्य-विधानसे उत्पन्न व्यापक प्रभावकी आत्मीयताका आत्मीय परिचय देना होता है। दूसरे शब्दोंमें इस बातको उनके और अन्य आँचलिक कथाकारोंके 'अलगाव' के रूपमें जाना जा सकता है। यहाँ 'चरित्र' शब्दका हम वही अर्थ लेते हैं जो शिवप्रसाद सिंह 'धारणा' के रूपमें 'रचना-प्रक्रिया' की चर्चा करते हुए स्पष्ट करते हैं। वे अपनी कहानियोंमें 'चरित्रके अस्तित्व' का समर्थन करते हुए, यह स्वीकार करते हैं कि "इन सभी धारणाओंको अपनी शक्ति-भर रूप देनेके लिए मैंने ग्राम-जीवनसे ही अधिकांश चरित्र चुने हैं।" यह बात विरोधाभास भी लग सकती है क्योंकि इन वर्षोंमें शिवप्रसाद सिंहने अनेक निबन्धोंमें 'आधुनिक जीवन' के संकटकी जो व्याख्याएँ की हैं—वे व्याख्याएँ 'ग्राम इकाई' को आधार बनाकर नहीं की जा सकतीं। यह अवश्य है कि ग्राम-जीवनका अनुभव जो चरित्रोंके माध्यमसे कहानीकार प्रस्तुत करता है वह मात्रा-भेदके स्तर-पर आंशिक रूपसे आधुनिकताकी उस चुनौतीसे प्रभावित ज़रूर है परन्तु जैसा हम मानते हैं, मात्रा-भेदके स्तरपर ग्राम-जीवनके अनुभव अभी उस तीव्रतासे बाहर हैं। वस्तुतः इस विरोधाभाससे सामान्य पाठक जिस खालीपनका या एक खाईका अनुभव करता है वह कथाकारके दो पृथक् व्यक्तित्वोंकी झलक देता है; परन्तु यह बात हमने प्रसंगान्तर कही है, वस्तुतः हम इस बातको स्पष्ट करना चाहते हैं कि शिवप्रसाद सिंहकी कथाओंमें और (अन्य निबन्धोंसे अलग) रचना-प्रक्रियाकी चर्चामें कोई विरोधाभास नहीं है। उनकी कहानियाँ धारणागत 'प्रतीक' हैं तथा चरित्र 'जीवन-संघर्षों' से जूझते हुए अपने जीवनके 'नियत' से आक्रान्त हैं। 'ताड़ीघाटका पुल' कथामें कमली, बिसू महाराज, तिलक, मिसिरजी, पुष्पा आदि चरित्र 'व्यवसाय' की एक रहस्य-आवृतिके संगठनमें, अन्तमें, एक 'सत्य' से प्रभावित हैं बल्कि वह कटुसत्य ग्राम-जीवनकी क़स्बीकरण चेतनाके पदवस्थावादी समाज (जिस समाजमें व्यक्तिके व्यवसाय या स्टेट्स निर्णय लेते हैं) के निर्णयोंका समाज है। इससे व्यवसायके प्रति 'मोहभंग' होनेकी बजाय 'तिलक' की 'विवशता' ज़्यादा स्पष्ट होती है। यहाँपर साफ़-साफ़, इन्हीं बिन्दुओंके आधारपर आधुनिकताकी धारणाका रूप देखा जा सकता है क्योंकि 'मोहभंग' विवशतारूपी पलायनकी तरह रोमाण्टिक नहीं है जब कि विवशता (की भावुकता) रोमाण्टिक है। अतः समग्र प्रभावके रूपमें जो कहानी 'त्रासभाव' को रूमानी रूपमें प्रकट करती है, वह कहानी 'चरित्र'-

को तो स्थापित कर देती है चरित्रसे इतर उस अनुभवको चित्रित करनेमें पीछे रह जाती है जो कथाके पूरे रचना-विधानपर आच्छादित रहता है। चरित्रके स्थापनकी एकरसता 'मुरदा सराय' की कहानियोंमें मिलती है, 'मैं कल्याण और जहाँगीर नामा' तथा 'मुरदा सराय' दोनों कहानियाँ अपवाद हैं क्योंकि इन कहानियोंमें 'चरित्र' या धारणाएँ उतनी प्रमुख नहीं हैं जितने कि वे विचित्र अनुभव जो एक दूसरी दुनियाकी रचना करते हैं।

'मुरदा सराय' की कहानियाँ इन 'बिन्दुओं' से हटकर शिवप्रसाद सिंहके कथा रचना-क्रमको एक नये रूपमें भी प्रस्तुत करती हैं क्योंकि अबतक शिवप्रसाद सिंहको 'आँचलिक कथाकारों' के बीच जोड़ा गया है जब कि वे कहानियाँ आँचलिक न होकर जीवनकी कहानियाँ हैं। आँचलिक कथाओंमें भूगोल, परिवेश तथा अन्य प्रभावमूल कथा-चेतनाको इस तरह आवृत कर देते हैं कि वहाँ कथाकी बजाय परिगणना (भाषा-शब्दोंसे लेकर संज्ञाओं तककी) अधिक हो जाती है जो एक हद तक अर्थहीन हो जाती है। वस्तुतः शिवप्रसाद सिंहकी ये कहानियाँ नगरजीवनकी नागरीकरण प्रक्रियाके प्रभाव-बिन्दुओंको छूती हैं तथा उन्हीं मानवीय समस्याओंको सहज रूपमें प्रस्तुत कर देती हैं। 'धारा' नामक कहानीमें कथाकारको कोई ऐसा आग्रह नहीं है जिससे वातावरणका कोई बनावटीपन असहजरूपमें सामने आये, उसमें अवसाद कथाकी भाव-धाराका अवसाद है, वातावरणका नहीं किन्तु समस्या एकदम मानवीय है। चाहे वह शोषणसे सम्बद्ध हो या 'मौन-विकृति' से। इसी तरह उनकी पिछली कथाओंसे अलगाव 'मुरदा सराय' या 'तकावी' में देखा जा सकता है, यहाँ हलके-से शिवप्रसाद सिंह 'व्यंग्य' के माध्यमसे भी उस सहजताको चित्रित करनेकी कोशिश करते हैं। परन्तु कुल मिलाकर इस 'व्यंग्य' का कोई और अर्थ खुलता नहीं दीखता, विद्रूप स्थितियों में भी एक अनुकूलताका प्रवाह इन कहानियोंमें मिलता है

शिवप्रसाद सिंहको इन कहानियोंके बारेमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है, उनपर आरोप भी लगाया जा सकता है कि उन्होंने जिस 'जीवन' से हमारा परिचय कराया है वह चाहे हमारे बहुत नजदीक है और यथार्थ है फिर भी धीरे-धीरे दूर होता जा रहा है, यह आरोप भी लगाया जा सकता है कि उनकी कहानियोंका एक अपना 'फ़ार्मूला' होता है और अन्तमें हर कथा अपने-

आपको अर्थोंके लिए खोलती प्रतीत होती है किन्तु ये आरोप अपने-आप छोटे पड़ जाते हैं जब हम उस आत्मीय दुनियासे परिचित होते हैं जहाँके आर्थिक, पदवस्थाओं-सम्बन्धी, अवधारणाओं-सम्बन्धी दबाव कहीं-न-कहीं हमें भी प्रताड़ित करते हैं। चाहे हम 'महानगरों'में हों या किसी भी नये सांस्कृतिक संकटके अनुभवमें, वे दूरान्तर क्षितिज जहाँ कि संकटकी क्रियात्मक स्थितियाँ सामने आ रही हैं हमारे लिए नयी सूचनाएँ ही नहीं, मानव मनकी समान स्थितियोंकी सम्भावनाएँ भी हैं।

— गंगाप्रसाद विमल

● दो:

कथ्य और चरित्रका सानुपातिक समायोजन : होने और न होनेका कुछ

'मुरदा सराय' में डॉ० शिवप्रसाद सिंहकी बारह नयी कहानियाँ संग्रहीत हैं। संग्रहकी भूमिकाके रूपमें एक लेख है : कुछ न होनेका कुछ। उसे पढ़नेके बाद लेखककी कहानियोंको समझनेमें सहायता मिल सकती है और उसकी मान्यताओंके प्रति एक सहृदय एवं विवेक-सम्मत दृष्टि अपनायी जा सकती है। वैसे यह भी सच है कि रचना-प्रक्रियाके स्पष्टीकरणकी अपेक्षा वह उसपर लगाये जाते रहे आरोपोंके निराकरण और औचित्य-निर्धारणका प्रयास ही अधिक है। कुछेक विशेष कहानियोंको लेकर लेखकके कुछ आग्रह हैं, पाठकोंसे कुछ अपेक्षाएँ भी हैं। अपनी पहली कहानी 'दादी माँ' को लेकर उसका कहना है, 'दादी माँ' ग्राम-जीवनकी पहली कहानी थी जिसमें निजी अनुभव और भोगे हुए सत्यकी व्यथाको व्यक्त किया गया था....' (भूमिका पृ० सं० ११) इसी धरातलपर उसने अपनी और प्रेमचन्दकी कहानियोंके बीच विभाजक-रेखा खींची है। 'निजी अनुभव और भोगे गये सत्यकी व्यथा' कुछ ऐसे लचीले और सापेक्षिक शब्द हैं जिन्हें लेकर कोई निर्णय देना कम संकटपूर्ण नहीं है। किसी भी महत्त्वपूर्ण और सार्थक सृजनके पीछे 'निजी अनुभव और भोगे गये सत्यकी व्यथा' ही सब-कुछ नहीं है गोकि यह भी उतना ही सच है कि बिना उसके उपलब्धिके किसी शिखरका स्पर्श भी प्रायः असम्भव ही है। जो चीज़ सबसे

अधिक महत्त्वपूर्ण है वह यह कि 'निजी अनुभव और भोगे हुए सत्यकी व्यथा' को लेखक किस सीमातक कलात्मक और विश्वसनीय ढंगसे प्रस्तुत कर सका है। प्रेमचन्दकी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण ग्राम-कहानियोंमें 'निजी अनुभव और भोगे हुए सत्यकी व्यथा' शायद नहीं है लेकिन उसके बाद भी उनके पात्रों और परिवेश-पर लेखककी पकड़ इतनी सटीक और मज़बूत है, मनुष्यके सम्पूर्ण अन्तर्बाह्यको वह ऐसी ईमानदारी और कलात्मक संयमसे उभार सके हैं कि उसे पढ़कर उसके किसी अन्य रूपकी कल्पना प्रायः असम्भव-सी प्रतीत होती है।

डॉ० शिवप्रसाद सिंहकी कहानियाँ चरित्र और कथ्यके सानुपातिक समायोजनपर बल देती हैं। अपनी रचना-प्रक्रियाका विश्लेषण करते हुए एक बार यशपालने लिखा था कि वह किसी चरित्रके आधारपर कहानियाँ न लिखकर 'आइडिया'के आधारपर कहानियाँ लिखते हैं। उनके आगे किसी कहानीका विचार पहले आता है, चरित्र और परिस्थितियाँ फिर उसके अनुरूप वे स्वयं गढ़ लेते हैं। उनका विचार है कि चरित्रों-के आधारपर लिखी गयी कहानियोंमें कोई जीवन्त और प्रभावशाली पात्र मुश्किलसे ही आ पाता है—लेखककी अपेक्षाओंका तक़ाज़ा भी शायद ऐसा ही होता है। डॉ० शिवप्रसाद सिंह इस संकटपूर्ण एकांगी स्थितिसे बचकर चलनेकी कोशिश करते हैं। प्रायः ही उनकी कहानियाँ किसी चरित्रको लेकर शुरू होती हैं और जैसे-जैसे वे अन्तकी ओर बढ़ती जाती हैं, चरित्रोंके पीछेसे कुछ विचार भी उभरने लगते हैं और फिर शीघ्र ही एक ऐसी स्थिति आती है जब चरित्र ही एक सूक्ष्म कथ्यका रूप लेता हुआ मालूम पड़ता है। उनकी सबसे सफल कहानियाँ वे ही हैं जहाँ कथ्य और चरित्रके बीच पड़ा जोड़ अलग दिखाई नहीं देता है। इस दृष्टिसे 'मुरदा सराय' की सबसे महत्त्वपूर्ण कहानियाँ 'अरुन्धती', 'धारा', 'ताड़ीघाटका पुल' और 'एक यात्रा सतहके नीचे' हैं। 'धारा' को लेकर तो लेखकने अपनी रचना-प्रक्रिया और कहानीके आधारभूत सत्यको स्वयं खूब विस्तारसे समझाया है। 'ताड़ीघाटका पुल' और 'अरुन्धती' को लेकर मैं अपनी बातको किंचित् विस्तारसे स्पष्ट करना चाहूँगा।

'ताड़ीघाटका पुल' में आया साधारणसे साधारण पात्र भी आवश्यक और प्रभावहीन नहीं है। बिसू महराज, गोलू, कमली और तिलक सारे चरित्र खूब स्पष्ट और साफ़ हैं। लेकिन कहानीके अन्त तक पहुँचते-पहुँचते तिलकके चरित्रक

परिणति—और वही कहानीका प्रधान चरित्र है—एक विचारमें हो जाती है। वह अपनेको एक ऐसा माध्यम-भर महसूस करने लगता है जिसके ज़रिए दूसरों-के स्वार्थकी यात्रा सम्पन्न होती है और यात्राका अन्तिम क़दम हो जैसे उस माध्यमकी सत्ता-सार्थकताको नकार देता है।.....''नदीमें नावें थीं, स्टीमर थे। उन सबसे अलग एक पुल था, जिसपर तिलकको लगा कि वह पुल उसके पैरोंमें पूरी तरह सट गया है, अब वह चल नहीं पायेगा। वह पुलकी छोटी रेलिंगपर पैर टिकाकर बैठ गया, जैसे कोई चेतन प्राणी न होकर उस पुलका ही एक हिस्सा हो जो पानी कम होनेपर इस पारसे उस पार जानेवालोंके लिए नदीकी एक धारापर बिछा दिया जाता है और फिर बरसातके आनेपर बीचसे तोड़ दिया जाता है।....'' (पृ० सं० १४) इस प्रक्रियामें कहानीकी सम्पूर्ण सफ-लताके लिए दो बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि वह कथ्य, जो चरित्रके साथ जोड़ा गया है, किस स्तरका है क्योंकि उसके अपने महत्त्वका अनुपात ही कहानीके महत्त्वको प्रभावित करेगा और दूसरी बात यह कि ऐसा करनेके लिए जिस 'उच्चस्तरीय चेतनाकी आवश्यकता' पर लेखकने स्वयं बल दिया है उसका निर्वाह किस धरातलपर हुआ है। यह दोनों चीज़ें लेखककी कहानियोंके लिए सहज ही एक ऐसी कसौटी बन जाती हैं जिसपर उसके कृतित्व-को परखा जाना चाहिए।

कथ्यकी बारीकी और संकेत—सघनताकी दृष्टिसे 'अरुन्धती' और भी ऊँचे शिखरोंका स्पर्श कर सकी है। इस कहानीमें भी बड़की बहूके अतिरिक्त और बहुत-से चरित्र हैं। लेकिन बड़की बहू समेत उन सब चरित्रोंकी परिणति बड़ी सहजतासे कहानीके कथ्यमें हो जाती है। फिर पूरी कहानीमें रचित संकेत बड़े सूक्ष्म और महत्त्वपूर्ण हैं—कहीं दूर जाकर वे कहानीके कथ्यको भी बड़ी गहराईसे प्रभावित करते हैं। कहते हैं कि अरुन्धती एक ऐसा तारा होता है जो मृत्युसे कुछ पहले दीखना बन्द हो जाता है। बड़की बहू एक ऐसे ही तारेके समान है जो बदक़िस्मतीसे एक ऐसे परिवारका अंग बन गयी है जहाँ लोगोंको उसके गुणों और महत्त्वकी अपेक्षा ख़ानदानकी झूठी प्रतिष्ठाका दम्भ अधिक प्रिय है। उनके आगे उसका वास्तविक महत्त्व हमेशा ही छिपा रहता है। उसके गर्भस्थ शिशुको वे लोग इसलिए नष्ट कर देते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि लोग कहेंगे कि वह उनके नौकर हीराका अंश है! हीराकी मृत्युके पीछे भी एक दोहरी अर्थवत्ता है।

उसका बलिदान बड़की बहूके प्रति लगाये गये झूठे आरोपके मार्जनका साधन ही नहीं है वरन् वह उस दलित और उपेक्षित मानवजातिके प्रति लेखककी गहरी आस्थाका भी सहृदय रेखांकन है। हीराकी मृत्यु इस बातका प्रमाण है कि वह बड़की बहूको उसके परिवारके लोगोंकी अपेक्षा अधिक समझता है। 'अरुन्धती'में झूठे दम्भी और रूढ़ समाजकी मृत्युके संकेत तो उभरते ही हैं—भावी समाजके रूप और रचनाके संकेत भी उसमें कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इसी प्रकार 'एक यात्रा सतहके नीचे' में शोभा और उसके पतिकी करुण लाचारियोंको वाणी ही नहीं मिली है, समाजको अर्थहीन मान्यताओं और रूढ़ रूपके प्रति विरोध एवं विद्रोहका एक तीखा भाव भी है। संग्रहकी कुछेक और भी कहानियाँ ऐसी हैं जो सामाजिक विकृतियोंको उभारती हैं और परिवर्तन तथा नवनिर्माणका संकेत छोड़ती हैं।

लेकिन संग्रहमें जहाँ एक ओर ऐसी प्रौढ़ और ऊँचे स्तरकी कहानियाँ हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिनके जरिए लेखककी असफलताओंके मूलभूत कारणोंकी खोज दिलचस्प हो सकती है। जिन कहानियोंमें किसी जीवन्त चरित्रका आधार लेखकके पास नहीं है वहाँ, स्वाभाविक ही, वह उच्चस्तरीय चेतना भी लेखकके लिए सुलभ नहीं होती जो कथ्य और चरित्रको बारीकीके साथ जोड़नेमें मदद करती है। अन्य साधारण कहानियाँ ही नहीं, संग्रहकी प्रमुख कहानी 'मुरदा सराय' भी दूसरी श्रेष्ठ कहानियोंकी तुलनामें इसीलिए हीन और घटिया स्तरकी है क्योंकि उसमें चरित्र और कथ्यके सानुपातिक समायोजनके सिद्धान्तपर बल नहीं दिया जा सका है। इसके बावजूद वह जो एक रोचक और पठनीय कहानी बन पड़ी है वह महज़ अनुभूति और वातावरणके कुशल-कलात्मक चित्रणके कारण। लेकिन उसके अलावा कुछ और भी कहानियाँ हैं जिनकी असफलताका मूल इस सत्यमें निहित है कि उनकी एकांगिताके लिए ऐसा भी कोई सहारा मिल नहीं पाता है। 'किसकी पाँखें' अशरफ चाचा और ज़मीरन चाचीके फ़रिश्तों-जैसे चरित्रोंकी बुनियाद पर टिकी है। बहुत-कुछ यही स्थिति 'अँधेरा हँसता है' के अर्जुन पाण्डेके साथ है। 'तक़ावी' के शंकरसिंह तक़ावीके रुपयोंसे कपड़े और शिकारके लिए कारतूस खरीदकर अपने झूठे अहंको खुराक पहुँचाते हैं और फिर ज़मीन रेहन रखकर तक़ावीका पैसा अदा करते हैं! कहानीके अन्तकी नाटकीयता उन्हें और भी अतिरंजित कर देती है। दूसरी ओर 'जंज़ीर, फ़ायर-

ब्रिगेड और इन्सान', 'प्लास्टिकका गुलाब' तथा 'मैं, कल्याण और जँहागीरनामा' आदि कहानियाँ हैं जहाँ कहीं तो आइडिया स्पष्टतासे उभर नहीं सका है (जैसे 'प्लास्टिकका गुलाब' में), कहीं वह आइडिया निहायत सामान्य और सपाट है (जैसे शेष दोनों ही कहानियोंमें) और किसी जीवन्त चरित्रका अभाव उन कहानियोंकी रही-सही सम्भावनाओंको भी खत्म कर देता है।

इसके अतिरिक्त, इन कहानियोंकी चर्चाके सिलसिलेमें, एक और बातकी ओर भी अनायास ही ध्यान चला जाता है। पुस्तककी भूमिकामें लेखकने अपनी कहानियोंके प्रथम-पुरुषमें लिखे जानेकी बातके समर्थनमें कुछ बातें कही हैं; "'मैं' वस्तुतः व्याप्ति सत्यका उत्तम पुरुष ही नहीं, समय सत्यका साक्षी और भोक्ता पुरुष भी है।...यह 'मैं' समयके प्रति मेरी निजी प्रतिबद्धताका साक्षी है, जिसके माध्यमसे जीवनके प्रत्येक अक्सको मैं सही ढंगसे देखना चाहता हूँ। दूसरी ओर यह 'मैं' इस बातका सबूत है कि 'मैं' वर्तमान युगमें जो सामूहिक और यान्त्रिक सत्याभासोंसे परिचालित होनेके लिए विवश है अपने खून-मांससे उपलब्ध सत्यको कहनेका प्रयत्न करता हूँ।...." (भूमिका पृ० सं० २०) शैली और कहानीके बाहरी रूपके आधारपर कोई सामान्यीकरण ग़लत दिशाकी ओर ले जा सकता है। लेकिन यह एक आश्चर्यजनक स्थिति है कि प्रस्तुत संग्रहकी कहानियोंके सन्दर्भमें सबसे बड़ा धोखा लेखकको अपनी ओरसे ही मिला है। 'धारा'को अपवाद मानकर उत्तम पुरुषमें लिखी गयी कहानियाँ ही उसकी सबसे कमजोर कहानियाँ हैं। उसकी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ वे हैं जिनमें 'इन्वाल्व' हुए बिना उसने युगसत्यको देखा है और उसे कलात्मक अभिव्यक्ति दी है।....

— मधुरेश

• बक रहा हूँ जुनूनमें : प्रकाश पण्डित

साहित्य-मन्दिरमें निबन्ध और कथाके कक्षोंके बीच एक पतली-सी गली है जिसमें एक ओरसे चिन्तनके और दूसरी ओरसे सरस विनोदोंके झोंके आते रहते हैं, जहाँ बाह्य और आभ्यन्तर दोनोंको मिली-जुली झाँकियाँ देखनेको मिला करती हैं। इस गलीमें प्रथम और मध्यम पुरुषोंको चलते-फिरते, उठते-बैठते देखता, उन्हें कभी छेड़ता, कभी गुद्गुदाता, और कभी चिकोटियाँ काटता

प्रथमपुरुष चहलक़दमी किया करता है।

हिन्दी साहित्यमें यह गली अभी तक बहुत-कुछ ऊबड़-खाबड़ और सुनसान ही पड़ी है। ऐसी स्थितिमें 'बक रहा हूँ जुनूनमें' की साहित्यिक याचनाके साथ साहित्यकी एक महत्त्वपूर्ण सेवाके लिए इस गलीमें टहलते हुए श्री प्रकाश पण्डित-का हम सहर्ष स्वागत करते हैं।

पुस्तक "सादर एवं सस्नेह स्वयंको" समर्पित की गयी है। भूमिका लिखता-लिखता लेखक रुक गया है, इस पुनर्विचारके साथ कि "इसकी आवश्यकता ही क्या है।" पुस्तकके कवरपर दिये गये परिचयमें इसका उद्देश्य माना गया है 'सुधार' किन्तु यह सुधार बहुत कुछ 'आत्म-सुधार' बनकर ही आता है।

'सर्वाइवल ऑव द फ़िटेस्ट' के सिद्धान्तोंपर चल रहे आजके समाजमें व्यक्तिका प्रथम और अन्तिम धर्म है 'फ़िट बनना'। फ़िट बन सकनेके चुनिन्दा नुस्ख़ोंके साथ 'जुनून'की 'बक-बक' प्रारम्भ होती है। नुस्ख़े आज़मूदा और लाजवाब हैं, इससे किसी भी ऐसेको इनकार नहीं हो सकता जिससे 'फ़िट' होने-का थोड़ा भी अभिमान हो। लेकिन नुस्खे हैं ऐसे कि जिन्हें कोटकी भीतरी पॉकेटमें रखकर ही सड़कपर घूमा जा सकता है, हाथोंमें लेकर नहीं। जो 'फ़िट' हो सकने और बने रहनेके लिए फ़िटनेसकी इतनी क़ीमत चुकानेको तैयार हों उन्हें यह बक-बक सुननी ही चाहिए।

कहते हैं 'इन्तिहाए नशामें आता है होश'। होशमें आनेपर पहला ज्ञान जो होता है वह यह कि 'दुखिया सब संसार'। सौ दुःखोंमें एक दुःख यह भी है कि यह 'बक-बक' सुननी ही पड़ेगी। लेखक पाठकके इस दुःखको समझता है और इसके लिए हमदर्दी भी दिखाता है। पर दुःख देनेके लिए वह मजबूर है, क्योंकि वह लेखक है।

इसके बाद तो दुःख ही दुःख है। आपसे किसीने कहा 'आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई' समझ लीजिए कि आपकी शामत आ गयी है। कोई बात-बातपर कहता है, 'क्षमा कीजिए' तो विश्वास रखिए ऐसी स्थिती आ रही है जब क्षमा करनेके सिवा आपके लिए कोई गति नहीं रह जायेगी। जी, क्या कहा आपने ?...हम न हुए वहाँ! ग़जब हो गया! फ़ौरन एक लफ़्ज़ और बढ़ाइए इसमें—हम न हुए वरना....हाँ अब जरा एक निकास बना।

पर दुःखोंका अन्त नहीं, ऐसे भी लोग हैं जिनका तकियाकलाम है—"सब

ठीक हो जायेगा। बेतक़ल्लुफ़ दोस्तोंसे दुनिया भरी पड़ी है। 'विज्ञापनों'के बिना काम नहीं चलता। विवाहोंके लिए वर-वधुओंकी भी 'आवश्यकता है'। 'दामाद बननेके बाद' क्या होनेवाला है, भगवान् ही जाने। 'जन्तर-मन्तर' तो हमारे पीछे ही पड़ गये हैं। 'वो जमालो' कहाँ किस रूपमें घूम रही हैं, पता नहीं।

कहाँतक गिनाया जाये? पूछ लीजिए ये सारे दुःख किसी 'टेलीफ़ोन'से अगर उसके ज़बान हों। कभी 'किरायेका मकान' खोजा है आपने? कभी आपकी पत्नीने आपकी बनियानपर अपने माथेकी बिंदिया खुद चमकाकर आपको ब्लेकमेल किया है? अगर आप इन्स्पेक्टर हैं तो किसी सिपाहीकी रिपोर्ट सुनी है आपने कि उसने कैसे सारा दिन बिताया और क्या तीर मारे? आपकी पत्नी कभी आधी रातको आपसे 'दो बातें' करनेको तुल पड़ती है? अस्पतालके 'महिलावार्ड' या शहरके 'चुंगीखाने'से परिचित हैं आप? सड़कपर सीधे-सादे पेटके खेलका 'तमाशा' कभी देखा है आपने? जनतासे 'सम्पर्क' स्थापित करनेकी कोई चेष्टा की? और तो और 'सुनानेका रोग' भी एक रोग है यह मालूम है आपको?

छोड़िए इन बातोंको। दीवालीसे दो दिन पहले जब कि घरमें भूँजी-भाग न हो, और किसी पॉकेटमारने आपकी जेबसे चार रुपये चौदह आने साफ़ उड़ा लिये हों, आपने 'अठारहवीं सदी' के सम्पादकके लिए एक रोमाण्टिक कहानी लिखकर उनसे दस रुपये ऐंठनेकी कभी कोशिश की है? आप फ़रमायेंगे 'जी नहीं!' बहुत खूब! तो फिर आप 'क़िस्सा पाँचवें दरवेशका' पढ़ें।

'जुनून' लेखक और पाठकको दिल्ली पहुँचाकर छोड़ देती है, पुस्तकका यह अन्त मानो एक प्रतीक खड़ा कर देता है। अगर नयी दिल्लीकी सड़कों और पुरानी दिल्लीकी गलियोंमें घूमनेवालेके कोटकी भीतरी पॉकेटमें 'फ़िट' होने और बने रहनेके लामिसाल नुस्खे न रहे तो फिर रहेंगे ही कहाँ? चीज़ एक ही खटकती है—पुस्तकका शीर्षक। 'बक रहा हूँ जुनूनमें' कहकर लेखक मानो आलोचनाके हाथसे हथियार छीन लेना चाहता है। किन्तु क्या आलोचनाको खुली चुनौती देना बड़े खतरेकी बात है? क्या खतरेसे बचे रहकर कोई महत्त्वपूर्ण 'सुधार' किया जा सकता है, चाहे वह 'सुधार' अपना ही क्यों न हो?

—मनोरमा श्रीवास्तव

● ●

प्रकाशित समीक्षाएँ
शेष स्वर

स्तम्भके अन्तर्गत अबतक 'लोकायतन', 'एक साहित्यिककी डायरी', 'शिखरोंका सेतु', 'चारुचन्द्र लेख', 'आँगनके पार द्वार', 'अँधेरे बन्द कमरे', 'अर्द्धशती', 'बूँद और समुद्र', 'कनुप्रिया', 'शहरमें घूमता आईना', 'चाँदका मुँह टेढ़ा है' तथा 'कुछ कविताएँ' : 'कुछ और कविताएँ' पर समीक्षाएँ पत्रिकाके पिछले अंकोंमें दी जा चुकी हैं।
इस अंकमें प्रस्तुत है :

'झूठा-सच : यशपाल

• यह उपन्यास अनुकृति नहीं है !

यशपालके उपन्यास-साहित्यको इस 'अन्धे युग' में विभिन्न दृष्टियोंसे आंका गया और विविध कसौटियों पर परखा गया है। इस तरह 'झूठा-सच'का मूल्यांकन हुआ है। नेमिचन्द्र जैनका कथन है कि यह उपन्यास कुल मिलाकर इसलिए 'अखबारकी कतरनोंका बड़ा विशाल संग्रह' बन कर रह गया है कि इसमें घटनाओंके बाह्य रूपोंका चित्रण है, दृष्टि परिवेश पर अधिक टिकती है और परिवेशमें जीनेवाले व्यक्तिकी अन्तरात्मा पर कम, राजनीतिक विचारधाराओं और मान्यताओंके गहरे चटकीले रंग कभी-कभी समूचे फलकको रंग-संगतिके विपरीत बैठते हैं, सन्त्रस्त मानवोंकी आत्माके आन्तरिक द्वन्द्व, उनके आत्म-मन्थन तथा उनकी मौलिक आध्यात्मिक पीड़ाका अभाव है। श्री जैन इन कतरनोंको चुनने और सजानेमें लेखककी सावधानी तथा कुशलताको स्वीकार भी करते हैं। अपने ही मतका खण्डन करते हुए वे यह भी कह देते हैं कि उपन्यासकारमें राजनीतिक आन्दोलनोंको सामाजिक यथार्थके अन्य पक्षोंके साथ समेटनेकी क्षमता इसकी उपलब्धि है। इसके अतिरिक्त, वे

'झूठा-सच' में केवल विस्तारकी आँकते हैं और गहनताके लिए तरसते हैं। और यह विस्तार भी विशृंखल है। मुझे लगा है कि आलोचकके पास दो कसौटियाँ हैं जिनके आधार पर वे इस कृतिको परखते हैं। एक कसौटी तो सामाजिक यथार्थ या समाजवादी यथार्थकी है और दूसरी सौन्दर्यमूलक कला-दृष्टिकी। इनमें पारस्परिक विरोध इनके परस्पर विरोधी मतोंके मूलमें है। इसी उपन्यासके बारेमें प्रकाशचन्द्र गुप्त, जब एक ही कसौटी पर वे इसे परखते हैं, तब कहते हैं कि इसकी गणना हिन्दीकी अमर कृतियोंमें होगी। इसमें कथाकार जीवनकी अतल गहराइयोंमें उतर सका है। सुधी आलोचक इसमें भारतीय जीवनके व्यापक प्रसार और संश्लिष्ट सूक्ष्मता दोनोंकी झाँकी पा लेते हैं। अपनी एक और आलोचनामें वे इस उपन्यासको एक अद्वितीय प्रयास इसलिए घोषित करते हैं कि इसमें पटकी विशालता है, सामाजिक यथार्थका मार्मिक अंकन है, असंख्य पात्र हैं, आधुनिक जीवनकी गहरी सूझ तथा अनुभूति है। डॉ० रमेश कुन्तल मेघ 'झूठा-सच' को एक उपलब्धिके रूपमें स्वीकार तो करते हैं, परन्तु इनकी यशपालसे यह शिकायत है कि उन्होंने इसमें किसी साफ़ इतिहास-दर्शनको निरूपित नहीं किया है और उनका मार्क्सवाद धूमिल पड़ गया है; उसका खुमार उतर गया है। इसलिए यशपालका मार्क्सवाद यान्त्रिक था। इसका कारण शायद यह है कि लेखकके बारेमें यह धारणा रूढ़ हो चुकी है कि उनका जीवन-बोध मार्क्सवादी है। मैं भी इस भ्रान्तिका शिकार रहा हूँ और इसलिए मैंने उनकी उपन्यास-कलाके मूल्यांकनको लाल एवं गुलाबी रंगके रूपकमें बाँधा था। यशपालने मार्क्सवादी चिन्तनके प्रभावको तो स्वीकार किया है; परन्तु इसे चरम सत्यके रूपमें स्वीकारने से इनकार किया है। इसलिए डॉ० मेघका निराश होना संगत नहीं जान पड़ता। इनका सन्तोष इससे हो सकता है कि यशपाल इतिहास-धाराको जोड़े रहते हैं और वे इस उपन्यासमें कुछ ऐतिहासिक परिणाम भी निकाल लेते हैं—जैसे उपन्यासके अन्तमें पुरी तथा सूदके पतनका आरोपित चित्र। इस तरह उपन्यासमें विशाल जन-चेतनाके विकसित होने पर डॉ० मेघ थोड़ा सन्तुष्ट हो जाते हैं।

इस संकुलताकी स्थितिका विश्लेषण करनेके लिए यशपालकी जीवन-दृष्टि तथा रचना-प्रक्रियासे अवगत होना आवश्यक जान पड़ता है। उनका साहित्यकार

दो भागोंमें विभक्त है : उनके मुनि और ऋषिमें, उनके चिन्तन और सृजन में। उनका मुनि आधुनिकताकी चुनौतीको स्वीकार करता आया है जिसके मूलमें युगका बौद्धिक विकास तथा वैज्ञानिक दृष्टि है। यशपालके मुनिके लिए आधुनिकता एक प्रक्रिया न होकर एक मूल्य है और मूल्य भी रूढ़ न होकर विकासशील है। इसलिए उनका मुनि कभी सुधारवादी है तो कभी भौतिकवादी, कभी इसपर मार्क्सके चिन्तनका प्रभाव है तो कभी फ़ायडके चिन्तनकी छाप। वह शुरूसे आधुनिकताको चुनौतीको प्रायः वैचारिक धरातलपर ही स्वीकार करता आया है। उनके ऋषि तथा मुनिमें, सृजन तथा चिन्तनमें होड़ लगी रही है और चूँकि यशपालने आधुनिकताको प्रायः वैचारिक स्तरपर आत्मसात किया है। उनका मुनि उनके ऋषि पर हावी होनेका आभास देता रहा है। जब उनका मुनि कभी-कभी सो जाता है तब उनका ऋषि सृष्टि कर डालता है। उनकी कहानी-कलाका मूल्यांकन करते समय इस रचना-प्रक्रियाका संकेत मुझसे हो गया था। इसका निरूपण अनु विगने विस्तारसे अपने अनुबन्ध 'डिसर्टेशन' में कर डाला है और वे इस परिणाम पर पहुँची हैं कि उनकी अधिकांश कहानियोंमें उनका मुनि जागता रहता है और कभी-कभी वह जब-तब सो जाता है, तब उनके ऋषिको सृष्टि करनेका अवसर हाथ लगता है। कुछ कहानियोंके अन्तमें उनका मुनि एकदम जाग उठता है और वह ऋषिकी सृष्टिमें विकार ला देता है। यही स्थिति 'झूठा-सच' की है। एक आलोचकको यशपालका मुनि भाता है तो दूसरेको उनका ऋषि सुहाता है। इसलिए उनके मतोंमें गहरा अन्तर पाया जाता है।

यशपालकी दृष्टिमें सच क्या है और झूठ क्या है? उपन्यासमें ताराका सोमराजकी पत्नी होना झूठा सच है : यह क़ानूनी तौरपर सच है और नैतिक तथा न्यायकी दृष्टिसे झूठ। इस आधारपर इस कृतिका नामकरण भी हुआ है। यह झूठा सच न केवल इस उपन्यासका आधार है, यह उपन्यासकारकी जीवन-दृष्टिका मूल सूत्र भी है, उनकी उपन्यास-कलाका मूल स्वर भी है। लेखकके मुखसे इसका स्पष्टीकरण भी वे इन शब्दोंमें करते हैं—"घटना तो सच-झूठ नहीं होती। झूठ या सच तो इसे व्यक्त करनेकी दृष्टिमें या उसे सोद्देश्य बनानेमें होता है।" इस बातको डॉ० मेघने अपनी समाजशास्त्रीय शब्दावलीमें इस

तरह व्यक्त किया है—"इस उपन्यासका झूठ है—घटनाएँ, जन-जीवनको रोकने-वाली शक्तियाँ और सामन्ती संस्कार। इसका सच है—ऐतिहासिक अनुभव, सामाजिक चेतनाकी प्रगति....। इसके सच हैं मनुष्य तथा समाजके शाश्वत मूल्य, जो देशकी, कालकी सीमाको लाँघ भी जाते हैं।" मुझे लगता है कि झूठ तथा सचकी समस्याको इस उपन्यासमें मूलतः प्रेम, शादी और तलाक़के माध्यमसे और अंशतः पुरीके पतन-द्वारा उठाया गया है। प्रेम तथा विवाह आदिकी समस्यासे सम्बद्ध अनेक युगल हैं जिनमें तारा-सोमराज, तारा-नाथ, कनक-पुरी, कनक-गील, शीलो-मोहनलाल, शीलो-रतन, मर्सी-चड्ढा, सीता-अनाम युवक, राजेन्द्र-उषा, कंचन-नरोत्तम, श्यामा-डे, उर्मिला-मोंगिया प्रमुख हैं। इन सब युवक-युवतियोंका अन्तमें विवाह हो जाता है; तारा, कनक, शीलो आदिका दो बार और उषा, कंचन, गिल, नरोत्तम, मर्सी आदिका एक बार। ताराका पति सोमराज अपनी भाभीको ही घरमें डाल लेता है। केवल बन्ती अपने पतिसे तिरस्कृत होकर उसकी दहलीज़पर ही अपना सिर पटक-कर मर जाती है। इन युवकों तथा युवतियोंके अतिरिक्त और सम्बन्ध भी चित्रित हैं—कभी विवाहसे पहले तो कभी विवाहके बाद, कभी उथले तो कभी गहरे, कभी सहज तो कभी आरोपित।

इन सम्बन्धोंके निरूपणमें यशपालने नारीके स्वतन्त्र व्यक्तित्वको आँकनेका प्रयास किया है और इस परिधिमें आधुनिकताकी चुनौतीको भी स्वीकार किया है। यह इस उपन्यासमें इसलिए अधिक सम्भव हो सका है क्योंकि इसके पात्र वतनसे उखड़कर देशमें आये हैं, जन्मभूमिसे उजड़कर मातृभूमिमें आये हैं। अपने परिवेशसे उखड़कर पेड़का लगना तो कठिन होता है, लेकिन पौधा लग जाता है। इन पौधोंको उपन्यासके दूसरे भागमें लगाया गया है। यशपाल विवाहको एक सामाजिक बन्धनके रूपमें स्वीकार नहीं करते, वे उसे एक वैयक्तिक सम्बन्धके रूपमें मान्यता देते हैं। यदि कनक तथा पुरीके विवाहित जीवनमें सार नहीं रहा, तारा तथा सोमराजके विवाहका आधार नहीं रहा, शीलो तथा मोहनलाल का गठबन्धन शिथिल पड़ चुका है तो नारीको पूरा अधिकार है कि वह अपना नया सम्बन्ध स्थापित कर सके। इस तरह वह नारीको शोषित मान कर उसकी वक़ालत करते हैं। इसमें ही सामाजिक न्याय है और यही सच है। यशपालकी दृष्टिमें शेष झूठ है। इसका बीज तो उपन्यासके पहले भागमें बोया गया है,

कनक-पुरी तथा तारा-असदके रोमाण्टिक प्रेममें; परन्तु इसकी परिणति इसके दूसरे भागमें इस प्रेमके मोहभंगमें होती है, जब कनक गिलके साथ और तारा डॉ० नाथ के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करती है। यशपालका मुनि मुख्यतः विवाह तथा विच्छेदकी समस्याको उठाकर अपने सचका निरूपण करना चाहता है। वे प्रेमचन्दकी तरह तलाक़के विपक्षमें नहीं है। प्रेमचन्दकी सीमा 'गोदान' में मालती-मेहताकी मैत्रीसे आगे नहीं बढ़ पाती; यशपाल इस सीमाको पार करते हैं और इस तरह प्रेमचन्द-परम्पराके उपन्यासकारोंकी पंक्तिसे अलग हो जाते हैं। यशपालके मुनिने राजनीतिक समस्याको भी गौण रूपमें उठाया है और इसका समाधान सूद तथा पुरीके पतनके रूपमें दिया है और जनताकी शक्तिमें निजी विश्वासको डॉ० नाथ के इन शब्दोंमें व्यक्त किया है—"जनता सदा मूक भी नहीं रह सकती। देशका भविष्य नेताओं और मन्त्रियोंकी मुट्ठीमें नहीं है, देशकी जनताके ही हाथमें है।" इस तरह 'झूठा-सच' का अन्तिम स्वर, जो विषम है, राजनीतिक है। सामाजिक तथा राजनीतिक परिवेशोंको संघटित तथा संग्रथित करनेमें सदैव सफल नहीं हो पाते। उनसे सम्बद्ध घटनाओंकी सूचनाएँ उपन्यासमें देना कलात्मक दृष्टिसे कहाँ तक संगत हैं, यह प्रश्न बना रहता है। इसी तरह, कहीं ऐबॅरशन (गर्भपात) पर भाषण दिया गया है, कहीं राजनीतिक समस्याओंका विस्तृत निरूपण है, कहीं इन दलोंकी नारेबाज़ी है, कहीं शराब पीनेकी विधियोंका नीरस विवरण है, कहीं पात्रोंकी प्रतिक्रियाओंको 'टैप शैली' में आबद्ध किया गया है, कहीं दंगों तथा भीड़ोंका विवरण है, तो कहीं संस्कारबद्ध औरतोंके अन्धविश्वासों, टोने टोटकों, वशीकरणके उपायोंके नीरस उल्लेख हैं। यशपालकी सपाट शैलीकी विवरणात्मक एकरसता कहीं-कहीं उनकी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्तिसे टूट भी जाती है।

उपन्यासके इस लम्बे पथपर चलते-चलते लेखक श्रान्त पथिकका आभास तो दे जाता है, लेकिन भ्रान्तका नहीं। एक ओर वस्तुकी दृष्टिसे विवाहित तथा अविवाहित जीवनकी समस्याएँ उपन्यासकी धुरी हैं तो दूसरी ओर शिल्पकी दृष्टिसे संयोगात्मक घटनाएँ। अविवाहित जीवनका सूनापन, विवाहित जीवनकी उलझनें पाठकके मनको झकझोरती हैं और घटनाओंके आकस्मिक मोड़ इसे झटका देते हैं। मुझे लगता है कि यशपालका पाठकोंके हृदयपर तो अगाध विश्वास है, परन्तु उनकी बुद्धिमें गहरी आस्था नहीं है। इसलिए वे संकेतकी

जगह विस्तारसे काम लेते हैं। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि अधिक कहनेसे अधिक कहा जा सकता है। इस उपन्यासके अनेक पात्रोंके मिलन-वियोगमें आकस्मिक घटनाओंका जाल-सा बुना हुआ है जो कभी-कभी अस्वाभाविक भी लगती है। यह जाल लेखकके नियतिवादमें विश्वासका परिणाम न होकर उनके उद्देश्यको पूरा करनेकी विवशताकी परिणति है। इस तरह घटनाओंके विन्यास तथा पात्रोंके स्वरूपको उपन्यासका उद्देश्य ही रूपायित करता है। 'सच' का मण्डन तथा 'झूठ' का खण्डन करनेके लिए यशपाल अतिशयता एवं अतिरंजनाका उपयोग करनेसे परहेज़ नहीं करते। उनका मुनि उनके ऋषिको प्रायः दबाये रखता है और वह अपनी बात कहनेके लिए या साध्यकी प्राप्तिके लिए हर साधनको ठीक समझता है। इसके लिए वह हर स्थितिमें ऋषिके सहयोगको आवश्यक नहीं समझता। कभी वह अपनी बात नरोत्तमके मुखसे, कभी गिलके, कभी गिरधारीलालके, कभी असदके तो कभी डॉ० नाथके मुखसे कहनेके लिए तैयार हो जाता है। नरोत्तम सरकारी नीतिकी कड़ी आलोचना करते हैं, और डॉ० नाथ देशके भविष्यको जनताके हाथमें देनेकी बात कहते हैं। कनकका अधिकांश व्यक्तित्व मानवीय धरातलपर न उतरकर अविश्वसनीय तथा वैचारिक स्तरपर अवतरित हुआ है। उसकी निडरता, साहसिकता, सिद्धान्तवादिता, विद्रोहशीलता, तथा हठता अपनी सीमाके बाहर होकर लेखकके सच-निरूपण के काम आती है। इसके विपरीत, ताराको जिन अमानवीय स्थितियोंसे गुज़ारा गया है, जिन यातनाओं तथा यन्त्रणाओंको उसे सहन करना पड़ा है, वे अपनी असाधारणता तथा असामान्यतामें भी विश्वसनीय होनेका आभास देती हैं। इस तरह कनक मुनिकन्या लगती है और तारा ऋषि-कन्या। आधुनिक मुनि तथा आधुनिक ऋषिकी कन्याएँ अस्वस्थ हैं—कनक अपनी यौन-भावनासे त्रस्त है और तारा अपने गुप्त रोगसे ग्रस्त। यशपालके मुनि अपने विचारोंमें इतने उदार हैं कि वे ताराके गुप्त रोग, कनककी पतिसे विरक्ति तथा सीताकी उच्छृङ्खलता तकको सहानुभूतिसे देखते हैं और इस तरह जड़ नैतिकताका विरोध करना चाहते हैं।

वे पुरीके व्यक्तित्वका विरोध भी शायद इसलिए करते हैं कि उसके संस्कार पुराने पड़ चुके है। उसके चरित्र-चित्रणमें लेखक मार्क्स तथा फ्रायड दोनोंके चिन्तनसे सहायता लेता है। पुरीके बारेमें गिलका कथन है—'वह अब बँटवारेके पहलेका बेठौर नहीं रहा है। अब वह कुछ पूँजीवालेकी भाँति सोचता

है। अब उसे सब ओर अवसरकी कमी और व्यवस्थामें विषमता नहीं दिखाई देती। उसे अब परिवर्तन और न्यायकी नयी धारणाओंकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। उसकी जड़ें जम रही हैं। अब वह उलट-पुलटके विचारोंसे घबराता है। पुरीके चरित्रको परिस्थितियोंके दासके रूपमें अंकित किया गया है। वह किस तरह धनकी अमोघ शक्तिसे पराजित होकर पतनशील हो जाता है—इसका विशद चित्रण उपन्यासमें उपलब्ध है। इस विश्लेषणमें मार्क्सवादी चिन्तनका प्रभाव है और पुरीके यौन-जीवनके विश्लेषणमें फ़्रायडके विचारोंका। उसकी कनकसे विरक्ति तथा उर्मिलामें आसक्तिका विवेचन मनोविश्लेषणके धरातल-पर किया गया है। इस तरह यशपालने दोनोंकी चिन्तनधाराओंका यथा-स्थान उपयोग किया है। पुरीकी हीन-भावनाका भी संकेत बार-बार दिया गया है परन्तु उसकी अपराध-भावना का एक बार। यह अपराध-भावना उर्मिलाके पेटमें पुरीकी सन्तान होनेका परिणाम है। इसके अतिरिक्त, पुरी अपने कामाचारमें मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे अंकित है। यौन दृष्टिसे कनक उससे सबल है; वह उसका सन्तोष तो नहीं कर सकता, अपमान ही कर सकता है। इसलिए भी वह कनकको पीड़ित करता है। पुरीका व्यक्तित्व सरल न होकर जटिल है, विसंगतियोंका पुंज है और लेखककी सहानुभूतिसे वंचित रह जाता है। उनकी सहानुभूति या तो नारीसे है या साम्यवादी एवं उदार विचारोंके पुरुषसे। इसके परिणामस्वरूप उपन्यासमें सब नारियोंका विवाह सम्पन्न हो जाता है। इनमें हर तरहकी नारी हैं जिनका विवाह भारतीय समाजमें असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य रहा है। यशपाल उनके विवाहको सुगम बनाना चाहते हैं। उर्मिला विधवा है और विधवा होनेके बाद मोंगियासे अपने विवाहके पहले पुरीकी सन्तानको लिये हुए है, कनक तलाक़शुदा है और उसके एक सन्तान भी है, तारा विवाहिता है और इसके अतिरिक्त उसका सतीत्व दंगोंमें लुट चुका है, सीताने घाट-घाटका पानी पिया है, शीलो अपने पतिको छोड़कर प्रेमीके यहाँ बसने लगती है, श्यामा सामाजिक दृष्टिसे लांछित है, केवल बन्ती ही इसका अपवाद है। इधर, पुरी अकेला रह जाता है, माथुरके विवाहकी भी लेखकको चिन्ता नहीं है। पुरुष और भी हैं जिनका उपन्यासमें विवाह नहीं हो पाता। इस तरह यशपालने आधुनिकताकी समस्याको हर तरहकी नारीके विवाहके माध्यमसे उठाया है। वह अनागत के संकेत देनेके लिए आगतकी उपेक्षा भी कर जाते हैं, आधुनिकताको निरूपित

करनेके लिए समसामयिकताकी अवहेलना भी कर जाते हैं। इसलिए मैंने यह कहनेका साहस किया है कि लेखकने आधुनिकताकी चुनौतीको वैचारिक स्तरपर अधिक स्वीकारा है और अनुभूतिके धरातलपर कम।

इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए यशपालको हर तरहके साधनोंको अपनाना पड़ा है। इनमें एक साधन घटनाओंको आकस्मिक तथा अस्वाभाविक मोड़ देनेमें अपनाया गया है। उपन्यासमें अनेक संयोग हैं और, जैसा पहले कहा गया है, ये किसी नियतिका परिणाम न होकर उद्देश्यकी पूर्तिकी परिणति हैं। यशपालका उद्देश्य 'पवित्रताके अहंकारको तोड़ना है, सतीत्वकी धारणाको फोड़ना है, जड़ मूल्योंका विरोध करना है। इसलिए यदि वे उपन्यासकी आन्तरिक संगति अथवा कलात्मक रचावके प्रति सजग नहीं हैं तो यह उनकी जीवन-दृष्टि तथा उद्देश्यका परिणाम है। अपने-आपमें कथानकका बिखराव कलात्मक दोष नहीं कहा जा सकता, रचनाका अभाव भी रचनाका रूप हो सकता है। परन्तु 'झूठा-सच'के बिखरावमें आन्तरिक असंगति कभी-कभी खटकती तथा अखरती है। यह केवल घटनाओंके आकस्मिक मोड़ोंमें नहीं, पात्रोंके अतिरंजित चरित्र-चित्रणमें भी इसका आभास मिल जाता है। कनकका व्यक्तित्व मानवीय तथा विश्वसनीय न होकर प्रतीकका आभास देने लगता है। डॉ० नाथ भी इसी पंक्तिमें खड़े हो जाते हैं। ताराके चरित्र-चित्रणमें भी अतिरंजनाका समावेश है। गिल भी लेखकके मुनिकी देन है।

यशपालके ऋषि उनके मुनिके अधीन अवश्य हैं, परन्तु वे अपनी स्वाधीनता को नितान्त खोते भी नहीं हैं। जब उनके मुनि सोच-विचारका परिश्रम करते-करते थककर विश्राम करने लगते हैं तब उनके ऋषिको सृजन करनेके अवसर मिल जाते हैं। इन अवसरोंकी उपन्यासके दोनों खण्डोंमें कमी नहीं है। उनके ऋषिकी पंजाबके जीवनसे गहरी आत्मीयता है। यह शायद इसलिए कि वैदिक ऋचाओंकी सृष्टि भी इस प्रदेशमें हुई थी। इस जीवनका यथास्थान तथा यथासम्भव सजीव तथा मार्मिक अंकन हुआ है। पुरानी पीढ़ीकी नारियोंके रूढ़िगत संस्कारोंके व्यंग्यात्मक चित्रणमें लेखककी दृष्टि झलकती है। कहीं-कहीं पंजाबी टप्पोंके उद्धरण और बोलचालकी भाषाके प्रयोग आंचलिकताकी सृष्टि करते हैं। आंचलिकताका रंग गहरानेके लिए पंजाबी गालियोंसे भी काम लिया गया है। उपन्यासके छोटे पात्रोंमें ऋषिकी सृष्टि है और बड़े चरित्रोंमें प्रायः मुनिका

निर्माण। लेकिन इन पात्रोंके निर्माणमें भी जब उपन्यासकार मानवीय धरातल पर उतरता है तब इनका भी सृजनात्मक पक्ष उभरने लगता है। व्यक्तिसे राजनीति की ओर बार-बार मुड़ना लेखककी विवशता है, मानवीय भूमिसे राजनीतिक धरातल पर क्रमशः उतरना उपन्यासकी रीति है। उनके मुनिके व्यंग्य भी इति-वृत्तात्मक प्रसंगोंमें सजीवता ला देते हैं। व्यंग्य कहीं उक्तिका है, कहीं स्थिति-का। कनकका पुरीसे विवाह सम्पन्न होना उसी तरह है जिस तरह कबूतरी कौआ उड़ा कर ले जाये। इसमें उक्तिमूलक व्यंग्य है। पुरीका नैनीतालके किसी बढ़िया होटलमें ठहरनेका व्यंग्यात्मक चित्रण स्थितिसे सम्बद्ध है। उसका संकोच-भाव उसकी हीनभावनाका सूचक है। यह स्थिति मिस्टर किप्सकी याद दिलाती है जब वह अपने निचले परिवेशसे उठकर अभिजातमें पहुँच जाता है। इस तरह उपन्यासमें यशपालके मुनि तथा ऋषिमें होड़ लगी रहती है और विस्थापितोंके जीवनका चित्रण सृजनात्मक, व्यंग्यात्मक तथा अतिरंजित रूपमें हुआ है।

जहाँ तक विभाजनको घटनाके दृश्यों तथा परिणामोंका सम्बन्ध है, इनमें जीवन-का पाशविक तथा वीभत्स रूप ही अधिक उभरा है। कहीं-कहीं इसका मानवीय रूप भी उपलब्ध है। अनेक दृश्य तथा असंख्य लोग उपन्यासके पटको विशाल बनाते हैं। कहीं-कहीं उपन्यासकारको दोहराना भी पड़ा है ताकि उसके पाठक कथाके सूत्रको पकड़ सकें। वे परिवेशके चित्रणमें अपनी पैनी दृष्टि, गहरी पकड़ तथा सम्पन्न कल्पनाका परिचय देते हैं। इस ऐतिहासिक घटनाको यशपालने स्वयं नहीं भोगा है। उपन्यासमें कहीं लाशें बिखरी पड़ी हैं जिनपर गिद्ध मँडरा रहे हैं, कहीं असाध्य बोझसे लदी गाड़ियाँ हैं जिनके इंजन धुएँके बादल छोड़कर चलनेसे इनकार करते हैं, कहीं उखड़े हुए मुसलमानोंके क़ाफ़िले और हिन्दुओंके सार्थ हैं, कहीं साम्प्रदायिक नारोंकी गूँज है तो कहीं आगकी लपटें हैं, कहीं उजड़ी जनताकी पुकारें हैं तो कहीं अपमानित नारियोंके चीत्कार हैं, कहीं भीड़ोंकी अनुभूति है तो कहीं सूनेपनकी, कहीं नेताओंके सन्देश हैं तो कहीं सुधारकोंके उपदेश। उपन्यास एक असाधारण घटनाकी कहानी है, एक भूचाल-की कहानी है और मानवतामें छिपी पाशविकताकी गाथा है। उपन्यासके दोनों खण्डोंकी सृजनात्मक दृष्टिसे तुलना करते हुए प्रायः सभी आलोचकोंने पहले खण्डके जीवन-चित्रोंमें अधिक मार्मिकता, स्वाभाविकता तथा संश्लिष्टताको आँका है। यह शायद इसलिए कि डॉ० मेघके अनुसार पहले भागमें झूठका जाल है

और दूसरेमें इसकी काट। और जाल बुननेमें सृजनकी सम्भावना शायद अधिक होती है; झूठ बोलनेमें भी कलाकी अपेक्षा अधिक होती है। जहाँतक विभाजन-की इस ऐतिहासिक घटनाके परिणामोंका सम्बन्ध है, पहले भागमें पाशविकताके रूप एवं चित्र वीभत्सताकी दृष्टिसे कम नहीं हैं। ताराका नब्बूके घरमें बला-त्कार, 'कैम्पों' में पशुताकी होड़, गफ़ूराका बन्दीगृह, लक्खीका अन्त, लाशों तथा उनपर मँडराते हुए गिद्धोंका चित्रण पहले भागमें दिया गया है। यह हो सकता है कि पहलेमें इस ऐतिहासिक घटनाके चढ़ाव और दूसरेमें इसके उतार-के कारण पहले खण्डके चित्र तथा दृश्य अधिक सशक्त लगे हों।

इस उथल-पुथलमें पुरातनके उखड़ जानेकी सम्भावना है और नवीनके अंकुरित होनेके लिए अनुकूल भूमि है। इस परिवेशमें यशपालने आधुनिकताकी चुनौतीको सामाजिक तथा राजनीतिक धरातलोंपर स्वीकारना उचित समझा है। सामाजिक स्तरपर वे इसे विवाह-विच्छेद आदिके माध्यमसे स्वीकार करते हैं और राजनीतिक स्तरपर सूद-पुरीके उदय तथा अस्त-द्वारा वह इसका समाधान देते हैं। हर स्थितिमें वे नारीका साथ देते हैं और प्रायः हर नारीको वे सामाजिक अन्यायसे घिरी पाते हैं। डॉ० त्रिभुवन सिंहको गिल, चड्ढा, प्राणनाथ आदि कम्यूनिस्टोंसे लेखकका पक्षपात खलता है। क्या जागरूक नारीका परितोष यही लोग ही कर सकते हैं? यशपाल लगभग अपने सभी उपन्यासोंमें यही कुछ करते आये हैं। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि इनकी दृष्टिमें कम्यूनिस्ट संस्कारबद्ध न होकर संस्कारमुक्त होता है और वह नारीका शोषण करनेसे परहेज़ करता है और उसे समानताका अधिकार देता है। इसके परिणामस्वरूप वे गिलके मुखसे अपने प्रेम सम्बन्धी विचारोंको भी व्यक्त करते हैं। गिलका सरस्वतीसे सम्बन्ध टूट चुका है और कनकका पुरीसे टूटने-वाला है और जब वे दोनों एक दूसरेके निकट आ रहे हैं तब गिल दृढ़तासे कनकके उपालम्भका उत्तर इन शब्दोंमें देता है—"प्रेम जीवनका यथार्थ व्यवहार है। वह केवल कल्पना और स्मृतिमें ही सफल नहीं हो सकता। इस विचारका निरूपण अनेक व्यक्तियोंके सम्बन्धोंके बनने-टूटनेमें हुआ है। इस उपन्यासमें अधिकांश जागरूक नारियोंका अतीत है, परन्तु यह साम्यवादीके लिए नया सम्बन्ध स्थापित करनेमें बाधा नहीं बनता है। इस तरह सामाजिक पट पर वे बदलते हुए सम्बन्धोंको न केवल अंकित करते हैं, उनकी पुष्टि भी करते हैं।

इसी तरह, राजनीतिक धरातलपर वे पुरी-सूदके पतन द्वारा पूँजीवादी लोभ-शील शक्तियोंकी पराजयका संकेत देकर भविष्यवाणी भी करते हैं। इसीलिए प्रकाशचन्द्र गुप्तके अनुसार पुरी खलनायक है; परन्तु किस नायकका वह खल है, इसका नाम नहीं लिया गया। वे कनकको सत्य और ताराको सम्भावनाके रूपमें आँकते हैं और अन्तमें 'झूठा-सच' को विभाजनकी वेदनाका महाकाव्यकी संज्ञा देकर सन्तोषकी साँस लेते हैं। इनकी तरह मेरे लिए यह कहना कठिन है कि उपन्यासके दूसरे भागमें जीवनका नकारात्मक चित्रण अधिक है, स्वीकारात्मक कम। पहला भाग पढ़ते समय आलोचकका मन शायद वितृष्णा अथवा विरक्तिसे भर जाता है और इसके बाद उसकी आशाका लोप हो जाता है। मैंने तो केवल उपन्यासकी राहसे गुज़रनेका प्रयास किया है। मेरे पास उपन्यासका मूल्यांकन करनेके लिए न तो शाश्वत मान-दण्ड है और न ही शाश्वत दृष्टि। हर कृति, यदि वह अनुकृति नहीं है, अपने-अपने कला नियमोंको लिये होती है। यह उपन्यास अनुकृति नहीं है। इसके बारेमें बहुत-कुछ कहना मुझसे छूट गया होगा।

— इन्द्रनाथ मदान

• कविदृष्टिका अभाव

यशपालके मार्क्सवादी पूर्वग्रहोंके कारण उनकी कृतियोंके प्रति शायद मनमें ऐसी कुछ धारणा बन गयी थी जैसी अधिकांश मार्क्सवादी कृतियोंके प्रति बनी हुई थी—कि वे भी सतही और प्रचारात्मक अधिक होंगी, गम्भीर कम। लेखकके पिछले कुछ उपन्यासोंको देखते हुए शायद यह धारणा बिलकुल निराधार नहीं कही जा सकती, लेकिन विशिष्टताकी जो मुहर 'दिव्या' को उस ढंगके अन्य उपन्यासोंसे अलग करती है, वह अन्तर यशपालके उपन्यासों तथा वैसी ही पृष्ठ-भूमिपर लिखे गये दूसरे उपन्यासोंमें भी देखा जा सकता है। 'झूठा-सच' को विचारनेसे पहले लेखकके इस मार्क्सवादी पूर्वग्रहके कारण उसकी कृतियोंके प्रति बन गये अपने इस पूर्वग्रहको स्वीकार कर लेना आवश्यक समझता हूँ, क्योंकि 'झूठा-सच' की पहली विशेषता ऐसे पूर्वग्रहोंका स्पष्ट खण्डन ही मानी जा सकती है। न तो यह उपन्यास सतही है, न मार्क्सवादी दृष्टिकोणका औपन्यासिक प्रचार-मात्र। उपन्यास निस्सन्देह मानव-जीवनके उन गण्य दस्तावेज़ोंमें है जिनका मूल्यांकन प्रमुखतः एक कला-कृतिके रूपमें होना चाहिए।

इस उपन्यासका सबसे सशक्त अंग है चरित्रोंका चित्रण—उनका विषम परिस्थितियोंके बीच अदम्य संघर्ष। ऐसा नहीं कि वे परिस्थितियोंपर सदा विजयी ही होते हैं, लेकिन वे आसानीसे टूटते नहीं। उनमें जीवनके प्रति एक गहरी आसक्ति है जो निराशाके घोरतम क्षणोंमें भी जीनेका बल देती है। यह जीवन-लालसा या आसक्ति ही उपन्याकी धुरी है जिसके सहारे चरित्रों, घटनाओं, संघर्षों, राजनैतिक दाँव-पेंचों तथा सैकड़ों सूक्ष्म और स्थूल प्रतिक्रियाओंसे लदे-फँदे लगभग १२०० पृष्ठोंके इस उपन्यासका कथानक चलता है। उपन्यास आरम्भ करते समय उसके बृहत् आकारको देखकर सन्देह होता था कि क्या इसे समाप्त करनेका धैर्य रहेगा? लेकिन उसे आसानीसे समाप्त कर चुकनेके बाद यह आश्चर्य किये विना न रह सका कि छोटी-बड़ी दर्जनों जीवनियोंका इस प्रकार निर्वाह कि उनमें-से एककी भी विशिष्टता नष्ट न हो, उन्हें इस प्रकार सामान्य और असामान्य परिस्थितियोंमें कुशलतासे गूँथना कि उनकी चारित्रिक विशेषताएँ उभर सकें, साधारण उपलब्धि नहीं। साथ ही, चरित्रोंको लेकर जो वांछनीय तटस्थता लेखक बरतनेमें सफल हुआ है वह अन्यत्र उसीके उपन्यासोंमें मिलना कठिन है। 'गीता: पार्टी कॉमरेड'के रोमैण्टिक मार्क्सवादकी तुलनामें 'झूठा-सच' का निहित जीवन-दर्शन लेखकके प्रौढ़तर दृष्टिकोणका द्योतक है। यह नहीं कि 'झूठा-सच' मार्क्सवादी दृष्टिकोणके आशावादी पहलूके प्रति सचेत नहीं, बल्कि यह कि उसे वह एक सफल कला-कृतिमें पूर्णतः पचा सकनेमें सफल हुआ है। एक कृति किसी वैचारिक आग्रहके कारण उतनी अशक्त नहीं होती जितनी कि उस विचार अपचके कारण। यह दूसरी बात है कि हम लेखककी यथार्थसम्बन्धी बुनियादी धारणासे ही असहमत हों और यह न मानें कि जीवन केवल सामाजिक और आर्थिक ज़रूरतोंसे ही निर्देशित होता है, उन आत्मिक या आन्तरिक ज़रूरतोंसे नहीं, जिन्हें नितान्त वस्तुवादी दृष्टिकोणसे समझाना कठिन है। शायद यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि यशपाल ऐसी ज़रूरतोंको विशेष महत्त्व नहीं देते—या उन्हें भी, मार्क्सवादियोंकी ही तरह, व्यक्तिकी सामाजिक और आर्थिक विषमताओंसे उत्पन्न मानते हैं। कमसे कम 'झूठा सच' में ऐसा कोई चरित्र नहीं जो किसी सूक्ष्म आत्ममन्थनसे गुज़रता हुआ दिखाई दे। चाहे वह क्रमशः अपने आदर्शोंसे गिरता हुआ नायक जयदेव पुरी हो, चाहे बिना किसी आदर्शके भी एक आदर्श नायकत्वकी ओर उठती हुई उसकी बहन तारा हो, चाहे

पुरीसे अपना वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ती और तोड़ती हुई कनक हो—वे सब जीवनके प्रति एक बिलकुल दैनिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण रखकर चलते हैं। किसी भी परिस्थितिमें उनका ध्यान तात्कालिक सामाजिक या परिवारिक या आर्थिक कठिनाइयोंसे आगे, उन जटिलतर प्रश्नोंकी ओर नहीं जाता जिनका सम्बन्ध हमारे अस्तित्वकी बुनियादी मजबूरियोंसे है। सामाजिक और आर्थिक सन्तुष्टिको ही जीवनका चरम समाधान मान लेनेके ये अर्थ हैं कि हम रोग, बुढ़ापे, मृत्यु आदिकी यथार्थताको विचारणीय समस्या नहीं मानते। 'झूठा-सच'के इतने बड़े आयाममें भी मनुष्यकी तात्कालिक आवश्यकताओंकी पूर्तिसे बृहत्तर किसी मानवीय आकांक्षाको लेखकने नहीं लिया है। पात्रोंका साहसपूर्ण संघर्ष, जीनेके लिए तो प्रेरणा देता है, लेकिन किसी बड़े हेतुके लिए जीनेकी प्रेरणा नहीं देता। स्वरक्षा मनुष्य और पशु दोनोंके लिए स्वाभाविक है, आक्रान्त होनेपर दोनों ही पूरी तरह अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न करेंगे। लेकिन पशुसे अधिक विकसित-मानव-विवेक यह समझ सकता है कि ऐसे भी जीवन-सत्य हैं जिनकी रक्षाके बिना अपनी रक्षा भी या तो सम्भव नहीं, या कोई मानी नहीं रखती।

उपन्यासके निष्कर्षको विचारने पर ऐसा भी लग सकता है मानो पात्रोंके न टूटने, हारनेका कारण कोई समर्थ जीवन-दृष्टि या सांस्कृतिक विरासत नहीं, बल्कि इनका अभाव है! जैसा कि मैंने पीछे कहा, उनमें जीवनके प्रति एक आसक्ति तो है, पर आस्था नहीं: वह आस्था नहीं जिसका सम्बन्ध मनुष्यकी विकासशील चेतनासे है, बल्कि वह आसक्ति है जो किसी भी जीवमें होती है। इस ऐतिहासिक तथ्यको समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि बहुत बड़ी प्राकृतिक या राजनैतिक दुर्घटनाओंके बीच जरूरी नहीं कि नष्ट-होने-योग्य ही नष्ट हो, और बचने-योग्य ही बच रहे। ऐसे किसी विषयपर लिखी गयी एक कृतिमें यदि यह विवेक स्पष्ट नहीं उभरता तो उसे पूर्णत: सफल कृति नहीं कहा जा सकता। ऊपरसे देखनेपर ऐसा लगता है कि पंजाब-विभाजनके ववण्डरमें पड़कर जो लोग दिल्लीकी ओर आये उनके साथ ऐसी कोई विशिष्ट सांस्कृतिक या धार्मिक या नैतिक परम्परा नहीं आयी जिसका विनाश या सताया जाना पाठकके मनपर किसी अमूल्य और मार्मिक क्षतिका बोध करा सके। ऐसा सन्देह हो सकता है कि लेखक या तो जान-बूझकर जीवनकी इन सूक्ष्मताओंको महत्त्व नहीं देता, या जिन लोगोंकी बात वह कर रहा है उनमें ऐसी सूक्ष्मताएँ हैं नहीं, या फिर लेखक उन्हें

समझ सकनेमें समर्थ नहीं ।

लेकिन, 'उपन्यासमें जो नहीं है' उसकी ओर ध्यान आकर्षित करनेमें मेरा अभिप्राय 'उपन्यासमें जो है' उसका महत्त्व गिराना नहीं । तारा जिन मूल्योंका प्रतीक है, और पुरी जिन दुर्बलताओंका, उनका संघर्ष नैतिक-अनैतिक, अच्छे-बुरे आदि रूढ़-संघर्षोंसे कहीं अधिक वास्तविक है । यथार्थको प्रमुखता देनेवाले यशपालके लिए, पुरानी परिपाटीके अनुसार अच्छेको पुरस्कृत और बुरेको दण्डित दिखाकर औपन्यासिक न्याय करनेका लोभ नहीं रहा है । सामाजिक-आर्थिक दृष्टिसे न तारा असफल कही जा सकती है, न पुरी; फिर भी, जो मूल्य तारा-द्वारा प्रतिष्ठित होते हैं और पुरी-द्वारा अपमानित, उनके बीच यदि मनुष्यताका सही पक्ष ही ऊपर आया है, तो इसे मैं उपन्यासकी एक सराहनीय उपलब्धि मानता हूँ ।

लेकिन, जब मैं यह कहता हूँ कि उपन्यासके पात्रोंमें सूक्ष्म अनुभूतियोंका अभाव है तो मेरा संकेत पात्रोंकी अपेक्षा लेखकमें खटनेवाली एक कमीकी ओर है । यशपाल कवि नहीं हैं : अपनेमें यह तथ्य कोई महत्त्व नहीं रखता किन्तु उपन्यासके सन्दर्भमें एक ऐसे गुणका अभाव प्रकट करता है जिसके बिना एक साहित्यिक कृति 'क्लैसिक' की कोटिमें नहीं आ सकती । ज़रूरी नहीं कि एक अच्छा कवि अच्छा उपन्यासकार भी हो, लेकिन एक अच्छे उपन्यासकारमें यदि कविके भी गुण हों तो वह निश्चय ही बेहतर उपन्यासकार हो सकता है । 'मादाम बोवारी' का कोई भी पात्र कवि नहीं, उसी प्रकार 'झूठा-सच' का कोई भी पात्र कवि नहीं, उसी प्रकार लेकिन जिस विशेष अर्थमें उपन्यासकार गुस्ताव फ्लोबेअर कवि हैं और यशपाल नहीं, उसका अन्तर दोनोंकी कृतियोंमें स्पष्ट देखा जा सकता है । 'झूठा-सच'के नीरस प्रेम-प्रसंग लेखकके स्थूल दृष्टिकोणकी प्रत्यक्ष असफलताएँ हैं ।

'झूठा-सच' मुख्यतः सामाजिक-राजनैतिक पृष्ठभूमिपर लिखा गया यथार्थवादी उपन्यास है । इससे भिन्न किसी दृष्टिकोणसे जाँचते समय यह सावधानी बरतना आवश्यक है कि विवेचना कृतिके मूल मन्तव्यको देखते हुए असन्तुलित न हो जाये । उपन्यासकी प्रमुख उपलब्धि उस साधारण जन-जीवनका विस्तृत और यथातथ्य वर्णन है जिसका एक रूप हम पंजाब-विभाजनके समय ('वतन और देश' : पहला भाग) पाकिस्तानमें देखते हैं, और दूसरा रूप विभाजनके

बाद ('देशका भविष्य' : दूसरा भाग) दिल्ली तथा उत्तर प्रदेशमें। लेखककी जो भी स्वाभाविक सीमाएँ हैं उनके बावजूद उसकी प्रतिभा छिपती नहीं। घटनाओं और चरित्रोंकी इतनी असाध्य विविधताको एक उपन्यासके दायरेमें इस इत्मीनानसे सँभाल लेना शिल्पकी मामूली सफलता नहीं।

पंजाब-विभाजन उपन्यासका मुख्य खल-पात्र माना जा सकता है, जो पंजाब-से उखड़कर दिल्लीकी ओर आनेवाली एक समूची पीढ़ीके जीवनको अस्त-व्यस्त कर देता है। कैसे इस पैशाचिक तहस-नहसके बाद भी साहस और आपसी सहायताके बलपर वह पीढ़ी अपनेको नयी परिस्थितियोंमें फिरसे जमाती है, उपन्यासका कथा-वस्तु है। उस बड़ी राजनैतिक घटनाको कुछ साधारण, कुछ विचारशील पात्रोंके द्वारा इस प्रकार देखा गया है कि उसमें दैनिक जीवनकी निकटता और तीव्रता आ गयी है। विश्व-साहित्यमें ऐसे उपन्यासोंकी एक विशिष्ट परम्परा है, जैसे, तॉल्स्तॉयका 'वार ऐण्ड पीस' तथा शोलोखोव और अपटन सिंक्लेयरके उपन्यास। 'झूठा-सच' भी उतने ही बड़े लक्ष्यको लेकर चलता है—किसी सीमातक उसमें सफल भी होता है, लेकिन तुलना करते समय उसमें वह कमी महसूस होती है जिसके बारेमें मैं कह आया हूँ।

कथानकको मुख्यत: तीन चरित्रोंके माध्यमसे देखा जाना चाहिए—पहला, जयदेव पुरी; दूसरा, उनकी बहन तारा और उन दोनोंका परिवार; तीसरा, कनक और उसका परिवार। प्रसंगवश, पुरी और ताराका मकान जिस गलीमें है—भोला पान्धेकी गली—उसका वर्णन उपन्यास साहित्यके उन अमिट स्थलोंमें-से है जिनके लिए कहा जा सकता है कि वे यथार्थसे भी गहरा प्रभाव मनपर छोड़ जाते हैं। कथाका एक सूत्र है पुरीका कनकसे प्रेम, किन्तु उनके विवाहमें सामाजिक तथा आर्थिक विषमताओंके कारण बाधाएँ, पंजाब-विभाजनकी घटनाएँ, कनककी दृढ़ता और पुरीसे विवाह-बच्चे, राजनीति-विशारद सूदजीकी कृपासे पुरीका आर्थिक उत्थान और चारित्रिक पतन तथा अन्तमें कनकसे सम्बन्ध-विच्छेद। आदर्शवादी पुरीका कथानकके सूक्ष्म ताने-बाने-द्वारा धीरे-धीरे नायक-पदसे गिरना उपन्यासकी उल्लेखनीय मनोवैज्ञानिक सफलताओंमें-से है। नायकके प्रति लेखक कहीं भी परम्परागत औपन्यासिक पक्षपात नहीं दिखाता : तटस्थ भावसे उसे जीवनकी कठिन परीक्षाओंसे गुज़ारकर हमारे सामने अन्तिम परिणाम

रख देता है—बिना कोई राय दिये हुए, बिना कहीं उसकी ओरसे शरीक हुए। मानो वह अच्छे-बुरे, गुण-दोष आदिकी जटिल मीमांसामें पड़नेके बजाय, उस वास्तविक जीवन-क्रमको हमारे सामने रखना चाहता है जिसे समझे बिना और कुछ समझना अपनेको धोखा देना है।

कथानकका दूसरा सूत्र है तारा, उसका मुसलमान राजनैतिक कार्यकर्त्ता असदके प्रति आकर्षण और निराशा, उसका जबरदस्ती एक अयोग्य बरसे विवाह, पंजाब विभाजन, तारापर बलात्कार, छुटकारा, दिल्लीमें कई नौकरियाँ और अन्तमें एक स्थायी सरकारी नौकरी, शिक्षित और उदार डॉ० प्राणनाथसे पुन-र्विवाह। ताराका विकास पुरीसे विपरीत ढंगसे होता है और अन्तमें वही उप-न्यासका सबसे सशक्त और प्रमुख पात्र बनकर उभरती है। इन दोनोंसे अलग व्यक्तित्व है अर्द्ध-आधुनिक शिक्षा-दीक्षावाली कनकका। इन दोनोंकी अपेक्षा कनकका व्यक्तित्व इस अर्थमें अधिक जटिल माना जा सकता है कि वह एक ऐसे वातावरणमें पली है जिसमें पाश्चात्य और भारतीय संस्कृतियोंका आभिजात्य गोलमाल है। लेखक शायद इस चरित्रको उतनी खूबीसे नहीं उभार पाया है जितना मध्यवर्गीय और निम्न-मध्यवर्गीय चरित्रोंको। ऐसा लगता है कि व्यक्ति-त्वकी मनोवैज्ञानिक जटिलताओंको व्यक्त करने लायक अन्तर्दृष्टि और भाषा यशपालके पास नहीं। वे जीवनको समझदारीसे देखते हैं और जो कुछ देखते हैं उसे उतनी ही वफ़ादारीसे बयान करनेमें कम लेखक उनकी बराबरी कर सकते हैं, लेकिन जहाँ कल्पना और पैनी संवेदनाओंको व्यक्त करनेका सवाल है, उनकी भाषा पर्याप्त लचीली नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं उनकी भाषाकी अन्य विशेषताओंका क़ायल नहीं: उदाहरणके लिए, असामान्य विचारों और तर्कोंको अत्यन्त सहज और सुलझे ढंगसे कह सकनेकी उनमें अपूर्व क्षमता है। विषयके साथ-साथ भी जटिल न हो जाये, मूलतः इसका सम्बन्ध लेखककी वैचारिक ईमानदारी और स्पष्टतासे तो है ही, लेकिन उसका यह पहलू भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं कि लेखक स्वयं अपने विचारोंको व्यक्त करनेके इस माध्यम—यानी भाषा—के विकासमें कितनी गहरी दिलचस्पी रखता है, उसके संवर्धनमें कितना प्रयोग-शील है। यशपालकी भाषामें भी एक खास शैलीका रस लिया जा सकता है—वैसे ही जैसे जैनेन्द्र, अज्ञेय या हजारीप्रसादजीकी भाषाओंकी अलग-अलग विशेष-ताएँ हैं। उपन्यासके सन्दर्भमें यशपालकी भाषाका यह गुण श्लाघ्य है कि वह कहीं भी थकाती नहीं।

—कुँवर नारायण

• •

नयी कृतियाँ
ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित

जो भारतीय साहित्य-जगत्में अनूठी और अपूर्व हैं, और इसीलिए यह अपेक्षा भी कि आप इनसे परिचित हों।

वह नन्हा-सा आदमी : सुमंगल प्रकाश

इतिहास, जीवनी, संस्मरण ! तीनोंमें-से सर्जनात्मक साहित्यकी परिधिमें अब जीवनी और संस्मरण ही आते हैं। पर समयके परिप्रेक्ष्यमें मानवका लेखा तीनोंके द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

इतिहासकी महत्ता इसमें होती है कि व्यक्ति-निरपेक्ष हो और वस्तुपरक व्यापक दृष्टिसे लिखा जाये। तथ्य और प्रामाणिकता उसकी आधार-पूँजी होते हैं और लेखकका तटस्थ भाव उसे अतिरिक्त मूल्यवत्ता प्रदान करता है। इतिहास इसीलिए जितना अधिक विगत कालीन हो उतना ही अधिक यथार्थ होता है।

इतिहाससे भिन्न, जीवनी स्वभावतः व्यक्ति-सापेक्ष होती है और उस व्यक्तिके जीवनसम्बन्धी वाह्य घटना-संसारका ही नहीं उसकी आन्तरिक विशेषताओंकी असामान्यता ही जीवनी-लेखनकी मूल प्रेरणा होती है। काल्पनिकता द्वारा नहीं और चरित्र-चित्रण सम्यक् जानकारीपर बँधा हो, तभी उसे सार्थकता प्राप्त होती है।

इतिहास और जीवनी दोनोंको छूते हुए भी कुँआरी रहती भूमि संस्मरणकी होती है। यहाँ जीवन या इतिहासका लेखा नहीं, अनिवार्य रूपसे समकालीन घटनाओंके सन्दर्भमें किसी विशिष्ट व्यक्तिके व्यक्तित्वका ऐसा चित्रण प्रस्तुत किया जाता है कि व्यक्ति और इतिहास दोनोंका एक दूसरेपर प्रभाव प्रत्यक्ष हो सके। और सारा चित्रण, निकट सम्पर्कके कारण, लेखकके अपने देखे-जाने और अनुभव कियेपर आधृत होता है।

इतिहास, जीवनी, संस्मरण : तीनोंमें स्पष्ट ही संस्मरणका एक अनूठा स्थान और आकर्षण रहता है। सुधी पाठकके लिए कई दृष्टियोंसे उसका विशेष महत्त्व होता है। प्रस्तुत कृति तो व्यापक स्वागत पानेकी अधिकारिणी है। क्योंकि ये संस्मरण दिवंगत प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्रीके हैं : उस विशिष्ट व्यक्ति-के हैं जो इतिहासकी दिशाचेतनासे अनुप्राणित था, जिसके पदारूढ़ होनेसे देशके इतिहासका एक नया पृष्ठ सामने आया, और जिसके इन संस्मरणोंके किसी-न-किसी अंश और भावमें हम सभी साक्षी हैं। और क्योंकि इन संस्मरणोंका लेखक स्वयं उन इने-गिने व्यक्तियोंमें-से है जो शास्त्रीजीके अत्यन्त निकट थे और अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णायक अवसरोंपर उनके सहायक और सहवर्ती रहे।

मूल्य ६.००

● कविवर बनारसीदास : डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन

हिन्दी साहित्यके इतिहास-ग्रन्थोंमें एक पंक्ति देखनेको मिलती है "पुराने हिन्दी साहित्यमें यही एक आत्म-चरित मिलता है, इससे इसका महत्त्व बहुत अधिक है।" इसी महत्त्वपूर्ण आलोक-दृष्टिकी परिधिमें जाकर समूचे हिन्दी वाङ्मयको जब हम टटोलने लगते हैं तो बनारसीदासका व्यक्तित्व सहजभावसे छिटककर हमारे सामने उभर जाता है। बनारसीदासका 'अर्ध कथानक' पद्यात्मक आत्मकथा मात्र ही तो नहीं है वरन् तत्कालीन सत्रहवीं शताब्दीका स्वच्छ दर्पण भी तो है। प्रथम हिन्दी आत्मचरित होनेके साथ ही इसमें वह निर्वैयक्तिक-तटस्थ पारदर्शिता है जो उस कालके जन-मानसकी पीड़ा, सामाजिक दुरवस्था, थोथे धर्माडम्बर, उच्छृंखल यौनाचरण, राजनैतिक कुचक्र आदिका साधारणीकृत पर्याय बन गया है।

सवा तीन सौ वर्ष पूर्वके कृतिकार बनारसीदास पर लिखे इस शोध-प्रबन्धमें तथ्यानुसन्धान और वस्तुमूलक समीक्षा-दृष्टिका सामंजस्य प्रायः सर्वत्र है। वैज्ञानिक अनुसन्धित्सा और अध्यवसायका समावेश भी लेखकमें दृष्टिगोचर होता है। खड़ी बोलीका आदिम रूप और उसे स्वयंका क्रम-विकास यहाँ देखनेको मिलेगा। हिन्दी साहित्यके एक खटकनेवाले अभावकी पूर्ति करनेवाली इस कृतिका आदर अवश्य होगा।

मूल्य १०.००

• **राजा निरबंसिया : कमलेश्वर**

कहानीपर शॉ व्यंग्य करते : क्या कहानी भी कि कुछ घण्टोंमें लिख गयी और थोड़े दिन भी चल जाये तो बहुत। कोरा व्यंग्य इसे न कहेंगे। ऐसी कहानियाँ होती हैं। मगर ये कमलेश्वरकी कहानियाँ सामने हैं। 'राजा निरबंसिया' और 'क़सबेका आदमी' आदि कब लिखी गयीं, ये उस समय एक मीलका पत्थर हुईं और आज भी वही बनी है।

सचमुच समकालीन हिन्दी कहानियोंमें इन कहानियोंका एक अपना स्थान है। और प्रत्यक्ष ही वह इसीलिए बना हुआ है कि केवल शैली-शिल्पगत विशेषताएँ इनका पूँजीधन नहीं, इनकी मूलदृष्टि और भावनागत मूल्य भी साथमें सम्मिलित हैं। ये कहानियाँ चरित्र या घटनाओंकी बैसाखीपर नहीं चलतीं, बाह्य वातावरण भी यहाँ गौण है। इनमें तो एक-एक भाव विशेषकर बल देते अमूर्तको मूर्त किया गया है; इनका उद्देश्य ही मनुष्यके अन्तःसौन्दर्यको उभारकर प्रस्तुत करना है, हमारी चेतना और संवेदन-शक्तिको जगाना है।

इसके लिए भी लेखक कल्पनाके पंखोंपर नहीं उड़ता : इन कहानियोंकी धरती वास्तविक जीवन है तो आकाश उसका व्यावहारिक पक्ष। और यद्यपि इनका विषय-क्षेत्र समाजके मध्य और निम्नवर्गों तक सीमित है, उसके स्वरमें प्राधान्य संवेदनात्मक मानवीयताका है। सम्भवतया इन्हीं सब कारणोंसे इनमें गतिसे अधिक गहराई है।

प्रस्तुत रूपमें इन कहानियोंका प्रकाशन इनके ऐतिहासिक महत्त्वके साथ-साथ इनकी निर्विवाद पठनीयता और संग्रहणीयताको भी रेखांकित करना है।

मूल्य ५.००

• **सोलह कारण भावना : महात्मा भगवानदीन**

विख्यात चिन्तक और जीवन-प्रेरक महात्मा भगवानदीनके व्यक्तित्वकी यह विशेषता रही है कि वह प्राचीनसे प्राचीन और परम्परागत विषयको भी नयी दृष्टिसे देखते-सोचते थे, उसे तर्क और विज्ञानका आधार देते थे, और मौलिक उद्भावना प्रस्तुत करते थे।

परम्परागत रूपमें जिसे जैन चिन्तन और व्यवहारमें 'सोलह कारण भावना' कहा गया है, महात्मा भगवानदीनने उस प्रक्रियाकी मूल आत्माको अभिहित किया है एक सुगम भावबोधक शब्दावलिमें : 'नेता बननेके उपाय'। यह नेतृत्व

अत्यन्त असामान्य और अलौकिक है। इन भावनाओंका चिन्तन करनेवाला व्यक्ति तीर्थंकरत्वको प्राप्त करता है।

संख्यामें सोलह होनेके कारण इनका नाम 'सोलह कारण भावना' पड़ा। जैन परम्परामें विशेष रूपसे भाद्रपद मासमें इनका चिन्तन किया जाता है। प्रस्तुत कृतिमें 'दर्शनविशुद्धि' आदि इन सोलह कारण भावनाओंका विवेचन किया गया है। मानव व्यक्तित्वके समय विकासके लिए इन भावनाओंकी अनिवार्यता क्यों है, और किस अनुभवकी उपलब्धि हैं ये, यह सब बड़े रोचक ढंगसे इस पुस्तकमें व्याख्यात है।

जैन संस्कृतिके प्रेमी तथा जिज्ञासुओंके लिए अनिवार्य रूपसे पठनीय यह पुस्तक उन अध्येता पाठकोंके लिए भी सोचनेकी बहुमूल्य सामग्री देती है जो समाजवादी समाज रचनाके परिवेशमें मानव व्यक्तित्वके सामाजिक विकासके विषयमें सोचते हैं।

मूल्य : २.००

● ग्यारह सपनोंका देश : सम्पादक—लक्ष्मीचन्द्र जैन

'ग्यारह सपनोंका देश' हिन्दी साहित्यका पहला सहयोगी उपन्यास है जिसके संयोजन और सफल समापनको १० लेखकोंके साहित्यिक कृतित्वका योगदान प्राप्त हुआ है। इस सहयोगी रचनाके माध्यमसे १० लेखकोंने एक स्वप्नकी कल्पना और शैलीकी अनेक रंगीनियाँ दी हैं। उपन्यास आदिसे अन्त तक रोचक है क्योंकि प्रत्येक अध्यायका अपना निजी चमत्कार है।

इस कृतिकी एक विशेष महत्ता है। अपने-अपने अध्यायकी कल्पनाके ताने-बाने बुनते समय प्रत्येक लेखककी क्या दृष्टि रही है और सृजनकी समस्याओंका किसने क्या समाधान किस रूपमें प्रस्तुत किया है—इस सब प्रक्रियाका प्रत्यक्ष परिचय भी आपको लेखकोंके उन वक्तव्योंमें मिलेगा जो उपन्यासके साथ ही प्रकाशित हुए हैं। 'ज्ञानोदय' के माध्यमसे आयी हुई हिन्दीकी इस बहुचर्चित, बहु-प्रशंसित निराली रचनाका प्रस्तुत है अब नया द्वितीय संस्करण। मूल्य ५.००

● धूपके धान : गिरिजाकुमार माथुर

श्री गिरिजाकुमार माथुर छायावादोत्तर कालकी उन प्रतिभाओंमें हैं जिन्होंने अपनी अप्रतिम मौलिकतासे काव्य-जगत्‌में अपना विशिष्ट मार्ग बनाया है और समस्त नयी पीढ़ीकी कवितापर अपने कृतित्वकी छाप छोड़ी है। नयी कविताके संस्थापकोंमें-से वे एक हैं और यह कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी कि उनकी

शैली तथा परम्परा निरन्तर आगे बढ़ी हैं।

प्रतिभाकी यह चमक उनके व्यक्तिगत जीवन-विकासमें भी परिलक्षित होती है, जिसने प्रारम्भसे ही सबकी दृष्टि अपनी ओर आकर्षित की है। महाकवि 'निराला' ने इस सत्यको स्वीकार करते हुए पहले ही लिखा था। "काव्यके आकाशसे श्री गिरिजाकुमार माथुरका बहुत ही रंगीन और मधुर प्रकाश हिन्दीके धरातलपर उतरा है।"

'धूपके धान' उनका तीसरा कविता संग्रह है। इसमें वे सभी रचनाएँ आ गयी हैं जिन्होंने तत्कालीन कविताके सम्मुख वस्तु तथा शैली-शिल्पकी नयी भाव-भूमियाँ प्रस्तुत की थीं और जिसका प्रभाव आगेकी हिन्दी-कवितापर पड़ा। इस दृष्टिसे यह संग्रह और भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें जो सामग्री संचित की गयी है वह नयी हिन्दी कविताके ऐतिहासिक विकासको समझनेमें अनिवार्य शर्त है। प्रस्तुत है इस संग्रहका यह तृतीय संस्करण। **मूल्य ३.५०**

• लेखनी बेला : वीरेन्द्र मिश्र

रोमान कविकी सहज प्रवृत्ति होता है। उसका स्वभाव, उसका परिवेश इसके लिए सुविधाएँ भी सुलभ कर देता है। वह चाहे तो अवसर-भर उस प्रवाह-में रहे-बहे। पर कवि वे जीते हैं जो अपनेको इस प्रवृत्तिकी गुंजलकमें छोड़ ही नहीं रहते। उनकी ही अपने लिए और समाजके लिए सार्थकता होती है जो अपनी प्रतिभाको सृजनशीलताकी ऊँचाइयों तक उठा ले जायें, जो सही-सही समयको चीन्हें, जो ओजस्वी स्वरोंमें युगचेतनाको प्रतिध्वनित करें।

प्रस्तुत संग्रह 'लेखनी बेला' का कवि रोमानका धनी है। पर रोमान जो निरा क्षयी नहीं, स्वस्थ है, थिराये हुए चित्तका, जिसमें क्षणिक लालसाओंके रैनबसेरे नहीं होते, एक उद्दाम उत्ताप होता है : चुनौती देता, चुनौतियाँ लेता। इतना ही नहीं, बेलामें चार तार होते हैं : 'लेखली बेला' में भी और तार हैं। पलासके फूलों-से टहटहाते हुए अनेक गीत हैं इसमें जो युगबोधको छन्दोंमें बाँध-कर समेट लाये हैं और उनसे स्फूर्ति-स्फुलिंग फूट-फूट कर बिखरे आते हैं।

'लेखनी बेला' में नशा है, पर एक टेर भी है। कृतिकी सीमा और शक्ति दोनों स्पष्ट हैं। गीतके माध्यमसे हिन्दीमें प्रगति और प्रयोगके जो वातायन खुले उनमें इसका भी एक स्थान है। अब यह नयी रूप-भंगिमामें पुस्तकका दूसरा संस्करण सामने है। **मूल्य ३.००**

● ●

समकालीन विचार पंक्तियाँ

एक उपेक्षित सम्भावना

धनंजय

की एक टिप्पणी विचारके लिए कि आजका अधिकांश साहित्य विज्ञापनका साहित्य है। सर्जनात्मकता प्रचारके माध्यमसे आगे बढ़ रही है। और…

आज हिन्दी साहित्यकी विभिन्न विधाओंमें नये प्रयोगों और उपलब्धियोंने सृजनके नये आयाम उद्घाटित हुए हैं। प्रयोगकी प्रकिया अनुक्षणके भोगको जिस प्रखरतासे अभिव्यतिके स्तरपर ला सकी है, वह अपने-आपमें निश्चय ही एक मौलिक उपलब्धि है। प्रयोग हमेशा मौलिक उपलब्धि करा सके, यह आवश्यक नहीं। लेकिन वस्तुके देखने, समझने और मूल्यांकित करनेके पुराने मानदण्डोंसे सर्वथा भिन्न नये दृष्टिकोण वस्तुके सम्बन्धमें मूल्योंकी स्थापना करा सकनेमें सहयोगी बनते हैं, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। गतिरोध तब आता है जब कृतिकार (चाहे वह किसी विधाका हो) अपने परिवेशके प्रति एकनिष्ठता बरतते हुए उससे बाहर न निकलकर अपने चिन्तनको सीमित परिदृष्टिमें बाँध देता है और उसके साथ ही मूल्यांकनके दायरे भी अपनेको विशिष्ट बिन्दु पर संकेन्द्रित करने लगते हैं।

सम्भवतः इस तथ्यको नकारा नहीं जा सकता कि आजका अधिकांश साहित्य विज्ञापनका साहित्य है। सर्जनात्मकता प्रचारके माध्यमसे आगे बढ़ रही है। इस माध्यमके प्रति जिसकी जितनी तीव्र पकड़ है, वह लेखकोंकी श्रेणीमें उतना ही आगे है। मेरे कहनेका ग़लत अर्थ न लगाया जाये, अधिकांश शब्द यहा रेखांकित हैं। आज जो कुछ लिखा जा रहा है उसमें कुछ ऐसा है जिसे निःसन्देह मौलिकताको दृष्टिसे आँका जा सकता है। और एक उपलब्धिके रूपमें उनके प्रति आसंगता दिखाना अनिवार्य हो जाता है, लेकिन मैं यह कहनेके

लिए भी विवश हूँ कि व्यावसायिक मानसिकता आजके साहित्यकारोंमें उग्र रूप धारण कर रही है। वह मानसिकता सर्जन-प्रकियाको कहाँतक एक रूप बने रहने देती है, यह मेरे सामने, लगभग हर बुद्धिजीवीके सामने, प्रत्यक्ष है। अपने विज्ञापनके इतने विविध हथकण्डे अपनाये जा रहे हैं कि बड़ी-बड़ी उत्पादन कम्पनियोंकी सूझ पीछे पड़ जा रही है। मेरे हमदम, मेरे दोस्तका ढर्रा ज़रा पुराना पड़ा तो नये लेखककी समस्याओंका सिलसिला प्रारम्भ हो गया। मेरा इस सम्बन्धमें काफी निकटका सम्पर्क तथा अनुभव रहा है और कई अच्छे (?) लेखकोंको व्यक्तिगत रूपसे जानता हूँ जिन्होंने अपनेको विज्ञापित करानेके लिए लेख तैयार किये हैं, उसमें खुलकर अपनी चर्चा की है और किसी मित्रके नाम पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित कराया है। ऐसे गुरुओंको भी जानता हूँ जिन्होंने अपने शागिर्दोंकी जय बोलनेमें कोई कसर नहीं उठा रखी है।

विज्ञापनकी इस प्रवृत्तिको मैं अच्छी नज़रसे देखता हूँ। इसे सर्जन-प्रक्रियाका ही एक अंग मान लेनेमें कोई हर्ज़ नहीं समझता। मैं केवल एक बात कहना चाहता था कि ऐसे भी लेखकोंका एक वर्ग है जो चिन्तन और सृजनमें सम्भावना युक्त होते हुए भी प्राय: उपेक्षित-सा है। वे उपेक्षित इसलिए नहीं हैं कि उनका सृजन दूषित है अथवा युग-बोधके समानान्तर देख सकनेकी दृष्टिका उनमें अभाव है, बल्कि इसलिए कि वे साधनहीन हैं, विज्ञापन और प्रचारके अधुनातन माध्यमों तक उनकी पहुँच नहीं है। गुट बनाना वे जानते नहीं, उखाड़-पटकसे वे असम्पृक्त रहते हैं, परिणामस्वरूप उनके अस्तित्वका कोई सूत्र भी नहीं रह जाता। 'हिप्पोक्रेसी' में जीनेवाले अभागोंसे कहीं अधिक अभागे वे होते हैं। कैक्टसको मैंने बँगलोंमें बड़े जतनसे पलते देखा है और देहातोंमें उनकी दुर्दशा भी नज़रसे गुज़री है। चिन्तन स्थान-सापेक्ष्य हो सकता है लेकिन सृजन नहीं। महानगरोंकी गतिविधियोंसे दूर, गोष्ठियों-आयोजनोंसे वंचित, रेडियो-पत्रिकाओंसे उपेक्षित, ग्रन्थ-विमोचन समारोहों और आन्दोलनोंसे त्याज्य, अच्छे प्रकाशकोंसे अनुत्तरित इन क्षेत्रीय साहित्यकारोंकी ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि उनके सृजनको सही परिप्रेक्ष्यमें देखा जायेगा तो निराश न होना पड़ेगा। सम्भावनाएँ उनमें बहुत हैं, भोगको अभिव्यक्तिके स्तर पर लानेका माद्दा भी है। ज़रूरत प्रोत्साहनकी है, परिवेशसे सम्बद्ध करनेकी है।

पूर्वग्रहसे ग्रस्त दृष्टि विकृत मनोविज्ञानकी सूचक होती है किसी वस्तुके प्रति

विशेष प्रकारका आग्रह उसकी सम्भावनाओंको कुण्ठित करता है। मैं तो सांख्य दर्शनके स्याद्वादको तरजीह देता हूँ। परिवेशकी सत्यता खण्डित सत्यता होती है। प्रायः ऐसी धारणा लोगोंके मनमें बन जाती है कि वस्तु इस तरहकी है अतः परिणाम भी ऐसे होंगे। क्षेत्रीय साहित्यकारोंके सम्बन्धमें ऐसे पूर्वग्रह-ग्रस्त अभिमतोंका ही आलम्बन लिया जाता है। यह बहुत विकसित स्तरका मनो-विज्ञान नहीं है। इसके लिए सक्रिय प्रयास किया जाना चाहिए। प्रयास कई तरहसे हो सकता है। इन साहित्यकारोंका परिचयात्मक विवरण, उनकी कृतियों का संकलन प्रकाशित कराया जा सकता है। जनपद स्तरपर बाँधकर प्रत्येक जनपद-के साहित्यकारोंको उनकी कृतियोंके साथ प्रकाशमें लाया जा सकता है और इस प्रकार नये चिन्तन और वातावरणसे उन्हें परिचित कराया जा सकता है। अथवा शोध-कर्ताओंको इस ओर कार्य करनेके लिए प्रेरित कर इस समस्याको सुलझाया जा सकता है। सरकार पंचवर्षीय योजनाओंमें न जाने कितनी शोध-परियोजनाओंके लिए करोड़ों रुपये खर्च करती है, यदि वह इस ओर भी ध्यान दे तो निरर्थक न होगा। प्रादेशिक सरकारकी हिन्दी समितियाँ भी इस ओर से प्रायः मौन हैं, यदि वे इस दिशामें कार्य करें तो अच्छे परिणाम निकल सकते हैं।

● ●

भारतीविश्व
कुछ सूत्र कुछ सन्दर्भ

जिसका उद्देश्य तथ्योंकी थाती
सौंपना है, मनोरंजन नहीं ।

▪ कार्ड सेट : पढ़ाईका नया तरीका !

पाठ्य-पुस्तकोंके नोट्स, एक अध्ययन, कुंजी, प्रश्नोत्तर आदिका प्रकाशन कुछ हिन्दी प्रकाशकोंके लिए तो आयका जरिया रहा ही है, विदेशोंमें भी अब इस प्रकारके व्यवसायको, अधिक सुन्दर ढंगसे, वरीयता दी जाने लगी है। ब्रिटेनके एक प्रकाशक-द्वारा ताशके पत्तोंके आकारके अलग-अलग विषयोंके कार्डोंके सेट छापे गये हैं। यह एक सीरीज़ है जिसका नाम है—'की फैक्ट्स'। इन कार्डोंमें व्याकरणके नियम, प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओंके संक्षिप्त विवरण, शेक्सपीयरके नाटकोंकी कथावस्तु, काव्य शैलियों और रचना-विधान आदिसे सम्बन्धित मुख्य-मुख्य बातोंकी जानकारी रहती है। प्रकाशकीय कथनानुसार इन कार्डोंका उद्देश्य परीक्षाकालमें कमसे कम समयमें विषयकी समूची जानकारी देना है। फ़रवरी '६६ में प्रकाशित किये गये दस विषयोंके कार्ड सेटकी अबतक तीन लाखसे अधिककी बिक्री हो चुकी है और सम्भावना है कि निकट भविष्यमें इनकी बिक्री और अधिक बढ़ेगी।

• लेखन : अधिक अर्थ-लाभका सुगम साधन !

ब्रिटेनसे प्रकाशित होनेवाले अँगरेज़ी दैनिक 'गार्जियन' में श्री स्टेनली रेनॉल्ड्सने अपने एक लेख-द्वारा यह सुझाव दिया है कि आजकल कमसे कम समयमें अधिकसे अधिक अर्थ-लाभ पानेके लिए लेखन-कार्यसे अच्छा और कोई कार्य नहीं है। उदाहरणके रूपमें उन्होंने हालमें प्रकाशित कुछ पुस्तकोंके नाम भी गिनाये हैं :

एक हत्याकाण्डका विवरण प्रस्तुत करनेवाले लेखक ट्रूमन केपोटको दस हजार पौण्ड अग्रिम मिले हैं, 'कार्पेट बेगर्स' के लेखक हेरोल्ड रॉबिन्सको सहज ही ५२ हज़ार पौण्ड रॉयल्टी मिल गयी, लकारको ५० हज़ार पौण्ड एक पुस्तकके लिए अग्रिम प्राप्त हुआ तथा 'ट्रापिक ऑव कैन्सर' के लेखकको ५३ हजार पौण्ड और 'माइ वाइफ ऐण्ड लक' के लेखकको २५ हज़ार पौण्डकी रॉयल्टी मिली है।

अमेरिकामें भी स्थिति प्राय: ऐसी ही है। वहाँ तो लेखकोंको हज़ारों डॉलर अनलिखी-योजनाधीन पुस्तकोंके लिए अग्रिम मिल जाते हैं। सुखद आश्चर्यकी बात तो यह है कि ये अग्रिम उन 'नौसिखुए' लेखकोंको भी मिल जाते हैं जिनकी कोई कृति प्रकाशित नहीं हुई रहती।

कहना न होगा कि भारतमें लेखनकी स्थिति ऐसी नहीं है। यहाँका लेखक तो अधिकसे अधिक समयमें कमसे कम आर्थिक-लाभकी भी आशा नहीं करता। क्यों ?—यह सोचने और विचार करनेकी बात है।

■ कथा-वस्तुका राज़

अनेक जासूसी उपन्यासोंकी विश्वप्रसिद्ध लेखिका आगाथा क्रिस्टीने अभी हालमें एक अद्भुत रहस्यका उद्घाटन किया है। उन्होंने बताया कि अपनी अधिकांश श्रेष्ठतम रचनाओंकी कथावस्तु उन्हें रसोईघरमें बरतन माँजते समय सूझी है!

■ यूरोप और अमेरिकाके 'क्लैसिक्स' भारतीय भाषाओंमें

पूर्व और पश्चिमके सांस्कृतिक मूल्योंको अधिक निकटतासे देखने-समझनेके लिए, यूनेस्कोकी एक वृहत् योजनाके अन्तर्गत साहित्य अकादेमीने तेरह और यूरोपीय और अमेरिकी 'क्लैसिक्स'के अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित किये हैं। पन्द्रह यूरोपीय क्लैसिक्सके अनुवाद तो अकादेमी पहले ही प्रकाशित कर चुकी है। अभी प्रकाशित तेरह पुस्तकोंके अनुवाद इस प्रकार हैं—

१. FROGS : Aristophanes (ग्रीकसे मलयालममें) २. DON QUIXOTE : Cervantes (स्पेनिशसे गुजरातीमें), ३. LES MISERABLES : Victor Hugo (फ्रेंचसे हिन्दीमें), ४. THE PRINCE : Macliavelli (इटालियनसे पंजाबी और असमीमें), ५. AREOPAGI-

TICA : Jhon Milton (अँगरेज़ीसे हिन्दीमें), ६. TARTUFFE, LE BOURGEOIS GENTILHOMME : Moliere (फ्रेंचसे हिन्दीमें), ७. WALDEN : Thorean (अँगरेज़ीसे हिन्दीमें), ८. WAR AND PEACE : Tolstoi (रूसीसे असमीमें), ९. LE CONTRAT SOCIAL : Rousseau (फ्रेंचसे तमिलमें), १०. CANDIDE : Voltaire (फ्रेंचसे असमीमें), ११. FROGS : Aristophanes (ग्रीकसे कन्नड़में), १२. AGAMEMNON : Aeschylus (ग्रीकसे कन्नड़में), १३. OEDIPUS TYRANNUS : Sophocles (ग्रीकसे कन्नड़में) ।

▪ प्रथम संस्करण दस-लाख प्रतिका

हालमें ही अमेरिकी उपन्यासकार डॉ० एक्स-कृत उपन्यास 'इण्टर्न' का प्रथम संस्करण दस लाख प्रतिका प्रकाशित हुआ और पाँच दिनमें ही साढ़े-सात लाख प्रतियाँ बिक भी गयीं ।

▪ 'ऑन ट्रायल' : दो रूसी लेखक

'ऑन ट्रायल' नामसे एक महत्त्वपूर्ण पुस्तकका प्रकाशन अभी हालमें एक अमेरिकी प्रकाशन संस्थान-द्वारा किया गया है । इस पुस्तकमें उन दोनों रूसी लेखकोंपर चलाये गये मुक़दमेका अक्षरशः ब्यौरा है जिन्हें रूस-विरोधी विचार-धाराका प्रचार करनेके आरोपपर सोवियत सरकार-द्वारा क्रमशः सात और पाँच वर्षके कठोर कारावासका दण्ड दिया गया । दोनों रूसी लेखकोंके नाम है : अब्राहम टर्ट्ज़ तथा निकोलाइ अज़ार्क ।

▪ नया ऑफसेट प्रेस

स्वीडेनमें छोटे और मध्यम समाचारपत्रोंके लिए एक नये प्रकारकी ऑफ़सेट छपाई मशीनका निर्माण किया गया है । मशीनका नाम है : सोरना आरपी ३६ डिस्ट्रीब्यूटर । इसमें नीचे और ऊपर दो छपाई विभाग होते हैं जिससे झिल्लीके दोनों ओर छपाई हो सकती है । झिल्लीको ढीला करने या कसनेका काम आवश्यकतानुसार अपने-आप हो जाता है । एक रंग बदलकर दूसरेको छपाई करनेके लिए शीशा भी स्वयं बदल जाता है । इस मशीनके द्वारा छह तहों तकके फ़ोल्डर आसानीसे छापे जा सकते हैं ।

● ●

प्रकाशन जगत्
समाचार-सूचनाएँ

कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ : विचार
और चिन्तनके लिए

● प्रथम राष्ट्रीय पुस्तक-समारोह

नेशनल बुक ट्रस्टकी ओरसे पहला राष्ट्रीय पुस्तक-समारोह बम्बई (क्रॉस मैदान, चर्चगेट) में ५ नवम्बरसे २० नवम्बरतक सम्पन्न होगा। समारोहमें भारतीय भाषाओंकी पुस्तकोंकी दो सौ दूकानें लगायी जायेंगी और विभिन्न भाषाओंमें सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित होंगे।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघने इस अवसरपर बम्बईमें हिन्दी प्रकाशन सम्बन्धी समस्याओंपर विचार-विमर्शके लिए एक महत्त्वपूर्ण विचारगोष्ठी भी आयोजित करनेका निश्चय किया है। इस विचार गोष्ठीकी अध्यक्षता करेंगे श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन तथा विचार-विमर्शमें भाग लेंगे श्री कृष्णचन्द्र बेरी, डॉ० धर्मवीर भारती, श्री रघुनाथ सिंह एम० पी० आदि।

इस अवसरपर अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ देशव्यापी समारोह मनायेगा, जिसके अन्तर्गत पुस्तकोंकी दूकानोंको सजाने, हिन्दी पुस्तकोंका अधिकाधिक प्रचार करने तथा बिक्री बढ़ानेकी योजनाएँ हैं। इस अवधिमें सभी प्रकाशन संस्थाएँ अपने प्रकाशनोंपर बीस प्रतिशत और बाहरी प्रकाशनोंपर साढ़े बारह प्रतिशत छूट भी देंगी। तथाकथित हिन्दी-भाषी प्रमुख नगरों—वाराणसी, इलाहाबाद, पटना, दिल्ली, लखनऊ, जबलपुर, जोधपुर, जयपुर—में इस अवसरपर विशेष आयोजन होंगे। प्रकाशन जगत्की अनेक महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ अपने विशेष अंक भी प्रकाशित करेंगी। साथ ही संघकी ओरसे पुस्तकोंके महत्त्व और उपयोगिता सम्बन्धी लेख सभी हिन्दी पत्रोंको प्रसारित किये जायेंगे। आकाश-

वाणीके विभिन्न केन्द्रोंसे अनेक परिचर्चाएँ भी प्रसारित होंगी जिनमें प्रकाशक संघके प्रतिनिधि भाग लेंगे ।

• अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ : कार्य-समितिकी बैठक

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघकी कार्य-समितिकी बैठकका प्रथम सत्र ३० सितम्बरको अपराह्न दिल्लीमें, श्री रामलालपुरीके आवासपर उन्हींकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ । बैठकमें सब उन्नीस हिन्दी प्रकाशकोंने भाग लिया ।

संघके प्रधान मन्त्री श्री कृष्णचन्द्र बेरीने संघकी अवतककी गतिविधियोंका विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि प्रकाशक संघके तत्त्वावधानमें बम्बईके अतिरिक्त राष्ट्रीय पुस्तक समारोह अखिल भारतीय स्तरपर मनाया जायेगा । ग्रामोंमें पुस्तकोंका प्रसार कैसे हो—इस विषयमें श्री बेरीने बताया कि उन्होंने अखिल भारतीय सर्व सेवा संघका सहयोग प्राप्त किया है और वे इस सम्बन्धमें अक्तूबरके तीसरे सप्ताहमें आचार्य विनोबा भावेसे भी भेंट करेंगे । उन्होंने यह भी बताया कि इण्डियन स्टैण्डर्ड इन्स्टीटयूटका अधिवेशन एरनाकुलममें होने जा रहा है । इसमें एक परचा प्रकाशन-व्यवसायके सम्बन्धमें भी पढ़ा जायेगा । जो सज्जन वहाँ जाना चाहें वे अपना नाम संघ-कार्यालयको भेज दें ।

हिन्दीमें साहित्येतर पुस्तकोंका प्रकाशन हो इसके सम्बन्धमें केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय एवं वैज्ञानिक तकनीकी आयोगसे पत्राचार और विचार-विमर्श करनेके लिए निम्नांकित व्यक्तियोंकी एक उपसमिति गठितकी गयी है—सर्वश्री कन्हैयालाल मलिक, श्रीमती शीला सन्धू, दीनानाथ मल्होत्रा, ओंप्रकाश (संयोजक) ।

'हिन्दी प्रकाशक'का प्रकाशन सूची विशेषांक छापनेके विषयमें निश्चय हुआ है कि यह अंक बीस हजारकी संख्यामें प्रकाशित हो । इसमें संघके सदस्य अपने प्रकाशनोंकी बीस हज़ार सूचियाँ, 'हिन्दी प्रकाशक'के आकारमें मुद्रित कराकर दिल्ली कार्यालयको भिजवा दें । प्रकाशक बन्धु जो प्रकाशनोंकी सूची भेजें वह कमसे कम दो पृष्ठ अथवा दोसे विभाजित होनेवाली संख्याकी जैसे ४, ६, ८ आदिकी होनी चाहिए ।

समितिके दूसरे सत्र (१ अक्तूबर) में मुख्य रूपसे संघकी कोष-वृद्धिके कार्यक्रमपर विचार-विमर्श किया गया ।

• •

पत्र-मंच

'ज्ञानपीठ:पत्रिका'के अगस्तांक '६६में 'आजकी कविता: चमत्कारकी आतिश-बाज़ी' शीर्षक लेख पढ़ा। दिनकरजीने जिस तेज़ी-तुर्शीकी बात की है वह प्रभावपूर्ण तो है पर स्वीकार्य नहीं। मसलन, "चुस्त होनेके लिए ही कविताने फालतू चीज़ोंको छोड़कर दुबली होना पसन्द किया है" (पहला पैराग्राफ़) "इसका यह अर्थ नहीं कि नयी कविता लिखनेवाला पागल हो जाता है। इन कवियोंको तो नयी भाव-भूमिपर झण्डा गाड़नेके प्रयासमें पागल होना पड़ा। वास्तवमें नयी कविताके सच्चे गुरु ये ही तीन कवि थे—राँबों, बादलेयर, बेलार्ड।" (तीसरा पैराग्राफ़)। और फिर अन्तमें "अमेरिकामें 'अति' सुखसे बीटनिक हो रहे हैं। कृत्रिम सुख वहाँ 'ऐंग्री यंगमैनों'को जन्म दे रहा है। किन्तु भारतमें बीट और 'ऐंग्री यंगमैनों'की कतई आवश्यकता नहीं है। नया कवि कुछ ऐसा लिखे कि देशकी जड़ता छूटे।"

दिनकरजो संस्कृतिको चार अध्यायोंमें बाँटकर देख सकते हैं, कामाध्यात्मपर सुरमई-गुलाबी कविता लिख सकते हैं पर समयके रथ-चक्रको वे गतिविहीन कर देनेमें सफल होंगे क्या ?

उन्होंने जिसे चमत्कारकी आतिशबाज़ी और 'अन्धे' चित्रोंसे उपमित किया है—वह तो दृष्टि-बोधकी बात है। जिसे वे 'पारदर्शी चित्र' मानते हैं उसकी पारदर्शिताकी जड़ वे किस 'समाज'में देखते हैं ? 'समाज' है कहाँ आज ? क्या 'व्यक्ति' महज़ 'भीड़' बन जाये ? 'भेड़ियाधसान'को ही आत्यन्तिक जीवन-दर्शन मान लिया जाये ? दिनकरजी प्रबुद्ध कवि हैं—युग-जीवनको उन्होंने दिशा दी थी 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी'से, 'परशुरामकी प्रतीक्षा'से, पर यह कैसा 'नीति बोधक' स्वर ? नकारात्मक उँगली साहित्यकी गतिको थाम्ह पायेगी क्या ?

यह 'जड़ता' और 'अन्धता' टूटे, मोहकी यह काई फटे—इसके लिए कुछ 'विद्रोह' और 'उग्रता' तो आवश्यक है। परम्पराग्रसित बोधको छातीसे चिपकाये रहना, उसकी फॉसिलको शो-केसमें रखकर वर्तमानकी 'कोंपल'को कुचलते जाना क्या प्रबुद्ध कार्य है ? भारतमें दमदार 'अग्निभरी' कविताकी आवश्यकता है—काल-गर्भसे कोई-न-कोई तो पैदा होगा ही। जो कदर्थ है वह गल जायेगा स्वयं ही, उसके फेरमें पड़नेकी ज़रूरत नहीं।

—राकेश, कलकत्ता

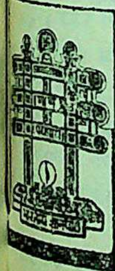
● ● ●

श्रेष्ठ
उपयोगी
एवं
संग्रहणीय

जो लोक-जीवनको स्वस्थ, समुन्नत और सजग बनायें तथा युगकी अधुनातन विकास-चेतनाओंका भी परिचय दे सकें।



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन



प्रधान कार्यालय :
भारतीय ज्ञानपीठ, ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
प्रकाशन कार्यालय :
भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड, मार्ग, वाराणसी–५
विक्रय-केन्द्र :
भारतीय ज्ञानपीठ,
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

लोकोदय ग्रन्थमाला

• राष्ट्रभारती

२२४ प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी	सं०—दिनकर सोनवलकर	४.००
२०७ प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी दो	नानक सिंह	४.००
२०४ प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी दो	प्रो० ना० सी० फड़के	४.५०
१९० प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी एक	कर्तारसिंह दुग्गल	३.५०
१९१ प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी	सं०—अनिलकुमार	४.००
१६८ प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु	नार्ल वेंकटेश्वर राव	३.५०
१७० प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला	'परशुराम'	३.००
१७१ प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी एक	व्यंकटेश दि० माडगूलकर	४.००

• उपन्यास

२१३ अस्तंगता	भिक्खु	६.००
१२६ ग्यारह सपनोंका देश [द्वि० सं०]	सं०—लक्ष्मीचन्द्र जैन	५.००
२२५ अठारह सूरजके पौधे	रमेश बक्षी	३.००
१६४ सूरजका सातवाँ घोड़ा [च० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	२.००
२१५ जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	३.५०
१५४ पीले गुलाबकी आत्मा [द्वि० सं०]	विश्वम्भर 'मानव'	४.००
७९ गुनाहोंका देवता [आठवाँ सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	५.००
५५ रक्त-राग [द्वि० सं०]	देवेशदास आइ०सी०एस०	३.००
५१ तीसरा नेत्र [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	२.५०
१९९ जो	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
१६९ महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सुनें !!	'भिक्खु'	२.२५
१३७ पलासीका युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	३.५०
१४३ अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय	३.००
८० शतरंजके मोहरे [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अमृतलाल नागर	६.००
९५ शह और मात	राजेन्द्र यादव	४.००
११३ राजसी	देवेशदास आइ०सी०एस०	२.५०
६२ संस्कारोंकी राह [पुरस्कृत]	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०
१ मुक्तिदूत [द्वि० सं०]	वीरेन्द्रकुमार जैन	५.००

• कहानी

क्रमांक	पुस्तक	लेखक	मूल्य
२३१	राजा निरबंसिया	कमलेश्वर	५.००
२२९	सवेरा संघर्ष गर्जन	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	७.००
२२७	मुरदा सराय	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	४.००
१७३	खोयी हुई दिशाएँ [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	२.५०
२	दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ [द्वि. सं.]	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	३.००
१९५	झाड़ी [द्वि० सं०]	श्रीकान्त वर्मा	३.००
१६६	मेज़पर टिकी हुई कुहनियाँ	रमेश बक्षी	३.५०
६०	कालके पंख [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
३०	खेल खिलौने [द्वि० सं०]	राजेन्द्र यादव	२.००
१५९	बोस्ताँ [द्वि० सं०]	शेख सादी	२.५०
६३	जय-दोल [तृ० सं०]	अज्ञेय	३.००
१४२	ज़िन्दगी और गुलाबके फूल	उषा प्रियंवदा	२.५०
८९	अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
८५	कर्मनाशाकी हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.००
१३१	सूने आँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.००
१११	प्यारके बन्धन	रावी	३.२५
८२	मोतियोंवाले [पुरस्कृत]	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
६९	हरियाणा लोकमंचकी कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२.५०
६५	मेरे कथागुरुका कहना है : १	रावी	३.००
१४४	मेरे कथा गुरुका कहना है : २	रावी	३.००
३५	पहला कहानीकार [पुरस्कृत]	रावी	२.५०
२४	संघर्षके बाद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विष्णु प्रभाकर	३.००
५८	नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
३७	अतीतके कम्पन [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
२०	आकाशके तारे : धरतीके फूल [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.००
५०	नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
१२	गहरे पानी पैठ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
४३	जिन खोजा तिन पाइयाँ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
५४	कुछ मोती कुछ सीप [तृ०सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
१३९	लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.००
९४	एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००
११५	ऑस्कर वाइल्डकी कहानियाँ	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०

• कविता

२२६	तार सप्तक [द्वि० परिवर्धित संस्करण]	सम्पादक अज्ञेय	८.००
२२८	शहर अब भी सम्भावना है	अशोक वाजपेयी	३.००
१४६	आँगनके पार द्वार [अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत, द्वि०सं०]	अज्ञेय	३.००
१३९	धूपके धान [तृ० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.५०
६४	लेखनी-बेला [द्वि० सं०]	वीरेन्द्र मिश्र	३.५०
८६	कनुप्रिया [तृ० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.००
२२०	इतिहास-पुरुष	डॉ० देवराज	३.५०
१२०	देशान्तर [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	१२.००
२१८	अन्धा चाँद	मुनि रूपचन्द	३.००
२०१	चाँदका मुँह टेढ़ा है [द्वि० सं०]	मुक्तिबोध	८.००
२०८	आत्मजयी	कुँवरनारायण	३.५०
१९४	हम विषपायी जनम के [द्वि० सं०]	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१६.००
११८	वेणु लो गूँजे धरा [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
२०३	चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन	३.००
२०२	संक्रान्त	डॉ० कैलाश वाजपेयी	३.००
१९६	हिम-विद्ध	डॉ० जगदीश गुप्त	३.००
१८६	बीजुरी काजल आँज रही	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
१८५	अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	३.००
१७८	रत्नावली	हरिप्रसाद 'हरि'	३.००
६८	वाणी [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
६६	सौवर्ण [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	३.५०
१३४	वीणापाणिके कम्पाउण्डमें	केशवचन्द्र वर्मा	३.००
१२२	रूपाम्बरा	सं०—अज्ञेय	१२.००
८८	अनुक्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
८१	तीसरा सप्तक [द्वि० सं०]	सं०—अज्ञेय	५.००
१९०	अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	४.००
९१	सात गीत-वर्ष [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.५०
१२७	आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.००
९	पंच-प्रदीप	शान्ति मेहरोत्रा	२.००
८	मेरे बापू	तन्मय बुखारिया	२.५०
११३	वर्द्धमान [महाकाव्य पुरस्कृत]	अनूप शर्मा	६.००

• शाइरी

१४ शेर-ओ-सुख़न : भाग–१ [द्वि०सं०पु०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
२६ शेर-ओ-सुख़न : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७२ शाइरीके नये दौर : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७३ शाइरीके नये दौर : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१०४ शाइरीके नये दौर : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
११० शाइरीके नये दौर : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१४१ शाइरीके नये दौर : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७६ शाइरीके नये मोड़ : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७७ शाइरीके नये मोड़ : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१५६ शाइरीके नये मोड़ : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७५ शाइरीके नये मोड़ : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७७ शाइरीके नये मोड़ : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१३८ नग़मए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
१५८ गंगोजमन [द्वि० सं०]	'नज़ीर' बनारसी	३.००
२७ शेर-ओ-सुख़न : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२८ शेर-ओ-सुख़न : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
३१ शेर-ओ-सुख़न : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
शेर-ओ-सुख़न [भाग २-३-४-५]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	११.००
५ शेर-ओ-शाइरी [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
११९ ग़ालिब	श्री रामनाथ 'सुमन'	८.००
९२ मीर	श्री रामनाथ 'सुमन'	६.००

• नाटक

९८ जनम क़ैद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.००
२१९ प्रेत	इब्सेन, अनु० नेमिचन्द्र जैन	२.२५
७५ बारह एकांकी [द्वि० सं०]	विष्णु प्रभाकर	४.००
१६७ घाटियाँ गूँजती हैं [तृ० सं०]	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	२.५०
२०५ नाटक बहुरूपी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.५०
१७२ आदमीका ज़हर	लक्ष्मीकान्त वर्मा	३.००
१७ रजत रश्मि [द्वि० सं० पुरस्कृत]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
१५५ तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ	परिपूर्णानन्द वर्मा	४.००
१०० सुन्दर रस [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	१.५०
१३२ नाटक बहुरंगी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	४.५०

७८	कहानी कैसे बनी ?	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
५३	पचपनका फेर [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विमला लूथरा	२.००
५९	तरकशके तीर	श्रीकृष्ण	३.००
४७	और खाई बढ़ती गयी [पुरस्कृत]	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०
६७	चेखॅवके तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
१०१	कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ० भगवतशरण उपा०	३.५०
१०६	सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	२.००
१०८	भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०

● विधा-विविधा

१५०	खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति मेहरोत्रा	४.५०
१४९	अंकित होने दो	अजित कुमार	४.००
८७	काठकी घण्टियाँ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	७.००
१०२	सीढ़ियोंपर धूपमें	रघुवीर सहाय	४.००
१२५	पत्थरका लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	३.००

● रुचिर-कलात्मक

१९२	शैशवांकन		१२.००
१६१	परिणय गीतिका	सं०—रमा जैन, कुन्था जैन	५.००

● ललित-निबन्धादि

२१६	कुछ निबन्ध	अक्षयकुमार जैन	२.५०
१८३	क्षण बोले कण मुसकाये [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
२११	चिन्तककी लाचारी	माखनलाल चतुर्वेदी	४.००
१९७	एक साहित्यिककी डायरी [द्वि० सं०]	गजानन माधव मुक्तिबोध	२.५०
११७	अमीर इरादे ग़रीब इरादे [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	२.००
१८१	हम सब और वह	दयानन्द वर्मा	२.००
१८०	बातें, जिनमें सुगन्ध फूलोंकी	अहमद सलीम	३.००
१६५	महके आँगन चहके द्वार	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
१६३	शिखरोंका सेतु	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.५०
५७	बाजे पायलियाके घुँघरू [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
१४८	फिर बैतलवा डालपर	विवेकी राय	३.५०
१४७	आँगनका पंछी और बनजारा मन	डॉ० विद्यानिवास मिश्र	३.००
१२८	नये रंग नये ढंग	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.००
७१	बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०

१२३	काग़ज़की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.५०
१११	सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
९६	वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२.५०
१०३	ठूँठा आम	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.००
२९	हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान [द्वि.सं.]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	१.००
७०	ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१.००
४६	क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२.५०
५६	माटी हो गयी सोना [तृ० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	२.५०
२५	ज़िन्दगी मुसकरायी [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००

• यात्रा-विवरण

१८७	चीड़ोंपर चाँदनी	निर्मल वर्मा	३.००
१३०	एक बूँद सहसा उछली	अज्ञेय	७.००
८४	पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३.००
९९	सागरकी लहरोंपर	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
१३६	हरी घाटी	डॉ० रघुवंश	४.५०

• संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी

२३२	वह नन्हा-सा आदमी	सुमंगल प्रकाश	६.००
७४	दीप जले शंख बजे [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	३.००
१६२	समयके पाँव [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
२१	रेखाचित्र [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००
१२४	पराड़करजी और पत्रकारिता [पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	५.५०
१०९	आत्मनेपद	अज्ञेय	४.००
११४	माखनलाल चतुर्वेदी	'बरुआ'	३.००
१५	जैन-जागरणके अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१९	संस्मरण [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
१६	हमारे आराध्य [पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००

• अध्ययन, आलोचना, अनुसन्धान, रचना-शिल्प

२३०	कविवर बनारसीदास	डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन	१०.००
२१०	हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थ	कृष्णाचार्य	७.००
२१४	नये प्रतिमान : पुराने निकष	लक्ष्मीकान्त वर्मा	७.००
१५२	अपभ्रंश भाषा और साहित्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	१०.००
२२१	विवेकके रंग	सं०-डॉ०देवीशंकर अवस्थी	७.००
१८९	हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि	डॉ० प्रेमसागर जैन	१२.००

१९३	भाषा और संवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.५०
१८८	हिन्दी गीतिनाट्य	कृष्ण सिंहल	४.००
१७४	साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य	डॉ० रघुवंश	५.००
१५७	जैन भक्ति-काव्यकी पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमसागर जैन	६.००
१३५	रेडियो वार्ता-शिल्प	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	२.००
४१	रेडियो नाट्य-शिल्प [द्वि० सं०]	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	३.००
३८	ध्वनि और संगीत [द्वि० सं०]	ललितकिशोर सिंह	४.५०
१८	भारतीय ज्योतिष [च० सं०]	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	८.००
८३	प्राचीन भारतके प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०
४८	संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन [द्वि.सं.]	डॉ० भोलाशंकर व्यास	५.००
१२९	हिन्दी नवलेखन	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.००
११२	मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	३.५०
४२	शरत्के नारी-पात्र	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.५०
४४	हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : १	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०
४९	हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : २	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०

● इतिहास-राजनीति

१४५	भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०]	डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१०.००
१९८	भारतीय संस्कृतिका विकास : वैदिक धारा	डॉ० मंगलदेव शास्त्री	७.००
१२१	समाजवाद [छठा सं०]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५.००
३६	कालिदासका भारत : भाग १ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००
४०	कालिदासका भारत : भाग २ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
३२	चौलुक्य कुमारपाल [द्वि०सं० पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.५०
५२	एशियाकी राजनीति	परदेशी	६.००
१०७	इतिहास साक्षी है	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
२३	खोजकी पगडण्डियाँ [द्वि० सं० पुरस्कृत]	मुनि कान्तिसागर	४.००
२२	खण्डहरोंका वैभव [द्वि० सं०]	मुनि कान्तिसागर	६.००

● दार्शनिक-आध्यात्मिक

२१७	तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो [द्वि०सं०]	मुनि नथमल	२.००
२१२	क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?	आचार्य तुलसी	२.००
३३	अध्यात्म-पदावली [तृ० सं०]	डॉ० राजकुमार जैन	४.५०
२०६	दर्शन अनुचिन्तन	गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	३.००
२००	तान्त्रिक साधना	माधव पुण्डलीक पण्डित	१.५०
१०	भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२.००

• सूक्तियाँ

१४० सन्त-विनोद [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	२.५०
१८२ भाव और अनुभाव [द्वि० सं०]	मुनि नथमल	२.००
११ ज्ञानगंगा : भाग १ [द्वि०सं०]	नारायणप्रसाद जैन	६.००
११६ ज्ञानगंगा : भाग २	नारायणप्रसाद जैन	६.००
६१ शरतकी सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
९३ कालिदासके सुभाषित	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००

• हास्य-व्यंग्य

२२२ बक रहा हूँ जुनूनमें	प्रकाश पण्डित	३.००
२०९ सिकन्दरनामा	सलमा सिद्दीक़ी	२.००
१३३ आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य [द्वि० सं०]	सं० – केशवचन्द्र वर्मा	४.००
१६० तेलकी पकौड़ियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० प्रभाकर माचवे	२.००
१७६ जैसे उनके दिन फिरे [द्वि० सं०]	हरिशंकर परसाई	२.५०
१८४ काग़ज़के फूल शब्द : भारतभूषण अग्रवाल	चित्र : प्रभाकर माचवे	३.००
१७९ चाय पार्टियाँ	सन्तोषनारायण नौटियाल	२.००
१५३ हास्य मन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	६.००
१०५ मुर्ग़-छाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	२.००
९७ अंगदका पाँव	श्रीलाल शुक्ल	२.५०

• चिकित्सा

२२३ घरेलू इलाज	वैद्यरत्न च० गो० ठक्कुर	२.००
४५ संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर और साथमें दिया ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा। जैसे : 'सूरजका सातवाँ घोड़ा' के लिए 'लो' – १६४' मात्र।



तत्त्वज्ञान और सिद्धान्तशास्त्र

१० तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग १
२० तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग २
मूल : भट्ट अकलंक; सम्पा० : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य दोनों भाग २४.००

१३ सर्वार्थसिद्धि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य पूज्यपाद; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री १२.००

१० पंचसंग्रह [प्राकृत-हिन्दी]
संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री १५.००

८ जैन धर्मामृत [संस्कृत-हिन्दी]
संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री ३.००

जैन न्याय और कर्मग्रन्थ

१० जैन न्याय [हिन्दी] कैलाशचन्द्र शास्त्री ९.००

११ कर्मप्रकृति [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य नेमिचन्द्र, सम्पादन : पं० हीरालाल शास्त्री ६.००

३० सत्यशासन-परीक्षा [संस्कृत]
मूल : आचार्य विद्यानन्द; सम्पादन : गोकुलचन्द्र जैन ५.००

२२ सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग १
२३ सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग २
मूल : भट्ट अकलंक और अनन्तवीर्य; सं० : डॉ० महेन्द्रकुमार दोनों भाग ३०.००

३ न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग १
१२ न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग २
मूल : भट्ट अकलंक और वादिराज सूरि; सं. : डॉ. महेन्द्रकुमार दोनों भाग ३०.००

१ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग १ सं० अनु० सु० च० दिवाकर ११.००

४ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग २ ११.००
मूल : भगवन्त भूतबलि; सं०-अनु० : पं०फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री
५ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ३ ११.००
६ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ४ ११.००
७ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ५ ११.००
८ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ६ ११.००
९ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ७ ११.००

आचारशास्त्र, पूजा और व्रत-विधान

११ सोलह कारण भावना [हिन्दी] : महात्मा भगवानदीन २.००
२८ उपासकाध्ययन [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : सोमदेव सूरि, सं०-अनु० : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री १२.००
३ वसुनन्दि श्रावकाचार [प्राकृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य वसुनन्दि; सं०-अनु० : पं० हीरालाल शास्त्री ५.००
७ ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि [हिन्दी]
संकलन-सम्पादन : डॉ० आ०ने० उपाध्ये व फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ४.००
१९ व्रततिथिनिर्णय [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ३.००
६ मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन [हिन्दी]
लेखक : पं० नेमिचन्द्र शास्त्री २.००

व्याकरण, छन्दशास्त्र और कोश

१७ जैनेन्द्र महावृत्ति [संस्कृत]
मूल : आचार्य अभयनन्दि; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी १५.००
५ सभाष्य रत्नमञ्जूषा [संस्कृत]
मूल : अज्ञात; सम्पादन : श्री हरि दामोदर वेलणकर २.००
६ नाममाला सभाष्य [संस्कृत]
मूल : कवि धनंजय–अमरकीर्ति; सम्पादन : पं०शम्भुनाथ त्रिपाठी ३.५०

पुराण-साहित्य

२७ **हरिवंशपुराण** [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १६.०

८ **आदिपुराण** [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं०पन्नालाल साहि०

९ **आदिपुराण** [संस्कृत-हिन्दी] भाग २ प्रत्येक भाग १०.०

१४ **उत्तरपुराण** [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य गुणभद्र; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १०.०

२१ **पद्मपुराण** [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
मूल : आचार्य रविषेण; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

२४ **पद्मपुराण** [संस्कृत-हिन्दी] भाग २

२६ **पद्मपुराण** [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३ प्रत्येक भाग १०.००

१५ **पुराणसार-संग्रह** [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
मूल : आचार्य दामनन्दि; सं०-अनु० : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी

१६ **पुराणसार-संग्रह** [संस्कृत-हिन्दी] भाग २ प्रत्येक भाग २.००

चरित व काव्य-ग्रन्थ

६ **सुगन्धदशमी कथा** : सं० डॉ० हीरालाल जैन ११.००

४ **करकण्डचरिउ** [अपभ्रंश-हिन्दी]
मूल : कनकामर, सं०-अनु० : डॉ० हीरालाल जैन १०.००

२९ **भोजचरित्र** [संस्कृत]
मूल : राजवल्लभ, सम्पा० : डॉ० छावड़ा, शंकरनारायणन् ८.००

५ **मयणपराजयचरिउ** [अपभ्रंश-हिन्दी]
मूल : कवि हरिदेव; सम्पादन और अनुवाद : डॉ० हीरालाल जैन ८.००

१ **मदनपराजय** [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : नागदेव; सं०-अनु० : डॉ० राजकुमार जैन साहित्याचार्य ६.००

१ **पउमचरिउ** [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग १
मूल : कवि स्वयम्भू; सं०-अनु० : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

२ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग २
३ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग ३ प्रत्येक भाग ३.००
१८ जीवन्धरचम्पू [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : कवि हरिचन्द्र
सम्पादन, अनुवाद और टीका : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ८.००
१ जातकट्ठकथा [पाली]
सम्पादन : भिक्षु धर्मरक्षित ९.००
५ धर्मशर्माभ्युदय [हिन्दी]
अनुवादक : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य ३.००

ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र

२५ भद्रबाहु संहिता [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य भद्रबाहु; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ८.००
७ केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ४.००
२ करलक्खण [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी ०.७५

विविध

९ वर्ण, जाति और धर्म [हिन्दी]
लेखक : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ३.००
११ जिनसहस्रनाम [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री ४.००
१ थिरुकुरल [तमिल]
सम्पादन : ए० चक्रवर्ती ५.००
१ आधुनिक जैन कवि [हिन्दी]
संकलन-सम्पादन : श्रीमती रमा जैन ३.७५
२ कन्नड-प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ-सूची
संकलन-सम्पादन : पं० के० भुजबली शास्त्री १३.००



पुराण

३७ महापुराण [अपभ्रंश] आदिपुराण : भाग १
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — १०.००

४१ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग २
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — १०.००

४२ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग ३
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — ६.००

२९ पद्मचरितम् [संस्कृत] भाग १
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

३० पद्मचरितम् [संस्कृत] भाग २
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

३१ पद्मचरितम् [संस्कृत] भाग ३
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

३२ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

३३ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

शिलालेख

२८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
सम्पादन : पं० श्री हीरालाल जैन — २.००

४५ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — ८.००

४६ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — १०.००

४८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ४
सम्पादन : डॉ० जोहरापुरकर — ७.००

चरित, काव्य और नाटक

४० वरांगचरित [संस्कृत]
मूल : श्री जटासिंहनन्दि; सम्पादन : डॉ० आदिनाथ उपाध्ये — ३.००

३५ जम्बूस्वामीचरित [संस्कृत]
मूल : पं० राजमल्ल; सम्पादन : श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री — १.५०

८ प्रद्युम्नचरित [संस्कृत]
मूल : श्री महासेन; सम्पादन : पं० मनोहरलाल, रामप्रसाद शास्त्री — .५०

रामायण [अपभ्रंश] (अलगसे)
मूल : महाकवि पुष्पदन्त — २.५०

२७ पुरुदेवचम्पू [संस्कृत]
मूल : श्रीमदर्हद्दास; सम्पादन : श्री जिनदास शास्त्री — .७५

४३ अंजनापवनंजय [नाटक]
मूल : श्री हस्तिमल्ल : सम्पादन–वासुदेव पटवर्धन — ३.००

जैन-न्याय

३८ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य — ८.००

३९ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य — ८.५०

४७ प्रमाणप्रमेयकलिका [संस्कृत]
मूल : श्री नरेन्द्रसेन; सम्पादन : पं० दरबारीलाल कोठिया — १.५०

सिद्धान्त, आचार और नीतिशास्त्र

२१ सिद्धान्तसारादि [प्राकृत-संस्कृत]
मूल : श्री जिनेन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी — १.५०

२५ पञ्चसंग्रह [संस्कृत]
मूल : श्री अमितगति सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — .८१

३६ त्रिषष्टिस्मृतिसार [संस्कृत, मराठी अनुवाद]

मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : मोतीलाल

४४ स्याद्वादसिद्धि [संस्कृत, हिन्दी-सारांश] .५०
मूल : श्री वादीभसिंहसूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल

२४ रत्नकरण्डश्रावकाचार [मूल, संस्कृत टीका] १.५०
मूल : श्री स्वामी समन्तभद्र; टीका : श्री प्रभाचन्द्राचार्य

२६ लाटी संहिता [संस्कृत] २.००
मूल : श्री राजमल्ल; सम्पादन : पं० श्री दरबारीलाल

३४ नीतिवाक्यामृत (शेषांश) [संस्कृत टीका] .५०
मूल : सोमदेवसूरि; टीका : अज्ञात .२५
हरिवंशपुराण सम्पादन : डॉ० पी० एल० वैद्य २.५०

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर, भाषा और ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा। जैसे 'समयसार' के लिए 'मू-अं० १' या 'वरांगचरित' के लिए 'मा-४०' मात्र।

• •

...जा-दिवाली पर वार्षिक
...रूप में सस्नेह

भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे लक्ष्मीचन्द्र जैन द्वारा प्रकाशित और सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसीसे मुद्रित।

रजिस्टर्ड सं. एल.

राजा निरबंसिया

कमलेश्वर

की 'राजा निरबंसिया' और 'कस्बेका आदमी' संग्रहकी सब कहानियाँ हैं इस नये रूपाकारमें : जो उस समय एक मीलका पत्थर हुई थीं आज भी वही बनी हैं। वास्तवमें समकालीन हिन्दी कहानियोंमें इन कहानियोंका एक अपना स्थान है।

प्रत्येक कहानी-प्रेमी पाठक और पुस्तकालयके लिए एक अनिवार्य कृति

मूल्य : पाँच रुपये



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

4-1-67



वाग्देवीं तामुपास्महे !

ज्ञानपीठ पत्रिका

नवम्बर-दिसम्बर १९६६

○

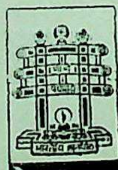
विशेषांक

पुरस्कार-समर्पण समारोह १९६६

भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापित सन् १९४४

सांस्कृतिक जागरण
साहित्यिक विकास-उन्नयन
राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी
साधिका विशिष्ट संस्था



संस्थापक : श्री शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा : श्रीमती रमा जैन

ज्ञानपीठ पत्रिका

पुरस्कार-समर्पण समारोह विशेषांक

वर्ष पाँच : अंक चार-पाँच
संयुक्तांक नवम्बर-दिसम्बर १९६६

• पुरस्कार-समर्पण समारोह

• पुरस्कृत कवि एवं कृति

पुरस्कार योजना संयोजना

• प्रवर्तिका संस्था

●●●

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जगदीश

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

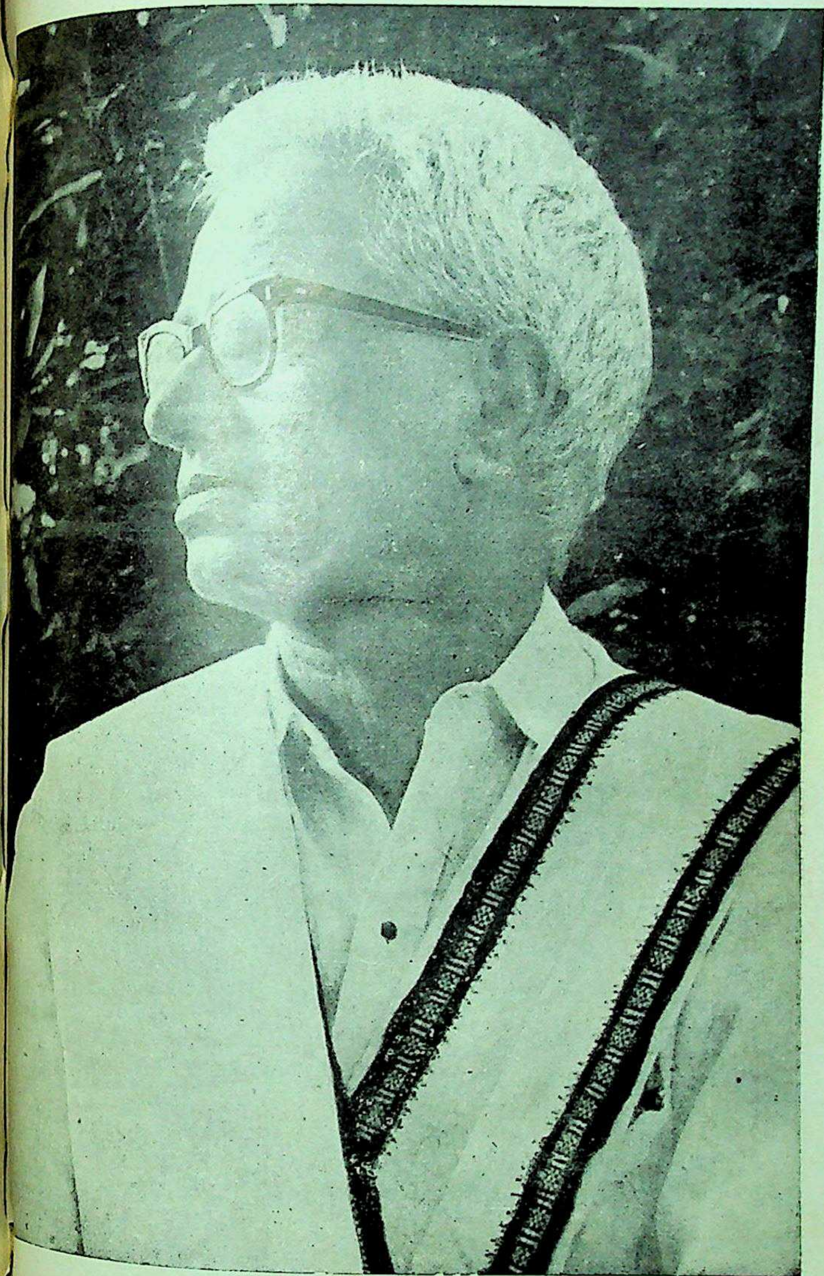
मूल्य : वार्षिक ६.००, ००.५५ पैसे प्रति, द्विवार्षिक ११.००

समाज शिक्षा विभाग, राजस्थान-द्वारा उच्च, उच्चतर विद्यालय तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत

पुरस्कार-समर्पण समारोह

१९ नवम्बर १९६६

- अभिनन्दन आयोजन
- स्वागत-अंजलि
- एक स्वाभाविक परिणति
- समारोहका ऐतिहासिक महत्त्व
- अनेकत्वमें एकत्व
- प्रशस्ति-पत्र
- शुभाशंसाएँ
- एक आह्लाद : एक अनुभूति
- राष्ट्रीय आधुनिक भारतीय साहित्य ?



महाकवि जी० शंकर कुरुप

अभिनन्दन आयोजन

जो वस्तुतः केवल पुरस्कार समर्पण समारोह ही
नहीं था प्रत्युत सांस्कृतिक और साहित्यिक
कार्यक्रमोंके लिए नयी दिशाका
सुझाव-संकेत था

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित देशकी सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक कृतिके लिए एक लाख रुपये राशिका पुरस्कार १९ नवम्बर १९६६ को मलयालमके महाकवि श्री जी० शंकर कुरुपको उनके काव्य-संग्रह 'ओटक्कुष़ल' पर समर्पित किया गया। समर्पण समारोह विज्ञान भवन नयी दिल्लीमें सम्पन्न हुआ और देशकी विभिन्न भाषाओंके प्रमुख साहित्यकार, समीक्षक तथा सुधी नागरिक उसमें सम्मिलित हुए।

संविधान-विहित देशकी चौदह भाषाओंकी सर्वश्रेष्ठ कृतिपर दिया जानेवाला यह पुरस्कार भारतका सर्वोच्च पुरस्कार है और एक कृती साहित्यकारका इस प्रकारसे इतना भव्य साहित्यिक अभिनन्दन भारतमें पहली बार सम्पन्न हुआ। समारोह द्वारपर भारतीय ज्ञानपीठके प्रकाशनोंकी पुस्तक-शोभा थी; विशेष

आकर्षणका केन्द्र ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित पुरस्कृत कृति 'ओटक्कुषल' तथा परवर्ती रचनाओंका संकलन 'एक और नचिकेता' थीं। भीतर मंचपर विभिन्न भारतीय भाषा-लिपियोंके प्रथमाक्षरोंके पार्श्वपर केरलीय हरितवर्णी सज्जाके बीच दूधिया रंगका परिवेश बिखरा था। सभा मण्डप सहज ही 'सरस्वती कण्ठा-भरण' के गायककी उस विद्वन्मण्डलीका स्मरण करा रहा था जहाँ भगवती वाग्देवीका आशीष बिखरता रहता था।

सम्मानित काव्य-कृति 'ओटक्कुषल' सन् १९२० से १९५८ के बीच प्रकाशित भारतीय साहित्यमें सर्वश्रेष्ठ निर्णीत हुई और यह निर्णय प्रवर परिषद्ने सर्व-सम्मतिसे लिया था, जिसके सदस्य हैं : डॉ० सम्पूर्णानन्द (अध्यक्ष), आचार्य काकासाहब कालेलकर, डॉ० नीहार रंजन रे, डॉ० बी० गोपाल रेड्डी, डॉ० करण सिंह, डॉ० हरेकृष्ण मेहताब, डॉ० पी० राघवन्, डॉ० रं० रा० दिवाकर, श्रीमती रमा जैन, श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन।

पुरस्कार समर्पण समारोहमें महाकवि कुरुपको एक लाख रुपयेके चेकके अतिरिक्त रजत-मंजूषामें 'प्रशस्ति-पत्र' और पुरस्कार-प्रतीक स्वरूप 'वाग्देवी'की कांस्य-प्रतिमा शंखध्वनि तथा मंगल-तिलकके साथ भेंट की गयी। डेढ़ फुट आकारकी यह प्रतिमा उस प्राचीन ऐतिहासिक प्रतिमाकी प्रतिमूर्ति है जो ब्रिटिश म्यूज़ियममें संग्रहीत है और सन् १०३५ में धाराधिपति भोजकी राजधानी उज्जयिनीमें उनके सभामण्डपकी शोभा-विशिष्टता थी जहाँ देश-भरके कवियों, विद्वानों तथा चिन्तकोंके सम्मेलन हुआ करते थे।

समारोहका सभापतित्व प्रवर परिषद्के अध्यक्ष, राजस्थानके राज्यपाल, मनीषी-चिन्तक डॉ० सम्पूर्णानन्दने किया। मंचपर प्रवर परिषद्के अध्यक्ष और सदस्यों तथा भारतीय ज्ञानपीठके संस्थापक, अध्यक्षा एवं मन्त्री आदिके बीच महाकवि कुरुप बैठे थे। कार्यक्रम दो हज़ारसे अधिक विशिष्ट अभ्यागतोंकी उपस्थितिमें वाग्देवीकी वन्दनासे प्रारम्भ हुआ। वस्तुतः यह समारोह केवल पुरस्कार-समर्पण समारोह ही नहीं था, सांस्कृतिक और साहित्यिक कार्यक्रमोंकी परिवर्तित दिशा थी।



स्वागत अंजलि

महाकविका यह अभिनन्दन यथार्थमें समूचे
देशके साहित्यकारोंकी ओरसे उनका
अभिनन्दन है

भारतीय ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनने महाकविको स्वागत-अंजलि भेंट करते कहा—

इस प्रथम पुरस्कार-समर्पण समारोहके अवसरपर मैं आप सबका हार्दिक स्वागत करती हूँ और महाकवि कुरुपका श्रद्धापूर्ण अभिनन्दन। इस अवसरपर प्रवर परिषद्के प्रथम अध्यक्ष एवं भारतके प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न—डॉ० राजेन्द्र-प्रसादजीका स्वतः ही स्मरण आता है। उनकी प्रेरणा, शुभकामना एवं मार्ग-दर्शनसे भारतीय ज्ञानपीठको तथा मुझे सदा साहस प्राप्त हुआ है और इस पुरस्कार योजनाको वर्त्तमान रूप देनेमें उनके सुझावोंसे बहुत बड़ा बल मिला है। उनकी स्मृतिमें श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

यह मेरा सौभाग्य है तथा आत्मसन्तोषकी बात है कि १९६१ में देखे गये स्वप्नको मैं सार्थक रूपमें देख रही हूँ। मुझे हर्ष है कि भारतीय ज्ञानपीठने इतने कठिन कार्यको हाथमें लेनेका साहस किया और उसे सुखद परिणाम तक पहुँचाने-का श्रेय डॉ० सम्पूर्णानन्दजीके नेतृत्व, प्रवर परिषद्के सदस्यगण और भारतके साहित्यकारोंको है, जिन्होंने अपनी अनेक व्यस्तताओंमें-से भी समय निकालकर बराबर इस पुरस्कार योजनाको सफल बनानेमें सहयोग दिया है। डॉ० सम्पूर्णा-नन्दजी एवं प्रवर परिषद्के सदस्योंके व्यक्तित्वसे आप सभी परिचित हैं। भार-तीय ज्ञानपीठ उनकी कृतज्ञ है।

इस समय देशमें भाषा, जाति, प्रान्त, धर्म आदि विषयोंको लेकर कई विवाद खड़े किये जा रहे हैं। इससे देशकी समग्र भावनाको आघात पहुँचा है और आगे भी पहुँचनेकी आशंका है। इस प्रकारकी विपरीत धाराओंको रोका न गया, तो यह हमारे महान् जनतन्त्रको भी जर्जरित कर सकता है। इस सन्दर्भ-में यह विशेष महत्त्व व गौरवकी बात है कि प्रवर परिषद्में विभिन्न भाषी सदस्योंने एकमतसे महाकवि जी० शंकर कुरुपकी मलयालम कृति 'ओटक्कुषल' का वरण किया।

देशकी सांस्कृतिक एकता और विचारोंका सामंजस्य, जो जीवनके यथार्थ थे, उन्हें संकुचित दृष्टिने, राजनीतिपर आश्रित भाषा और सीमा विवादोंने तथा अन्य दुराग्रहोंने धूमिल कर दिया है। उन सब सीमाओंको तोड़कर हम समाज, साहित्य और संस्कृतिके महा आकाशके नीचे एक साथ एकत्र हैं। आज उत्तरका यह अंचल सुदूर दक्षिणके अंचलके साथ एक-प्राण हो रहा है और हम अपने मलयालमके कविका नहीं, भारतके कविका अभिनन्दन कर रहे हैं!

महाकवि, देशके साहित्यकारोंने आपकी वाणी वाग्देवीकी अर्चनाके लिए जो भावांजलि आज प्रस्तुत की है, भारतीय ज्ञानपीठने इस पुरस्कारके रूपमें उस पुष्पहारमें अपनी श्रद्धाका एक सुमन गूँथा है। हाँ, हमारी भावनाओंका विस्तार इतना व्यापक है कि यह फूल उनका एक प्रतीक ही बन सकता है।

कृतिकारके लिए सबसे बड़ा पुरस्कार यह है कि जिन भावनाओं, स्वप्नों, संकेतों और समस्याओंसे वह आन्दोलित हुआ है और जो हर्ष-विषाद उसने भोगे हैं, उन्हें वह वाणीमें इस प्रकार अभिव्यक्त कर दे कि एक अभिनव सौन्दर्य सृजन-

में आ जाये। कविके लिए सृजनका सबसे बड़ा सुख आत्मसन्तोष है। आपका कृतित्व जब लाखों पाठकोंके सामने पहुँचा, उन्हें अनुप्राणित किया तभी वह सार्थक हो गया। उसकी अनुप्रेरणा और सार्थकताका क्षेत्र व्यापक हो, इस दृष्टिसे भारतीय ज्ञानपीठने न केवल 'ओटक्कुष़ल' का हिन्दी अनुवाद इस अवसरपर प्रस्तुत किया है, बल्कि 'ओटक्कुष़ल'के बादकी रचनाओंका एक संकलन आपकी एक कविताके शीर्षक पर 'एक और नचिकेता'के नामसे प्रकाशित किया है।

आजका यह अवसर भारतीय साहित्यके इतिहासमें इसलिए स्मरणीय रहेगा कि देशकी राजधानीमें विभिन्न विद्वानों, साहित्यकारों राजनयिकों और बुद्धिचेता नागरिकोंने देशके विभिन्न अंचलोंसे आकर साहित्य-मनीषियोंकी उपस्थितिमें और उनके सहयोगसे एक ऐसे कवि साहित्यकारका अभिनन्दन किया जो समस्त भारतीय साहित्यकी प्रतिभा और राष्ट्रकी एकताका प्रतिनिधि है। महाकवि कुरुपका अभिनन्दन देशकी संश्लिष्ट संस्कृति और उस संस्कृतिकी साहित्यिक अभिव्यक्तिका अभिनन्दन है।

वास्तवमें यह समारोह और यह अभिनन्दन समूचे देशके साहित्यकारोंकी ओरसे महाकविका अभिनन्दन है। पुरस्कारका निर्णय जिस पद्धतिसे किया गया है उसका दायित्व स्वयं साहित्यकारों और साहित्य समीक्षकोंने उठाया है और सबके सहयोगसे ही यह सम्भव हुआ है कि आज हम समूचे भारतीय साहित्यमें-से एक कृतिका चयनकर अखिल भारतीय साहित्यिक मानदण्डकी स्थापनाकी ओर अग्रसर हुए हैं। यह मानदण्ड संसारके साहित्य-क्षेत्रमें भारतीय साहित्यको एक सम्मानित आसन दिलायेगा। भारतकी सांस्कृतिक विचार एकताको जनसाधारणमें व्यापक और दृढ़ करेगा।

हमें इस बातकी प्रसन्नता है कि भारत सरकारने पुरस्कारकी राशिको आयकरसे मुक्त कर दिया है और इस प्रकार भारतीय साहित्यके प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की है। ज्ञानपीठ इस सहयोगके लिए आभारी है।

• •

एक स्वाभाविक परिणति

प्रस्तुत साहित्यिक पुरस्कार वास्तवमें भारतीय ज्ञानपीठकी अब तककी प्रवृत्तियोंकी स्वाभाविक परिणति ही है

भारतीय ज्ञानपीठके मन्त्री श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनने पुरस्कार प्रवर्तिका संस्था ज्ञानपीठकी गतिविधियों तथा पुरस्कार-निर्णयकी पद्धतिपर प्रकाश डालते हुए कहा—

भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापना श्री शान्तिप्रसादजी द्वारा वाराणसीमें सन् १९४४ में हुई थी। मूल प्रेरक थी श्री शान्तिप्रसाद जैनकी माता स्वर्गीया मूर्तिदेवीजीकी स्मृति। मूर्तिदेवीजीका जीवन बहुत धार्मिक और आध्यात्मिक था। वह नियमित शास्त्र-स्वाध्याय करती थीं। जैन विद्वानोंसे उन्होंने सुन रखा था कि जिन प्राचीन शास्त्रोंमें कर्मसिद्धान्तका विस्तारसे प्रतिपादन है, उनमें एक ग्रन्थ 'महाबन्ध' है

जिसे किसीने आजतक पढ़ा नहीं और उसकी केवल एक ही प्रति भारतमें है जिसके दर्शन किये जाते हैं, दक्षिणमें मूडबिद्रीकी यात्राके समय। उनकी प्रबल भावना थी कि किसी तरह यह ग्रन्थ भण्डारसे बाहर आये, और विद्वान् लोग इसका अध्ययन करें। श्री शान्तिप्रसाद जैनने जब भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापना की तो सबसे पहले 'महाबन्ध' के प्रकाशनका दायित्व लेनेके लिए उन्होंने सम्पादक मण्डलसे अनुरोध किया। ताड़पत्रपर प्राचीन हडेगन्नड़ लिपिमें लिखे इस ग्रन्थका ७ भागोंमें प्रकाशन मूर्तिदेवी ग्रन्थमालाके नामसे हुआ है। इस ग्रन्थके मुद्रणमें लगभग ९० हज़ार रुपये व्यय हुए।

मूर्तिदेवी ग्रन्थमालाका विशेष उद्देश्य यह है कि भारतीय विद्याके जो अंग उपेक्षित रहे, सबसे पहले उनपर अनुसन्धान हो, और उनका प्रकाशन हो। इस उद्देश्यकी पूर्ति हेतु मूर्तिदेवी ग्रन्थमालामें अबतक लगभग ६० ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें ३६ संस्कृतके, ११ प्राकृतके, ६ अपभ्रंशके हैं। पालीमें जातकट्ठ कथा और तमिलमें थिरुकुरलका प्रकाशन हुआ है। मूर्तिदेवी ग्रन्थमालामें अबतक लगभग ३२००० पृष्ठ छप चुके हैं। ज्ञानपीठकी नीतिके अनुसार इन ग्रन्थोंका मूल्य लागत से कम रखा गया है।

भारतीय भाषाओंमें आधुनिक मौलिक साहित्यकी रचना हो और जो साहित्य अन्य भाषाओंमें लिखा जा रहा है उसका प्रसार हो तथा नयी प्रतिभाओंका विकास हो, इस उद्देश्यसे ज्ञानपीठकी लोकोदय ग्रन्थमाला प्रचलित है, जिसमें लगभग २५० पुस्तकें १०५ लेखकोंकी प्रकाशित हो चुकी हैं। देशकी सांस्कृतिक उपलब्धिका माध्यम हिन्दी बने, इस दृष्टिसे इस ग्रन्थमालामें 'वैदिक साहित्य' जैसी सुलभ परिचयात्मक पुस्तक छापी, उर्दू शायरीका बहुत बड़ा भाग देवनागरी लिपिमें छापा गया और राष्ट्रभारती ग्रन्थमालाके अन्तर्गत देशकी सभी भाषाओंके प्रमुख लेखकोंके ऐसे संग्रह हिन्दीमें प्रकाशित हो रहे हैं, जिनमें इन लेखकोंकी स्वयं संकलित श्रेष्ठ रचनाएँ हैं। भारतीय ज्ञानपीठने प्रकाशनके स्तरको ऊँचा उठानेका प्रयत्न किया और विशेषकर यह कि लेखकोंके अधिकारोंकी रक्षा तथा उनके लिए यथोचित रायल्टी आदिकी स्वस्थ परम्पराएँ स्थापित कीं, संवर्द्धित कीं।

ज्ञानपीठके दो मासिक पत्र, ज्ञानोदय और ज्ञानपीठ पत्रिका अपने-अपने क्षेत्रमें अद्वितीय माने जाते हैं।

एक प्रकारसे अबतककी प्रवृत्तियोंकी स्वाभाविक परिणति इस साहित्यिक पुरस्कारमें हुई है। इसके उद्देश्यके सम्बन्धमें ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनने अपने भाषणमें प्रकाश डाला है।

पुरस्कार निर्णयकी कार्यपद्धति संक्षेपमें यह है :

प्रत्येक वर्षके पुरस्कारके लिए विचारणीय पुस्तकोंकी प्रकाशन अवधि प्रवर परिषद् निश्चित कर देती है। तब, लगभग २ हज़ार प्रस्ताव पत्र भेजकर विचारार्थ पुस्तकोंके नाम आमन्त्रित किये जाते हैं। संविधानमें परिगणित १४ भारतीय भाषाओंकी एक-एक भाषा परामर्श समिति है, जिसमें उस भाषाके ३ प्रमुख साहित्यिक समीक्षक सदस्य हैं। ये समितियाँ प्रस्ताव पत्रोंपर विचार तो करती हैं, किन्तु स्वतन्त्र रूपसे निर्णय लेती हैं कि उनकी भाषाकी श्रेष्ठ पुस्तक क्या है। जब १४ भाषाओंसे संस्तुतियाँ आ जाती हैं तो दो-दो तीन-तीन भाषाओंके वर्ग बनाकर पुस्तकोंपर विचार किया जाता है और प्रत्येक वर्ग एक-एक पुस्तक चुनकर भेजता है। इस प्रकार प्रवर परिषद्के विचारार्थ ५-६ पुस्तकें आ जाती हैं। इन पुस्तकोंका मूल्यांकन दो-तीन प्रकारसे होता है। प्रत्येक पुस्तककी तुलना हिन्दी पुस्तकसे की जाती है। क्योंकि हिन्दीकी मूल कृतिको पढ़नेवाले समीक्षक अन्य भाषाओंमें मिल जाते हैं। दूसरी ओर इन ५-६ पुस्तकोंकी तुलना मूल कृति-के आधारपर एक-दूसरेसे की जाती है, और इस प्रकार कुछ निष्कर्ष सामने आते हैं। इन पुस्तकोंके हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किये जाते हैं ताकि प्रवर परिषद्के जो सदस्य हिन्दी जानते हैं उन्हें तुलनाका कोई समान माध्यम मिले। अन्तिम चरणमें प्रवर परिषद्के सदस्य संबंधित भाषा समितिके संयोजकोंसे और अनुवाद-कोंसे परामर्श करके कृतियोंके गुण-अवगुण समझते हैं, और निर्णय लेते हैं। प्रसन्नता है कि इस सारे विधि-विधानके अन्तर्गत महाकवि श्री जी० शंकर कुरुपकी पुस्तक ओटक्कुषलका सर्वसम्मतिसे वरण हुआ है, और आज हम उनका अभिनन्दन कर रहे हैं।

इस बीच दूसरे वर्षके पुरस्कारका कार्य भी इतना आगे बढ़ गया है कि कुछ महीनोंमें ही निर्णय लिया जा सकेगा। तीसरे और चौथे वर्षके पुरस्कारोंके लिए यथानियम कार्यवाही चालू है।



समारोह का ऐतिहासिक महत्त्व

देशके इतिहासमें यह पहला अवसर है कि
एक भारतीय लेखकका अखिल भारतीय
स्तरपर इस प्रकार अभिनन्दन
किया जा रहा है

प्रवरपरिषद् तथा पुरस्कार समर्पण समारोहके अध्यक्ष डॉ० सम्पूर्णानन्दने महाकवि जी० शंकर कुरुपका स्वागत-सम्मान करते हुए कहा—

मेरा ऐसा विश्वास है कि आजका उत्सव भारतके वर्त्तमान इतिहासमें अपने ढंगका निराला है और मुझे इस बातसे प्रसन्नता होती है कि मुझे इसमें सम्मिलित होनेका अवसर प्राप्त हुआ है। जब मैं वर्त्तमान इतिहासकी चर्चा करता हूँ तो मेरी दृष्टिमें पिछले कमसे कम एक हज़ार वर्षोंकी अवधिका चित्र खिंच जाता है। इस देशमें कवियों और विद्वानोंका समादर करनेकी परम्परा प्राचीन कालसे चली आती है। अति प्राचीन कालमें, उस कालमें जिसको वैदिक काल कहते हैं, कवि शब्द क्रान्तदर्शी, योगी, ऋषिके लिए व्यवहारमें आता था। स्वयं परमात्माको पुराण कवि कहा गया है। आज इस शब्दका अर्थ पहलेसे संकुचित हो गया है। फिर भी कविका स्थान बहुत ऊँचा है। जिस वर्गमें उशना, व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, माघ, भारवि, भास, सूर, तुलसी, रवीन्द्र जैसे महामानव रहे हों उसका स्थान ऊँचा होना स्वाभाविक है। लोकबुद्धि कविको कितना ऊँचा मानती है वह इस लोकोक्तिसे विदित होता है :

यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि यद्यपि आज कवि और काव्य शब्दोंका व्यवहार प्रायः पद्य रचनाओंके सम्बन्धमें ही हुआ करता है परन्तु परिभाषाके अनुसार तो गद्य और पद्य दोनोंकी ही गणना काव्यमें होती है और दोनोंका ही रचयिता कवि कहलाता है : वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम् ।

मैं यह कह रहा था कि कवि और विद्वान्का समादर करना हमारी प्राचीन परम्परा, हमारी प्राचीन संस्कृतिका महत्त्वपूर्ण अंग है। 'भोज प्रबन्ध' के अनुसार राजा भोज जब कभी किसी कविकी रचनासे प्रभावित होते थे तो वह 'प्रत्यक्षरम् लक्षमुद्राम् ददौ' : एक-एक अक्षरपर एक-एक लाख रुपया पुरस्कार देते थे। 'भोज प्रबन्ध' इतिहासकी कसौटीपर खरा नहीं उतरता, परन्तु उससे एक प्रवृत्ति विशेषका संकेत तो मिलता ही है। पिछले एक हज़ार वर्षोंमें देशका इतिहास कुछ ऐसा रहा है कि भिन्न प्रदेशोंके विद्वानोंका किसी एक जगह एकत्र होना बहुत सुकर नहीं था। फिर भी महाराष्ट्र साम्राज्यमें जिस प्रकार गुणियोंका समादर होता था, उससे प्राचीन कालकी स्मृति कुछ हरी हो उठती थी। स्वयं शिवाजीने इस प्रथाको पुनर्जीवित किया था। कहा जाता है कि उन्होंने हिन्दीके महाकवि भूषणसे प्रसन्न होकर उनसे उस रचनाको १९ बार पढ़वाया, जिसकी प्रथम पंक्ति इस प्रकार है और इसके उपलक्ष्यमें उनको १९ गांव और १९ लाख रुपये दिये :

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सुअम्भ पर
रावन सदम्भ पर रघुकुलराज है।

राजा भोजकी कथाके समान इस कथामें भी अतिशयोक्ति हो सकती है, परन्तु यह भी प्रवृत्तिकी द्योतक है ही। यह भी कहा जाता है कि जब भूषण शिवाजीके देहान्तके बाद अलमोड़ा गये तो वहाँके राजाने पालकीपर उनकी सवारी निकलवायी और एक कहारको हटाकर स्वयं अपना कन्धा लगा दिया।

देशमें ऐसी परम्परा और मान्यताके होते हुए भी पिछले सैकड़ों वर्षोंमें सार्वभौम रूपसे उसको कार्यान्वित करनेका अवसर नहीं मिल सका था। स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके पहले प्रादेशिक स्तरपर इस दिशामें कुछ प्रयास हुए। हिन्दीमें दिया जानेवाला मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रसिद्ध है। धनकी मात्रा तो

केवल १२ सौ रुपये थी, परन्तु इस पुरस्कारके साथ जो गौरव सम्बद्ध है उसकी मात्रा बहुत बड़ी है। सम्भवतः अन्य भारतीय भाषाओंके क्षेत्रमें भी इससे मिलते-जुलते पुरस्कार होंगे, परन्तु अबतक कोई ऐसी योजना नहीं थी, जिसके अनुसार समूचे भारतको एक इकाई मानकर किसी भारतीय लेखकका अखिल भारतीय स्तरपर सम्मान किया जा सकता। इस अभावकी पूर्ति अब श्रीमती रमा देवी और भारतीय ज्ञानपीठने की है, जिसके लिए भारतीय ज्ञानपीठके संस्थापक श्री शान्तिप्रसाद जैन धन्यवादके पात्र हैं।

उनकी योजनासे यहाँ उपस्थित प्रायः सभी लोग परिचित हैं। एक लम्बी प्रक्रिया है, जिसके अनुसार उस ग्रन्थका चयन किया जाता है जो पुरस्कारके योग्य, सर्वोत्कृष्ट माना जाता है और उसके लेखककी सेवामें एक लाख रुपया अर्पित किया जाता है। यह इस पुरस्कारके दिये जानेका पहला अवसर है और श्री कुरुप प्रथम पुरस्कार विजेता हैं। इस अवसरपर मैं अपनी ओरसे, प्रवर परिषद्के अपने सहयोगियोंकी ओरसे, भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे और आप सब लोगोंकी ओरसे श्री कुरुपको बधाई देता हूँ। इसके साथ ही भारतीय ज्ञानपीठ और श्रीमती रमा देवी तथा सब लोगोंको विशेषतः श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनको भी धन्यवाद देना मेरा कर्त्तव्य है जिनके प्रयत्नोंसे यह अवसर सम्भव हो सका है। हमको इस बातका बहुत खेद है कि अनेक अनिवार्य कारणोंसे पुरस्कार समर्पण टलता गया। वस्तुतः यह उत्सव आजसे बहुत पहले हो जाना चाहिए था।

मैं स्वयं उन लोगोंमें हूँ जिनके ऊपर चयनका अन्तिम दायित्व था। हमने एक लम्बी प्रक्रिया निकाली, परन्तु हम निश्चित रूपसे यह नहीं कह सकते कि इससे अच्छी कोई दूसरी प्रक्रिया नहीं हो सकती थी। अन्तिम निर्णायकोंमें कोई ऐसा नहीं था जो संविधानमें स्वीकृत चौदहों भाषाओंका ज्ञाता हो। हम सब साहित्यके समान रूपसे मर्मज्ञ होनेका दावा नहीं कर सकते। आप हमारी कठिनाईका भी अनुमान करें। विभिन्न भाषाओंके मुहावरे विभिन्न प्रकारके होते हैं। उनका प्रायः अनुवाद नहीं हो सकता और न एक भाषाके मुहावरेकी दूसरी भाषाके मुहावरेसे तुलना की जा सकती है। गद्य और पद्यकी एक-दूसरेसे तुलना करना बहुत कठिन काम है। उपन्यासकी निराली ही शैली होती है। चरित्र-चित्रण, भाषाका सौष्ठव, कल्पना शक्ति, रसकी उद्भूति, यह सभी बातें अपना महत्त्व रखती हैं। यह देखना कि इन सब बातोंको मिलाकर कौन-सी रचना सर्वोत्कृष्ट है,

सुगम काम नहीं है और फिर एक और बात भी द्रष्टव्य है और होनी चाहिए : जो पुस्तक समसामयिक वाङ्मयमें सर्वोत्कृष्ट हो, उसमें जो भावनाएँ व्यक्त और अव्यक्त रूपसे खेल रही हैं उनको सारे देशकी आत्माका प्रतीक होना चाहिए। उस पुस्तकके पृष्ठोंमें किसी एक प्रदेश, किसी एक वर्ग-विशेष, किसी एक समुदाय विशेषकी नहीं, प्रत्युत भारतीय आत्माकी झलक देख पड़नी चाहिए। जिस प्रकार कालिदासके ग्रन्थोंमें भारतीय आत्माका स्वर गूँजता रहता है, उसी प्रकार हमारे इन नये ग्रन्थोंमें भी यथाशक्य होना चाहिए। भारतीय कविकी वाणीसे समस्त मानव जातिको 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' का सन्देश मिलना चाहिए। यह कहाँ तक हो सका है, हम नहीं कह सकते। इसका निर्णय दूसरे लोग कर सकते हैं। किन्हीं दूसरे सुयोग्य निर्णायकोंके हाथों, सम्भव है, किसी दूसरी पुस्तकका चयन होता, परन्तु यह सब होते हुए, इन बातोंको जानते हुए और अपनी कमियोंसे पूर्णरूपेण अभिज्ञ होते हुए, हमको यह विश्वास है कि हमने अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें पूरी निष्ठासे काम लिया है और हमको भगवती सरस्वतीकी कृपासे अपने प्रयासमें सफलता भी मिली है। इसके सबसे बड़े दो प्रमाण हैं: एक तो यह कि जहाँ तक मैं जानता हूँ देशके किसी कोनेमें-से यह आक्षेप सुननेमें नहीं आया कि हमने किसी प्रकारका पक्षपात दिखलाया और दूसरी बात यह कि हमारे चयनकी प्रायः प्रशंसा ही सुननेमें आयी है।

श्री कुरुप और उनकी पुरस्कार-विजयिनी रचनाके सम्बन्धमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है। सम्भव है आपमें-से कुछ लोग मुझसे इस बातकी प्रतीक्षा भी करते हों कि मैं कुछ कहूँ, परन्तु यह काम तो मैं दूसरोंपर ही छोड़ता हूँ। वास्तविकता तो यह है कि जो लोग साहित्यप्रेमी हैं, उन्होंने यदि श्रीकुरुपकी लेखनीका रसास्वादन नहीं भी किया था, तो पुरस्कारकी घोषणाके बाद उसका कुछ-न-कुछ परिचय प्राप्त करनेका निश्चय ही प्रयत्न किया होगा। उनको मेरे किसी कथनकी अपेक्षा न होगी। एक फ़ारसी कहावत है :

मिश्क आनस्त कि खुद बेबोयद्, न आँकि अतार बिगोयद

कस्तूरी स्वयं अपनी सुगन्धसे अपनी सत्ताको विज्ञापित कर लेती है। उसको विक्रेताकी प्रशंसाकी आवश्यकता नहीं होती।

● ●

अनेकत्वमें एकत्व

भाषाएँ अलग-अलग हों पर सुमित्रानन्दन पन्त,
उमाशंकर जोशी, नज़रुल इस्लाम और
जी० शंकर कुरुप सब हैं एक ही
भारतीय सांस्कृतिक-साहित्यिक
परम्पराके विभिन्न नाद

महाकवि जी० शंकर कुरुपने अपने अभिभाषणमें कहा—

हो सकता है कि शारदीय सन्ध्याकी वह निराडम्बर सुन्दरता, जिसमें थके हुए पंखवाले गीत अपारताको नापनेके प्रयत्नमें पराजित होनेपर भी अभिमानके साथ नीड़की ओर लौटते हैं, किसीको हठात् आकर्षित न करे, किन्तु अप्रत्याशित रूपसे उसके ललाटपर प्रतिपदाके चन्द्रमाकी प्रकाश-कला अगर स्वयं प्रत्यक्ष हो जाये तब पथिक और ग्रामीण कृषक उस रजत-रेखाकी तरफ़ अत्यन्त कौतुकके साथ नज़र उठायेंगे और उसे धारण करनेवाली सन्ध्याको पूर्वाधिक उत्सुकताके साथ देखकर बधाइयाँ देंगे। उदासीन आदरको पदच्युत कर देंगे, उन्मेष और अद्भुत। भारतीय ज्ञानपीठका यह प्रथम सम्मान-सिन्दूर स्वच्छ शान्त समाधिकी इच्छा करनेवाली मेरी कविताके ललाटपर चमक उठा तो मेरे प्रान्तके निवासियों-के मनोमण्डलमें भी शायद इसी प्रकारकी अनुभूति हुई होगी। उन्हें यह आभास भी हुआ होगा कि अपारताको नापनेके प्रयासमें असफल हुए मेरे गीत ज्यों-ज्यों दूर चले जाते हैं, त्यों-त्यों वे अधिकाधिक निकट सुनाई देते हैं। मेरी अधीर-चकित कविता उनके मानसिक क्षितिजपर मूर्छित होकर न गिरे। भारतीय ज्ञानपीठकी वह रजत-रेखा, उसके ललाटके स्पर्शसे क्लान्त न होने पाये।

भारतके सांस्कृतिक इतिहासमें भारतीय ज्ञानपीठ अनन्य प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहा है। उषाकी सुवर्ण सम्पदा उषाके लिए नहीं बल्कि संसारके लावण्य और चैतन्यको बढ़ानेके लिए है। मालूम पड़ता है इस संस्थाकी हृदय और आत्मा-स्वरूपा अध्यक्षा इस बातको जानती हैं। मैं भारतीय ज्ञानपीठ और उसकी

अध्यक्षाके प्रति हार्दिक धन्यवाद प्रकट करता हूँ ।

यह पुरस्कार नहीं, बल्कि इस पुरस्कारके पीछे विद्यमान आदर्श एवं संकल्प ही मुझको आकर्षित कर रहे हैं । मुझे प्रतीत होता है कि भारतीय साहित्यके बोधका पुनर्जागरण एवं भारतीय जनताके हृदय-तलमें होनेवाला संश्लेषण, यही वह संकल्प और आदर्श है । भारतके नाद थे, वाल्मीकि, व्यास और कालिदास । किन्तु आज वह नाद कहाँ है ? कुछ लोगोंको यह कहते हुए सुनता हूँ कि अँगरेज़ी साम्राज्यके शक्तिशाली हाथने ही भारतको एक-राष्ट्र बना डाला। मैं इससे सहमत नहीं हो सकता । असलमें, भारतकी प्रकृतिको, भूगोल विज्ञानको, इतिहास एवं जीवन-दर्शनको, जनता और दन्त कथाओंको सम्मिलित कर समग्रता और एकाग्रताके साथ महाभारतकी रचना करनेवाले व्यासदेवने ही अखण्ड भारतके संकल्पको प्राण, रूप एवं कर्मचेतना प्रदान की थी। वाल्मीकि और कालिदासका भी उस संश्लेषणमें अन्यादृश हाथ है। आसन्नभूतमें उस परम्पराके एकमात्र प्रतिनिधि थे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर। कहाँ है वे नाद ?

मैंने हालमें एक प्रसिद्ध पण्डितका लेख, जिसमें यह उल्लेख है कि 'कॉमनवेल्थ लिट्रेचर' एक वास्तविक सत्य है, 'पोलिटिकल फैब्रिकेशन' नहीं, कौतुकके साथ पढ़ा । ऐसा मालूम पड़ता है, उस लेखककी यह भी राय है कि प्राकृतिक, देशीय एवं जातीय पूर्वाग्रहों एवं आसंगोंसे विमुक्त केवल मानव मानवसे बातें करता है, अँगरेज़ी भाषाके माध्यमसे, उस साहित्यमें । अँगरेज़ीके किसी कविमें इतनी निरंजनता, इतना मिथ्याभिमान है, यह मैं नहीं जानता। अगर होता तो मेरी रायमें, अँगरेज़ी साहित्य नामकी कोई चीज़ ही न हो पाती। मैं सोचता हूँ कि देश और कालके अनुरूप जो विशेष परिस्थितियाँ हैं, जिसमें जनता सांस ले रही है, उस अन्तरिक्षमें पैदा होनेवाले, जो विशेष स्पन्द हैं, वे ही अंगरेज कविके हृदयको विक्षुब्ध करते हैं; विकारसे उत्तेजित करते हैं; चिन्तनकी प्रेरणा देते हैं; भावपूर्ण अनुभवोंका संश्लेषण करने और व्याख्या करनेमें उसको सन्नद्ध करते हैं; क्योंकि वह कवि इंगलैण्डका नाद है ।

क्या एक राष्ट्रके रूपमें संगठित भारतका कोई अस्तित्व नहीं है ? क्या भारत अलग-अलग प्रान्तोंका एक गुच्छा-मात्र है ? क्या भारतका अपना एक नाद नहीं है ? क्या केवल कुछ प्रान्तीय भाषाएँ ही हैं ? क्या भारतके हृदयकी अपनी

विशेष लय-ताल नहीं ? उसीसे अनुप्राणित होनेवाला एक भारतीय साहित्य नहीं ? आपसमें रक्त-सम्बन्ध, हृदय स्पन्दमें समान लय और विकासके इतिहासमें सम प्रवृत्तियाँ रखनेवाली हमारी भाषाओं और साहित्योंके एक 'कॉमनवेल्थ' को वास्तविक रूपमें परिणत करने योग्य शिलादृढ़ सांस्कृतिक आधार-भूमि नहीं है ? क्यों यह प्रश्न अपनेसे नहीं पूछा जाता ? क्यों इसका असली समाधान खोजा नहीं जाता ? नवीन भारतकी जनताकी रागात्मक एकताका सम्पादन अथवा शैथिल्यका निराकरण अधिकांशतः इसी प्रश्नके उत्तरपर अवलम्बित है। हमारे राष्ट्रका अवचेतन वह है; हमारे दर्शन, भौतिक सत्यान्वेषण तथा जन-जीवनके प्रभात एवं सन्ध्याकी रागात्मक एकता वहीं है। अगर वैज्ञानिक एवं तकनीकी सभ्यता-संस्कृतिको इस सुदृढ़ नींवपर प्रतिष्ठित करनेका प्रयत्न न किया गया तो अवश्य ही बीच-बीचमें छिद्र और दरारें पड़ जायेंगी। समकालीन घटनाएँ क्या हमें इतना भी नहीं समझायेंगी ?

प्रान्तीय अहन्ताओं, भाषा सम्बन्धी अभिमानों एवं साम्प्रदायिक अन्धताके तरंगोंमें डूबा पड़ा हुआ है वह भारतीय अवचेतन और उसका नाद ! इस शताब्दी के दूसरे दशकमें गान्धीजीके नेतृत्वमें भारत बोल उठा : "मैं जी रहा हूँ" दोहरा कर स्थिर किया : "स्वाधीनता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।" इससे पहले ही आरब्ध आत्मीय एवं सामाजिक क्रान्तिकी चेतना भी उस निर्भय 'सेल्फ असर्शन' में घुल-मिल गयी थी। अगर कहा जाय कि यह भारतके 'रिसेरक्शन'का, पुनर्जागरणका, युग था तो वह किसी तरहसे असंगत न होगा। इस तरह बार-बार जागनेवाली अथवा बार-बार जी उठनेवाली भारतकी आत्मीय चेतना, भारतकी भाषाओंमें, जीवित रहनेवाले कलाकारोंकी कृतियोंमें, किस तरह गूँज उठी है, इस बातका अनुसन्धान, मेरे विचारसे, आधुनिक भारतीय साहित्यकी अपेक्षित रूपरेखा तैयार करनेका एक समारम्भ होगा। सागरकी गहराईमें डूबे हुए किसी भूविभागके रूप-निगमनकी कोशिश करनेवाले समुद्र-शास्त्री, हो सकता है, अपेक्षित रूपसे उन्नत किसी एक श्रृंग और उससे सम्बन्धित तराइयोंको, ढूँढ़ निकालेंगे। इसका यह अर्थ नहीं कि वे दूसरे अन्वेषणमें उससे भी उन्नत श्रृंगों और उससे भी विशाल तराइयोंको खोजकर नहीं निकाल सकते। मैं केवल इतना ही अभिमान कर सकता हूँ कि भारतीय साहित्यके रूप-निगमनके प्रथम परिश्रमके सिलसिलेमें प्राप्त रचनाओंमें आपेक्षिक दृष्टिसे 'ओटक्कुषल' उच्चतर

कोटिकी कृति सिद्ध हुई है। इससे भी उन्नत चिन्तनके शृंग और इससे भी विशाल एवं मनोरंजक अनुभवोंकी उपत्यकाएँ आगेके अन्वेषणोंमें प्राप्त हो जायेंगी, यही मेरी आशा है।

एक ही रत्नकी कई मुखिकाएँ होती हैं न? भारतीय हृदयकी विविध मुखिकाएँ हैं—हमारी समस्त भाषाएँ। हो सकता है राजनैतिक अविवेकके कारण भाषाओंकी विविधता बाधा बन रही हो। मगर आत्माभिव्यक्तिको विचित्रता और भाव-समग्रता प्रदान करनेवाली उपाधिके रूपमें भाषाको देखनेवाले लोगोंके लिए यह वैविध्य अवश्य ही अनुग्रह प्रतीत होगा। रत्नकी मुखिकाएँ प्रकाश-किरणोंको अनेक वर्णोंमें, विविध सान्द्रतामें, प्रतिस्फुरित करती हैं। अगर रत्नकी एक ही मुखिका होती तो क्या यह सम्भव हो जाता? मैं इस सन्दर्भमें एज़रा पाउण्डको याद करता हूँ। उन्होंने स्पष्ट ही कहा है कि कोई भी एक भाषा पूर्ण रूपसे समस्त अनुभव-मण्डलको प्रकाशित नहीं कर सकती। सुमित्रानन्दन पन्त, उमाशंकर जोशी, नज़रुल इस्लाम और जी. शंकर कुरुप एक ही भारतीय साहित्यिक-सांस्कृतिक परम्पराके विभिन्न नाद हैं। विभिन्न भाषाओंके ये नाद भारतके विशाल एवं अगाध अन्त:स्थलके भावोंको समग्र रूपसे अभिव्यक्त करने-में सहायक सिद्ध होते हैं। इस सत्यके अनुभव-गोचर होनेपर ही हम अपने क्षुद्रता-बोध एवं सीमित-दर्शनसे विमुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। उस समय ही हाथी अपने बड़प्पनको पहचानकर मस्तक ऊँचा कर खड़ा रह सकता है।

भारतीय साहित्य परम्परासे मेरा मतलब कुछेक संकेतों एवं सिद्धान्तोंसे नहीं। प्रत्येक शिशिरके बीत जानेपर आगामी वसन्तके आतप-प्रकाशको आत्म-सात् करनेकी प्रेरणा देते हुए नवीन विकासका आरम्भ करनेवाले वृक्षोंमें आमूलाग्र प्रसृत होनेवाला जीवरस है न? साहित्यिक इतिहासके विकासमें भी भाव-भावनाओंके नवोत्थानके लिए, पुनर्जागरणके लिए, नूतन विकासके लिए, नवीन अन्तरिक्ष, प्रकाश एवं कम्पनको आत्मसात् करनेकी प्रेरणा देनेवाला अन्त-र्लीन चेतना-रस विद्यमान है। सजीव सर्गात्मक परम्पराके नामसे मैंने इसी ओर इशारा किया है। वह एक लौहमें ढली हुई सरस्वतीकी प्रतिमा नहीं, बल्कि बोध मण्डलको विकसित करती और स्वयं उसीके साथ विकसित होती रहनेवाली राष्ट्रकी सृजन शक्ति है; निरन्तर विकसित होती रहनेवाली एक सप्राण सरस्वती है। शिशिर-ऋतुमें आत्मरक्षाके लिए मिट्टीके भीतर दुबककर

सो जानेवाले प्राणीकी तरह, विधि-विधानोंके अकाट्य अंगीकारके युगमें वह निश्चल बनेंगी, पर वही सरस्वती-सद्भूतात्मक युगमें, जहाँ सृजनात्मक भावना पल्लवित हो जाती है, मन्द्र मधुर हृदय-स्पन्दके साथ बोध-तलमें संजीव होकर चमक उठती है। मनुष्यका प्रकृतिसे, मनुष्यका प्रकृत्यतीत शक्तिसे, मनुष्यका मनुष्यसे जो रागात्मक सम्बन्ध है, उसीकी बोध-धारा है किसी भी जनताके साहित्यकी मुख्य त्रिवेणी। उस प्रवाहकी कई उपनदियाँ होती हैं, कई शाखाएँ होती हैं, कई गति-परम्पराएँ होती हैं। सब कुछ उसीमें, सब कुछ उसीकी। यही बोध-धारा संस्कृतिकी जीवन सिरा-स्वरूपा त्रिवेणी है। क्या मेरी सर्गात्मक भावना इसके लय और 'रिद्म' के लिए कुछ योगदान करनेमें समर्थ बन गयी है? अल्पमात्र परिमाणमें ही सही, यदि ऐसा है, तभी मैं अपनेको इस अभिनन्दनके योग्य मान सकता हूँ।

इस सन्दर्भमें मुझे एक घटना याद आती है। इस महानगरीमें हमारे महान् आराध्य पुरुष पण्डित जवाहरलाल नेहरू-द्वारा प्रथम राष्ट्रीय कवि-सम्मेलन १९५६ मे उद्घाटित हुआ था। उस दिन श्री दिनकरजीने मेरी कविता हिन्दीमें अनूदित करनेकी उदारता दिखायी थी। उस अनुवादकी श्रोताओंमें जो प्रतिक्रिया हुई, उसका मैं वर्णन नहीं करना चाहता। आत्महत्याकी अनुजाता आत्मप्रशंसाको मैं इस वार्द्धक्यमें क्यों वरण करूँ? हो सकता है भारतके हृदयको उन्मेषपूर्ण करनेवाला, उत्तेजित करनेवाला, उद्ग्रथित करनेवाला कोई प्रातिभ-धर्म और भावलय, उसमें रहा हो। पुण्यात्मा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'ने इस सम्बन्धमें मेरे एक मित्रको लिखा : "समस्त वैरुद्धयोंको आमज्जित करती हुई वह जटा-संकरी बह पड़ी।" काश, वह महामना कविवर आज यहाँ विद्यमान रहते। हो सकता है, 'ओटक्कुषल'में वैसे कुछ भाव-संश्लेषण रहे हों।

आखिर क्या है यह सृजनात्मक भावना? मलयालमके एक छोटे-से ग्रामगीतकी सदा-हरित शाखा मैं आप लोगोंके सामने तोड़कर रख देता हूँ। परिभाषा देनेके विफल परिश्रम से यही अच्छा है। वसन्तागमका प्रारम्भ ही हुआ। देहातकी पगडण्डीसे चलनेवाला एक नवयुवक अकस्मात् रुक गया, किसी वाडीकी सीमापर खिला है, नवल पाटल-वर्ण वाला नन्हा-सा सुमन, अकेला। मालूम पड़ता है वह अभी बोल उठेगा। अपने 'सरस्वती कण्ठाभरण'

में भोजने जिस अभिमान और अहंकारकी चर्चा की है, वही भाव अकस्मात् उद्भासित हो उठा उस एकाकी ग्रामीण तरुणमें। वह पूछ रहा है :

"ओ नन्हें फूल, लाल फूल,
कहाँ गया तू इतने दिन ?
क्या तू गया था
तृच्चंबरमें भजन करने ?"

उस प्रश्नकर्त्ताके बोध-तलमें चेतन और अचेतनकी नाजुक सीमाको डुबा देनेवाला एक भावोद्रेक, अहं का एक ज्वारभाटा, चाहे तात्कालिक ही क्यों न हो, किसने भर दिया ? अगर उस पुष्प की भाषा होती तो वह अवश्य ही पूछ बैठता कि तुम कामुक हो, कवि हो या पागल हो ? यह मेरा शोणिम दल-पुट है, काषाय वस्त्र नहीं। मैं इस मनोहर ग्रामान्तरिक्षमें प्रकाश पीने के लिए आया हूँ। तीर्थयात्रा करके लौट जाना नहीं चाहता। मित्र, तुम्हें भ्रम हो गया है। अच्छा ही हुआ, ऐसा कहकर पुष्पने उस आह्लाद समुज्ज्वल निमिषको फीका और उदास नहीं बनाया। आकस्मिक पुष्प-दर्शनमें अप्रत्याशित रूपसे उद्भूत प्रेरणाने उस नवयुवककी प्रतिभाको प्रोज्ज्वलित कर दिया, स्मृति-रूपोंको अवचेतन मनसे विमोचित किया, वैजात्यमें अन्तर्लीन सदृशताको ढूँढ़ निकाला, तब वह लाल फूल तीर्थयात्रा करके लौट आनेवाला काषायधारी बन गया, पल-भरमें एक नया सौहार्द पैदा हो गया। विचाराधिक वेगसे इस असंकीर्ण अनुभव-को नवीन अर्थवत्त्व एवं नव्य रूपवाले बोधमें सर्गात्मक भावनाने ही संश्लिष्ट कर लिया। इस बोध-चेतनासे अनुप्रविष्ट छन्दोमयी भाषा वैद्युतिका वहन करने-वाली एक सजीव शलाका बन गयी है। 'साहित्य अर्थमय भाषा है' इस वाक्यका आशय अब आपको स्पष्ट हुआ होगा। 'साहित्य अर्थमय भाषा है' इस ग्राम गीत-का 'रिद्म' उस ग्रामीण कविके हृदयकी लय ही है। यहाँ भाषा आनुषंगिक रूपसे ही आशयकी अभिव्यक्तिके लिए माध्यम बनती है। मुख्य रूपमें वह प्रकृतिके साथ स्थापित रागात्मक सम्बन्धमें-से एक नवीन भाव-सत्यको साक्षा-त्कृत करनेवाली भावनाका एक रूपाधान है। कविके भाव-साक्षात्कारकी भाषा उसकी प्रेमिका है। किन्तु समाजके साथ व्यवहार करनेके अवसरमें वही विश्वस्ता चेरी बन जाती है।

इस सरल गीतके द्वारा अनुभव-मण्डलमें लाया गया वह नया सौहृद हृदय-की स्निग्धता और आत्माको निर्वृत्तिसे सिक्त करनेवाला स्वास्थ्य-दायक अनुग्रह है, चाहे इसका और कोई उपयोग ही न रहे, फिर भी भावात्मक जीवनको उसी हैसियतसे सार्थकता प्रदान करनेवाला अनुग्रह है। मगर, इस ग्राम-गीतका एक दूसरा भी चरण है :

"हे तृच्चंवरं के भगवान्,
तुम्हारे श्री चरणों में प्रणाम।"

और एक ध्रुवकुमार बन गया है, यह नन्हा-सा फूल। यह दर्शन प्रश्नकर्त्ताके मनको पलभरमें, तृच्चंवरं के मन्दिरमें पहुँचा देता है।

उस नन्हें-से फूलने प्रष्टाके मनको प्रकाशसे भी अधिक प्रकाशवाली, वेगसे भी अधिक वेगवाली, भावनाके पंख प्रदान कर भगवान्‌के सन्निधानमें पहुँचा दिया है। औत्सुक्यको जगानेवाले उस पुण्य-तीर्थचारीने मानवकी प्रतिभाको आराधिका बना दिया है। यहाँ परिछिन्नता अपरिछिन्नता का इशारा मात्र बन गया है।

इस नन्हें-से गीतको परिपूर्ण कला-सुभगतासे युक्त समग्र शिल्प होनेका गर्व नहीं। फिर भी, कितने फूल झड़ गये उसके बाद? किन्तु अद्‌भुतके अमृत बिन्दुसे सिक्त यह सुमन और यह गीत आज भी जीवित है। सृजनात्मक भावना, नश्वर जीवनमें-से मूल्यवान् भावोंको विमुक्त कर अनश्वर लयका रूप देकर उनको शब्दोंमें अमर कर देती है। सत्यका साक्षात्कार, अभिव्यक्ति और अन-श्वरताका आपादन—सर्वशक्तियुक्त भावनाके प्रमुख धर्म हैं ये तीनों।

मेरे प्रथम गुरु हैं, उस गीतके अज्ञात नामा कवि। इस आचार्यसे जो शिक्षा मैंने पायी है, उसे मैंने ओटक्कुष‍्लमें 'मेरी कविता' शीर्षक लेखमें संगृहीत किया है : "रूप, नाद, रस, गन्ध, स्पर्श, ये सभी इन्द्रियोंको सदा जाग-रूक करते रहते हैं। हमारी इन्द्रियाँ पुलकोद्‌गमकारी कथाएँ ही सदा निवेदित करती हैं। चाहे, वह कथा-कथन कितना ही लम्बा क्यों न हो, फिर भी मानव-की आत्माको वह नीरस प्रतीत नहीं होता। नये-नये अनुभवोंकी अभिव्यक्ति करनेके लिए नयी-नयी इन्द्रियाँ उसे नहीं मिली हैं, इसीमें उसे असंतृप्ति है। इन्द्रियों-द्वारा परिचित होनेवाला यह बाह्य जगत् औत्सुक्य और जिज्ञासाको जगाता रहता है। भावना, भाव, विचार—इन मानसिक व्यापारोंसे, आत्मामें

प्रतिबिम्बित होनेवाले प्रकृतिके प्रतिभासोंका, अनुभव-मण्डलोंका संश्लेषण और प्रकाशनका प्रयत्न करती है मानवकी कल्पनाशील चेतना। कलाका यह स्रोत कुछ लोगोंमें सजीव होकर सदा विस्तृत होता है। और कुछ लोगोंमें हिम-कणिकाके समान चमककर क्षण-भरमें सूख जाता है। शायद, अबतक सूखे बिना प्रवाहित होती रहनेवाली वही चित्तवृत्ति मुझको प्रकृति एवं मानव जीवनपर आस्था रखने और उन्हें प्यार करने तथा उनका आस्वादन करनेका कौतुक प्रदान कर रही है। शायद यही वह आत्मीय केन्द्र है, जहाँसे मेरी कविताका सोता फूटता है। यह कल्पना विज्ञानके विकासमें नहीं सूखती, बल्कि नयी शक्ति के साथ पुष्टिको प्राप्त करती रहती है। चन्द्रमा—के भूगोलको जान लेनेपर, जिस पृष्ठ भागको वह हमें दिखाना नहीं चाहती, उसे पीछे जाकर देख लेनेपर, क्या यह सम्भव है कि वह रातकी रानी हमारे लिए औत्सुक्यका विषय नहीं रह जायगी ? क्या रमणी इस कारणसे तरुणकी दृष्टिमें औत्सुक्यका विषय बन गयी है कि वह उसके शरीरके वैज्ञानिक तथ्यसे अवगत नहीं ?

कलाकी विवेचनाके प्रसंगमें अर्णाल्ड बन्नट-द्वारा उद्धृत उस तरुण प्रेमीका यह वाक्य 'वह एक आश्चर्य है', किसी वैज्ञानिकके लिए भी उतना ही सत्य है। सांक्रमिक होता रहता है, यह विज्ञान भाव-भावनाओंके क्षितिजको विपुल कर रहा है, विस्मयको विस्तृत कर रहा है। जिस अन्तरिक्षके प्राकारमें प्रथम सृष्टिके समयसे लेकर अबतक हम बन्द हैं, उसके गुप्त द्वारको जब सोवियत रूसके एक मानवने बलपूर्वक खोला और बाहर निकला, तो मैं नीले आसमानके शिरस्त्राण धारण कर खड़े रहनेवाले उस नित्य प्रहरी कालके प्रति औत्सुक्यके कारण चिल्ला उठा : "उठा लो वह लोहेकी टोपी, प्रणाम करो अन्तरिक्ष विजयी मानवको।" क्या यह उदात्त कल्पनाकी कोटिमें नहीं आता ?

मैं अपने एक दूसरे आदिकालीन आचार्यका भी परिचय कराकर इस लम्बे भाषणको समाप्त करूँगा। श्रावणके महीनेमें केरल-वासियोंका राष्ट्रीय त्योहार ओणम् होता है। काश, आप लोग केरलके किसी गाँवमें उस समय मेरे साथ पधारते।

हाथमें एक छोटी-सी वीणा लेकर चलनेवाले कृश-शरीर पाणन् (ग्रामीण कवि गायक) का गीत प्रभातमें आपको जगा देगा। प्रभातमें वह जागरण

गीत गाता है। सुलानेवाले और जगानेवाले गीत हमारी भाषामें हैं। वह अनपढ़ परन्तु सुसंस्कृत-चित्त गायक जागरणका गीत गाता है, विश्वात्माको जगानेवाला गीत। उस गीतके चरणोंमें-से कौन-सी कथा धीरे-धीरे अनावृत होती जा रही है? "एक बार परमात्मा नारायण सो गये। देवताओंने जाकर पुकारा! महर्षियोंने स्तुति-गीत गाये, लक्ष्मी देवीने यत्न किया, किन्तु वे जागे नहीं। आसुरी शक्ति बढ़ रही थी। सुख-भोगमें डूबे हुए देवताओंके नाद क्षीण हो रहे थे। आखिर श्रीरंगके सन्त पाणनार आये। उन्होंने डमरू बजाकर गाया। श्री नारायण जाग उठे।" यही उस कहानीका प्रारूप है। कालके मध्य भागसे, यानी वर्तमान कालसे, निर्मित वह डमरू, भूतकालकी गूँजसे युक्त भविष्यके मन्द्र, मधुर नादसे विश्वात्माको जगा देनेवाले पाणनारके गीतोंको प्राणस्पन्द प्रदान कर रहा है। मेरी अन्तरात्मामें-से होकर विकसित हो गयी है इस गुरुवरकी परम्परा। मानवके भीतर विद्यमान ईश्वरको, पुरुषोत्तमको, अन्तःकरणको नवीन मानववाद के लय-तालोंसे जगानेका प्रयत्न ही इस युगके कविका कर्त्तव्य है और यही वह कर रहा है। हमें आसुरी प्राकृतिक शक्तियोंको भी अपार सृजनात्मक जीवनके मन्थनमें अपना सहयोगी बना ही लेना है। जागृत होनेवाला धार्मिक अन्तःकरण, सर्गशक्तियुक्त वह पुरुषोत्तम ही उस मन्थनको पूर्ण कर सकता है। आत्मकला स्वरूपा वाणीमें अजर एवं अमर सर्गशक्ति विद्यमान है।

मित्रो, आप लोगोंके सामने आते समय कविश्रेष्ठ भवभूतिकी यह वाणी मौन रूपमें मेरे अधरों पर विद्यमान थी—

"इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो
नमो वाचं प्रशास्महे
विन्देम देवतां वाचं—
अमृतामात्मनः कलाम्।"

पूज्य कवियोंको प्रणाम। अमृता, आत्मकला-स्वरूपा वाणी हमें प्राप्त हो जाये! भविष्यके कवियोंको भी मेरा अभिवादन! मैं इस प्रार्थनाके साथ आप लोगोंसे विदा ले रहा हूँ कि अनपायिनी आत्मचैतन्यदायिनी सृजनात्मक वाणी उनको प्राप्त हो।

● ●

प्रशस्ति

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रवर्तित एक लाख रुपये राशि का यह साहित्यिक पुरस्कार श्री जी० शंकर कुरुप को उनके मलयालम काव्य-संग्रह 'ओटक्कुष़ल्' के लिए समर्पित है, जिसे पुरस्कार-विधान के अन्तर्गत गठित प्रवर परिषद् ने सन् १९२० से १९५८ के बीच प्रकाशित भारतीय भाषाओं के सर्जनात्मक साहित्य में विधिवत् सर्वश्रेष्ठ निर्णीत और घोषित किया है।

'ओटक्कुष़ल्' का वरण यद्यपि सन् १९६५ के लिए हुआ है, किन्तु इसका प्रकाशन-वर्ष १९५० है। इस दृष्टि से यह कृति कवि के न केवल १९५० तक के सर्वश्रेष्ठ कृतित्व का प्रतिनिधित्व करती है, अपितु उनके अगले १५ वर्षों तक के अधिक समर्थ कृतित्व का पूर्ण परिचय देती है। 'ओटक्कुष़ल्' की कविताओं में भारतीय अद्वैत भावना का साक्ष्य है जिसे कवि ने परम्परागत रहस्यवादी मान्यता के अंगीकरण द्वारा नहीं, प्रकृति के नानारूपों में प्रतिबिम्बित आत्म-तत्त्व की वास्तविक अनुभूति द्वारा प्राप्त किया है। चराचर के साथ तादात्म्य भाव की इस प्रतीति के कारण कवि कुरुप के रूमानी गीति-काव्य में भी एक आध्यात्मिक और नैतिक उदात्त स्वर है।

कवि की काव्य-चेतना ने ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक युगबोध के प्रति सजग भाव रखा है और उत्तरोत्तर विकास पाया है। इस विकास-यात्रा में प्रकृति-प्रेम का स्थान यथार्थ ने, समाजवादी राष्ट्रीय चेतना का स्थान अन्तर्राष्ट्रीय मानवता ने लिया और इन सबकी परिणति आध्यात्मिक विश्वचेतना में हुई जहाँ मानव विराट विश्व की समष्टि से एकतान है; जहाँ मृत्यु भी विकास का चरण होने के कारण वरेण्य है।

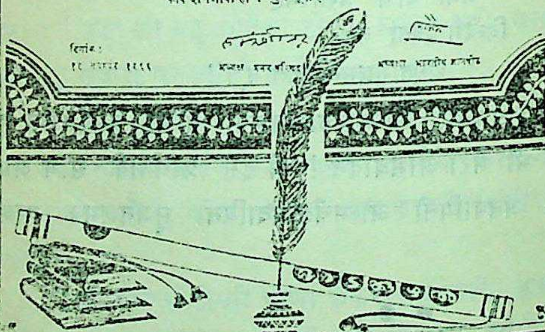
कुरुप बिम्बों और प्रतीकों के कवि हैं। उन्होंने परम्परागत छन्द-विधान और संस्कृत-निष्ठ भाषा को अपनाया, परिमार्जित किया और अपने चिन्तन तथा काव्य प्रतिबिम्बों के अनुरूप उन्हें अभिव्यक्ति की नयी सामर्थ्य से पुष्ट किया। इसीलिए कवि का कृतित्व कथ्य में भी और शैली-शिल्प में भी मलयालम साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि के रूप में ही नहीं, भारतीय साहित्य की एक उपलब्धि के रूप में भी सहज ग्राह्य है।

कवि दीर्घजीवी हों। शुभं भूयात्–

दिनांक:
१९ नवम्बर १९६६

अध्यक्ष प्रवर परिषद्

अध्यक्ष भारतीय ज्ञानपीठ



महाकवि 'जी' शंकर कुरुप को प्रदत्त प्रशस्ति-पत्र

*

१९ नवम्बर १९६६

* *

शुभाशंसाएँ

सागर पारके कृती साहित्यकारोंकी
शुभाशंसाएँ

नोबेल पुरस्कार विजेता
यूनानी महाकवि
जाज सेफरिससे प्राप्त पत्र

George Seferis
Agras 20, Atkins 501
29 May 1966

Dear Mr. Jain,

I thank you for your letter of May 21. Please convey the expression of my gratefulness to Bhartiya Jnanpith for their kind invitation to the assembly of Indian men of letters on the occasion of the presentation of the literary award to the poet G. Shankar Kurup. It is indeed a great privilege and a great honour for me. I deeply feel it and I am proud that such a homage comes to me from India, a country which embodies a fundamental civilisation of mankind.

......I deeply regret that I shall not be able to join you and shake hands with your great poet G.

In our present world it is indeed consolating that there is a country like yours, which is able to nourish such a veneration for her poets.

Yours sincerely
GEORGE SEFERIS

नोबेल पुरस्कार विजेता स्वीडेनी उपन्यासकार पार लैगरक्विस्ट्से प्राप्त पत्र

Vikingayagen 1. Lidingo :
Sweden

25th July 1966.

Mrs. RAMA JAIN, PRESIDENT
BHARATIYA JNANPITH
9, Alipur Park Place
Calcutta-27, India

Dear Mrs. Jain,

Thank you for your letter of July 12. First of all I want to express my sincere gratitude for the great honour that you have bestowed on me by selecting me to deliver the inaugural adress on this solemn occasion. I am sure that the activities of the Jnanpith Institute will prove to be of the greatest value for Indian literature and cultural life in general. Unfortunately, much as I would have liked to visit your country, I must for personal reasons decline your generous invitation.

With best regards,

Sincerely yours
PAR LAGERKVIST

Bertrand Russell Peace Foundation

19 July, 1966

Mrs. RAMA JAIN, PRSIDENT
Bharatiya Jnanpith
9, Alipore Park Place
Calcutta 27, India

Dear Mrs. Jain :

Thank you very much for your letter. I appreciate your invitation but regret I am not able to visit India at this time.

I am sending by separate post for your interest my recent 'Appeal to the American Conscience'.

Yours sincerely,
BERTRAND RUSSELL

युगके बहुचर्चित विचारक कथाकार-नाटककार
ज्याँ पॉल सार्त्रका पत्र

Paris, le 4 Juillet 1966

Madame RAMA JAIN
Bharatiya Jananpith
6, Sardar Patel Marg
NEW DELHI 11.

Jhère Madame,

Je vous remercie beaucoup de votre aimable invitation. C'est avec plaisir que j'aurais inaugure' la ce're'monie en l'honneur du grand poête G. SHANKAR KURUP. Malheureusement, mon programme pour les mois à venir est de'jà trop charge' et je crains qu'il ne me soit impossible de me rendre en Inde. Croyez que je le regrette.

Veuillez accepter, Chère Madame, l'assurance de mes sentiments les meilleurs.

J. P. SARTRE

आधुनिकताके पक्षधर

हाल्डॉर लैक्सनेसके दो शब्द

TELEGRAM

AUG 1966

Address

LT MRS RAMA JAIN

BHARTIYA JNANPITH

9 ALIPORE PARK

PLACE CALCUTTA 27.

====== LT 0945 CDR 136 INCA BRUARLAND 29 OCS 36

THANKING GREAT HONOUR REGRET PROFOUNDLY HEAVY WORKING SCHEDULE AND MANY DUTIES PREVENT ME FROM TRAVELLING TO INDIA ON GREAT OCCASION IN SEPTEMBER RESPECTFULLY == HALLDOR LAXNESS PLUS ==

एक आह्लाद : एक अनुभूति

भारतीय साहित्यमें बोधका पुनर्जागरण और भारतीय
जनताके हृदय-तलमें होनेवाला संश्लेषण ही
पुरस्कार-योजनाके संकल्प और आदर्श हैं।

राजेन्द्र शंकर भट्ट

अवसरकी असाधारणता उससे सम्बद्ध अथवा उसमें सम्मिलित हुए हर व्यक्तिको असाधारण अनुभव देती है। स्वयं अपनी भी किसी उपलब्धिसे मैं इतना आह्लादित कदाचित् ही कभी हुआ होऊँ जितना उस शाम कवि शंकर कुरुपको सन् १९२० से १९५८ के बीच प्रकाशित भारतीय भाषाओंके सृजनात्मक साहित्यमें सर्वश्रेष्ठ घोषित उनके मलयालम काव्य-संग्रह 'ओटक्कुष़ल' के लिए भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित एक लाख रुपयेका साहित्यिक पुरस्कार प्राप्त करते देखकर हुआ था। पुरस्कार समर्पण समारोहकी अध्यक्षता राजस्थानके राज्यपाल डॉ० सम्पूर्णानन्दने की थी, और अपने भाषणका आरम्भ ही उन्होंने इस उद्घोषणाके साथ किया—"मेरा विश्वास है कि आजका उत्सव भारतके वर्तमान इतिहासमें अपने ढंगका निराला है।" उन्होंने बताया कि "अब तक कोई ऐसी योजना नहीं थी, जिसके अनुसार समूचे भारतको एक इकाई मानकर किसी भारतीय लेखकका अखिल भारतीय स्तरपर सम्मान किया जा सकता" और फिर स्वयं पुरस्कार प्राप्तकर्ता भी अभिभूत होकर कह उठा—

> "हो सकता है कि शारदीय सन्ध्याकी वह निराडम्बर सुन्दरता, जिसमें थके हुए पंखवाले गीत अपारताको नापनेके प्रयत्नमें पराजित होनेपर भी अपने किये प्रयत्नमें भरपूर अभिमानके साथ नीड़की ओर लौटते हैं, किसीको आकर्षित न करे, किन्तु अप्रत्याशित रूपसे उसके ललाट-

पर प्रतिपदाके चन्द्रमाकी प्रकाश कला स्वयं प्रत्यक्ष हो जाये तब पथिक और ग्रामीण कृषक उस रजत-रेखाकी तरफ़ नवीन कौतुकके साथ अपनी दृष्टि उठायेंगे और उसे धारण करनेवाली सन्ध्याको पूर्वाधिक उत्सुकताके साथ देखकर बधाइयाँ देंगे। भारतीय ज्ञानपीठ-का यह प्रथम सम्मान-सिन्दूर स्वच्छ शान्त समाधिकी इच्छा करनेवाली मेरी कविताके ललाटपर चमक उठा तो मेरे प्रान्तके निवासियोंके मनोमण्डलमें भी शायद इसी प्रकारकी अनुभूति हुई होगी।"

आह्लादकी अनुभूतिमें भी दो भाव ऐसे थे जो मुझे मेरे छोटेपनसे उठने नहीं दे रहे थे। एक तो यह कि ऐसे कविके कृतित्वका भी बोध एक लाख रुपये राशिके पुरस्कारके माध्यमसे ही हो पाया। धनकी बढ़ती वरिष्ठता ऐसे अवसरोंपर बहुत काटती है, जैसे कि मानदण्डके निर्णयोंके लिए कोई दूसरा माध्यम बचा ही नहीं है। डॉ० सम्पूर्णानन्दने भी तो कहा, जो लोग साहित्य-प्रेमी हैं, उन्होंने यदि श्री कुरुपकी लेखनीका रसास्वादन नहीं भी किया था, तो पुरस्कारकी घोषणाके बाद उसका कुछ-न-कुछ परिचय प्राप्त करनेका निश्चय ही प्रयत्न किया होगा, जैसे कि धन-तुलापर ही हमें अपने सब भाव-अभाव तोलने होंगे। यह सच होगा, लेकिन रुचिकर नहीं हो सकता। इस चिन्तनमें राशिके प्रति अल्पताकी अथवा उसे उपलब्ध करनेवाले संस्थानके प्रति अवज्ञाकी धृष्टता नहीं है, जब कि उस संस्थानकी अध्यक्षाको स्वयं ही इसका भान था कि इस देनेसे ही उन्हें समस्त भारतीय साहित्यकी प्रतिभा और राष्ट्रकी एकताके प्रतिनिधिके साथ-साथ समान मंचपर उपस्थित होनेका अवसर मिलेगा, तो इस सारे प्रयत्नके प्रति साधुवाद तो सहज ही है। लेकिन, अध्यक्षाको भी कहना पड़ा—"महाकवि, देशके साहित्य-कारोंने आपकी वाणी वाग्देवीकी अर्चनाके लिए जो भावांजलि आज प्रस्तुत की है, भारतीय ज्ञानपीठने इस पुरस्कारके रूपमें उस पुष्पहारमें अपनी श्रद्धाका एक सुमन गूँथा है। हाँ, हमारी भावनाओंका विस्तार इतना व्यापक है कि यह फूल उनका प्रतीक ही बन सकता है।"उन्हें और भी समझाना पड़ा—"वास्तवमें यह समारोह और यह अभिनन्दन समूचे देशके साहित्यकारोंकी ओरसे महाकविका अभिनन्दन है। पुरस्कारका निर्णय जिस पद्धतिसे किया गया है उसका दायित्व स्वयं साहित्यकारों और साहित्य-समीक्षकोंने उठाया है व सबके सहयोगसे ही सम्भव हुआ है कि आज हम समूचे भारतीय साहित्यमें-से एक कृतिका चयनकर

अखिल भारतीय साहित्यिक मानदण्डकी स्थापनाकी ओर अग्रसर हुए हैं।" कवि कुरुपने दान-दाताओंको लक्ष्य बनाकर, जैसे समस्त धनपतियोंसे कहा—"उषाकी स्वर्ण सम्पदा उषाके लिए नहीं बल्कि संसारके लावण्य और चैतन्यको बढ़ानेके लिए है।" यह पुरस्कार नहीं, बल्कि इस पुरस्कारके पीछे विद्यमान आदर्श एवं संकल्प ही मुझको आकर्षित कर रहे हैं। मुझे प्रतीत होता है कि भारतीय साहित्यके बोधका पुनर्जागरण एवं भारतीय जनताके हृदय-तलमें होनेवाला संश्लेषण, यही वह संकल्प और आदर्श है।

दूसरा भाव नैसर्गिक-सा है। १९२० से १९५८ के ३८ वर्षोंके बीचकी कोई हिन्दी रचना क्या इस सम्मानके योग्य नहीं थी? मेरा विश्वास है कि भारतके विभिन्न भाषायी अंचलोंमें कईके मनमें ऐसे भाव उठे होंगे, चूँकि अपनी-अपनी-भाषाके प्रति ममत्व हर-एकके मनमें होता ही है; इस निर्णयने सबको एकदम झकझोर दिया, नये मूल्यांकनके लिए विवश किया, जहाँ अपनी सीमाओं-का भान हुआ, वहाँ 'अपारताको नापनेके प्रयत्न'के प्रति अपनेको फिरसे सम-र्पित करनेकी आवश्यकता भी सामने आयी। इसे स्वीकार करना ही होगा कि समस्त भारतीय भाषाओंसे होड़ लगाकर मलयालमने इस वर्ष यह सम्मान प्राप्त किया है। इस वर्षके पुरस्कारकी प्राथमिकता एवं दीर्घ अवधि इसे अवश्य ऐसी असाधरणता देती है जो अगले वर्षोंमें प्राप्त नहीं होगी, लेकिन अगले दो पुरस्कारों की अवधि भी ३४-३५ वर्ष रखी गयी है, और जैसे-जैसे समकालीनता बढ़ेगी एक और तरहकी नवीनता बढ़ती जायेगी। अतएव होड़ आगे हेठी नहीं पड़ेगी, और वह खुली है—'इस बीच दूसरे वर्षके पुरस्कारका कार्य भी इतना आगे बढ़ गया है कि कुछ महीनोंमें ही निर्णय लिया जा सकेगा। तीसरे और चौथे वर्षके पुरस्कारोंके लिए यथानियम कार्यवाही चालू है।' प्रथम पुरस्कारकी अवधि १९२० से १९५८ थी, दूसरेकी १९२५ से १९५९ और तीसरेकी १९३५ से १९६० रखी गयी है। आगे प्रयत्न यह होगा कि इस अवधिको उत्तरोत्तर इतना कम किया जाये कि प्रतिवर्ष केवल पाँच वर्ष पूर्व प्रकाशित कृतियाँ विचाराधीन रहें, 'ताकि समसामयिक साहित्यको उसके मूल्यांकन-द्वारा ऊँचे मानदण्ड तक लाया जा सके और समग्र भारतीय स्तरपर नयी प्रतिभाओंका उदय हो, उन्हें सम्मानित किया जा सके, और प्रतिष्ठित साहित्यकारोंकी नयी कृतियोंके प्रति

अधिक जिज्ञासा जगे। आगेके लिए इससे आशा बँधती है, लेकिन जो हिन्दीको प्राप्त नहीं हुआ उसकी अकुलाहट कम इसलिए होती है कि यह निर्णय निष्पक्षता एवं निष्ठाकी प्रतिष्ठा एक हिन्दी-भाषीकी अध्यक्षतामें प्राप्त कर सका। राजस्थानके राज्यपाल डॉ० सम्पूर्णानन्द ही उस प्रवर परिषद्के अध्यक्ष थे जिसने इस बारेमें अन्तिम निर्णय लिया।

निर्णयकी प्रक्रिया बड़ी जटिल है। प्रत्येक वर्षके पुरस्कारके लिए विचारणीय पुस्तकोंकी प्रकाशन अवधि प्रवर परिषद् निश्चित करती है। तब लगभग दो हज़ार प्रस्ताव-पत्र भेज कर विचारार्थ पुस्तकोंके नाम आमन्त्रित किये जाते हैं। संविधानमें परिगणित १४ भारतीय भाषाओंकी एक-एक परामर्श समिति है, जिसमें उस भाषाके तीन प्रमुख साहित्यिक समीक्षक सदस्य हैं। ये समितियाँ प्रस्ताव-पत्रोंपर विचार तो करती हैं, किन्तु स्वतन्त्र रूपसे निर्णय लेती हैं कि उनकी भाषाकी श्रेष्ठ पुस्तक कौन-सी है। जब १४ भाषाओंकी संस्तुतियाँ आ जाती हैं तो दो-दो, तीन-तीन भाषाओंके वर्ग बनाकर पुस्तकोंपर विचार किया जाता है और प्रत्येक वर्ग एक-एक पुस्तक चुनकर भेजता है। इस प्रकार प्रवर परिषद्के विचारार्थ ५-६ पुस्तकें आ जाती हैं। इन पुस्तकोंका मूल्यांकन फिर दो-तीन प्रकारसे होता है। यह जटिलता स्वाभाविक है, जबकि निर्णय १४ भाषाओंकी अनेक पुस्तकोंके बीच करना हो। प्रवर परिषद्की ओरसे यह प्रसन्नता सब ही प्रकट की गयी कि "इस सारे विधानके अन्तर्गत महाकवि श्री शंकर कुरुपकी पुस्तकका सर्वसम्मतिसे वरण हुआ, हमको यह विश्वास है कि हमने अपने कर्तव्यका पालन करनेमें पूरी निष्ठासे काम लिया है और हमको भगवती सरस्वतीकी कृपासे अपने प्रयासमें सफलता भी मिली है। इसके सबसे बड़े दो प्रमाण हैं। एक तो यह कि जहाँ तक मैं जानता हूँ देशके किसी कोनेसे यह आक्षेप सुननेमें नहीं आया कि हमने किसी प्रकारका पक्षपात दिखलाया, और दूसरी बात यह कि हमारे चयनकी प्रायः प्रशंसा ही सुननेमें आयी है।"

परन्तु हिन्दी क्या समस्त भारतीय भाषाओंको स्थानीयताकी सीमासे उठाने और अपने ही प्रति ममत्वसे उबारनेके लिए ही तो भारतके सांस्कृतिक इतिहासमें इस अनन्य प्रयत्नका प्रारम्भ किया गया है। कवि कुरुपके कथ्य और शैलीके सम्बन्धमें बहुत-कुछ कहा जा चुका है, और कहा जा सकता है, लेकिन जिसने सबसे अधिक उस अवसरपर मनको छुआ उनका यह नाद था "क्या एक

राष्ट्रके रूपमें संगठित भारतका कोई अस्तित्व नहीं है ? क्या भारत अलग-अलग प्रान्तोंका गुच्छा मात्र है ? क्या भारतका अपना नाद नहीं है ? क्या केवल कुछ प्रान्तीय भाषाएँ ही हैं ? क्या भारतकी अपनी विशेष लयताल नहीं ? उसीसे अनुप्राणित होनेवाला भारतीय साहित्य नहीं ? आपसमें रक्त सम्बन्ध, हृदय स्पन्दमें समान लय और विकासके इतिहासमें सम प्रवृत्तियाँ रखनेवाली हमारी भाषाओं और साहित्योंके "कौमनवेल्थ"को वास्तविक रूपमें परिणत करने योग्य शिलादृढ सांस्कृतिक-आधारभूमि नहीं है ? क्यों यह प्रश्न अपनेसे नहीं पूछा जाता ? क्यों इसका असली समाधान खोजा नहीं जाता ? नवीन भारतकी जनताकी रागात्मक एकताका सम्पादन अथवा शैथिल्यका निराकरण अधिकांशतः इसी प्रश्नके उत्तरपर अवलम्बित है। हमारे राष्ट्रका अवचेतन वह है, हमारे दर्शन, भौतिक सत्यान्वेषण तथा जन-जीवनके प्रभात एवं सन्ध्याकी रागात्मक एकता वहीं है। अगर वैज्ञानिक एवं तकनीकी सभ्यता-संस्कृतिको इस सुदृढ़ नींव-पर प्रतिष्ठित करनेका प्रयत्न न किया गया तो अवश्य ही बीच-बीचमें छिद्र और दरारें पड़ जायेंगी। समकालीन घटनाएँ क्या हमे इतना भी नहीं समझायेंगी ?

"एक ही रत्नकी कई मुखिकाएँ होती हैं न ? भारतीय हृदयकी विविध मुखिकाएँ हैं—हमारी समस्त भाषाएँ। हो सकता है राजनैतिक अविवेकके कारण भाषाओंकी विविधता बाधा बन रही हो। मगर आत्माभिव्यक्तिको विचित्रता और भाव-समग्रता प्रदान करनेवाली उपाधिके रूपमें भाषाको देखनेवाले लोगोंके लिए यह वैविध्य अवश्य ही अनुग्रह प्रतीत होगा। रत्नकी मुखिकाएँ प्रकाश-किरणोंको अनेक वर्णोंमें, विविध सान्द्रतामें, प्रतिस्फुरित करती हैं। अगर रत्नकी एक ही मुखिका होती तो क्या यह सम्भव हो जाता ? मैं इस सन्दर्भमें 'एज़रा पाउण्ड' की याद करता हूँ। उन्होंने स्पष्ट ही कहा है कि कोई भी एक भाषा पूर्ण रूपसे समस्त अनुभव मण्डलको प्रकाशित नहीं कर सकती। सुमित्रानन्दन पन्त, उमाशंकर जोशी, नज़रुल और जी० शंकर कुरुप एक ही भारतीय साहित्यिक-संस्कृति परम्पराके विभिन्न नाद हैं। विभिन्न भाषाओंके ये नाद भारतके विशाल एवं अगाध अन्तःस्थलके भावोंको समग्र रूपसे अभिव्यक्त करनेमें सहायक सिद्ध होते हैं। इस सत्यके अनुभव-गोचर होनेपर ही हम अपने क्षुद्रता-बोध एवं सीमित दर्शनसे विमुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। उस समय ही हाथी अपने बड़प्पन

को पहचानकर मस्तक ऊँचा कर खड़ा रह सकता है।"

अस्तु मनमें जो छोटापन उठा था, वह समारोहके समाप्त होते-होते मिट ही नहीं गया, भारतीयताके प्रति आस्था, साहित्यके प्रति श्रद्धा, प्रयत्नके प्रति समादर और भविष्यके प्रति आशाकी नयी-नयी भावनाओंसे भर गया। भारतकी राजधानीके प्रमुख सभास्थल, विज्ञान भवन, से जो यह उपलब्धि लेकर मैं लौटा, उसे कोई छोटी उपलब्धि नहीं कहा जा सकता। और कविके यह बोल अबतक मेरे मनमें गूँज रहे हैं—"मानवके भीतर विद्यमान ईश्वरको; पुरुषोत्तमको, अन्तःकरणको नवीन मानववादके लय-तालोंसे जगानेका प्रयत्न ही इस युगके कविका कर्त्तव्य है और यही वह कर रहा है। हमें आसुरी प्राकृतिक शक्तियोंको भी अपार सृजनात्मक जीवनके मन्थनमें अपना सहयोगी बना ही लेना है। जागृत होनेवाला धार्मिक अन्तःकरण, सर्वशक्तियुक्त यह पुरुषोत्तम ही उस मन्थनको पूर्ण कर सकता है। आत्मकला स्वरूपा वाणीमें अजर एवं अमर सर्वशक्ति विद्यमान है।"



राष्ट्रीय आधुनिक भारतीय साहित्य ?

पुरस्कार-समर्पण समारोहके अवसरपर २० नवम्बर १९६६ को एक महत्त्वपूर्ण अन्तर्भारतीय परिचर्चा भी आयोजित की गयी जिसका विषय था :

क्या राष्ट्रीय आधुनिक भारतीय साहित्यका निर्माण हुआ है ? यदि नहीं, या यत्किंचित् ही हुआ है, तो इसके लिए क्या करना चाहिए ?

इस परिचर्चाका उद्घाटन डॉ० नीहार रंजन रेने किया। डॉ० रेने आधुनिकता, राष्ट्रीयता और भारतीयताका विश्लेषण करते यह आग्रह किया कि एक ऐसे सामान्य विभाजककी हमें खोज करनी होगी जिससे सारे प्रान्तीय साहित्यको इस निकषपर कसा जा सके। कालक्रम और रचनाकी विशेषतापर भी ध्यान रखना आवश्यक होगा और साथ ही भाषापर भी। 'राष्ट्रीय' शब्दको हटाकर भी आधुनिकता और भारतीयताका समुचित मूल्यांकन किया जा सकता है।

विषय-प्रवर्तनके बाद पहले वक्ता थे—श्री आर० आर० दिवाकर, जिनके विचारसे 'नेशनल' शब्दको रखा जा सकता है यदि वह 'इण्डियन' के अर्थमें प्रयुक्त हो। दिवाकरजीने इस बातपर ज़ोर दिया कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय और भारतीयताकी बात करें तो वह कार्य तर्क-संगत होगा। श्री हेम बरुआको विषय बहुत सामासिक लगा। उनके विचारसे सारा भारत कई उपराष्ट्रोंका राष्ट्र है और फ़्यूडल सामाजिकता-ग्रस्त होनेपर भी आगे आनेकी कोशिश कर रहा है। लेखक सार्वभौमिक प्राणी है और वह सीमाओंसे परे भी दूरदर्शी हो सकता है। श्री रामधारी सिंह दिनकरने आधुनिकतामें सापेक्षतासे सहमति प्रकट की। उन्होंने बताया कि समन्वयसे दिशा मिलती है, इस स्वीकृतिके बाद कि विज्ञान जहाँ-जहाँ-तक जिन-जिन चीज़ोंको स्पर्श कर लेता है वही मात्र सत्य है। आधुनिकताके प्रति अगर 'रिज़र्वेशन' है तो उसका भी विश्लेषण होना ज़रूरी है जिससे साहित्यकी वांछित दिशाको खोजा जा सके। प्रोफ़ेसर वी० सीतारमैयाने विषयका विश्लेषण

वैदिक सम्मति ढूँढ़ते किया कि आधुनिकता ओढ़ी हुई नहीं हो सकती है—उसे मौलिक होना चाहिए और तभी वह भारतीय भी हो सकेगी। डॉ० गोपालसिंहने राष्ट्रीयता और भारतीयताको भारतीय लेखकके अनिवार्य तत्त्वके रूपमें देखा, उनके विचार थे कि सारे भारतीय साहित्यको सही परिप्रेक्ष्यमें एक बार समझना आवश्यक है! श्री वात्स्यायनजीने एक लेखकके रूपमें परिचर्चाके प्रश्न अपने-आपसे पूछे और यह कहा कि वे अपनेको लेखक रूपमें भारतीय पाते हैं। उनकी दृष्टिमें लेखक आधुनिक नहीं हैं और जो हैं वे भी पूरी तरह आधुनिक नहीं हैं। श्री का० ना० सुब्रह्मण्यमने इसी विश्लेषणको आगे बढ़ाया और कहा कि लेखकका अपना व्यक्तित्व होता है और उसके व्यक्तित्वके अनुसार ही उसके लिए निकष खोजे जा सकते हैं। श्री बालकृष्ण रावने कहा कि जिन लेखकोंमें भारतीयता शेष है, वह शेष नहीं है—बल्कि वे उसे गंवा नहीं पाये हैं। उनके विचारसे भारतीय राष्ट्रीयता एक समूचा परिवेश है और आधुनिकता एक विकासक्रम। श्री रेने कहा कि 'राष्ट्रीयता' शब्दको लेनेमें राजनीतिक फ़सादका 'डेंजर' है लेकिन श्री रविने उत्तर दिया कि राष्ट्रीयता राजनीतिसे अलग भी हो सकती है। श्री आनन्द चैतन्यने आधुनिकताको महत्त्व-पूर्ण बतलाते कहा कि आधुनिक साहित्यमें विशेषता नहीं है। राष्ट्रीय और भारतीय साहित्यको अनिवार्य रूपसे संस्कृति-सम्पन्न होना चाहिए। डॉक्टर प्रभा-कर माचवेने शिमला-सेमिनारकी बातोंको दुहराया कि प्राचीन लेखकोंकी रचनाएं आधुनिक लेखकोंको कोई सन्दर्भ नहीं देतीं। प्रान्तीय भाषाएँ इतनी दूर-दूर हैं कि उनके साहित्य निकट नहीं आ पाते। व्यावहारिक रूपसे अनुवाद इत्यादिके द्वारा अलग-अलग भाषाओंके नवलेखनको निकट लाया जा सकता है। डॉ० बच्चनने नये लेखकपर विचार प्रकट किये। उन्होंने कहा कि राष्ट्रीयता और भारतीयतासे आधुनिकता अलग होती जा रही है लेकिन वह अलग न हो तो उचित है।

परिचर्चाका समाहार करते सभाध्यक्ष महाकवि कुरुपने विनम्र शब्दोंमें कहा—"मैं आधुनिक युगमें रहता हूँ इसलिए आधुनिक हूँ, भारतकी ज़मीनपर पैदा हुआ हूँ इसलिए भारतीय हूँ और राष्ट्रसे प्रेम करता हूँ इसलिए राष्ट्रीय भी हूँ।"

समारोहमें नगरके सभी साहित्यकार उपस्थित थे। कार्यक्रमका संचालन श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनने किया।

● ●

पुरस्कृत कवि एवं कृति

- वाणी-पुत्र जी० शंकर कुरुप
- श्री 'जी' : पृष्ठभूमि और दृष्टिकोण
- मलयालम काव्यमें कुरुपका अवदान
- जी० शंकर कुरुप : व्यक्तित्व और कृतित्व
- 'ओटक्कुषल' तथा अन्य कृतियाँ
- 'मेरी कविता'
- चार उद्धरण
- कवि कुरुपका गद्य-लेखन
- सूर्यमुखी आगामी कल और उलझनभरा जंगल

वाणी-पुत्र
जी० शंकर कुरुप

जिसने आत्माके भीतर उमड़नेवाले आनन्दके
ज्वार-भाटे में जीवन-सागरको अखण्ड और
सीमाविहीन परिपूर्ण रूपमें देखा।

मध्य केरलके जिस अंचलको आचार्य शंकरने जन्म लेकर धन्य किया वहीं नायत्तोट नामका एक गाँव है। छोटा-सा गाँव है पर सदानीरा पेरियार किनारा छूती बहती है, हरे-हरे खुले मैदान और धानके खेत ओर-छोर फैले हैं, और नारियलोंके झुरमुट मुक्त वायुमें मुक्त भावसे झूमा करते हैं। सामने क्षितिजके रंगोंको अपनी रेखाएँ देती सुहानी पहाड़ियोंकी पाँत है और गाँवकी अँगनाईमें सवेरे-साँझ शंख-नादसे गूँजता एक पुराना देवालय जहाँ पीठिकापर विष्णु और महेश दोनों प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं।

नायत्तोट गाँवके इसी वातावरणमें एक सरल और सहज-जीवी छोटे-से परिवारमें ५ जून १९०१ को कवि जी० शंकर कुरुपका जन्म हुआ। पिताका नाम शंकर वारियर था, माताका लक्ष्मीकुट्टी अम्मा। बचपनमें ही पिताकी आशीष-छाया सिरसे उठ गयी थी। सारी देख-रेख और शिक्षा आदिका दायित्व-भार तब मातुल गोविन्द कुरुपपर आया। कवि जी० शंकर कुरुपके नामका 'जी०' मातुलके ही नामका प्रथमाक्षर है और परिवारमें वंश-परम्परा मातृकुलसे चलनेकी प्रथा होनेके कारण कुलनाम भी 'कुरुप' हुआ। कवि जी० सब तीन भाई हैं और एक बहन।

मातुल गोविन्द कुरुप प्रख्यात ज्योतिषी थे और पुरानी परिपाटीके संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित। धन-सम्पदाके नाम उनके पास अपनी विद्वत्ता थी और एक उदार सौम्यता। बालक शंकर कुरुपके लिए उन्होंने प्रारम्भसे ही चाहा कि वह जल्दीसे जल्दी किसी योग्य हो जाय। इसी विचारसे उन्होंने तीन वर्षकी आयुसे

हो उसे पारम्परिक पद्धतिके अनुसार स्वयं संस्कृतका ज्ञान कराना शुरू कर दिया। कवि जी० आठ वर्षके हुए तब 'अमरकोश' और संस्कृत व्याकरण 'सिद्ध-रूपम्' ही नहीं, छन्दशास्त्र 'श्री रामोदन्तम्' और 'रघुवंश' के भी कितने ही श्लोक कण्ठस्थ कर चुके थे।

संयोगसे उन्हीं दिनों नायत्तोटमें एक प्राथमिक पाठशालाकी स्थापना हुई। बालक कुरुपको वहाँ दूसरे वर्गमें भरती करा दिया गया। मातुलका शिक्षण घरपर चलता, तो भी अब हर क्षणके उनके कठोर अनुशासन और संस्कृत छन्द और व्याकरणको ही कण्ठस्थ करनेकी विवशतामें एक ढील आ गयी थी। उसके भीतर जो प्रकृतिकी सौ-सौ दृश्य-छवियोंको देखकर आप-से-आप एक अरूप और विचित्र-सा आलोडन होता उसका अब उसे ज्ञान होने लगा। दो घटनाएं भी इस कालमें घटीं जो सामान्य थीं पर कवि जी० शंकर कुरुपकी काव्य-चेतनाके प्रथम अंकुर फूटनेमें उनका परोक्ष रूपसे योगदान हुआ। एक थी उस युगके वरिष्ठ मलयालम कवि कुंजी-कुट्टन तम्पुरानका नायत्तोट आना, और दूसरी थी नौकासे तोट्टुवाय देवालय जाते हुए उगते सूर्यके प्रथम स्पर्शसे लाजारुण लह-रियोंके अस्त-व्यस्त नर्तनका दर्शन।

बालक शंकर कुरुप इस दृश्यको देखकर विमोहित हुआ छटपटाता-सा रह गया था। कुछ दिन बाद कक्षामें बैठ-बैठे अकस्मात् उसे मूर्छा आयी और एक सहपाठी कन्धेपर डालकर घर लाया। मित्रके प्रति कृतज्ञतामें कुछ पंक्तियां उसने लिखी। कवि जी० शंकर कुरुपकी यही पहली रचना थी। माता गर्व किया करती थी कि उसका बेटा आठवें महीनेमें पाँव चला; अब मातुल गद्गद हुए सबको बताते कि उनका भागिनेय नवें वर्ष में काव्य-रचना करने लगा! किन्तु सामने बड़ी समस्या आगे पढ़नेकी थी। गाँवकी उस प्राथमिक पाठशालामें प्रबन्ध तीसरे वर्ग तक ही था, और कहीं और भेजनेकी सुविधा करना सरल न था। एक दिन पूजा करने माता देवालय पहुँची तो देखा कि प्रतिमाके आगे आँखें मूंदे बालक शंकर बैठा है और आँसू ढर रहे हैं। माताने आश्वासन दिया और फिर किसी प्रकार व्यवस्था करके उसे सात मील दूर स्थित पेरुम्पावूरके मलयालम मिडिल स्कूल भेजा गया।

पेरुम्पावूरमें हॉस्टेलके जीवनमें एक मुक्त वातावरण तो मिला ही, कवि

शंकरकी अस्फुट प्रतिभाके चेत उठनेमें विशेष प्रेरक-सहायक वहाँका वना फैला वन हुआ जहाँ लता-कुंजोंसे घिरा भगवती वनदेवीका अर्द्धभग्न मन्दिर था और नाना पक्षियोंका कलरव-कूजन अजस्र चलता। प्रकृतिकी उस उन्मुक्त शोभा-राशिसे विद्ध हुए शंकर घण्टों-घण्टों वहाँ रहते और प्रायः ही संस्कृत छन्दोंमें फुटकर श्लोकोंकी रचना करते। सातवीं कक्षाके बाद वह मूवाट्टु-पुषा मलयालम हाई स्कूल आये। यहाँ दो वर्ष रहे, पर ये दो वर्ष उनके निर्माण-विकासकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और एक प्रकारसे दिशा-निर्णायक हुए। विशेष हाथ इसमें उनके दो अध्यापकोंका था: श्री आर० सी० शर्मा और श्री एम० एन० नायर।

श्री शर्मा संस्कृतके अध्यापक थे। अपने इस विद्यार्थीकी सहज काव्य-प्रतिभाको उन्होंने पहचाना और संस्कृतका अधिकाधिक ज्ञान कराते हुए उसे 'रघुवंश' और छन्दशास्त्रकी गहराइयों तक ले गये। साथ ही बंगला साहित्यकी ओर भी उन्होंने उसे प्रवृत्त किया और 'गीतांजलि' का मलयालम अनुवाद करनेमें उसके प्रेरक और सहायक हुए। श्री नायरने, दूसरी ओर, इस तरुण कविकी चेतनाको युगीन भाव-बोधोंसे आलोकित किया। समाजवाद यथार्थमें क्या है और किस रूपमें व्यावहारिक जीवनका इसे अंग बनाया जाये, इसकी दृष्टि कवि कुरुपको सर्वप्रथम श्री नायरने ही दी। कुरुप अब कैशोर्य पार कर रहे थे। आगे और कैसे पढ़ें यह समस्या कठिनतर रूपमें सामने थी। श्री शर्मा और श्री नायरके प्रोत्साहनपर उन्होंने कोचीन राज्यकी 'पण्डित' परीक्षा पास करके अध्यापनकी योग्यता प्राप्त की।

दो वर्ष शंकर कुरुप यहाँ-वहाँ अध्यापन करते रहे। उनके कविता-संग्रह 'साहित्य कौतुकम्'के प्रथम भागकी कुछ कविताएँ इसी कालकी हैं। पर उनके जीवनका यह काल कुछ इस प्रकारका ही है जैसा अपने अभीष्ट स्थानपर पहुँचने तक किसी छोटी-सी जलधाराका इधर-उधर भटकने और राह पानेका होता है। अपना अभीष्ट उन्हें प्राप्त हुआ जब तिरुविल्वामला हाई स्कूलमें वह अध्यापक हुए। नायत्तोटसे और माता और मातुलके वात्सल्यपूर्ण परिवेशसे तिरुविल्वामला ५० मील दूर था। उस युगमें इतनी दूरी बहुत होती थी। घरके पास एक और स्कूलमें अच्छे वेतनका एक स्थान मिलता भी था। किन्तु शंकर कुरुप तिरुविल्वा-

मला ही गये। वहाँ भरपूर प्राकृतिक वैभव था और साथ ही अँगरेज़ी भाषा तथा साहित्यसे परिचित होनेकी सुविधाएँ थीं।

शंकर अब इक्कीसवें वर्षमें थे। अपनी दृष्टि और भावनाओंके आगे विकासके लिए अपेक्षित प्रकाश उन्हें अब प्रचुर मात्रामें यहाँ मिला। एक स्थलपर उन्होंने माना है कि "टैगोर और उमर खैयामके अतिरिक्त अनेक-अनेक अँगरेज़ी कवियों और समालोचकोंके पास सविनय पहुँचनेका मार्ग इस तरह मेरे सामने न खुलता तो 'साहित्य कौतुकम्'की सीमासे कदाचित् मैं आगे न बढ़ पाता। यह नया मार्ग मुझे संस्कृतिकी खानकी ओर ले गया। मेरे कल्पना-क्षितिजको विस्तृत तथा आदर्श-बोधको विकसित करनेमें टैगोरका जितना हाथ था उतना शायद ही किसी औरका रहा हो। उमर खैयाम और हाफ़िज़ आदि फ़ारसी कवियोंसे परिचय होनेपर मुझे लगा कि उनकी कवितामें कल्पनाके परिमार्जनपर नहीं, प्रतिपादनकी रीतिपर विशेष ध्यान दिया गया है। अँगरेज़ी साहित्य मुझे गीतिके आलोकनकी ओर ले गया।"

यह काल प्रथम महायुद्धके तत्काल बादका था। मलयालम साहित्य जगत् अपनी तीन विशिष्ट काव्य-प्रतिभाओंके अवदानसे प्रकाशित और प्रभावित था। कुमारन् आशान्, वल्लतोल नारायण मेनॅन, और उल्लूर परमेश्वर अय्यर। कुमारन् आशान्ने नये काव्य-क्षितिजोंका उद्घाटन किया। वल्लतोल भाषा और शब्द-शक्तिके कुशल प्रयोक्ता थे, उन्होंने नयी संवेदनाएँ जगाते हुए काव्यमें गान्धीवादी विचारधारा संचारित की, और उल्लूरमें क्लैसिक भावना सदा प्रधान रही, मलयालय काव्यको उनसे गीतोंका वैभव प्राप्त हुआ। जी० शंकर कुरुपको इन तीनोंकी भाव-सरिताओंमें अवगाहन करनेका अवसर मिला। पर तीनोंमें अधिक प्रभाव उन दिनों वल्लतोलका ही उनपर आया।

अपनी जो पहली कविता इन्होंने उनके पास भेजी उसे 'आत्मपोषिणी' मासिकमें प्रकाशित किया गया। कवि कुरुपने इस सन्दर्भमें लिखा है, "इस रचनाको पढ़कर महाकविने बड़े प्रेमके साथ एक पत्र लिखा और मुझसे शब्दालंकारकी तड़क-भड़कसे दूर रहनेको कहा। मेरी दूसरी रचनाको पढ़कर उन्होंने रचना तथा पदचयन सम्बन्धी कई विशेष बातें समझायीं। मेरी तीसरी रचना 'घन-मेघकी पाटीपर इन्द्रधनुकी रेखा खींचनेवाली प्रकृतिवाला' को पढ़कर महा-

कविने अभिनन्दनका पत्र भेजा। उससे मेरा साहस बढ़ा। किन्तु अल्प समयके अन्दर ही वल्लतोलने 'आत्मपोषिणी' का सम्पादन छोड़ दिया। उसके बाद कविता-रचनाके रहस्योंको सीखनेके लिए मैं और किसीके पास नहीं जा सका।"

चार वर्ष, १९२१ से १९२५ तक, श्री शंकर कुरुप तिरुविल्वामला रहे। प्रकृतिके प्रति प्रारम्भमें जो एक मुग्धकर सहज आकर्षण भाव था वह इन चार वर्षोंमें अनन्य उपासककी भावनाका रूप ले चला था। इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया है कि प्रकृतिके प्रति मेरा विशेष आकर्षण, उसके साथ मेरा निकट सम्बन्ध, उसके साथ एकाकार हो जानेकी अनुभूति, और प्रकृतिसे परे रहनेवाली चेतना-शक्तिका उसके द्वारा प्राप्त होता आभास, इन सबकी पूँजीके बलपर ही साहित्य-लोकमें प्रवेश करने तथा उसके एक कोनेमें घर करनेमें समर्थ हुआ हूँ।"

तिरुविल्वामलासे श्री कुरुप १९२५ में चालाकुटि हाई स्कूल आ गये। इसी वर्ष 'साहित्य कौतुकम्' का दूसरा भाग प्रकाशित हुआ। कवि अपने पचीसवें वर्षमें था और उसकी काव्य-रचना मलयालम भाषांचलमें व्यापक मान और ख्याति पा चली थी। १९३१ में 'नाले' (आगामीकल) शीर्षक कविताके प्रकाशनने वहाँ साहित्य जगत्में एक हलचल-सी मचा दी थी। बहुतोंने उसे राज-द्रोहात्मक तक कहा, और उसे लेकर महाराजा कॉलेज एर्णाकुलम्में उनके प्राध्यापक पदपर नियुक्तिमें भी एक बारको बाधा आयी। १९३७ से १९५६ में सेवानिवृत्त होनेतक इस कॉलेजमें वह मलयालमके प्राध्यापक रहे। अपनेमें यह एक असामान्य बात थी कि कोई व्यक्ति स्नातक भी न हो और कॉलेजमें प्राध्यापक पदपर कार्य करे। वास्तवमें यह उनकी सर्व-विदित सक्षमताके प्रति सबके विश्वास भावका द्योतक था।

प्राध्यापकीसे अवकाश प्राप्त कर लेनेके उपरान्त वह आकाशवाणीके त्रिवेन्द्रम् केन्द्रमें 'प्रोड्यूसर' रहे; फिर आकाशवाणीके सलाहकार निर्वाचित हुए, और अभी भी हैं। केरल साहित्य परिषद्के संचालनमें उनका सक्रिय योगदान रहा है; वे कई वर्षों तक इसके अध्यक्ष थे। कवि कुरुपने अपने अध्यवसायसे अँगरेज़ी सीखी और बंगला तथा हिन्दीका ज्ञान प्राप्त किया। भाषापर उनका अप्रतिम अधिकार साहित्य-रचनाके क्षेत्रमें ही नहीं उजागर हुआ, वे प्रभावशाली वक्ता भी हैं।

क्या स्थान है आधुनिक मलयालम साहित्यमें कवि श्री जी० शंकर कुरुपका, कितना आदर है उनका अपने साहित्यिक समकालीनोंमें, कैसी हार्दिक सम्मान भावना है नयी पीढ़ीके मनमें उनके प्रति और कितने अधिक वह लोकप्रिय हैं—इस सबका प्रकट आभास साहित्य जगत्को १९५० के जून मासमें मिला जब उनका षष्ठिपूर्ति उत्सव मनाया गया और अपनी-अपनी भावांजलि सबने अर्पित की। तीन वर्ष हुए साहित्य अकादमीने भी उनकी काव्यकृति 'विश्वदर्शनम्' पर उन्हें पुरस्कार-सम्मान प्रदान किया है।

भारतीय ज्ञानपीठके पुरस्कारकी घोषणाके उपरान्त समग्र केरल श्री कुरुपके व्यक्तित्व और कृतित्वसे स्वयंको विशेष रूपसे गौरव-मण्डित मान रहा है। साहित्य-समीक्षकोंमें भी कविके कृतित्वके मूल्यांकनके प्रति विशेष तत्परता आयी है।

श्री 'जी'
पृष्ठभूमि और दृष्टिकोण

अतीतके जड़ मोहसे भारत और भारतके साहित्यका पुनरुत्थान नहीं होगा, वर्तमानमें जीनेके लिए वर्तमानमें आना होगा

एस. गुप्तन नायर

कोई यदि पूछे कि आधुनिक मलयालम काव्य-जगत्‌का शीर्ष-कवि कौन है, तो मेरा निस्सन्दिग्ध उत्तर होगा : जी० शंकर कुरुप। क्योंकि महाकवि आशान्, उल्लूर और वल्लतोल यद्यपि हैं इसी युगके और तीनोंकी कला-साधना तथा देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, फिर भी नये युगका प्रतिनिधित्व वे नहीं करते। नये मूल्य, नये मानदण्ड और नयी दृष्टि देकर हमारी कविताका जिन्होंने कायाकल्प किया है उनमें प्रमुख नाम जी० शंकर कुरुप और चङ्ङ्म्पुषाके ही आयेंगे। चङ्ङ्म्पुषा एक मादक सपनेकी तरह आकर विलीन हो गये; शंकर कुरुप अपने सुनियन्त्रित एवं युक्तियुक्त विचारों तथा समुन्नत भावनाओंके साथ अग्रसर हुए और छाये हुए हैं।

शंकर कुरुपका आगमन मलयालम काव्य जगत्‌में १९२० से कुछ पूर्व हुआ, जब भारतीय वाङ्मयमें नवोन्मेष कालका प्रारम्भ होता है। उस समय तक यहाँके काव्यमें अनेक गम्भीर परिवर्तन आ चुके थे। विशेषकर यह कि अनुप्रास-के बन्धन और शब्दोंके चमत्कार आदि अब श्रेष्ठ काव्यका अनिवार्य गुण नहीं माने जाते थे, उनके स्थानपर अधिक ध्यान भाव-गहनतापर दिया जाने लगा था। रचना-रूपप्रकारकी दृष्टिसे भी, विविधता और अपनी-अपनी विशेषता अब भी थी, पर सब मिलाकर जीवन-दर्शनका स्वर-पुट लिये हुए मधुर भावगीतोंका प्रचलन अधिक था। कवि कुरुपका व्यक्तित्व, इस पृष्ठभूमि-

में, प्रकृति-प्रेमका आधार विशेष लेकर प्रस्फुटित और विकसित हुआ।

महाकवि वल्लतोल तक कुरुपके पूर्ववर्ती अन्य मलयाली कवि भी प्रकृति-गायक थे। प्रकृतिके सौन्दर्य-दर्शनसे जो हृदय तरलित न हो वह कवि ही कैसे बन सकेगा? किन्तु कुरुप इन सबसे भिन्न, प्रकृति-गायक नहीं, उसके प्रेमी भी नहीं, प्रकृतिके उपासक हुए। बादल और बिजलीकी छटा देखकर वह मुग्ध हुए न रह जाते, उसके रचयिताकी कलामयताका ध्यान करते आत्म-विस्मृत-से हो रहते। विराट् प्रकृति और वह एक ही अनादि चैतन्यके अंश हैं, यह ज्ञान उन्हें एक अवर्णनीय अनुभूतिमें पहुँचा देता है। इसी प्रवृत्तिने, मेरे विचारसे उन्हें 'मिस्टिक' बना दिया है। प्रकृतिकी यह उपासना निस्सन्देह एक प्रकारकी योग-साधना है, आस्तिक्य-बोधकी पराकाष्ठा तो है ही। किन्तु, कुरुपके ही शब्दोंमें, "इसका यह अर्थ नहीं कि मैं स्वर्ग-नरक आदिपर तथा व्यक्तिनिष्ठ ईश्वरपर विश्वास करनेवाला हूँ। इन सब प्रपंचोंको मैं पूर्ण एवं सुसंवेद्य सत्यकी अपूर्ण अभिव्यक्ति मात्र समझता हूँ।"

गान्धीवादी प्रभावको प्रचारात्मक स्तरपर नहीं बल्कि गम्भीर चिन्तनके धरातलपर आत्मस्थ करके शंकर कुरुपने राष्ट्रीय चेतनाका शंख-नाद किया था, उनके क्रान्तिबोधमें अपना रक्त उत्सर्गित करनेका सन्देश तो है पर दूसरोंका रक्त बहानेको असद् प्रेरणा नहीं। औपनिषदिक भाव-धाराका संस्कार और परिमार्जन करते हुए कवि कुरुप सांस्कृतिक विरासतको समेटते हुए विकासोन्मुख होते गये हैं। अतीतकी उपलब्धियोंका यशोगान मात्र उनका विषय नहीं रहा, उन उपलब्धियोंका वर्तमानमुखी आकलन और आधुनिक पर्यवेक्षण उन्होंने उचित संश्लेषणके साथ अपनी कविताओंमें उपस्थित किया है। मात्र काव्यात्मक उड़ान नहीं वरन् गम्भीर विशद विवेचन और पुनःप्रस्तुतीकरण उनकी विशेषता है। सांस्कृतिक और ऐतिहासिक शब्दोंका आडम्बर और प्रपंचपूर्ण वाग्जाल औरोंकी तरह उन्होंने नहीं रचा बल्कि इतिहास और संस्कृतिको अपनी दृष्टिसे परख-मथकर उसका नवनीत-सार हमारे सम्मुख उपस्थित किया।

मनुष्यके परिश्रम-प्रस्वेदमें शंकरकी दृढ़ आस्था है। मार्तिक मनुष्यके प्रति गहरी रागात्मक आस्था। मनुष्य होकर पैदा होना, मनुष्य होकर जीना और मनुष्यकी तरह मरना देवत्वसे कम नहीं है, कुरुपका यह विश्वास सर्वत्र

अभिव्यक्त हुआ है। उनके इसी सहज विश्वासका परिणाम है कि उनका प्रकृति उपासक रहस्यवादी हृदय मन्दिर-मजिस्द गिरजा और विहारमें भेद दृष्टिसे नहीं रमा बल्कि एकात्मक होकर रमा। दिव्य चेतनाकी काव्यमयी भावभूमि बड़े ही सहज-सरलरूपमें विकसित होती चली गयी है कुरुपकी वाणी-साधनाके पथमें। जो रहस्यवाद गुफा-गर्भमें या जीवन-समुद्र-ज्वारसे अलग कटकर आता है: वह इस जगत्की दृष्टिसे कहीं-न-कहीं पलायन-सा ही है। कुरुप सदैव इस तथ्यसे अनुशासित रहे, सांसारिक स्पन्दनोंको 'स्थेस्टि स्कॉपिक' शैलीमें उन्होंने हर कोण-से छुआ है और अंकित किया है। 'कृत्रिम साक्षात्कार' से मूर्छित होनेवालों-की तुलनामें सहज जीवनकी आनन्दानुभूति कहीं महत्त्वपूर्ण है।

संक्रान्तिकालीन इस दिशाहारा युगमें कुरुपका काव्य भारतीय सांस्कृतिक चेतना और आधुनिकताके मध्य एक सेतु-सा है। नये मूल्यों की स्वीकृति के साथ-ही-साथ उन मूल्यों का परिहार-परिष्कार वे करते रहे हैं।

साम्यवाद जिस बिन्दुपर आकर मानवता बन जाता है, शंकर कुरुप उसी बिन्दुके समीप पहुँच-से गये हैं। क्लासिकल वाक्-संयम सामासिक अभिव्यञ्जना उनकी कविताकी अपनी निजी विशेषता है। इसी विशिष्ट व्यंजना-भंगीके कारण उनकी कवितामें संकीर्ण राष्ट्रीयताकी गन्ध नहीं आने पायी। मानवतावादी बिन्दु उनके दृष्टि-पथमें रहा और काव्य-त्राटकमें वे उसे भूले नहीं। प्रतीकोंकी दुर्वह बोझिल भाषा उनका आदर्श कभी नहीं बनी। जनसाधारणके सुख-दुःखसे उत्पन्न रागात्मक भावना उनके काव्यका उपकरण बनी और उसी भावनाको उन्होंने विराट्-व्यापक प्रकृतिके सौन्दर्यमें सर्वत्र पाया, देखा और अभिव्यक्त किया। रूढ़िवादिता और अन्धविश्वासको उन्होंने सदैव छिन्नमूल किया है, वे जानते हैं कि अतीतके जड़मोहसे भारतका पुनरुत्थान नहीं होगा, वर्तमानमें जीनेके लिए वर्तमानमें ही आना होगा। अतीतकी खाद वर्तमानके पादपके लिए अपरिहार्य है किन्तु प्राणवायुके लिए उसे अतीतपर आश्रित नहीं रहना होगा।

• •

मलयालम काव्यमें कुरुपका अवदान

एन० वी० कृष्ण वारियर

हमारी काव्यात्मक विरासतके परिप्रेक्ष्यमें कवि कुरुप हमारे बहुत सन्निकट हैं। उनकी नित विकसनशील और ऊर्ध्वमुखी प्रतिभासे हमें भविष्यमें भी बहुत आशाएँ हैं।

बिना किसी अतिशयोक्तिके यह कहा जा सकता है कि मलयालम काव्यके विगत दो दशक 'कुरुप दशक' थे। उनके तीन पूर्ववर्ती कवियोंने मलयालम साहित्यमें जिन प्रतिमानोंका स्थायित्व उपस्थित किया था, जहाँसे काव्यमें ठहराव आ गया था, उस ठहरावको कुरुपने गति दी। इस परम्पराकी मध्य कड़ी हैं चंगम्पुषा कृष्ण पिल्लै। चंगम्पुषा मलयालम काव्य परम्पराकी प्रमुख धाराके रूपमें नहीं बल्कि उससे अलग हटकर थे। वस्तुत: श्री कुरुप ही वल्लतोलकी परम्पराके सच्चे उत्तराधिकारी हैं।

यद्यपि श्री कुरुपने वर्णनात्मक कविताएँ भी लिखी हैं किन्तु उनका अवदान मूलत: गीत और रोमैण्टिक काव्य परम्परामें ही प्रमुख है, गूढ़ चिन्तनपूर्ण कथ्य-भंगीके दर्शन उनकी बादकी कविताओंमें दीख पड़ता है। हमारे रहस्यवादी कवियोंमें उनका स्थान अनामिकापर सर्वप्रथम आता है, इनके बाद आती हैं बालमणि अम्मा जो इस क्षेत्रमें कुरुपकी ऊँचाईको छू सकनेमें समर्थ हुई। प्रकृति कर्मके रहस्योपासक कवियोंमें वही एक मात्र मलयालम कवि हैं और प्रकृतिके कवियोंमें सर्वश्रेष्ठ।

एक गम्भीर और स्थायी देश-प्रेम-भाव उनकी कविताओंमें झलकता है जो वल्लतोलके प्रचलित देशप्रेम-भावकी अगली कड़ी है। विद्रोहभरी साग्निक कविताएँ मलयालममें बहुत-सी लिखी गयीं और भुला दी गयीं किन्तु इसी विषयपर लिखी कुरुपकी कविताएँ आज भी हमारी स्मृतिमें बसी हैं और मेधाको कुरेदती भी हैं। इनके प्रणयगीतोंमें न तो आशान्-जैसी सवेग-तीव्रता है और न चंगम्पुषा-जैसी उच्छल ऐन्द्रिय वैषयिक भोगासक्ति अथच ये अपूर्व अद्वितीय उदात्त और

सजीव हैं। इन आयामोंके बावजूद भी इतना निश्चित है कि शंकर कुरुपका अन्तिम मूल्यांकन उनकी दार्शनिक चिन्तनशील कविताओंके आधारपर ही होगा।

इसके अतिरिक्त उनकी व्यापक भाव-संवेदनात्मकताका क्षितिज भी महत्त्वपूर्ण है, विशेषत: उनकी अभिव्यंजना शैली—जिसके आधारपर वे अपनी संवेदनाको अभिप्रेषित करते हैं। प्राणवान् बिम्बोंमें अपने विचारों और भावनाओंको प्रकट करनेकी उनकी तकनीक बेजोड़ है। दृश्यमान बिम्बोंमें चिन्तन करना जैसे उनका स्वभाव बन गया है। वे पाश्चात्य अर्थोंमें प्रतीकवादी नहीं है परन्तु गुम्फित अनुभवों और विचारोंकी अभिव्यंजनाके लिए उन्होंने एक समीचीन प्रतीक भाषाकी सर्जना की है। मलयालम समीक्षकोंकी दृष्टिमें एषुताच्चनकी परम्पराको वे आगे बढ़ा रहे हैं—इतनी संगीतमयी और संग्रथित भाषा अन्यत्र नहीं दीख पड़ती। पारम्परिक छन्दोंका बहिष्कार न करके विशेष प्रयोजन-दृष्टिसे उन्हें अपनाया है कुरुपने, मलयालमके प्रसिद्ध महाकाव्यात्मक छह चरणों वाले छन्द 'केला'के प्रयोगमें वे एषुताच्चनके बाद सर्वश्रेष्ठ हैं।

कुरुप निश्चयत: आधुनिक हैं किन्तु उनकी आधुनिकता पाश्चात्य योरपकी तरह नहीं है। आत्मविहीन दिशाहारा अनास्था, घुटन, कुण्ठा और छिन्नमूल अमानवीय मानव मूल्योंका उनके काव्यमें कोई स्थान नहीं है। यथार्थकी भावभूमिपर दृढ़तासे खड़े रहकर उन्होंने भारतीय अद्वैत वेदान्त एवं पाश्चात्य मानवतावादी समाजवाद दोनोंसे अपनी कविताके हेतु पोषक तत्त्व ग्रहण किये। अभी भी उनकी दृष्टि परिष्कृत और अनुद्भ्रान्त है यद्यपि कभी-कभी वे लघु किन्तु सामर्थ्यवान् मनुष्योंकी तृष्णातुरता और असाध्य अक्षम्य मूढ़तापर क्रोध भी प्रकट करते हैं। श्री कुरुप दुरन्त आशावादी हैं। काल-प्रवाहके साथ जगत् और जीवनको वे सुन्दरसे सुन्दरतर रूपमें पाते जा रहे हैं।

मेरे लिए यह कहना आडम्बर-मात्र होगा कि मलयालम काव्य परम्पराको श्री कुरुपने महिमा दी है। हमारे काव्याकाशके प्रतिभोज्ज्वल ज्योतिष्क दिशानिर्देशक नक्षत्रके रूपमें वे गत पचीस वर्षोंसे प्रकाशमान हैं। अपनी भावात्मक विरासतका सर्वोच्च और उदात्ततम आस्वाद हम उनके काव्यमें पाते हैं। निस्सन्देह वे भारतके श्रेष्ठतम कवियोंमें हैं।

● ●

जी० शंकर कुरुप
व्यक्तित्व और कृतित्व

कुरुप-जैसा मलयालममें कोई कवि अबतक नहीं हुआ जिसने
नूतन काव्य-शिल्प और भावयोजनाकी दिशा में
इतने प्रयोगोंका सफल विन्यास किया है।

डॉ० वेल्लायणि अर्जुनन

श्री जी० शंकर कुरुप समसामयिक मलयालमके सर्वाधिक प्रसिद्ध कवियोंमें-से हैं। ज्ञानपीठ साहित्यिक पुरस्कारकी घोषणासे कुरुपजी भारतके अद्यतन युगके सर्वश्रेष्ठ कविपदपर आरूढ़ हुए हैं। ज्ञानपीठ पुरस्कारने इस महान् प्रतिभासम्पन्न कविको केरलकी छोटी सीमासे बाहर लाकर विशाल भारतके आँगनमें खड़ा कर दिया है।

कुरुपजीको हम अँगरेज़ीके सुप्रसिद्ध कवि डब्ल्यू० बी० ईट्स, अमेरिकाके राबर्ट फ़ॉस्ट एवं हिन्दीके सुमित्रानन्दन पन्तके समशीर्षस्थ कह सकते हैं। मलयालमके युग-प्रवर्तक कवि, सशक्त गद्यकार, सफल वक्ता और सुयोग्य प्रोफ़ेसरके रूपमें श्री कुरुपजीको केरलमें विशिष्ट स्थान प्राप्त है। कुरुपजीने मलयालम साहित्यकी विभिन्न विधाओंको अपनी सृजनात्मक शक्ति-द्वारा सम्पन्न बनानेका प्रयत्न किया है, परन्तु उन सबमें उनका कवि रूप ही सबसे ऊपर उभरकर आता है। गत चालीस वर्षोंसे कुरुपजी मलयालम साहित्यकी अथक सेवा कर रहे हैं। तीस कविता-संग्रह, तीन गीति-नाटय और चार गद्य-संग्रहोंकी

रचना-द्वारा उन्होंने अपनी मातृभाषाको गौरवान्वित किया है। शंकर कुरुपके समान मलयालममें कोई ऐसा कवि अबतक नहीं हुआ है जिसने नूतन काव्य-शिल्प एवं भावयोजनाकी दिशामें इतने अधिक प्रयोगोंका सफल विन्यास किया। वर्तमान युगके व्यस्त जीवनकी दौड़-धूप, चिन्ता, परेशानी और जटिलतामें जकड़े हुए मनुष्यको जिन मानसिक व्यथाओंने घेर रखा है, उनसे राहत पानेके लिए कुरुपजीकी समर्थ लेखनीने कोशिश की है। उनका विश्वास है कि साहित्यमें युगका घनीभूत इतिहास समाहित होता है। यद्यपि उनकी समस्त रचनाएँ वैयक्तिक अनुभूतियोंको निचोड़ हैं तो भी सम्पूर्ण मानव जीवनकी संवेदनाओंकी अभिव्यक्ति उनमें पा सकते हैं। उनको हम मानव-हृदय-मर्मज्ञ, रस-सिद्ध गायक एवं युगके प्रबुद्ध सन्देशवाहक कह सकते हैं।

एक सौन्दर्योपासक, प्रकृतिके पुजारी, दार्शनिक, देशप्रेमी, मानवप्रेमी, परिवर्तनवादी, प्रतीकवादी, रहस्यवादी, आदर्शवादी और अन्तर्राष्ट्रीयवादीके रूपमें कुरुपजीने साहित्यिक जगत्में ख्याति प्राप्त की है। मलयालमके सुप्रसिद्ध आलोचक प्रो० जोसफ़ मुण्डश्शेरिके शब्दोंमें कुरुपजी अतीत और वर्तमानका सम्बन्ध रखनेवाला एक सुदृढ़ सेतु हैं। उनके काव्य जगत्में पुरानी प्रवृत्तियों तथा नवीन प्रयोगोंका समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने कालिदाससे लेकर एज़रा पाउण्ड एवं टी० एस० एलिएट तकके विभिन्न काव्य-सिद्धान्तोंका प्रयोग किया है, विभिन्न विचारधाराओंके प्रति उनमें आकर्षण-विकर्षण उत्पन्न हुए हैं, एकको छोड़कर दूसरेको ग्रहण किया है परन्तु इन सबमें उनका कलाकार अपनी कलाके प्रति निष्ठावान् रहा है।

श्री कुरुपजी मलयालम और संस्कृतके धुरन्धर विद्वान् हैं। अँगरेज़ी साहित्यके वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स और टेनिसन उनके प्रिय कवि हैं। फ़ारसी साहित्यके हाफ़िज एवं उमर खैय्यामसे उन्हें बड़ी प्रेरणा मिली है। कुरुपजी बंगला और हिन्दी भी थोड़ी-बहुत जानते हैं।

उनके काव्य जीवनको मुख्यत: पाँच भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। इन पाँचों अवस्थाओंमें एक स्वप्नदर्शी प्रकृत्युपासक, संस्कृतिके गायक, प्रगतिवादी, प्रतीकवादी और अध्यात्मवादीके रूपमें उनका उत्तरोत्तर विकास होता गया है। कुरुपके कवि रूपको समझनेके लिए इन दशाओंका संक्षेपमें अवलोकन करना समीचीन

रहेगा ।

केरलका अनन्य प्रकृति सौकुमार्य एवं चिरनूतन हरिताभाकी गोदीमें पलनेके कारण कुरुपजीने प्रकृतिके चतुर चितेरेके रूपमें काव्य-क्षेत्रमें पदार्पण किया । कनक-कुम्भोंको लेकर मलयानिलमें झूमते हुए नारियलके पेड़ोंकी क़तार, अपूर्व लावण्यसे भरे कुसुमित लतानिकुंज, सह्याद्रिसे निकलकर चाँदीकी धाराकी तरह बहनेवाली जंगली नदियाँ, सागरसे संलाप करते हुए नीले झीलोंका समूह और ग्रामोंके सहज सरल सौन्दर्यने मिलकर कुरुपजीकी कवि भावनाको रंगीन बना दिया । उनकी प्रारम्भिक कविताओंमें एक विनम्र प्रकृत्युपासकका रूप दृष्टिगोचर होता है । 'साहित्यकौतुकम्' की एक कविताकी चार पक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—

> नीरन्ध्र नील जलदप्पलकप्पुरत्तु,
> वारन्चिटुन्न वलरविल्लु वरच्चु माच्चुं,
> नेरट्ट केवलकलाल् चिल मिन्नल चेत्तु
> पारं लसिक्कुमसल प्रकृतिक्कु कूप्पां ।

अर्थात् घननील मेघरूपी फलकपर प्रभापूर्ण एवं मनोरम इन्द्रधनुषका चित्र खींचती और मिटाती हुई कमनीय कंकणोंके हिलनेसे सृष्टि करती हुई, उल्लसित, निर्मल देवीको हाथ जोड़ता हूँ ।

'साहित्यकौतुकम्', 'पूजापुष्पम्', 'नवातिथि' आदि आरम्भ कालके काव्य-संग्रहोंमें उनकी प्रकृति-पूजाकी झलक मिलती है । 'महाद्रितुंग श्रृंगद्युतुत्कट दवाग्नि-शिखा कलापम्' जैसे संस्कृत-बहुल समास प्रयोगोंके भारसे झुकी हुई कविताओंका कलापक्ष असाधारण नहीं कहा जा सकता किन्तु भावपक्ष अम्लान एवं अनन्य है । उन कविताओंमें उनकी मौलिक प्रज्ञाके उन्मेषका परिचय प्राप्त होता है । उनकी प्रकृत्युपासना सम्बन्धी कविताएँ हमारी सौन्दर्य-तृष्णाको जगाती हैं और प्रकृतिके नये-नये क्रियाकलापों एवं उसकी असीम सुषमाकी ओर हमारे दिल और दिमाग को खींचती हैं । इनसे आध्यात्मिक प्रेमका पवित्र परिमल निसृत होता है । मन-मोहक इन्द्रधनुषकी मधुराभा, चमेलीकी कलियोंकी तरह बिखरी हुई तारिकाओं

की मुसकराहट, हेमन्तनिशाकी चन्द्रमाकी रजत-ज्योत्स्ना, उदयास्तमय वेलाओं-की सुकुमारता, सैकत तटसे घोर युद्ध करनेवाली सागरतरंगोंकी गम्भीरता, वन-निर्झरोंके वैणिक संगीतालाप आदि गम्भीर, उदात्त तथा मादक दृश्योंमें कुरुपजी स्रष्टाकी असीम सृजन-शक्तिका महारहस्य देख सकते हैं और उनके दर्शन करते समय उनके हृदयमें भक्तिकी स्रोतस्विनी फूट निकलती है। पुष्प-गीतम्, सागर संगीतम्, सांध्यतारं, वृन्दावनं, प्रभातवातम्, मेघगीतम् आदि कविताएँ इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

जी० शंकर कुरुप मलयालममें प्रतीकवादीके प्रबल प्रणेताके रूपमें बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। उनका मत है कि प्रतीक रहित कविता कभी आकर्षक नहीं हो सकती। इसलिए सब तरहके विषयोंके चित्रणमें विभिन्न प्रतीकोंका निरंकुश प्रयोग करना ही उनकी एक विशेष प्रवृत्ति बन गयी। उन्होंने रसायनशास्त्र, वन-स्पतिशास्त्र, गणितशास्त्र, पुराण, इतिहास, आदि विषयोंसे लिये हुए असाधारण प्रतीकोंको अपनी कविताओंमें प्रयुक्त किया है। अतः उनकी कविताएँ कभी-कभी दुरूह एवं कठिन भी हो जाया करती हैं। प्रो० जोसफ़ मुण्डश्शेरि, के० दामोदरन्, सुकुमार अषीकोड आदि मलयालमके तीव्रवादी आलोचकोंने कुरुपके प्रतीकवाद-पर घोर आक्षेप लगाये हैं। फ्रेंच साहित्यके मलार्मे, जर्मनके कॉणफील्ड, फ़ारसीके रूमी और जलालुद्दीन, बंगलाके रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदिके प्रतीकोंसे मिलते-जुलते हैं तो भी कुरुपजीके प्रतीक अपने ढंगके निराले हैं। 'ओटक्कुष़ल' (बाँसुरी), प्रभातवातम् (सुबहकी हवा), मेघगीतम्, भृंगगीति, एण्टेवेलि (मेरी शादी), अन्वेषणम्, नक्षत्रगीतम्, अलक्कुकारि (धोबिन), आदायम् (लाभ), ओरेतीय (एक ही आग), नाले (कल), सूर्यकान्ति (सूरजमुखी), निमिषम् (निमिष), और कूणुकल् (कुकुरमुत्ते) कुरुपजीकी अनश्वर प्रतीकवादी कविताएँ हैं।

कबीर, नानक, तुकाराम, त्यागराजन, पुरन्दरदास, आदि साधुगणोंकी रहस्यवादी रचनाओंका सम्यक् प्रभाव कुरुपजीकी कविताओंपर पड़ा है। विल्यम ब्लेक, जेराल्ड मानली, हापकिन्स, येट्स आदि प्रसिद्ध पाश्चात्य कवियोंके रहस्यवाद-की झलक भी कुरुपजीकी कविताओंमें मिलती है। जो अमेय अदृश्य शक्ति तृणाग्रसे लेकर शृंगाग्र तक, छोटे जलकणसे लेकर महासागर तक सर्वत्र परिलक्षित होती

है, उसकी उदात्त एवं विराट् भाव-भंगिमा गम्भीर संकीर्तन कुरुपजीकी रहस्य-वादी कविताओंमें मिलता है। अन्वेषणम्, निशागीतम्, साक्षात्कारम्, पंकजगीतम् आदि कविताओंमें उनके रहस्यवादकी प्रक्रियाएँ प्रकट होती हैं। इनमें अनेकत्वमें एकत्व, अद्वैतवाद तथा उससे उत्पन्न दिव्यानुभूतिकी सौम्य दीप्ति वर्तमान है।

कुरुपजीको साम्यवादसे बहुत लगाव है। मज़दूरों और किसानोंकी आर्थिक विषमताओंपर उन्होंने कविताएँ लिखी हैं। जनमानसमें आन्दोलनकी लहरें पैदा करनेके लिए अपनी कविताओं-द्वारा उन्होंने प्रयास किया है। उनकी प्रगतिवादी कविताओंमें समसामयिक राजनीतिक हलचलोंका भी स्वर सुनाई पड़ता है। चेंकतिरुकल (लालकिरणें) कविता संग्रहकी सभी कविताओंमें हम प्रगतिवादी कुरुपजीको देखते हैं। नाले, आदायम्, तारकल् तम्मिल्, कोच्चम्मा, कटलट्टकल आदि कविताओंमें उनके प्रगतिवादका प्रबल स्वर सुनाई पड़ता है। किन्तु उल्लेखनीय बात है कि बादमें शंकर कुरुपने मार्क्सवादको हमेशाके लिए छोड़ दिया। इस घटनाको उनके काव्य-जीवनका एक दशा-सन्धि मान सकते हैं।

जी० शंकर कुरुप एक आदर्शवादी कलाकार हैं। उनका आदर्शवाद राष्ट्रीयताकी चारदीवारीके बाहर निकलकर अन्तर्राष्ट्रीयताके विशाल आँगन तक फैला जाता है। विश्वनागरिकता और विश्वमानवताका आह्वान तथा साम्यवादका शंखनाद इन कविताओंमें गूँज उठता है। भारतकी सांस्कृतिक एवं दार्शनिक चेतनाको संसारमें चारों ओर फैलाकर विश्वशान्ति तथा सौभ्रात्रकी सुरभिसे हर देशको पवित्र बना देनेके लिए उन्होंने उद्बोधन किया है। एक निःस्वार्थ विश्व-प्रेमीका मार्मिक स्वर उनकी समस्त रचनाओंमें सुनाई देता है।

कुरुपजीका 'विश्वदर्शनम्' नामक काव्य-ग्रन्थ बिलकुल नये ढंगका एक काव्य-संग्रह है। इसके द्वारा उन्होंने नयी कविताके कई अनगढ़ स्तरोंको छूकर उन्हें भाव-वैभव, विचार-गौरव, शिल्प-संयम तथा अभिव्यंजनाका सुघारपन प्रदान किया है। इस संग्रहकी सबसे उदात्त कविता 'विश्वदर्शनम्' है। भीतिकर-मनोहर समग्र विश्वको अपने पुत्र बाल कृष्णके मुँहमें देखकर जैसे माँ यशोदाने भयचकित हो मुँह बन्द करनेकी प्रार्थना की, अनन्त विश्वकी गम्भीरताका दर्शन कर कवि वैसे ही घबराता नहीं है। वह स्रष्टासे निवेदन करता है कि नाना भावोंसे रमणीय

इस विश्व-काव्यकी अनुपम सुषमा पानेके लिए वह सदा विह्वल है, अतः यह महाकाव्य हमेशा खुला रहे । 'विश्वदर्शनम्'में कुरुपजीकी प्रतिभाका चरम उत्कर्ष हम पा सकते हैं ।

शंकर कुरुपका पुरस्कृत ग्रन्थ 'ओटक्कुष़ल' साठ कविताओंका एक प्रतिनिधि संग्रह है । वस्तुतः यह ग्रन्थ आधुनिक मलयालम कविताके विकासका प्रतीक है। इसकी विशेषता यह है कि भारतकी पवित्र मिट्टीकी सुगन्ध इसकी प्रत्येक कविता से निसृत होती है । युग-युगोंसे चली आनेवाली भारतीय संस्कृतिके पुनर्जागरणकी बाँसुरी इन कविताओंमें मुखरित होती है ।

'ओटक्कुष़ल'की कविताओंमें वस्तुतः हम धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक महत्त्वकी झाँकी पा सकते हैं । प्राचीन भारतके त्योहार, वीरों और योद्धाओंके साहस और त्याग तथा महान् व्यक्तियोंके आदर्श-भरे जीवनकी गाथाएँ उनकी कविताओंमें मुखरित होती हैं । तिरुनावा, अषिमुखत्तु, भारत सन्देशम्, नाय्कन, कलविलक्कु, चरित्रत्तिन्टे, किनावुकल, भारतेन्दु जैसी कविताएं उनकी सांस्कृतिक भावनाके उदात्त उदाहरण हैं ।

सुप्रसिद्ध पाश्चात्य आलोचक वाल्टर पेय्टरने उत्तम साहित्य और महान् साहित्य (great literature and grand literature) के नामसे साहित्य-का विभाजन किया है । शंकर कुरुपकी कविता महान् साहित्यके अन्तर्गत आती है । जिस उत्कृष्ट रचना पद्धतिको प्रो० सौयिट्सबरीने महाशैली (grand style) कहा है वह कुरुपकी कविताओंमें हम पा सकते हैं । यह निर्विवाद है कि अँगरेजी, फ्रेंच, आदि पाश्चात्य भाषाओंमें उनकी कविताओंका अनुवाद किया जाय तो श्री कुरुपको अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिलेगी ।

● ●

हमारी प्रकाशित प्रमुख पुस्तकें

• शोध-प्रबन्ध •

१. राहुल सांकृत्यायन का कथा साहित्य : डॉ० प्रभाशंकर मिश्र — १५.००
२. हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास : डॉ० सुरेश सिनहा — २०.००
३. मुक्तक काव्य परम्परा और बिहारी (द्वितीय संस्करण) : २१००)का डालमिया पुरस्कार प्राप्त : डॉ० रामसागर त्रिपाठी — १५.००
४. बंगला पर हिन्दी का प्रभाव : डॉ० ब्रह्मानन्द — १५.००
५. हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास : डॉ० सुरेश सिनहा — २०.००
६. आधुनिक हिन्दी काव्य में वात्सल्य रस : डॉ० श्रीनिवास शर्मा — १२.५०
७. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना : डॉ० सुरेश सिनहा — १२.५०
८. जायसी की बिम्ब योजना : डॉ० सुधा सक्सेना — १५.००
९. प्रेमचन्द के साहित्य-सिद्धान्त : प्रो० नरेन्द्र कोहली — १०.००
१०. कामायनी की भाषा : प्रो० रमेशचन्द्र गुप्त — ७.५०

• साहित्यिक •

११. जायसीका पद्मावत : काव्य और दर्शन : डॉ० त्रिगुणायत — १५.००
१२. बृहत् साहित्यिक निबन्ध : डॉ० गुप्त एवं डॉ० त्रिपाठी — १५.००
१३. उपन्यासकार प्रेमचन्द : सं० डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त — १२.५०
१४. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त : डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त — १०.००
१५. भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त : डॉ० कृष्णदेव झारी — ८.००
१६. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : प्रो० शिवकुमार शर्मा — ८.००

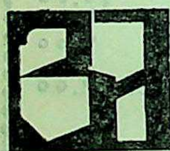
• सटीक काव्य •

१७. कबीर ग्रन्थावली (द्वितीय संस्करण) : प्रो० पुष्पपालसिंह — १०.००
१८. जायसी ग्रन्थावली : डॉ० श्रीनिवास शर्मा — १०.००
१९. विद्यापति पदावली (द्वितीय संस्करण) : प्रो० कृष्णदेव शर्मा — ५.००
२०. मीराबाई पदावली (तृतीय संस्करण) : प्रो० देशराजसिंह भाटी — ५.००

अशोक प्रकाशन

नयी सड़क, दिल्ली-६

ह
मा
रा
प्र
का
श
की
य
अ
भि
या
न



सभी विधाओं में हिन्दी साहित्य की महान् उपलब्धियाँ

उपन्यास

● **आधा गाँव : राही मासूम रज़ा**

गाँव की सामन्ती पृष्ठभूमि पर जीवन्त और यथार्थवादी महत्त्वपूर्ण कथा-कृति, जिसमें विभाजन काल की महान् मानवीय गाथा अंकित है। १०.५०

● **बैसाखियों वाली इमारत : रमेश बक्षी**

नितान्त अनूठी भाव-भूमि पर आधारित प्रयोगशील उपन्यास। ५.००

कहानी

● **फ़ौलाद का आकाश : मोहन राकेश**

'नयी कहानी के सशक्त स्तम्भ' की इस दौर की सभी प्रसिद्ध और बहुचर्चित नयी कहानियों का संकलन। ४.००

● **सांस का दरिया : कमलेश्वर**

'नयी कहानी : नये संकलन' के अन्तर्गत नयी कहानी के विशिष्ट प्रवक्ता की वे सभी नयी कहानियाँ जो हिन्दी कहानी-क्षेत्रमें तहलका मचा चुकी हैं। ४.००

कविता

● **एक सूनी नाव : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना**

नयी पीढ़ी के अग्रगण्य कवि की नवीनतम कविताओं का संकलन। ५.००

● **स्वर परिवेश के··· : किरण जैन**

कविता में एक नितान्त नया नाम : श्री गिरिजाकुमार माथुर-द्वारा परिचय और परिचयन। ४.००

नाटक

● **ऊँचा पर्वत : गहरा सागर : विष्णु प्रभाकर**

हिन्दी के यशस्वी कथाकार तथा नाटककार के श्रेष्ठतम एकांकियों का संकलन। ५.५०

हिन्दी के
पक्षों की

आज़ादी
विवेचन :

हिन्दी स
पहलुओं
आन्दोलन

हिन्दी के
प्रकृति औ

अ

एक और साहसिक क़दम • नवम्बर १९६६ •

आलोचना

नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ •

गिरिजाकुमार माथुर

हिन्दी के शीर्षस्थ कवि-द्वारा आधुनिक काव्य के विविध पक्षों की विवेचनात्मक समीक्षा । ६.००

अधूरे साक्षात्कार •

नेमिचन्द्र जैन

आज़ादी के बाद के सभी महत्त्वपूर्ण उपन्यासों का सर्वांगीण विवेचन : आलोचना साहित्य में एक नयी उपलब्धि । ८.००

नयी कहानी की भूमिका •

कमलेश्वर

हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक चर्चित 'नयी कहानी' के सभी पहलुओं की मीमांसा—नयी कहानी और इस साहित्यिक आन्दोलन के जन्मदाताओं में एक—की क़लम से । ८.००

आलोचना : प्रकृति और परिवेश •

डॉ० तारकनाथ बाली

हिन्दी के विशिष्ट आलोचक-द्वारा हिन्दी-आलोचना की प्रकृति और स्वरूप की एक ऐतिहासिक विवेचना । १२.००

अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०

२।३६ अन्सारी रोड

दरियागंज, दिल्ली-६

'ओटक्कुष़ल' तथा अन्य कृतियाँ

प्रस्तुत अभिनन्दित काव्यकृति 'ओटक्कुष़ल'का प्रथम संस्करण १९५० में प्रकाशित हुआ था। इसके मूल रूपमें साठ कविताएँ हैं; वर्तमान रूपमें अट्ठावन। इन कविताओंके माध्यमसे कविके विभिन्न रूप-भावोंका परिचय मिलता है। कवि प्रकृति और उसकी शिव-सुन्दर रहस्यमयताकी अनुभूतिमें, प्रकृतिके कण-कण और क्षण-क्षणकी मुग्धकर-मादक सौन्दर्य-छविमें परा-चेतनशक्तिका आभास प्राप्त करता है। उसे जैसे साक्षात् प्रतीति होती है कि विराट् प्रकृति और वह स्वयं एक अनादि और अनन्त चैतन्यके अंश हैं। 'ओटक्कुष़ल'में कविकी इस भावाकुल ज्ञानावस्थाको व्यक्त करनेवाली चुनी-चुनी अनेक कविताएँ संग्रहीत हैं।

उसकी कई उत्कृष्ट प्रेम-कविताएँ भी इसमें आयी हैं। किन्तु यह प्रेम भी नर-नारीका नहीं, पति-पत्नीका भी नहीं, प्रकृति और निखिल ब्रह्म-चेतनाका है, जिसका यह सम्पूर्ण सृष्टिचक्र प्रतिफलन है, परिणाम है। ऊपर-ऊपरसे देखनेपर इन कविताओंमें सहज भावनाओंकी सरल अभिव्यक्ति मात्र दिखाई पड़ेगी, पर जिज्ञासु भावसे भाषाकी परतें उघारें तो शब्द प्रतीक बन उठते हैं और इस 'नेचर मिस्टिक'के उसी भावुक ज्ञान-बोधकी मधुर मोहक रश्मियाँ स्फुटित होती मिलती हैं। संग्रहमें कुछ काव्य-कथाएँ भी संकलित हुई हैं और कई अत्यन्त शक्तिशाली ऐसी कविताएँ भी जो कविकी देश और राष्ट्रीयताके प्रति गहरी भावनाओंकी द्योतक हैं। किन्तु ऊपरसे विषय कुछ भी हो, कविका

मूल स्वर घूम-फिरकर सब कहीं वही आ जाता है : प्रकृतिके शिव-सुन्दर स्वरूपके साथ आनन्दमय एकाकारताको भावानुभूति और उस अनुभूतिकी अवस्थामें चरम सत्यके आभासका बोध-दर्शन ।

महाकवि जी शंकर कुरुपकी सब सैंतीस कृतियाँ प्रकाशित हैं : तीस मौलिक और सात अनुवाद । मौलिक कृतियोंमें बीस कविता-संग्रह हैं, चार निबन्ध-संग्रह, तीन नाटक, तीन बाल-साहित्य विषयक । इनकी शीर्षक-सूची है—

कविता-संग्रह :

साहित्य कौतुकम् : चार खण्ड	१९२३-२९	सूर्यकान्ति	१९३२
नवातिथि	१९३५	पूजापुष्पम्	१९४४
निमिषम्	१९४५	चेंकतिरुकल्	१९४५
मुत्तुकल्	१९४६	वनगायकन्	१९४७
इतलुकल्	१९४८	ओटक्कुप़ल्	१९५०
पथिकण्टे पाट्टु	१९५१	अन्तर्दाह	१९५३
वेलिल्लप्परवकल्	११५५	विश्वदर्शनम्	१९६०
पाथेयम्	१९६१	जीवनसंगीतम्	१९६४
मूतरुवियुम् ओरु पुष्पुम्	१९६४		

निबन्ध-संग्रह :

गद्योपहारम्	१९४०	लेखमाल	१९४३
राक्कुयिलुकल्		मुत्तुम् चिप्पियुम्	१९५९

नाटक :

इरुट्टिनु मुन्पु	१९३५	सन्ध्य	१९४४
आगस्ट १५	१९५६		

बाल-साहित्य :

इलम् चुण्टुकल्	१९५४	ओलप्पीप्पि	१९५८
राधाराणि			

अनुवादोंमें तीन बंगलासे हैं, दो संस्कृतसे, एक अँगरेज़ीके माध्यमसे फ़ारसी कृतिका, और एक और इसी माध्यमसे दो फ्रेंच कृतियोंका। बंगला कृतियाँ हैं: गीतांजलि, एकोत्तरशती, टागोर; संस्कृतकी हैं, मध्यम व्यायोग, मेघदूत; फ़ारसी की 'रूबाइयात-ए-उमर खैयाम', और फ्रेंच कृतियाँ अँगरेज़ी रूपमें 'द ओल्ड मैन हू इज़ नॉट वॉण्ट टु डाइ' तथा 'द चाइल्ड व्हिच इज़ नॉट वॉण्ट टु बी बॉर्न'।

कवि कुरुपकी प्रतिभा निरन्तर विकासशील रही है। उनकी सर्जनात्मकता भी अधिकाधिक परिपक्वता और दार्शनिकताकी ओर उन्मुख रही है। इसीलिए जहाँ 'ओटक्कुष़ल'में संग्रहीत कविताएँ उनकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कविताओंका प्रतिनिधित्व करती हैं, उनकी परवर्ती कविताएँ, जो १९५० से १९६४ के बीच लिखी गयी हैं, उनके अधिक प्रौढ़ और गम्भीर चिन्तनका परिचय देती हैं। इसे ही दृष्टिगत रखते 'ओटक्कुष़ल्' का हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित करनेके साथ-साथ, कुछ परवर्ती रचनाओंके हिन्दी अनुवादका एक संग्रह भी, 'एक और नचिकेता' शीर्षकसे, पुरस्कार-समर्पण समारोहके अवसरपर ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित किया गया है।

● ●

नववर्ष पर राजकमल की भेंट

कविश्री सुमित्रानन्दन पन्त
की नवीनतम
कविताओं का संग्रह

किरण वीणा

मूल्य लगभग पाँच रुपये



राजकमल प्रकाशन

८ फ़ैज़ बाज़ार, दिल्ली-६
::
साइन्स कॉलेज के सामने, पटना-६

मेरी कविता

इसमें एक अधीर हृदयका स्पन्दन है जो मनुष्यकी
महत्तामें गर्व करता है; जिसमें सुन्दर भविष्यके
स्वप्नोंका उत्साह है; जो मनुष्यताका मूल्य
गिरता देखकर दुःखित है, और जो
सौन्दर्यबोधको मनुष्य-जीवन
के लिए मृतसंजीवनी मन्त्र
समझता है !

जी० शंकर कुरुप

प्रकृतिकी कनिष्ठा सन्तान होनेके कारण विश्वकी अपेक्षा मनुष्य आयुमें बहुत छोटा है। आज भी उसका जीवन शिशु-सहज कौतुकोंसे भरा है। रूप, नाद, रस, गन्ध तथा स्पर्शके द्वारा उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ निरन्तर जागरूक हैं। ये ज्ञाने-न्द्रियाँ हृदय तथा आत्माको मोहित करनेवाला वृत्तान्त मनुष्यको सदा सुनाती आयी हैं। यह वृत्तान्त कितना भी लम्बा क्यों न हो, मनुष्यकी आत्माको वह कभी बुरा नहीं लगता। आत्माको तो इस बातका दुःख रहता है कि नयी अनु-भूतियोंके वृत्तान्त लानेके लिए मनुष्यके पास नयी इन्द्रियाँ नहीं हैं। आत्मामें इस कारण एक प्रकारकी असंतृप्ति बनी रहती है।

ज्ञानेन्द्रियों-द्वारा अवगत होनेवाला विश्व मनुष्यके हृदयमें एक कौतुकपूर्ण जिज्ञासा जाग्रत करता है। जब कल्पना, चिन्तन आदि मानसिक प्रक्रियाओं-द्वारा प्रकृतिका प्रतिबिम्ब आत्मापर पड़ता होता है, तब मनुष्य हृदयमें जाग्रत जिज्ञासा, उस प्रतिबिम्बका विश्लेषण करने तथा उसको संचय करके एक कथावस्तुके रूपमें प्रकट करनेके लिए तत्पर हो जाती है। विश्व, विज्ञान तथा कलाका यह सजीव स्रोत किसीके भीतर निरन्तर बहता रहता है तो किसीमें तुषार कणकी तरह

प्रकट होकर विलीन हो जाता है। मेरी आत्माके किसी उच्च स्तरपर आज भी बहनेवाले उस स्रोतने ही कदाचित् मेरे हृदयमें प्रकृति एवं मनुष्य-जीवनको ध्यानसे देखने तथा उनका अध्ययन व आस्वादन करनेका कौतुक उत्पन्न किया हो। यह आत्मीयताका भाव ही मेरी अकिंचन तथा अपूर्ण कविताका उद्गम है।

कुछ लोगोंका मन्तव्य है कि वैज्ञानिक अभिज्ञता बढ़नेके साथ विलक्षणता कम होने लगती है तथा चिन्तनशक्तिके प्रहारसे कल्पनाका प्रासाद ढह जाता है। मुझे यह मान्यता ठीक नहीं लगती। सूर्य-मण्डलके सम्बन्धमें मनुष्यकी वैज्ञानिक जानकारी बहुत बढ़ गयी है। क्या उस जानकारीके कारण पृथ्वी तथा ग्रह मनुष्यकी दृष्टिमें और भी अधिक रम्य नहीं बने हैं? अपने प्रसन्न मुखपर प्रेमकी ऊष्मता लिये अनन्त आकाशसे कभी झुककर और कभी सीधे निर्निमेष देखनेवाला नित्य प्रेमी सूर्य, तथा ऋतु-परिवर्तनकी विचित्रता लिये अपनी तिमिर केशराशिको पीठ-पर फैलाये विविध रंगोंमें सजकर विविध शब्दोंके साथ स्वयं घूम-घूमकर नृत्य करनेवाली पृथ्वी—इन सबके भव्य काल्पनिक चित्र मेरे लिए आज भी दर्शनीय हैं। एक क्षुद्र 'सेल' रमणीय सुन्दरी शकुन्तलाके रूपमें विकसित हो जाता है। क्या इस वैज्ञानिक सत्यमें कल्पनाकी उडानके लिए स्थान नहीं है? वास्तवमें विज्ञानसे कल्पनाका क्षेत्र विस्तृत होता है और कौतुक बढ़ता है। बचपनके दिनोंकी बात है। इडव[1] मासकी अँधेरी रातोंमें जब मैं अकेला अपने छोटे घरके बरामदेमें बैठकर, घने बादलोंकी गोदसे निकलकर उसीमें छिप जानेवाली बिजलीको देखता तो न जाने क्यों, उछल पडता। आज मैं बिजलीसे अनभिज्ञ नहीं हूँ। वह मेरे परिवारका ही अंग बन गयी है और इस समय मेरी मेजके पास खड़ी होकर, पतले काँचके झीने अवगुण्ठनके भीतरसे मेरी लेखनी उसे देख-देखकर मुसकरा रही है। फिर भी विद्युत्की अप्सराके प्रति तथा उसको बाँधकर रखनेवाले मनुष्यके प्रति मेरा कौतुक रत्ती-भर भी कम नहीं हुआ है। अपने शरीरपर हाथ लगानेकी अविवेकी कृत्य करनेवालोंको भस्म कर देनेवाली बिजली क्या चरित्रगुणमें दम-यन्तीसे कम है? वैज्ञानिक अभिज्ञता कवि कल्पनाके पंखोंको सत्यकी रक्त शिराएं प्रदान करती है और उनमें उड़ानकी शक्ति भर देती है।

---

१. केरलके महीनेका नाम।

कला-कविता :

कौतुकसे सजीव कल्पना विश्व तथा मनुष्य जीवनको अपनी ओर खींचने तथा अपने बाहुपाशमें करनेके लिए हाथ बढ़ाती रहती है। इसलिए उसके हाथ बलिष्ठ होते हैं और उसकी पहुँच दूर तक होती है। मनमें बिजली-जैसी उठने-वाली प्रक्रिया जब मनुष्य-हृदयमें और विश्व-हृदयमें भी अपनी प्रतिध्वनि सुननेके लिए मचलने लगती है तब हमें सर्वव्यापी एकताकी अनुभूति होने लगती है। कल्पना तथा मानसिक प्रक्रियाका यह कार्य जितना शक्तिशाली होता है उतना ही कलाकारका महत्त्व भी बढ़ता है। कवि-हृदय एवं प्रकृतिके बीच, मधुर कल्पना तथा आर्द्र भाव-युक्त संयोगसे उत्पन्न होनेवाली अनुभूतिका घनीभूत रूप ही कथावस्तु है। कल्पना कथावस्तुका प्राण है तो मानसिक प्रक्रिया है उसकी शिराओंमें दौड़नेवाला जीव-रक्त! कल्पना-सुरभित तथा भाव-निर्मित इन कथा-वस्तुओंमें प्रकृति तथा मानव आत्माकी छाप स्पष्ट रूपसे देख सकते हैं। यह छाप ही कलाकार का व्यक्तित्व है, कथावस्तुओंका प्रकाश ही कला है। अपने कला-त्मक जीवनकी अनुभूतियोंसे कविताके सम्बन्धमें यही कुछ मैं समझ पाया हूँ।

मेरे लिए कविता आत्माका प्रकाश मात्र है। जैसे धूसर क्षितिजपर सन्ध्याकी छवि प्रतिबिम्बित होती है वैसे ही बन्धुर छन्दोंके पदबन्धोंमें कविका हृदय प्रति-बिम्बित होता है। इस आत्म-प्रकाशसे और कुछ बने या न बने, किन्तु एक कला कारके लिए यह परमानन्दका कारण तो है ही। जैसे मन्द पवन हंसके पंखोंको ऊपर उड़ा ले जाता है वैसे ही परमानन्दकी यह अनुभूति एक कलाकारकी आत्मा को भौतिक शरीरसे परे उठा ले जाती है। प्राचीन मनुष्य-द्वारा गुहा-भित्तिपर अंकित हिरनके चित्रको ही लीजिए। जब मनुष्यके हृदयसे निकलकर वह हिरन अचल शिलापर दौड़ने लगा तब उसके साथ उस मनुष्यकी आत्माने कितनी उड़ानें भरी होंगी। उस मनुष्यकी अनुभूतिका वह प्रतीक जब उसके मित्रोंके हृदयोंको भी पुलकित करने लगा तब वे भी उसके निकट खिंच आने लगे। इस प्रकार जो केवल एक व्यक्तिकी आत्माका प्रकाश था उसका एक सामाजिक मूल्य उत्पादन हो गया। एक कवि होनेके कारण अपनी अनुभूतियोंका प्रकाश ही मेरे लिए परमानन्दका विषय है। और यदि उस आनन्दका आस्वादन अन्य

लोगोंको भी करा सका तो वह मेरी विजय होगी। उससे मेरी कलाको एक सामाजिक आधार मिलेगा। लोगोंका उत्कर्ष अन्य लोगोंके द्वारा हो अथवा मेरे द्वारा! यह अनुभूति कैसी वांछनीय है, और कितनी आत्म-संतृप्ति है उसमें।

कविता व्यक्तिगत अनुभवोंका प्रकाश है। 'मुतुकल्' नामक अपने कविता-संग्रहमें मैंने अपनी यह धारणा प्रकट की थी। जीवनके यथार्थ-अनुभवोंके आघात से हृदयमें उत्पन्न होनेवाली मधुर संवेदनाओंको कल्पनाका आवरण पहनाकर प्रकट करना ही रचना है। उसमें व्यक्तिकी प्रधानता रहती है। 'इल्यूज़न ऐण्ड रियलिटी' नामक एक पुस्तक मैंने पढ़ी थी। उस पुस्तकमें उपर्युक्त कथनका प्रतिपादन यह प्रमाणित करनेके लिए किया गया था कि कला व्यक्तिकी नहीं समाजकी सृष्टि है। ये दोनों बातें परस्पर विरोधी लगती हैं। किन्तु वास्तवमें हैं एक ही सत्यके दो पहलू। क्योंकि व्यक्तिगत अनुभव सामाजिक अनुभवोंका अंग है और व्यक्ति सामाजिक परिस्थितियोंकी उपज है।

मेरे गाँवके हरे मैदान, सुनहरे खेत, ग्राम्य हृदयमें मस्तक ऊँचा किये खड़ा रहनेवाला प्राचीन मन्दिर, दरिद्रतामें डूबा हुआ प्रतिवेश, कवि-कल्पनाको अपने पास बुलानेवाली पहाड़ियाँ इन्हीं सबने मेरे हृदयको स्वप्नोंसे भर दिया था और फिर उन स्वप्नोंको विविध रंगोंसे सजाया तथा वाणी देकर सजीव बनाया था। वह खेत जिसमें कंगनों-हँसियोंकी चमक दिखाई देती है, सिरपर धानका बोझा लिये चलनेमें हाँफती हुई वे कृषक कन्याएं, अपनी झोंपड़ीकी ड्योढ़ियोंपर बैठे रहनेवाले पुलयंर[1], सन्ध्याके शान्तिपूर्ण वातावरणमें मधुरता फैलाता हुआ मन्दिरसे आनेवाला शंखनाद—इन सबसे मेरे कल्पना-समुद्रमें अव्यक्त एवं विचित्र तरंगें उठी हैं।

मरणोन्मुख सामन्तशाही तथा पाखण्डी पुरोहितोंके अत्याचारके कारण ही गाँवका जीवन विकृत हो रहा है, यह बात बचपनके उन दिनोंमें मैं नहीं समझता था। तो भी सामन्ती पाखण्डियों तथा उनके नियमोंके प्रति मेरे हृदयमें लेशमात्र आदर नहीं था। मेरे हृदयमें जब मेरा व्यक्तित्व अंकुरित हुआ तब उसको वायु तथा प्रकाशका आहार मिला, मेरे गांवके वातावरणसे। इसलिए मेरी कविता भी

१. एक जातिका नाम जो अछूत मानी जाती है।

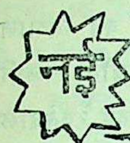
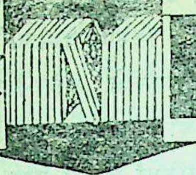
उस ग्राम-हृदयका एक अंग है। उसके बाद जब अध्यापकका काम करने लगा तब एक ओर गाँवका प्रभाव मेरे हृदयपर पड़ा। 'तिरुविल्वामला' का विशाल हृदयकी तरह फैला हुआ स्वप्न-सान्द्र मैदान, टीलों-वनोंमें आँख-मिचौनी खेलती हुई संकेत स्थानपर आ मिलनेवाली नदियाँ, हाथोंमें जलकुम्भ लिये रहनेवाले पेड़, तराईके मार्गपर मन्दगतिसे जानेवाली बैलगाड़ियाँ ये सब दृश्य हैं। जिनके कारण एकान्तमें भी मैं एकाकी नहीं था। वे दृश्य मेरे व्यक्तित्वके विकासमें सहायक रहे। 'एकादशी'के पूर्वके अवसरपर दयालुओंकी उदारताकी आशामें मार्गपर मिट्टीकी थाली रखकर दूर जा खड़े होनेवाले नायाड़ियों[1] को देखकर मुझे दारिद्र्य, तथा छूत-छातकी क्रूरताके साथ-साथ किसी समय स्थापित हुए आर्योंके उपनिवेशका स्मरण हो आता तो भी मनुष्यको प्रकृति चित्रके कतिपय बिन्दुओंकी तरह ही मैं देख सका था। सम्भव है उस समय प्रकृति चित्रको संवेदनाओंके उत्तापसे सजीव बनानेके लिए ही मेरा मन मनुष्यको ढूँढ़ता था। किन्तु आज मैं प्रकृति-चित्रसे भिन्न मनुष्यके आदर्शमय अस्तित्वका वास्तविक चित्र देखता हूँ।

बाल्यकाल : स्मृतियाँ

एक ऊजड़ गाँवके छोटे परिवारमें मेरा जन्म हुआ था। आर्थिक दृष्टिसे दरिद्र होने पर भी माँ तथा मामाजीके वात्सल्य-धनकी गोदमें मैं पला था। पिताजीको अभी आँख-भर देख भी न पाया था कि उनका देहान्त हो गया। मेरे पिताजी मुझे शोकसागरमें छोड़कर चले गये और मेरे भीतर एक ऐसी रिक्तता छोड़ गये जिसकी पूर्ति असम्भव है। उनको स्मरण करते हुए मेरा मन कभी-कभी किसी अदृश्य लोकमें पहुँच जाता और आध्यात्मिक ज्ञानसे अपनी झोली भरकर लौट आता। मेरी माँका हृदय प्रकृतिके समान विशाल था। मेरे मामाजी चाहते थे कि उनका भानजा शीघ्रातिशीघ्र आदमी बन जाये। तीन वर्षकी आयुमें उन्होंने मेरा विद्यारम्भ कराया—एवं आठ वर्षकी आयु तक पढ़ाया। उन्होंने न तो मुझे खेलने दिया, न सखाओंके साथ मिलकर ऊधम मचाने दिया। मेरा शारीरिक नहीं, मानसिक विकास उनका अभीष्ट लक्ष्य था। बचपनमें ही आदमी बन जाना कोई

---

१. एक अछूत जाति।


नई


अच्छी बात नहीं है। किन्तु मैं उसी रास्तेपर चल रहा था। 'अमर कोश', 'सिद्ध-रूपम्', श्रीरामोदन्तम् आदि ग्रन्थ कण्ठस्थ हो चुके थे। 'रघुवंश' काव्यके कई श्लोक पढ़ चुका था। ऐसे समय सौभाग्यवश मेरे गाँवमें एक प्राथमिक पाठशाला-की स्थापना हुई। मामाजीने मुझे पाठशालाके दूसरे वर्गमें भरती करा दिया। इस प्रकार कठिन अनुशासनमें संस्कृत काव्योंको कण्ठस्थ करनेके कामसे छुट्टी मिली। साथ-ही-साथ अपनी इच्छाके अनुसार स्वतन्त्र रूपसे काव्य-रसास्वादनकी प्रेरणा मनमें जाग उठी। मेरे मामाजीके पास भाषा टीकाके साथ संस्कृत काव्योंके बहुत-से ग्रन्थ थे। मैं उन्हें पढ़ने लगा। कविताके प्रति कौतुक बढ़ानेवाली उस शिक्षाके प्रति अपना ऋण मैं कृतज्ञताके साथ स्वीकार करता हूँ। संस्कृत काव्य-जगत्में प्रवेश करनेका जो द्वार मेरे लिए उस समय खुला था, उसको मैंने आजतक बन्द नहीं होने दिया। इसी तत्परताके रूपमें मैं अपनी गुरुदक्षिणा देता रहूँ—यही मेरी कामना है।

कविताकी ओर मुझे उन्मुख कर देनेवाली एक और घटना भी घटी। १०८७ (मलयालम संवत्) के लगभग, जब मैं ग्यारह वर्षका था, महाकवि कुंजिकुट्टन तंपुरान अपने कुछ नंपूतिरि मित्रोंकी प्रेरणासे मेरे घरके समीपस्थ इतिहास प्रसिद्ध मन्दिरमें पधारे। (चेरमान्[1] पेरुमाल द्वारा गुरूपदेशानुसार निर्मित कहे जानेवाले प्रस्तुत मन्दिरके बारेमें बहुत-सी दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। मन्दिरकी भित्तिपर अंकित चित्र कला-प्रेमियोंको आकर्षित करनेवाले हैं) चेड्डलूरमनके[2] हाथीको उत्सवाघोषके लिए लाये जानेपर जो अद्भुत आह्लाद प्रकट किये गये वही सब कुछ महाकविके आगमनपर भी गाँवमें परिलक्षित हुए। कवि बनना एक महान् दैवो-सिद्धि है शायद मुझे उस दिन ऐसा लगा होगा। तंपुरान्के प्रति मेरे मनमें उत्पन्न आदर और पक्षपात वर्षों तक रहा। किन्तु बादको उनकी कविताओंमें-से कुछ ही ने कविताकी हैसियतसे मुझको आनन्दित किया है। शायद केवल भाव-गीतोंको ही (लिरिक) कविता मान बैठनेवाली मेरी मुग्धता ही इसका कारण हो। साहित्यकी ओर मुझे आकर्षित करनेवाली एक प्रमुख घटना थी यह मुला-

१. अखण्ड केरलका अन्तिम सम्राट्।
२. एक प्रसिद्ध ब्राह्मणभवन।

कात। मेरी माताजी गर्वका अनुभव किया करती थीं कि आठवें महीनेमें शंकर चलने लगा। उसी तरह मातुल भी कहा करते थे कि उसने नवें वर्षमें कविता लिखी। आज लज्जाके साथ मैं याद करता हूँ कि वे सब पद्यकी हैसियतसे भी मूल्यवान् प्रयास नहीं थे। जब मैं चौथी कक्षामें पढ़ता था, अपने एक सहपाठीके प्रति उत्पन्न कृतज्ञतापर, अपने पुराने घरके किसी कोनेमें बैठकर संस्कृतके छन्दोंमें कुछ पंक्तियाँ लिखीं। (वह सहपाठी, जिसने पीलियाके आघातसे कक्षामें चक्कर खाकर गिर जाने पर मुझको अपने कन्धेपर उठाकर एक मील पैदल चलकर घर पहुँचाया था, आज ज़िन्दा नहीं है।) वे पंक्तियाँ भी छन्दोंके बन्धनमें रहनेकी शिक्षा-प्राप्त अक्षर मात्र थीं। एक कुटुम्बी मित्रने, जो 'कान्त छन्द' का लक्षण देखकर मात्रा और पंक्तियोंको मिलाते थे, मेरी जो प्रशंसा की, वह शायद उनके सौजन्यके कारण। 'अक्षरश्लोक' एवं तुकबन्दी—ये दोनों, विद्यार्थियोंमें-से हम कुछ लोगोंके लिए मध्याह्न भोजनके स्थानपर होनेवाला कार्यक्रम बना हुआ था। क्षीरसागर मन्थनकी कथाको विभाजित कर मैं और मेरे मित्रने जो शतक लिखा उसको सुनकर पेरुम्पावूर स्कूलके सातवीं कक्षाके अध्यापकने कहा—"शतक सुनानेकी परीक्षा आ रही है।"

उस अवस्थासे ही मैं साम्यवादके पक्षमें दरिद्रोंके साथ रहा हूँ। प्रसिद्ध वाग्मी एवं प्रशस्त समाज सेवक श्री एम० एन० नायर, जो बादमें सर्विस सोसायटीकी सेवामें चले गये, सुवाट्टुपुषामें मेरे अध्यापक थे। वे मुझे बड़े लाड़-प्यारसे प्रोत्साहित किया करते थे। ब्रिटिश हिस्ट्री और अर्थशास्त्र वे ही पढ़ाते थे। सोश्यलिज़मके पर्यायवाची शब्दोंके तौरपर वे कभी 'समष्टिवाद' और कभी 'समाजसमत्ववाद' के शब्द इस्तेमाल करते थे। "अपनी समस्त सम्पदाको समाजकी सम्पत्ति बनाकर समानरूपसे उपभोग करनेके लिए जो सन्नद्ध हैं वे खड़े हो जायें"—एक दिन गुरुजीने हँसते हुए कहा। मैं उठ खड़ा हुआ "इससे तो शंकर कुरुपकी कोई सम्पत्ति नष्ट होनेवाली नहीं है न?" हँसते हुए फिर जब गुरुजीने पूछा तो मैं लज्जित भी हुआ ही। बादको ही मुझे पता चला कि एशियाके राष्ट्रोंमें मुझसे कम सम्पत्ति रखनेवाले ही मेरे जैसे सम्पत्तिवालोंसे कहीं अधिक हैं। रूस उन दिनों आर्थिक क्रान्तिका द्वार खटखटा रहा था।

मामाजीने मेरे हृदयमें ज्ञानतृष्णाकी जो लौ लगायी थी उसकी ज्वाला बढ़ती गयी, यही मेरे लिए बड़े सौभाग्यका विषय है 'तिरुविल्वामला' में जब मैं अध्यापक बनकर गया तब मुझे इस बातका आनन्द था कि वहाँ रहकर अंगरेज़ी भाषा तथा साहित्यसे परिचय करनेका अवसर मिलेगा। मेरे कविता-संग्रह 'साहित्यकौतुकम्' के प्रथम भागकी कविताएँ 'तिरुविल्वामला' जानेके पहलेकी हैं। मुझे उस समय ही लग रहा था कि मेरे मनके विकासके लिए आवश्यक प्रकाश मुझे अपनी उस समयकी शिक्षासे नहीं मिला था। तिरुविल्वामलामें आकर मैंने अपने अध्यापक मित्रोंको गुरु बनाया और उनकी सहायतासे अँगरेज़ी पढ़ना आरम्भ किया। टैगोर और उमर खैयामके अतिरिक्त बहुत-से अंगरेज़ी कवियों समालोचकोंके पास सविनय पहुँचनेका मार्ग इस तरह मेरे सामने न खुलता तो 'साहित्यकौतुकम्' की सीमासे कदाचित् मैं आगे न बढ़ पाता। यह नया मार्ग मुझे संस्कृतिकी खानकी ओर ले गया। मेरे कल्पना-क्षितिजको विस्तृत तथा आदर्शबोधको विकसित करनेमें टैगोरका जितना हाथ था उतना शायद किसी औरका न रहा हो। उमर खैयाम, 'हाफ़िज़' आदि फ़ारसी कवियोंसे परिचय होनेपर मुझे लगा कि उनकी कविताओंमें कल्पनाके कुछ परिमार्जनपर नहीं, प्रतिपादनकी रीतिपर विशेष ध्यान दिया जाता है। अँगरेज़ी साहित्य मुझे गीतिके आलोचककी ओर ले गया।

मेरी आयु बीसवीं शताब्दीसे केवल छह महीने कम की है। प्रथम विश्वयुद्ध के समय जर्मनोंकी विजयोंकी वार्ता सुनता तो मेरा विवेक-शून्य हृदय आनन्दसे नाच उठता क्योंकि उसमें पराजय हो रही थी मेरी मातृभूमिको पैरों तले कुचलनेवाले ब्रिटिश साम्राज्यकी। गान्धीजीके नेतृत्वमें होनेवाले स्वतन्त्रता संग्राम तथा धार्मिक क्रान्तिने मेरे हृदयमें देश-प्रेमका मन्त्र फूँका। रूसकी आर्थिक तथा सामाजिक क्रान्ति और उसके द्वारा होनेवाली जनप्रगतिसे मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ और मेरे हृदयमें साम्यवादकी नींवपर सामाजिक व सांस्कृतिक गठनका संकल्प घर कर गया। एबिसीनियापर होनेवाले फ़ासिस्ट अत्याचारों तथा जापानकी चीनपर चढ़ दौड़नेकी धृष्टताने मेरी कल्पनाको देशके प्राचीरोंसे निकालकर मनुष्य-मात्रके दुःख व अभिलाषाओंमें साथ देनेकी प्रेरणा दी।

और फिर दूसरे विश्वयुद्धके बाद मेरी मातृभूमिने स्वतन्त्र होकर अपना सिर उठाया तो मेरा भी सिर ऊँचा हुआ। इतिहासकी इन घटना-बहुल घड़ियोंके कारण मृत्युसे जीवनकी ओर, अन्धकारसे आलोककी ओर निरन्तर प्रयाण करते हुए देशके एक कोनेमें पैदा होकर बढ़नेवाले एक व्यक्तिके हृदयमें उठने-वाली समयकी, क्षीण प्रतिध्वनि मेरी कवितामें पायी जायेगी।

तुच्छ पदविन्यास लिये अधीर होकर पहले-पहल जब मैंने साहित्य-संसारमें पदार्पण किया तब मेरे आराध्य देव थे महाकवि वल्लतोल्। 'साहित्यमंजरी' के कल्पना-सुरभित तथा मधुर भावोंसे भरे गीतोंने मेरे हृदयको पहले ही मन्त्रमुग्ध कर लिया था। महाकवि उल्लूरके रचना-वैचित्र्यने मुझे चकित कर दिया था। महाकवि कुमारन् आशानकी हृदयकी गहराईकी भाव-व्यंजना करनेवाली कवि-ताओंसे परमानन्दका अनुभव मुझे बादमें हुआ। वल्लतोलके उपग्रह, 'नालप्पाटन' तथा 'केशवन् नायर' बुध-शुक्रकी तरह साहित्य क्षितिजपर चमक रहे थे।

मेरी कविताका रंग-प्रवेश हुआ 'वल्लतोल्' की पत्रिका 'आत्मपोषिणी'में। मेरी प्रथम रचना पढ़कर महाकविने बड़े प्रेमके साथ एक पत्र लिखा और मुझसे शब्दालंकारकी तड़क-भड़कसे दूर रहनेको कहा। मेरी दूसरी रचना पढ़-कर उन्होंने रचना तथा पदचयन सम्बन्धी कई विशेष बातें समझायीं। मेरी तीसरी रचना 'घनमेघ' की पाटीपर इन्द्रधनुषकी रेखा खींचनेवाली प्रकृति बालाके सम्बन्धमें थी। उसको पढ़कर महाकविने अभिनन्दनका पत्र भेजा। उससे मेरा साहस बढ़ा। किन्तु अल्प समयके अन्दर ही वल्लतोल्ने 'आत्मपोषिणी' का सम्पा-दन छोड़ दिया। उसके बाद कविता रचनाके रहस्योंको सीखनेके लिए मैं और किसीके पास नहीं जा सका। जिसका सौहार्द-सुरभित सम्पर्क मेरे साहित्य-जीवनमें लाभदायक हुआ है उसमें सुप्रसिद्ध समालोचक सी० एस० नायर तथा ख्यातनामा कवि कल्लन्मारतोटि रामुण्णिमेननके नाम उल्लेखनीय हैं। श्री रामुण्णिमेनन मुझे अपना भाई समझते थे। 'इन्द्रधनु' तथा 'वृन्दावन' के ऊपर मेरे गीतोंकी प्रशंसात्मक आलोचना करके सरदार के० एम० पणिक्करने मेरा उत्साह बढ़ाया था। एक बार उन्होंने 'एन्थालॉजी ऑव वर्ल्ड पोयट्री' आदि पुस्तकें उपहार-स्वरूप भेज दी थीं। यही नहीं 'अन्वेषणम' आदि कई एक कविताओंका अंगरेज़ी-में अनुवाद करके उन्होंने मेरा सम्मान किया। मेरे साहित्य जीवनके प्रारम्भमें

ही सरदार के० एम० पणिक्कर और थोड़े समय बादसे प्रिंसिपल शंकरम् नम्पि-यारने मेरा जो उत्साह बढ़ाया है उसको मैं कृतज्ञताके साथ स्मरण करता हूँ।

मेरे विचारमें, मेरी प्रारम्भिक कविताओंमें जीवनका संचार किया है, प्रकृति-प्रेम तथा देश-भक्तिने। प्रकृतिके प्रति मेरा आकर्षण, उसके साथ मेरा निकट सम्बन्ध, उसके साथ एकाकार हो जानेकी अनुभूति तथा उससे प्राप्त प्रकृतिके परे रहनेवाली चेतना-शक्तिका आभास इन सबकी पूँजीके बलपर ही साहित्य-लोकमें प्रवेश करने तथा उसके एक कोनेमें घर करनेमें मैं समर्थ हुआ हूँ। 'सान्ध्य नक्षत्र' जब हँसने लगा तब मेरा हृदय भी हँस उठा था। उसी समय मुझे अनुभव हुआ कि एक ही चेतना-शक्ति हम दोनोंमें विद्यमान है। इस अनुभूतिसे मुझे जो आनन्द हुआ उसका वर्णन करनेकी क्षमता 'सान्ध्य नक्षत्र' से 'अन्तर्दाह' तथा 'विश्वदर्शन' तक पहुँचनेपर भी मेरी भाषामें नहीं है। तरंग-ताडित नदीमें संवेदनाओंकी उथल-पुथल मचानेवाले अपने हृदयका आभास देख पाना, सूर्य-कान्तिके कम्पित अधरोंमें अपने भावतरल अधरोंको देख सकना, अरुणोदयकी प्रतीक्षामें तपस्या करनेवाले कमलके रूपमें सत्य-सौन्दर्यको प्राप्तिके लिए प्रयत्न करनेवाले अपने जीवनको देख सकना—मेरे लिए परमानन्दका कारण है।

श्री ए० बालकृष्ण पिल्लैके सम्पादनमें निकलनेवाली 'केसरी' पत्रिकामें मेरे कविता-संग्रह 'सूर्यकान्ति' की समालोचना हुई थी। उस समय मैंने यह दिखाने-की चेष्टा की थी कि उस समालोचनासे मेरा कुछ बिगड़ा नहीं है। वास्तवमें उससे मेरी कल्पनाको बड़ी चोट लगी थी। रोमाण्टिक ढंगकी कविताओंका सुन्दर संग्रह कहकर 'सूर्यकान्ति' की प्रशंसा करनेके बाद केसरीने 'रोमाण्टिक' कविताकी खिल्ली उड़ायी थी। संक्षेपमें समालोचकका कहना था कि जिस लेखनीको 'रियलिज्म' का नेतृत्व करना चाहिए वह पथ-भ्रष्ट होकर भटक रही है। इस समा-लोचनासे मुझे दुःख भी हुआ, क्षोभ भी। असमंजसमें पड़कर कई दिनों तक मैं हतोत्साह भी हुआ। मेरी कविताओंकी वह प्रथम प्रतिकूल समालोचना थी। इस आघातके बाद 'मेरी कवितासे' नामक रचना-द्वारा मैंने अपनी कविताको सान्त्वना देनेकी चेष्टा की। यह नहीं कह सकता उससे मेरी कविताको कोई सान्त्वना मिली। चाहे जो हो, कहानियों व उपन्यासोंमें पायी जानेवाली रियलिज्म कविताके लिए मुझे अच्छी नहीं जँची। प्रसंगवश मैं यहाँपर एक लेखका उल्लेख

करना चाहता हूँ जो 'जान ऑव लण्डन' नामक साप्ताहिकमें रिचर्ड चर्चने लिखा है—'कविता व यथार्थवादपर उस प्रसिद्ध समालोचकके विचार, हमारे यथार्थ-मार्गगामी कवियोंको, ध्यानसे पढ़ने चाहिए।'

उसके बाद मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि कल्पनामें जीवित रहनेवाली कविताको नयी अनुभूतियोंसे सजाकर नये परिवेशोंसे प्रेरणा लेकर लावण्य व चेतना-पूर्ण रूप देना ही कविका कर्तव्य है। इस अभिज्ञताका प्रथम निदर्शन था मेरा 'नाले' (आगामी कल) नामक गीत। उसकी रचना-शैली 'रोमाण्टिक कविकी थी तो उसका प्रतीक प्रदान किया था प्रकृतिने। परम्परासे प्राप्त अधिकारके बलपर मनमानी करनेवाले मुट्ठी-भर लोगोंके आतंकसे छूटकर जनताको स्वतन्त्र वातावरण-में रहनेका अधिकार दिलानेवाले एक 'नाले' की परिकल्पना थी उसमें। 'केसरी' के ममत्वपूर्ण प्रहारने मुझे दुर्बल नहीं किया, बल्कि—यद्यपि मैंने उनके कहे मार्गका अवलम्बन नहीं किया—मुझमें आगे बढ़नेकी शक्ति और स्फूर्ति उत्पन्न की। (उस कविताका मेरी नौकरीपर जो परिणाम हुआ उसके बारेमें कहनेकी आव-श्यकता नहीं।)

उस कविताके बादके तीन-चार वर्ष आलस्य तथा शारीरिक अस्वस्थताकी पीड़ाओंमें कटे। वह समय किसी प्रकारके रचनात्मक कार्यके लिए अनुकूल न था। एक एकांकी नाटक 'इरुट्टिन्तुमुन्पु', 'कालम्', 'नक्षत्रगीतम्' आदि गीत तथा कई-एक लेख बस ये ही सब उस समयकी रचनाएँ हैं। दूसरे विश्व-युद्धके पहले नयी आकांक्षा, देश-प्रेमका आदर्श, अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण तथा मनुष्यकी प्रमुखतामें विश्वास लेकर जब प्रगतिशील विचारधारा सर्वत्र फैलने लगा तब मेरी कविता भी अपनी तन्द्रासे जाग उठी। 'निमिषम्', 'चेंकतिरुकल', 'सन्ध्या', 'मुत्तुकल', इतलुकलु आदि मेरे कविता-संग्रहोंमें भारतको स्वतन्त्रताके पूर्वके धूप-छायाके प्रतिबिम्ब मिलेंगे। उसके बादकी अनुभूतियाँ संगृहीत हैं—'वनगायकन्', 'पथि-कन्टे पाटट', 'अन्तर्दाहम्', 'वेल्लिल् परवकलुम' आदिमें।

कुछ लोगोंका कहना है कि 'सूर्यकान्ति' के साथ मेरी कविता का विकास बन्द हो गया है तो कुछ लोग यह भी कहते हैं कि नहीं, सूर्यकान्तिके बाद मेरी कविता विकसित हुई है। किन्तु मेरे लिए मेरी सभी कविताएँ मेरे आत्म-विकास-का प्रतिबिम्ब हैं। 'सूर्यकान्ति' मेरे श्मशानका फूल नहीं, वरन् तारुण्यके शिखर-

पर मधुर संवेदनाओंसे प्रेरित होकर लिखा हुआ मेरा ही हृदय है। उसके बाद मैं वहाँसे भी ऊपर उठ गया हूँ। मेरी आँखोंने नये दृश्य देखे हैं, कानोंने नयी ध्वनियाँ सुनी हैं। मेरे हृदयने अपनी व्यक्तिगत परिधिको पार कर विश्वमात्रके जन-जीवन के साथ एकाकार होनेकी चेष्टा की है। हो सकता है, 'सूर्यकान्ति' के बादकी मेरी कविताओंमें आध्यात्मिक या लौकिक प्रेम-स्वप्नोंका उन्माद छलकता हो। किन्तु मैं दावा करता हूँ कि उन कविताओंमें एक अपार हृदयका स्पन्दन है जो मनुष्य की महत्तामें गर्व करता है, जिसमें सुन्दर भविष्यके स्वप्नोंका उत्साह है, जो मनुष्य मनुष्यताका मूल्य गिरता देखकर दुःखित है और जो सौन्दर्यबोधको मनुष्य जीवनके लिए मृतसंजीवनी मन्त्र समझता है।

● ●

नवम्बर '६६ में प्रकाशित कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव

डॉ० विश्वनाथ मिश्र

मूल्य १६.००

लखनऊ विश्वविद्यालय-द्वारा डी० लिट्० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध। विद्वान् आलोचक ने अत्यन्त विद्वत्तापूर्वक हिन्दी नाटक साहित्य पर पाश्चात्य प्रभावों का सम्यक् विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

साकेत की टीका

विश्वम्भर 'मानव'

मूल्य १२.५०

'साकेत' की पहली विस्तृत, विशद और प्रामाणिक टीका।

आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

मूल्य १२.००

प्रयाग विश्वविद्यालय-द्वारा डी० लिट्० की उपाधि के लिए स्वीकृत एवं 'हिन्दी परिषद्'-द्वारा प्रकाशित शोध प्रबन्ध का नवसज्जित संस्करण। हिन्दी साहित्य के आरम्भिक युग (१७५७ से १८५७ ई०) का प्रथम बार वैज्ञानिक एवं विस्तृत विवेचन।

भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन तथा संवधानिक विकास

डॉ० रथीन्द्रनाथ मित्रा

मूल्य १२.००

राजनीति-शास्त्र के प्रमुख विद्वान् डॉ० मित्रा-द्वारा प्रस्तुत उक्त विषय का प्रामाणिक एवं विस्तृत अध्ययन।

जीवन के चार अध्याय

डॉ० भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'

मूल्य ७.००

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक एवं चिन्तक ने अपनी इस संस्मरणात्मक कृति में अत्यन्त तटस्थ ढंग से अपने जीवन के चार अध्यायों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है।

हिन्दुओं के व्रत, पर्व और त्योहार

रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री

मूल्य ७.००

सरस-प्रांजल एवं प्रवाहपूर्ण शैली में अतीव रोचकता एवं आकर्षण से युक्त इस धार्मिक पुस्तक को प्रत्येक सद्गृहस्थ के घर में तो होना ही चाहिए।

लोकभारती प्रकाशन | १५-ए, महात्मा गान्धी मार्ग, इलाहाबाद-१

दिसम्बर '६६ में प्रकाशित होनेवाले कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

महाभारतकालीन समाज

मूल : सुखमय भट्टाचार्य, अनु० : पुष्पा जैन मूल्य २५.००

महाभारतकालीन भारतीय समाज की अन्तरंग तथा प्रामाणिक झाँकी प्रस्तुत करनेवाले विख्यात बंगला ग्रन्थ का आधिकारिक हिन्दी-रूपान्तर।

नाथ-सम्प्रदाय

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी मूल्य १०.००

पूर्व-मध्यकालीन हिन्दी-काव्य का सम्यक् अध्ययन है यह। अपने इस शोधपूर्ण ग्रन्थ में आचार्य द्विवेदी ने नाथ-सम्प्रदाय सम्बन्धी समस्त प्राप्य सामग्री का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

सप्तपर्णा

महादेवी वर्मा मूल्य ६.००

धर्म, दर्शन तथा अध्यात्म से समन्वित भारतीय संस्कृति के अपराजेय आधार आर्षवाणी वेद, वाल्मीकि, थेर-गाथा, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति तथा जयदेव की कतिपय काव्य-विभूतियों का हृदयग्राही काव्यानुवाद।

प्राचीन कवि केशवदास

सं० : ए० चन्द्रहासन मूल्य ९.००

विस्तृत व्याख्यात्मक भूमिका एवं प्रामाणिक पाठ सहित आचार्य केशवदास के काव्य का प्रतिनिधि संकलन।

शकुन्तला नाटक

अनु० : राजा लक्ष्मण सिंह, सं० : जयशंकर त्रिपाठी मूल्य २.५०

महाकवि कालिदास की अमर कृति के सर्वप्रशंसित अनुवाद का सुसम्पादित प्रामाणिक संस्करण।

प्रारम्भिक मनोविज्ञान

डॉ० एस० एम० मोहसिन मूल्य ५.००

मनोविज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० मोहसिन-द्वारा सुबोध शैली में लिखा गया विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी ग्रन्थ।

लोकभारती प्रकाशन | १५-ए, महात्मा गान्धी मार्ग, इलाहाबाद-१

चार उद्धरण

महाकवि कुरुपकी चार कविताओंके
हिन्दी रूपान्तर

नक्षत्र गीत

स्नेहार्द्र हो कर जलने वाली
मेरे जीवन की बाती में
सदा ही दुःख की दिव्य ज्वाला
प्रोज्ज्वलित रहे।
किन्तु नहीं करूँगा मैं पंकिल
अपने निश्वासों की धूमरेखा से
देवताओं के गगन-पथ को।
आमरण, नहीं बाँटूँगा किसी को भी
अपनी आत्मा में व्याप्त ताप को
चाहे भस्म ही क्यों न हो जाऊँ।
मैं तो
दहकता रहता हूँ अपनी चिता के भीतर
किन्तु, पथिक को दीखती है मुझ में
मन्द हास की आभा।

हो सकता है मैं मूर्छित हो कर
गिर जाऊँ गगन की गहन गहराइयों में,

अथवा हो जाऊँ भस्मीभूत, क्षार-क्षार
और भूल जायें काल, मुझ क्षुद्र, तारे को,
तथापि यह सत्य है—
जीवन मेरे लिए रहा धधकती भट्टी,
किन्तु उसके प्रकाश से मैंने उजियारा दिया धरा को।

— १९४२]

निमिष

जीवन-सुमन के मकरन्द का पान कर
अत्यन्त कौतुक से पंख फहरा कर
नीरव उड़ जाने वाले हे लघु-निमिष,
कैसे चोर हो तुम !
मेरी यह कोमल भावना
बन्द कर लेना चाहती है,
अपने पुलकित करों में तुम्हारे पंखों को।
मत करो निराश इस मुग्धा को
जो तुम्हें बार-बार चूम कर
अपने हृदय के सम्पुट में मूँद लेना चाहती है।
प्रिय, कैसे बाँध दूँ तुम्हारे दोनों पैरों को
कोमल शब्दों की निष्पीड़ डोर से !

अस्फुट-वाक् यह मुग्धा देखती है अधीर,
इन नन्हें-नन्हें अश्रु-सिक्त पंखों को;
इन पर जो विविध रंग दीखते हैं,
क्या वे ही नहीं हैं मानव-मन के बहुरंगी भाव-अनुभाव
अंकित हो गये हैं जो चित्र-विचित्र रूप से
ये ऐन्द्रजालिक भाव जिन पंखों के छोरों पर

इन्द्रधनुष के माधुर्य की राँगोली रचते हैं
उन्हीं पर देख लेते हैं आशा के चांचल्य से स्पन्दित
आत्मा की समग्र कोमल उत्सुकता !

प्रत्येक पल आता है सामने से,
और विलीन हो जाता है पीछे जा कर कहीं
इस वेग से कि
बिजली भी विस्मित हो जाती है !
किस एकान्त रहस्य-लोक से आ जाते हैं
ये विचित्र लघु-निमिष !
और विलीन हो जाते हैं जा कर कहाँ ?
चकित है भावना, देखती है यह
विस्फारित नेत्र
मेरी यह ठगी गयी भावना देखती है
अपनी उँगलियों के पोरों पर लगे
अत्यन्त सूक्ष्म स्मृतियों के स्निग्ध पराग को,
कभी मुस्कराते होठों,
कभी बरसते नयनों !

कितना क्षुद्र है यह निमिष,
किन्तु यदि उड़े नहीं यह अपने पंख फड़फड़ा कर
तो कैसे हो इस मिट्टी में और इस विपुल व्योम में
संख्यातीत जीवों का स्पन्दन ?
कैसे हो मिलन आतुर कर्म का अपने फलों से
कैसे हो आलिंगन उनका
उस माँ की तरह जो व्याकुल दौड़ती है
अपने शिशु को देखने के लिए !
इन नन्हें पंखों का मर्मर मारुत

प्रज्वलित करे भीति-ज्वाल पापियों के मन में।

कितना लघु होता है प्रत्येक निमिष
किन्तु जब वह डैने फैला कर उड़ता है
तो आगे-आगे भागने लगता है प्रचण्ड वेग से सारा ब्रह्माण्ड !
प्रत्येक पंख की ध्वनि
प्रतिध्वनित होती है विभिन्न रूपों में
प्राणियों के मन में।
यही प्रतिध्वनि बन जाती है नगाड़े का लीला-घोष
जब जीवन का जुलूस
कर्म-संस्कारों के मार्ग से आगे बढ़ता है
जन्म और मृत्यु को लाँघ कर।
परम्परित हो कर आने वाले
मुग्ध स्पन्दनों !
हमारा यह विस्मयकारी आकाश
तुम्हारे फैलाये पंखों की छाया ही तो है।
दिखाई देता है यह नित्य और निश्चल,
किन्तु है यह मात्र मिथ्या जो प्रतीत होता है सत्य-सा।
इन नन्हें पंखों की हवा से
ग्रह-समूह प्रकम्पित हो जाते हैं
ओस की बूँदों की भाँति;
मानव की शक्ति और दर्प का साम्राज्य
हिल जाता है
मकड़ी के जाले की तरह।

इन पंखों के झोंकों से
झड़ जाते हैं जीवन के बासी फूल,
हर्ज ही क्या है भला !

लो, विकास की अगणित नूतन सुषमाएँ
मुकुलित हो रही हैं।
हो सकता है आकाश पर दिपता यह तरुण रवि-बिम्ब
बुझ जाये !
यह सर्गशक्ति अपनी फूँक से उसे फिर
प्रज्वलित अंगारा बना देगी।
और विकसित होगा तब नवजीवन
पा कर ताप एवं निर्मल प्रकाश !

विदा, प्यारे लघु निमिष !
समाप्त करता हूँ मैं यह चिन्तन,
बढ़ जाओ तुम आगे,
इससे पहले कि मेरे अश्रु-कण से
तुम्हारे पंख भीग जायें।
मैं तुम्हारे फूल-से पंखों पर
सकौतुक लिखना चाहता हूँ यह सन्देश,
अपने चिर-प्राथित सौन्दर्य-देवता के लिए :
"आदर्श के भीतर देखता हुआ
अपने संकल्प की छाया,
करता हुआ उसका आदर
कितने दिन बिताऊँगा मैं ?"

— १९४५]

■ बूढ़ा शिल्पी

आज थोड़ा-सा सुख अनुभव कर रहा हूँ
आह, कितने दिनों से मैं अपनी इस माँद में कुण्डलियाँ मारे पड़ा रहा हूँ,

वात रोग ने कुतर-कुतर कर चबा डाली है मेरी शिराओं की मज्जा,
मैं अब प्रेत बन गया हूँ, फिर भी साँस ले रहा हूँ।
यह जेठ का महीना
सब जगह फूले-फले खड़े हैं कटहल,
छेनी का स्पर्श पाते ही खरे सोने के समान निखरने वाले;
और रसाल, जिसका तना काट कर खेल की नैया
बनाने को हाथ तरसता है,

हाय ! इस समय मैं अपने आँगन में खड़े हो कर
उनकी ओर एक नज़र दौड़ा पाता !
मेरे घर के आसपास
एक केले की ठूँठ तक नहीं
किन्तु, कहीं भी यदि पेड़ दिखाई दे जाता है
तो मेरा मन बाँसों उछलने लगता है।

हाँ, 'उलियनूर' मन्दिर के मैदान में
तम्पक का एक बहुत बड़ा पेड़ है,
नौ आदमी हाथों में हाथ डाल कर घेरें,
फिर भी उसका तना पकड़ में नहीं आयेगा।
उसमें न कहीं टेढ़ापन है न कोई छेद, न कोई छीज,
निश्चय ही अस्सी हाथ से अधिक ऊँचा है वह,
मैंने अपनी आँखों से नाप लिया है।
अगर काट लिया जाये तो
उसी से छायी जा सकती हैं
गाँवकी सारी छतें,
या डाली जा सकती हैं
कड़ियें इनकी, ग्रामाधिकारियों के भव्य भवनों में,
जैसी कि वे आशा लगाये बैठे हैं मन में।
किन्तु, अब जीर्ण-शीर्ण हो गया है

मेरा अपना यह काठ,
चाहने पर भी क्या मैं
पेड़ के काठ पर छेनी चला सकता हूँ ?

द्वार की सीढ़ी पर बैठी है मेरी जीवन-संगिनी
झुक गयी है वह एक दम, झुर्रियाँ पड़ गयी हैं उसके पेट पर।
तोपें दागने पर भी वह सुन नहीं सकती,
खोज रही है, हाथों से टटोल रही है
सूखे पान का टुकड़ा, पुरानी सुपारी और सूखे चूने का टुकड़ा
हाँ, वह भी बूढ़ी हो गयी !
किन्तु, याद करता हूँ मैं वे दिन
जब वह खड़ी थी मेरे समीप प्रफुल्ल तरुण चम्पक-सी
सीधी सुगठित शरीर लिये
और ताम्बूल राग-पूरित अधरों पर मुस्कान लिये
मंजरित 'वेल्लिला'[1] वल्लरी के समान
वे आँखें, धूसर-भवोंयुक्त,
भटक कर जा पहुँचीं पिछले दरवाज़े पर
जो बुरी तरह से घुन गये थे।
अगर मैं उठ सकता तो रेंग रग कर आगे बढ़ता,
हाय ! वह हाथ, जो इस बूढ़े को सहारा दे सकता था....
बूढ़ा शिल्पी सिसक पड़ा।
(शायद उस स्मरण को मिटाने के लिए
पोंछने लगा सूखे हाथों से
झुर्रियों-भरा अपना ललाट)
अब मैं कुछ भी कर नहीं सकता,
फिर भी
अगर रेंगता-लँगड़ाता अपनी शिल्पशाला में जा बैठ पाता,

१. एक तरहकी वल्लरी जिसकी कोंपलें सफ़ेद होती हैं और फूल बहुत लाल।

तो निश्चय ही मैं
अपनी छेनी और नपैनो का आनन्द लूटता।

आकाश में लटके
औंधे चषक के समान है यह।
ताम्र-कलश मण्डित मनोहर मन्दिर,
काली लकड़ी में से उकेरा गया,
जिसे अपने हाथों बनाया था मैंने।
और उन हाथों से
जिन्हें मैंने स्वयं छेनी पकड़ना सिखलाया,
मेरे बच्चे ने
उत्कीर्ण किया, सुनहले समुन्नत ध्वजस्तम्भ के ऊपर गरुड़,
कैसा उड़ता हुआ-सा बैठा—
लगता है ज्यों उसके पंख अब भी चंचल हैं!
कहते हैं—मैंने उससे ईर्ष्या की!
भला, यह कैसी बात!
किस पिता का मन गर्वसे फूल नहीं जायेगा,
पुत्र की प्रशंसा सुन कर?
हम बाँध सकते हैं हज़ारों घण्टों की जिह्वाएँ
मगर क्या बाँध सकता है कोई एक ही मुँह के भीतर की जीभ?
उस मन्दिर के
दोनों गोपुरों पर रखा था हमने
सागवान की लकड़ी का बना अष्ट-दिक्पाल-विग्रह।
एक तो उसी का बनाया हुआ था,
दूसरा ख़ुद मैंने ही अपने हाथों से बनाया था।
कहते हैं, उसकी बनायी प्रतिमा
मेरी प्रतिमा से अधिक प्राणवान् बनी!
क्या हुआ अगर मेरा हाथ मात खा गया,

आखिर मेरा ही बेटा तो है—
जो विजयी हुआ !
मेरी आँखों के तारे की प्रशंसा
क्या मेरी ही प्रशंसा नहीं ?
कहते हैं, बेटे की प्रशंसा सुन कर
मेरा मुख मलिन हो गया था ।
यह सच है कि मैं शिल्पी हूँ
किन्तु क्या मैं बाप नहीं हूँ ?
लोग कहने लगे 'बूढ़ा खूब जानता है शिल्प और शास्त्र,
किन्तु शिल्पचातुरी उसके बेटे में अधिक है'—क्या हो गया है
इन ग्रामवासियों को !
शिल्पशाला में
काम करते थे हम दोनों पास-पास बैठ कर
किन्तु धीरे-धीरे हमारे बीच में मौन बढ़ता गया ।
लोग चाहे कुछ भी कहें
किन्तु क्या मैं उसका पिता उसके अनर्थ की कामना कर सकता हूँ?
चाहे वह कितना ही कुशल क्यों न हो,
उसने शिक्षा और अभ्यास अपने पिता से ही पाये हैं ।
'जब चाँद उदित होता है
तो सूर्य छिप जाता है'—क्यों उस बूढ़े नायर[1] ने ऐसा कहा ?
जब मैं उसके घर मिलने गया ?
मैंने बनायी एक यन्त्र-पुतली, तमाशे के लिए
और स्थापित कर दिया उसे पुल के नीचे,
पुल के एक सिरे पर पैर रखते ही
वह मनोहर पुत्तलिका जल-देवता के समान,
थिरकती हुई जलवितान से धीरे-धीरे ऊपर उठती,
और जब आदमी पुल के बीच में पहुँचता

१. एक प्रसिद्ध सामन्त ।

तो वह गुड़िया मुँह खोल कर उस पर थूक देती,
यात्री हक्का-बक्का रह जाता।
कितने विस्मित नेत्र आ जुटे
नदी के किनारे इस विचित्र दृश्य को देखने के लिए।

अगर पौदा चन्दन का है
तो अवश्य ही महक फैला देगा रगड़ने पर,
मेरे बेटे ने भी तुरन्त अपनी कुशलता का नमूना दिखाया;
इसमें निन्दा की क्या बात थी ?
चार ही दिन के अन्दर
एक दूसरी पुत्तलिका उठी,
लोगों की जिह्वा पर बेटे के नाम के साथ।
अजीब तमाशा था—
इस तरफ़ जब मेरी गुड़िया उठती थूकने के लिए
तो दूसरी तरफ़ उसकी गुड़िया का हाथ बढ़ता।
मेरी गुड़िया ने मुँह खोला नहीं,
कि एक चपत आ पड़ी उसके गाल पर।
मुझको लगा कि चपत मेरे ही गाल पर पड़ी है।

क्या कभी आकाश में दो चाँद एक साथ रह सकते हैं ?
बेटा कुटिया छोड़ कर चला गया,
उसकी माँ रोती रही,
मेरा मन भूसी की तरह जलता रहा,
बिदा की वेला में मैंने कुछ भी नहीं कहा था !
जब मन्दिर में
नया गज-पण्डाल बनाने का समय आया,
इसके लिए मुझे जाकर बुलाना पड़ेगा,
उस कीर्तिशाली बेटे को !
'बेटे से परामर्श लेकर

पण्डाल को .खूब सुन्दर बनाओ—
परकोटे के अन्दर क़दम रखते ही तम्पुरान ने कहा था।
सोचा क्यों न लौट चलूँ,
किन्तु लौट नहीं सका।
अबतक तो कभी किसी ने मुझसे नहीं कहा था
किसी दूसरे से परामर्श लेने के लिए!
कहते हैं—मुझमें ईर्ष्या जाग उठी
क्या बेटे की प्रशस्ति में पिता का कोई साझा नहीं ?
क्या काठ का बढ़ई केवल काठ का ही होता है ?
पण्डाल ऊपर उठा
अधिकारियों के कौतुक के साथ-साथ,
अब उसके शिखरों के लिए मनोहर कला-शिल्प की ज़रूरत है।
'इसे मैं उकेर लूँगा,
आप ऊपर का काम सँभाल लीजिए'....
क्या गृह-शिखर के शिल्प का दायित्व लेने के लिए
बेटे की अनुमति लेनी पड़ती है ?
नीची चन्दन की लकड़ी पर
उत्कीर्ण कर रहे थे वे हाथ,
महालक्ष्मी देवी के मनोहर लीला-कमल।
ठीक ऊपर-ही-ऊपर
मैं तराश रहा था लकड़ी का बड़ा कीला
तलवार की धार-सी चमकने वाली बड़ी पैनी छेनी से।
उछल गयी, अनजाने छेनी,
मैंने प्रार्थना की, मेरे बेटे के ऊपर न गिरे।
पलक मारते ही मैंने देखा—
छटपटा रहा है ज़मीन पर, मेरा बेटा
कट-सा गया है गला धड़ से

चारों तरफ़ लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी,
सुई-सी नुकीली आँखें मेरे मुख पर पड़ीं।
सीढ़ी पर तब क्या मेरा पैर जम सकता है ?
मैं नीचे गिर पड़ा।
कहते हैं 'क्षमा कर देना' उसने कहा,
किन्तु मैंने नहीं सुना
कटे हुए रुधिरासिक्त कण्ठ पर
पड़े हुए बंकिम केश,
घोर वेदना से पथरायी हुई आँखें,
जुदा नहीं होता मेरे मन के नेत्रों से
पल-भर को भी वह रूप।
बुढ़िया माँ को हँसते हुए नहीं देखा है
उस दिन से किसी ने।
गरम-गरम आँसू भी
बह-बह कर समाप्त हो चुके हैं।

अगर कहूँ, यह हाथ का प्रमाद था,
तो कौन इस पर विश्वास करेगा ?
चाहे लोग कितना ही क्यों न कहें—
पर, बूढ़ी माँ ! क्या कोई पिता ऐसा कर सकता है ?
वह मेरा बेटा
इस अन्धे की लकड़ी बन कर रहता !
अगर यह भयानक दुर्घटना नहीं होती।
'नहीं होती ?'
रह-रह कर अन्तःकरण बोल उठता है 'नहीं करता'
अगर कहूँ—यह मेरे हाथों का प्रमाद-मात्र था
तो कौन विश्वास करेगा ?
चाहे लोग कितना ही क्यों न कहें,

किन्तु, कोई भी पिता क्या ऐसा कर सकता है ?
फिर भी
न जाने, कौन मेरी छाती पर
रह-रह कर हथौड़े से मार रहा है,
न जाने,
किस कीले को वहाँ से उखाड़ रहा है !
'क्या आँखों में धूल की कोई कनी गिर गयी ?
पानी क्यों बह रहा है ?'
'हाँ, इस घर की धूल साफ़ हुए बहुत दिन जो हो गये'
पत्थर पर पान-सुपारी कूटते हुए बूढ़ी ने,
उस बूढ़े शिल्पी का मनोराज्य भंग किया।

—१९५५]

■ चरम शृंग पर

जब ऊँघने लगता था अलस याम—
और,
होने लगता था जग का निःश्वास प्रक्षीण,
तब,
खोज में एक संजीवन-स्वर थी,
तू
अपने हृदय में डूबता-उतराता था।
ऐसे में, आ बैठते थे
चटकती उँगलियों की नोंक पर,
छन्द और मात्राएँ;
जो जगाये रखती थीं तुझे।
हे तारक !

यदि समय आ गया है,
तो
पहुँच जा चरम शृंग पर !

रात्रि को पुलकायमान करता हुआ,
आकाश-प्रांगण में सजी विश्व-सभा में,
सर्वप्रथम प्रविष्ट होकर
संकुचित खड़ा रहा तू—
यद्यपि घिर गया शीघ्र ही
स्नेह के परिवेश से ।
यदि आ गया है समय
तो,
ले विदा उन सुहृदों से भी,
की थी आशा जिन्होंने
संजीवनी के एक स्वर की—
और हे तारक !
आरूढ़ हो जा चरम शृंग पर ।

तेरे लिए किसी लजीली ने खोला था
अपने नीले उत्तरीय का आँचल,
सुस्निग्ध मृणाल-वलय से सज्जित,
कृश-पेलव हाथों से,
खिसक गया था जिन पर से,
बालेन्दु वलय ।
क्षण-भर में ले विदा,

उसे तू आलिंगन में भर कर—
गुनगुना दे गुण-गान
कन्धे पर बिखरे, नील, कुटिल कुन्तल का।
और तब,
हे तारक !
आरूढ़ हो जा चरम शृंग पर।

सब ज्योतियों में अनन्य,—
अति चंचल ज्योति-कला की खोज में रत तू !
हर्षानुभूति से भींगा है,
एक लघु लहरी के अधरों पर
स्फुरित देख
उस अनन्य दुर्लभ स्वर को
जिसकी प्राप्ति हेतु
डूबता, तिरता है तू अपने अन्तरंग में।
हो रहा असमर्थ अभिव्यक्ति में उस स्वर की—
इसलिए, और शिथिल हो जाने से पहले विस्मय बोध के,
आरूढ़ हो जा चरम शृंग पर,
हे तारक !
सूखने से पहले भींगी पलकों के।

विराट् विश्व के सृजनात्मक प्रयोजन में
अदृश्य रूप से निहित,—
कम्पित काल की लहरियों में प्रस्फुटित,
कमल की फुनगी पर

निर्भीक रूप से स्पन्दित
पराग-कटोरी के झर जाने का समय
यदि आ ही गया,
तो,
प्रकाश-रेणुओं को प्रकीर्ण करता हुआ
हे तारक !
तू, चरम शृंग पर आरूढ़ हो जा !

हैं खोजती जिस शब्द को सब वाणियाँ,
और—
ढूँढ़ रहा जिसे सागर का गम्भीर हृदय भी
उलट-पुलट कर चमकीले
पंत्ते स्मृति-पत्र के ।

उसके अन्वेषण में लगी आत्मा की
कठिन वेदना से
हृदय वर्तिका को—
जो प्रोज्ज्वलित करता है हाथ,
उसे प्रणाम कर ।
जो गायन है अभी अपूर्ण—
वह गायन बनने को
हे तारक !
हो जा तू आरूढ़, चरम शृंग पर ।

— १९६४]

● ●

हमारे कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन

ये ग्रन्थ योग्यतम लेखकों-द्वारा रचित, शुद्ध तथा सुमुद्रित हैं और आपके पुस्तकालय के लिए संग्रहणीय हैं।

शोध-प्रबन्ध

ग्रन्थ	लेखक	मूल्य
१. प्रेमचन्द का नारी-चित्रण	: डॉ० गीता लाल	२५.००
२. रीतिकालीन अलङ्कार-साहित्यका शास्त्रीय विवेचन	: डॉ० ओम्प्रकाश शास्त्री	२५.००
३. हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य	: डॉ० सियाराम तिवारी	२२.००
४. तुलसीदास के भक्त्यात्मक गीत	: डॉ० वचनदेव कुमार	२०.००
५. भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी-साहित्य में अभिव्यक्ति	: डॉ० सुषमा नारायण	२०.००
६. प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी उपन्यास	: डॉ० कैलाश प्रकाश	१२.५०
७. करुण रस	: डॉ० ब्रजबासीलाल श्रीवास्तव	१२.५०
८. हिन्दी साहित्य में हास्य रस	: डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदी	१०.००
९. सूरसागर का लोक-दर्शन	: डॉ० हरगुलाल	१०.००
१०. मगही लोक-साहित्य	: डॉ० सम्पत्ति आर्याणी	१०.००
११. मगही व्याकरण-कोश	: ,,	७.५०
१२. निराला की काव्य-साधना	: सुश्री वीणा शर्मा	६.००

आलोचनात्मक ग्रन्थ

ग्रन्थ	लेखक	मूल्य
१३. विद्यापति और उनकी पदावली	: प्रो० देशराज सिंह भाटी	१८.००
१४. लक्ष्मीनारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक	: प्रो० शत्रुघ्न प्रसाद	१२.५०
१५. विमर्श और निष्कर्ष	: डॉ० सरनामसिंह शर्मा	१२.५०
१६. हिन्दी पद-परम्परा और तुलसीदास	: डॉ० रामचन्द्र मिश्र	१२.५०
१७. सूरदास और उनका भ्रमरगीत	: प्रो० दामोदरदास गुप्त	१२.५०
१८. हिन्दी साहित्य : सर्वेक्षण और समीक्षा	: प्रो० श्यामनन्दनप्रसाद सिंह	१०.००
१९. सरल भाषा-विज्ञान	: डॉ० मनमोहन गौतम	८.००
२०. मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास	: डॉ० रामरतन भटनागर	७.५०
२१. युगकवि पन्त की काव्य-साधना	: डॉ० विनयकुमार शर्मा	७.००
२२. कुरुक्षेत्र-मीमांसा	: प्रो० कान्तिमोहन शर्मा	७.५०
२३. गोदान : सौन्दर्य और समीक्षा	: प्रो० रामकृष्ण मिश्र	७.५०
२४. हिन्दी के प्रतिनिधि कवि	: प्रो० रामप्यारे तिवारी	६.५०
२५. अनुसन्धान का विवेचन	: डॉ० उदयभानु सिंह	६.००
२६. जायसी : एक विवेचन	: प्रो० देशराज सिंह भाटी	५.००
२७. कविता और हिन्दी-कविता	: श्री नरेश	५.००

हिन्दी साहित्य संसार

दिल्ली-७ :: पटना-४

कवि कुरुपका गद्य-लेखन

महाकविके रूपमें ही नहीं एक श्रेष्ठ गद्यकारके भी रूपमें
जी० शंकर कुरुपका स्थान मलयालम
साहित्यमें उन्नत और अनन्य है।

प्रोफ़ेसर एम० पी० बालकृष्णन नायर

विश्वसाहित्यके विकासका इतिहास परखनेपर विदित है कि गद्य-पद्य दोनों क्षेत्रोंमें प्रगल्भताके साथ विचरण कर विजय प्राप्त करनेमें बहुत कम लोग ही समर्थ हुए हैं। गद्य-रचना पद्य-रचनासे अधिक कठिन है, ऐसा मत रखनेवालोंका भी अभाव नहीं। किसी कृतिकी भूमिकामें बर्नाड शॉने लिखा है: "यह नाटक मुझे बहुत जल्दीमें खतम करना पड़ा, अतः इसे उत्तम गद्यमें लिखनेका समय नहीं मिला। इसलिए मैंने सोचा कि इसे शेक्सपीयर-द्वारा प्रयुक्त छन्दोंमें ही लिख डालूँ।" और श्री एम० पी० पॉल कहते हैं: "पद्य भाषाकी कसरत मात्र है। अभ्याससे कोई भी यह कर सकता है। चार पंक्तियोंमें किसी भावांशको बिठानेमें चार गेंदोंसे खेलनेसे बढ़कर कोई बड़ी बात नहीं।"

यद्यपि गद्यका आविर्भाव पहले हुआ तथापि साहित्यमें सर्वप्रथम प्रतिष्ठा मिली पद्यको। पद्य-साहित्यकी तुलनामें संस्कृतका गद्य-साहित्य ग़रीब है। किन्तु, संस्कृत साहित्यके मीमांसक गद्यकी प्रधानतासे अनभिज्ञ नहीं थे। 'गद्यम् कवीनाम् निकषम् वदन्ति'—इसका प्रमाण है। अँगरेज़ी, फ्रेंच आदि पाश्चात्य भाषाओंमें गद्य-पद्य दोनों विधाएँ क़रीब-क़रीब एक-जैसा विकास प्राप्त कर चुकी हैं। अँगरेज़ीके अधिकांश ख्यातिप्राप्त कवि प्रथम कोटिके गद्यकार भी हैं। मैथ्यू अर्नोल्ड, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, टी० एस० इलियट, स्टीफन स्पेण्डर आदि प्रतिभावान् व्यक्ति कविता और गद्य दोनों क्षेत्रोंमें समान रूपसे रचना-शक्तिकी छापें अंकित की हैं। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर श्रेष्ठ गद्यकार भी थे। हिन्दी साहित्यमें जयशंकर

प्रसाद, महादेवी वर्मा-जैसे कवियोंने गद्य-विधाको पोषित करनेवाली महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रदान की हैं।

मलयालममें ऐसे व्यक्ति अधिक नहीं हैं। जी० शंकर कुरुप एक ऐसे 'साहित्यसव्यसाची' हैं जो पद्यकी तरह गद्यके क्षेत्रमें भी विजय-श्रीसे विभूषित हुए हैं। वे आधुनिक मलयालम साहित्यके सम्मान्य गद्यकारोंमें एक हैं। काव्यकी मधुरिमासे पूरित गद्य लिखनेमें उनकी तरह सफलताप्राप्त व्यक्ति कम मिलेंगे। जी० की गद्य-रचनाओंमें भावोंकी तीव्रता, विचारोंकी प्रौढ़ता, चिन्तनकी गहनता और भावशुद्धिका सुन्दर सम्मिश्रण है। हॉरमनी (Harmony) और रिद्म (Rhythm) उसमें अधिक निखार लाते हैं। कुरुपका गद्य-क्षेत्र सुविशाल, सुन्दर और विचित्र है। उनकी 'नवनवोल्लेखशालिनी' प्रतिभाने आलोचना, निबन्ध, गद्य नाटक, कहानी—इन सब मण्डलोंपर विहार किया है।

'गद्योपहारम्', 'लेखमाल', 'मुत्तुम् चिप्पियुम्', 'राक्कुयिलुकल्', आदि निबन्ध-संग्रहोंमें एक कलामर्मज्ञ समालोचक और कुशल निबन्ध लेखकके रूपमें उनके दर्शन होते हैं। समालोचनामें जी० रूखे व्यंग्यों और कुत्सित भर्त्सनाओंकी वर्जना करते हैं। स्थितप्रज्ञकी सौम्यता और मितभाषीका स्वर वे ग्रहण करते हैं। उनकी रुचि दोषोंको ढूँढ़ निकालनेमें नहीं, गुणों तक पहुँचनेमें है। वे उद्यत होते हैं आलोच्य कृतिकी आत्माको ढूँढ़नेके लिए। काव्यके पीछे विद्यमान कवि-हृदयको पहचाननेका वे प्रयत्न करते हैं। भाषाके सौन्दर्य और चेतनाने जी० की समालोचनाओंको समुन्नत करके सृजनात्मक साहित्यकी कोटिमें रखा है। "उत्कृष्ट कृतियोंके आस्वादनसे अपनी आत्मामें उद्भूत धीर और उदात्त अनुभूतियोंको जो व्यक्ति अभिव्यक्ति देता है, वही उत्तम समालोचक है"—एनत्तोल (फ्रान्स)के इस कथनको जी० ने सार्थक कर दिया है। जीवनीपरक समालोचनाकी सरणीमें दृढ़ क़दमोंके साथ आगे बढ़नेमें कुरुपकी चातुरीको व्यक्त करता है 'राक्कुयिलुकल्'। 'गद्योपहारम्', 'लेखमाल', 'मुत्तुम चिप्पियुम्' आदि संग्रहोंमें उनकी समालोचनाएं भावोज्ज्वल और विचार-मधुर हुई हैं। वे आलोचनाकी कलाके मर्मज्ञानी, और सहृदयोंमें अग्रणीके उस रूपको प्रकाशमें लाती हैं।

जी० एक श्रेष्ठ निबन्धकार हैं। उनके अधिकांश निबन्धोंको 'गद्यात्मक

भावगीत' (Lyrics in prose) कह सकते हैं । वे उनके विस्तृत अध्ययन और चिन्तनकी उपज हैं । कुरुपकी कल्पना और भावनाका चैतन्य उनमें समाया हुआ है। अपनी आत्मामें अन्तर्लीन विषयोंके सम्बन्धमें ही कुरुप साधारणतया लिखा करते हैं । दर्शनके उच्च शिखरमें और जीवनकी तराईमें उनकी लेखनी चातुर्यके साथ समान रूपसे संचरित होती है । विषय-भेदके अनुसार कुरुपकी भाषा प्रौढ़-गम्भीर और सरल-सुन्दर बन जाती है । सन्दर्भके अनुकूल भाषाशैलीमें परिवर्तन लानेकी क्षमता उनमें है । "आषाढ़की अँधेरी रातोंमें जब मैं अकेला अपने छोटे घरके बरामदेमें बैठकर, घने बादलोंकी गोदसे निकलकर उसीमें छिप जानेवाली बिजलीको देखता तो न जाने क्यों, उछल पड़ता । आज मैं बिजलीसे अनभिज्ञ नहीं हूँ । वह मेरे परिवारका ही अंग बन गयी है और इस समय मेरी मेज़के पास खड़ी होकर, पतले काँचके झीने अवगुण्ठनके भीतरसे मेरी लेखनीको देख-देखकर मुसकरा रही है । फिर भी विद्युत्की अप्सराके प्रति तथा उसको बाँधकर रखनेवाले मनुष्यके प्रति मेरा कौतुक रत्ती-भर भी कम नहीं हुआ है । अपने शरीरपर हाथ लगानेका अविवेकी कृत्य करनेवालोंको भस्म करनेवाली बिजली क्या चरित्रगुणमें दमयन्तीसे कम है ?" जिस तूलिकाने ऐसा परिमल-प्लावित प्रौढ़ गद्य लिखा, वह ऐसा-ऐसा सरल गद्य भी लिख सकती है : "उन दिनों एक बार देशाटनके इच्छुक महाकवि कोटुङ्ङल्लूर कुञ्जिक्कुट्टन तम्पुरान मेरे घरके पासके मन्दिरमें आये थे, अब भी मैं उसको याद करता हूँ । एक ओर करके बाँधे हुए वे घुंघराले बाल, संस्कार और सम्पदाकी सौम्यता और बुद्धिकी प्रखरताको द्योतित करनेवाली वे आँखें, कन्धेसे लेकर एड़ी तक लम्बा वह उत्तरीय—ये सब आज भी मेरी आँखोंके सामने हैं, चारों ओर घिरे बैठे आराधकोंकी टोली भी ।"

'जी' ने 'सन्ध्य', 'इरुट्टिनु मुन्पु', 'मरिक्कानुम पिरक्कानुम् पेटि' आदि नाटकोंकी भी रचना की है । 'सन्ध्य' एक प्रतोकात्मक नाटक है । उसमें उज्ज्वल प्रतीकोंके सहारे एक सार्वकालिक और सार्वजनीन प्रमेयका सुन्दर अवतरण है । कुरुपके नाटक व्यंग्य-मधुर भाषाके प्रयोगमें उनकी प्रगल्भताको प्रकट करते हैं । वशीकरणकी शक्ति रखनेवाले अनेक शब्द उनकी आज्ञासे पंक्तिबद्ध हो जाते हैं ।

'राजनन्दिनि', 'हरिश्चन्द्रन्' आदि कहानियाँ और 'राधाराणि' नामक उपन्यास भी जी० की गद्य-कृतियोंमें सम्मिलित हैं। बच्चोंके लिए रचे गये इन ग्रन्थोंकी भाषा सरल और सुन्दर है। भावोंकी विशुद्धिमें तथा संस्कृतिके मूल्योंमें उनकी सानी रखने योग्य पुस्तकें मलयालम साहित्यमें अधिक नहीं हैं।

'साहित्यपरिचयम्' एक व्याकरण ग्रन्थ है। इसमें सीधे-सरल ढंगसे व्याकरणके शुष्क तथ्योंकी व्याख्या है, मलयालमके अध्येता और अध्यापक दोनोंके लिए यह समान रूपसे लाभदायक है।

गद्य-कविताकी रचनामें जी० ने अपनी एक विशिष्ट सरणीका निर्माण किया है। जी० की गद्य-कविताएँ भी रचना-सौन्दर्यमें, भावोंकी तीव्रतामें उच्चकोटिकी हैं। सर्जनात्मक गद्यका इससे अधिक अच्छा उदाहरण शायद ही कहीं मिल पाये।

जिन ग्रन्थोंका यहाँ उल्लेख हुआ है, उनके अलावा भी जी०के कई लेख, जो ग्रन्थ रूपमें संगृहीत नहीं हुए हैं, 'साहित्य परिषत्तु', 'मातृभूमि' आदि प्रकाशनोंके पन्नोंमें बिखरे पड़े हैं। कुरुप जब 'साहित्य परिषत्तु'के सम्पादक थे, उस समय उनके द्वारा लिखे सम्पादकीय वक्तव्य सम्पादकके रूपमें उनकी योग्यताके परिचायक हैं।

महाकवि कुरुपकी प्रौढ़ और उज्ज्वल गद्य-रचनाएँ हमारे साहित्य-भण्डारके अमूल्य रत्न हैं। एक गद्यकारके रूपमें मलयालम साहित्यमें उनका स्थान उन्नत और अनन्य है। 'कैरली' की पद्यशाखाकी तरह गद्यशाखामें भी 'जी' के व्यक्तित्वकी छाप ऐसी अमिट पड़ी है कि कालके कर तल हस्त भी उसे मिटानेमें समर्थ नहीं!

• •

हमारे नये प्रकाशन

❀ मेम साहब का बैरा

स्वरूप कुमारी बक्शी

रंगमंच पर सफलतापूर्वक खेलने योग्य हास्य एवं व्यंग्य से परिपूर्ण नाटक संग्रह। इस नाटक-संग्रह में छह रेडियो-रूपक हैं जो समय-समय पर आकाशवाणी से प्रसारित हो चुके हैं।

मूल्य ३.७५

❀ कौड़ियों का नाच

स्वरूप कुमारी बक्शी

उत्तर प्रदेश सरकार-द्वारा पुरस्कृत कहानी-संग्रह। यह कहानियाँ पाठक को युग की सामाजिक स्थिति पर विचार करने की प्रेरणा देती है।

मूल्य ३.७५

❀ डाली की डिनर पार्टी

स्वरूप कुमारी बक्शी

स्वरूपकुमारी बक्शी का नवीनतम कहानी-संग्रह। संग्रह में दस कहानियाँ हैं। सभी कहानियाँ समाज के विविध चित्रों को प्रस्तुत करती हैं। मूल्य ४.००

❀ संस्मरणों के बीच निराला

शंकर सुलतानपुरी

महाकवि निराला के जीवन-परिचय, कृतित्व, व्यक्तित्व एवं संस्मरणों का संक्षिप्त एवं प्रामाणिक संकलन। मूल्य ३.००

सूर्यमुखी आगामी कल और उलझन-भरा जंगल

महाकवि जी० शंकर कुरुप से एक विशेष भेंट

रमेश बक्षी

छतसे लगाकर फ़र्श तक लम्बे शीशोंवाले दरवाज़े बन्द थे लेकिन उनपर गिरे परदे हटे हुए थे। यह लग रहा था कि बाहर बहुत तेज़ सर्दी है, पिनें चुभाती हवा है लेकिन गोल्फ़लिकके कमरेमें बैठे जब भी नज़र बाहर जाती एक उलझा हुआ जंगल दिखाई देता—एक भी लम्बा पेड़ नहीं या ऐसा घनापन नहीं कि जंगलको देखनेको मन हो लेकिन दूर तक फैली बौनी और संकुचित झाड़ियोंको देखकर यह ज़रूर लगता कि इस ओर ऐसे जंगलको साफ़ करके यह कॉलोनी बनायी गयी है, यह लगता ही नहीं कि दिल्लीमें बैठे हैं, यह भी नहीं लगता कि दिल्लीकी किसी सरहदपर हैं।····वह २१ नवम्बरकी सुबह थी और मैं जब गोल्फ़लिक पहुँचा तो मैंने श्री कुरुपको उन दरवाज़ोंसे बाहर देखते देखा था—बाहर एक उलझा हुआ जंगल था। लेकिन वे वहाँ कहीं उलझे नहीं थे। मुझसे दो मिनिटमें इतने सहज और अनौपचारिक रूपसे बातें करने लगे जैसे मैं उनसे कई बार मिला हूँ। 'मातृभूमि' और 'युगप्रभात' के सम्पादक श्री बारियार भी वहाँ थे और बात हिन्दीके नवलेखनसे शुरू हुई। मुझे पता यह लगा कि 'मातृभूमि' नये लेखकोंके लिए भी प्लेटफ़ॉर्म है, 'देश' की तरह नहीं, 'धर्मयुग' की तरह। मलयालममें छोटी पत्रिकाएँ निकालना मुश्किल है और हिन्दीका आधुनिक साहित्य कहीं बहुत आगे है और कलके परिसंवादमें भारतीयता प्रमुख थी, राष्ट्रीयता नहीं····। कोई इण्टरव्यू नहीं लिया जा रहा था लेकिन मलयालम और हिन्दी साहित्यकी गतिविधिका विश्लेषण करते मेरी आँखें 'ओटक्कुपल'

पर ठहरी थीं—मुख-पृष्ठपर बनी अल्काजीकी पत्तियाँ····और मैंने फिर पाया कि कमरेमें बैठा हर आदमी शीशोंसे बाहर देख रहा है—तब श्री कुरुपकी सौम्यता और उनकी कविताओंमें व्याप्त वंशीध्वनिपर मैं ठहर गया था।

मैंने पूछा था—"ओटक्कुष़लकी अधिकांश कविताओंमें प्रकृतिको ही महत्त्व मिला है। हिन्दीमें पन्तजी प्रकृतिके कवि माने जाते हैं, लेकिन ऐसा लगता है कि वे अपनी परवर्ती रचनाओंमें प्रकृतिसे दूर होते गये····। मेरे विचारसे आप भी परवर्ती लेखनमें प्रकृतिको भूल गये हैं—प्रकृतिसे यह दूर होना उससे विलग हो जाना है या यह कोई अगली यात्रा है····?"

श्री कुरुपको शायद मेरा प्रश्न अच्छा लगा कि इसके उत्तरके माध्यमसे वे अपने चिन्तनको स्पष्ट कर पायेंगे। बोले—"मैं मनुष्य और प्रकृतिमें भेद करके नहीं देख सकता, मैं दोनोंको एक साथ देखता हूँ। मानवकी तरह और मानवकी ओरसे प्रकृतिको देखते समय प्रकृतिका अलग अस्तित्व रह नहीं जाता। प्रकृति मेरे लिए मित्र और शिक्षकके आगे प्रेरणा देनेवाली रही है। प्रकृतिकी तरफ़ देखते ही नये स्पर्श मिलते हैं—वे स्पर्श मोहक या सुखकर नहीं होते हैं, ऐसे होते हैं जिनसे अनुभव गहरे होते जाते हैं। प्रकृति केवल दृश्य मात्र ही नहीं है, सजीव है। उससे हम नित नये अनुभव ले सकते हैं।"

—"प्रकृति उत्फुल्ल बना सकती है या दुःखी तो कर सकती है, वह अनुभव भी कैसे दे सकती है····?"

—"यही नहीं, प्रकृतिने अपने अस्तित्वसे मेरा व्यक्तित्व भी बनाया है। कोई भी सन्दर्भ हो, कोई भी दिशा हो वह प्रकृतिमें-से मिल सकती है – यहाँतक कि जीवित रहनेके नये कारण और चिन्तनका बोध तक प्रकृतिसे मिलता है। मेरे लिए यह प्रकृति-बोध बहुत महत्त्वपूर्ण है। केवल शिक्षक या मित्र उतना नहीं देता जितना कि प्रकृति, क्योंकि वह सम्पन्न है। केवल मानवीयकरणसे ही प्रकृतिका अध्ययन नहीं किया जा सकता है, प्रकृति तो मेरे लिए अनुभवोंका घर है।····"

बीचमें रोककर श्री वारियारने चाहा था कि अपने लेखनके सन्दर्भोंमें-से श्री कुरुप कुछ कहें। साथ ही मैंने भी पूछा था—"लेकिन आप प्रकृतिको देखते किस रूपमें हैं ?"

श्री कुरुप कहीं वर्षों पहले चले गये थे——जब उनके बाल काले रहे होंगे, जब वे हमारी ही उम्रके रहे होंगे और रास्ता उलझन-भरा लगता होगा।....

——"सन् '३०–'३५ की बात है। केरलमें ऐसे परिवर्तन आये थे कि प्रकृति-के रूपको समझनेकी बजाय उसके रूपपर विचार करना ज़रूरी हो गया था। मैं यह कह सकता हूँ कि मैं तब भी प्रकृतिसे दूर नहीं जा रहा था, न ही विलग हो रहा था। मुझे तो लगता है कि जनमानसके साथ आइडेण्टीफ़िकेशन भी उसी प्रकृतिमें-से मिला है मुझे। मेरे बारेमें यह भी सही है कि मैंने प्रकृतिके माध्यमसे आत्माभिव्यक्ति नहीं की है। यह कह सकता हूँ कि अपनी आत्माभिव्यक्तिको मैंने प्रकृतिके माध्यमसे विस्तृति दी है। मेरे सारे अनुभव प्रकृतिके सम्पर्कसे ही गहरे और विशद् हुए हैं। वैसे मानव क्या है——नेचरका प्रॉडक्ट है और व्यक्ति अपने आसपासके देश-काल-वातावरणमें-से निर्मित एक प्रगतिशील सत्ता। अपने समयमें जो हो रहा है, अपने आसपास जो घटित है, जिस तरहके सुख-दुःख हमें घेरे हैं ये ही सब आदमीको बनाते हैं। यह जो व्यक्तित्व है वह हर जगह अलग-अलग होता है, इसीसे व्यक्ति-व्यक्ति अलग हो जाते हैं, तब यह कह सकते हैं कि ऐसी विकसित अन्तरात्मा अनुभवोंकी विविधतासे उत्पन्न होती है। देखें तो यह कह सकते हैं कि युगधर्म परिवर्तन है——समय बदलता है——वातावरण बदलता है—सभी चीज़ें बड़ी तेज़ीसे बदलती जा रही हैं। इस सारी परिवर्तनशीलताको स्वीकार करनेके बाद जब प्रकृतिकी तरफ़ देखता हूँ तो अपनी अभिव्यक्तिके लिए नये आयाम प्रकृतिमें-से ढूँढ़ पाता हूँ।...."

——"लेकिन प्रकृति इस सबमें सहायक कैसे होती है?"

——"यह बहुत सहज है। मुझे याद है, कविताएँ लिखते-लिखते मैं भटकता भी हूँ अभिव्यक्तिके लिए। हिटलरके दिनोंकी बात है। मैंने एक नाटक लिखा था—'अँधेरेसे पहले।' फ़ासिज़मका दौरदौरा था उन दिनों और इथियोपिया मुश्किलमें था। वह पूरा नाटक कहनेके लिए गीत या कविता मुझे उपयुक्त नहीं लगी। मैं जान-बूझकर उस नये शिल्पकी तरफ़ नहीं गया था लेकिन उस तरफ़ जाना ज़रूरी हो गया था। 'लिरिकल फ़ीलिंग' और 'कॉम्प्लेक्स फ़ीलिंग' अलग-अलग होते हैं और कॉम्प्लेक्स फ़ीलिंगको व्यक्त करनेके लिए नाटककी तरफ़ जाना पड़ा था मुझे। मैंने उसमें बताया था कि उस देशकी रक्षा वहाँके पहाड़,

वहाँकी नदियाँ, वहाँकी प्रकृतिने की थी। उस प्रकृतिके प्रति उस देशके मनमें अनुराग होता है। मेरे इस नाटकमें थर्मा एक नारी-पात्र है—आशीष और ऐश्वर्य-दायिनी नारी—और एक है क्वीन ऑव डार्क फ़्रीडम'। वह नाटक एक व्यक्ति-मनकी उन सामायिक स्थितियोंकी ओर संकेत करता है जहाँ पहुँचकर हम प्रकृतिकी ओर घूम जाते हैं। मेरे जीवनमें हमेशा प्रकृतिके माध्यमसे अपने-आपको समझना चलता रहता है। प्रकृति और जीवन दोनों बार-बार एक हो जाते हैं। प्रकृति जीवनका खाद्य है उसी अर्थमें, उससे मनस्-क्षितिज विकसित होता है। अन्य-अन्य अनुभवोंकी तरह प्रकृति भी यत्र-तत्र कर हमारे व्यक्तिके लिए एक अर्जित रस देनेवाली बन जाती है। एक पंक्तिमें कहूँ कि प्रकृति जीवनको समझने और उसे स्वीकार करनेका माध्यम है।"

उस माध्यम शब्दके साथ ही शीशेवाले दरवाज़ोंके पार जो उलझन-भरा जंगल दीख रहा था वह धूप तेज़ होते खिलने लगा। वहीं एक पीला सूरजमुखी मुझे दिखा था—बेहद बीमार शक्लका। वैसे भी सन-फ़्लॉवरके इस हिन्दी अनुवादमें मुझे दयाभाव जुड़ा दिखता है—पराङ्मुखी व्यक्तित्व जैसे असहाय होता है वैसे ही यह फूल भी लगता है। लेकिन इसी सूरजमुखीका मलयाली अनुवाद है 'सूर्यकान्ति'—इस शब्दसे पराङ्मुखता नहीं झलकती लेकिन फिर भी जी० ने 'सूर्यकान्ति' से यही कहलवाया है : "मेरी तो धृष्टता यह है कि मैं सूर्यसे प्रेम करती हूँ···इसीसे 'सूरजमुखी' नाम देकर संसार मेरी हँसी उड़ाता है !"

मुझे याद आया कि १९३२ में जब जी० की यह कविता छपी थी तो केरलके समीक्षकोंने हंगामा मचा दिया था। शिकायत थी लोगोंकी कि कुरुप जिस जनवादी विद्रोहके स्वरकी तरफ़ बढ़ रहे थे वे क्योंकर 'सूर्यकान्ति'-जैसी प्रेमिल कविता (हिन्दीमें 'छायावादी' कह सकते हैं) लिखने लगे—

"काश, न देखा होता यह मुग्ध सुमन
न किया होता प्यार हम दोनों ने।"

मेरा प्रश्न था—"सूर्यकान्तिके प्रकाशन-समय कई लोगोंने आपपर सहसा रोमैण्टिक हो जानेके आरोप लगाये थे। क्या आप उस कविताके बारेमें कुछ कहना चाहेंगे कि उसमें प्रतीक है, या आरोपण है या वह शुद्ध प्रकृति-काव्य है ?"

श्री कुरुपको 'सूर्यकान्ति' की याद करते शायद अच्छा लगा या उन समीक्षकोंकी याद आयी जिन्होंने उतने वर्ष पहले कविपर प्रहार किया था। बोले वे—"मुझे उस समयका स्मरण आ रहा है जब 'सूर्यकान्ति' शीर्षकसे मेरा संग्रह छपा था। और वह टेक्स्टबुक-कॅमिटीके सामने पहुँचा था। उस समयके परम्परावादी कवि श्री उल्लूरके सामने यह प्रश्न आया कि इस संग्रहको किस कक्षाके लिए रखा जाये। बहुत अधिक विचार-विमर्शके बाद वे यह बोले थे—'इसे नीचेसे लगाकर सबसे ऊपर तककी किसी भी कक्षाके लिए रिकमेण्ड किया जा सकता है।' वे कहना यह चाहते थे कि मेरी कविताएँ तब समकालीनतासे हटकर थीं। यही नहीं, श्री आशान् और श्री वल्लतोल तक यह बात कहते थे। मैं केवल इतना जानता हूँ कि अपने समकालीनोंके बीच मेरा लेखन अगला लेखन था। रहा प्रश्न 'सूर्यकान्ति' का, सो वह उस फूलके आत्मचिन्तनपर लिखी गयी कविता है। मैंने अपने दमित प्रेम या किसी प्रेमाकर्षणको उसके माध्यमसे वाणी नहीं दी है। 'सूर्यकान्ति' का दर्द किसीका भी दर्द हो सकता है लेकिन मैंने उसे 'सूर्यकान्ति' के दर्दके रूपमें ही लिखा है। निश्चित ही वह गीतात्मक कविता है और उसमें प्रकृतिके रंग-गन्ध सभी हैं, सारा खिला हुआ सौन्दर्य उसमें है। मेरा अपना आत्मविकास हुआ है उस तरहके काव्यसृजनसे, वह अन्तिम उपलब्धि नहीं है—मैं बादको वहाँसे, उस प्रकृति-परकतासे ऊपर ही उठा हूँ। मेरे हृदयका स्पन्दन ही नहीं है उसमें, तारुण्य भी है उसमें और तापमान भी। सच यह है कि प्रकृतिके 'शेड्स'में और 'शैडोज़'में अनखोजा ईश्वर भी दिख जाता है। फिर भी आप यह नहीं कह सकते हैं कि यह सब सोचकर या इस तरहकी चिन्तनाके बाद मैंने कविताएँ रची हैं—दोज़ आर नॉट इम्पोज़्ड। वह कविता मेरी किसी भावनाकी प्रतीक भी नहीं है। सूर्यकान्ति पुष्पमें रंग, गति, प्रक्रिया, भावना सभी कुछ पहलेसे हैं, उनके आरोपणका सवाल नहीं उठता। वैसे सारा जीवन सार्वभौमिक है और जब यह मानकर मैं चलने लगता हूँ तो एक अज्ञात चेतनाके दर्शन भी मुझे होते हैं लेकिन यह सायास नहीं है।"

चर्चा 'सूर्यकान्ति'से चलकर 'जीवनकान्ति' पर जा पहुँची थी और मुझे भी

कुरुपकी कविताका अगला पड़ाव दिखने लगा था। १९४० में कविने 'नाले' (आगामी कल) शीर्षकसे एक धुँआधार कविता लिखी थी। 'सूर्यकान्ति'का कवि विद्रोह-कान्तिसे तमतमाने लगा था। मैंने 'आगामी कल'को उसके ऐतिहासिक महत्त्वके कारण दो बार पढ़ा था। हिन्दीके प्रगतिशील काव्यमें जिस तरह्की क्रान्ति-दिशा मिलती है वैसी ही ज्वालामयी घोषणाएँ उसमें भी हैं :

"आगे अब नहीं रहेगी दरिद्रता
इस प्रभात के स्वर्ण पर
तृण और तरु दोनों का
समान अधिकार है।....
औरों की अन्धता में
आनन्दित रहनेवाले
हे धन्यमानी नक्षत्र
केवल तुझे ही इसमें स्थान नहीं मिलेगा।"

यह कविता पढ़ते कलकत्तामें मुझे लगा था कि जैसे पन्त आध्यात्मिक अरविन्दपर जाकर रुक गये, कहीं कवि कुरुप भी किसी राजनीतिक मत तक पहुँचनेके लिए ही प्रकृतिसे दूर तो नहीं होते गये...? वह सन्देही प्रश्न मैंने स्पष्ट ही पूछ लिया—"आपने 'आगामी कल'में जो लिखा है क्या वह क्रान्तिदर्शिता है...या जिस आनेवाले कलकी 'धीरतेजस्साम्' सम्भावना आपने दी है वह केवल विद्रोह था ?"

वे प्रश्नके सन्देहको ताड़ गये थे, शायद मैं पहले कहीं एक वाक्य बोल गया था कि राजनीतिका साहित्यसे कुछ लेना-देना नहीं होता और अब 'आगामी कल' में राजनीति-जैसी चीज़ ढूँढ़ रहा था, इस कारण उनका उत्तर विश्लेषणात्मक था—"वह एक स्वप्न है या स्वप्न देखनेकी सामर्थ्य है—स्वप्न कोई कॅमिटमेण्ट नहीं है लेकिन बड़ा शक्तिशाली होता है। मैं माध्यम-ब-माध्यम देशप्रेमको छूता उस मानवीय प्रेम तक पहुँच गया था जहाँ सारे केरल और सारे देशके बारेमें एक साथ सोचा जा सकता है। केरलके किसान, वे ऊँचे-ऊँचे पेड़, नौकरीकी तलाश, ग़रीब ओणम्का पुलक-भरा उत्सव....मेरा मन अपने वातावरणमें-से

गुज़रते 'आगामी कल' को देखने लगा था…।"

सहसा शीशोंके पारवाले जंगलसे कमरेमें आँखोंको लौटाते वे बोले थे—"प्रेम जीवनको सुन्दर बनाता है और मुझे सुन्दर जीवन पसन्द है, घृणा पसन्द नहीं; माध्यमके रूपमें भी नहीं। किसी जीवनको या समाजको सुन्दर बनानेके तरीक़ेपर मेरी नज़र जाती है तो मैं गम्भीर हो जाता हूँ। समाजको भी किसी शस्त्रसे ठीक नहीं किया जा सकता। मैं अधिक सहज मानवीय तरीक़ोंमें विश्वास रखता हूँ। भूतकाल है और अगर ग़लत भी है तो हम ठीक करते हैं वर्तमानको ही, उस वर्तमानको किसी शस्त्रसे बिगाड़नेके पक्षमें न तब था, न अब हूँ।…"

वे रुके थे तो मैं बोला था—"आप जब समाजके सुधारमें विश्वास करते हैं तो…?"

—"वही मैं कह रहा था कि मैं कम्यूनिस्ट नहीं हूँ। मुझे मार्क्सके ये सिद्धान्त अच्छे लगते हैं कि समानता हो, सबको समान सुविधा प्राप्त हो और यह भी कि मज़दूर-किसान दरिद्रतासे मुक्त होकर सम्पन्न बनें; लेकिन इस वादके तरीक़ों-में मेरा विश्वास नहीं। उस तरीक़ेसे या तोड़फोड़से कुछ हो—यह समझमें नहीं आता…।"

मुझे स्पष्ट यह लगा कि समाजकी त्रस्त दशाके प्रति कविके मनमें विशेष सहानुभूति है, इसीलिए बोला था—"लेकिन समाज…"

अगला वाक्य कवि ही बोले—"हाँ, समाजके हर व्यक्तिका चेहरा खुशफ़हम हो… मैं तो यह चाहता हूँ। समाजकी सम्पन्न और असम्पन्न स्थितिको देखकर अपने देशकी यह तसवीर भी बनती है कि एक ऐसा व्यक्ति है, जिसका पेट बढ़ा हुआ है लेकिन दोनों हाथ बेहद दुबले हैं…। मुझे इससे तकलीफ़ होती है, मैं तो चाहता हूँ कि पेट और हाथ दोनों ही सानुपातिक हों—इस सानुपातिक स्वप्नको यथार्थ बनाना ही होगा। मैं तो समाजकी मानसिक और शारीरिक दोनों ही दुनियाओंके बारेमें सोचता हूँ। मेरा स्वप्न एक स्वस्थ विश्वका स्वप्न है।…"

इस स्वप्नके बारेमें मैं कुछ सोच ही रहा था कि एक मध्यान्तर आ गया—नाश्तेका। इडली और दोसेके बीच भी साहित्य-चर्चा रुकी नहीं—वे जानना चाहते थे कि हिन्दीके सम्पादकोंका वेतन मलयाली सम्पादकोंके वेतनसे कम है या

ज़्यादा, 'मातृभूमि' और 'ज्ञानोदय' के पारिश्रमिकमें कितना अन्तर है, हिन्दीकी नयी पीढ़ी किस सीमा तक परम्परा-भंजक है, साहित्यके शाश्वत मूल्योंके बारेमें कोई चिन्तित है या नहीं····? श्री वारियार 'मातृभूमि' के सम्पादक हैं और काफ़ी पीते वे बार-बार हिन्दीके उस नवलेखनके प्रति जिज्ञासु हो रहे थे जिसमें उन्हें 'टू मच मॉडर्निटी' दिख रही थी। सम्पादन और लेखनके बीच भटकती चर्चाके कारण मैं केवल लेखक रह गया था—सम्पादकके दायित्वसे केवल श्री वारियार बात कर रहे थे। मैंने पूछा था—"मलयालममें नयी पीढ़ीकी क्या स्थिति है? उनका लेखन आपको कैसा लगता है? उनके लेखनके प्रति आप क्या सोचते हैं?"

श्री कुरुपने बहुत स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर दिया—"हमारे साहित्यमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण नये हस्ताक्षर जुड़ते जा रहे हैं। वे निश्चित बड़ा काम करेंगे। मेरा परम्परामें ही विश्वास नहीं है, परम्पराके विश्वासमें भी विश्वास है। लेकिन यह ज़रूर कहना चाहता हूँ कि वे कुछ 'हरी' (जल्दी) में हैं, आनेवाला समय उन्हें अधिक गम्भीर और प्रौढ़ बनायेगा—यह सही है। मैं तो आशावादी हूँ और 'आगामी कल' में विश्वास रखता हूँ।"

—"लेकिन इस साल आपने क्या लिखा?"

—"मैंने इस साल," श्री कुरुपने याद करते कहा—"एक कविता लिखी है—'सतलज'। भाखड़ा नंगल तक पहुँचा हूँ। सतलजकी सारी कहानीको लेकर उसकी ऐतिहासिकताके बीचसे मैंने विकासकी यात्रा दिखायी है। मैं कुछ ऐसी और कविताएँ लिखना चाहता हूँ जो पुराने परिप्रेक्ष्य लिये हों और ऐसे सन्दर्भ दें जो आधुनिकताकी ज़मीनपर उपयोगी साबित हो सकें। मेरे मनमें कुछ कविताएँ हैं जिन्हें मैं लिखना चाहूँगा—वे शायद उपयोगी होंगी····। 'उपयोगी' तो क्या····, यह कह सकते हैं कि वे कुछ सोचनेको दे सकेंगी····।"

चायकी मेज़पर-से भी वही उलझन-भरा जंगल सामने दिख रहा था लेकिन ६६ वर्षके कविके सामने बैठकर मैं एक लम्बी काव्ययात्रा कर चुका था····। वहाँ पहुँचते समय मेरे सामने प्रश्न नहीं थे, जिज्ञासा भी नहीं थी, मैं श्री कुरुपके चिन्तन तक पहुँचना चाहता था। मुझे उसी शीशोंवाले कमरेमें दुबारा पहुँचते

यह लगा था कि कोई दूरी बाक़ी है—उत्तर और दक्षिणकी दूरी नहीं, पुरानी और नयी पीढ़ीकी दूरी भी नहीं,''''एक आशावादी और''''।

सोवियत प्रोफ़ेसर श्री चेलिशेवसे वे जबतक बात करते रहे मैं उस दूरीके बारेमें सोचता रहा और सहसा जैसे वह दूरी टूट गयी। कहीं मुझे हस्ताक्षर करने थे। मैं सहसा चौंक गया। कवि कुरुपने पूछा था—''और लगता कैसा है ?''

—''क्या ?'' मैं प्रश्नवाचक हो गया क्योंकि मैं क्या लिखता हूँ, कैसे रहता हूँ इससे भी अगला सवाल पूछा गया था। मैंने कुछ पंक्तियाँ कही थीं—''मेरी कोई प्रतिक्रिया नहीं। मैं केवल बग़ैर किसी कारणके ज़िन्दा हूँ। आशा या आस्थाको मैं नहीं जानता। मैं पराजित आदमी हूँ'''।''

''मैं समझ रहा हूँ''''' श्री कुरुप कुछ गम्भीर हो गये—''लेकिन जीवित रहना ज़रूरी है, और बुद्धिसे जो सोचें उसे ठीक-ठीक समझकर जीवित रहना जरूरी है। जीवनमें प्रेरणा भी होती है''''।''

—''कहाँ ?'' मुझे रुककर पता चला कि उनका वाक्य तोड़ मैं बीचमें ही बोल दिया था—''मैं कभी शक्तिशाली था—सुबह-शामें अच्छी लगती थीं। मैं बेहतरसे बेहतर ज़िन्दगी चाहता था। अब सब अर्थहीन लगता है, वेहद इन्सल्टेड और ह्यूमिलियेटेड महसूस किया है मैंने'''।''

—''तो इससे फ्रस्ट्रेशन आया है क्या ?''

—''नहीं'''नींदकी गोलियाँ आयी हैं।''

श्री कुरुपका हाथ पलँगके सिरहाने गया था—''मैं भी खाता हूँ, खानी पड़ती हैं।''

श्री वारियारको उसी 'टू मच मॉडर्निटी' का उत्तर चाहिए था। बोले वे—''हमारे केरलमें बेरोज़गारी सबसे बड़ी समस्या है। केरलके लड़के-लड़कियोंको नौकरीकी खोजमें सारे देशमें भागना-दौड़ना पड़ता है। लड़के शादी नहीं कर पाते क्योंकि शादी कर लें तो पत्नीको खिलायेंगे क्या ! और भी वहाँकी भयंकर समस्याएँ हैं लेकिन वहाँके लेखनमें फ्रस्ट्रेशन नहीं आया है।''''

इसी बीच कैलाश वाजपेयी भी आ गये और वह चर्चा इस अर्थमें तुर्त ही

गयी कि उत्तर और दक्षिणकी एक ही समस्यापर विचार केन्द्रित हो गया था। कैलाश वाजपेयीजीका कहना था—"इधर लोग महानगरसे सन्त्रस्त हैं। दिल्ली तो ऐसा शहर है जो सबको चलाता है। है भी यह दग्ध शहर। लगातार यहाँ धक्के सहने पड़े हैं, जीवनको भी और चिन्तनको भी। अजीब-अजीब तरहके षड्यन्त्रों और पेचीदेपनमें हम लोगोंको जीवित रहना पड़ता है। मेरे मतसे केरल और सारे दक्षिणमें परम्परा और सांस्कृतिक चेतना अधिक सुरक्षित रह पायी है। दक्षिणके बारेमें सोचते रौमैण्टिक थ्रिल होता है, उत्तरमें वह सब कहाँ है ?...."

श्री वारियारको ठीक इसका उलटा लग रहा था कि उत्तरमें संस्कृति अधिक सुरक्षित है—दक्षिणकी तुलनामें।

—"आप बताइए—" श्री कुरुप 'ओटक्कुष़ल' पर हस्ताक्षर करते चर्चामें भाग भी ले रहे थे—"आधुनिक जीवनसे कटकर तो कोई कभी अलग हो ही नहीं सकता, लेकिन यह आधुनिकता क्या देती है ?" मुझे कहनेको मौक़ा मिला—"इसने दिया है अकेलापन और भटकना। अपने कन्धेपर अपने ही ध्वस्त शवको लेकर राजपथपर-से गुज़रना और आत्महत्या भी...।"

—"आय'म अण्डरस्टैण्डिग यू...." श्री कुरुपने हस्ताक्षर रोककर कहा था—"अगर आत्महत्यासे कोई कन्विन्स हो जाये तो उसे बचाया नहीं जा सकता। अगर सारे विश्लेषणमें-से जीवित रहनेके तर्क ही ढूँढ़ना है तो हर समर्थ तर्कको स्वीकार करना होगा।"

—"यही नहीं। सब कुछ जब अर्थहीन लगे तब सब कुछ समाप्त कहाँ हो पाता है—एक जबरदस्ती लादी गयी ट्रैजेडीको सहना पड़े तो अकारण जीवित रहते चले जानेके सिवा और कुछ नहीं दिखता।"

श्री कुरुपने तर्कके प्रति असहमति नहीं बतलायी। वे बोले—"सवेरे अगर जागकर खुश महसूस करो तो वह भी जीवित रहना है और शामको सब-कुछ अर्थहीन लगने लगे तो वह भी जीवित रहना ही है। व्यक्तित्वको इससे बहुत कुछ मिलता है..." वे हँसकर बोले—"मैं तो आशावादी आदमी हूँ, मेरा विश्वास है कि आपको भी इसमें-से कुछ मिलेगा ही।...."

मुझे कैलाश वाजपेयीके साथ डिफ़ेन्स कॉलोनी जाना था और पाँच घण्टे

कहाँ गुज़र गये—पता नहीं चला था, सो हम दोनों चलने लगे। श्री कुरुपने सहज-विनम्र शुभ्रश्वेत केशराशिवाला आशीष दिया था—"केरल आना। मैं चाहूँगा कि अगली बार जब मिलो तबतक कोई अर्थ मिल जाये और अर्थ न भी मिले तो यह अर्थहीनता ज़रूर गायब हो जाये।"

मैं विभोर होनेकी बजाय स्थिर हो गया था क्योंकि शीशोंवाले दरवाज़ेके ऊपर परदा खींच दिया गया था और अब वहाँ आड़ीतेड़ी लकीरोंकी एक टेपेस्ट्री झूल रही थी। मुझे हाथ मिलाते ऐसे स्तब्ध देखकर श्री कुरुपने मुसकराते हुए कहा था—"मैंने कहा ना, मैं आशावादी हूँ....।" वे परदोंके पार देखने लगे थे। उनसे भेंटवार्ताकी जगह घनिष्ठवार्ताका सुयोग मिलनेकी प्रसन्नता व्यक्त करते हम सीढ़ियाँ उतरे थे—दायें-बायें हर तरफ़ वही बौना-सा उलझन-भरा जंगल था, उसीके बीचमें-से गोल्फ़लिंकको उखड़ी हुई सड़कपर हमारी दिशा फूट रही थी....।

● ●

पुरस्कार योजना-संयोजना

- पुरस्कारको पृष्ठभूमि
- यह पुरस्कार
- दायित्व और सहयोग

पुरस्कारकी पृष्ठभूमि

ज्ञानपीठ-द्वारा संयोजित इस पुरस्कारकी पृष्ठभूमिकी सबसे महत्त्वपूर्ण तिथि २२ मई १९६१ है जिस दिन साहू शान्तिप्रसाद जैनने ५१वें वर्षमें प्रवेश किया।

साहूजीका जन्मदिन किसी विशेष रूपसे मनानेकी परम्परा परिवारमें नहीं थी किन्तु इस वर्ष 'बाबूजी' पचास वर्ष पूर्ण कर इक्यावनवेंमें पदार्पण कर रहे हैं, इस अवसरकी विशिष्टता परिवारके सदस्योंके मनमें थी। अतः साहूजीके पुत्रों-पुत्रवधुओं—श्री अशोककुमार, श्री आलोकप्रकाश, सौ० इन्दु, सौ० सुशीला—और उनकी पुत्री सौ० अलकाने इस तिथिसे कई महीने पहले यह योजना बनायी कि पंचाशत अब्दपूर्ति मनायी जाये और वह इस ढंगसे कि उन्हें पता न चले कि किसी बातकी कोई विशेष तैयारी हो रही है। निश्चित तिथिपर सारा आयोजन एक सुखकर विस्मयके रूपमें उनके सामने आये।

अपने इस निर्णयकी चर्चा इन लोगोंने अपनी 'अम्माजी'—श्रीमती रमा जैनसे की और आयोजनकी रूपरेखा उनके सहयोगसे निश्चित की। कार्यक्रम इस प्रकार बनाया गया कि सारे दिन साहूजी उल्लासपूर्ण वातावरणमें अपने परिवारके सदस्यों और निकटके मित्रों तथा प्रियजनोंके साथ रहें।

मुख्य समस्या यह थी कि बच्चे अपने 'बाबूजी' को विशेष उपहारके रूपमें क्या दें। इसका समाधान भी खोज लिया गया। जब २२ मईका दिन आया तो परिवारके सदस्य प्रातःकाल ही साहूजीके पास पहुँचे और कहा कि सबने निर्णय किया है कि आज मन्दिरमें हम सब आपके साथ सामूहिक पूजा करेंगे। उन्हें यह बड़ा सुखकर लगा। पूजाके उपरान्त यह स्पष्ट हो गया कि जन्मदिनका विशेष आयोजन किया गया है। उस दिन परिवारके बच्चोंने एक सांस्कृ-

तिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसकी सारी तैयारी उन्होंने स्वयं ही की थी और उसमें स्वयं भाग लिया।

साहूजीको जो उपहार भेंट किये गये वे विशिष्ट, अत्यन्त प्रिय और भावनामय थे। दो एलबमें तैयार की गयी थीं—एकमें साहूजीके अबतकके जीवन-विकास, कार्यकलाप और उपलब्धियोंके विविध फ़ोटो-चित्र थे जिन्हें कलात्मक ढंगसे प्रस्तुत किया गया था, और दूसरी एलबममें अपनी-अपनी हस्तलिपिमें परिवारके प्रत्येक सदस्यकी भावनाओंका अंकन था तथा मित्रों और निकट सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियों-द्वारा मंगल-कामनाएँ तथा साहूजीके व्यक्तित्व और चरित्रोंकी झलकियाँ देनेवाले निजी संस्मरण थे। तीसरा उपहार था—साहूजीके जीवन-निर्माणमें और उनकी सांस्कृतिक-साहित्यिक अभिरुचिको मूर्त रूप देनेमें जिनकी सर्वाधिक प्रेरणा रही है उन माताजी, स्वर्गीया मूर्तिदेवीका भव्य तैलचित्र। भारतीय ज्ञानपीठका प्रारम्भ उनकी ही स्मृतिमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओंके शोधग्रन्थोंके प्रकाशनसे हुआ। ये प्रकाशन 'मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला' के नामसे विख्यात हैं।

इस आयोजनके सम्बन्धमें यह स्वाभाविक था कि परिवारके सदस्योंके मनमें यह विचार आये कि जिस साहित्यिक और सांस्कृतिक क्षेत्रकी गति-विधियोंसे साहू-परिवार सम्बद्ध है, उस क्षेत्रके सम्बन्धमें भी कोई ऐसा संकल्प और निर्णय लिया जाये जो स्वयं साहूजीको प्रिय हो और जो वास्तवमें महत्त्वपूर्ण हो। इस सम्बन्धमें कई सुझाव आये। श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनने सुझाव दिया कि अलगसे एक ऐसी निधि या ट्रस्टकी स्थापना की जाये जो साहित्यकारोंके लिए उनकी विशेष परिस्थितियोंमें आर्थिक साधन प्रस्तुत करे, और यह भी कि निधिका संचालन स्वयं साहित्यकार करें।

प्रस्ताव आकर्षक लगा। श्री अशोकजीने कहा कि जो पारिवारिक समारोह बिना बाबूजीको बताये किया जा रहा है उसमें इस प्रकारका कोई तात्कालिक निर्णय बिना उनके परामर्शके कैसे लिया जाये। श्रीमती रमा जैनके मनमें यह बात भी आयी कि यदि कोई निर्णय भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे सोचें तो भी ट्रस्टी सदस्योंका परामर्श और स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक होगा, वहं

निर्णय स्वयं संस्थापक ही क्यों न लें विचार-विमर्श और भावनाका जो बीज उस दिन रोपा गया वह कालान्तरमें एक महत्त्वपूर्ण योजनाके रूपमें प्रस्फुटित हुआ।

१६ सितम्बर १९६१ को भारतीय ज्ञानपीठके ट्रस्टियोंकी एक बैठकमें ज्ञानपीठ-द्वारा निर्धारित राष्ट्रभारती ग्रन्थमालाके कार्यक्रमपर विचार हो रहा था। इस ग्रन्थमालाके प्रकाशनका उद्देश्य है समस्त भारतीय भाषाओंके मुख्य-मुख्य लेखकोंकी प्रतिनिधि रचनाओंके संकलन हिन्दी अनुवादके रूपमें प्रकाशित करना ताकि समस्त देशका श्रेष्ठ चिन्तन और साहित्यिक सर्जन एक मालामें पिरोया जा सके और सहजतासे उपलब्ध हो सके। यह ग्रन्थमाला देशकी भावनात्मक एकताका प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करनेका एक उपयोगी साधन है। इस बैठकमें श्रीमती रमा जैनने अप्रत्याशित ही एक प्रश्न रख दिया, जो लगता है, उक्त विचार-विमर्शकी अगली कड़ी था—"क्या यह सम्भव नहीं है कि हम भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित किसी एक ऐसी पुस्तकको चुन सकें जो सर्वश्रेष्ठ कही जाये, और जिसे एक बड़ी पुरस्कार राशि दी जाये।" प्रश्नमें-से प्रश्न उठे। उत्तर खोजनेका प्रयत्न किया गया, लम्बा विचार-विनिमय हुआ किन्तु कोई स्पष्ट मार्ग नहीं सूझा। उस बैठकमें एक प्रस्ताव इन शब्दोंमें पारित किया गया।

"भारतीय भाषाओंकी सर्वोत्तम साहित्यिक कृतिके लिए यदि प्रतिवर्ष एक लाख रुपये पुरस्कारकी योजना चालू की जाये तो इसके विभिन्न रूप क्या-क्या हो सकते हैं, इस सम्बन्धमें विस्तारके साथ चर्चा की गयी। सभी भारतीय भाषाओंमें-से चुनी गयी एक-एक सर्वोत्तम कृतिके संग्रहमें किस भाषाकी कौन-सी कृति सर्वोत्तम है इसके निर्णयके लिए कौन-सा उपाय सर्वोत्तम और निर्दोष है, इस सम्बन्धमें कोई निश्चित मत नहीं बन पाया, क्योंकि कठिनाइयाँ अनेक हैं—इनका यदि कोई हल निकाला जा सके तो योजना विचारणीय है।"

उक्त प्रस्तावको शब्दावलीसे और विशेषकर जो मन्तव्य विचार विनिमयके समय सदस्यों-द्वारा व्यक्त किये गये उनसे यह स्पष्ट था कि यद्यपि सिद्धान्ततः योजनाका विचार उत्तम और उपयोगी है, किन्तु कोई योजना ऐसे कठिन और

असम्भव दिखाई देनेवाले कामके लिए बन सकेगो ऐसा विश्वास नहीं दिखाई दिया।

बैठकके तुरन्त बाद श्रीमती रमा जैन और श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन इस विषय-पर विचार करने बैठे।

रमाजीका प्रश्न था—क्या सचमुच इस प्रकारकी योजना असम्भव है?

श्री लक्ष्मीचन्द्रजीका उत्तर था—असम्भव तो नहीं है किन्तु जैसा कि स्पष्ट है, श्रम-साध्य और व्यय-साध्य बहुत है।

श्रीमती रमा जैनने माना कि यह स्थिति ज्ञानपीठके लिए एक चुनौतीको-सी है। जिसे हमें स्वीकार करना चाहिए। यदि योजना असम्भव नहीं है और हममें दृष्टि तथा कार्य-क्षमता है तो वे स्वयं पूरा समर्थन देंगी और ट्रस्टी मण्डल-का तत्पर सहयोग प्राप्त कर लेंगे। निर्णय लिया गया कि इस साहसिक कामको अवश्य हाथमें लेना है। योजनाके संकल्पका जन्म उसी कारण हुआ।

सबसे पहला काम यह था कि किसी भी प्रकारकी एक प्रारम्भिक स्थूल रूप-रेखा तैयार की जाये जो मूलभूत तीन समस्याओंका समाधान करे:

१—प्रत्येक भारतीय भाषासे श्रेष्ठ पुस्तक चुननेका माध्यम क्या हो?

२—इन १४-१५ पुस्तकोंमें-से एक पुस्तक किस प्रकार चुनी जाये?

३—चुनी हुई पुस्तकके विषयमें साहित्य-जगत् किस प्रकार आश्वस्त हो कि चुनाव सर्वथा प्रामाणिक ढंगसे और निष्पक्षतापूर्वक किया गया।

अन्ततः योजना किस रूपमें बनी, उसके लिए किस प्रकार व्यापक सहयोग प्राप्त किया गया और किस विधि-विधानके अन्तर्गत कार्य करते हुए इस प्रथम पुरस्कारके निर्णय तक हम पहुँचे, इसका उल्लेख अन्यत्र आ चुका है।

इस प्रकारका इतना बड़ा दायित्व भारतीय ज्ञानपीठ इसलिए वहन कर सकी कि ज्ञानपीठके ट्रस्टी-मण्डलने धैर्यपूर्वक कार्य करनेका अवसर दिया और जब योजनाको अन्तिम रूपसे स्वीकृतिके लिए सदस्योंके सामने २० मई १९६३ की बैठकमें प्रस्तुत किया गया तो उन्होंने उसकी सहर्ष स्वीकृति दी।

२७ दिसम्बर १९६३ की बैठकमें सन् १९६४ के व्ययके लिए १,१९०००) रु० का बजट स्वीकृत किया जो योजनाके आरम्भिक व्ययोंके लिए था।

आज जब हम यह सोचते हैं कि यदि १६ सितम्बर १९६१ की बैठकमें ट्रस्टियोंने यह निर्णय लिया होता कि इस असम्भव-सी योजनाको हाथमें लेकर ज्ञानपीठको अपनी शक्ति और साधनोंको जोखिममें नहीं डालना चाहिए तो इस विषयमें आगे सोचनेका भी अवसर न रहता और यह योजना वहीं समाप्त हो गयी होती।

भारतीय ज्ञानपीठके सांस्कृतिक प्रकाशनों और योजनाओंके प्रारम्भसे ही जिनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था और पुरस्कार-योजनाके प्रवर्तनके निर्णयमें भी जिनका सहयोग रहा, उन ट्रस्टी श्री छोटेलाल सरावगीके देहावसानके कारण ज्ञानपीठ एक अमूल्य सहयोगसे वंचित हो गयी। इस महोत्सवपर यदि वह हमारे बीच होते तो उन्हें कितनी प्रसन्नता होती! उनके प्रति ज्ञानपीठ कृतज्ञ है।

● ●

लोकप्रिय पुस्तकें

● ●

० वरदान : मुन्शी प्रेमचन्द । ० मनुष्य के रूप : यशपाल । ० एक दो तीन : विमल मित्र । ० रोमकी नगरवधू । ० शे'र-ओ सुख़न (रुबाइयोंका संग्रह)। ० २०० स्मालस्केल इण्डस्ट्रीज़ ।

[प्रत्येक का मूल्य दो रुपये]

● स्वेट मार्डन

आप क्या नहीं कर सकते	१.००
चिन्तामुक्त कैसे हों	१.००
हँसते-हँसते कैसे जियें	१.००
जो चाहें सो कैसे पायें	१.००
अपना ख़र्च कैसे घटायें	१.००
अवसर को पहचानो	१.००
अपने-आपको पहचानिए	१.००

● पद्मश्री गोपालप्रसाद व्यास

हास्य कवि सम्मेलन	१.००
पत्नी को परमेश्वर मानो	१.००
सलवार चली—सलवार चली	१.००

● उपेन्द्रनाथ अश्क

एक रात का नरक	१.००

० आचार्य चतुरसेन

अनबन (केवल बालिगों के लिए)	१.००
नवाब ननकू	१.००
काम-कला के भेद	१.००

● गुलशन नन्दा

घाट का पत्थर	२.००
जलती चट्टान	२.००

● माणिक बन्द्योपाध्याय

स्वयंसिद्धा	१.००

● गुरुदत्त

आख़िरी क़िस्त	१.००
अवतरण	२.००

● कुशवाहा कान्त

मदभरे नयना	२.००
जवानी के दिन	२.००
नागिन	२.००

● के० एम० मुन्शी

लोपामुद्रा	१.००

● काका हाथरसी

दुलत्ती	१.००
महामूर्ख सम्मेलन	१.००

● योगेन्द्रकुमार लल्ला

हँसना मना है	१.००

● भगवतीप्रसाद वाजपेयी : मुझे मालूम न था	१.००
● जैनेन्द्रकुमार व ऋषभचरण जैन : तपोभूमि	२.००
● दत्तभारती : आकाश ख़ाली है	१.००
● शौकत थानवी : नीलोफ़र	२.००
● शंकर सुलतानपुरी : पत्थर के सनम	१.००
● बालकवि बैरागी : ललकार	१.००
● चिरंजीत : ढोल की पोल व अन्य झलकियाँ	२.००
● कुप्रिन : ये चकलेवालियाँ	१.००
● नरेन्द्रनाथ : सिगरेट-बीड़ी कैसे छोड़ें	१.००
● ओमप्रकाश आदित्य : इधर भी गधे हैं उधर भी गधे हैं	१.००

सुबोध पॉकेट बुक्स

४४०८, नयी सड़क, दिल्ली-६

यह पुरस्कार

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित इस पुरस्कारकी कल्पना मनमें कैसे आयी और इसे मूर्तरूप देनेमें किन-किन प्रेरणाओंने काम किया इसका विवरण स्मारिकाके अन्तिम भागमें, ज्ञानपीठके न्यासधारी मण्डलके विवरणमें प्राप्त है।

पुरस्कारकी इस रूपमें परिकल्पनाके पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि यद्यपि भारतमें प्रत्येक भाषाकी सर्वश्रेष्ठ कृतिके लिए अलग-अलग प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय पुरस्कार हैं, ऐसा कोई पुरस्कार नहीं जो इन सब भाषाओंकी अनेक कृतियोंमें-से चुनी हुई सर्वश्रेष्ठ अखिल भारतीय कृतिके लिए हो। ऐसे पुरस्कारकी संस्थापना राष्ट्रीय आवश्यकता थी और स्वभावतः ऐसा पुरस्कार मूल्य एवं मात्रामें इतना प्रचुर भी होना आवश्यक था कि राष्ट्रीय गौरव तथा अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डोंके अनुरूप माना जाये। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा इस पुरस्कारका प्रवर्तन हुआ है। एक लाख रुपये राशिका यह पुरस्कार संविधान-निहित समस्त भारतीय भाषाओंमें सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोपरि सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर प्रतिवर्ष समर्पित है।

वास्तवमें एक लाख रुपयेकी वार्षिक राशि या पुरस्कारको क्रियान्वित करनेमें प्रतिवर्ष ७०-७५ हज़ार रुपयेके व्ययका प्रबन्ध करना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना भारतीय ज्ञानपीठके संस्थापकों और संचालकोंकी यह दृष्टि कि भारतीय साहित्यको एक समग्र दृष्टिसे देखा जाये तथा भाषा और क्षेत्रकी सीमाओंको लाँघकर इस साहित्यका मूल्यांकन किया जाये, इसके मानदण्डोंकी खोज और संवर्द्धना की जाये। इसी प्रकार श्रेष्ठ कृतिके लेखकका अभिनन्दन एक लाख रुपयेकी राशिके समर्पणमें उतना नहीं जितना इस बातमें कि भारतीय साहित्यकी समकालीन कृतियोंमें उसकी कृतिको एक विशिष्ट स्थान मिला और देशके

साहित्यकारोंने ही एक निश्चित योजनाके अन्तर्गत उसे सम्मानित किया। यह ठीक है कि लेखक आभ्यन्तर प्रेरणाके कारण लिखता है, और कई अन्य कारणोंके योगदानसे ही कोई कृति क्लैसिक और वरेण्य बन पाती है, तो भी सामाजिक मान्यता तथा उसकी प्रतिभाके फलके प्रति समूचे राष्ट्रका ऋणी भाव लेखकको आश्वस्त करता है कि उसकी कृतियाँ और भी अधिक व्यापक रूपसे पढ़ी जायेंगी और समादृत होंगी। राष्ट्रीय पुरस्कार तथा अन्य भेंट-उपहार सब इसी मान्यता-के सहज प्रतीक हैं।

भारतीय ज्ञानपीठका विनम्र गर्व यह है कि उसने इतने कठिन कार्यको हाथमें लेनेका साहस किया, देशके साहित्यकारोंका सहयोग प्राप्त किया और असम्भव-सी लगनेवाली योजनाको मूर्त रूप देकर अपनी सार्थकता सिद्ध की।

योजनाकी प्रारम्भिक रूप-रेखा बनाते समय मात्र इतना ही अनुभव अन्य स्रोतोंसे प्राप्त था कि प्रत्येक भारतीय भाषामें प्रकाशित साहित्यिक कृतियोंमें-से एक कृतिको चुननेका विधि-विधान क्या है। मुख्य समस्या यह थी कि इन कृतियोंमें-से एक कृतिको किस प्रकार चुना जाये जब कि भारतीय भाषाओंकी संख्या बहुत है; एक साथ सारी भाषाओंको जाननेवाले विद्वानोंका अभाव है; साहित्यिक कृतिके मूल्यांकनमें केवल भाषा-ज्ञान ही पर्याप्त नहीं, विवेकशील समीक्षाकी दृष्टि भी आवश्यक है; अनुवादको मूल्यांकनका माध्यम बनानेकी अलग सीमाएँ हैं आदि-आदि। फिर यह, कि यदि प्रयत्न करके इन समस्याओंका अलग-अलग समाधान खोजा भी गया तो सारे समाधानोंको एक सूत्रमें पिरोकर सारी प्रक्रियाको योजनाकी ऐसी इकाई किस प्रकार बनाया जाये कि साहित्य-जगत् आश्वस्त हो कि कार्य प्रामाणिक ढंगसे और निष्ठापूर्वक किया गया है। एक बात प्रारम्भसे ही स्पष्ट थी कि किसी भी स्थितिमें ऐसा निर्णय कभी भी नहीं लिया जा सकेगा जो बिना अपवादके सबको मान्य हो, सबको सन्तुष्ट कर सके। वास्तवमें ऐसा कभी किसी भी पुरस्कारके सम्बन्धमें सम्भव नहीं हुआ है, चाहे कृतियोंके मूल्यांकनका क्षेत्र कितना भी सीमित रहा हो।

इन सब कठिनाइयोंके समाधानका एक ही उपाय था कि देशके मनीषियों साहित्यकारों और इस क्षेत्रके अनुभवी व्यक्तियों तक पहुँचा जाये और व्यापक

विचार-विमर्शमें जो सुझाव प्राप्त हों उनके आधारपर सर्वसम्मत निष्कर्ष निकाले जायें और योजनाको अन्तिम रूप दिया जाये।

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनने ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनको एक प्रारम्भिक रूप-रेखा दी, जिसपर विचार करनेके लिए उन्होंने २२ नवम्बर १९६१ की सन्ध्या ३ बजे दिल्लीमें ६, सरदार पटेल मार्गपर एक निजी गोष्ठी आमन्त्रित की, जिसमें सर्वश्री काका कालेलकर, जगदीशचन्द्र माथुर, जैनेन्द्रकुमार, रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंशराय बच्चन, प्रभाकर माचवे, अक्षयकुमार जैन, एक दो अन्य बन्धु भी उपस्थित थे। श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनने पुरस्कार योजनाका प्रारूप विचारार्थ प्रस्तुत किया। इस प्रकार पहली बार पुरस्कार योजनाका मूर्त विचार ज्ञानपीठके अन्तरंग वृत्तसे निकलकर बाहर आया।

इस गोष्ठीमें योजनाके प्रत्येक पहलूपर विशद विचार हुआ; सुझाव प्राप्त हुए और उत्साहपूर्वक योजनाको व्यावहारिक माना गया, यद्यपि कठिनाइयों और जोखिमकी चर्चा भी खुलकर हुई।

दो दिन बाद, २४ नवम्बर,को सन्ध्या चार बजे राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसादके सामने योजनाकी रूप-रेखा प्रस्तुत करने और उनका परामर्श प्राप्त करनेके लिए ज्ञानपीठके संस्थापक साहू शान्तिप्रसाद जैन, अध्यक्षा श्रीमती रमा जैन तथा मन्त्री श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन राष्ट्रपति-भवन गये। राष्ट्रपति, भारतीय ज्ञानपीठके कृतित्वसे पहले ही से सुपरिचित थे और साहूजी-द्वारा परिचालित साहित्यिक-सांस्कृतिक प्रवृत्तियोंके प्रशंसक थे। डॉ० राजेन्द्रप्रसादने पुरस्कार योजनाके विचारकी सराहना की, अपने सुझाव दिये और हार्दिक सहयोगका आश्वासन दिया।

जब योजनाने अन्तिम रूप ले लिया तो स्वयं अस्वस्थ रहते हुए भी उन्होंने प्रवर परिषद्की अध्यक्षता स्वीकार की। उनके आशीर्वादसे योजनाने द्रुतगामी प्रगति की।

जैसा कि ऊपर लिखा है; पुरस्कार योजनाको अन्तिम रूप देनेसे पहले देशके विभिन्न अंचलोंके साहित्यकारोंके सुझाव और उनका सहयोग प्राप्त करनेका पूरा प्रयत्न किया गया। संक्षेपमें यह कि—

६ दिसम्बर १९६१ को कलकत्तमें प्रमुख बाँग्ला साहित्यकारों और समीक्षकोंसे विचार-विनिमय हुआ और उनके सुझाव प्राप्त हुए। १ जनवरी १९६२ को सुखद संयोग यह हुआ कि कलकत्तेमें अखिल भारतीय गुजराती साहित्य परिषद् और भारतीय हिन्दी परिषद्के वार्षिक अधिवेशनोंमें सम्मिलित होनेवाले साहित्यकारोंको सम्मिलित रूपसे आमन्त्रित करनेका अवसर ज्ञानपीठको मिल गया। गुजराती और हिन्दीके लगभग ७२ लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारोंके सामने साहू जैन निलयमें योजनाका प्रारूप किया गया और लगभग दो घण्टे तक विचार-चर्चा हुई। शंकाएँ उठती थीं किन्तु समाधान भी आसपाससे ही प्राप्त हो जाता था। ज्ञानपीठके प्रयत्नकी मुक्तकण्ठसे सराहना की गयी और भरपूर सहयोगका आश्वासन मिला।

इस बीच लगभग ४५०० प्रतियाँ योजनाके प्रारूपकी देश-भरके साहित्यिक क्षेत्रोंमें भेजी गयीं। मन्तव्य और प्रतिक्रियाएँ प्राप्त की गयीं। अन्तमें २ अप्रैल १९६२ को दिल्लीमें भारतीय ज्ञानपीठ और टाइम्स ऑव इण्डिया ग्रुपके संयुक्त तत्त्वावधानमें एक विशाल सेमिनार हुआ जिसमें देशके सभी क्षेत्रों और सभी भाषाओंके लगभग ३०९ मूर्धन्य साहित्यकारोंने भाग लिया। दो अधिवेशनोंमें पुरस्कार-योजनाके विषयमें वक्ताओंने अपने मन्तव्य दिये, शंकाएँ प्रकट कीं, समाधान माँगे और दिये और अन्तमें योजनाको क्रियान्वित करनेके लिए भारतीय ज्ञानपीठको प्रोत्साहित किया, उसका अभिनन्दन किया। इन अधिवेशनोंकी अध्यक्षता क्रमशः डॉ० राघवन् और श्री भगवतीचरण वर्माने की।

अन्य दो अधिवेशनोंमें टाइम्स ऑव इण्डिया ग्रुपकी उस योजनापर विचार हुआ जिसके अन्तर्गत भारतीय भाषाओंकी श्रेष्ठ कृतियोंका अँगरेज़ी अनुवाद प्रस्तुत करना लक्ष्य था। दोनों उद्देश्य एक-दूसरेके पूरक थे अतः संयुक्त तत्त्वावधान अत्यन्त सार्थक रहा।

इस सम्बन्धमें पटना, बनारस, बम्बई और मद्रासमें भी गोष्ठियाँ की गयीं।

इतने सब प्रयत्नके बाद योजनाकी रूप-रेखा और कर्मविधि अन्तिम रूपसे जिस प्रकार निश्चित की गयी उसके मुख्य अंश और नियम इस प्रकार हैं :

० योजनाके सफल निर्वाहका अन्तिम दायित्व ऐसे व्यक्तियोंकी सदस्यतासे गठित प्रवर परिषद्-द्वारा होगा जो अनुभवी हों, सार्वजनिक जीवनमें जिनकी दायित्व-भावनाकी प्रतिष्ठा हो, जिनकी पदेन गरिमा हो, और सबसे बड़ी बात यह कि वे स्वयं साहित्यकार हों, साहित्यमें गहरी रुचि रखते हों और जिनके निर्णय नियमोंके अनुसार प्रामाणिक तथा निष्पक्ष माने जायें। विचार था कि कुछ कृती साहित्यकार भी प्रवर परिषद्के सदस्य बनें, किन्तु पुरस्कार विधानके अन्तर्गत उन साहित्यकारोंकी सदस्यता वर्जित है जिनकी सर्जनात्मक रचनाके पुरस्कृत होनेकी सम्भावना हो सकती है।

० संविधानके अनुसार चौदह भाषाओंमें-से पुस्तकोंका चुनाव प्रत्येक भाषासे सम्बन्धित-परामर्श समिति करे जिसके सदस्य उस भाषाके तीन प्रमुख साहित्य समीक्षक हों।

० प्रत्येक भाषा परामर्श समितिसे चुनी गयी पुस्तकोंको पड़ोसकी क्षेत्रीय भाषाकी पुस्तकोंके साथ तुलना करके एक कृतिको चुन लेनेवाली भाषा-वर्ग समितियाँ हों। इस प्रकार लगभग ६ वर्ग समितियाँ कल्पित हुईं।

० भाषावर्ग समितियोंसे आनेवाली ५-६ पुस्तकोंका पारस्परिक मूल्यांकन ऐसे साहित्य समीक्षकों-द्वारा हो जो सम्बन्धित दोनों या तीनों भाषाएँ जानते हों।

० पारस्परिक मूल्यांकनके उपरान्त जो दो या तीन कृतियाँ चुनावमें आयें उनका पारस्परिक मूल्यांकन किया जाये।

० अन्तिम चरणमें आनेवाली कृतियोंका हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किया जाये ताकि जो सदस्य हिन्दी जानते हैं वे दो या तीन कृतियोंका तुलनात्मक परीक्षण कर लें।

० प्रत्येक पुस्तकके सम्बन्धमें प्राप्त सारे मन्तव्य पारस्परिक मूल्यांकन, अनुवाद आदिका अध्ययन प्रवर परिषद्के सदस्य जितना भी सम्भव हो सके स्वयं करें।

० अन्तिम चरणमें प्रतियोगी पुस्तकोंकी भाषा-समितियोंके संयोजक और पुस्तकोंके हिन्दी अनुवादक एक संयुक्त बैठकमें प्रवर परिषद्के सदस्योंके साथ

विचार-विनिमयमें भाग लें और बतायें कि कृतियोंकी विशिष्टता क्या है; अनुवादक मूलके अंश पढ़कर सुनायें और बतायें कि अनुवादमें कृतिके क्या गुण नहीं आ पाये आदि—ध्वनि लय छन्द और अभिव्यक्ति सामर्थ्य आदिके उदाहरण प्रस्तुत करें।

० इस सब प्रक्रियाके उपरान्त परिषद्के सदस्य अपना-अपना मन्तव्य परिषद्में रखें और सकारण बतायें कि उनमें से प्रत्येकको कौन-सी कृति दूसरी कृतिकी अपेक्षा अधिक समर्थ लगी। तब विचार-विनिमयके उपरान्त एक कृतिको पुरस्कारार्थ चुनें।

इन सब समितियोंके गठनका कार्य बड़ा दायित्वपूर्ण था। नामोंका निर्णय उनकी स्वीकृति, योजनाकी विधि-विधान आदिके प्रत्येक पक्षका व्यावहारिक कार्य-तन्त्र आदि निश्चित करनेमें बहुत अर्थ और समय अपेक्षित था।

उक्त प्रक्रियाके अन्तर्गत प्रवर परिषद्का गठन सर्वाधिक महत्त्व और प्राथमिकताका कार्य था। अधिकसे अधिक सोच-विचार और प्रयत्नके उपरान्त एक ऐसी प्रवर परिषद् गठित की गयी जिसके सदस्य योजनाको कार्यान्वित करनेमें आस्थावान् थे। सौभाग्यसे डॉ० राजेन्द्रप्रसादका नेतृत्व प्राप्त हो गया। प्रवर परिषद्का गठन करके उसे एक बनी-बनायी योजनाको क्रियान्वित करनेका दायित्व दे दिया गया हो, सो नहीं। सारी योजनापर प्रवर परिषद्ने पुनर्विचार किया और उसे अन्तिम रूप दिया।

१६ मार्च, १९६३ को दिल्लीमें प्रवर परिषद्की पहली बैठक हुई। परिषद्के अध्यक्ष डॉ० राजेन्द्रप्रसादजीने यह तिथि जब निश्चित की थी, वे अस्वस्थ थे, किन्तु यह कल्पना नहीं थी कि परिषद् उनके नेतृत्वसे वंचित हो जायेगी। ज्ञानपीठ डॉ० राजेन्द्रप्रसादजीके प्रति चिरकृतज्ञ रहेगी।

पहले सत्रमें काका कालेलकर और दूसरे सत्रमें डॉ० सम्पूर्णानन्दने अध्यक्षता की। प्रवर परिषद्की इस बैठकने योजनाके विधान, भाषा परामर्श-समितियोंके सदस्योंके नामों तथा कार्यविधि आदिपर विचार किया। प्रथम पुरस्कारके लिए विचारणीय पुस्तकोंकी प्रकाशनावधि १९२० से १९५८ तक निश्चित की और एक उप समिति गठित कर दी जिसका दायित्व विधि-विधानको अन्तिम रूप देनेका था। उपसमितिकी बैठक दिल्लीमें ४ मई १९६३ को हुई, जिसमें डॉ०

नीहाररंजन रे, डॉ० बी० गोपाल रेड्डी, प्रो० मुजीब और श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन उपस्थित थे। उपसमितिने विधानको और विचारणीय पुस्तकोंके प्रस्ताव-पत्रके फार्मोंको अन्तिम रूप दिया। पुरस्कार योजनाके मुख्य-मुख्य नियम और पद्धति इस प्रकार हैं—

पुरस्कार केवल जीवित भारतीय साहित्यकारोंको विशेष अवधिमें प्रकाशित सर्जनात्मक साहित्यकी कोटिमें आनेवाली कृतियों पर ही दिया जाता है। सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिसे अभिप्राय शैली-सौष्ठवयुक्त मौलिक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक रचनासे है।

प्रथम तीन पुरस्कारोंके लिए विचारार्थ पुस्तकोंकी प्रकाशन-अवधि इस प्रकार है।

प्रथम पुरस्कार	१९२० से १९५८
द्वितीय पुरस्कार	१९२५ से १९५९
तृतीय पुरस्कार	१९३५ से ९९६०

प्रयत्न यह है कि इस अवधिको उत्तरोत्तर इतना कम किया जाये कि प्रतिवर्ष केवल पाँच वर्ष पूर्व प्रकाशित कृतियाँ विचाराधीन रहें, ताकि समसामयिक साहित्यको उसके मूल्यांकन-द्वारा ऊँचे मानदण्डों तक लाया जा सके और समग्र भारतीय स्तरपर नयी प्रतिभाओंका उदय हो, उन्हें सम्मानित किया जा सके, अथवा प्रतिष्ठित साहित्यकारोंकी नयी कृतियोंके प्रति अधिक जिज्ञासा जगे। आवश्यक नहीं कि परामर्श समितियाँ अनुशंसाके लिए विभिन्न स्रोतोंसे प्राप्त प्रस्ताव-पत्रों तक ही अपना विचार सीमित रखें, स्वतन्त्र रूपसे भी सदस्य पुस्तकोंकी वरेण्यता पर विचार कर सकते हैं।

पुरस्कार प्राप्त भाषाकी कृतियाँ अगले दो वर्षोंतक विचारणीय नहीं होतीं।

यदि अन्तिम निर्णयके समय दो कृतियाँ समान स्तर आदिके कारण समान रूपसे उत्कृष्ट प्रमाणित हों तो पुस्कारकी राशि समान भागमें समर्पित होगी।

यदि प्रवर परिषद्को किसी वर्ष यह लगा कि विचाराधीन कृतियोंमें कोई भी कृति साहित्यके राष्ट्रीय स्तरके अनुरूप नहीं है तो पुरस्कार घोषित नहीं होगा।

प्रत्येक तीसरे वर्ष परामर्श समितियोंका पुनर्गठन होगा। आवश्यकतानुसार किसी सदस्यकी पुर्ननियुक्ति हो सकेगी। भाषा वर्ग समितियोंके संगठनका नियम यह है कि जिन दो भाषाओंका एक वर्ग बनता है उनकी सम्मिलित वर्ग समिति में दोनों परामर्श समितियोंके संयोजक रहते हैं तथा प्रत्येक संयोजक एक ऐसे सदस्यका नाम प्रस्तावित करता है जो दोनों भाषाओंका जानकार समीक्षक होता है किन्तु उसकी मातृभाषा वह नहीं होती जिस भाषासे समितिके संयोजकका सम्बन्ध है।

तुलनात्मक मूल्यांकनके लिए दो कृतियाँ ऐसे साहित्यकारोंको दी जाती हैं, जो दोनों भाषाएँ जानते हैं किन्तु उनकी मातृभाषा कृतियोंकी दोनों भाषाओंमें-से कोई नहीं होती।

स्पष्ट है कि देशमें इस प्रकारके साहित्यकारोंकी विधिवत् खोज कभी नहीं की गयी जिनकी मातृभाषा दो समीक्ष्य कृतियोंकी भाषासे भिन्न हो, अर्थात् जो इस रूपमें बहुभाषाविद् हों। यद्यपि प्रथम और द्वितीय वर्षके पुरस्कारोंके लिए समीक्षकोंकी नामावली ज्ञानपीठने एकत्र की है और यह सुखद विस्मयकी बात रही कि देशमें अनेक भाषाविद् व्यक्तियोंकी कमी नहीं है किन्तु भविष्यके लिए आशा है कि दूसरे समर्थ नाम भी सामने आयेंगे और मूल्यांकनका यह प्रकार और भी अधिक आश्वासक होगा।

२० मई १९६३ की बैठकमें ज्ञानपीठके न्यासधारी मण्डलने योजनाके निश्चित रूपपर विचार-विनिमय किया और सहर्ष स्वीकृति दी।

५ जुलाई १९६३ को पूर्ण रूपसे स्वीकृत सर्वांगीण योजनाको विधिवत् कलकत्तेमें एक प्रेस कान्फ्रेंसके समक्ष प्रस्तुत कर दिया गया; और उसके उपरान्त प्रथम पुरस्कारसे सम्बन्धित कार्यवाही प्रारम्भ हुई।

लगभग २५०० प्रस्ताव-पत्र पुरस्कार योजनाकी नियमावलीके साथ भेजे गये। पर्याप्त समय देकर, स्मृति-पत्र आदि भेजकर, प्रस्ताव-पत्र मँगाये गये। चौदह भाषाओंकी चौदह परामर्श समितियाँ गठित की गयीं। प्रस्ताव-पत्र तथा उनके आधारपर तैयार की गयी तालिकाएँ समितियोंके संयोजकोंके पास भेजी गयीं। फ़रवरी १९६४ से मई १९६४ तक इन १४ भाषा समितियोंने अपनी-

अपनी भाषाकी प्रस्तावित पुस्तकोंको पुरस्कार-योग्यताकी दृष्टिसे देखा और अपनी संस्तुतियाँ भेजीं।

पुरस्कार विधानकी धारा ९ और १० के अनुसार भाषा वर्ग समितियोंका गठन किया गया। वर्ग समितियोंकी बैठकें नियोजित हुईं और प्रवर परिषद्-द्वारा अन्तिम निर्णय लेनेके लिए सात भाषाओंकी एक-एक कृति सामने आयी : इनमें चार काव्य-कृतियाँ थीं, दो उपन्यास, एक कहानी संग्रह। सातों पुस्तकें योजनाके अनुसार प्रवर परिषद्के समक्ष हिन्दी और अँगरेज़ीके समान माध्यमसे अनूदित होकर प्रस्तुत की जानी थीं। इसमें समय लगता, काव्य कृतियोंके सफल अँगरेज़ी अनुवादका प्रश्न भी सामने था। प्रवर परिषद्की दूसरी बैठकमें इसलिए इस विषयपर विशेष रूपसे विचार किया गया।

यह बैठक २५ और २६ फ़रवरी १९६५ को दिल्लीमें डॉ० सम्पूर्णानन्दकी अध्यक्षतामें हुई।

उक्त सातों संस्तुत कृतियोंका अँगरेज़ी अनुवाद सफलतापूर्वक हो सके, विशेषकर चारों काव्यकृतियोंका और समयपर भी हो इस सम्भावनापर विचार करनेके लिए २६ फ़रवरीकी बैठकमें विशेष रूपसे आमन्त्रित हिन्दी और अँगरेज़ीके विशिष्ट अनुवादकों तथा अनुवादके सम्बन्धमें आधिकारिक मन्तव्य रखनेवाले साहित्यकारोंके साथ विस्तृत विचार-विनियम हुआ और अन्तमें प्रवर परिषद्ने यह निर्णय लिया कि प्रस्तुत सात भाषाओंकी सातों पुस्तकोंका मूल रूपमें ही दो-दो या तीन-तीनके समूहमें तुलनात्मक परीक्षण तथा सर्जनात्मक साहित्यिक निष्कर्षपर मूल्यांकन कराया जाये। तुलनात्मक परीक्षणका आधार ऊपर संकेतित है।

समीक्षकोंकी सम्मतियाँ तथा इनके द्वारा संस्तुत अहिन्दी कृतियोंका हिन्दी रूपान्तर प्राप्त करनेमें तत्परतासे काम लिया गया। अपने-आपमें यह काम सामान्यतः एक वर्ष ले लेगा। १९ नवम्बर १९६५ को प्रवर परिषद्की जब तीसरी बैठक हुई तब इन सम्मतियोंपर विचार किया गया। अन्य सब समितियों की रिपोर्ट आदि भी उसके सामने प्रस्तुत थीं तथा विचारार्थ कृतियोंके समग्र

अथवा अधिकांश हिन्दी अनुवाद भी। परिषद्ने अन्तिम रूपसे प्रतियोगी केवल चार पुस्तकें रखीं।

अन्तिम निर्णयके लिए २९ दिसम्बर १९६५को प्रवर परिषद्को बैठक हुई। परिषद्ने इस अवसरपर उपर्युक्त चारों प्रतियोगी कृतियोंकी भाषा परामर्श समितियोंके संयोजकों तथा उनके हिन्दी रूपान्तरकर्ताओंके साक्ष्य भी लिये। सब दृष्टियोंसे विचार-मन्थन करके उक्त चारों कृतियोंमें-से परिषद्के सदस्योंने सर्वसम्मतिसे मलयालम कवि श्री जी० शंकर कुरुपको कृति "ओटक्कुष़ल" को भारतीय ज्ञानपीठके प्रथम पुरस्कारके योग्य निर्णीत किया।

२९ दिसम्बर १९६५ की साँझको ही ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनने दिल्लीमें प्रेस विज्ञप्ति-द्वारा इस प्रथम पुरस्कारको विधिवत् घोषणा कर दी। पुरस्कारकी राशिपर पुरस्कार-विजेताको आयकर नहीं देना होगा, इसकी स्वीकृति भारत सरकारके केन्द्रीय प्रत्यक्ष-कर बोर्डसे प्राप्त कर ली गयी थी।

पुरस्कारके निर्णयकी घोषणा साहित्य जगत्की बहुत बड़ी घटना थी; इसका ऐतिहासिक महत्त्व था। जैसे ही रेडियो तथा समाचार एजेन्सियोंने यह सूचना प्रसारित की, साहित्य जगत्को हर्षकारी विस्मय हुआ कि किस प्रकार निश्चित और घोषित अवधिके अन्दर यह महान् दुष्कर कार्य ज्ञानपीठ-द्वारा सम्भव हो सका। ज्ञानपीठकी प्रवर परिषद्ने, जिसमें मलयालम भाषा-भाषी कोई सदस्य नहीं था, श्री शंकर कुरुपकी कृति 'ओटक्कुष़ल'को पुरस्कृत किया, इस सूचनाने सारे देशको आश्वस्त किया कि पुरस्कार योजनाका संचालन अत्यन्त प्रामाणिक और निष्पक्ष ढंगसे हुआ।

जिस दिन यह समाचार घोषित हुआ महाकवि शंकर कुरुपके नगर एर्णाकुलमसे कुछ मील दूर अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन आलुवामें हो रहा था। सूचना पाते ही हर्ष और उत्साहका वातावरण चारों ओर छा गया। साहित्यकारोंने श्री शंकर कुरुपके अभिनन्दनार्थ एक सभा तत्काल आयोजित की। साहित्य जगत्-द्वारा परिषद्का निर्णय निष्पक्ष और निष्ठाजन्य माना गया, हमें इस बातका गर्व है।

आज हम श्री कुरुपका अभिनन्दन करने और उन्हें पुरस्कार-समर्पण करने एकत्र हुए हैं तो ज्ञानपीठको अपने प्रयत्नकी सफलता और सार्थकतापर हर्ष हो रहा है। वास्तवमें यह सफलता प्रवर परिषद्के सदस्योंकी है जिन्हें भाषा परामर्श समितियों और वर्ग समितियोंके सदस्योंका तत्पर सहयोग मिला। जिन बहुभाषाविद् समीक्षकोंने तुलनात्मक मूल्यांकनमें सहयोग दिया उनके प्रति ज्ञानपीठ तथा प्रवर परिषद् आभार व्यक्त करती है।

पुरस्कार निर्णयकी घोषणाके उपरान्त यह समर्पण समारोह मई, १९६६ तक कर लेनेका विचार था, किन्तु यह सोचकर कि अपने देशका इस प्रकारका यह प्रथम समारोह है अतः हम इसमें अतिथि-वक्ताके रूपमें किसी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त नोबेल पुरस्कार-विजेता साहित्यकारको आमन्त्रित करें, समारोह-की तिथि गरमियों बाद रखनेका निर्णय किया गया।

समारोह अगस्त-सितम्बर तक कर लेनेके उद्देश्यसे हमने वर्तमान नोबेल पुरस्कार विजेता साहित्यकारोंमें-से फ्रान्सके तीन साहित्यकारों—फ्रैंकॅय मौरियक, सेण्ट जान पर्स और ज़्याँपाल सार्त्रको निमन्त्रण-पत्र लिखे। इसी प्रकार यूनानके जॉर्ज सेफरिस, स्वीडनके पार लागेरक्विस्ट, इटलीके क्वासीमोदो, यूगोस्लावियाके आन्द्रिच, आइसलैण्डके लैक्सनेस, और अमरीकाके स्टीनबैकको पत्र लिखे। प्रायः सभीने निमन्त्रणके लिए आभार माना, कुछने आनेकी इच्छा भी प्रकट की किन्तु अगले छह-सात महीनों तक आनेकी असमर्थता दिखायी, कुछ अस्वस्थ थे। स्थिति स्पष्ट होते-होते समय लग गया और यह समारोह अब हो पा रहा है।

आज महाकवि कुरुपके अभिनन्दनार्थ आयोजित इस पुरस्कार-समर्पण समारोहका स्वर्ण अवसर प्राप्त करके ज्ञानपीठ अपनेको धन्य मानती है।



पुस्तकालयों के लिए संग्रहणीय नवीन साहित्य

● **शोध-प्रबन्ध**

पुस्तक	लेखक	मूल्य
महाभारत का आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव	: डॉ० विनय कुमार	२०.००
आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र-विकास	: डॉ० बेचन	१६.००

● **आलोचना**

पुस्तक	लेखक	मूल्य
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य	: डॉ० बेचन	१५.००
बच्चन : व्यक्तित्व और कृतित्व	: जीवनप्रकाश जोशी	१०.००
व्यक्ति और व्यक्तित्व	: श्री सुहृद	१०.००

● **उपन्यास**

पुस्तक	लेखक	मूल्य
छोटे साहब	: भगवतीप्रसाद वाजपेयी	७.५०
राहें अलग-अलग	: यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र	४.५०
जहाँगीर	: श्रीराम शर्मा राम	४.५०
पाप और पुण्य	: कमल शुक्ल	५.००

● **काव्य**

पुस्तक	लेखक	मूल्य
कोलाहल	: सी डी गान्धी सागर	२.००

● **यात्रा-वर्णन**

पुस्तक	लेखक	मूल्य
घाटियों के स्वर	: श्री हंसराज दर्शक	३.५०
अमरनाथ दर्शन	: ,,	२.००

● **जीवनोपयोगी साहित्य**

पुस्तक	लेखक	मूल्य
आगे बढ़ो	: स्वेट मार्डन	१.५०
सफलता की कुंजी	: स्वामी रामतीर्थ	१.००
नैतिक जीवन	: रघुनाथप्रसाद पाठक	२.५०
पाठशाला के हीरे	: ,,	१.००
देशभक्त बच्चे	: ,,	१.५०
हम क्या चाहते हैं	: स्वामी विवेकानन्द	१.५०
विश्वशान्ति का सन्देश	: ,,	२.५०
कर्मयोग	: ,,	२.००
भक्तियोग	: ,,	२.००
भक्ति और वेदान्त	: ,,	२.००
तिलक विचार सार	: म० ग० तपस्वी	३.५०

[उच्चकोटि के साहित्य तथा शीघ्र सेवा के लिए अपने आदेश हमें भेजें]

सन्मार्ग प्रकाशन

१६ यू० बी० बैंग्लो रोड, दिल्ली-७

दायित्व और सहयोग

जिनकी हार्दिकता और निष्ठापूर्ण लगनके
फलस्वरूप यह योजना सफलताके
शिखर तक पहुँची

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रवर्तित पुरस्कार योजनाका कार्य कितना जटिल और विस्तीर्ण था, और पग-पगपर जिस प्रकार कठिनाइयों-भरा भी, यह पिछले पृष्ठोंसे स्पष्ट है। कहीं-कहीं प्रारम्भमें यहाँ तक कहा भी गया कि यह एक असम्भव-सी योजना है जिसे क्या जाने क्या सोचते उठाया गया है! भारतीय ज्ञानपीठका विनम्र गर्व है कि उसने ऐसे कठिन कार्यको हाथमें लेनेका साहस किया और 'असम्भव-सी' लगनेवाली योजनाको मूर्त रूप दिया।

किन्तु यह सब हो सका इसीलिए, कि जहाँ एक ओर उसका अपना संकल्प-बल अच्युत रूपसे इसमें अनुस्यूत रहा, वहाँ दूसरी ओर भारतीय साहित्य जगत्के मनीषियों-चिन्तकों, लेखकों-समीक्षकों तथा अनगिनत प्रबुद्धजनोंका हार्दिक सहयोग इसे प्राप्त हुआ, और विभिन्न स्तरोंपर जिन्होंने इसका दायित्व-भार सँभाला उन्होंने हार्दिकता और वास्तविक कर्त्तव्य-भावनाके साथ उसका निर्वाह किया। भारतीय ज्ञानपीठ इन सबकी कृतज्ञ है। सबके संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत हैं—

• प्रवर परिषद्

१. डॉ० सम्पूर्णानन्द (अध्यक्ष)
२. आचार्य काकासाहब कालेलकर
३. डॉ० नीहाररंजन रे
४. डॉ० वी० गोपाल रेड्डी
५. डॉ० कर्णसिंह

६. डॉ॰ हरेकृष्ण मेहताब
७. डॉ॰ रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर
८. डॉ॰ वी॰ राघवन
९. श्रीमती रमा जैन अध्यक्षा, भारतीय ज्ञानपीठ
१०. श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ।

डॉ॰ सम्पूर्णानन्द (अध्यक्ष)

संस्कृत, दर्शन एवं समाज-विज्ञानके प्रकाण्ड विद्वान्; विचारक तथा राजनीतिज्ञ; हिन्दीमें वैज्ञानिक कथा-साहित्यके प्रवर्तक; **जन्म** : १८९१, वाराणसी; **मातृभाषा** : हिन्दी; **अन्य भाषाएँ** : संस्कृत, बंगला, उर्दू, अँगरेज़ी।

राज्यपाल राजस्थान; कुलपति, काशी विद्यापीठ; मुख्यमन्त्री, उत्तरप्रदेश (१९५५–'६०); 'समाजवाद' नामक पुस्तकपर मंगलाप्रसाद पुरस्कार; सम्पादक; 'टुडे' (अँगरेज़ी दैनिक), 'मर्यादा' (हिन्दी)।

प्रकाशन : हिन्दी तथा अँगरेज़ीमें लगभग ३५ ग्रन्थ; प्रमुख शीर्षक : आर्यों का आदि देश; चिद्विलास; कुछ स्मृतियाँ कुछ स्फुट विचार; अथर्ववेदके प्रात्यकाण्डकी श्रुतिप्रभा टीका; हिन्दू देव-परिवारका विकास; सप्तर्षि-लोक; योगदर्शन; दर्शन और जीवन; समाजवाद; हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान; प्रात्यकाण्ड भाष्य; (अँगरेज़ी) मेमरीज़ ऐण्ड रिफ्लेक्शन्ज़; कॉस्मॅगॅनी इन इण्डियन थॉट, इत्यादि। **पता** : राजभवन, जयपुर।

आचार्य काकासाहब कालेलकर

महात्मा गान्धीके निष्ठावान् सहयोगी, पत्रकार-भाषाविज्ञ, शिक्षा-संस्कारक, गुजराती-मराठी-हिन्दी-अँगरेज़ीके प्रसिद्ध लेखक; **जन्म** : १८८५, सतारा, महाराष्ट्र; **मातृभाषा** : मराठी; **अन्य भाषाएँ** : हिन्दी, गुजराती, संस्कृत, बंगला, कन्नड़, अँगरेज़ी।

अध्यक्ष, इण्डियन कौन्सिल ऑव कल्चरल रिलेशन्स; सदस्य, साहित्य अकादेमी; १९६४ में 'पद्मविभूषण' से सम्मानित; उपकुलपति, गुजरात विद्यापीठ (१९२०-२८); सम्पादक, 'यंग् इण्डिया' तथा 'नवजीवन' (१९२२-'२४); भाषा और लिपि विषयक गान्धीजीके विचारोंके रूप-शिल्पी।

प्रकाशन : गुजराती, मराठी, हिन्दी तथा अँगरेज़ीमें ६० से अधिक ग्रन्थ; कुछ प्रमुख शीर्षक : जीवता तहवारो; स्मरण-यात्रा; धर्मोदय; हिमालय नो प्रवास; ओतराती दिवालो, लोकमत, जीवन नो आनन्द, अवर्णावर; (अँगरेज़ी) लेटर्स टु चन्दन, इम्प्रेशन्स ऑव जापान, अवर नेवस्ट-शोर नेबर्स; (अनु० बंगला से) गीतांजलि, मालंच, रवीन्द्र प्रतिभा; आदि। **पता :** सन्निधि, राजघाट, नई दिल्ली।

डॉ० बी० गोपाल रेड्डी,

डी० लिट्० (सम्मानार्थ), आन्ध्र विश्वविद्यालय एवं श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय; विश्वभारती शान्ति-निकेतनमें शिक्षा-प्राप्त; भारतीय भाषाओंके अध्येता तथा बहुमुखी प्रतिभाशाली विद्वान्; **जन्म :** १९०७, वेज़वाड़ा, आन्ध्र; **मातृ-भाषा :** तेलुगु; **अन्य भाषाएँ :** बंगला, हिन्दी, उर्दू, अँगरेज़ी। अध्यक्ष, आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादेमी; सम-कुलपति, आन्ध्र विश्वविद्यालय; अध्यक्ष वित्त समिति, केन्द्रीय साहित्य अकादेमी; सदस्य, संगीत-नाटक अकादेमी; मुख्य मन्त्री, आन्ध्र प्रदेश (१९५५-'५६); केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मन्त्री (१९५८-'६३) **प्रकाशन :** रवीन्द्रनाथकी कुछ कृतियोंके अनुवाद। **पता :** २४, कैनिंग लेन, नयी दिल्ली।

डॉ० नीहाररंजन रे

एम्० ए० (कल०), डी० लिट्० (लीडन), डिप्० लायब्रे० (लण्डन), एफ्० आर० ए० एस्० (लण्डन), एफ्० बी० एल्० ए० (लण्डन), एफ्० आई० ए० ए० ऐण्ड एल० (ज्यूरिच), एफ्० ए० एस्० (कल०), भारतीय कला-संस्कृति और इतिहासके मर्मी विद्वान्; व्यापक दृष्टि-सम्पन्न साहित्यकार; प्रभावशाली वक्ता; **जन्म :** १९०३, मेमनसिंह, बंगाल; **मातृभाषा :** बंगला; **अन्य भाषाएँ :** संस्कृत, हिन्दी, अँगरेज़ी।

निदेशक, इण्डियन इन्स्टीटयूट ऑव ऐडवान्स्ड स्टडीज़, शिमला; बागीश्वरी प्रोफ़ेसर, इण्डियन फ़ाइन आर्ट्‌स कलकत्ता विश्वविद्यालय, अध्यक्ष, बंगीय साहित्य परिषद्; सदस्य, साहित्य अकादेमी; सदस्य ललित कला अकादेमी; तथा संगीत नाटक अकादेमी; सदस्य केन्द्रीय शिक्षा परामर्श मण्डल; सदस्य, भारतीय सांस्कृतिक सम्पर्क समिति; अध्यक्ष, कार्यकारिणी समिति, इन्स्टॉक; अध्यक्ष,

प्रकाशन विभाग, डी० एस० आई० आर; मन्त्री, न्यासधारी मण्डल, इण्डियन म्यूज़ियम ।

प्रकाशन : बंगला तथा अँगरेज़ीमें १४ से अधिक; कुछ प्रमुख शीर्षक : (बंगला) रवीन्द्र-साहित्येर भूमिका; बंगालोर इतिहास : आदि पर्व; (अँगरेज़ी) ब्राह्मनिकल गॉड्ज़ इन बर्मा; संस्कृत बुद्धिज्म इन बर्मा; थेरवाद बुद्धिज्म इन बर्मा, आर्ट इन बर्मा; डच एक्टिविटोज़ इन द ईस्ट; मौर्य ऐण्ड सुंग आर्ट;

पता : डायरेक्टर, इण्डियन इन्स्टीटयूट ऑव ऐडवान्स्ड स्टडीज़, शिमला ।

डॉ० कर्णसिंह

एम० ए०, डी० फ़िल्०; अँगरेज़ी तथा डोगरी भाषाओंके प्रतिभाशाली लेखक, कवि; भारतीय तथा विदेशी साहित्योंके गम्भीर विवेकी अध्येता; **जन्म** : १९३१, केन्स, फ़ान्स; **मातृभाषा** : डोगरो; **अन्य भाषाएँ** : हिन्दी, उर्दू, अँगरेज़ी । राज्यपाल, जम्मू-कश्मीर राज्य; कुलपति, जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय; उपकुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय; जम्मू-कश्मीर राज्यके रीजेण्ट (१९४९-'५२); सदर-ए-रियासत, जम्मू-कश्मीर (१९५२-'५७, १९५७-'६२, १९६२-'६५); आजोवन न्यासधारो, इण्डिया इण्टरनैशनल सेण्टर; नेहरू स्मारक-निधिके न्यासधारी एवं संगठनकर्ता ।

प्रकाशन : वेरीड रिद्म्स, शैडो ऐण्ड सनलाइट, प्रॉफेट ऑव इण्डियन नैशनलिज्म; सेलेक्टेड स्पीचेज़ ऐण्ड रायटिंग्ज़, वेलकम द मूनराइज़, पोस्ट-इण्डिपेण्डेन्स जेनरेशन, चैलेन्ज, रेस्पॉन्स; आदि ।

पता : कर्ण महल, श्रोनगर; न्यायमार्ग, चाणक्यपुरी, नयी दिल्ली ।

डॉ० हरेकृष्ण माहताब

एम० ए०, डी० लिट्०, डी० एल्, उड़िया भाषाके समर्थ लेखक समोक्षक; साहित्यकी विभिन्न विधाओंपर समान रूपसे अधिकार; राजधर्मी; **जन्म** : १८८९, अगरपाड़ा, उड़ीसा; **मातृभाषा** : उड़िया; **अन्य भाषाएँ** : संस्कृत, हिन्दी, अँगरेज़ी ।

सदस्य, साहित्य अकादेमी; सदस्य, संगीत-नाटक अकादेमी; मुख्य मन्त्री, उड़ीसा राज्य (१९४६-'५०) केन्द्रीय व्यापार एवं उद्योग मन्त्री (१९५०-'५२) राज्यपाल, बम्बई (१९५५-'५६) ।

प्रकाशन : (निबन्ध-उपन्यास) प्रतिभा, अन्यापरा, तिउत, गाँव मजिलिश; (कविता) पलासी अबसाने, आत्मदान, जीवन विकास, (नाटक) छायापथ यात्री, शेषाश्रु; (इतिहास) हिस्ट्री ऑव उड़ीसा; आदि ।

पता : ३६, कैनिंग लेन, नयी दिल्ली ।

डॉ० रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर

एम० ए०, एल०-एल० बी०, डी० लिट्०, योग एवं भारतीय दर्शनपर कन्नड़ तथा अँगरेज़ीके अधिकारी लेखक; कुशल पत्रकार-राजनीतिज्ञ; सत्याग्रह शास्त्रके अध्येता; **जन्म :** १८९४; **मातृभाषा :** कन्नड़, **अन्य भाषाएँ :** मराठी, हिन्दी, संस्कृत, अँगरेज़ी ।

संस्थापक, पीपल्स एजुकेशन ट्रस्ट एवं उसके द्वारा 'संयुक्त कर्नाटक' दैनिक, 'कर्मवीर' साप्ताहिक और 'कस्तूरी' मासिकका संचालन-प्रकाशन; अध्यक्ष, गान्धी स्मारक निधि, अध्यक्ष हिन्दुस्तान समाचार सोसायटी; अध्यक्ष, वनस्थली विद्यापीठ; अध्यक्ष, इण्डियन ऐण्ड ईस्टर्न न्यूज़ पेपर सोसायटी; संयुक्त सम्पादक, बुक यूनिवर्सिटी सीरीज़, भारतीय विद्या भवन; सदस्य, द इण्टरनैशनल प्रेस इन्स्टीच्यूट, ज़्यूरिच, केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मन्त्री (१९४८-'५२) राज्यपाल, बिहार (१९५२-'५७) ।

प्रकाशन : सब ३० से अधिक; कुछ प्रमुख शीर्षक; (कन्नड़) रामकृष्ण चरितामृत, राष्ट्रीय शिक्षण; (अँगरेज़ी) सत्याग्रह—इट्स हिस्ट्री ऐण्ड टैक्नीक, ग्लिम्पसेज़ ऑव गान्धीजी, सत्याग्रह इन ऐक्शन, द उपनिषद्ज़ इन स्टोरी ऐण्ड डायलॉग, महायोगी, बिहार थ्रू द एजेज़; आदि ।

पता : लोक शिक्षण स्ट्रट, हुबली (तथा बंगलोर); गान्धी स्मारक निधि, नयी दिल्ली ।

श्रीमती रमा जैन

ट्रस्टी–अध्यक्षा, भारतीय ज्ञानपीठ, सदस्या, संचालक समिति एवं सदस्या प्रवर परिषद्; **जन्म :** १९१७, कलकत्ता ।

राष्ट्रीय चेतनायुक्त शिक्षण संस्थानोंमें विद्याध्ययन । आदर्शोन्मुख वातावरणमें व्यक्तित्व-विकास । साहू-जैन औद्योगिक संस्थानोंके अन्तर्गत, साहित्य, कला तथा शिक्षाकी योजनाओंकी मुख्य प्रेरणा व क्रियात्मक सहयोग । भारतीय

ज्ञानपीठकी प्रवृत्तियों, कार्यक्रमों और कार्य-प्रगतिके संचालनमें वैयक्तिक दायित्व-का कुशल निर्वाह तथा उत्साहवर्द्धन। मैनेजिंग ट्रस्टी, साहू-जैन ट्रस्ट, जिसके अन्तर्गत अन्य समाज-सेवी कार्योंके अतिरिक्त १ लाखसे अधिक रुपये प्रतिवर्षकी छात्र-वृत्तियाँ दी जाती हैं। अध्यक्षा, साहू जैन चैरिटेब्ल सोसायटी, कलकत्ता। सदस्या कार्यकारिणी समिति : मारवाड़ी बालिका विद्यालय, अभिनव भारती, कलकत्ता; ट्रस्टी-सदस्या : वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान तथा राजस्थान सरकार-द्वारा स्थापित गौ-वर्धन संघकी जनरल कौंसिलकी सदस्या।

ज्ञानपीठ-प्रकाशित 'आधुनिक जैन कवि', 'परिणय गीतिका' तथा 'शैशवांकन' कलाकृतियोंका सहसम्पादन।

पता : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता।

डॉ० वेंकटराम राघवन्

एम० ए०, पी-एच० डी०; संस्कृतके प्रख्यात एवं प्रतिष्ठित विद्वान्; भारतीय विद्या-विषयक अनुशीलन एवं शोधोंके लिए गण्यमान्य; संस्कृत कवि और नाटककार; **जन्म :** १९०८, तिरुवरूर, मद्रास; **मातृभाषा :** तमिल; **अन्य भाषाएँ :** संस्कृत, तेलुगु, अँगरेज़ी।

प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय; सदस्य, साहित्य अकादेमी; सदस्य, संगीत-नाटक अकादेमी; सदस्य, केन्द्रीय संस्कृत बोर्ड; सदस्य, इण्डियन पी० ई० एन्०; अध्यक्ष, अ० भा० ओरिएण्टल कॉन्फ़रेंस (१९३१); सम्पादक, जर्नल ऑव ओरिएण्टल रिसर्च; सम्पादक, संस्कृत प्रतिभा; काणे स्वर्ण पदक-प्राप्त; 'संस्कृत कोकिला' एवं 'पद्मभूषण' उपाधियों-द्वारा सम्मानित।

प्रकाशन : लगभग ३५ पुस्तकें तथा ३५० शोध प्रबन्ध; प्रमुख नाम : (तमिल) परलक्ष्मीव्रत; (संस्कृत) रासलीला, काम-शुद्धि, प्रेक्षणकत्रयी; (अँगरेज़ी) महाभारत, कॉन्सेप्ट्स ऑव अलंकारशास्त्र, द न्यू कटेलोगस कैटेलोगोरम, संस्कृत ऐण्ड ऐलाएड इण्डोलॉजिकल स्टडीज़ इन योरॅप; लॅव इन द पोएम्स ऐण्ड प्लेज़ ऑव कालिदास, द इण्डियन हेरिटेज; आदि।

पता : ७, श्रीकृष्णपुरम् स्ट्रीट, रायापेट्टा मद्रास—५।

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

एम० ए० (संस्कृत साहित्य), एम० ए० (अँगरेज़ी साहित्य); साहित्यकार, सम्पादक, विशिष्ट शैलीके निबन्धकार; जन्म : १९०९, मध्य प्रदेश; मातृभाषा : हिन्दी, अन्य भाषाएँ : संस्कृत, उर्दू, अँगरेज़ी ।

मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ; सदस्य, संचालक समिति, मन्त्री, साहू जैन चैरिटेबल सोसायटी, कलकत्ता; सम्पादक, लोकोदय ग्रन्थमाला जिसके अन्तर्गत लगभग २५० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं; सम्पादक, 'ज्ञानोदय' तथा 'ज्ञानपीठ पत्रिका'; सदस्य, संचालक समिति, श्री शिक्षायतन कॉलेज तथा अन्य सांस्कृतिक-शैक्षणिक संस्थाओंमें पदाधिकारी; अध्यक्ष, अनामिका, कलकत्ता । **प्रकाशन :** (ललित निबन्ध-संग्रह) 'काग़ज़की किश्तियाँ', 'नये रंग नये ढंग'; (उपन्यास : सहयोगी लेखन-सम्पादन) 'ग्यारह सपनोंका देश' ।

पता : भारतीय ज्ञानपीठ, ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७ ।

• भाषा परामर्श समिति

असमिया :

डॉ० प्रफुल्लदत्त गोस्वामी, श्री डिम्बेश्वर नियोग, श्री हेम बरुआ ।

उड़िया :

डॉ० देवीप्रसन्न पट्टनायक, डॉ० पी० परीजा, श्री राधानाथ रथ ।

उर्दू

डॉ० मसूदहुसैन खाँ, श्री क्यू० ए० वदूद, श्री (जस्टिस)आनन्दनारायण मुल्ला।

कन्नड़

प्रो० वी० के० गोकक, प्रो० पी० सीतारमैया, प्रो० एस्० एस्० मलवाड़ ।

कश्मीरी :

प्रो० जियालाल कौल, प्रो० रहमान राही, प्रो० रास जाविदानी ।

गुजराती

श्री डोलारराय आर० मानकड़, श्री रामप्रसाद पी० बक्षी, श्री अनन्तराय एम० रावल ।

तमिळ :

प्रो० टी० पी० मीनाक्षीसुन्दरम्, श्री एम्० पी० पेरियास्वामी तूरन, श्री सॉ० गणेशन ।

तेलुगु :

प्रो० के० लक्ष्मीरंजनम्, श्री अनन्तकृष्ण शर्मा, श्री पी० वी० राजमन्नार।

पंजाबी :

डॉ० गोपाल सिंह, श्री जी० डी० खोसला, श्री कपूर सिंह ।

बंगला :

डॉ० सुकुमार सेन, डॉ० अमलेन्दु बोस, प्रो० आर० के० दासगुप्त ।

मराठी :

डॉ० प्रभाकर माचवे, डॉ० डब्ल्यू० एल्० कुलकर्णी, प्रो० एम्० वी० राजाध्यक्ष।

मलयालम :

श्री एन्० पी० कृष्ण वारियर, श्री सूरनाड कुंजन पिल्लै, डॉ० एस्० के० नायर ।

संस्कृत :

डॉ० बाबूराम सक्सेना, म० म० राजेश्वर शास्त्री द्रविड़, तर्कतीर्थ श्री लक्ष्मण शास्त्री जोशी ।

हिन्दी :

डॉ० नगेन्द्र, श्री सी० बालकृष्ण राव, डॉ० देवराज ।

डॉ० प्रफुल्लदत्त गोस्वामी

जन्म : १९२१, गौहाटी; **मातृभाषा** : असमिया; **अन्य भाषाएँ** : बंगला।

गौहाटी विश्वविद्यालयमें प्रशिक्षण प्रणाली एवं लोक संस्कृति तथा लोककथा विभागोंके अध्यक्ष; सदस्य, संचालक समिति, सोसायटी फॉर एशियन फ़ोक्लोर, इण्डियाना यूनिवर्सिटी, यू० एस० ए० ।

प्रकाशन : लगभग २० : (असमिया) केचा पातर कचनी, निते नव रूप तार, असमिया जन साहित्य, साहित्य और जीवन, बारा माहर तेरा गीत; (अँगरेज़ी), फ़ोक लिट्रेचर ऑव आसाम, फ़िक्शन इन आसामीज़, इत्यादि ।

पता : हिलसाइड, शिलपुखरी, गौहाटी ।

श्री डिम्बेश्वर नियोग

एम० ए०, बी० एस० सी०, बी० टी०, जन्म : १८९९, शिवसागर, असम; मातृभाषा : असमिया; अन्य भाषाएँ : बंगला, संस्कृत। अध्यक्ष असम साहित्य सभा।

प्रकाशन : २०० से अधिक : (असमिया) मलिका, इन्द्रधनु, असमिया साहित्यार अध्ययन, असमिया भाषार बुरंज; (अँगरेज़ी) माडर्न असमिया लिट्रेचर, ओरिजिन ऐण्ड ग्रोथ ऑव असमिया लैंग्वेज; (अनुवाद) मेघदूत, इत्यादि।

पता : शिलांग रोड, दिसपुर, गौहाटी–५

श्री हेम बरुआ, एम० ए०

जन्म : १९१५, जोरहाट; मातृभाषा : असमिया; अन्य भाषाएँ : बंगला, हिन्दी। सदस्य, लोक सभा, साहित्य अकादेमी; भूतपूर्व प्रिंसिपल, बी० बरुआ कॉलेज, गौहाटी।

प्रकाशन : (असमिया) आधुनिक साहित्य, संमिहलि, रंग करबीर फूल; (अँगरेज़ी) : द रेड रिवर ऐण्ड द ब्लू हिल, इत्यादि।

पता : ८३, साउथ ऐवेन्यू, नयी दिल्ली।

डॉ० देवीप्रसन्न पट्टनायक

जन्म : १९३१; मातृभाषा : उड़िया, अन्य भाषाएँ : असमिया, बंगला, हिन्दी। अमरीकन इन्स्टीटयूट ऑव इण्डियन स्टडीज़, पूनामें मुख्य भाषाविद्; सेवानिवृत्त उड़िया विभागाध्यक्ष, विश्वभारती विश्वविद्यालय।

प्रकाशन : कविलिपि, साहित्य भिक्षा। अमरीकामें प्रकाशनाधीन, शोध प्रबन्ध : ए काट्रोल्ड हिस्टारिकल रिकॅन्स्ट्रक्शन ऑव उड़िया, असमीज़, बंगाली एण्ड हिन्दी।

पता : पोस्ट तिरिगिया, जिला कटक, उड़ीसा।

डॉ० प्राणकृष्ण परीजा

एम. ए., (कैण्टब), डी. एस-सी,. आई. ई. एस. (सेवानिवृत्त) ; मातृभाषा उड़िया, अन्य भाषाएँ : बंगला, हिन्दी।

उपकुलपति, उत्कल विश्वविद्यालय; भारत-लंका अन्तरविश्वविद्यालय मण्डल-की स्थायी समितिके सभापति (१९६२ और १९६३) ; विश्वविद्यालय अनुदान आयोगकी सामान्य शिक्षा समितिके सभापति (१९६३) ; राष्ट्रपति पदक 'पद्म-भूषण'-द्वारा सम्मानित ।

पता : १०, कैण्टोनमैण्ट, कटक ।

श्री राधानाथ रथ

जन्म : १८९७; **मातृभाषा** : उड़िया, **अन्य भाषाएँ** : हिन्दी, बंगला ।

सम्पादक 'समाज', कटक; भू० पू० मन्त्री, उड़ीसा सरकार (१९५२-१९६१) ; अध्यक्ष, भारत सेवक समाज; अध्यक्ष प्रिंटिंग प्रेस एसोसिएशन; सदस्य, ऑफिशियल लैंग्वेज़ (लेजिस्लेटिव) कमीशन; हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी संचालक समितिके सदस्य ।

पता : गोपबंधु भवन, कटक- १

डॉ० मसूद हुसेन खाँ

एम० ए०, पी-एच. डी., डी. लिट् (पेरिस), **जन्म** : १९१९, फर्रुखाबाद; **मातृभाषा** : उर्दू, **अन्य भाषाएँ** : फ़ारसी । प्राध्यापक तथा अध्यक्ष, उर्दू विभाग, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद; सदस्य, अंजुमन तरक़्क़ी-ए-उर्दू, अलीगढ़; सदस्य, साहित्य अकादेमी (उर्दू परामर्श समिति); सदस्य, परामर्श समिति, आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादेमी; सदस्य, सम्पादक मण्डल, 'इस्लामिककल्चर', हैदराबाद; सम्पादक, 'क़दीम उर्दू' (शोध-पत्रिका) हैदराबाद ।

प्रकाशन : तवारीख़-ए-ज़बान-ए-उर्दू, उर्दू ज़बान और अदब, दो नीम (कविताएँ) रूप बंगाल (हिन्दी गीत), ए फौनेटिक एण्ड फोनोलॉजिकल स्टडी ऑव दि वर्ड इन उर्दू लिटरेचर (सम्पादन, भाग १) ;

पता : १८-ए, बंगला, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

क़ाज़ी अब्दुल वदूद

बार-एट-लॉ; **जन्म** : १८९७; **मातृभाषा** : उर्दू; **अन्य भाषाएँ** : फ़ारसी; पटनामें बैरिस्टर हैं ।

प्रकाशन : इयारिस्तान, उस्तूर वा सुजान, ग़ालिब्र बहैसियतए-मुहक़्क़ीक़ (नक़दी गालिबमें सम्मिलित), दीवान-ए-जोशिश, दीवान-ए-रज़ा; इब्ने तूफ़ां क़ृत

तज़करा-ए-शौरा, कितात-ए-दिलदार; फ़ारसी भाषापर शोध कार्यके लिए १९६४ में राष्ट्रपति पुरस्कार।

पता : इदारा-ए-तहक़ीक़ात-ए-उर्दू, पटना—४

श्री आनन्दनारायण मुल्ला

एम. ए., एल-एल. बी., जन्म : १९०१, लखनऊ; मातृभाषा : उर्दू।

भू० पू० न्यायाधीश, इलाहाबाद हाईकोर्ट।

प्रकाशन : मज़ामीन-ए-नेहरू (निबन्ध), जू-ए-शीर (काव्य संकलन), कुछ ज़र्रे : कुछ तारे; (काव्य संकलन) मेरी हदीस-ए-उम्र-ए-गुरेज़ाँ, (साहित्य अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत काव्य संकलन)।

पता : २, चायना बाज़ार रोड, लखनऊ।

श्री विनायक कृष्ण गोकाक

एम. ए. (ऑक्सफ़ोर्ड), जन्म : सावनूर, धारवाड़; मातृभाषा : कन्नड़; अन्य भाषाएँ : मराठी, हिन्दी।

प्राध्यापक एवं निर्देशक, सेण्ट्रल इन्स्टीटयूट ऑव इंग्लिश, हैदराबाद; सदस्य, परामर्श समिति, साहित्य अकादेमी, प्रबन्ध परिषद्, इण्डियन इन्स्टीटयूट ऑव ऐडवान्स्ड स्टडीज सोसायटी; 'पद्मश्री' उपाधि-द्वारा सम्मानित, १९६१।

प्रकाशन : लगभग ४०; अभ्युदय, नव्य कवितागलु, द्यावा पृथ्वी, युगान्तर, तग्यते हगु कार्य जीवन; (अँगरेज़ी) द साइंस ऑव लाइफ़, द पोएटिक एप्रोच टु लैंग्वेजेज, लिट्रेचर इन माडर्न इण्डियन लैंग्वेजेज; इत्यादि।

पता : सेण्ट्रल इन्स्टीटयूट ऑव इंग्लिश, हैदराबाद—७।

श्री वेंकटरामय्या सीतारामय्या

एम. ए., जन्म : १८९९, बुडिगेर, बंगलौर; मातृभाषा : कन्नड़; अन्य भाषा : संस्कृत।

प्रिन्सिपल, आर्ट्स एण्ड साइन्स कॉलेज, होनावर;

प्रकाशन : लगभग २५ : दीपगलु, द्राक्षी दालिम्ब, बेलुदिंगलु, श्रीशैल शिखर, कविकाव्य दृष्टि; (अँगरेज़ी) मीनिंग ऐण्ड वैल्यू इन लिट्रेचर ऐण्ड क्रिटिसिज़्म; इत्यादि।

पता : आर्ट्स एण्ड साइन्स कॉलेज, होनावर (उ० प्र०)।

श्री संगप्पा सांगनवसप्पा मालवाड़

एम. ए., जन्म : १९१०, धारवाड़ जिला; मातृभाषा : कन्नड़; अन्य भाषाएँ : संस्कृत, मराठी। प्रिन्सिपल, कर्नाटक आर्ट्स कॉलेज, धारवाड़; आजीवन सदस्य : अ० भा० पी० ई० एन० केन्द्र, अ० भा० ओरियण्टल कान्फ़रेन्स, कन्नड़ साहित्य-परिषद्; सदस्य साहित्य अकादेमी, कोश समिति।

प्रकाशन : लगभग २० : कन्नड़ साहित्य-संस्कृति दर्शन, साहित्य समालोचन, काव्य मत्तु, जीवन-चित्रण, मातेयवर विचार-धारे; इत्यादि।

पता : कर्नाटक आर्ट्स कालेज, धारवाड़

श्री जियालाल कौल

एम. ए., एल-एल. बी., जन्म : १९००, जम्मू-कश्मीर; मातृभाषा : कश्मीरी, अन्य भाषाएं : डोगरी, उर्दू। सदस्य, साहित्य अकादमी, संगीत नाटक अकादमी, ललितकला अकादमीके सदस्य, भूतपूर्व मन्त्री जम्मू कश्मीर एकेदमी ऑव आर्ट्स, सायन्स ऐण्ड लैंग्वेजेज।

प्रकाशन : (अनुवाद अँगरेज़ीमें कश्मीरी लिरिक्स, इण्टर-प्रेटेशन ऑव ग़ालिब; (अनुवाद उर्दूमें) लाल घाव, इत्यादि।

पता : एक्सचेंज रोड, श्रीनगर।

श्री रहमान राही

एम. ए., जन्म : १९२५, श्रीनगर : मातृभाषा : कश्मीरी, अन्य भाषाएँ : उर्दू, फ़ारसी।

जम्मू कश्मीर विश्वविद्यालयमें फ़ारसीके प्राध्यापक।

प्रकाशन : सनवानी साज़, सुभुक सौदा, कलाम-ए-राही; इत्यादि।

पता : वाज़ापुरा, श्रीनगर।

श्री रास जाविदानी

जन्म : १९२१, भादरवाह, जम्मू : **मातृभाषा** : कश्मीरी; अन्य भाषाएँ : उर्दू, फ़ारसी।

जम्मू-कश्मीरी कला-संस्कृति एवं भाषा अकादेमीकी कार्यकारिणी समिति तथा महापरिषद्के सदस्य।

प्रकाशन : नौरंग-ए-ग़ज़ल; (उर्दू) नज़्म-ए-सराया; लाला-ए-सहरा, नैरंग-ए-ग़ज़ल ।

पता : भादरवाह, जम्मू-कश्मीर ।

श्री ढोलारराय रंगीलदास मांकड़

एम. ए., जन्म : १९०२, जंगी, कच्छ; मातृभाषा : गुजराती; अन्य भाषा : संस्कृत ।

अध्यक्ष, सौराष्ट्र लेखक सम्मेलन, भावनगर; मन्त्री, गंगाजल विद्यापीठ, अलियाबाड़ा ।

प्रकाशन : लगभग ३० : (गुजराती) संस्कृत नाट्य साहित्यना विकासनी रूपरेखा, काव्य-विवेचन, नैवेद्य, गुजराती काव्य प्रकारो; (अँगरेज़ी) द टाइप्स ऑव संस्कृत ड्रामा, द एन्शिएण्ट इण्डियन थियेटर : इत्यादि ।

पता : अलियाबाड़ा, जिला जामनगर ।

श्री रामप्रसाद प्रेमशंकर बक्षी

बी. ए. (आनर्स), जन्म : १८९४, जूनागढ़; मातृभाषा : गुजराती; अन्य भाषाएँ : हिन्दी, संस्कृत, पंजाबी ।

गुजरातीके मानसेवी प्राध्यापक, मीठी बाई कॉलेज, बम्बई

प्रकाशन : नाट्यरस, वाङ्मय विमर्श, (अनुवाद पंजाबीसे) सुखमणि; (अनुवाद अँगरेज़ीसे) गुजराती लैंग्वेज ऐण्ड लिट्रेचर; इत्यादि ।

पता : गोपाल भवन, टैगोर रोड, सान्ताक्रुज़, बम्बई–५४

अनन्तराय मणिशंकर रावल

एम. ए., जन्म : १९१२, भावनगर, मातृभाषा : गुजराती; अन्य भाषा : संस्कृत ।

निदेशक, भाषा विभाग, गुजरात राज्य; सदस्य, साहित्य अकादेमी ।

प्रकाशन : २५से अधिक : साहित्य विहार, गन्धाक्षत, साहित्य विवेक, साहित्य निकष, गुजराती साहित्य; इत्यादि ।

पता : २, श्री सद्म सोसायटी, नवरंगपुर, अहमदाबाद–९

श्री टी० पी० मीनाक्षीसुन्दरम्

एम. ए., बी. एल., एम. ओ. एल., जन्म : १९०१, मातृभाषा : तमिल; अन्य भाषा : बंगला;

अन्नमलाई विश्वविद्यालयमें भाषाविज्ञान विभागाध्यक्ष; १९६२ में शिकागो विश्वविद्यालयके तमिल विभागका संगठन करने गये।

प्रकाशन : १९ तमिल ग्रन्थ जिनमें साहित्यिक निबन्ध संग्रह तथा नाटक आदि भी सम्मिलित हैं।

एम० पी० पेरियास्वामी थूरन

बी. ए., एल. टी., जन्म : १९०८; मातृभाषा : तमिल।

मन्त्री तमिल अकादेमी; सम्पादक 'तमिल विश्वकोश'।

प्रकाशन : ५ कविता संग्रह, ५ कहानी संग्रह, ७ नाटक, ३ निबन्ध संग्रह तथा ८ पुस्तकें बाल-मनोविज्ञानपर।

पता : ४३, सेकेण्ड मेनरोड, कस्तूरबा नगर, मद्रास-२०

सॉ० गणेशन

जन्म : १९०८; **मातृभाषा** : तमिल; **अन्य भाषा** : संस्कृत।

एम० एल० ए०, संस्थापक निर्देशक, कम्बन कड़गम; न्यासधारी, अलगप्पा एजूकेशन ट्रस्ट; सदस्य तमिल अकादेमी।

कतिपय, तमिल प्राचीन ग्रन्थोंका सम्पादन।

पता : 'करपक निलयम', करैकुडि, मद्रास राज्य।

खाण्डवल्लि लक्ष्मीरंजनम्

एम. ए., **जन्म** : १९०८; **मातृभाषा** : तेलुगु; **अन्य भाषा** : संस्कृत।

तेलुगु विभागाध्यक्ष एवं यू० जी० सी० प्राध्यापक, उसमानिया विश्वविद्यालय; अध्यक्ष, आन्ध्र लेखक सहकारी समिति; सदस्य, आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादेमी।

प्रकाशन : आन्ध्र साहित्य चरित्र संग्रह; आन्ध्र इतिहास एवं संस्कृतिके हम सहयोगी लेखक।

पता : विद्यानगर, हैदराबाद-७

श्री राल्लपल्ले अनन्तकृष्ण शर्मा

जन्म : १८९३; **मातृभाषा** : तेलुगु; **अन्य भाषाएं** : संस्कृत, कन्नड़ ।

सेवानिवृत्त तेलुगु प्राध्यापक, महाराजा कालेज, मैसूर, भू० पू० संगीत रीडर, एस० वी० ओरिएण्टल इंस्टीटचूट, तिरुपति; सदस्य, साहित्य अकादेमी; संगीत नाटक अकादेमी ।

प्रकाशन : लेक्चर्स ऑन यमन, नाटकोपन्यासमुलु, सारस्वतालोकम्, गाथा-सप्तशतीसारम्, साहित्यमत्तुजीवनकले, गानकले ।

पता : ११७, जी० एस० मदा स्ट्रीट, तिरुपति ।

डॉ० पकला वकट राजमन्नार

डी. लिट्., एल-एल. डी., जन्म : १९०१; **मातृभाषा** : तेलुगु ।

भू० पू० मुख्य न्यायाधीश, मद्रास हाईकोर्ट; भू० पू० अध्यक्ष, नेशनल अकादेमी ऑव म्यूजिक, ड्रामा एण्ड डान्स; भू० पू० अध्यक्ष मद्रास राज्य ललित कला अकादेमी ।

प्रकाशन : स्वतन्त्र जीवनम्, थाप्पेवरिदि, नाटिका गुचम, एमि मोगावाल्लू, मनोरमा इत्यादि ।

पता : ९ विक्टोरिया क्रेसेण्ट, मद्रास–८ ।

डॉ० गोपालसिंह

जन्म : १९१७; **मातृभाषा** : पंजाबी, **अन्य भाषा** : हिन्दी ।

संसद् सदस्य; भू० पू० सम्पादक, पंजाब विश्वविद्यालय प्रकाशन ।

प्रकाशन : (पंजाबी), ३ कविता संग्रह तथा ६ निबन्ध संग्रह; सिख धर्म ग्रन्थ, 'गुरु ग्रन्थ साहब' का मुक्तछन्दमें अँगरेज़ी अनुवाद; 'अनहदनाद' नामक अपने ही कविता संग्रहका अँगरेज़ी अनुवाद ।

पता : ६२, साऊथ एवेन्यू, नयी दिल्ली ।

श्री गोपालदास खोसला

बी. ए. ऑनर्स (कैम्ब्रिज), बार-एट-लॉ, आई. सी. एस., **जन्म** : १९०१; मातृभाषा : पंजाबी; **अन्य भाषा** : हिन्दी; भू० पू० मुख्य न्यायाधीश, पंजाब हाईकोर्ट; १९६२ में ब्रिटिश गायनाके उपद्रवोंके समय कामनवेल्थ जाँच आयोगके सदस्य ।

प्रकाशन : (अँगरेज़ी) दि प्राइस आँव ए वाइफ़, दि हॉरोस्कोप कैन नाट लाई, दि मर्डर ऑफ़ दि महात्मा, इत्यादि ।

पता : ७८ जी, सुजान सिंह पार्क, नयी दिल्ली–३

श्री कपूर सिंह

एम. ए. (कैण्टब); जन्म : १९०९; मातृभाषा : पंजाबी, अन्य भाषा : हिन्दी ।

संसद् सदस्य; विदेश भ्रमण : इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रान्स, स्पेन, अलजीरिया ।

प्रकाशन : (पंजाबी) हशीश (कविताएँ), बहुविस्तार (निबन्ध), पुण्डलीक (निबन्ध), सप्तश्रृंग जीवनी; (अँगरेज़ी)पराशरप्रश्न, सेकेण्ड राइटिंग्स ऑफ़ सिक्ख (यूनेस्कोका सहयोगी प्रकाशन) ।

पता : १८९, साउथ एवेन्यू, नयी दिल्ली–११

डॉ० सुकुमार सेन

जन्म : १९००, कलकत्ता; मातृभाषा : बांग्ला, अन्य भाषाएँ : हिन्दी, संस्कृत, असमिया ।

सेवानिवृत्त प्राध्यापक, भारतीय भाषाशास्त्र एवं विभागाध्यक्ष तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, कलकत्ता विश्वविद्यालय; सदस्य, साहित्य अकादेमी ।

प्रकाशन :(बांग्ला) बांग्ला साहित्येर गद्य, बांग्ला साहित्येर इतिहास, इस्लामी बांग्ला साहित्य; (अँगरेज़ी) ए हिस्स्ट्री ऑव ब्रजबुलि लिट्रेचर, हिस्टोरिकल सिण्टेक्स ऑव मिडिल इण्डो-आर्यन, हिस्ट्री ऑव बंगाली लिट्रेचर; इत्यादि ।

पता : १० राजा राजकिशन स्ट्रीट, कलकत्ता–६

डॉ० अमलेन्दु बोस

डी. फिल् (ऑक्सफ़ोर्ड); जन्म : १९०८, कलकत्ता; मातृभाषा : बांग्ला; अन्य भाषा : हिन्दी ।

सर गुरुदास बैनर्जी प्राध्यापक एवं स्नातकोत्तर अँगरेज़ी विभागाध्यक्ष, कलकत्ता विश्वविद्यालय; आजीवन सदस्य, माडर्न ह्यूमेनिटीज़ रिसर्च एशोसियेशन केम्ब्रिज ।

प्रकाशन : (बांग्ला) साहित्य लोक; (अँगरेज़ी) : द विक्टोरियन वर्कर्स नॉवेल, अर्ली विक्टोरियन पोएट्री ऑव सोशल फर्मेंट, इत्यादि ।

पता : ७००-जी ।१ ब्लॉक 'पी', न्यू अलीपुर, कलकत्ता–५३

डॉ० रविकुमार दासगुप्त

जन्म : १९१५; **मातृभाषा** : बांग्ला; **अन्य भाषा** : संस्कृत ।

बांग्ला भाषाओं एवं साहित्यके टैगोर प्रोफ़ेसर, आधुनिक भारतीय भाषाओंके विभागाध्यक्ष, तथा कला प्रमाणके डीन, दिल्ली विश्वविद्यालय ।

पता : दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–७

डॉ० प्रभाकर माचवे

जन्म : १९१७, ग्वालियर; **मातृभाषा** : मराठी; **अन्य भाषाएँ** : हिन्दी, बांग्ला, संस्कृत, गुजराती ।

साहित्य अकादमीके प्रवर सहायक मन्त्री, कैलिफोर्निया और विस्कान्सिन विश्वविद्यालयोंमें भारतीय अध्ययन विषयोंके प्रवासी प्राध्यापक १९५९-६१ ।

प्रकाशन : लगभग ३५ : (मराठी) मालविका, चरित्र-आत्म-चरित्र आणि टीका; (हिन्दी) परन्तु, द्वाभा, जो, स्वप्नभंग, अनुक्षण, खरगोशके सींग, तेलकी पकौड़ियाँ, व्यक्ति और वाङ्मय, समीक्षाकी समीक्षा, मराठी और उसका साहित्य : इत्यादि ।

पता : १२०, रवीन्द्रनगर, नयी दिल्ली–११

श्री वामन लक्ष्मण कुलकर्णी

एम. ए., बी. टी.; **जन्म** : १९११, चोपाड़ा, खानदेश; **मातृभाषा** : मराठी; **अन्य भाषा** : हिन्दी ।

मराठवाड़ा विश्वविद्यालयमें मराठी भाषा एवं साहित्यके प्राध्यापक; महाराष्ट्र राज्य साहित्य एवं संस्कृति मण्डलके सदस्य; अध्यक्ष महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन १९६५ ।

प्रकाशन : वाङ्मयीन मतें आणि मतभेद, वाङ्मयीन टीपा आणि टिप्पणी, वाङ्मयीन दृष्टिकोण, साहित्य आणि समीक्षा इत्यादि ।

पता . कृष्णकुंज, सरस्वती कालनी, औरंगपुर, औरंगाबाद ।

श्री मंगेश विट्ठल राजाध्यक्ष

एम. ए.; जन्म : १९१३, बम्बई; मातृभाषा : मराठी; अन्य भाषा : हिन्दी।

एलफिन्स्टन कॉलेज बम्बईमें अंगरेज़ीके प्राध्यापक; नेशनल बुक ट्रस्ट ऑव इण्डिया तथा साहित्य अकादमीकी मराठी परामर्शदात्री समितिके सदस्य।

प्रकाशन : पाँच कवि, आकाशभाषिते, खर्डेभाशो; इत्यादि।

पता : ७, जयराज हाऊस, १४१, कोलाबा रोड, बम्बई-५।

श्री ने० व० कृष्ण वारियर

एम. ए. एम. लिट्. जन्म : १९१६, त्रिचूर जिला; **मातृभाषा** : मलयालम; **अन्य भाषाएँ** : हिन्दी, संस्कृत।

साहित्य अकादमी, मद्रास विश्वविद्यालय एकेडेमिक कौन्सिल, तथा केरल विश्वविद्यालय सिनेटके सदस्य; केरल कला समिति एवं केरल साहित्य समिति कोज़ीकोडके मन्त्री; द० भा० हिन्दी प्रचार सभाके सदस्य, सहायक सम्पादक : मातृभूमि।

प्रकाशन : लगभग २० : चाट्टवार, कोच्चुतोम्मन्, विद्यापति, चित्रांगदा, वीर रविधर्म चक्रवर्ती, कालोत्सवम्, परिप्रेक्ष्यम्, इत्यादि।

पता : मातृभूमि बिल्डिंग्ज, कोज़िकोड।

श्री शूरनाड पी० एन० कुंजन पिल्ले

एम. ए. (अँगरेज़ी, संस्कृत, मलयालम) जन्म : १९११, शूरनाड, गाँव-कोट; **मातृभाषा** : मलयालम, **अन्य भाषाएँ** : तमिल, हिन्दी, संस्कृत।

केरल विश्वविद्यालयके अन्तर्गत मलयालम शब्दकोश-सम्पादक तथा मलयालम शिक्षा मण्डल एवं प्राच्यानुशीलन संकायके सदस्य, साहित्य अकादमी और केरल साहित्य अकादमीके सदस्य।

प्रकाशन : लगभग २५ : श्मशानदीपम्, साहित्य भूषणम्, कल्याण सौधम्, साहित्य प्रवेशिका, लीलातिलकम्, मातृपूजा, कैरली पूजा; (अँगरेज़ी) इम्पीरियल चौलाज़, इत्यादि।

पता : केरल प्रभा, नेडुम्काड, करमण, त्रिवेन्द्रम्।

डॉ० एस० के० नायर

जन्म : १९१७, अलुवा; मातृभाषा : मलयालम; अन्य भाषाएँ : तमिल, हिन्दी, संस्कृत ।

मद्रास विश्वविद्यालयमें मलयालम विभागाध्यक्ष एवं प्राध्यापक; तमिल महाकाव्य, कम्बरामायणम्, के पद्यबद्ध अनुवादमें संलग्न ।

प्रकाशन : ४० से अधिक : वेल्लितोणियुटे व्याख्यानम्, कलाचिन्तकल्, बार्हस्पत्यसूत्र व्याख्या, विचारमंजरि, कालत्तिण्टे-कवितकल्, साहित्य सुधा; बैलेड्ज़ ऑव नार्थ मलबार, द आर्ट ऐण्ड लिट्रेचर ऑव कथकली, मलबार इन्स्क्रिप्शन्स; (अनुवाद) प्रोमीथ्यस, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, इत्यादि ।

पता : लक्ष्मीनिलयम्, ११, ईस्ट सर्क्यूलर रोड, मन्दवेलिप्पक्कम्, मद्रास—२८

डॉ० बाबूराम सक्सेना

एम. ए., डी. लिट्., जन्म : १८९७; मातृभाषा : हिन्दी; अन्य भाषाएँ : संस्कृत, प्राकृत ।

उपकुलपति, रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर; संस्थापक-सदस्य, लिंग्विस्टिक सोसाइटी ऑव इण्डिया; आजीवन सदस्य, लिंग्विस्टिक सोसाइटी ऑव पेरिस ।

प्रकाशन : (अँगरेज़ी) एवोल्यूशन ऑव अवधी; (हिन्दी) सामान्य भाषा विज्ञान, अर्थविज्ञान, दक्खिनी; इत्यादि ४० ग्रन्थ ।

पता : रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर (म० प्र०)

महामहोपाध्याय राजेश्वर शास्त्री द्रविड

जन्म : संवत् १९५६, श्रावण शुक्ला १४; मातृभाषा : मराठी; अन्य भाषाएँ : हिन्दी, संस्कृत ।

संस्थापक, श्री वल्लभराम शालिगराम सांगवेद विद्यालय, वाराणसी; विभिन्न संस्थाओं-द्वारा 'पण्डितराज', 'शास्त्ररत्नाकर', 'सर्वतन्त्रस्वतन्त्र' आदि उपाधियाँ प्रदत्त; 'पद्मभूषण' से सम्मानित ।

पता : राजमन्दिर, २०।१५४, ब्रह्माघाट, वाराणसी ।

तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी

जन्म : १९०१; **मातृभाषा :** मराठी; **अन्य भाषाएँ** : हिन्दी, संस्कृत।

अध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य साहित्य एवं संस्कृति मण्डल; सम्पादक, मराठी विश्वकोश; मराठी कृति 'वैदिक संस्कृतिचा विकास' पर साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त।

प्रकाशन : (मराठी) आनन्द मीमांसा, हिन्दू धर्मची समीक्षा, वैदिक संस्कृतिचा विकास; (संस्कृत) शुद्धिसर्वस्वं, धर्मकोश इत्यादि।

पता : प्राज्ञपाठशाला मण्डल, वाई, जिला सतारा, महाराष्ट्र।

डॉ० नगेन्द्र

डी. लिट्.; **जन्म :** १९१५, अतरौली, उत्तरप्रदेश; **मातृभाषा :** हिन्दी; **अन्य भाषाएँ** : संस्कृत, उर्दू।

प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग तथा अधिष्ठाता कला-संकाय दिल्ली विश्वविद्यालय; प्रतिष्ठित हिन्दी समीक्षक, लेखक।

प्रकाशन : लगभग २५ : सुमित्रानन्दन पन्त, साकेत—एक अध्ययन, विचार और अनुभूति, रीति काव्यकी भूमिका, देव और उनका काव्य, आधुनिक हिन्दी कविताकी मुख्य प्रवृत्तियाँ, भारतीय काव्य शास्त्रकी भूमिका, अनुसन्धान और आलोचना, रस सिद्धान्त, इत्यादि।

पता : १६, कैवेलरी लाइन्स विश्वविद्यालय क्षेत्र दिल्ली–७

श्री सी० बालकृष्ण राव

एम. ए., आई. सी. एस., **जन्म :** १९१३, इलाहाबाद; **मातृभाषा :** तेलुगु; **अन्य भाषाएँ** : हिन्दी, उर्दू, संस्कृत।

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा, तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयागके अध्यक्ष; साहित्य अकादेमीकी परामर्शदात्री समितिके सदस्य; प्रयागके नगर महापौर १९६१-६२; विन्ध्यप्रदेशके भू० पू० मुख्य सचिव; आकाशवाणीके भू० पू० महानिदेशक; सम्पादक, 'माध्यम'।

प्रकाशन : कौमुदी, आभास, कवि और छवि, रात बीती, अर्द्धशती, इत्यादि।

पता : अमरावती, ९, टैगोरनगर, इलाहाबाद–२

डॉ० नन्दकिशोर देवराज

डी. लिट.; जन्म : १९१७, रामपुर, उ० प्र०; : मातृभाषाः हिन्दी, अन्य भाषाएँ : संस्कृत, उर्दू ।

काशी विश्वविद्यालयमें भारतीय सभ्यता एवं संस्कृतिके प्राध्यापक तथा भारतीय दर्शन और धर्म विभागके अध्यक्ष ।

प्रकाशन : २० से अधिक : बाहर भीतर, अजयकी डायरी, उर्वशीने कहा, इतिहास-पुरुष, साहित्य चिन्ता, आधुनिक समीक्षा, साहित्य और संस्कृति, संस्कृतिका दार्शनिक विवेचन; इत्यादि ।

पता : भारतीय दर्शन और धर्म विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ।

• भाषा वर्ग समिति

*** असमिया-बंगला-उड़िया**

डॉ० सत्येन्द्रनाथ शर्मा, डॉ० पी० सी० भट्टाचार्य, प्रो० प्रियरंजन सेन, श्री वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य, श्री सुरेन्द्र मोहन महन्तो, प्रो० बिधुभूषण दास

*** गुजराती-मराठी**

डॉ० एन० जी० जोशी, श्री ठाकोरभाई मणिभाई देसाई

*** कन्नड़-तेलगु**

श्री नरसिंह राव मानवी, प्रो० एन्० सुब्बारामप्पा

*** मलयालम-तमिल**

श्री एम्० पी० शंकुण्णि नायर, श्री एम्० इलायापेरुमल

डॉ० सत्येन्द्रनाथ शर्मा

एम० ए०, डी० लिट्०, **जन्म** : १९१८, जोरहाट, **मातृभाषा** : असमिया; **अन्य भाषाएँ** : संस्कृत, हिन्दी ।

गौहाटी विश्वविद्यालयमें स्नातकोत्तर विभागोंके मन्त्री तथा चीफ़ प्रॉक्टर; साहित्य अकादमीके सदस्य; असम अकादमी फ़ार कल्चरल रिलेशन्सके उपाध्यक्ष।

प्रकाशन : असमिया साहित्यकार इतिवृत्त, असमिया नाट्य साहित्य, असमिया उपन्यास भूमिका, साहित्यर आभास, (अँगरेज़ी) द वैष्णव मूवमेण्ट ऐण्ड द सत्र इन्स्टीटयूशन ऑव असम इत्यादि;

पता : गौहाटी विश्वविद्यालय, जालुकवाड़ी, गौहाटी–१४

डॉ० प्रमोदचन्द्र भट्टाचार्य

एम० ए०, डी० फिल्०, जन्म : १९२५, दिथेली, कामरूप; मातृभाषा : असमिया; **अन्य भाषाएँ :** बंगला।

प्रिन्सिपल, बी० बरुआ कॉलेज, गौहाटी; आजीवन सदस्य : असम साहित्य सभा, लिंग्विस्टिक सोसाइटी ऑव इण्डिया।

प्रकाशन : (अँगरेज़ी) बोरो फोक्साङ्ग्ज ऐण्ड टेल्स।

पता : नवगिरि, चानमारी, गौहाटी–३

श्री प्रियरंजन सेन

एम० ए०, **जन्म :** १८९३, कलकत्ता; **मातृभाषा :** बांग्ला; अन्य भाषाएँ : गुजराती, हिन्दी, उड़िया।

कलकत्ता विश्वविद्यालयमें अँगरेज़ीके सेवानिवृत्त प्राध्यापक, विधान सभा सदस्य, १९५२-५७ श्रीनिकेतन रूरल इन्स्टीटयूटके डायरेक्टर, १९५७-६०।

प्रकाशन : (बांग्ला) आमादेर साहित्य, उड़िया साहित्य, सामयिकी; (अँगरेज़ी) वेस्टर्न इन्फ्लुएन्स इन बंगाली लिट्रेचर (हिन्दीसे अनुवाद) गोदान, बाणभट्टकी आत्मकथा; (गुजरातीसे अनुवाद) जीवनलता, मलेला जीवन, इत्यादि।

पता : १, डोवर लेन, कलकत्ता–२९

श्री वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य

मातृभाषा : असमिया; **अन्य भाषाएँ :** बँगला, हिन्दी।

सादिनोय नवयुगके सम्पादक।

पता : सादिवीय नवयुग, पान बाज़ार, गौहाटी।

श्री सुरेन्द्र मोहन महन्ती

जन्म : १९२१, मातृभाषा : उड़िया; अन्य भाषाएँ : असमिया, बांग्ला।

आधुनिक उड़िया कहानीके अग्रणी कृतिकार; सम्पादक, साप्ताहिक जनता और साप्ताहिक आब्ज़र्वर, १९४५-५१; सदस्य, राज्य सभा, १९५२-५६, लोक सभा, १९५६-६२, उड़ीसा साहित्य अकादमी; सम्प्रति सम्पादक : कलिंग।

प्रकाशन : १५ से अधिक : (कहानी) महानगरीर रात्रि, कृष्णचूड, रूटी और चन्द्र, सबुज पत्र-आ-धुवार गोलाप, महानिर्वाण, (आलोचना) फकीर मोहन समीक्षा, उड़िया साहित्यकार आदिपर्व, (उपन्यास) : अन्ध दिगन्त इत्यादि।

पता : शिवानी, कटक—१

श्री विधुभूषण दास

एम० ए०, एम० एड् (कोल० युनि०, न्यूयॉर्क) बी० लिट्० (आक्स० युनि० इंग्ल०);

जन्म : १९२२; **मातृभाषा :** उड़िया; **अन्य भाषाएँ :** हिन्दी, बांग्ला, असमिया।

इण्डियन एड मिशनके अन्तर्गत नेपालमें भारत सरकारकी ओरसे प्राध्यापक, १९५९-६३; सम्प्रति प्रिन्सिपल, राँची कॉलेज एवं डीन, फैकल्टी आव आर्ट्स, राँची विश्वविद्यालय।

पता : राँची विश्वविद्यालय, राँची।

डॉ० नारायण गजानन जोशी

एम० ए०, पी० एच० डी०; **जन्म :** १९११; **मातृभाषा :** मराठी; **अन्य भाषाएँ :** गुजराती, हिन्दी, संस्कृत।

गुजराती एवं अँगरेज़ीके प्राध्यापक, महिला विद्यालय, बड़ोदा।

प्रकाशन : १५ से अधिक : (मराठी) मराठी छन्दो रचना, मराठी छन्दो रचनाच्या विकास, कविता : (गुजराती) मराठी साहित्य मों डोकियुं; (अनु० गुजरातीसे) यन्त्रिनी मर्यादा, भारतांस सांस्कृतिक इतिहास इत्यादि।

पता : 'चाँद', मारकेट, प्रतापना रोड, बड़ोदा।

श्री नरसिंह राव मानवी

एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एल्-ओ-एल्०, विद्वान् **जन्म** : १९११; **मातृभाषा** : कन्नड़; **अन्य भाषाएँ** : तेलुगु, हिन्दी, उर्दू।

आन्ध्र प्रदेश सूचना विभागसे सम्बद्ध, कर्नाटक साहित्य सम्मेलनकी संशोधन गोष्ठीके अध्यक्ष, १९६१।

प्रकाशन : (कन्नड) कन्नड-यात्रा, नाडुगन्नड़, संसार नीति; (हिन्दी) कन्नड़ साहित्य परिचय।

पता : सी० आई० बी०, क्वार्टर्स नं० ४०, नारायणगुडा, हैदराबाद-२९

श्री ठाकोरभाई मणिभाई देसाई

जन्म : १९०३, वेगाम, सूरत; **मातृभाषा** : गुजराती; **अन्य भाषाएँ** : मराठी, हिन्दी, संस्कृत।

गुजरात विद्यापीठके उपकुलपति; गुजरात विश्वविद्यालय सिण्डीकेटके सदस्य; मैनेजिंग ट्रस्टी, नवजीवन मुद्रणालय।

प्रकाशन : (अनुवाद: अँगरेजीसे) : आटोबायग्राफी ऑव नेहरू; (अनुवाद: मराठीसे) लोक जीवन, स्थितप्रज्ञ दर्शन।

पता : नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद।

★

श्री एम्० इलायपेरुमल

एम्० ए०, एम्० लिट्. **जन्म** : १९२४, त्रिवेन्द्रम्, **मातृभाषा** : तमिल, **अन्य भाषा** : मलयालम।

केरल विश्वविद्यालय, त्रिवेन्द्रममें तमिलके प्राध्यापक।

प्रकाशन : तमिल मोझि चिन्तनैगल्; (मलयालम अनुवाद) तोलकप्पियम्।

पता : टी० सी० २०।१११ गान्धारियम्मंकय्यर स्ट्रीट, पुत्तनचन्तै, त्रिवेन्द्रम्।

विद्वान् के० सुबारामप्पा

एम्० ए०, बी० एड०, बी० ओ० एल्०; **मातृभाषा** : तेलुगु; **अन्य भाषा** : कन्नड़।

मैसूर विश्वविद्यालयमें तेलुगुके प्राध्यापक; तेलुगु और कन्नड़ भाषाओं तथा साहित्योंके परस्पर सम्बन्धाभासपर कार्य एवं प्रयोगकर्ता; कन्नड़ और तेलुगुके लिए एक लिपि प्रवर्तक; आन्ध्र राज्यीय तेलुगु लिपि सुधार समितिके सदस्य; विश्वविद्यालय अनुदान आयोगके अन्तर्गत तेलुगु कन्नड़ कोशके संरचनाकार।

प्रकाशन : तेलुगु पातगलु; अनेक शोध लेख।

पता : १२०५, कृष्णमूर्तिपुरम्, मैसूर–४

श्री एम० पी० शंकुण्णि नायर

एम० ए०, साहित्यशिरोमणि, जन्म : १९१७, मेज़ाथुर, केरल; **मातृभाषा :** मलयालम; **अन्य भाषाएँ :** तमिल, संस्कृत।

पचैयप्पा कॉलेज, मद्रासमें मलयालमके प्राध्यापक।

प्रकाशन : कालिदास नाटक विमर्श, (अनुवाद संस्कृतसे) मत्तविलासम्, पद्मप्रभाकृतम्; (अनुवाद अँगरेज़ीसे) द गुड अर्थ, इत्यादि।

पता : पचैयप्पा कॉलेज, मद्रास–३०।

• तुलनात्मक मूल्यांकन कर्ता

हिन्दी-कन्नड़ श्री रामकृष्ण नावड़ा, हिन्दी-मलयालम, श्रीमती निलीना अब्राहम, कन्नड़-मलयालम श्रीनारायण कस्तूरी, कन्नड़-हिन्दी-मराठी श्री दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे, उर्दू-हिन्दी-तेलुगु श्री डी० के० भीमसेन राव, कन्नड़-तमिल श्री तिरुमल रामचन्द्र, मलयालम-बांग्ला श्री थि० उन्नीकृष्णन् नायर, कन्नड़-तेलुगु श्री के० वेंकटरामप्पा, बांग्ला-हिन्दी श्री उमाशंकर जे० जोशी, उर्दू-हिन्दी श्री श्रीपाद जोशी, हिन्दी-तेलुगु श्री अ० चि० कामाक्षीराव, बांग्ला-मलयालम श्री एम्० एन्० सत्यार्थी।

श्री रामकृष्ण नावड़ा

एम० ए०, **जन्म :** १९१५, हडवु, मैसूर; **मातृभाषा :** कन्नड़; **अन्य भाषा** · हिन्दी।

मन्त्री, कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा, १९५३-५५; संयोजक अ०

भा० हिन्दी महाविद्यालय १९५६-६१; सम्प्रति, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरामें प्राध्यापक।

पता : अध्यक्ष, कर्नाटक संघ, आगरा।

श्रीमती निलीना अब्राहम

एम० ए०, **जन्म :** १९२५, कलकत्ता, **मातृभाषा :** बांग्ला, अन्य भाषा : मलयालम। महाराजा कालेज एर्णाकुलम्‌में बांग्लाकी प्राध्यापिका।

प्रकाशन : (अनुवाद, बांग्लासे) आरोग्य निकेतन, सप्तपदी, तड़ागम्, लौहकपाट, से आशे, (अनुवाद बांग्लामें) एण्टुपुरकोहआताउन्दैरिनान, चेम्मीन।

पता : १५।८७५८, चितूर रोड, एर्णाकुलम्।

श्री नारायण कस्तूरी

एम० ए०, बी० एल०। जन्म : १८९७।

मातृभाषा : मलयालम, अन्य भाषाएँ : कन्नड़, तेलुगु।

सेवानिवृत्त प्रिंसिपल, डी० आर० एम्० कॉलेज, दावंगीर, सम्प्रति सम्पादक 'सनातन सारथि'।

प्रकाशन : २५ से अधिक : (कन्नड़) गालिगोपुरम्, गृहदारण्यक, अणकु मिणुकु, उपायवेदान्त, यद्वातद्वा; (अनुवाद अँगरेज़ीसे) ले मिज़राब; इत्यादि।

पता : 'सनातन सारथि', प्रशान्ति निलयम्, जि० अनन्तपुर (आं० प्र०)

श्री दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे

एम० ए०, **जन्म :** १८९६, धारवाड़, **मातृभाषा :** मराठी; अन्य भाषाएँ : कन्नड़, हिन्दी, संस्कृत।

सेवानिवृत्त कन्नड़ प्राध्यापक, अध्यक्ष, कन्नड़ साहित्य सम्मेलन १९४३, आकाशवाणी धारवाड़के साहित्य-सलाहकार, साहित्य अकादमीके सदस्य।

प्रकाशन : १५ से अधिक, (मराठी) जीवन-कला आणि नाट्य, (कन्नड़) कृष्णकुमारी, गरि, साहित्य मुट्टुविमर्श, साहित्य संशोधन, लक्ष्मीशन जैमिनी भारतक्के मुन्नाडि, अरलु मरलु, (अनुवाद) मेघदूत इत्यादि।

पता : साधनकेरि, धारवाड़।

डी० के० भीमसेन राव

एम. ए., जन्म : १९०४, दिड्डिगी, रायचूर जिला; **मातृभाषा : कन्नड़, अन्य भाषाएँ :** तेलुगु, उर्दू, हिन्दी, अंगरेज़ी ।

सेवानिवृत्त कन्नड़ प्राध्यापक, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद साहित्य सम्मेलनके प्रथमाध्यक्ष, कन्नड़ साहित्य मन्दिरके ७ वर्ष तक अध्यक्ष, कन्नड़ शब्दकोष और कन्नड़ विश्वकोषके सम्पादकोंमें ।

प्रकाशन : (कन्नड़) कर्नाटकान्ध्र-महाराष्ट्र साहित्यावलोकन, शब्दमणि दर्पण पाठान्तरगलु, कन्नड़ हुमाले, (उर्दू) कन्नड़ी अदबमें जदीद रुजहानात, (तेलुगु) कन्नड़न भाषा साहित्यमु आक्क चरित्रम्मु, (अँगरेज़ी) कन्नड़ पोएट्स ऑव हैदराबाद कर्नाटक, द ग्रैमेटिकल मैटर इन कविराज मार्ग इत्यादि ।

पता : ३-४-१५२, बाग़ लिंगमपल्ली, हैदराबाद–२७ ।

श्री तिरुमल रामचन्द्र

साहित्य शिरोमणि, विद्वान्, **जन्म :** १९१३, कमलापुर, मैसूर । **मातृभाषा :** तेलुगु; **अन्य भाषाएँ :** कन्नड़, तमिल, संस्कृत, हिन्दी ।

आन्ध्र साहित्य अकादमीके सदस्य ।

प्रकाशन : मान लिपिपात्तु पूर्वोत्तरालु, नुवि नानुदि; (संस्कृतसे अनूदित) ललित विस्तर, अवदान कल्पलता; (कन्नड़से अनूदित) साप्तला इत्यादि ।

पता : २।५८३, पाइक्राफ्ट्स रोड, मद्रास–५ ।

श्री तिरुवामपडि उन्नीकृष्णन् नायर

बी०ए०, **जन्म :** १९२४, अलेप्पी । **मातृभाषा :** मलयालम; **अन्य भाषा :** बांग्ला ।

अनेक वर्ष तक मलयालम दैनिकोंसे सम्बद्ध ।

प्रकाशन : हृदय स्पन्दनम्, पुल्लंकुझा, कण्णुनीरम् पूणिलावुम् ।

पता : मुल्लोवु हाउस, तिरुवेम्पाडि, जिला अलेप्पी ।

श्री के० वेंकटरामप्पा

एम० ए०, **जन्म :** १९०६, **मातृभाषा :** तेलुगु; **अन्य भाषा :** कन्नड़ ।

मैसूर विश्वविद्यालयमें कन्नड़ भाषाके रीडर-पदसे सेवानिवृत्त, सम्प्रति विश्व-विद्यालय अनुदान आयोगकी अनुसन्धान योजनासे सम्बद्ध ।

प्रकाशन : (कन्नड़में) तेलुगु चतुपद्य, श्रीनाथ, वेमण; (अनुवाद तेलुगुसे) रुद्रमा देवी ।

पता : सी-एच । २९, बालकृष्ण राव रोड, चामराजपुरम्, मैसूर-४ ।

श्री श्रीपाद जोशी

जन्म : १९२०, मूरगूड, महाराष्ट्र । **मातृभाषा** : मराठी; **अन्य भाषाएँ** : हिन्दी, उर्दू, गुजराती, बांग्ला ।

स्वतन्त्र लेखन १९४६ से; मौलिक लेखन हिन्दी, उर्दू, मराठीमें; अनुवाद गुजराती, बँगला, अँगरेज़ीसे ।

प्रकाशन : लगभग १०० : (मराठी) मीं पाहिलेलें गान्धीजी, क़ाज़ी नज़रुल इस्लाम, माझा देश माझे लोक, विस्फाटलेलं घरटं, रवीन्द्रनाथ आणि महाराष्ट्र, चीनचे आक्रमण व गान्धीवाद, तांबड़ी माती हिरवे माड; (हिन्दी) उर्दू साहित्यका इतिहास, ध्वस्त नीड़, गान्धीजी; (अनुवाद) भगवान् बुद्ध, प्रतिभा साधना; (सम्पादन) अभिनव शब्दकोश : मराठी-हिन्दी एवं हिन्दी-मराठी, इत्यादि ।

पता : ६१।५१, एरण्डवन, पूना–४ ।

श्री एम्० एन्० सत्यार्थी

बी. ए. (आनर्स), जन्म : १९१६, लाहौर; **मातृभाषा** : मलयालम; **अन्य भाषाएँ** : उर्दू, हिन्दी, बांग्ला, फ़ारसी ।

उर्दू दैनिक 'जमीदार' के सहायक सम्पादक, मलयालम तथा उर्दूमें स्वतन्त्र लेखन ।

प्रकाशन : (उर्दू) जंग-ए-आज़ादीके परवाने, इन्सानियतका खात्मा; (मलयालम) जहाँनारा, उमर खैयाम, पण्डित नेहरू, अग्नश्विरम्, बिलक्कु पंगाम; (बंगलासे अनुवाद) कौड़ी दिये कीनलाम आदि ।

पता : पोस्ट मरिकुन्नु, कालिकट, केरल ।

श्री उमाशंकर जेठालाल जोशी

एम. ए., **जन्म** : १९११, बामणा, गुजरात; **मातृभाषा** : गुजराती; **अन्य भाषाएँ** : हिन्दी, बांग्ला, संस्कृत ।

'संस्कृति' के सम्पादक; गुजरात विश्वविद्यालयके स्कूल ऑव लैंग्वेजेज़के डायरेक्टर; सदस्य, साहित्य अकादमीकी जनरल कौन्सिल और एग्जिक्यूटिव बोर्ड, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑव इण्डिया, इण्डियन इन्स्टीटयूट ऑव ऐडवान्स्ड स्टडीज़; उपाध्यक्ष, गुजराती साहित्य परिषद् ।

प्रकाशन : लगभग ३० : (काव्य) विश्व-शान्ति, निशीथ, प्राचीना, महा-प्रस्थान; (नाटक) साप-ना-मारा; (कहानी) श्रावणी मेलो, अन्तराय, विसामो; (उपन्यास) पारका जण्या; (निबन्ध) गोष्ठी; (आलोचना) सम-संवेदन, शैली अने स्वरूप, निरीक्षा, शेक्सपीयर; (अनुवाद) शाकुन्तलम्; (शोध) पुराण माँ गुजरात इत्यादि ।

पता : 'सेतु', १२, सरदार पटेल नगर, अहमदाबाद–६ ।

श्री अनुगोंडाचिका कामाक्षीराव

एम. ए., **जन्म** : १९१८, कडप्पा ज़िला; **मातृभाषा** : तेलुगु; **अन्य भाषाएँ** : हिन्दी, तमिल, संस्कृत ।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी शैक्षणिक और संचालक समितियोंके सदस्य, मद्रास विश्वविद्यालयकी ऐकेडेमिक कौन्सिलके सदस्य, मद्रास क्रिस्चियन कालेजके हिन्दी विभागाध्यक्ष ।

प्रकाशन : हिन्दी-तेलुगु और तेलुगु-हिन्दी शब्दकोश, हिन्दी साहित्यका संक्षिप्त इतिहास, हिन्दी तेलुगु तुलनात्मक व्याकरण; (अनुवाद हिन्दीमें) रंग-नाथ रामायण; (अनुवाद हिन्दीसे) बाणभट्टकी आत्मकथा ।

पता : ललित निवास, पटेल नगर, मुडीचूर रोड, मद्रास–४५ ।

● ●

प्रवर्तिका संस्था

- भारतीय ज्ञानपीठ
- संचालना तन्त्र

भारतीय ज्ञानपीठ

पुरस्कार प्रवर्तिका संस्था भारतीय ज्ञानपीठ देशका एक प्रमुख शोध एवं सांस्कृतिक साहित्यिक प्रतिष्ठान है। इसकी संस्थापना संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड़ आदि भाषाओंके अनुपलब्ध एवं अप्रकाशित प्राचीन भारतीय वाङ्मयके प्रकाशन तथा आधुनिक भारतीय भाषाओंमें सर्जनात्मक साहित्यिक-रचनाको प्रोत्साहित करनेके उद्देश्यसे श्री साहू शान्तिप्रसाद जैनने १९४४ में की थी। संस्थाकी स्थापनाके समय जो संकल्प-पत्र तैयार हुआ और जिसके आधारपर प्रत्येक प्रकाशनपर ज्ञानपीठके प्रतीक-चिह्नके साथ उद्देश्य अंकित है उसकी शब्दावली है :

"ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्यका निर्माण।"

ज्ञानकी विलुप्त और अनुपलब्ध सामग्रीके अनुसन्धान और प्रकाशनपर बल देनेका उद्देश्य था भारतीय-विद्याके उन अंगोंपर अनुसन्धान-कार्य नियोजित करना जो उपेक्षित रहे चले आ रहे थे, जिनके बिना हमारा भारतीय साहित्य और संस्कृतकी उपलब्धियोंका ज्ञान अधूरा था और जिस ज्ञानकी खोज और प्रकाशन देशका गम्भीर दायित्व है। इस कार्य-क्रमके अन्तर्गत ज्ञानपीठका प्रथम प्रकाशन था कर्म-सिद्धान्त सम्बन्धी 'महाबन्ध' नामक अद्वितीय प्राकृत ग्रन्थ जो सात भागोंमें मुद्रित हुआ है। इस ग्रन्थकी कुल पृष्ठ-संख्या सुपर रॉयल अठपेजी आकार-में तीन हज़ारसे अधिक है और इसके सम्पादन-प्रकाशनमें लगभग नब्बे हज़ार रुपये व्यय हुए हैं। ताड़पत्रोंपर प्राचीन हडेगन्नड़ लिपिमें लिखी इस ग्रन्थ-राजकी एकमात्र प्रतिके दर्शनोंके लिए दक्षिण भारतकी यात्रा की जाती थी। अब यह आधुनिक पद्धतिसे सुसम्पादित रूपमें भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा मूर्तिदेवी ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्रकाशित होकर सर्वसुलभ है। ग्रन्थमालाका आरम्भ

श्री साहू शान्तिप्रसाद जैनकी स्वर्गीया माता श्रीमती मूर्तिदेवीजीके नामसे हुआ, जिनकी प्रेरणा और श्रद्धाके फलस्वरूप उनकी स्मृतिमें उनके पुत्र तथा पुत्रवधूने ज्ञानपीठकी स्थापना की।

प्राचीन भारतीय वाङ्मयकी अन्य अनेक निधियाँ भी मूर्तिदेवी ग्रन्थमालासे प्रकाशित हुई हैं जिनकी महत्ताकी चर्चा पुराने सन्दर्भोंके आधारपर विद्वानोंमें भी थी तो, किन्तु जो अब तक या तो अप्रकाशित थीं या कोई प्रकाशित थीं भी तो आधुनिक ढंगसे ऐतिहासिक विवेचन-सहित उनका सम्पादन नहीं हुआ था। अबतक ६१ ग्रन्थ इस मालामें प्रकाशित हो चुके हैं और ६ इस समय मुद्रणमें हैं। इनमें ३६ संस्कृतके हैं, १६ प्राकृतके, ६ अपभ्रंशके और ११ हिन्दीके, १ पाली और १ तमिलका है, और १ अँगरेज़ी अनुवाद। प्रकाशित ग्रन्थोंकी कुल पृष्ठ-संख्या लगभग २०,००० सुपर रॉयल अठपेजी आकारमें है और ५००० डिमाई तथा क्राउन अठपेजी आकारोंमें। प्रत्येक ग्रन्थका मूल्य लागतसे भी कम रखा जाता है जिसमें सबको सुलभ हो सके। व्यावसायिक प्रकाशकोंके लिए यह कार्य कभी सम्भव नहीं था। इन २५,००० पृष्ठोंका मूल्य ग्रन्थावलिके रूपमें कमसे कम १०००) होता। ज्ञानपीठने कुल मूल्य ४६३) रखा। संस्थाओंको विशेष रियायत दी जानेवाली सुविधा अलग है। इसके अतिरिक्त समय-समयपर विशेष अवसरोंपर शास्त्रदानके रूपमें देशके तथा विदेशोंके विद्वानोंको ये ग्रन्थ बिना मूल्य भेंट किये गये हैं।

एक और समान उद्देश्योंकी सांस्कृतिक प्रकाशन माला भी ज्ञानपीठ-द्वारा संचालित-परिचालित होती है। कई दशक पूर्व बम्बईमें सेठ माणिकचन्द्र हीराचन्द्रजी जौहरीकी पुण्यस्मृतिमें उनके आत्मीय जनोंने इसकी स्थापना की थी। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशके टीका-सहित ४६ मूल पाठ ग्रन्थोंके प्रकाशनके बाद यह ग्रन्थमाला आर्थिक कठिनाइयोंमें पड़ी। सांस्कृतिक प्रकाशनकी यह उपयोगी एवं मूल्यवान् योजना नष्ट न हो जाये इसलिए इसका सम्पूर्ण दायित्व ज्ञानपीठने सँभाल लिया और ग्रन्थमालाके संस्थापकका नाम अक्षुण्ण रखनेके लिए इसे माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके नामसे अभिहित रखा। तबसे भारतीय ज्ञानपीठके अपने प्रकाशन मानदण्डोंके अनुरूप कई नये प्रकाशन इस ग्रन्थमालामें आये हैं।

उक्त दोनों ग्रन्थमालामें प्रकाशित ग्रन्थोंका विषय-विभाजन इस प्रकार है :

विषय		संख्या
तत्त्वविज्ञान और सिद्धान्तशास्त्र	....	११
न्याय और कर्म ग्रन्थ	....	२१
आचारशास्त्र, पूजा, व्रतविधान	....	२२
व्याकरण, छन्दशास्त्र, कोश	....	४
पुराण साहित्य	....	१५
चरित व काव्य ग्रन्थ	....	२७
ज्योतिष और सामुद्रिकशास्त्र	...	३
शिलालेख संग्रह	....	४
विविध	....	८
		११५

आधुनिक भारतीय भाषाओंमें सर्जनात्मक साहित्य-रचनाको प्रोत्साहित करनेके उद्देश्यसे ज्ञानपीठने लोकोदय ग्रन्थमाला नियोजित की है। भाव और लक्ष्य, सामग्री और सज्जा, सभी दृष्टियोंसे ये प्रकाशन देशके हिन्दी प्रकाशनोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं। प्रारम्भसे ही ज्ञानपीठने अपने प्रकाशनका एक ऐसा मानदण्ड स्थापित किया है जिसने देशको समसामयिक साहित्यमें हिन्दीके एक अपने विशेष स्थानकी प्रतीति करायी है। लगभग २५० शीर्षक इस ग्रन्थमालामें अबतक प्रकाशित हुए हैं, जिनके १०५ लेखकोंमें हिन्दीके प्रायः सभी यशस्वी साहित्यकार तो हैं ही, प्रायः वे सब नये लेखक भी हैं जिनकी प्रतिभाकी प्रतिष्ठामें ज्ञानपीठका योगदान है, और जो उत्तरोत्तर वृद्धिपर है। नयी प्रतिभाओंको प्रोत्साहित करनेका एक विशेष कारण यह भी है कि जहाँ प्रतिष्ठित लेखकोंकी कृतियोंको प्रकाशनार्थ प्राप्त करनेके लिए व्यवसायी प्रकाशक तत्पर रहते हैं, या अपनी कृतियोंके प्रकाशनार्थ उनके अपने संस्थान हैं, वहाँ अप्रसिद्ध किन्तु प्रतिभावान् नये साहित्यकारोंको प्रकाशमें आनेमें कठिनाई है।

ज्ञानपीठ देशकी उस भावात्मक एकताके सांस्कृतिक पक्षके प्रति भी प्रारम्भसे ही जागरूक रही है जिसका नारा राजनीतिमें अब उठा है। पालीमें 'जात-

कट्ठकथा, हिन्दीमें 'वैदिक साहित्य' और नागरी लिपिमें समूचे उर्दू काव्य साहित्यको प्रस्तुत करनेके मूलमें देशकी सांस्कृतिक उपलब्धिको ही समग्र और अखण्ड रूपसे जानने-माननेकी दृष्टि है। यही दृष्टि उसकी राष्ट्र भारती ग्रन्थ-मालाके मूलमें भी है। इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत विभिन्न भारतीय भाषाओंके प्रमुख साहित्यकारोंकी स्वयं उनके द्वारा चुनी हुई विविध शैली-शिल्प और विधाओंकी प्रतिनिधि रचनाओंके संगठन प्रकाशित हो रहे हैं। साहित्यिक विधाओंके आधारपर प्रत्येक भारतीय भाषाके श्रेष्ठ लेखनका प्रतिनिधि संकलन प्रस्तुत करना भी इस ग्रन्थमालाका उद्देश्य है।

ज्ञानपीठने जहाँ प्रकाशनके कलात्मक स्तरको ऊँचा उठानेका प्रयत्न किया और इस दिशामें किये गये व्ययको प्रकाशनकी सांस्कृतिक आवश्यकता माना, वहाँ लेखकोंके स्वत्वों और अधिकारोंका एवं उनके समुचित पारिश्रमिक-मानदण्डोंकी स्थापनाका सर्वप्रथम प्रयास किया। ज्ञानपीठके प्रकाशनोंका मूल्य, सब मिला-जुलाकर हिन्दीमें सबसे कम है।

जिस प्रकार एक विशिष्ट भावदृष्टिसे भारतीय ज्ञानपीठकी ये ग्रन्थमालाएँ अनुप्राणित हैं उसी प्रकार उसके दोनों सावधिक प्रकाशन 'ज्ञानोदय' और 'ज्ञानपीठ पत्रिका' मासिक भी हैं। 'ज्ञानोदय' हिन्दीका सम्भवतया एकमात्र मासिक है जो पाठकोंको विश्व-साहित्यकी नयी दिशाओं और नये विचारोंसे परिचित करानेकी ओर निरन्तर प्रयत्नशील है। भारतीय संस्कृतिके संश्लिष्ट रूपके प्रतिपादन, विचारोंके नये आयाम, कथ्यकी मौलिक दृष्टि, अभिव्यक्तिकी सक्षमता और विविधता आदिमें इस मासिकने महत्त्वपूर्ण तथा सार्थक प्रयत्न एवं प्रयोग किये हैं। इसके विशेषांकोंने हिन्दीकी सावधिक पत्रकारिताके क्षेत्रमें नयी सूझ-बूझका ही परिचय नहीं दिया, उपलब्धिके नये मानदण्ड भी स्थापित किये हैं। 'ज्ञानपीठ पत्रिका' अपेक्षया नया प्रयत्न है, पर इतने कालमें भी इसे अत्यन्त उपयोगी और एक आवश्यकताका उत्तर माना जाने लगा है। अपने प्रकारका यह प्रथम प्रयास है कदाचित् अन्य भारतीय भाषाओंकी दृष्टिसे भी। व्यापक रूपमें इसका प्रयत्न एक ऐसा माध्यम प्रस्तुत करनेका है जो विभिन्न भारतीय भाषाओंकी समकालीन साहित्यिक गति-विधियोंसे और उपलब्धियोंसे अवगत

कराये तथा अक्षर-जगत्की नयी प्रवृत्तियों और समस्याओं-समाधानोंका परिचय दे।

वाराणसीमें सन्मति मुद्रणालय नामसे ज्ञानपीठका अपना प्रेस है जो शुद्ध और सुन्दर हिन्दी मुद्रणके क्षेत्रमें अपना विशिष्ट स्थान रखता है। ज्ञानपीठका समस्त मुद्रण-कार्य प्राय: वहाँ ही होता है।

व्यवस्थाकी दृष्टिसे ज्ञानपीठ भारत सरकार-द्वारा रजिस्टर्ड ट्रस्ट है। इसका अपना विधान है, न्यासधारी मण्डल है, अपनी संचालक समिति और अपना सम्पादक-मण्डल है। संस्थाकी संचालना ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनके निर्देशनमें कलकत्तेसे होती है। वहीं ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता—२७ में प्रधान कार्यालय है। विक्रय केन्द्र दिल्ली है : ३६२० नेताजी सुभाष मार्गके पतेपर, और प्रकाशन कार्यालय वाराणसी : दुर्गाकुण्ड रोडपर।

भारतीय ज्ञानपीठके प्रारम्भिक चरणोंमें संस्थाके तत्कालीन मन्त्री, उर्दू साहित्यके मर्मज्ञ साहित्यकार श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयका विशेष योगदान रहा है। श्री नेमिचन्द्र जैन चार्टर्ड एकाउण्टेण्टने सहायक मन्त्रीके रूपमें कई वर्षों तक संस्थाके कार्यमें रुचि ली है।

प्राचीन वाङ्मयके प्रसिद्ध विद्वान्द्वय डॉ० हीरालाल जैन, तथा डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्येका सहयोग मूर्तिदेवी ग्रन्थमालाके यशस्वी सम्पादकोंके रूपमें विशेष मूल्यवान् है।

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन प्रारम्भसे ही लोकोदय ग्रन्थमालाके सम्पादक हैं। वह 'ज्ञानोदय' तथा 'ज्ञानपीठ पत्रिका' के सम्पादक और संस्थाके मन्त्री भी हैं।

ज्ञानपीठकी प्रगतिका श्रेय इन सब सहयोगियों और ज्ञानपीठके प्रत्येक कार्यकर्ताको है।

● ●

संचालना तन्त्र

श्री शान्तिप्रसाद जैन

संस्थापक एवं ट्रस्टी

जन्म : १९११; नजीबाबाद (उत्तर प्रदेश), विख्यात उद्योगपति; साहू जैन उद्योगोंके अधिष्ठाता।

विगतमें अध्यक्ष, फैडरेशन ऑव इण्डियन चेम्बर्स ऑव कामर्स ऐण्ड इण्डस्ट्री, दिल्ली, इण्डियन चेम्बर्स ऑव कामर्स कलकत्ता, इण्डियन पेपर मिल्स एसोसिएशन, इण्डियन शूगर मिल्स एसोशिएशन कलकत्ता, बिहार चेम्बर ऑव कामर्स, पटना, राजस्थान चेम्बर ऑव कामर्स एण्ड ऐण्डस्ट्रीज, जयपुर आदि।

भारतीय धर्म, दर्शन, इतिहास आदिके अध्ययनमें गहरी पैठ तथा निजी दृष्टि। साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा सार्वजनिक सेवा कार्योंमें प्रचुर दान। संस्थापक भारतीय ज्ञानपीठ, साहू जैन ट्रस्ट, साहू जैन चैरिटेबल सोसायटी, कलकत्ता, एस० पी० जैन कालेज, सासाराम, मूर्तिदेवी कन्या विद्यालय, मूर्तिदेवी सरस्वती इण्टर कालेज, साहू जैन कालेज, नजीबाबाद, स्नातकोत्तर प्राकृत जैन ज्ञान एवं अहिंसा शोध-संस्थान, वैशालीमें प्रचुर दान। राजेन्द्र छात्रावास तथा गोविन्द वल्लभ पन्त छात्र-भवन, कलकत्ताके अध्यक्ष। प्राचीन तीर्थों और जीर्ण मन्दिरोंके उद्धारकी योजनामें विशेष रुचि। अध्यक्ष, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई अहिंसा प्रचार समिति, कलकत्ता। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् और मारवाड़ी रिलीफ़ सोसायटीके अध्यक्ष रहे।

जैन समाज-द्वारा 'दानवीर', 'श्रावक शिरोमणि' आदि उपाधियोंसे सम्मानित।

पता : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७

श्रीमती रमा जैन

अध्यक्षा एवं ट्रस्टी, सदस्या, संचालक समिति एवं सदस्या प्रवर परिषद् ।

जन्म : १९१७, कलकत्ता ।

राष्ट्रीय चेतनायुक्त शिक्षण संस्थानोंमें विद्याध्ययन । आदर्शोन्मुख वातावरण-में व्यक्तित्व-विकास । साहू जैन औद्योगिक संस्थानोंके अन्तर्गत, साहित्य, कला तथा शिक्षाको योजनाओंको मुख्य प्रेरणा व क्रियात्मक सहयोग । भारतीय ज्ञानपीठकी प्रवृत्तियों, कार्यक्रमों और कार्य-प्रगतिके संचालनमें वैयक्तिक दायित्व-का कुशल निर्वाह तथा उत्साहवर्धन । मैनेजिंग ट्रस्टी, साहू जैन ट्रस्ट, जिसके अन्तर्गत अन्य समाज-सेवी कार्योंके अतिरिक्त १ लाखसे अधिक रुपये प्रतिवर्षकी छात्र-वृत्तियाँ दी जाती हैं । अध्यक्षा, साहू जैन चैरिटेबल सोसायटी, कलकत्ता । सदस्या कार्यकारिणी समिति : मारवाड़ी बालिका विद्यालय, अभिनव भारती, कलकत्ता; ट्रस्टी-सदस्या : वनस्थल विद्यापीठ, राजस्थान तथा राजस्थान सरकार द्वारा स्थापित गौ-वर्धन संघकी जनरल कौंसिलकी सदस्या ।

ज्ञानपीठ-प्रकाशित 'आधुनिक जैन कवि', 'परिणय गीतिका' तथा 'शैशवां-कन' कलाकृतियोंका सहसम्पादन ।

पता : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता ।

श्री श्रेयांस प्रसाद जैन

ट्रस्टी, भारतीय ज्ञानपीठ

जन्म : १९०८, नजीबाबाद, उत्तर प्रदेश ।

प्रसिद्ध उद्योगपति, चेयरमैन ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लि० (भारतकी सबसे बड़ी कास्टिक सोडा फैक्ट्री) और अनेक औद्योगिक संस्थानोंके संचालक तथा व्यापारिक और औद्योगिक संस्थाओंसे सम्बन्धित । कमेटी सदस्य—इण्डियन मर्चेण्ट चैम्बर बम्बई । विगतमें अध्यक्ष फेडरेशन ऑव इण्डियन चैम्बर्स ऑव कामर्स ऐण्ड इण्डस्ट्री दिल्ली, अध्यक्ष, एलकली मैन्युफैक्चरर्स एसोसिएशन ऑव इण्डिया, अध्यक्ष आर्थिक, सहयोगार्थ एफ्रोएशियन आर्गनाईजेशन (राष्ट्रसंघीय संस्था), भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद्, दिल्ली, भारत जैन महामण्डल बम्बई । संस्थापक, 'श्रेयांस प्रसाद चैरिटेबिल ट्रस्ट', बम्बई । 'साहू श्रेयांस प्रसाद जैन

आर्ट्स, [illegible] कालेज, [illegible] (गुजरात), ट्रस्टी बम्बई हौस्पिटल।

१९४३ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलनके समय स्वतन्त्रताके सेनानियोंको आर्थिक सहायता और उन्हें अपने यहां सुरक्षित रखनेके कारण ब्रिटिश सरकार-द्वारा दो मासका कारागार। संसद् सदस्य, राजसभा (१९५२-५८)।

पता : १५ एलफिन्सटन सर्कल, बम्बई।

श्री मोहनलाल जालान

ट्रस्टी, भारतीय ज्ञानपीठ

जन्म : सन् १९०५, रतनगढ़ (राजस्थान)

प्रसिद्ध उद्योगपति, कलकत्ताकी विख्यात फ़र्म सूरजमल नागरमलके प्रेरक-संचालक, चेयरमैन, कलकत्ता गैस कम्पनी तथा हिन्दुस्थान मर्केण्टाइल बैंक, कलकत्ता।

आप-द्वारा पोषित सूरजमल जालान चैरिटी ट्रस्टके तत्त्वावधानमें चित्तरंजन एवेन्यूका प्रसिद्ध राममन्दिर धार्मिक प्रवृत्तियोंका केन्द्र बना हुआ है। कलकत्ता महानगरीकी महिलाओंकी शिक्षा-प्रयत्नोंके सन्दर्भमें विशेष उल्लेखनीय योगदान, जालान बालिका विद्यालय, महिला कालेज, पुस्तकालय, संगीत विद्यालय आदि। रतनगढ़में भी अनेक धार्मिक और पारमार्थिक संस्थाएँ जालान ट्रस्ट-द्वारा परिचालित हैं। भारतीय धर्म, दर्शन, इतिहास आदि विषयोंमें विशेष रुचि। आपकी देख-रेखमें राजस्थानके मन्दिरोंका एक बृहत् इतिहास तैयार हुआ है जिसमें लगभग एक हज़ार चित्र तथा अन्य अलभ्य सामग्री संकलित है।

पता : ८।९, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२।

श्रीमती इन्दु अशोककुमार

ट्रस्टी

जन्म : १९३६; फैजाबाद (उत्तर प्रदेश), सामाजिक कल्याण कार्योंमें विशेष रुचि, साहू जैन परिवार-द्वारा परिचालित जन-सेवाके कार्योंमें सक्रिय योगदान। सदस्य, संचालक समिति, साहू जैन कालेज, नजीबाबाद।

पता : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

पद्मभूषण श्री सीताराम सेकसरिया।

टृस्टी

जन्म : १ मई १८९२; नवलगढ़, राजस्थान; अनेकों साहित्यिक, सांस्कृतिक व नारी-शिक्षण-सम्बन्धी संस्थाओंके प्रेरक, संस्थापक व संचालक। अत्यन्त लोकप्रिय, विनम्र तथा मधुरभाषी व्यक्तित्व। अत्यन्त साधारण आर्थिक स्थितिमें १९११ में कलकत्ता आकर व्यापार और धनोपार्जनमें आशातीत सफलता प्राप्त की। सन् १९२९ के पश्चात् आजीविका-वृत्तिसे मुक्त हो, केवल देश-सेवा और समाज-सेवाके प्रति आत्म-समर्पित। सत्याग्रह आन्दोलनमें जेल यात्रा। महात्मा गान्धी, श्री जमनालाल बजाज, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरका निकट सम्पर्क प्राप्त। राष्ट्र और समाज-सेवाके अतिरिक्त साहित्याध्ययनमें विशेष लगन। संस्थापक व मन्त्री, श्रीशिक्षायतन हाई स्कूल, व संस्थापक सदस्य श्री शिक्षायतन कॉलिज, कलकत्ता। अध्यक्ष, भारतीय संस्कृति संसद्, कलकत्ता, टृस्टी-सदस्य वनस्थली विद्यापीठ, जयपुर, लोहिया मातृ सेवा-सदन, कलकत्ता। सभापति, अभिनव भारती, कलकत्ता। टाँटिया हाई स्कूल, कलकत्ता। सदस्य, कार्य-कारिणी समिति, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी। सदस्य, गान्धी विद्यामन्दिर, सरदार शहर। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अन्तर्गत प्रतिवर्ष सेकसरिया महिला पुरस्कारके प्रदाता। प्रकाशन : 'स्मृति कण', 'मनकी बात'।

पता : १६, लार्ड सिन्हा रोड, कलकत्ता—१६

डॉ० हीरालाल जैन

एम० ए०, एल-एल० बी०, डि० लिट्० सदस्य, संचालक समिति; भारतीय ज्ञानपीठकी मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला तथा माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके प्रधान सम्पादक, लगभग १०९ ग्रन्थ प्रकाशित।

जन्म : गागेंई, नरसिहपुर, (मध्य प्रदेश)

प्राध्यापक किंग एडवर्ड कॉलेज अमरावतीमें (जुलाई १९३५में)। १९४४-में मॉरिस कॉलेज नागपुरको स्थानान्तरण। सन् १९५४में सेवा निवृत्त। डायरे-क्टर, स्नातकोत्तर प्राकृत, जैन ज्ञान एवं अहिंसा शोध-संस्थान, वैशाली १९५५से १९६१ तक। जबलपुर विश्वविद्यालयमें संस्कृत-पालि-प्राकृतके प्राध्यापक व

विभागाध्यक्ष जुलाई १९६२ से। ओरियण्टल कान्फ्रेन्सके १९४४ के अधिवेशनमें प्राकृत वा जैन धर्म शाखाके अध्यक्ष।

प्रारम्भसे ही संस्कृत-प्राकृत साहित्य तथा जैन तत्त्वज्ञानमें अभिरुचि। कारंजा जैन शास्त्र भण्डारोंका सूची-निर्माण कार्य जो १९२६में मध्य प्रदेश सरकार-द्वारा प्रकाशित, अपभ्रंश साहित्यके अध्ययनके प्रेरक। जैन तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी महान् ग्रन्थ 'षड्खण्डागम'का १६ खण्डोंमें सम्पादन; 'भारतीय संस्कृतिमें जैन धर्मका योगदान' ग्रन्थके लेखक; मयण पराजय, सुदंसण चरिउ, कथाकोश, सुगन्ध दशमी कथा आदि ग्रन्थोंके सम्पादक, जीवराज ग्रन्थमालाके प्रधान सम्पादक।

संचालक समिति—श्रीमती रमा जैन, श्री शान्तिप्रसाद जैन, श्री श्रेयांसप्रसाद जैन, श्री सीताराम सेकसरिया, श्री आलोकप्रकाश जैन, डॉ० हीरालाल जैन, डॉ० आ० ने० उपाध्ये, श्री नेमिचन्द्र जैन, श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय, श्री लक्ष्मीचन्द जैन,

श्री आलोकप्रकाश जैन

बी. ए. (ऑनर्स), सदस्य, संचालक समिति;

जन्म : १९३५, डालमियानगर; साहू जैन लि० उद्योग संस्थानके तथा अन्य सम्बन्धित संस्थानोंके डायरेक्टर।

देशका निर्यात व्यापार बढ़ानेके उद्देश्यसे भारत सरकार-द्वारा गठित उद्योगपतियोंके प्रतिनिधि मण्डलके सदस्यके रूपमें रूस-यात्रा; तथा ब्रिटेन, युरोप, अमरीका, एशियाई देशोंका भ्रमण। हिन्दी और अँगरेज़ीमें प्रकाशित अधुनातन साहित्यिक, राजनैतिक, अर्थशास्त्रीय और ऐतिहासिक पुस्तकोंके अध्ययनमें अनवरत रुचि। बागवानीमें विशेष अभिरुचि। ट्रस्टी, साहू जैन ट्रस्ट; सदस्य साहू जैन चैरिटेबल सोसायटी, कलकत्ता।

पता : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता—२७।

डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये

एम० ए०, डा० लिट्० सदस्य, संचालक समिति, भारतीय ज्ञानपीठकी मूर्तिदेवी ग्रन्थमालाके तथा माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके प्रधान सम्पादक, जिनके

अन्तर्गत १०९ ग्रन्थ प्रकाशित । जन्म १९०६, सदलगा, ज़ि० बेलगाम; मातृभाषा—कन्नड़, अन्य भाषाएँ : हिन्दी, संस्कृत, अँगरेज़ी ।

राजाराम कॉलेज कोल्हापुरमें ३२ वर्ष तक अर्धमागधीके प्राध्यापक रहे, १९६२में सेवानिवृत्त । १९३९-४२में बम्बई विश्वविद्यालयकी स्प्रिंगर शिष्यवृत्ति मिली । हैदराबादमें १९४१में सम्पन्न ओरियण्टल कान्फ्रेंसके विभागीय अध्यक्ष ।

अभी विश्वविद्यालय अनुदान आयोगकी ओरसे एमरिटस प्राध्यापक । शिवाजी विश्वविद्यालयके डीन ऑव फैकल्टी ऑव आर्ट्स । १९६६ में अलीगढ़में आयोजित ओरियण्टल कान्फ्रेंसके अध्यक्ष । २०से अधिक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश ग्रन्थोंका प्रामाणिक सम्पादन जिनमें-से अनेक प्रथम बार प्रकाशित । जीवराज ग्रन्थमालाके प्रधान सम्पादक । प्राच्य-विद्या शोधकार्यमें रुचि । शोध पत्रिकाओंमें अनेक लेख प्रकाशित । भाषा विज्ञान, और भारतीय सांस्कृतिक विषयोंके गम्भीर अध्येता ।

पता : धवला, ८ राजारामपुरी, कोल्हापुर १ ।

श्री नेमिचन्द्र जैन

एम० एस-सी०, सदस्य, संचालक समिति, जन्म : १९१७, ग्राम पनगार (मध्य प्रदेश) ।

भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापनाके समयसे ही संस्थासे सम्बद्ध, साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्योंमें विशेष अभिरुचि, अभिनय, मंचविधान और कलात्मक सज्जामें नैसर्गिक गति, स्वर शिल्पी । ऐग्ज़ेक्यूटिव डायरेक्टर, अशोका मार्केटिंग लि०, कलकत्ता; तथा अन्य कई संस्थाओंके डायरेक्टर । मन्त्री, साहू जैन ट्रस्ट, कलकत्ता ।

पता : १०७, ब्लाक 'एफ', न्यू अलीपुर, कलकत्ता-५३ ।

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

सदस्य, संचालक समिति; जन्म १९०७, बादशाहपुर, मातृभाषा : हिन्दी; अन्य भाषाएँ : संस्कृत, उर्दू । उर्दू साहित्यके मर्मज्ञ विद्वान्, लोकप्रिय लेखक, प्रभावशाली वक्ता ।

नमक सत्याग्रहमें जेल-यात्रा, सामाजिक जागरणके अग्रगामी कर्मी। भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापनामें उत्साहपूर्ण योगदान तथा १९६१ तक मन्त्रित्व।

प्रकाशन : राजपूतानेके जैन वीर, आर्यकालीन भारत, मौर्य साम्राज्यके जैन-वीर, उर्दू काव्य साहित्यसे सम्बन्धित १७ पुस्तकें—प्रमुख हैं : शेरोशाइरी, शेरोसुखन (५ भाग), शायरीके नये दौर (५ भाग), शायरीके नये मोड़ (५ भाग), नग्मए हरम, लघु कथा साहित्य—गहरे पानी पैठ, जिन खोजा तिन पाइयाँ, कुछ मोती कुछ सीप, लो कहानी सुनो आदि तथा जैन जागरणके अग्रदूत। पता : श्रमकल्याण अधिकारी, डालमियानगर, (बिहार)।

• •

साहित्य अकादेमी के नये प्रकाशन

रघुवंश ■

प्रस्तुत ग्रन्थ में महाकवि कालिदास की इस प्रख्यात रचना का समश्लोकी हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया गया है। रूपान्तरकार हैं देवीरत्न अवस्थी 'करील'।

मूल्य ६.५०

सात युगोस्लाव कहानियाँ ■

इस संग्रह में आधुनिक युगोस्लाविया के सात प्रतिनिधि कथाकारों की मार्मिक कहानियाँ हैं। अनुवादक हैं हिन्दी के विख्यात लेखक प्रभाकर माचवे।

मूल्य २.५०

झोंपड़ी वाले और अन्य कहानियाँ ■

आधुनिक रूमानियायी साहित्य में मिहाइल सादोवैनू का वही स्थान है जो हिन्दी में प्रेमचन्द का। इस पुस्तक में उनके लघु उपन्यास 'झोंपड़ी वाले' के अतिरिक्त उनकी तीन कहानियाँ सम्मिलित हैं। अनुवादक हैं निर्मल वर्मा।

मूल्य ४.५०

भारती की कविताएँ ■

राष्ट्रीय कवि के रूप में आधुनिक तमिल साहित्य में सुब्रह्मण्य भारती का स्थान सर्वोपरि है। इस पुस्तकमें भारती की सौ चुनी हुई कविताएँ हैं, जिनमें उनकी विख्यात रचना 'पांचाली शपथम्' भी सम्मिलित है। अनुवादक हैं रामनाथन और युगजीत नवलपुरी।

मूल्य ५.००

पार्थिव का सपना ■

'साहित्य अकादेमी' पुरस्कार से सम्मानित, तमिल साहित्यके उन्नायकों में अन्यतम स्वर्गीय कृष्णमूर्ति 'कल्कि' के प्रख्यात उपन्यास 'पार्थिपन कणवु' का प्रथम संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर। रूपान्तरकार हैं रा० वीलिनाथन।

मूल्य ६.५०

केशव सुत ■

'साहित्य अकादेमी'-द्वारा परिचालित 'भारतीय साहित्य के निर्माता' पुस्तकमाला की इस पहली पुस्तक में आधुनिक मराठी काव्य के अग्रदूत श्री केशव-सुत की जीवनी और उनकी कतिपय कविताओं का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। लेखक हैं प्रभाकर माचवे।

मूल्य २.५०

प्राप्ति-स्थान

साहित्य अकादेमी

रवीन्द्र भवन, ३५, फ़िरोज़शाह रोड,
नयी दिल्ली

शिक्षण संस्थाओं, पुस्तकालयों तथा

विद्यार्थियोपयोगी

श्रेष्ठतम साहित्य-संस्थान

ओरिएण्टल बुक डिपो

का

एक और नया प्रकाशन

महाकवि सूर और भ्रमरगीत

• •

डॉ० शंकरदेव अवतरे

• •

प्रस्तुत ग्रन्थ में महाकवि सूर के काव्य और व्यक्तित्व के अध्ययन-विश्लेषण के अतिरिक्त 'भ्रमरगीत' की चुनी हुई कविताओं पर व्याख्या और टिप्पणियाँ दी गयी हैं।

मूल्य १०.००

प्रकाशक

ओरिएण्टल बुक डिपो

१७०४, नयी सड़क, दिल्ली-६

इस मास के नये प्रकाशन

• विश्व के महान् वैज्ञानिक — फिलिप केन

विश्व के ५० महान् वैज्ञानिकों, जैसे पाइथागोरस, यूक्लिड, हिप्पोक्रेटीज़, आइन्स्टाइन, डार्विन, न्यूटन आदि की रोमांचक और शिक्षाप्रद जीवनियाँ इस ग्रन्थ में सचित्र प्रस्तुत की गयी हैं। साथ ही विश्व को दिये उनके उपहारों की रोचक कथाएँ संकलित हैं। अनुवादक हैं लाजपतराय एम० ए०।

१०.००

• काँच के खिलौने — अनु० अमिताभ

इस पुस्तक में तीन विश्वविख्यात आधुनिक रंगमंचीय नाटक संग्रहीत हैं। 'काँच के खिलौने' टेनेसी विलियम्स के अत्यन्त प्रभावपूर्ण और रोचक नाटक 'द ग्लास मेनाजरी' का अनुवाद है।

६.००

• राष्ट्रपति राधाकृष्णन् — अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् इस युग के एक महान् दार्शनिक और तत्त्व-चिन्तक के रूप में विश्वविख्यात हैं। विख्यात पत्रकार श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार ने इस पुस्तक में डॉ० राधाकृष्णन् के प्रेरणाप्रद जीवन और उनके युगान्तरकारी विचारों का पूर्ण प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत किया है।

४.००

• सुवीरा — कर्तारसिंह दुग्गल

सुप्रसिद्ध कथाकार कर्तारसिंह दुग्गल ने, जिन्हें इस वर्ष साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्रदान किया गया है, अपने इस उपन्यास में भारतीय नारी के अन्तर्मन की एक ऐसी झाँकी पेश की है जो बरबस हृदय को छू लेती है।

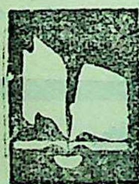
२.५०

राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली-६



हमारी मूल्यांकन माला की कुछ उत्कृष्ट पुस्तकें

- सियारामशरण गुप्त : डॉ० नगेन्द्र ७.५०
- युगचारण 'दिनकर' : डॉ० सावित्री सिन्हा १०.००
- बच्चन : व्यक्ति और कवि : सं० बाँकेबिहारी भटनागर ४.००
- जैनेन्द्र : व्यक्ति, कथाकार और चिन्तक : सं० बाँकेबिहारी भटनागर ५.००
- जैनेन्द्र और उनके उपन्यास : रघुवीर सरन झालानी ५.००
- यशपाल की कहानी कला : कुमारी अनु विग २.५०
- प्लेटो के काव्य-सिद्धान्त : डॉ० निर्मला जैन ६.००
- प्रेमचन्द के नारीपात्र : ओम अवस्थी ५.००
- डॉ० नगेन्द्र के आलोचना सिद्धान्त : नारायणप्रसाद चौबे ७.००
- शरतचन्द्र : व्यक्ति और साहित्यकार : मन्मथनाथ गुप्त ६.००
- गुप्तजी की काव्य-साधना : डॉ० उमाकान्त ८.००
- नरेन्द्र शर्मा और उनका काव्य : लक्ष्मीनारायण शर्मा ४.००
- उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी शिल्प और चिन्तन : डॉ० ललित शुक्ल ६.००



नेशनल पब्लिशिंग हाउस

दिल्ली-७

हमारे अभिनव प्रकाशन

भारतीय संस्कृति का विकास : औपनिषद् धारा

डॉ० मंगलदेव शास्त्री

अप्रतिम चिन्तक-मनीषी की एक महत्त्वपूर्ण नयी कृति जिसमें प्राचीन उपनिषदों का पूर्णतया विश्लेषण करके उसे भारतीय संस्कृति के साथ हृदयग्राही शैली में निरूपित किया गया है। वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन पर उपनिषदों के प्रभाव का वर्णन इस पुस्तक का वैशिष्ट्य है। **मूल्य १२.००**

साधु दर्शन तथा सत्प्रसंग (दो खण्ड)

महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज

प्रस्तुत ग्रन्थ-रत्न में कविराज जी के सम्पर्क में आये अनेक साधु-सन्त तथा प्रसिद्ध सिद्ध महापुरुषों के संस्मरणों को लिपिबद्ध किया गया है। जितनी गम्भीर है यह कृति उतनी ही रोचक भी। **मूल्य खण्ड एक : १०.००, द्वितीय खण्ड यन्त्रस्थ**

उत्तर वैदिक समाज और संस्कृति

डॉ० विजयबहादुर राव

एक महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध : जिसके अन्तर्गत उत्तर वैदिक कालीन संस्कृति का विकास, तत्कालीन जातियों, सिन्धु-घाटी सभ्यता, प्राक् वैदिककालीन आर्यों की सभ्यता आदि का विश्लेषण-परीक्षण बड़ी पैनी और मौलिक दृष्टि से प्रस्तुत है। **मूल्य १२.००**

अभिनव कथा-निकुंज

सं० आचार्य शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी

संस्कृत साहित्य की अनेक अनूठी और मर्मस्पर्शी कथाओं का नवीनतम संग्रह। अत्यन्त रोचक और पठनीय। **मूल्य ६.००**

भारतीय विद्या प्रकाशन

पो० बॉक्स सं० १०८

कचौड़ी गली, वाराणसी-१ (भारत)

आज के दुर्दान्त आर्थिक प्रतियोगिता
और एकान्तिक व्यावसायिकता के युग में
आधी शताब्दी पूर्व
एक महान् ऋषिकल्प स्वप्नदर्शी
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने
कुछ आगे-पीछे तीन संस्थाओं की स्थापना की थी :
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दी विद्यापीठ और
साहित्य भवन ।
तब से पूर्ण नैष्ठिकता के साथ अनवरत

साहित्य भवन प्रा० लि०

इलाहाबाद–३
[प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता]

राष्ट्रभाषा की अनन्य सेवा
और सत्साहित्य के प्रकाशन में रत है ।
साहित्य भवन के विश्रुत कृतिकारों की
परम्परा में कुछ नाम :
आचार्य क्षितिमोहन सेन, आचार्य सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या,
आचार्य नन्दलाल बसु, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी,
डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, गुरुदयाल मलिक,
डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ० विनयमोहन शर्मा,
पद्मश्री महादेवी वर्मा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी,
डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० माताप्रसाद गुप्त आदि ।



प्रचारक-द्वारा प्रकाशित

आलोचना एवं सन्दर्भ साहित्य

- हिन्दी सन्त साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव : डॉ० विद्यावती मालविका २०.००
- मध्यकालीन सन्त साहित्य : डॉ० रामखेलावन पाण्डेय १५.००
- सूरपूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य : डॉ० शिवप्रसाद सिंह १२.५०
- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास : डॉ० शम्भुनाथ सिंह १२.००
- बिहारी का नया मूल्यांकन : डॉ० बच्चन सिंह ५.००
- श्रीराधा का क्रम-विकास : डॉ० शशिभूषणदास गुप्त ८.००
- कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा : डॉ० शिवप्रसाद सिंह ७.००
- भारतीय प्रेमाख्यान काव्य : डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव १०.००
- बीसलदेव रासो : डॉ० तारकनाथ अग्रवाल ६.००
- महाकवि मतिराम : डॉ० त्रिभुवन सिंह १०.००
- विद्यापति : डॉ० शिवप्रसाद सिंह ५.००
- कहानी का रचना-विधान : डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ६.००
- मधुमालती (मंझन कृत) : डॉ० शिवगोपाल मिश्र ८.००
- हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डॉ० त्रिभुवन सिंह ९.००
- समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द : डॉ० महेन्द्र भटनागर ५.००
- कामायनी की व्याख्यात्मक आलोचना : विश्वनाथलाल शैदा ८.००



हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

पो० बॉ० सं० ७०, पिशाचमोचन, वाराणसी-१

१९५।१, महात्मा गान्धी रोड, कलकत्ता-१

माध्यम

समस्त भारतीय भाषाओंका हिन्दी-माध्यम

हिन्दी साहित्य सम्मेलनका मासिक

सम्पादक : बालकृष्ण राव

- 'माध्यम' अपने 'सहवर्ती साहित्य' स्तम्भके अन्तर्गत किसी एक हिन्दीतर भारतीय भाषाकी चुनी हुई समसामयिक रचनाएँ प्रस्तुत करता है।
- 'माध्यम'के मई १९६६में प्रकाशित 'केरल विशेषांक'को हिन्दी-जगत्ने 'उत्तरापथ और दक्षिणापथका सांस्कृतिक सेतु' तथा 'भावात्मक एकताका प्रतीक'के रूपमें स्वीकार किया है।
- 'विवेचना-गोष्ठी'में विवेचित समीक्षाओंके अतिरिक्त प्रत्येक अंकमें अन्य विशिष्ट समीक्षात्मक सामग्री प्रस्तुत करना इसका उद्देश्य है।
- युगबोधके प्रति सजग प्रत्येक छात्र, अध्यापक तथा हिन्दी-प्रेमी पाठकके लिए 'माध्यम' एक अनिवार्य आवश्यकता है।
- और सभी प्रकारके पुस्तकालयोंके लिए 'माध्यम' संग्रहणीय है।

मूल्य : एक प्रति १.२५, वार्षिक १२.५०

पत्राचार : सम्पादकीय : डाक बक्स सं० ६०, इलाहाबाद।
व्यवस्थापकीय : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद।

राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, मद्रास, मैसूर, केरल, तथा असम प्रदेश के

हिन्दी प्रकाशकों के लिए

प्रिय बन्धु,

'स्टार बुक सेण्टर' के द्वारा हिन्दी प्रकाशनों के विक्रेता के रूप में हम पुस्तकों की बिक्री करते आ रहे हैं। इस योजना को और व्यापक बनाने के लिए अब हमने 'सेण्टर' का नाम 'हिन्दी-बुक सेण्टर' रखने का निश्चय किया है। हमारी योजना है कि इस 'बुक सेण्टर' के द्वारा भारत-भर में प्रकाशित सभी हिन्दी पुस्तकें पुस्तक-विक्रेताओं एवं पुस्तकालयों को प्राप्त हो सकें। 'हिन्दी-बुक सेण्टर' का उद्देश्य है—आपके प्रकाशनों की बिक्री करना और उनमें अधिकाधिक रुचि लेना।

गत वर्ष से हम अमेरिकन लायब्रेरियों को हिन्दी पुस्तकें सप्लाई कर रहे हैं और यह व्यवस्था इस वर्ष भी जारी है।

आप अपने यहाँ से प्रकाशित हिन्दी पुस्तकों की सूची, जिनका प्रकाशन १९६२ या उसके पश्चात हुआ है, बनाकर भेज दें। इस अवधि में यदि आपने किसी उत्तम कृति का पुनः मुद्रण किया है तो उसका भी सूची में उल्लेख कर दे। हम अपनी भेजी हुई सूची की पुस्तकें चैक करके, यदि आपकी पुस्तकें अमेरिकन लायब्रेरी में नहीं गयी हैं तो, उनकी माँग हम आपको भेज देंगे। यदि आप चाहें तो अपने प्रकाशन की एक-एक प्रति भेज दें! हम स्वीकृत पुस्तकों की १८-१८ प्रतियाँ वी० पी० या बैंक से मँगायेंगे।

नये प्रकाशनके लिए आप अपनी पुस्तकों का २-२ प्रतियों का हमारा स्थायी आदेश नोट कर लें और तैयार होते ही उन्हें वी० पी० पी० से भेज दें। अपने व्यापारिक नियम तथा अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष कमीशन जो दे सकते हों उससे भी सूचित करें।

ऊपर लिखे हुए प्रदेशों में प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें, अमेरिकन लायब्रेरी में सप्लाई करने के लिए सप्लायर हम नियुक्त हुए हैं।

हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि हमें आपका पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

—व्यवस्थापक

हिन्दी बुक सेण्टर

दरियागंज (मोती महल के पीछे), दिल्ली-६

अप्रतिम अपरिहार्य और मौलिक

शोध-प्रबन्ध

० ० ० ० ० ० ०

१. हिन्दी उपन्यास : पृष्ठभूमि और परम्परा : डॉ० बदरीदास	२०.००
२. आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद : डॉ० परशुराम शुक्ल 'विरही'	१६.००
३. छायावादी काव्य और निराला : डॉ० शान्तिकुमारी श्रीवास्तव	१६.००
४. मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य : डॉ० शिवसहाय पाठक	१८.००
५. छायावाद : काव्य तथा दर्शन : डॉ० हरनारायण सिंह	१५.००
६. आधुनिक हिन्दी कविता में ध्वनि : डॉ० कृष्णलाल शर्मा	१५.००
७. प्रगतिवादी समीक्षा : डॉ० रामप्रसाद त्रिवेदी	१०.००
८. प्रसाद की दार्शनिक चेतना : डॉ० चक्रवर्ती	२०.००
९. सन्त-साहित्य : डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल	१८.००
१०. हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया : डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव	१२.५०
११. आधुनिक हिन्दी-काव्य-भाषा : डॉ० रामकुमार सिंह	२५.००
१२. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास : डॉ० कमलकुमारी जौहरी	२०.००
१३. काव्य में रहस्यवाद : डॉ० बच्चूलाल अवस्थी	१२.५०
१४. सूरदास का काव्य-वैभव : डॉ० मुन्शीराम शर्मा	१२.५०
१५. आधुनिक हिन्दी-काव्य : डॉ० राजेन्द्र मिश्र	२०.००
१६. प्रगतिवादी काव्य : श्री उमेशचन्द्र मिश्र	१२.५०
१७. हिन्दी-एकांकी की शिल्पविधि का विकास : डॉ० सिद्धनाथ कुमार	१८.००
१८. नव्य हिन्दी-समीक्षा : डॉ० कृष्णवल्लभ जोशी	१६.००
१९. आधुनिक हिन्दी-गद्य और गद्यकार : डॉ० जेकब पी० जार्ज	१५.००

० ० ० ० ० ० ०

प्रकाशक

ग्रन्थम

रामबाग, कानपुर-१२

ज्ञानोदय

दिसम्बर १९६६

महानगर विशेषांक-२

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार-वितरण
समारोह परिशिष्ट सहित

■ महाकवि जि. शंकर कुरुपसे एक विशेष भेंट ■ पुरस्कार-वितरण समारोहका सचित्र वृत्त ■ ज्ञानपीठ-पुरस्कार-प्रगति-विवरण

o o o o o o o o o o o o o o o o o o o o o o o

विशेष शीर्षक :

● महानगर : स्पेंगलरकी नज़रमें, ● अजनबी आकाश, ● पापा अगर रोबोट हों..., ● इलाहाबाद अभी-अभी : लघुमानवोंका महानगर, ● लोक-साहित्यमें नगर-जीवन, ● बम्बई : सचके भीतरका सच, ● चण्डीगढ़-शिमला, ● लालसा महानगरमें : ज़िन्दगीकी, ● महानगरके छोटे-छोटे बच्चे, ● महानगरमें यौन-जीवन, ● मुरदोंका जुलूस : साक्षी है कालजयी

विशेष रचनाकार :

o इलाचन्द्र जोशी o चन्द्रकान्त बक्षी o महेन्द्र कुलश्रेष्ठ o भगवत शरण उपाध्याय o रमेश उपाध्याय o हरीश अग्रवाल o लक्ष्मीकान्त वर्मा o श्रीधर मिश्र o प्रेमकपूर o परेश o शत्रुघ्नलाल o अजितकुमार o हरिकृष्ण देवसरे o मन्मथनाथ गुप्त o अनन्त मिश्र o सुरेश सिन्हा o श्रीहर्ष o प्रयाग शुक्ल o रवीन्द्रनाथ त्यागी o किशोरी रमण टण्डन o भारतभूषण अग्रवाल o पद्मधर त्रिपाठी....आदि

पृष्ठ संख्या २१४, मूल्य एक रुपया

ज्ञानोदय

सम्पादकीय कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

वितरण कार्यालय
भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

• राष्ट्रभारती

२३५	ओटक्कुषल	जी. शंकर कुरुप	
२४१	एक और नचिकेता	जी. शंकर कुरुप	८.००
२२४	प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी	सं०—दिनकर सोनवलकर	३.००
२०७	प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी दो	नानक सिंह	४.००
२०४	प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी दो	प्रो० ना० सो० फड़के	४.००
१९०	प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी एक	कर्तारसिंह दुग्गल	४.५०
१९१	प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी	सं०—अनिलकुमार	३.५०
१६८	प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु	नार्ल वेंकटेश्वर राव	४.००
१७०	प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला	'परशुराम'	३.५०
१७१	प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी एक	व्यंकटेश दि० माडगूलकर	३.००
			४.००

• उपन्यास

२१३	अस्तंगता	भिक्खु	६.००
२२५	अठारह सूरजके पौधे	रमेश बक्षी	३.००
१६४	सूरजका सातवाँ घोड़ा [च० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	२.००
२१५	जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	३.५०
१५४	पीले गुलाबकी आत्मा [द्वि० सं०]	विश्वम्भर 'मानव'	४.००
७९	गुनाहोंका देवता [आठवाँ सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	५.००
५५	रक्त-राग [द्वि० सं०]	देवेशदास आइ०सी०एस०	३.००
५१	तीसरा नेत्र [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	२.५०
१९९	जो	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
१६९	महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सुनें !!	'भिक्खु'	३.००
१३७	पलासीका युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	३.५०
१४२	अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय	३.००
८०	शतरंजके मोहरे [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अमृतलाल नागर	६.००
९५	शह और मात	राजेन्द्र यादव	४.००
११३	राजसी	देवेशदास आइ०सी०एस०	२.५०
६२	संस्कारोंकी राह [पुरस्कृत]	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०
१२६	ग्यारह सपनोंका देश [द्वि० सं०]	सं०—लक्ष्मीचन्द्र जैन	५.००
१	मुक्तिदूत [द्वि० सं०]	वीरेन्द्रकुमार जैन	५.००

• कहानी

क्रम	पुस्तक	लेखक	मूल्य
२३८	काठका सपना	ग० मा० मुक्तिबोध	३.५०
२३१	राजा निरबंसिया	कमलेश्वर	५.००
२२९	सवेरा संघर्ष गर्जन	डॉ. भगवतशरण उपाध्याय	७.००
२२७	मुरदा सराय	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	४.००
१७३	खोयी हुई दिशाएँ [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	२.५०
२	दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ [द्वि. सं.]	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	३.००
१९५	झाड़ी [द्वि० सं०]	श्रीकान्त वर्मा	३.००
१६६	मेज़पर टिकी हुई कुहनियाँ	रमेश बक्षी	३.५०
६०	कालके पंख [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
३०	खेल खिलौने [द्वि० सं०]	राजेन्द्र यादव	२.००
१५९	बोस्ताँ [द्वि० सं०]	शेख सादी	२.५०
६३	जय-दोल [तृ० सं०]	अज्ञेय	३.००
१४२	ज़िन्दगी और गुलाबके फुल	उषा प्रियंवदा	२.५०
८९	अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
८५	कर्मनाशाकी हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.००
१३१	सूने आँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	३.००
१५१	प्यारके बन्धन	रावी	३.२५
८२	मोतियोंवाले [पुरस्कृत]	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
६९	हरियाणा लोकमंचकी कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२.५०
६५	मेरे कथागुरुका कहना है : १	रावी	३.००
१४४	मेरे कथा गुरुका कहना है : २	रावी	३.००
३५	पहला कहानीकार [पुरस्कृत]	रावी	२.५०
२४	संघर्षके बाद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विष्णु प्रभाकर	३.००
५८	नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
३७	अतीतके कम्पन [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
२०	आकाशके तारे : धरतीके फूल [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर'	२.००
५०	नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
१२	गहरे पानी पैठ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
४३	जिन खोजा तिन पाइयाँ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
५४	कुछ मोती कुछ सीप [तृ० सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
१३९	लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.००
९४	एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००
११५	ऑस्कर वाइल्डकी कहानियाँ	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०

• कविता

क्रमांक	पुस्तक	लेखक	मूल्य
२४२	माया दर्पण	श्रीकान्त वर्मा	३.००
२३३	अग्निबीज	डॉ० गोविन्दचन्द्र	३.५०
२२६	तार सप्तक [द्वि० परिवर्द्धित संस्करण]	सम्पादक : अज्ञे	८.००
२२८	शहर अब भी सम्भावना है	अशोक वाजपेयी	३.००
६४	लेखनी-बेला [द्वि० सं०]	वीरेन्द्र मिश्र	३.५०
२२०	इतिहास-पुरुष	डॉ० देवराज	३.५०
१२०	देशान्तर [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	१२.००
२१८	अन्धा चाँद	मुनि रूपचन्द	३.००
२०१	चाँदका मुँह टेढ़ा है [द्वि० सं०]	मुक्तिबोध	८.००
२०८	आत्मजयी	कुँवरनारायण	३.५०
८६	कनुप्रिया	डॉ० धर्मवीर भारती	३.००
१९४	हम विषपायी जनमके [द्वि० सं०]	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१६.००
११८	वेणु लो गूँजे धरा [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
२०३	चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन	३.००
२०२	संक्रान्त	डॉ० कैलाश वाजपेयी	३.००
१९६	हिम-विद्ध	डॉ० जगदीश गुप्त	३.००
१८६	बीजुरी काजल आँज रही	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
१८५	अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	३.००
१७८	रत्नावली	हरिप्रसाद 'हरि'	२.००
६८	वाणी [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
६६	सौवर्ण [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	३.५०
१४६	आँगनके पार द्वार [अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत]	अज्ञेय	३.००
१३४	वीणापाणिके कम्पाउण्डमें	केशवचन्द्र वर्मा	३.००
१२२	रूपाम्बरा	सं०—अज्ञेय	१२.००
८८	अनुक्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
८१	तीसरा सप्तक [द्वि० सं०]	सं०—अज्ञेय	५.००
११०	अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	४.००
९१	सात गीत-वर्ष [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.५०
१२७	आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.००
९	पंच-प्रदीप	शान्ति मेहरोत्रा	२.००
८	मेरे बापू	तन्मय बुखारिया	२.५०
१३९	धूपके धान [तृ० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.५०
११३	वर्द्धमान [महाकाव्य पुरस्कृत]	अनूप शर्मा	६.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

• शाइरी

क्रम	पुस्तक	लेखक	मूल्य
२३६	उस्तादाना कमाल	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
५	शेर-ओ-शाइरी [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
१४	शेर-ओ-सुख़न : भाग–१ [द्वि० सं० पु०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
२६	शेर-ओ-सुख़न : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२७	शेर-ओ-सुख़न : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२८	शेर-ओ-सुख़न : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
३१	शेर-ओ-सुख़न : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
	शेर-ओ-सुख़न [भाग २-३-४-५]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	११.००
७२	शाइरीके नये दौर : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७३	शाइरीके नये दौर : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१०४	शाइरीके नये दौर : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
११०	शाइरीके नये दौर : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१४१	शाइरीके नये दौर : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७६	शाइरीके नये मोड़ : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७७	शाइरीके नये मोड़ : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१५६	शाइरीके नये मोड़ : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७५	शाइरीके नये मोड़ : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७७	शाइरीके नये मोड़ : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१३८	नग़मए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
१५८	गंगोजमन [द्वि० सं०]	'नज़ीर' बनारसी	३.००
११९	ग़ालिब	श्रीरामनाथ 'सुमन'	८.००
९२	मीर	श्रीरामनाथ 'सुमन'	६.००

• नाटक

क्रम	पुस्तक	लेखक	मूल्य
९८	जनम क़ैद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.००
२१९	प्रेत	इब्सेन, अनु० नेमिचन्द्र जैन	२.२५
७५	बारह एकांकी [द्वि० सं०]	विष्णु प्रभाकर	४.००
१६७	घाटियाँ गूँजती हैं [तृ० सं०]	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	२.५०
२०५	नाटक बहुरूपी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.५०
१७२	आदमीका ज़हर	लक्ष्मीकान्त वर्मा	३.००
१७	रजत रश्मि [द्वि० सं० पुरस्कृत]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
१५५	तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ	परिपूर्णानन्द वर्मा	४.००

१००	सुन्दर[illegible] [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	१.५०
१३२	नाटक बहुरंगी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	४.५०
७८	कहानी कैसे बनी ?	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
५३	पचपनका फेर [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विमला लूथरा	३.००
५९	तरकशके तीर	श्रीकृष्ण	३.००
४७	और खाई बढ़ती गयी [पुरस्कृत]	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०
६७	चेखवके तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
१०१	कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ० भगवतशरण उपा०	३.५०
१०६	सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	२.००
१०८	भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०

• विधा-विविधा

१५०	खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति मेहरोत्रा	४.५०
१४९	अंकित होने दो	अजित कुमार	४.००
८७	काठकी घण्टियाँ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	७.००
१०२	सीढ़ियोंपर धूपमें	रघुवीर सहाय	४.००
१२५	पत्थरका लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	३.००

• रुचिर-कलात्मक

१९२	शैशवांकन		१२.००
१६१	परिणय गीतिका	सं०—रमा जैन कुन्था जैन	५.००

• ललित-निबन्धादि

२३९	वाग्धारा	डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल	४.००
२१६	कुछ निबन्ध	अक्षयकुमार जैन	२.५०
१८३	क्षण बोले कण मुसकाये [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
२११	चिन्तककी लाचारी	माखनलाल चतुर्वेदी	४.००
१९७	एक साहित्यिककी डायरी [द्वि० सं०]	गजानन माधव मुक्तिबोध	२.५०
११७	अमीर इरादे ग़रीब इरादे [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	२.००
१८१	हम सब और वह	दयानन्द वर्मा	२.००
१८०	बातें, जिनमें सुगन्ध फूलोंकी	अहमद सलीम	३.[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	महक आँगन चहक द्वार	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
१६३	शिखरोंका सेतु	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.५०
५७	बाजे पायलियाके घुँघरू [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००

१४८ फिर बैतलवा डालपर — विवेकी राय — ३.५०
१४७ आँगनका पंछी और बनजारा मन — डॉ० विद्यानिवास मिश्र — ३.००
१२८ नये रंग नये ढंग — लक्ष्मीचन्द्र जैन — २.००
७१ बना रहे बनारस — विश्वनाथ मुखर्जी — २.५०
१२३ काग़ज़की किश्तियाँ — लक्ष्मीचन्द्र जैन — २.५०
१११ सांस्कृतिक निबन्ध — डॉ० भगवतशरण उपाध्याय — ३.००
९६ वृन्त और विकास — शान्तिप्रिय द्विवेदी — २.५०
१०३ ठूँठा आम — डॉ० भगवतशरण उपाध्याय — २.००
२९ हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान [द्वि.सं.] — डॉ० सम्पूर्णानन्द — १.००
७० ग़रीब और अमीर पुस्तकें — रामनारायण उपाध्याय — १.००
४६ क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ? — रावी — २.५०
५६ माटी हो गयी सोना [तृ० सं०] — कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर' — २.५०
२५ ज़िन्दगी मुसकरायी [तृ० सं०] — कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' — ४.००

• यात्रा-विवरण

१८७ चीड़ोंपर चाँदनी — निर्मल वर्मा — ३.००
१३० एक बूँद सहसा उछली — अज्ञेय — ७.००
८४ पार उतरि कहँ जइहौं — प्रभाकर द्विवेदी — ३.००
९९ सागरकी लहरोंपर — डॉ० भगवतशरण उपाध्याय — ४.००
१३६ हरी घाटी — डॉ० रघुवंश — ४.५०

• संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी

७४ दीप जले शंख बजे [द्वि० सं०] — कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' — ३.००
१६२ समयके पाँव [तृ० सं०] — माखनलाल चतुर्वेदी — ३.००
२१ रेखाचित्र [द्वि० सं० पुरस्कृत] — बनारसीदास चतुर्वेदी — ४.००
१२४ पराड़करजी और पत्रकारिता [पुरस्कृत] — लक्ष्मीशंकर व्यास — ५.५०
१०९ आत्मनेपद — अज्ञेय — ४.००
११४ माखनलाल चतुर्वेदी — 'बरुआ' — ६.००
१५ जैन-जागरणके अग्रदूत — अयोध्याप्रसाद गोयलीय — ५.००
१९ संस्मरण [द्वि० सं० पुरस्कृत] — बनारसीदास चतुर्वेदी — ३.००
१६ हमारे आराध्य [पुरस्कृत] — बनारसीदास चतुर्वेदी — ३.००

• अध्ययन, आलोचना, अनुसन्धान, रचना-शिल्प

२३४ हिन्दी शब्द रचना — माईदयाल जैन — ६.००
२३० कविवर बनारसीदास — डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन — १०.००

२१०	हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थ	कृष्णाचार्य	
२१४	नये प्रतिमान : पुराने निकष	लक्ष्मीकान्त वर्मा	७.००
१५२	अपभ्रंश भाषा और साहित्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	७.००
२२१	विवेकके रंग	सं०-डॉ०देवीशंकर अवस्थी	१०.००
१८९	हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि	डॉ० प्रेमसागर जैन	७.००
१९३	भाषा और संवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	१२.००
१८८	हिन्दी गीतिनाट्य	कृष्ण सिंहल	२.५०
१७४	साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य	डॉ० रघुवंश	४.००
१५७	जैन भक्ति-काव्यकी पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमसागर जैन	५.००
१३५	रेडियो वार्ता-शिल्प	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	६.००
४१	रेडियो नाट्य-शिल्प [द्वि० सं०]	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	२.००
३८	ध्वनि और संगीत [द्वि० सं०]	ललितकिशोर सिंह	३.००
१८	भारतीय ज्योतिष [च० सं०]	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	४.५०
८३	प्राचीन भारतके प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	८.००
४५	संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०
४८	संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन [द्वि.सं.]	डॉ० भोलाशंकर व्यास	३.००
१२९	हिन्दी नवलेखन	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	५.००
११२	मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	४.००
४२	शरत्के नारी-पात्र	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.५०
४५	हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : १	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	४.५०
४९	हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : २	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०
			२.५०

• इतिहास-राजनीति

१४५	भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०]	डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१०.००
१९८	भारतीय संस्कृतिका विकास : वैदिक धारा	डॉ० मंगलदेव शास्त्री	७.००
१२१	समाजवाद [छठा सं०]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५.००
३६	कालिदासका भारत : भाग १ [द्वि० सं०]	डॉ०भगवतशरण उपाध्याय	५.००
४०	कालिदासका भारत : भाग २ [द्वि० सं०]	डॉ०भगवतशरण उपाध्याय	४.००
३२	चौलुक्य कुमारपाल [द्वि०सं० पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.५०
५२	एशियाकी राजनीति	परदेशी	६.००
१०७	इतिहास साक्षी है	डॉ०भगवतशरण उपाध्याय	३.००
२३	खोजकी पगडण्डियाँ [द्वि० सं० पुरस्कृत]	मुनि कान्तिसागर	४.००
२२	खण्डहरोंका वैभव [द्वि० सं०]	मुनि कान्तिसागर	६.००

• दार्शनिक-आध्यात्मिक

२१७	तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो	मुनि नथमल	२.००
२१२	क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?	आचार्य तुलसी	२.००
३३	अध्यात्म-पदावली [तृ० सं०]	डॉ० राजकुमार जैन	४.५०
२०६	दर्शन अनुचिन्तन	गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	३.००
२००	तान्त्रिक साधना	माधव पुण्डलीक पण्डित	१.५०
१०	भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२.००

• सूक्तियाँ

१४०	सन्त-विनोद [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	२.५०
१८२	भाव और अनुभाव [द्वि० सं०]	मुनि नथमल	२.००
११	ज्ञानगंगा : भाग १ [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	६.००
११६	ज्ञानगंगा : भाग २	नारायणप्रसाद जैन	६.००
६१	शरतकी सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
१३	कालिदासके सुभाषित	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००

• हास्य-व्यंग्य

२२२	बक रहा हूँ जुनूनमें	प्रकाश पण्डित	३.००
२०९	सिकन्दरनामा	सलमा सिद्दीक़ी	२.००
१३३	आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य [द्वि० सं०]	सं०—केशवचन्द्र वर्मा	४.००
१६०	तेलकी पकौड़ियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० प्रभाकर माचवे	२.००
१७६	जैसे उनके दिन फिरे [द्वि० सं०]	हरिशंकर परसाई	२.५०
१८४	काग़ज़के फूल शब्द : भारतभूषण अग्रवाल	चित्र : प्रभाकर माचवे	३.००
१७९	चाय पार्टियाँ	सन्तोषनारायण नौटियाल	२.००
१५३	हास्य मन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	६.००
१०५	मुर्ग़-छाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	२.००
९७	अंगदका पाँव	श्रीलाल शुक्ल	२.५०

• चिकित्सा

२२३	घरेलू इलाज	वैद्यरत्न च० गो० ठक्कुर	२.००

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर और साथमें दिया ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा। जैसे : 'सूरजका सातवाँ घोड़ा' के लिए 'लो'–१६४' मात्र।



तत्त्वज्ञान और सिद्धान्तशास्त्र

१० तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग १
२० तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग २
मूल : भट्ट अकलंक; सम्पा० : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य दोनों भाग २४.००
१३ सर्वार्थसिद्धि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य पूज्यपाद; सं०-अनु० : पं०फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री १२.००
१० पंचसंग्रह [प्राकृत-हिन्दी]
संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री १५.००
८ जैन धर्मामृत [संस्कृत-हिन्दी]
संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री ३.००

जैन न्याय और कर्मग्रन्थ

१० जैन न्याय [हिन्दी] कैलाशचन्द्र शास्त्री ९.००
११ कर्मप्रकृति [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य नेमिचन्द्र, सम्पादन : पं० हीरालाल शास्त्री ६.००
३० सत्यशासन-परीक्षा [संस्कृत]
मूल : आचार्य विद्यानन्द; सम्पादन : डॉ० गोकुलचन्द्र जैन ५.००
२२ सिद्धि विनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग १
२३ सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग २
मूल : भट्ट अकलंक और अनन्तवीर्य; सं० : डॉ० महेन्द्रकुमार दोनों भाग ३०.००
३ न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग १
१२ न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग २
मूल : भट्ट अकलंक और वादिराज सूरि; सं. : डॉ. महेन्द्रकुमार दोनों भाग ३०.००
१ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग १ सं० अनु० सु० च० दिवाकर ११.००
४ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग २ ११.००

मूल : भगवन्त भूतवलि; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

५ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ३ ११.००

६ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ४ ११.००

७ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ५ ११.००

८ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ६ ११.००

९ महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ७ ११.००

आचारशास्त्र, पूजा और व्रत-विधान

११ सोलह कारण भावना [हिन्दी] : महात्मा भगवानदीन २.००

२८ उपासकाध्ययन [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : सोमदेव सूरि, सं०-अनु० : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री १२.००

३ वसुनन्दि श्रावकाचार [प्राकृत-हिन्दी]

मूल : आचार्य वसुनन्दि; सं०-अनु० : पं० हीरालाल शास्त्री ५.००

७ ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि [हिन्दी]

संकलन-सम्पादन : डॉ० आ०ने०उपाध्ये व फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ४.००

१९ व्रततिथिनिर्णय [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : अज्ञात; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ३.००

६ मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन [हिन्दी]

लेखक : पं० नेमिचन्द्र शास्त्री २.००

व्याकरण, छन्दशास्त्र और कोष

१७ जैनेन्द्र महावृत्ति [संस्कृत]

मूल : आचार्य अभयनन्दि; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी १५.००

५ सभाष्य रत्नमञ्जूषा [संस्कृत]

मूल : अज्ञात; सम्पादन : श्री हरि दामोदर वेलणकर २.००

६ नाममाला सभाष्य [संस्कृत]

मूल : कवि धनंजय–अमरकीर्ति; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी ३.५०

पुराण-साहित्य

२७ हरिवंशपुराण [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : आचार्य जिनसेन; सं०–अनु० : पं०पन्नालाल साहित्याचार्य १६.००

८ आदिपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य
९ आदिपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग २ प्रत्येक भाग १०.००
१४ उत्तरपुराण [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य गुणभद्र; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १०.००
२१ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
मूल : आचार्य रविषेण; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य
२४ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
२६ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३ प्रत्येक भाग १०.००
१५ पुराणसार-संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
मूल : आचार्य दामनन्दि; सं०-अनु० : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी
१६ पुराणसार-संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २ प्रत्येक भाग २.००

चरित व काव्य-ग्रन्थ

६ सुगन्धदशमी कथा : सं० डॉ० हीरालाल जैन ११.००
४ करकण्डचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]
मूल : कनकामर, सं०-अनु० : डॉ० हीरालाल जैन १०.००
२९ भोजचरित्र [संस्कृत]
मूल : राजवल्लभ, सम्पा० : डॉ० छाबड़ा, शंकरनारायणन् ८.००
५ मयणपराजयचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]
मूल : कवि हरिदेव; सम्पादन और अनुवाद : डॉ० हीरालाल जैन ८.००
१ मदनपराजय [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : नागदेव; सं०-अनु० : डॉ० राजकुमार जैन साहित्याचार्य ६.००
१ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग १
मूल : कवि स्वयम्भू; सं०-अनु० : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन
२ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग २
३ पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग ३ प्रत्येक भाग ३.००

१८ जीवन्धरचम्पू [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : कवि हरिश्चन्द्र
सम्पादन, अनुवाद और टीका : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य — ८.००

१ जातकट्ठकथा [पाली]
सम्पादन : भिक्षु धर्मरक्षित — ९.००

५ धर्मशर्माभ्युदय [हिन्दी]
अनुवादक : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य — ३.००

ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र

२५ भद्रबाहु संहिता [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य भद्रबाहु; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य — ८.००

७ केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य — ४.००

२ करलक्खण [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी — ०.७५

विविध

९ वर्ण, जाति और धर्म [हिन्दी]
लेखक : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री — ३.००

११ जिनसहस्रनाम [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री — ४.००

१ थिरुकुरल [तमिल]
सम्पादन : ए० चक्रवर्ती — ५.००

१ आधुनिक जैन कवि [हिन्दी]
संकलन-सम्पादन : श्रीमती रमा जैन — ३.७५

२ कन्नड-प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ-सूची
संकलन-सम्पादन : पं० के० भुजबली शास्त्री — १३.००



माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला

पुराण

३७ महापुराण [अपभ्रंश] आदिपुराण : भाग १
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य १०.००

४१ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग २
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य १०.००

४२ महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग ३
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य ६.००

२९ पद्मचरितम् [संस्कृत] भाग १
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल १.५०

३० पद्मचरितम् [संस्कृत] भाग २
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल २.००

३१ पद्मचरितम् [संस्कृत] भाग ३
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल २.००

३२ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल २.००

३३ हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल १.५०

शिलालेख

२८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
सम्पादन : पं० श्री हीरालाल जैन २.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

४५ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति ८.००
४६ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति १०.००
४८ जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ४
सम्पादन : डॉ० जोहरापुरकर ७.००

चरित, काव्य और नाटक

४० वरांगचरित [संस्कृत]
मूल : श्री जटासिंहनन्दि; सम्पादन : डॉ० आदिनाथ उपाध्ये ३.००
३५ जम्बूस्वामीचरित [संस्कृत]
मूल : पं० राजमल्ल; सम्पादन : श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री १.५०
८ प्रद्युम्नचरित [संस्कृत]
मूल : श्री महासेन; सम्पादन : पं० मनोहरलाल, रामप्रसाद शास्त्री ०.५०
रामायण [अपभ्रंश] (अलगसे)
मूल : महाकवि पुष्पदन्त २.५०
२७ पुरुदेवचम्पू [संस्कृत]
मूल : श्रीमदर्हद्दास; सम्पादन : श्री जिनदास शास्त्री ७.५०
४३ अंजनापवनंजय [नाटक]
मूल : श्री हस्तिमल्ल : सम्पादन—वासुदेव पटवर्धन ३.००

जैन-न्याय

३८ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ८.००
३९ न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ८.५०
४७ प्रमाणप्रमेयकलिका [संस्कृत]
मूल : श्री नरेन्द्रसेन; सम्पादन : पं० दरबारीलाल कोठिया १.५०

२१ सिद्धान्तसारादि [प्राकृत-संस्कृत]
मूल : श्री जिनेन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी — १.५०

२५ पञ्चसंग्रह [संस्कृत]
मूल : श्री अमितगति सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — ०.८१

३६ त्रिषष्टिस्मृतिसार [संस्कृत, मराठी अनुवाद]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : मोतीलाल — ०.५०

४४ स्याद्वादसिद्धि [संस्कृत, हिन्दी-सारांश]
मूल : श्री वादीभसिंहसूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

२४ रत्नकरण्डश्रावकाचार [मूल, संस्कृत टीका]
मूल : श्री स्वामी समन्तभद्र; टीका : श्री प्रभाचन्द्राचार्य — २.००

२६ लाटी संहिता [संस्कृत]
मूल : श्री राजमल्ल; सम्पादन : पं० श्री दरबारीलाल — २.५०

३४ नीतिवाक्यामृत (शेषांश) [संस्कृत टीका]
मूल : सोमदेवसूरि; टीका : अज्ञात — ०.२५
हरिवंशपुराण सम्पादन : डॉ० पी० एल० वैद्य — २.५०

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर, भाषा और ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा । जैसे 'समयसार' के लिए 'मू-अं० १' या 'वरांगचरित' के लिए 'मा-४०' मात्र ।

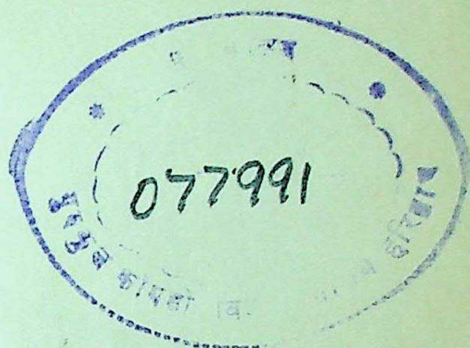
महाकवि जी. शंकर कुरुप

को

एक और काव्य-कृति

एक और नचिकेता

(तथा अन्य कविताएँ)



●

'एक और नचिकेता' महाकवि कुरुपकी 'ओटक्कुपल़'के बादकी दस चुनी हुई लम्बी कविताओंका संग्रह है। रचना-काल १९[illegible] से १९६४ तक। संग्रहकी प्रत्येक कविता कविकी चिन्तन-यात्राको समझानेमें समर्थ। महाकविकी काव्य-शक्ति, सामर्थ्य और काव्य-सौन्दर्यकी परिचायिनी कविताएँ हैं ये।

मूल्य ३.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता :: वाराणसी

विक्रय-केन्द्र

३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और
सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसीसे मुद्रित।